

मणवानु ठेकाल :

श्री अ सा प्रवे. स्थानठवासी  
नैन शा ओ दा र स मि ति  
श्रीन बोअ पामे, राजकोट

\*  
प्रथम आवृत्ति : प्रत १०००  
वीर सप्तत : २४८३  
विक्रम सप्तत : २०१३  
ईस्वी सन : १९५७

\*

: मुद्रक

मण्डिलाल छगनलाल शाह  
धी नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस  
धीर्गंठा रोड अमदावाद

ડા. ૧૦,૦૦૯] આપનાર આદ્ય સુરબ્ધી  
સમિતિના પ્રમુખ, દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ  
અમદાવાદ



---

---

श्री-वर्धमान-श्रमण-संघना आचार्यश्री

पूज्य आत्मारामजी महाराजश्रींमे

आपेल

## संभतिपत्र

\*

उपरात

पूज्य श्री वासीलालजी महाराज-रयित

भील सूनोनी टीका माटे तेज्योश्रीना मंतव्ये

\*

तेमज

अन्य महात्माज्यो, महासतीज्यो, अघतन-पद्धतिवाणा डोलेजना प्रोईसरे

तेमज

शास्त्रज्ञ श्रावडोना अलिआये।

ठे श्रीन लोण पासे  
गरेडीया कुवारेड  
राजकोट : सौराष्ट्र

} श्री अण्डिल भारत श्वे. स्था नैन.  
शास्त्रोद्धार समिति

---

---



पराक्रमवाद हरएकको अबश्य देखना चाहिये। कहा तक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुसमाय ( सोई हुईमी ) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञानधारित्र तथा भीसंघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ-

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पजाधी

✽

इसी प्रकार लाहोरमें बिराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८  
श्री भागवन्दजी महाराज तथा पं० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी  
महाराजके दिय हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके  
प्रमाणपत्रका हिन्दी साराण निम्न प्रकार है-

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग  
सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका  
अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे अपने पढे परिश्रम व पुरुषार्थसे  
तय्यार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्ति  
योकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस छेल्नीसे समाजके  
विद्वान् माधुर्ग पढ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढनेसे हमको  
अस्थानन्द हुआ, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी  
समाजमें भी ऐसे ० सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे-यह एक हमारे  
लिये पढे गौरवकी बात है।

दि स १९८० मा आश्विन  
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर

✽

श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र की 'अनगारधर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर  
जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय  
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका

## सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत-वर्षिणी'  
टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त  
श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी  
म. ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ  
और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल  
स्थलोंको सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा  
असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम  
को सफल बना कर शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित  
करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।

### श्रीमानजी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की  
जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं पहुंचने पर समाचार दें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म. ठाने ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं।  
पूज्य श्री घासीलालजी म. सा ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर  
सुखशाता पूर्णें।

पूज्य श्री घासीलालजी म जी का लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी  
देखना चाहते हैं इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस  
भेज देंगे। आपके पास नहीं हो तो जहांसे मिले वहांसे १ कापी जरूर भिज-  
वाने का कष्ट करे, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करे। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता. ४-८-५१

निवेदक

प्यारेलाल जैन

जैनागमवेत्ता जैनधर्मविधाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामजी  
 महाराज तथा न्याय व्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७  
 श्रीहेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ  
 श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

सम्भङ्गवत्त

सिरि-वीरनिष्याम-संभन्धर २४५८ आसोई

( पुष्पमासी ) १५ सुक्रवारो छहियाणामो ।

मए मुणिहमचंदेश य पंढियरयणमुणिसिरि घासीमालविषिम्मिया सिरिटवा  
 सगसुत्तस्स अगारपम्मसनीयणीनामिया वित्ती पढियमूलभन्दवासाओ अज्जोबंत  
 सुया, समीर्णं, इय विप्पी अहाम्मा तदा गुणेवि धारइ, सच्चं अगारायं तु इमा  
 जीवण ( संजमजीवण ) दाई एव अत्थि । विचिकुणुणा मम्मसुत्तस्स भावो बज्जु  
 सेलीओ फुठीकओ, अइय उवासयस्स सामण्विसेसपम्मो, णयसिमवायवाओ,  
 कम्मपुरिसट्ठवाओ, समणावासयस्स धम्मवइया य, इधहविसया अस्सि फुठरीइओ  
 वण्णिया, जेण कओ पढिइए सुट्टुप्पयारेण परिचओ होइ, तइ इइहासदिट्ठिओवि  
 सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए कम्माण-भरइवासस्स य ककुणा विसय  
 प्ययारेण विषं वित्थियं, पुणो सक्कयपाणीं, कम्माणकाष्ठे हिन्दीणामियाए मासाए  
 मासीणं य परमोवपारो कट्ठो, इमेण ककुणो अरिइत्था दीसइ, ककुणो एय कज्जं  
 परमप्पससणिज्जमत्थि । पत्तेयज्जवस्स मज्जत्थमावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव  
 लाइप्यय, अवि उ सावयस्म तु (उ) इम सत्थं सन्वस्समेव अत्थि, अओ ककुणो  
 अणेगकोठीसो धम्मवाओ अत्थि, जेट्ठि अन्वत्तपरिस्समेण अण्णजणत्तावरि भसीओ  
 वयारो कट्ठो, अइ य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयज्जवस्स पइणिज्जा अत्थि,  
 जेमि पइवओ वा गइणामो माया निष्वाणाडिगारी मचइ, तदा भवियव्वयावाओ  
 पुरिसकारपरकमवाओ य अयस्समेव दसणिज्जो, किंपहुया इमीए यिप्पीए पत्तेय  
 यिसयम्स फुटसरोई बण्ण कय, अइ भओवि एवं अम्हाणं पमुत्तप्याए समाजे बिज्जं  
 मवेज्जा तथा नाणस्स परिस्स तदा संपस्स य त्तिप्प उदयो मविस्सइ, एवं इ मने।

मवईमा—

## सम्मतिपत्र

( भाषान्तर )

श्री वीरनिर्वाण सं० २४५८ आसोज

शुक्ला ( पूर्णिमा ) १५ शुक्रवार लुधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमचन्द्रजीने पंडितरत्नमुनिश्री घासीलाल-जीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली-अच्छी बनी-है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री-संयमरूप जीवनको देनेवाली-ही है। टीकाकारने मूलसूत्र के भावको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है? और विशेष धर्म क्या है? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप कर्म-पुरुषार्थ-वाद और श्रावकको धर्मके अन्दर दृढ़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें भलीभांति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजहाली पर था? और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुंचा? इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंका भी पुरा लाभ होगा, क्योंकि टीका संस्कृत है उसकी सरल हिन्दी कर दी गई है। इसके पढ़नेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भावसे पढ़ने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें श्रावकों ( गृहस्थों ) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावकके बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढ़ने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है, तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार-

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहां तक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुसंप्राय (सोई हुईसी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञानचारित्र तथा श्रीसंघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ—

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पजाषी

✽

हमी प्रकार लाहोरमें पिराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिजी १००८

श्री भागवन्दजी महाराज तथा पं० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी

महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके

प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे अपने पढे परिश्रम व पुरुषार्थसे तय्यार किया है सो आप घण्टाघादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्ति योकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस डेग्यनीसे समाजके विद्वान् साधुषग पढ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाक पढनसे हमको अस्पानन्द हुआ, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे लिये पढे गौरवकी बात है।

दि स १९८९ मा आश्विन

कृष्णा १३ वार भौम लाहोर



जैनागमचारिणि-जैनधर्मविद्याकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि  
श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की  
आचारचिन्तामणि टीका पर

### सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री वासीलालजी (महाराज)की बनाई  
हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका  
सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका-न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निषद्ध  
है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर तमसे अन्य सिद्धान्त का समग्र भी उचित  
रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं,  
तथा प्रौढ विपर्याया विशेषरूप से संसृज भाषा में स्पष्टनापूर्वक  
प्रतिपादन अधिक मनोरञ्जक हैं, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवादके  
पात्र हैं।

म आशा करता हूँ कि-जिज्ञासु महोदय इसका भलीभांति  
पठन-द्वारा जैनागम सिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को  
हर्षित करेंगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुयोगों का  
स्वरूपज्ञान पायेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसर भी जैनागमोंके  
विनाद् विवेचन द्वारा श्रेयसाप्सर-स्थानक्यामी समाज पर महान उप  
कार कर गणस्यी करेंगे।

दि मं २०००

मंगल गृहि १

}

त्रैलमुनि-उपाध्याय आत्माराम  
लुधियाना (पंजाब) शुभमस्तु ॥

श्रीमानरवाज समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी जोठियानो अभिप्राय-

आज जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है।  
इससे जैन जनताको बड़ी लाभ पहुंचेगा।

( २००० - १००० )

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-  
महाराजानां पञ्चनद-(पंजाव)स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-  
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

## सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-  
बोधिनीनाम्नी सस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इयं  
हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं  
यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकगो धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा चेयं वृत्तिः  
सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सु-  
भिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्येषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-  
दर्शन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोषाय  
जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः  
सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च “ मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरलां सुबोधिनी चेमां  
सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं मृयोग्या हंसनिभाः पाठकाः । ”  
इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२  
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा  
लुधियाना

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः

\*



( श्री दशबैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र )

॥ श्री बीरगौतमाय नमः ॥

सम्मतिपत्रम् ।

मए पंडियमुणि-हेमशंभेण य पंडिय-मूलचन्द्रवासवारा पत्ता पंडिय-रयण-मुणि-घासीलाछेण विरइया सफय-हिंदी-भापार्हि जुत्ता सिरि-दमवेयालिय-नामसुत्तस्म आयारमणिमंजूसा विस्ती अयलो इया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ मद्दणं अइमयजुत्तो अत्थो धण्णिओ, विज्जणाण पाययजणाण य परमोवयारिया इमा विस्ती दीमइ । आयारत्रिसण विस्तीकस्तारेण अइसयपुण्य उम्भेहो कडो, तहा अहिंसाण मरुव जे जहा-तहा न जाणंति तेसिं इमाण विस्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयघिसयाण फुइइवेण धण्णाण कडं, तहा मुणिणो अरइसा इमाण विस्तीए अयलोयणाओ अइसय जुत्ता निउत्तइ । सक्कपणाया सुत्तपयाण पयच्छेओ य सुयोइदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा विस्ती दइम्भा । अम्हाणं समाजे परिसविज्ज-मुणिरयणाणं सन्माओ समाजस्स अहोमगं अत्थि, किं ? उत्तधिअमुणिरयणाण कारणाओ जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ, अम्हकेरं माहिच्छ च सुत्तप्पायं अत्थि तेसिं पुणोयि उदओ भविस्सइ जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गा भविस्सा पुणो निब्बाण पाविहिइ अओह आयारमणिमंजूसाण कत्तुणो पुणो पुणो धम्मचार्यं देमि- ॥

वि स १९९० फाल्गुन-  
शुक्रप्रयोदशी मङ्गले  
( अलबरस्टेन )

३३-  
उचन्जाय-जइण-मुणी, आयारामो  
( पचनईओ )

ऐसे ही :-

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी भ्रमणोपासक जैन लिम्बते हैं कि—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपामकदर्शांग सेवक के दृष्टि गत हुआ, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग-सुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है ।

निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र  
 आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतंत्र-जैनाचार्य पूज्यश्री  
 आत्मारामजी महाराजकी तरफका आया हुआ  
 सम्मतिपत्र

लुधियाना ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबचन्द्रजी पानाचंदजी ! सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयावलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्थ्य ठीक न होनेसे उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है आपको भेज रहे हैं। कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें !।

भवदीय.

गुजरमल-बलवंतराय जैन

॥ सम्मति ॥

( लेखक जैनमुनि पंडित श्री हेमचंद्रजी महाराज )

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जर भाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात् एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकेषा संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् सभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराजानां परि-श्रमोऽयं प्रशंसनीयो धन्यवादाहर्हाश्च ते मुनिसत्तमाः । एवमेव श्री-समीरमल्लजी-श्री-कन्हैलालजी-मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादाहर्हा स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतरं स्यात् । यतोऽस्यावशकतां सर्वेऽप्यन्वेषकविद्वांसोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परि-श्रम सफलविष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

भां उपासकद्वारा सूत्र परत्वे जैन समाजना ध्वजगण्य जैनधर्मसूत्र  
महान् चिद्वान् संतोष तेमन चिद्वान् भावकोप सम्मतिभो समर्पी  
छे तेमना नामा नीचे प्रमाणे छे-

- (१) लुधियाना-सबत् १९८०, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, भुवङ्गान के  
संबार भागमरत्नाकर जैनधर्मद्विवाकर भी १०००८ थी उपाध्याय भी  
आत्मरामजी महाराज, तथा न्यायभ्याकरणवेत्ता भी १०००७ तच्छिष्य  
भी मुनि हेमचन्द्रजी महाराज
- (२) लाहौर-वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डितरत्न भी  
१००८ भी भागवंदनी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न भी १००७  
भी प्रिलोकवेदजी महाराज
- (३) म्बिचन-से ता ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्पिरि भी १००८  
भी भारतरत्न भी समरथमलजी महाराज
- (४) बालाचोर-ता १४-११-३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न भी  
१००८ भी शतावधानी भी रत्नवंदनी महाराज
- (५) बम्बई-ता १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कभीन्द्र भी १००८ भी  
कनि नानवंद्रजी महाराज
- (६) आगरा-ता १८-१२-३६, भगत् षष्ठम भी १००८ जैनद्विवाकर  
भी चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गभीजी भी १००७ भी साहित्यमेवी  
भी प्यारबन्दजी महाराज
- (७) हैद्राबाद-(दक्षिण) ता २५-११-३६ का पत्र, स्थिरपदभूषित  
भाम्यवान् पुरुष भी तारावंदनी महाराज, तथा प्रसिद्धपता भी १००७  
भी सोमागमजी महाराज
- (८) जयपुर-ता २७-११-३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरवपर्यक्त छात-  
स्वमावी भी १००८ भी पूज्य भी स्वबन्धजी महाराज
- (९) अम्पाला-ता २९-११-३६ का पत्र, परममतापी पंजाबकेधरी भी  
१००८ भी पूज्य भी काशीरामजी महाराज

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.

(११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी.

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासकदशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछे, आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मति मंगाई उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचनेका साहस जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों है ही संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैन समाज में ऐसे विद्वानों का गौरव घटे यही शुभ कामना है। आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखे शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-  
तस्वगवेपणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है बहुत सराहना की है,  
वास्तवमें ऐसे उत्तम व मक्के समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत  
आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव पड़ा  
सकते हैं। ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्र  
काशसे यह समाज अमावास्या के घोर अंधकारमें दीपावली का अनुभव  
करती हुई महावीर के अमूल्य धर्मों का पान करती हुई अपनी उन्नति  
में अग्रसर होती रहेगी।

\*

ता २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशी  
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी मेजी हुई  
उपासदशास्त्र तथा गृह्यधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई।  
दोनों पुस्तके अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं।  
ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी यही आवश्यकता है। इन पुस्तकों  
से जन तथा अज्ञेन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ  
सराहनीय है।

आपका

शशिमूपण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

शान्तस्वभावी वैराग्यमूर्ति तत्त्ववारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचंदजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासकदशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घासीलालजी महाराज ने उपासक-दशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखने में बड़ा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्धहिन्दी अनुवाद होने से भगवान् निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रस का लाभ मिल सकता है।

\*

वालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पंडित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि—

उत्तरोत्तर जोतां मूल सूत्रकी संस्कृत टीकाओ रचवामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरूरी लेवा जेवुं छे, बली करांचीना श्री संघे सारा कागळमां अने सारा टाईपमां पुस्तक छपावी प्रगट कर्युं छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा वजावी छे.

\*

बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।

\*

खोचन से स्थविर क्रियापात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडित रत्न मुनिश्री समर्थमलजी महाराजश्री फरमाते हैं कि—विद्वान् महात्मा पुरुषोंका प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम श्रीमद् उपादशाङ्गसूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा बड़ी ही सुन्दरता से लिखी है।

\*

श्री यीतराग्य नमः ॥

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमन्जै  
नाचार्य श्री पूज्य घामीलालजी महाराज चरणघन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर  
शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो ऐसा  
कार्य किया है जो कि हजारों घरों से किमी भी स्थानकवामी जैनाचार्यने  
नहीं किया ।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है यह  
कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से भयथा शासनदय से प्रार्थना  
करते हैं कि आपकी इस यज्ञमयी लेखनीको उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान  
करे ता कि आप जैनसमाज के ऊपर और भी उपकार करते रहे और  
आप चिरञ्जीवी हों ।

हम है आपके मुनि तीन  
मुनि मत्स्येन्द्रदेव, मुनि लक्ष्मणराय, मुनि पद्मसेन,

## इतवारी बाजार

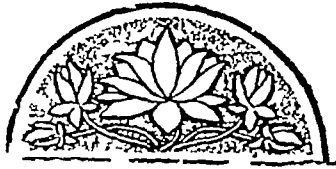
नागपुर ता. १९-१२-५६

प्रखर विद्वान् जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धार हुआ और हो रहा है सचमुच महाराजश्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कह मार्मिक स्थलोंको पढा, पढ कर विद्वान् मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पडी।

वास्तव में मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाजका नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घर में होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि जैन





## શ્રી દશવક્રલિઠ સૂત્રનું સમ્મતિ પત્ર

અમલુ સઘના મહાન આઆવ આજમ વારિધિ સર્વંત્રસ્વત્ર સેનાઆવ્યં  
પૂજ્યશ્રી આત્મસામલ મહાશને આપેલા સમ્મતિપત્રનો સુજ્જ્વાલી અનુવાદ.

✽

મે તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજી પંડિત મુલચંદ આસ (નાગૌર મારવાજવાજા) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવક્રલિઠ સૂત્રની આવારમણિમણ્યા ટીકાનું અવલોકન કરું આ ટીકા સુદર બની છે તેમાં પ્રત્યેક સપ્ટોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમબંધવામાં આવેલ છે.

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાળી છે. ટીકાકારે મુનિના આવાર વિષયનો સાથે છલ્લેખ કરેલ છે જે આધુનિક-મતાવલની અહિંસાના સ્વરૂપને નથી બાલુતા, કથામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શુ વસ્તુ છે' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમબંધવેલ છે આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય ચોચતા સિદ્ધ થાય છે.

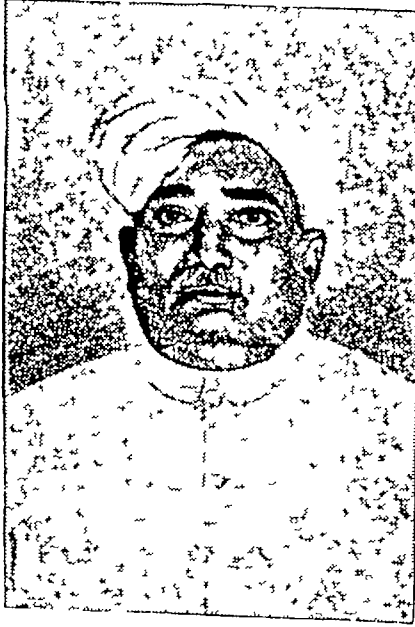
આ વૃત્તિમાં એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સસ્કૃત ભાષા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રનાં પદ અને પદચ્છેદ સુલોખ્યાયક બનેલ છે.

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું એઈએ વધારે શુ કહેવું? અમારી સમાજમાં અજ્ઞા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ છે આવા વિદ્વાન મુનિસ્ત્રોના કારણે સુસમજ્ય—સુતેહો સમાજ અને હુસપ્રાથ એટલે હોપ પામિશું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થયે અથવા વૃત્તિકારને વારવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

વિક્રમ સવત ૧૯૬૦ ફાલ્ગુન શુકલ } ઈઈ  
તેરમ મંગળવાર }  
(અણબર સ્ટેટ) }

ઉવજાગ્ય બહુ  
સુષી આવાશમી  
પચનઈએ

રૂા. ૬૦૦૦ આપનાર આઘ સુરભીશ્રી



શે ઠ હર ખ ચં દ કા ળી દા સ વા રી યા  
ભા ભુ વ ડ



શ્રમણ સંઘના પ્રચારમંત્રી પંજળકેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદણ મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમા પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય.

\*\*

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રવારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ દ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારતુ જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈનસમાજ તેમા ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીજૈનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જડને મજબુત કરવાવાળું છે.

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમા યથાશક્તિ ભોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે.

\*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇન્દ્રિવરલાલજી મહારાજ સાહેબના

## સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરિસારધીરં

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિન્દ્રવર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલ મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામા—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિયાત.

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશે. નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મારાધનામાં લીન હશે.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા આચારાગ એક એક ભાગ અહી છે. ટીકા ખુબ સુંદર, સરળ અને પંડિતજનોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સાથે સાથે ટીકા વિનાના મુળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકગણુ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે, અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરૂદેવને આંખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સાડ છે એજ.

આસો શુદ્ધ ૧૦, મંગળવાર, તા ૨૫-૧૦-૫૫

પુનઃ પુન શાતા ઇચ્છતો,  
દયામુનિના પ્રણિયાત.

\*\*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઈચિદ્ મહારાજનો અભિપ્રાય  
શ્રી

તલુપુર તા. ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપદ ગાનિપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજ બ્રહ્મિ  
મુનિવશની સેવામાં, બાપ સવ મુખસમાધીમાં હશે.

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ મુદ્રર ઘર્ષરણુ છે તે બધી અત્યંત આનંદ આપના  
પ્રકાશિત થયેલા કેટલાક સૂત્રો જોવાં જોયાં. મુદ્રર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ  
કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને મુખિય ઘર્ષ પઠે તેવી છે સૂત્રપ્રકાશનનું કામ  
ત્વસ્તિ પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામાં સાધનભૂત  
થાય એજ અભ્યર્થના.

લા. પંડિતરત્ન બાળક્રહાચારી  
પૂં શ્રી ભાઈચિદ મહારાજની  
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના  
પાયવહન સ્વીકાર્યો.

તા. ૧૧-૫-૫૬

વીરમગામ

અષ્ટાધિપતિ પૂજ્ય મહાસ્વ શ્રી જ્ઞાનચંદ્ર મહારાજના સંપ્રદાયના  
આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલ મહારાજનો અભિપ્રાય.  
જીવનથી આવેલ તા. ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ભૂત.

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલ મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રો લખાણ મુદ્રર  
અને સરળ ભાષામાં થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલ મહારાજ  
સમય જોઈને મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શક્યા નથી. છતાં જેટલું સાહિત્ય  
જોયું છે, તે બહુ જ સાદું અને મનન સાધ્ય લખાયેલું છે, તે લખાણ સાસ્ત્ર-આજ્ઞાને  
અનુરૂપ લાગે છે આ સાહિત્ય દરેક મદદાળુ જીવને વાચવા યોગ્ય છે. આમાં  
જ્ઞાનકવાસી સમાજની જ્ઞાતા, પ્રફુલ્લા અને કરચણની હલતા યાચારુકૂળ છે  
આચાર્યશ્રી અપૂર્ણ પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે

લી. કિશનલાલ પૂજ્યીશાળ માણુ

શુ ધીવન.

## લીમડી સંપ્રદાયના સદાનંદી મુનિશ્રી છોટાલાલજી

### મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર-નામ-ગોત્ર બાધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામા સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર જ્ઞાનાવરણીય કર્મને ક્ષય કરી કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે શાસ્ત્રજ્ઞ, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે. વંદનીય છે તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગસ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કર્ચવાહકો પણ એમા સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કે—

શાસ્ત્રોદ્ધાર પ્રવર પડિત અપ્રમાદી સત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારકનું કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે—પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે તેને પહોંચીવળવા માટે સાડાં સરખું ફૂડ જોઈએ. એના માટે મારી એ સુચના છે કે:—શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો—જે બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજાં જે ત્રણ જણાંઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમા પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે.

જે કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે બ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતાં જો સભવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સંકળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે. પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ન્યા સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યા સુધીમા એમની જ્ઞાનશક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો, કદાચ સૌરાષ્ટ્રમા વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ વિનતિ કરી અમદાવાદ પધારવા, અને ત્યા અનુકૂળતા મુજબ બે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ.

થોડા વખતમાં જામજોધપુરમા શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક.

કરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજને જોમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે શાસનનાયક હોવ તેમના શરીરાદિને સચકત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે તે અસ્તુ

યાતુર્માસ સ્થળ લીબડી } લી.  
 સ. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ } સદાનંદી નૈનમુનિ ઉદાહારણ

**શ્રી વર્ધમાન સપ્તેદાયતા પૂજ્યશ્રી પુનમથ દ્રણ મહારાજનો અભિપ્રાય**

શાસ્ત્રવિશ્વાદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આજ્ઞા ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે. તેમણે આજ્ઞા ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્વાતંત્રવાસી જૈન સમાજનું જોરમ વધાર્યું છે, આજ્ઞા ઉપરની તેમની સંસ્કૃતગીતા બાવા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણી જ સુદૃઢ છે સંસ્કૃતસ્વતા મધુર્ધ તેમજ અલકાર વગેરે શુભ્રાષી મુકત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યયો વગેરે જે શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ. અને હરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ.

આવા મહાન કાર્યમા પરિતરત પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આજ્ઞા ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીખ સફળ થાય જે જ શુભેચ્છા સાથે.

અમદાવાદ }  
 તા. ૨૨-૪-૫૬ સ્વીવાર } સુનિ પુનમથ દ્રણ  
 મહાવીર જયંતિ



ખલાત સ પ્રહામના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય  
 લખતર તા. ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાલીલાલભાઈ મજળદાસભાઈ  
 પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત ટ્રેડિંગ સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ  
 મુ અમદાવાદ

અમે અત્રે દેવસુદેની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ. વિ. મા આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીનાં સૂત્રોમાંથી ઉપસાહકશાસ્ત્ર, આચાર્યશાસ્ત્ર, અનુત્તરશાસ્ત્ર

દશવૈકાલિકસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયાં તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભદાયક છે. તે વાંચન ઘણું જ સુંદર અને મનોરંજન છે. આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અઘાત પુસ્તકો કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે. આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણું લાભતુ કારણ છે.

હંસ સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ દેવા જેવું છે. દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂં છું કે આ સૂત્રો પોતા-પોતાના ઘરમા વસાવાની સુદર તકને ચુકસો નહિ. કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરપરાને પુષ્ટિરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમા મહાન નિર્જરાતુ કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ. એ જ

લી. શારદાબાઈ સ્વામી

ખંભાત સંપ્રદાય.

✽

## બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધ ધુકા તા ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મગજદાસભાઈ

પ્રમુખ અં ભાં પ્રવેં સ્થાં જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મું રાજકોટ

અત્રે ખીરાજતા શું શુન્ના બ ડાર મહાસતીજી વિદુષી મોંઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિઠાણા બન્ને સુખશાતમા ખીરાજે છે. આપને સૂચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામા રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશો એજ આશા છે

વિશેષમા અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સ્વેલા સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઈ તરફથી લેટ તરીકે મળેલા તે સૂત્રો તમામ આઘોપાન્ત વાંચ્યા મનન કર્યા અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગમાર્ગને ખુબ જ ઉન્નત બનાવનાર છે. તેમા આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાયરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ દેવા જેવું છે. હંસ સમાન



આત્માઓં શાનઝરણાઓથી આત્મરૂપવાદીને વિકસિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યાવગર સાનનુ ઘાન જાવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છે. આવા સંઘર્ષ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરૂ કરાવશે તેવી આશા છે

એજ દિ બરવાળા સપ્રકાશના વિદુષી  
મહાસતીજી મોઘીબાઈ સ્વામી

ના હરમાનથી લી. ખોદીદાસ ગણેશભાઈ—મધુકા  
સ્થાનકવાસી જેન સઘના પ્રમુખ

\*

અણ્ણતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન  
પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સપ્રકાશના મુનિશ્રી વાસીલાલજી મહારજા જેનશાસ્ત્રોના સસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમાં અને દિન્દીમા ભાષાતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાસ થયેલા છે શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયા છે તે હું જોઈ ચક્રો પુસ્તક, મુનિશ્રી પોતે સસ્કૃત, અર્ધભાગથી કિંઈ ભાષાઓના નિષ્ણાત છે એ એમનો દુઃક પરિચય કરતા સદંજ જણાઈ આવે છે શાસ્ત્રોનું સપાઠન કરવામાં તેમને પોતાના શિષ્ય વગરને અને વિરોધમાં ત્રણ પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સપ્રકાશના અમેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી, મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિદ્ધ બનાવ્યું છે સ્થાનકવાસી સમાજમાં વિદ્વત્તા ઘણી જોઈ છે તે દિગ્ગજર મૂર્તપૂજક સ્વેતાંબર વગેરે જેનશાસ્ત્રના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતા હું વિરોધના ભય વગર કહી શકું ૫૦ મહારાજને આ પ્રકાશ સ્થાનકવાસી સપ્રકાશમાં પ્રથમ છે એવી માસી માન્યતા છે સસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો આરા અપવામાં આન્માં છે બાવા શુદ્ધ છે એમ યોક્તસ કહી શકું હું ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલાં છે અને વિશ્વાસ છે કે મહારાજાશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જેનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાત્થર્થમાં અને કુદુગિતમાં વધાવી શકાય તે પ્રમાણે અવરુધા કરશે.

પ્રતાપજી વડોદરા

કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ

તા. ૨૭-૨-૧૯૫૬

એમ. એ

# મુંબઈની એ કોલેજના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઈ તા. ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મંગળદાસ

પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈનશસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ,  
રાજકોટ.

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલાં આચારાંગ દશવૈકાલિક, આવશ્યક, ઉપાસકદશાગ વગેરે સૂત્રો અમે જ્ઞેયાં. આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે અને સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યાં છે. સંસ્કૃતટીકા અને ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાંતરો જ્ઞેતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એક સરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વત્તા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે ગુજરાતી તથા હિંદીમાં થયેલાં ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે. એવી વિદ્વદ્જનન અને સાધારણ માણુસ ઉભયને સતોષ આપે એવી એમની લેખનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે. બીજાં ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો જ્ઞ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન-સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશ્ય નથી. આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈનસમાજનો વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

પ્રો. રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ  
સેન્ટ ઝેવિયર્સ કોલેજ, મુંબઈ.

પ્રો. તારા રમણલાલ શાહ  
સોફીયા કોલેજ, મુંબઈ

✽

રાજકોટ ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ

જાગનાથ પ્લોટ

રાજકોટ, તા ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય ૫ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાસ થયેલા છે કે જે જૈન સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલા આચારાંગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ એ જ્ઞેયા.

આ સૂત્રો ભેટાં પહેલી જ નજરે મહારાજશ્રીને સ્મરૂત, અર્ધમાજધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાણુ જણાઈ આવે છે એક પછી બાપા મહારાજશ્રીથી અભાષી નથી. આપણે એઈએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોઠીના છે તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, જાટલા બંધન અને સર્વશ્રદ્ધા સૂત્રોનું ભાર્પાંતર પૂં ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણાં અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને ભૌતિકવાદનું આ જમાનામાં અ્યારે ધમ ભાવના ઓસરતી વ્યય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલાં સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાર્પાંતર હરેક અસાધુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે જેન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ સાધુ અને શાવક હરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યા છે મહારાજશ્રીને અ્યારે એઈએ ત્યારે તેમના આ કામમાં સઠળાયેલા એઈએ છીએ. એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધમયની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે તેમજ જીવન સૂત્રોમાં વજાઈ ગણુ છે

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કામમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે અને આશા છે કે એ હરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ધરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા મુખને મારે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલી શ્રમ સંપૂર્ણ થયે સફળ થશે.

ગ્રો. રસિકલાલ કસ્તુરચંદ ગઢી  
 એમ. એ. એલ. એલ. બી  
 ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ  
 રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)



સુબંધ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સલાએ વિનાસર ઠોન્ડેરેન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોઠલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખતે શ્રી શ્રવેતાંવર સ્થાનકવાસી જૈન સભા માટે આજમ સરો ધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની જાતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત ઠીકી દૃષ્ટિથી પહેલી પોતાના મનજમાં લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતસ્ત્ર ની ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને આદર્શ અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાર્કિત્વમત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે આ ભા. એ. સ્વા. જેન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વચવાળી કમિટી છે તેની માર્શ્કતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સિટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ. એ પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સમેલન તથા કોન્ફેરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે. અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે-પડિતની અને નાણાની પોતાની પાસેના ફંડમાથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કોન્ફેરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ ત્રુટી હોય તે પ ર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાનિધ્યમાં જઈ, બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો. આ કામને ટલ્કે ચઢાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે.

(સ્થા. જૈન પત્ર તા ૪-૫-૫૬)

✽

સ્વતંત્રવિચારક અને નિકર લેખક ‘જૈનસિદ્ધાંત’ના તંત્રી  
શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમા બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

“આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમા મુનિશ્રી ઘાસીલાલ મ સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામા આવતા નથી. લાખી તપાસને અતે મેં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે”

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાચના લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્યા પણ કરતા એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીનો પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમાં

નવાઈ નથી. અને પૂ. શ્રી ઘાસીલાલના બનાવેલાં સૂત્રો એવાં સૌ ઠાઈને ખાત્રી થાય તેમ છે કે કામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલ મ. પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે.

શ્રી વર્ધમાન સમલુસધના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ. ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થયે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાંચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય દિલ્હી વાંચકને દિલ્હી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાંચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે.

કેટલાકને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનું કામ આપણું કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે ણીલ્લ ઠાઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં આ સૂત્રો સામાન્ય વાંચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામાં (અર્ધભાગથી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલા છે એટલે સૂત્રો વાંચવાં તેમજ સમજવામાં ઘણા સરળ છે.

માટે ઠાઈ પણ વાંચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કોઈ નાંખવો અને ધર્મનું તેમજ ધમના સિદ્ધાંતનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાંચવાને શુભનું નહિ. એટલું જ નહિ પણ જરૂરી પડેલાં સૂત્રો જ વાંચવાં.

સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવું ઠાઈ પણ સરલાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદાર સમિતિના ઉચ્ચા રિપોટ પ્રમાણે બાબા છ સૂત્રો લખાયા છે, બે સૂત્રો-અનુયોગદ્વાર અને ઘણાં સૂત્ર-લખાય છે તે પણ શ્રેયા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે.

તેમાર સૂત્રો જરૂરી છપાઈ જાય એમ ઈચ્છીએ છીએ અને સ્થા. જાંબુજી સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમનાં સૂત્રો ધરમાં વસાવે એમ ઈચ્છીએ છીએ.

‘જૈન સિદ્ધાંત’ પત્ર-મે ૧૯૫૫

डा. परपुत्र आपनार आद्य सुरकुशीश्री



डो हा शी उर गो विं द ला धी ने य द  
ग न डो ट



## શ્રુત-ભક્તિ

(પૂં આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મં સાંની આજા અનુસાર લખનાર)

દ. સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા. ૨૩-૬-૫૬ શાહુપુર, અમદાવાદ

આજે લગલગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય, જ્ઞાનદિવાકર ૫૦ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મં ગરમ તીર્થ કર લગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધસ્વરૂપ કલ્યાણકારક, ગરમ શીતળ વાણીના ઘોતક એવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે, તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પડિત છે અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમા મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત, વિવરણ સાથે પ્રકાશમા લાવે છે એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે

ભં મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદોહ ગણુધર મહારાજનેએ શ્રુતપર પરાએ સાચવી રાખ્યો શ્રુતપર-પરાથી સચવાતુ જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપદ્રવિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવર્દિગણિ ધમાશ્રમણે વલ્લીપુર-વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઠ કર્યો. આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે તે અર્ધમાગધી ભાષામાં છે. અત્યારે આ ભાષા લગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મભાષા છે- તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા સુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરંતુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે

જિનાગમ એ આપણા શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે એ આપણી આજો છે. તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે. તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજવવા માટે આપણા સદ્ભાગ્યે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે સત્ સકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે આવા અનુપમ કાર્યમા સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમા વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે

ભં મહાવીરને ગણુધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે લગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શુ ફળ પ્રાપ્ત થાય છે? લગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને તેઓ સસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે, અને સસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતા મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે

આવા જ્ઞાનકાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગબરો અને અન્ય ધર્મિઓ હબરો અને લાજો રૂપીયા ખર્ચે છે હિંદુ ધર્મમા પવિત્ર મનાતા ગ્રથ ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હબરો ટીકા ગ્રથો દુનિયાની લગલગ સર્વ ભાષાઓમા પ્રગટ થયા છે ઇસાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રંથ બાઈબલના પ્રચારાર્થે તેનું જગતની સવ



ભાષાઓમાં ભાષાતર કરી તેને પડતર કરતાં પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે મુસ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા મન્થ કુસનર્તુ અનેક ભાષાઓમાં ભાષાતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે આપણે પૈસા પરનો મોઠ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવાં જોઈએ અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. આવા પવિત્ર કામ માં સાપ્રકાશિક મતલેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઈએ અને શુદ્ધ આશયથી ઘટા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ સમિતિના નિયમા નુસરે ૨૨૫૧૭ બરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઈએ ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મુકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાનપ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું જોઈએ.

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે જ આઝમો-ભગવાનની જો મહાવાણીનું ધ્યાન કરવા પણ આપણે હરહંમેશ તરફ રહેવું જોઈએ. જેથી પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય. (સ્થા. જૈન તા. ૫-૭-૫૬)

૦

શ્રી. અ. ભા. શ્રે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના પ્રમુખ શ્રી વજેર. રાણુપુર પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર બ્યારથી શાત-શાસ્ત્રવિશારદ અમરમાહિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહાશયનાં પુનીત પગલાં ઘયાં છે ત્યારથી ઘણા લાંબા કાળથી લામુ પટેલ જ્ઞાનવરણીય ઠર્મનાં પડળ ઉતાસ્વાનો શુભ પ્રયાસ ઘઈ રહ્યો છે અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમે સવને ધન્ય છે અને જો શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લે છે અને તો સમન્વય છે કે સામુજ્ય છેડે સુલ્કસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુ ઘા સાતમે અમરમત સુલ્કસ્થાનકે જ રહે છે એવા અમરમત માત્ર પાંચ-સાત સામુજ્યો જો સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમાં હોય તો સમાજનું શ્રેય ઘતાં જરાજો વારન લાગે સમાજ કાશમાં સ્થા. જૈન સ પ્રકાશનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે પણ વો દિન. ...

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધા વસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા મુવાનેને શરમાવે તેવી છે તેમને આમિત્રામ વિદાર કરવું અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ કરવું તેમાં ઘણા શારીરિક માનસિક અને અવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે તો કોઈ યોગ્ય સ્થાનકે બ્યાના શાવકો ભક્તિ વાળા હોય. વાજના રાગના નિવધી અલિપ્ત હોય. એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ ધાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઈએ જીજ કોઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમરાવાઈમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સમજડતા કરી અપાય તો વધુ સાફ મહારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા કરી યાદ આપુ છું ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કથના સહાયકોને આશા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકારશેજી લી સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

## “ જૈનસિદ્ધાંતના ” તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સંસ્થા છે. અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવાં એ કાર્ય સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે.

સમિતિ તરેફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચુક્યાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે. નવ સૂત્રો લખાઈ ગયાં છે અને જ બૂઝીપ પ્રગ્નસિ તથા ન હીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યાં છે.

હાલમાં મત્રી શ્રી સાકરચ દ ભાઈચ દ સમિતિના કામમા જ તેમનો આજો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે. તેમની ખત માટે ધન્યવાદ

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ. મૂળ પાઠનું સ શોધન તથા સ સ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. એ ઉપકારનો બહલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી

પરતુ આ સમિતિના સેમ્બર બની તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઋણ અદા કર્યું ગણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે પદમં ણાળં તજો દયા પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો જોઈએ

એટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા જૈન પોતાના ઘરમાં વસાવવા જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સુત્રો વાચે એ ખાસ જરૂરનું છે

## શ્રી ઉપાશક દર્શાજ સૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ધાસીલાલજીએ બનાવેલ સમ્પૂર્ણ છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક—અ. ભા. શ્રે. સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીયા કુવા શાક, બીન લોજ પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) ૪૪ પાકુ પુકું, જેકેટ સાથે અને ૧૯૫૬ કિમત રૂ. ૮-૮-૦

આપણા મૂળ બાર અગ સૂત્રોમાનું ઉપાશકદર્શાજ જી સાતમું અગ સૂત્ર છે જેમા ભગવાન મહાવીરના ઠશ ઉપાસકે-આવકોનાં જીવનચરિત્રો આપેલા છે, તેમાં પહેલું ચરિત્ર જ્ઞાનદ શાવકનું આવે છે

જ્ઞાનદ શાવકે જૈનધર્મ અગીકાર કર્યો અને બાર મત ભગવાન મહાવીર પાસે અગીકાર કરી પ્રતિગા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધા તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે તેની અત્યંત અનેક વિષયો જેવા કે અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ, નરક દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે

જ્ઞાનદ શાવકે બાર મત લીધાં તે બાર મતની વિગત અભિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે તે જ પ્રમાણે બીજા નવ શાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

જ્ઞાનદ શાવકની પ્રતિગામાં અરિહત્તવેદ્યાદ શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહત્તનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) જોવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે અને તે જગ્યાએ જ્ઞાનજા પાછળના સબધ પ્રમાણે તેનો જો ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ધાસીલાલજીએ તેમની ટીકામાં અનેક રીતે પ્રમાણે આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહત્તવેદ્યાદનો અર્થ સાધુ ધાસ છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી આવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપ સત તે આવકોની અધિ, રહેઠાણ નગરી વગેરેના વલુનો ઉપરથી તે બખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે

જેટલે આ સૂત્ર દરેક શાવકે અવશ્ય બાંધવું જોઈ જો જેટલું જ નહિ પણ વારવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમાં વગાવવું જોઈ જો.

પુસ્તકની શરૂઆતમાં વધ માન અમણસધના આચાર્ય શ્રી જ્ઞાતમારામજી મહાશયનું સમતિપત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ આવકોના સમતિપત્રો આપેલ છે તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે

“જૈનસિધ્ધાંત” બ-નુબારી-૫૭

३. ५००१५ आपनार आद्य सुरभीश्री



(स्व.) शेठ धारसी बाई लवणु बाई  
सोलापुर



आचाराङ्गसूत्रके पञ्चम अध्ययनकी  
विषयानुक्रमणिका-

प्रथम उद्देश

विषय		पृष्ठाङ्क
१	चतुर्थ अध्ययनके साथ पञ्चम अध्ययनका सम्बन्धप्रतिपादन	१
२	पञ्चम अध्ययनके छ उद्देशों में वर्णित विषयोंका सूचन	२-३
३	प्रथम सूत्र का अवतरण	३
४	प्रथम सूत्र और उसकी छाया	४
५	इस लोकमें कितनेक मनुष्य, प्रयोजन अथवा विना प्रयोजन के त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करते हैं, वे दुर्गतिभागी होते हैं। वे अति तीव्र शब्दादिविषयोंकी अभिलाषा के कारण इन त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करते हैं और इसके फल स्वरूप उन्हें जन्म-मरण के दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता; अत एव विषयों के सुखोंसे उन्हें वृत्ति भी नहीं होती। और जो अपूर्वकरण से ग्रन्थि को भिन्न कर चुके हैं वे न कर्मोंके बीचमें हैं और न बाहर ही; अथवा जिन्होंने चारित्र का लाभ कर लिया है वे न तो कर्म या संसार के मध्य में हैं और न बाहर; अथवा-अर्थरूप से द्वादशाङ्ग उपदेशक तीर्थकर भगवान् न संसार के मध्यमें है न उसके बाहर ही।	४-१६
६	द्वितीय सूत्र का अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया	१७
७	सम्यक्त्व के प्रभाव से संसार की असारता समझनेवाले भव्य जीव अपने जीवनको वायुप्रकम्पित कुशाग्रस्थित जलचिन्दु के समान समझते हैं, उसी प्रकार वे वालजीवों के जीवनको भी अतिचञ्चल समझते हैं। वालजीव क्रूर कर्मोंको करते रहते हैं, वे उनके दुष्परिणामको नहीं समझते हैं और जन्ममरण के चक्र से कभी भी छुटकारा नहीं पाते।	१७-२६

## विषय

पृष्ठांक

- ८ तृतीय सूत्र का अवतरण । २६
- ९ तृतीय सूत्र और छाया । २७
- १० संशय के परिज्ञान से जीव संसार के प्रति सशयशील हो उसका परित्याग करता है, और संशय के अपरिज्ञान से जीव न तो संसार के प्रति संशयशील होता है और न उसका परित्यागही करता है । २७-३१
- ११ चतुर्थ सूत्र का अवतरण, चतुर्थ सूत्र, छाया । ३२
- १२ संसारके कदुषिपाकको जाननेवाले चतुर पुरुष, किसी भी प्रकारके सागारिकका सेवन नहीं करते । जो मूढ पुरुष महोदयसे सागारिक सेवन करते हैं, उनकी प्रथम बाल्ता सागारिक सेवन करना है और दूसरी बाल्ता पूछे जाने पर उसको छिपानेके छिये असत्य मापण करना है । इस लिये मातृ शब्दादि विषयोंको परित्याग कर और अमातृ विषयोंको मनसे भी चिन्तन नहीं करते हुए भव्य जीव, उन विषयोंको इहलोक और परलोकमें कदुक फल देनेवाले जान कर दूसरे लोगोंको भी 'मैयुन अनासेवनीय है'—ऐसा उपदेश दे । ३३-३५
- १३ पञ्चम सूत्र और छाया । ३५
- १४ कितनेक मनुष्य रूपमें और कितनेक स्पर्शमें गृह हो कर नरकादि गतियों के भागी होते हैं । सावध व्यापार करनेवाले मनुष्य, इन सावधव्यापारतत्पर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, अथवा पड़नीयनिकार्यों में उत्पन्न होते हैं । साधु होकर भी कितनेक विषयस्पर्शी हो जाते हैं, फिर पापकर्मों में रत रहने लगते हैं, वे अज्ञानको ही धरण मानते हैं, कोई २ उनमें एकलविहारी भी हो जाते हैं । ये अत्यन्त क्रोध आदि दुर्युक्तोंसे युक्त होते हैं, सुसाधु बमनेका बोंग करते हैं, 'मेरे दोषोंको कोई

विषय

समझे नहीं' इसके लिये सर्वदा प्रयत्नशील होते हैं। ये अज्ञानप्रमाद दोषसे युक्त होनेसे धर्मके मर्मज्ञ नहीं होते। विषयकपायोंसे पीडित ये कर्म बांधनेमें दक्ष होते हैं, सावध-व्यापारोंमें लगे रहते हैं, और ये 'रत्नत्रयके आराधन विना ही मोक्ष होता है' ऐसा उपदेश देते हैं। इनका कभी भी मोक्ष नहीं होता। ये तो संसारचक्रमें ही फिरते रहते हैं।

३५-४९

॥ इति प्रथम उद्देश ॥

\*

॥ अथ द्वितीय उद्देशः ॥

- १ प्रथम उद्देशके साथ द्वितीय उद्देशका सम्बन्धकथन ५०
- २ प्रथम सूत्र और छाया। ५०-५१
- ३ इस लोकमें कितनेक पद्मजीवनिकायोंके रक्षक संयमी मुनि होते हैं। वे मनुष्यजन्म-आर्यक्षेत्रादिको कर्मक्षपणका अवसर समझते हैं। वे कर्मक्षपणके क्षणका अन्वेषण करते रहते हैं। इस सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप मार्गका उपदेश तीर्थकरोंने किया है। साधु कभी भी प्रमाद नहीं करें किसी भी जीवको आसाता नहीं पहुँचावे। इस संसारमें मनुष्योंकी रुचि भिन्न होती है इस लिये सुखदुःख भी सबके लिये समान नहीं है। इसलिये मुनि हिंसा मृपावाद आदिसे रहित होकर, परीषहोपसर्गोंसे स्पृष्ट होता हुआ भी उन शब्दस्पर्शादिविषय-जनित परीषहोंको जीतनेका प्रयत्न करे। ५१-५९
- ४ द्वितीय सूत्र और छाया। ५९
- ५ परीषहोंको जीतनेवाला मुनि शमितापर्याय अथवा सम्यक्पर्याय कहा जाता है। इस प्रकारका मुनि चारित्रमोहनीयादि अथवा हिंसादि पापकर्मोंमें आसक्त नहीं होता है। यदि उसको कभी शीघ्र प्राण लेनेवाले शूलादि रोग, जो कि आतङ्क



कहे जाते हैं हो जाते हैं तो यह उनकी वेदनाको शान्तिपूर्वक सहता है, और वह इस प्रकार बिचारता है—यह स्वकर्मजनित वेदना पहले या पीछे मुझे हो सकती होगी। यह शरीर विनाशशील है, विध्यसनशील है, अद्युब है, अनित्य है, अज्ञाश्वत है, क्या पचयिक है, परिणमनशील है। अतः ऐसे शरीरको और सुकुलजन्म और बोधिलाम आदिके अवसरको पा कर तप संयम आदि द्वारा अपने जीवनको सफल बनाना चाहिये।

५९-६८

६. तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया।

६८

७. शरीर की विनाशशीलता आदि देखनेवाला मुनि नरकादि गति के भागी नहीं होता है।

६९-७१

८. चतुर्थसूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया।

७१

९. इस लोकमें कितनेक मनुष्य परिग्रही होते हैं। थोड़ा या बहुत, अशु या स्थूल, सच्चि या अचिच्च जो भी परिग्रह इनके पास होते हैं उन्हीं परिग्रहों में ये मग्न रहते हैं। यह शरीर ही किसीर को महामयदायक होता है। मुनि, असंयमी लोगों के घन को या भ्यवहार को महामय का कारण जानकर उससे दूर रहता है। द्रव्यपरिग्रह के सम्बन्धके त्यागी परिग्रहजनित मय नहीं होता है॥

७१-७५

१०. पञ्चम सूत्र और छाया

७६

११. निष्परिग्रह मुनि अपने कर्तव्य मार्ग में आगरूक होता है, प्रत्यक्षज्ञानियोंने ऐसे शिष्यों के लिये ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र का उपदेश किया है। इसलिये हे मध्य! मोक्ष की ओर लक्ष्य रखकर संयममें विशेषतः पराक्रमशाली बनो। ऐसे संयमी ही ब्रह्मचारी होते हैं। यह सब मैंने तीर्थङ्कर भगवान् के मुख से सुना है, इसलिये यह सब मेरे हृदयमें स्थित है। ब्रह्मचर्यमें स्थित मनुष्य का ही मन्त्र से प्रमोक्ष (मुक्तिकारा) होता है। अथवा—ज्ञानाचरणीयादि अष्टविध कर्मों का सम्बन्ध-

रूप बन्ध और उन कर्मों से पृथक् होना रूप, प्रमोक्ष, ये दोनों अन्तःकरणमें ही हैं। आरम्भपरिग्रह या अप्रशस्त भाव से रहित साधु, सभी प्रकारों के परीषहों को यावज्जीवन सहे। असंयतों को तीर्थकरोपदिष्ट मार्ग से वहिर्वर्त्ती समझो। तीर्थकरोपदिष्ट मार्ग के अन्तर्वर्त्ती मुनि अप्रमत्त होकर विचरे। भगवत्प्ररूपित इस चारित्र का परिपालन, हे शिष्य ! तुम अच्छी तरह करो। उद्देश समाप्ति।

७६-८१

॥ इति द्वितीय उद्देश ॥

\*

॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

- १ द्वितीय उद्देश के साथ तृतीय उद्देश का संबन्ध कथन । ८२
- २ प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । ८२
- ३ जो कोई इस लोकमें अपरिग्रही होते हैं, वे संयमीजन, अल्प स्थूल आदि वस्तुओंमें ममत्व के अभाव से ही अपरिग्रही होते हैं। मेधावी मुनि तीर्थकर आदियों की वाणी सुनकर और उसीको धर्म समझकर, तदनुसार आचरण कर के अपरिग्रही हो जाता है इस मार्गमें मैंने कर्मपरम्परा दूर करने का जैसा सरल उपाय बतलाया है वैसा अन्यमार्ग में नहीं है। इसलिये इस मार्गमें स्थित मुनि अपनी शक्ति को न छिपावे । ८३-८८
- ४ द्वितीयसूत्र का अवतरण, द्वितीयसूत्र और छाया । ८८
- ५ तीन प्रकार के लोग होते हैं—कोई संयम ग्रहण करता है और मरणपर्यन्त पूर्णतत्परता के साथ उसे निभाता है; कोई संयम ग्रहण करता है और परिषहोपसर्ग से बाधित हो उसे छोड़ देता है; और कोई न संयम लेता है न उसे छोड़ता है। जो

सयम लेकर गृहस्थों के आश्रित होकर रहने लगता है वह भी गृहस्थ-जैसा ही है ॥

८९-९२

६ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया ।

९३

७ तीर्थंकराणि यह सब अपने केषलज्ञान से प्रत्यक्ष करके कहा है। इस तीर्थंकरोक्त प्रवचनमें व्यवस्थित मुनि, तीर्थंकर के आह्वानुसार चलनेवाला, पण्डित और स्वजन तथा विषय सबन्धी स्नेहरहित होता है; पूर्व और अपर रात्रिमें प्रतिक्रमण स्वाध्याय आदि सद्गुणानमें प्रयत्नशील होता है; शील के स्वरूप को जानकर उसका पालन करता है, शील के आचरण और अनाचरण के फलको सुनकर वह कामरहित और भ्रष्टा रहित हो जाता है। मर्ष्यों को इन ज्ञानावरणीयादिकर्मरूप आन्तरिक शत्रुओं से ही युद्ध करना चाहिये, बाह्य शत्रुओं से युद्ध करने से क्या लाभ ?

९३-१००

८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।

१०१

९ परीपह आदिके साथ युद्ध करने योग्य यह औदारिक शरीर दुर्लभ है । इस संसारमें कुछशून्य तीर्थंकरादिकोंने श्रुपरिज्ञा और प्रत्याख्यान परिग्रहात् विवेक कहा है । परमसे च्युत अज्ञानी बीच, गर्भादिमें निवासजनित दुःखका अनुभव करता है । यह विषय, आर्हत प्रवचनमें ही कहा गया है । परमसे च्युत जीव रूप आदिमें और हिंसा आदिमें प्रवृत्ति करता है । जो मुनि होता है वह परमपथमें सतत प्रवृत्त, आसुररहित और रत्नप्रयुक्त अभ्यासी होता है । यह असयत लोगोंको जानता है; इस लिये वह ज्ञानावरणीयादि कर्मोंको और उनके कारणों को अच्छी तरह श्रुपरिज्ञास ज्ञान कर प्रत्याख्यानपरिग्रहात् परिस्थान करता है, और वह हिंसासे सर्वथा चिरत हाता है, संयमी हाता है, भ्रष्टता नहीं करता है, समीक सुखदुःखक जाननवाळा होता है, स्वपरके कल्याणामिठापी होता है, मोक्षमार्गमें ही

सतत प्रवृत्त रहता है, सावद्याचरणसे रहित होता है, बाह्यआभ्यन्तर अभिष्वङ्गके परित्यागी हो ताहै और जीवोंमें आसक्ति नहीं करता है। इस प्रकारका मुनि कोई भी सावद्याचरण नहीं करता है।

१०१-११५

१० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चमसूत्र और छाया।

११५

११ वसुमान् मुनि पदार्थज्ञानयुक्त आत्मासे संपन्न होकर, अक्ररणीय पापकर्मोंका अन्वेषी नहीं होता है। जो सम्यक्त्व है वही मौन है, जो मौन है वही सम्यक्त्व है—इस वस्तु को समझो। इस सम्यक्त्व का आचरण वह नहीं कर सकता है जो शिथिल होता है, पुत्रादिकों के प्रेममें फसा रहता है, शब्दादि विषयों में जिसकी अभिरुचि होती है, जो प्रमादी है और जो गृहस्थित है, जो इस सम्यक्त्व का आचरण करता है ऐसा मुनि, सर्व सावद्यव्यापारपरित्यागरूप मुनिभाव को सम्यक् प्रकार से ग्रहण कर कर्मण और औदारिक आदि शरीरों को दूर करे। ऐसा मुनि वीर होता है, अन्तर्प्रांत आहारको सेवन करता है। ऐसा मुनि ही संसारसागर को तिरनेवाला, मुक्त और विरत कहा गया है। उद्देशसमाप्ति।

११६-१२१

॥ इति तृतीय उद्देश ॥

\*

॥ अथ चतुर्थ उद्देशः ॥

- |   |   |         |
|---|---|---------|
| १ | तृतीय उद्देश के साथ चतुर्थ उद्देश का संबन्धकथन।                                 | १२२     |
| २ | प्रथम सूत्र और छाया।  | १२२     |
| ३ | शास्त्रानभिज्ञ और अल्पवयस्क मुनि को एकाकी ग्रामानुग्राम विहार नहीं करना चाहिये। | १२२-१२६ |
| ४ | द्वितीय सूत्र और छाया।  | १२७     |

- ५ कोई कोई एकाकि-विहारी मुनि, गृहस्थोंसे शिष्यावचनद्वारा उपदिष्ट होनेपर भी क्लृप्त हो जाता है। ऐसा अभिमानी मुनि महामोहसे युक्त होता है। इसको विविध प्रकारके परीषद्दोष सर्गजनित वेदनाओंका अनुभव करना पड़ता है, इसलिये शिवेकी मुनिको ऐसा नहीं होना चाहिये। उसे तो मगवानके क्यनानुसार गुरुकी आज्ञामें रहते हुए सावधानताके साथ विहार करना चाहिये। १२६-१३२
- ६ धृतीय सूत्र और छाया। १३३
- ७ आचार्यके आज्ञानुसार चलमेवाद्या मुनि गमनागमनादि क्रियायें शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार करता हुआ गुरुकुलमें निवास करे। कभी कभी मुनिगणोंसे युक्त मुनिके द्वारा भी द्विन्द्रियादि प्राणियोंकी विराचना हो जाती है, परन्तु उनके वह विराचनाजनित कर्म उसी मयमें घीग हो जाते हैं, क्योंकि अप्रमादपूर्वक उन कर्मोंके क्षणार्थ प्रायश्चित्त करता है। १३३-१३८
- ८ चतुर्थ सूत्रका अपठरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। १३९-१४०
- ९ ऐसे मुनिकी दृष्टि और ज्ञान विशाल होता है। ये सर्वदा ईर्ष्यासमिति आदिसे युक्त होता है। वह स्त्री आदिके मोगोंकी निरर्थकतासे पूर्ण परिचित होता है। वह स्त्री विषमक शासना को विविध उपायोंसे दूर करता है। ऐसा मुनि स्त्रियोंसे उनके घर सम्प्रदायी कुछ भी नहीं पूछता, स्त्रियोंसे मेल-जोल बढ़ानेकी कमी मी घेप्ता नहीं करता। यह सर्वदा धाम्युप्त, अग्न्यात्मसंतुष्ट हो कर पापोंसे सदा दूर रहता है। हे शिष्यों ! इस प्रकारके मुनिधर्मका पालन करो। १४०-१४९

॥ इति चतुर्थ उददेशः ॥

## ॥ अथ पञ्चम उद्देशः ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
१ चतुर्थ उद्देशके साथ पञ्चम उद्देशका सम्बन्ध-कथन ।	१५०
२ प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया ।	१५१
३ आचार्य महाराज इदके समान निर्मल और अक्षोभ्य होकर निर्भय हो विचरते है ।	१५१-१५२
४ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।	१६०
५ संशयात्मा शिष्य कभी भी समाधि नहीं पाता । कोई२ गृहस्थ भी तीर्थकरादिके उपदेशानुसार प्रवृत्ति करनेमें तत्पर रहता है और कोई कोई अनगार भी । किसी ज्ञानी मुनिके द्वारा तीर्थकरादि-उपदेशानुसार प्रवृत्ति-निमित्तप्रेरित शिष्य कभी भी निर्विण्ण [दुःखित] न होवे ।	१६०-१६६
६ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया ।	१६६-१६७
७ तीर्थकरोंने जो कुछ कहा है वह सभी सत्य और निश्चिन्त है ।	१६७-१६९
८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।	१६९-१७०
९ कोई२ श्रद्धालु विश्वासी मनुष्य, दीक्षा लेनेके बाद जिनोक्त जीवादि तत्त्वोंमें सन्देह होने पर 'जिनोक्त सभी तत्त्व यथार्थ ही हैं, अन्यथा नहीं हो सकता' इस प्रकार उन तत्त्वोंको सम्यक् मानता है और वह बादमें भी उनको सर्वदा सम्यक् ही मानता है । कोई२ सम्यक् माननेवाला बादमें असम्यक् मानने लगता है । कोई२ असम्यक् माननेवाला बादमें सम्यक् मानने लगता है । कोई२ सम्यक् माननेवाला बादमें भी सर्वज्ञोक्त पदार्थोंको सम्यक् और असर्वज्ञोक्त पदार्थोंको असम्यक् ही मानता है । जिन भगवान् से कथित होनेके कारण जो पदार्थ सम्यक् ही हैं उनको असम्यक् माननेवाला कोई२ बादमें भी मिथ्यादृष्टियोंके	

तत्त्वोंको सम्यक् मानता है और जिनोक्त तत्त्वोंको असम्यक् मानता है। सन्देहरहित संयमियोंको चाहिये कि वह सन्देह शील लोगोंको संयममें उद्योगशील होनेकी प्रेरणा करे। इस प्रेरणासे संयमके विरोधी ज्ञानाक्षरणीय आदि कर्मोंकी परम्परा नष्ट हो जाती है। संयमाराधनमें सतत आग्रहक हूनियों के आचरणका अनुकरण करो। बालभावमें कमी भी मत पढो।

१७०-१८२

१० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया।

१८२-१८३

११ तुम जिसे इन्तव्य मानते हो, वह कोई दूसरा नहीं है; अपितु वह, तुम स्वयं ही हो। इसी प्रकार तुम जिसको आशा पयित्तव्य मानते हो, जिसे परितापयित्तव्य मानते हो, जिसे पश्चिद्दीप्तव्य मानते हो और जिसे अपद्रावयित्तव्य मानते हो, वह कोई दूसरा नहीं; अपितु तुम्हीं हो। इस प्रकारके परिज्ञानवाला श्वजु-सरल होता है। इसलिये किसी भी भीषका घात न करो और न करवाओ। जो घातक होता है उसे भी उसी प्रकार घातका अनुभव करना पड़ता है। इसी लिय किसी को भी इन्तव्य नहीं समझे।

१८३-१८८

१२ छठा सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया।

१८९-१९०

१३ जो आत्मा है वही विज्ञाता है और जो विज्ञाता है वही आत्मा है। जिससे खाना जाता है वह आत्मा है। वह ज्ञानस्वरूप आत्मा भी उस आत्मशब्दसे ही कहा जाता है, अर्थात् ज्ञान भी 'आत्म' शब्दसे प्यवहृत होता है। यह आत्मवादी सम्यक्पर्याय कहा जाता है।

१९०-१९९

॥ इति पञ्चम उद्देश ॥

## ॥ अथ षष्ठ उद्देश ॥

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ पञ्चम उद्देशके साथ छठे उद्देशका सम्बन्धकथन, और प्रथम सूत्रका अवतरण । २००-२०१
- २ प्रथम सूत्र और उसकी छाया । २०१
- ३ कितनेक लोग तीर्थकरसे अनुपदिष्ट धर्माभास मार्गमें उद्योगशाली होते हैं और अपनेको तीर्थकरोपदिष्ट धर्ममार्ग के संयमी समझते हैं निन्दित मार्गके अनुयायी कितनेक लोग तीर्थकरोंसे अनुपदिष्ट धर्ममार्गमें सर्वथा अनुद्योगी होते हैं । हे शिष्य ! तुम ऐसे मत बनो पूर्वोक्त दोनों प्रकारका न बनना यह तीर्थकरोंका अभिमत है । शिष्यको सर्वदा आचार्यके संकेतानुसारी होना चाहिये । २०१-२०४
- ४ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २०५
- ५ जो परीपहोपसर्ग अथवा घातिकर्म चतुष्टयको पराजित करके स्वयं उन परीपहोपसर्गोंसे या परतीर्थिकोंसे पराजित न हो कर जिनोक्त तत्त्वकी जिज्ञासा करते हैं वह किसीका आलम्बन नहीं लेते हैं । रत्नत्रयकी आराधना करनेवाले उन महापुरुषोंका मन बहिर्वर्ती नहीं होता । वे पूर्वाचार्य का पारम्परिक उपदेशसे वीतरागके वचनोंका अभिज्ञ हो जाते हैं, वे परतीर्थिकोंका मतका खण्डन करते हैं । तीर्थकरोक्त तत्त्वोंको कितनेक संयमी अपनी सहज बुद्धिसे समझ लेते हैं, आर्हत आगमके अभ्याससे उन्हें समझते हैं, और कितनेक आचार्य आदिके उपदेशद्वारा उन्हें समझते हैं । २०५-२१५
- ६ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २१६
- ७ मेधावी मुनि, वीतरागोपदेश और मिथ्यादृष्टियोंके मतकी तुलनात्मक समीक्षा करके, वीतरागोपदेशको उपादेय और मिथ्यादृष्टियोंके मतको हेय समझे, कभी भी वीतरागोपदेशका



- अतिक्रमण न करे । मोक्षामिलापी धीर मुनि सयमका स्वरूपको ज्ञान कर उसका आचरण करता हुआ विचरे । इ क्षिप्य ! तुम सर्वदा धीतरागोपदेश और आचार्योपदेशका अवलम्बन करके सयमाचरणमें पराक्रम करो । २१६-२२०
- ८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । २२०
- ९ ऊर्ध्वलोक अधोलोक और तिर्यग्लोक इन सभी स्थानोंमें मिथ्यात्व, अधिरति आदि स्रोत, अर्थात्-आस्रवद्वार हैं । ये आस्रवद्वार नदीके स्रोत समान कहे गये हैं । इन्हीं आस्रवोंसे जीव कर्मोंको बाँधते हैं । २२०-२२३
- १० पश्चिम सूत्रका अवतरण, पश्चिम सूत्र और छाया । २२४
- ११ धीतरागोपदिष्ट आगमके परिज्ञाता मुनि, आर्षको पर्यालोचना करके आस्रवद्वारोंसे धिरत होता । कर्मोंके आस्रवोंको दूर करनेके लिये प्रवृत्तिये महापुरुष मुनि अकर्मा होता है, और ज्ञान-दर्शनसे युक्त होता है । परमार्थ जाननेवाला ये मुनि, अच्छी तरह विचार कर किसी भी वस्तुकी अभिज्ञान नहीं करता । मोक्षमाप्तिके लिये उद्युक्त ये मुनि मुनुष्यलोकमें रहता हुआ भी जीवोंकी आगति और गतिको जानकर मन्म मरणके मार्गका उल्लङ्घन कर जाता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है । २२४-२२८
- १२ छठे सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया । २२८-२२९
- १३ सिद्धावस्थाका वर्णन । २२९-२३८
- १४ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । २३९
- १५ मुक्तात्मा जीवोंका वर्णन । २३९-२४१

॥ इति पण्ड श्लेष ॥

॥ इति पञ्चम अध्यायन सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

## ॥ अथ षष्ठ अध्ययन ॥

- विषय पृष्ठाङ्क
- १ पञ्चम अध्ययनके साथ षष्ठ अध्ययनका सम्बन्धकथन । धृत शब्दका अर्थ और भेद । इस अध्ययनके पाचों उद्देशोंमें प्रतिपाद्य विषयोंका क्रमिक वर्णन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । २४२-२४४
  - २ इन मनुष्योंमें जो मनुष्य सम्यग्ज्ञानवान् है, वे ही अन्य मनुष्यों के लिये सम्यग्ज्ञानका उपदेश देते हैं । वे सम्यग्ज्ञानी केवली और श्रुतकेवली होते हैं । वे एकेन्द्रियादि जीवोंको यथार्थरूपसे जानते हैं । वे ही इस अनुपम सम्यग्ज्ञानके उपदेशक होते हैं । २४४-२४७
  - ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २४७
  - ४ तीर्थंकर गणधर आदि, हिंसानिवृत्त, धर्माचरणके लिये उद्यत और हेयोपादेयबुद्धियुक्त मनुष्योंके लिये मुक्तिमार्गका उपदेश देते हैं । इन उपदेश प्राप्त लोगों में कितनेक महावीर कर्मशत्रुओंके नाशार्थ पराक्रम करते हैं । इनसे भिन्न मोहविषय प्राणी कि जिनकी बुद्धि अन्यत्र लगी हुई है, वे विषादयुक्त रहते हैं । २४७-२४९
  - ५ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २४९
  - ६ शैवाल आदिसे युक्त पुराने हृदमें रहनेवाला कच्छप, जैसा उसीमें निविष्ट चित्त होनेसे उससे बाहर नहीं हो सकता, उसी प्रकार हेयोपादेय बुद्धिरहित मनुष्य, कभी भी इस संसाररूपी महाहृदसे बाहर नहीं निकल सकता । २४९-२५२
  - ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । २५२
  - ८ जैसे वृक्ष शाखाछेदनादि दुःखों सहते हुए अपने ही स्थान पर रहते हैं, वहांसे हट नहीं सकते; उसी प्रकार कितनेक

मनुष्य, स्त्री, पुत्रादिसे अपमानित, अनेक भाषि व्याधिर्योसि प्रसूत, और रानपुरुपादिकोंसे हतसर्भस्व होते हुए भी यह त्याग नहीं कर सकते । वे दुःखी हो कर सक्रम्य विज्ञाप करते हैं और निदान करते रहते हैं, इस कारण इन्हें मोक्ष नहीं मिलता ।

२५२-२५४

९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र ।

२५५

१० हेयोपादेय विवेकरहित मनुष्य जन्म-मरणके चक्रमें पड़े रहते हैं ।

२५५

११ षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया ।

२५६

१२ हेयोपादेय विवेकरहित अनात्मज्ञ पुरुष स्फुट कर्मोंके फल स्वरूप कृष्णादि रोगोंसे और विविध परीपहोंसे आक्रान्त होते रहते हैं ।

२५६-२५९

१३ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया ।

२५९-२६०

१४ जो प्राणी तममें अर्थात् नरकादि अथवा मिथ्यात्वादिमें पड़े हुए है वे अन्धे हैं । ऐसे जीव कृष्णादिसे आक्रान्त हो कर दुःख प्राणी होते हैं ।

२६०

१५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया ।

२६१

१६ वासक रसग आदि जो भीष हैं ये सभी दूसरे जीवोंको कष्ट देते हैं ।

२६१

१७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया ।

२६२

१८ यह लोक महामययुक्त है, और इसमें रहनेवाले सभी प्राणी अत्यन्त दुःखी हैं ।

२६२

१९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया ।

२६३

२० कामासक्त मनुष्य, इस क्षणभंगुर निस्तार शरीरकी पुष्टि

विषय	पृष्ठाङ्क
निमित्त प्राणिहिंसा और तज्जनित कर्मबन्ध किया करते हैं ।	२६३-२६४
२१ ग्यारहवे सूत्रका अवतरण, ग्यारहवां सूत्र और छाया ।	२६४
२२ आर्त्त और बहुदुःखयुक्त अज्ञानी मनुष्य, अनेक विध दुष्कर्म करके सोलह प्रकारके रोग आतङ्कके भागी होते हैं, और फिर वे उन रोगोंकी चिकित्सानिमित्त एकेन्द्रियादि जीवोंकी हिंसा करते हैं ।	२६४-२६५
२३ बारहवे सूत्रका अवतरण, बारहवां सूत्र और छाया ।	२६६
२४ कर्मोदयजनित रोगोंकी निवृत्तिमें चिकित्साये समर्थ नहीं हैं । अतः रोगनिवृत्त्यर्थ प्राणिवधसे निष्पन्न चिकित्सा, विवेकियों के लिये हेय हैं । इस प्रकारकी चिकित्साविधि, जन्म-मरणारूप महाभयोंकी कारण है । इस लिये किसी भी प्राणीका उपमर्दन नहीं करना चाहिये ।	२६६-२६७
२५ तेरहवां सूत्र और छाया ।	२६८
२६ अष्टविध कर्मके विनाशक धूतवादको समझो; सुनो । इस संसारमें आत्मकृत कर्मके परिणामस्वरूप जीव उच्चनीचादि कुलोंमें जन्म लेते २ क्रमिक मुनित्वको प्राप्त करते हैं ।	२६८-२७१
२७ चौदहवे सूत्र और अवतरण ।	२७१
२८ दीक्षाके लिये उद्युक्त मनुष्यके लिये माता-पिता आदि विलाप करते हैं, और आक्रोश वचन बोलते हैं ।	२७२
२९ पन्द्रहवे सूत्रका अवतरण, पन्द्रहवां सूत्र और छाया ।	२७३
३० संयमाभिलाषी मनुष्य, दीक्षाके समयमें रोते हुए अपने माता पिता आदिकी ओर त्रिक्कुल ध्यान नहीं देता । उसका इस प्रकारका व्यवहार उचित ही है, क्योंकि वह संसारकी वास्तविकतासे अभिज्ञ, नरक-जैसे गृहवासमें रह ही कैसे	

सकता ! हे शिष्य ! इस घृतवाद्योक्त ज्ञानका सर्वदा चिन्तन करो ।

२७४—२७६

॥ इति प्रथम उद्देश ॥

\*

॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

- १ प्रथम उद्देशके साय द्वितीय उद्देशका सम्प्रभकरण । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । २७७—२७८
- २ इस पठ्भीषनीकायरूप लोकश्री आतुर जान कर, गृहस्थावास को छोड़ कर, विरतिपुक्त हो कर ब्रह्मचर्यमें स्थित कितनेक मुनि ब्यवा एकादश प्रतिमाभारीभावक श्रुतचारिश्रमके पास्तभिक्रतृको जानते हुए भी मोहोदयके कारण समयके पालनमें असमर्थ हो संयमोपकरणका परित्याग कर देते हैं । इनमेंसे कितनेक देखभिरत हो कर रहते हैं और कितनेक तो मिथ्यात्वी हो जाते हैं । शब्दादि विषयोंमें ममत्व करनेवाले इन समय छोड़नेवालोंमें से कितनेक भन्तर्मुहूर्त में मर जाते हैं और कितनेक आहोरात्रमें कितनेक इससे अधिक काष्ठमें । इस प्रकार ये मोगार्थी, दुःस्वप्नार शब्दादि विषयोंमें आसक्त हो इस मनुष्य जीवनको व्यर्थमें नष्ट कर डालते हैं । २७८—२८१
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २८२
- ४ कितनेकमनुष्य संयमी हो कर, संयम ग्रहणके कालसे ले कर संयमानुष्ठान में सर्वदा उत्पर रहते हैं । ऐसे महा मुनि ही कर्मधूननमें सम्यक् प्रकारसे प्रवृत्ति-शील होते हैं । २८२—२८३
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २८४

विषय	पृष्ठाङ्क
६ ममत्व भावनासे रहित, अत एव 'अहमेक एवास्मि'—ऐसी भावनासे भावित अन्तःकरणवाला मनुष्य, सभी प्रकारके बन्धनोंको छोड़ कर प्रव्रजित हो जाता है और अचेत वह मुनि अवमोदरिकासे ही रहा करता है ।	२८४
७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।	२८५
८ ऐसे अवमोदरिकायुक्त मुनि, धर्मानभिज्ञ मनुष्योंद्वारा विविध प्रकारसे अपमानित होता हुआ भी उन अपमानोंको समतापूर्वक सहता हुआ विचारता है, और वह सभी परीपहोंको समतापूर्वक सहता है ।	२८५-२८७
९ पञ्चम सूत्र और छाया ।	२८७
१० सम्यग्दृष्टि मुनि परीपहप्रयुक्त सभी दुश्चिन्ताओंका परित्याग कर परीपहोंको सहे ।	२८७
११ षष्ठ सूत्र और छाया ।	२८७
१२ प्रव्रज्याको किसी दुष्परिस्थितिमें नहीं त्यागता, ऐसा मुनि ही निर्ग्रन्थ है ।	२८७-२८८
१३ सप्तम सूत्र और छाया ।	२८८
१४ 'जिनागमके अनुसार ही जिनधर्मका पालन करना चाहिये' यही तीर्थंकरोंका उत्तम उपदेश मनुष्योंके लिये है ।	२८८
१५ आठवां सूत्र और छाया ।	२८९
१६ कर्मध्वननके उपाय इस संयममें संलग्न हो कर, अष्टविध कर्मको खपाते हुए विचरे । सभेद कर्मोंको जान कर मनुष्य, उन कर्मों को, श्रमणधर्मका आराधन करके खपाता है ।	२८९
१७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया ।	२८९-२९०
१८ इस जिनशासनमें रह कर जिन्होंने कर्मबन्धको शिथिल कर दिया है ऐसे कितनेक मुनि एकाकिविहार प्रतिमाधारी होते हैं, उन्हें अनेक प्रकारके परीपह प्राप्त होते हैं, उन परीपहोंको वे धीरे मुनि समतापूर्वक सहे ।	२९०-२९३

॥ इति द्वितीय उद्देश ॥

## ॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ द्वितीय उद्देशके साथ तृतीय उद्देशका सम्बन्धकथन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । २९४
- २ ममत्वारहित, ज्ञानाभारादिके प्रतिपालक मुनि, धर्मोपकरणके अतिरिक्त कर्मबन्धके कारण ब्रह्मादिकोंको छोड़ कर विचरता है । २९४-२९५
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २९५
- ४ जो साधु, अचेष्ट ( अल्पबलधारी ) और साधुमर्षादामें व्यस्त स्थित होते हैं उन्हें तीर्थवृत्तसम्बन्धी चिन्ता कभी भी नहीं होती । २९६-२९८
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २९८-२९९
- ६ कर्मबन्धोंके विनाशके निमित्त प्रयत्नशील उस अचेष्ट मुनिको उस अवेलाषस्यामें अनेक प्रकारके परीपह प्राप्त होते हैं, वे परीपह उस मुनिके सिये उपःस्वरूप ही हैं । २९९-३०१
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । ३०२  
मगरानुकी आज्ञानुसार, अपनी २ सामर्थ्यके अनुकूल उत्कृष्ट या अपकृष्ट साध्याचार पामनमें मग्न सभी मुनि सम्पत्स्वी हैं । सभी तीर्थवृत्तोंके शासनकार्यमें अचेष्ट मुनि विविध परीपहोंको सहते हैं । ३०२-३०५
- ८ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया । ३०६
- ९ जो सम्पद्गणानको प्राप्त हो चुके हैं उनकी बाहें बंधवा बांधाये कृष्ट ( क्षीण ) हो जाती हैं कर्मसंपन्नार्थ मग्न इन सम्पद्गणानियोंके मांससोजित छल जाते हैं । वे अपनी सम भावना और क्षमा आदि गुणोंसे सत्कारपरम्पराको छिन्न करके रहते हैं । इस प्रकारके साधु, तीर्थवृत्तों द्वारा तीर्थ मुक्त और विरत कहे गये हैं । ३०६-३०८
- १० षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया । ३०८

- विषय
- १२ असंयमसे निवृत्त, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शुभाध्यवसायमें प्रवृत्त और बहुत कालसे संयममें स्थित ऐसे मुनिको क्या संयममें अरति हो सकती है ? । ३०८-३०९
- १३ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । ३०९
- १४ पूर्वोक्त प्रकारके साधु, उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रशस्त परिणामधारा अथवा गुणस्थानपर आरूढ होते हैं, अतः उनको अरति हो ही कैसे ? । जैसे द्वीप, असन्दीन-बाढके उपद्रवसे रहित होता है, उसी प्रकार यह मुनि भी, उपसर्ग आदिसे बाधित नहीं होता है, अथवा-जैसे असन्दीन द्वीप यात्रिकों के लिये आश्वसनीय होता है, उसी प्रकार संसारसागरको तिरनेकी इच्छावाले मनुष्य, इस प्रकारके साधुओंके ऊपर विश्वास करते हैं । ३१०
- १५ आठवें सूत्र और छाया । ३११
- १६ असन्दीन द्वीपके समान भगवद्भाषित धर्म भी है । ३११
- १७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया । ३११-३१२
- १८ वह मुनि, निस्पृही अर्हिसक सर्वलोकप्रिय साधुमर्यादामें व्यवस्थित और पण्डित होता है । ३१२
- १९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया । ३१२-३१३
- २० आचार्य महाराजको चाहिये कि जैसे पक्षी अपने बच्चोंको उड़ना सिखाते हैं उसी प्रकार वे भी धर्मानुष्ठानमें अनुत्साही शिष्योंको दिन-रात क्रमशः एकादश अङ्गोंकी शिक्षा दें । आचार्यद्वारा शिक्षित वे शिष्य, सकल परिषदों के सहन और संसारसागरके पार करनेमें समर्थ हो जाते हैं । ३१३-३१४

॥ इति तृतीय उद्देश ॥



## ॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

विषय	पृष्ठ
१ तृतीय उद्देशके साथ चतुर्थ उद्देशका संबंधकथन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया ।	३१५
२ आचार्यद्वारा परिश्रमपूर्वक शिसित किये गये उन शिष्योंमें से कितनेक अहंकारयुक्त हो कर उपश्रमको छोड़ गुरुजनोके साथ मी कठोर व्यवहार करते है ।	३१५-३१६
३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।	३१७
४ कितनेक शिष्य ब्रह्मचर्यमें रह कर मी, मगवान्की आज्ञा की आराधनामें सर्वथा तत्पर नहीं हो कर दक्षत मगवान् की आज्ञाकी अवहेलना करते हुए सातागौरवकी अभिकलासे वाङ्मुक हो जाते है ।	३१७
५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया ।	३१८
६ कितनेक शिष्य, आचार्यद्वारा कुशीलाधारके विषाणका प्रतिपादन करनेपर, उन आचार्यों के ऊपर ही क्रुद्ध हो जाते है ।	
७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।	३२०-३२१
८ ये अवसभ पार्श्वस्थादि, श्रीलवान् उपश्रान्त और हेयोपादेय ज्ञानपूर्वक सपममार्ग में मङ्गलि करनेवाछे साधुमोको 'चारि प्रहीन' कहा करते है, यह बनकी द्वितीय बालता है, पहली बालता तो इनकी यह है जो य स्वय भ्रष्ट है ।	३२१-३२२
९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र ।	३२२
१० कितनेक स्वयं सपमाचरणमें असमर्थ होते हुए मी मूलगुण और उचरगुणकी शुद्ध रूपसंख्या करता है, उनकी द्वितीय बालता नहीं होती है ।	३२२
११ षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया ।	३२३

- १२ कितनेक सम्यक्त्वपतित ज्ञानभ्रष्ट मुनि, द्रव्यतः आचार्यादिको प्रणाम आदि करते हैं, परंतु वे भावतः अपनी आत्माको सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्गसे भ्रष्ट ही करते रहते हैं । ३२३
- १३ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । ३२४
- १४ कितनेक परीपहोपसर्गसे आक्रान्त हो जीवनके मोहसे संयमका परित्याग कर देते हैं, उनका सब कुछ व्यर्थ ही है । ३२४
- १५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया । ३२५
- १६ जीवनके सुखके निमित्त जो चारित्रिका परित्याग करते हैं वे पामरजनोंसे भी निन्दित होते हैं, और वे एकेन्द्रियादि दुर्गतिके भागी होते हैं, संयमस्थानसे गिरकर भी वे अपने को पण्डित मानते हुए अपनी प्रशंसा करते हैं और उत्तम साधुओंकी निन्दा करते हैं, उनके ऊपर असत्य दोषोंका आरोप करते हैं । मेधावी मुनिको ऐसा नहीं होना चाहिये । ३२५-३२७
- १७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया । ३२८
- १८ आरम्भार्थी साधु, हिंसाके निमित्त दूसरों को प्रेरित करते हैं, हिंसाकी अनुमोदना करते हैं । 'तीर्थङ्करोक्त धर्म घोर अर्थात्-दुरनुचरणीय है'-ऐसा मान कर तीर्थङ्करोक्त धर्मकी उपेक्षा करते रहते हैं । 'से मनुष्योंको तीर्थङ्करोंने विपण्ण अर्थात् कामभोग-मूर्च्छित और वितर्द अर्थात् पड़जीविकायोंके उपमर्दनमें तत्पर कहा है । ३२८-३२९
- १९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया । ३२९
- २० कितनेक जन, मातापिता, ज्ञातिवन्धु और धन-धान्यादिकोंको छोड़ कर संयम लेते हैं और उस संयमका पालन अच्छी तरह करते हैं, परन्तु वादमें वे ही कर्मदोषवश संयमसे गिर पडते हैं, दीन-हीन हो कर व्रतविध्वंसक हो जाते हैं । ३३०-३३३

विषय	पृष्ठाङ्क
२१ ग्यारहवें सूत्रका अवतरण, ग्यारहवां मूत्र और छाया ।	३३३
२२ संयमसे च्युत लोगोंकी सर्वत्र निन्दा होती है ।	३३३-३३५
२३ बारहवें सूत्रका अवतरण, बारहवां सूत्र और छाया ।	३३५
२४ कितनेक अमागे साधु, उग्रविहारियोंके साथ रहते हुए भी शीतलबिहारी होते है, विनयशील साधुओंके साथ रहते हुए भी अविनयी होते है, बिरतोंके साथ रहते हुए भी अचिरत होते है, संयमाराधकोंक साथ रहते हुए भी असंयमी होते है । अतः संयमी साधुओंकी संगति प्राप्त कर सर्वदा संयमाराधनमें तत्पर रहना चाहिये ।	३३५-३३६

॥ इति चतुर्थ उद्देश सम्पूर्ण ॥ ४ ॥

\*

॥ अथ पञ्चम उद्देश ॥

१ चतुर्थ उद्देशके साथ पञ्चम उद्देशका सम्बन्ध-कथन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम मूत्र और छाया ।	३३६-३३८
२ उन मुनियोंको अनेक स्थानोंमें अनेक प्रकारके उपसर्ग प्राप्त होते है, उन उपसर्गोंको वे मुनि अच्छी तरह सहें ।	३३८-३३९
३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।	३३९-३४०
४ वैनागमके ज्ञाता मुनि, लोकस्वरूपका तथा पूर्वादि दिग्भि मागोंको भी अच्छी तरह जान कर द्वापार्धमकी प्ररूपणा करे और धर्मानुष्ठानका फल कहे ।	३४०
५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया ।	३४१
६ वह आगमज्ञ मुनि, सुननेकी इच्छावाले उत्पित, अनुत्पित सभी प्रकारके लोगोंको शान्ति, बिरति, उपश्रम, निर्वाण, शौच, आर्नभ, मार्दव और साधवकी ब्याख्या आगमानुसार करके समझावे ।	३४१-३४२

विषय	पृष्ठाङ्क
७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।	३४२
८ मुनि एकेन्द्रियादि सभी प्राणियोंके हितकी ओर दृष्टि रखते हुए धर्मोपदेश करे ।	३४३
९ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया ।	३४३-३४४
१० धर्मोपदेश करते हुए मुनि, न अपने आत्माकी विराधना करे, न दूसरे मनुष्योंकी विराधना करे और न अन्य प्राण, भूत, जीव और सत्त्वोंकी विराधना करे ।	३४४-३४५
११ छठे सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया ।	३४५
१२ जीवोंके अनाशातक मुनि सभी प्राणियोंके शरण होते हैं ।	३४६-३४७
१३ सातवें सूत्रका अवतरण, सातवां सूत्र और छाया ।	३४७-३४८
१४ कर्मविनाशके लिये उत्थित मुनि, श्रुतचारित्र धर्ममें स्थिर हो कर, बलवीर्यको नहीं छिपाते हुए, सभी प्रकारकी परिस्थिति में निष्प्रकम्प, स्थिरवासरहित अर्थात् उग्रविहारी और संयमकी ओर लक्ष्य रखते हुए विहार करे ।	३४८
१५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया ।	३४९
१६ सम्यग्दृष्टि जीव जिनोक्तधर्मको जानकर परिनिर्वृत हो जाता है ।	३४९
१७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया ।	३४९-३५०
१८ आसक्तियुक्त प्राणी, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहोंसे निबद्ध होते हैं, उनमें निमग्न रहते हैं, कामभोगमें अभिनिविष्ट चित्तवाले होते हैं । मुनिको चाहिये कि वे आसक्तिरहित हो कर संयम पालन करें, संयमसे कभी भी भयभीत न हों ।	३५०-३५१
१९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया ।	३५२
२० वह आरम्भ कि जिससे हिंसक जन भयभीत नहीं होते हैं, उसको सम्यक् प्रकारसे जान कर और चार कषायोंका वमन करके मुनिजन संयममार्गमें विचरते हैं । ऐसे मुनिजनके सभी कर्म बन्धनटूट जाते हैं ।	३५२-३५४

विषय	पृष्ठाङ्क
२१ ग्यारहवें सूत्रका अवतरण, ग्यारहवाँ सूत्र और छाया ।	३५५
२२ इस औदारिक आदि शरीरके चिन्ताशक्तो तीर्यकरोंने संग्रामका अग्र भाग कहा है । मुनिजन ज्ञानाचारादिरूप नौकाका अग्र सम्बन्ध कर संसार महासागरके पारगामी होते हैं । परीपह और उपसर्गोंसे इन्वमान मुनि, रागद्वेषरहित अपने मरणकालसे अमिद्व हो कर बारह वर्षकी संलेखनासे शरीरका संलेखन करके मक्तमत्प्याख्यान आदिमेंसे किसी एक मरणसे अपने मरणकालकी प्रतीक्षा करे । इस प्रकारके मुनि सकल कर्मसय करके मोक्षगामी होते हैं ।	३५५-३६०
२३ अध्ययनविषयोपसंहार ।	३६०-३६१

॥ इति पष्ठ अध्यायन ॥

\*

॥ अथ अष्टम अध्यायन ॥

( प्रथम उद्देश )

१ सप्तम अध्यायनके विच्छेदका कारण ।	३६३-३६५
२ अष्टम अध्यायनका उपोद्घात ।	३६५-३६६
३ अष्टम अध्यायनमें प्रतिपादित विषयोंका उद्देशक्रमसे संक्षेपतः कथन ।	३६७-३७०
४ प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और उसकी छाया ।	३७०
५ अत्रसन्न पार्श्वस्य आदि स्वमतावलम्बियोंका और शास्त्रादि परमतावलम्बियोंको, साधु कभी भी आहार आदि न देवे, न उन्हें निमन्त्रित कर, और न उनकी शुभ्रपा ही करे ।	३७०-३७१
६ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।	३७१-३७२

- ७ अवसन्न पार्श्वस्थादिक स्वमतावलम्बियोंद्वारा और शाक्यादि परमतावलम्बियोंद्वारा आहारादि निमित्त आमन्त्रित होनेपर साधु, कभी भी उनके आमन्त्रणका स्वीकार न करे। ३७२-३७३
- ८ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ३७४
- ९ कितनेक लोगोंको आचारगोचर अर्थात् सर्वज्ञोपदिष्ट संयम मार्गका परिचय नहीं होता है, अतः वे आरम्भार्थी होते हैं, और उन आरम्भार्थी लोगोंकी तत्त्वके सम्बन्धमें परस्पर भिन्न भिन्न दृष्टि होती है। इस लिये उनका धर्म वास्तविक नहीं होनेके कारण भव्योंके लिये सर्वदा परित्याज्य है। ३७४-३९६
- १० चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ३९६-३९७
- ११ इस अनेकान्त धर्मका प्ररूपण भगवान् तीर्थकरने किया है। उन्होंने अपने साधुओंके लिये कहा है कि परवादियोंके साथ वादमें भाषासमितिका ध्यान सतत रखे। वे परवादियोंसे इस प्रकार कहें कि आपके शास्त्रोंमें पङ्जीवनिकयोपमर्दनरूप आरम्भ, धर्मरूपमें स्वीकृत किया गया है वह हमें ग्राह्य नहीं है; क्यों कि आरम्भ नरकनिगोदादिके कारण होने से पाप है। हम सावद्याचरणके त्यागी हैं, अतः हमें इस विषयमें आपके साथ वाद नहीं करना है और यही हमारे लिये उचित भी है। 'धर्म न ग्राममें है और न अरण्यमें, धर्म तो जीवाजीवादि-तत्त्व-परिज्ञानपूर्वक निरवधानुष्ठानमें ही है'-यह माह्न-भगवान् महावीरका उपदेश है। भगवान्ने तीन यामोंका प्ररूपण किया है; इन यामोंमें संघुध्यमान और समुत्थित आर्यजन जो कि पापकर्मोंसे निवृत्त हैं वे ही अनिदान कहे गये हैं। ३९७-४०३
- १२ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया। ४०३

- १३ 'ऊर्ध्वादि सभी दिशाओं एवं विदिशाओंमें सूक्ष्मवादरादि सभी प्राणियोंकी विराभनारूप कर्मसमारम्भ होता है'— इस वाक्यको खान कर मेघाधी साधु न स्वयं इन पञ्चजीव निकायोंके विषयमें दण्डका समारम्भ करे, न दूसरोंसे करावे, न करते हुए की अनुमोदना ही करे। हे शिष्य ! तुम्हें इस प्रकारसे निवारना चाहिये कि इन दण्डसमारम्भ करनेवालोंके साथ वात्सीलाप करनेमें भी मुझे अज्ञा होती है, फिर मैं दण्डसमारम्भका अनुमोदन कैसे करूँ ? मैं कभी इसका अनुमोदन नहीं कर सकता। इस प्रकार निश्चय कर के साधुमर्पादामें व्ययस्थित, प्राणातिपातसे भयभीत तुम, उस अनर्थकर प्राणातिपातादिरूप दण्डका, भयना-अन्य दण्ड का समारम्भ कभी नहीं करना।

४०४-४०५

॥ इति प्रथम उद्देश ॥



॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

- १ द्वितीय उद्देशका प्रथम उद्देशके साथ सम्बन्धकरण, प्रथम सूत्र और उसकी छाया। ४०६-४०७
- २ भ्रमज्ञान आदिमें स्थित साधुको अकल्पनीय अज्ञानादिक छेनेके लिये यदि कोई गृहपति आग्रह करे तो साधु उसके आग्रहको कभी भी नहीं स्वीकारे। ४०८-४१२
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया। ४१२-४१३
- ४ उस साधुके समीप आ कर कोई गृहपति उस साधुको, अकल्पनीय अज्ञान आदि ला कर देवे, या रहनेके लिये अकल्पनीय उपाध्य देव, तो साधुको चाहिये कि वह उस गृहपतिके वचनोंको कभी भी स्वीकार नहीं करे। ४१३-४१६
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ४१६

विषय

- ६ श्मशानादिस्थित साधुके, गृहपतिद्वारा प्रदत्त अकल्पनीय अशनादिक न लेनेपर, यदि वे गृहपति उस साधुकी ताडना आदि करे तो साधु उस ताडनादिकको शान्तिपूर्वक सहन करे। अथवा वह साधु उस गृहपतिके सम्यग्दृष्टित्व और मिथ्यादृष्टित्वका अनुमान कर, यदि वह सम्यग्दृष्टि हो तो उसे साधुके आचारका परिज्ञान करावे। अथवा—यदि देखे कि यह गृहपति मिथ्यादृष्टि है तो कुछ भी नहीं कहे। चुपचाप उसके द्वारा किये गये उपसर्गों को शान्तचित्त हो कर सहे। ४१६-४२२
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ४२२-४२३
- ८ वह साधु गृहपतिद्वारा प्रदत्त उस आहारादिको कभी भी स्वीकार न करे। इतना ही नहीं वह साधु शाक्यादि परतीर्थिकों को कभी भी अशनादिक नहीं देवे, न उन्हें निमन्त्रित करे, न उनकी सेवा करे, और न उनका आदर ही करे। ४२३
- ९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र। ४२३-४२४
- १० भगवान्की आज्ञा है कि साधु अपने साधर्मिक साधुको अशनादिक प्रदान करे, उसको निमन्त्रित करे, उसकी सेवा करे और उसका आदरसत्कार करे। ४२४-४२५

॥ इति द्वितीय उद्देश ॥

\*

॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

- १ तृतीय उद्देशका द्वितीय उद्देशके साथ सम्बन्धकथन। प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया। ४२६-४२७



२ कितनेक मनुष्य युवावस्थामें ही संबुद्ध हो मुनि हो जाते हैं। उनमें जो बुद्धबाधित होते हैं वे पञ्चितों अर्थात् तीर्थ करगम्भपर आदिक समीप धर्मवचन सुन कर, उन्हें हृदयमें उतार कर समताभावका अवलम्बन कर; क्यों कि तीर्थकर गम्भपर आदिकोंमें समतासे ही धर्मका प्रकल्पन किया है। उन साधुओंको चाहिये कि वे छन्द्यादिक विषयोंकी अमि-  
लापासे रहित हो कर, प्राणियोंकी हिंसा और परिग्रह नहीं करते हुए विचरते हैं। ऐसे मुनि कभी भी परिग्रहोंसे लिप्त नहीं होते हैं, और न वे प्राणियोंके ऊपर मनोबाह्यापवण्डका ही प्रयोग करते हैं। ऐसे मुनियोंको तीर्थकरोंनि महान् और अप्रन्य कहा है। ऐसे मुनि मोक्ष और संयमके स्वरूपके परिष्कारात्ता होते हैं, और वे देव, नारक, मनुष्य और तिर्यञ्चके जन्म-मरणादिक दुःस्वोंको जान कर कभी भी पापकर्म नहीं करते हैं।

४२७-४३०

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया।

४३१

४ आहारसे परिपुष्ट प्राणियों के वे शरीर, परीपणोंके आनेपर विनष्ट हो जाते हैं। देखो; कितनेक प्राणी क्षुधापरीपणसे कातर हो जाते हैं, और इनके विपरीत कोई २ रागद्वेष वञ्चित मुनि क्षुधापरिपणके प्राप्त होने पर भी निष्प्रकम्प हो कर पञ्चभूषणिकायके ऊपर दया करनेमें ही संतम्न रहते हैं।

४३१-४३३

५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया।

४३३-४३४

६ पूर्वोक्त मुनि आगममें कुशल होते हैं और वे काल धल, माया क्षण, विनय और समयके श्राव्य होते हैं। वे परिग्रहमें ममत्व नहीं रखते हैं, यथाकाल अनुष्ठान करतबाले होते हैं और अप्रतिग्रह होते हैं। ऐसे मुनि रागद्वेषको छिन्न करके मोक्षको प्राप्त करते हैं।

४३४

७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।

४३५

८ शीतस्पर्शसे कम्पितशरीर मुनिको देख कर यदि गृहपति पूछे कि 'हे आयुष्मन् ! क्या आपका शरीर कामजनित पीडासे कंपित हो रहा है ?' तो मुनि उससे कहे—'हे गाथापति ! मेरा शरीर कामविकारसे नहीं कॅप रहा है, किन्तु शीतकी बाधाको मैं नहीं सह पा रहा हूँ इसलिये कॅप रहा है।' इस पर यदि गृहपति कहे कि 'हे आयुष्मन् ! तो आप अग्निसेवन क्यों नहीं करते ?' इस पर वह साधु कहे कि 'हे गाथापति ! मुझे अग्निको प्रज्वलित करना या उसका सेवन करना नहीं कल्पता।' इस प्रकार कहने पर यदि वह गृहपति या अन्य गृहस्थ आग जला कर उस मुनिके शरीरको तापित करे तो वह मुनि गृहस्थको समझा कर अग्निसेवनसे दूर ही रहे।

४३५-४३९

॥ इति तृतीय उद्देश ॥

ॐ

॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

१ चतुर्थ उद्देशका तृतीय उद्देशके साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया ।

४४०-४४१

२ मुनिको तीन वस्त्र और चौथा पात्र का रखना कल्पता है। इस प्रकारके साधुको यह भावना नहीं होती है कि चौथे वस्त्रकी याचना करूँगा। साधु एषणीय वस्त्रकी याचना करते हैं, जैसा वस्त्र मिल जाता है उसीको धारण करते हैं, वस्त्रोंको धोते नहीं हैं और रंगते ही है। साधु धौतरक्त वस्त्रको धारण नहीं करते हैं। वे कभी भी वस्त्रोंको छिपाते नहीं; क्यों कि उनका वस्त्र जीर्ण और मलिन होनेके कारण

- २ कितनेक मनुष्य युवावस्थामें ही संबुद्ध हो मुनि हो जाते हैं। उनमें जो बुद्धबाधित होते हैं वे पण्डितों अर्थात् तीर्थ करगणधर आदिके समीप धर्मवचन सुन कर, उन्हें हृदयमें उतार कर समताभावका अवलम्बन करे; क्यों कि तीर्थकर गणधर आदिकोंने समतासे ही धर्मका प्रस्फुट किया है। उन साधुओंको चाहिये कि वे शब्दादिक विषयोंकी अमि-  
छापासे रहित हो कर, प्राणियोंकी हिंसा और परिग्रह नहीं करते हुए विचरते हैं। ऐसे मुनि कमी भी परिग्रहोंसे छिन्न नहीं होते हैं, और न ये प्राणियोंके ऊपर मनोनाकायदण्डका ही प्रयोग करते हैं। ऐसे मुनियोंको तीर्थकरोंने महान् और अप्रन्य कहा है। ऐसे मुनि मोक्ष और संयमके स्वरूपके परिष्कार होते हैं, और वे देव, नारक, मनुष्य और तिर्यङ्गके जन्म-मरणादिक दुःखोंको जान कर कमी भी पापकर्म नहीं करते हैं। ४२७-४३०
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया। ४३१
- ४ आहारसे परिपुष्ट प्राणियों के ये शरीर, परीपणोंके आनेपर विनष्ट हो जाते हैं। देखो; कितनेक प्राणी भुषापरीपणसे कातर हो जाते हैं, और इनके विपरीत कोई २ रागद्वेष वर्जित मुनि भुषापरिपणके प्राप्त होने पर भी निष्प्रकम्प हो कर पट्टबीचनिकायके ऊपर दया करनेमें ही संलम्ब रहते हैं। ४३१-४३३
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ४३३-४३४
- ६ पूर्वोक्त मुनि भागममें कुशल होते हैं और वे काल, बल, मात्रा क्षण, विनय और समयके ज्ञाता होते हैं। वे परिग्रहमें ममत्त्व नहीं रखते हैं, यथाकाल अनुष्ठान करनेवाले होते हैं और अप्रतिष्ठ होत हैं। ऐसे मुनि रागद्वेषको छिन्न करके मोक्षको प्राप्त करते हैं। ४३४

विषय

- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।
- ८ शीतस्पर्शसे कम्पितशरीर मुनिको देख कर यदि गृहपति पूछे कि ' हे आयुष्मन् ! क्या आपका शरीर कामजनित पीडासे कम्पित हो रहा है ? ' तो मुनि उससे कहे— ' हे गाथापति ! मेरा शरीर कामविकारसे नहीं कँप रहा है, किन्तु शीतकी वाधाको मैं नहीं सह पा रहा हूँ इसलिये कँप रहा है । ' इस पर यदि गृहपति कहे कि ' हे आयुष्मन् ! तो आप अग्निसेवन क्यों नहीं करते ? ' इस पर वह साधु कहे कि ' हे गाथापति ! मुझे अग्निको प्रज्वलित करना या उसका सेवन करना नहीं कल्पता । ' इस प्रकार कहने पर यदि वह गृहपति या अन्य गृहस्थ आग जला कर उस मुनिके शरीरको तापित करे तो वह मुनि गृहस्थको समझा कर अग्निसेवनसे दूर ही रहे ।

४३५-४३९

॥ इति तृतीय उद्देश ॥

\*

॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

- १ चतुर्थ उद्देशका तृतीय उद्देशके साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया ।

४४०-४४१

- २ मुनिको तीन वस्त्र और चौथा पात्र का रखना कल्पता है । इस प्रकारके साधुको यह भावना नहीं होती है कि चौथे वस्त्रकी याचना करूँगा । साधु एषणीय वस्त्रकी याचना करते हैं, जैसा वस्त्र मिल जाता है उसीको धारण करते हैं, वस्त्रोंको धोते नहीं है और रंगते ही है । साधु धौतरक्त वस्त्रको धारण नहीं करते हैं । वे कभी भी वस्त्रोंको छिपाते नहीं; क्यों कि उनका वस्त्र जीर्ण और मलिन होनेके कारण

- मृत्युवान नहीं होता है। इस प्रकारके साधु ग्रामान्तरों में निर्द्वन्द्व विचरते हैं। बख्तपारी साधुओंकी यही तीन बख्त और चौथा पात्ररूप सामग्री होती है। ४४१-४४४
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया। ४४४
- ४ हेमन्त ऋतुके भीतने पर ग्रीष्म ऋतुके प्रारम्भमें साधुको शीर्ष बख्तोंका परित्याग कर देना चाहिये। अथवा शीतसमय भीतने पर भी क्षेत्र, क्लृप्त और पुरुष स्वभावक कारण यदि शीतबाधा हो ता तीनों बख्तोंको धारण करे, अर्थात्-शीत छगने पर तीनों बख्तोंको धारण करे, शीत न सगे और उसकी आशङ्का हो सो अपने पास रखे, त्यागे नहीं। अथवा शीतकी अव्यतामें एक बख्तको धारण करे, और जब शीत भिच्छुन ही न रहे तब अचेस अर्थात् प्रापरणबख्त रहित हो जाय। इस प्रकारसे मुनिकी आत्मा लघुतासे युक्त हो जाती है। इस प्रकारसे बख्तत्याग करनेवाले मुनिको कायबलेष्ठनामक तप भी होता है। ४४५-४४७
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ४४८
- ६ यह सब मगवान् महाश्रीने कहा है; इस लिये मुनि इस सबका अच्छी तरह विचार कर सचेस और अचेस अवस्थाओंमें साम्यभाव ही रखे। ४४८
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ४४९
- ८ जिस मुनिको यह होता है कि मैं रोगातङ्कोंसे अथवा शीतादि या स्त्रीके उपसर्गस स्पृष्ट हो गया हूँ, मैं इनको सह नहीं सकता हूँ, वह प्सुमान् मुनि उस समय अपने अन्तःकरणसे हय और उपादयका विचार कर उन उपसर्गोंका प्रतिकार नहीं करते हैं। ऐसे तपस्वी मुनि स्त्रियोंके उपसर्ग उपस्थित होने पर वैहायस आदि मरणद्वारा शरीर छोड़ देते हैं परन्तु चारित्र्यको नहीं छोड़ते हैं। ऐसे मुनिका वह मरण पालमग्न

नहीं है, अपि तु वह पण्डित मरण ही है। वह मुनि वस्तुतः संसारान्तकारी ही होता है। इस प्रकार वह विमोहका आयतनस्वरूप वैहायस मृत्यु ही उस साधुके हित आदिकी करनेवाली होती है।

४४९-४५६

॥ इति चतुर्थ उद्देश सम्पूर्ण ॥

\*

॥ अथ पञ्चम उद्देश ॥

१ पञ्चम उद्देशका चतुर्थ उद्देशके साथ संबन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया।

४५७-४५८

२ जो भिक्षु, दो वस्त्र और एक पात्र धारण करनेके लिये अभिग्रहसे युक्त है उसे यह भावना नहीं होती कि तीसरे वस्त्रकी याचना करूँगा। वह यथाक्रम एषणीय वस्त्रोंकी याचना करता है, उसकी इतनी ही सामग्री होती है। जब हेमन्त ऋतु वीत जाती है और ग्रीष्म ऋतु आने लगती है तब वे परिजीर्ण वस्त्रोंको छोड़ देवे। अथवा शीत समय वीतने पर भी क्षेत्र, काल और पुरुषस्वभावके कारण यदि शीतवाधा हो तो दोनों वस्त्रोंको धारण करे। शीतकी आशङ्का हो तो अपने पास रखे, त्यागे नहीं। अथवा अवमचेल हों, अथवा एकशाटकधारी होवे, अथवा अचेल हो जावे। इस प्रकारसे मुनिकी आत्मा लाघव गुणसे युक्त हो जाती है। भगवान्ने जो कहा है वह सर्वथा समुचित है, इस प्रकार मुनि सर्वदा भावना करे। यदि मुनिको ऐसा लगे कि रोगादिकोंसे स्पृष्ट हो गया हूँ, निर्बल हूँ, मैं भिक्षाचर्याके लिये गृहस्थके घर जानेमें असमर्थ हूँ, उस समय यदि कोई गृहस्थ मुनिके लिये अशनादिक सामग्रीकी योजना करे तो मुनि उसे अकल्पनीय समझकर कभी भी नहीं स्वीकारे।

४५८-४६१

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।

४ जिस भिक्षु का आचार इस प्रकार का होता है कि—

(१) जिसको किसीने वैयाहृत्य करने की मेरणा नहीं की वह यदि अम्भान होगा और वह आकर मुस म्लान को निवेदित करेगा कि मैं आपकी वैयाहृति करूँगा तो मैं साधर्मिकों द्वारा निर्जरा के लिये की जाती हुई वैयाहृति स्वीकार करूँगा । और अम्भान तथा दूसरों से अप्रेरित मैं ग्लान साधु की वैयाहृति अपने कर्मनिभरा की इच्छा से करूँगा उसके लिये आहारादि की गन्धेपणा करूँगा और दूसरों के लिये हुए आहार का भी स्वीकार करूँगा । (२) दूसरों के लिये आहारादि का भन्वेपण करूँगा और दूसरों के लिये हुए आहार का स्वीकार नहीं करूँगा । (३) दूसरों के लिये आहार का भन्वेपण नहीं करूँगा परन्तु दूसरों के लिये हुए आहार का स्वीकार करूँगा । (४) दूसरों के लिये आहार का भन्वेपण नहीं करूँगा और न दूसरों के लिये हुए आहार का स्वीकार ही करूँगा । इस प्रकार अभिग्रहधारी मुनि अपने अभिग्रह को पालते हुए, सान्त, विरत होकर और अन्तःकरण की वृत्तियोंको बिरुद्ध कर ग्लानावस्थामें मरुप्रत्यास्थान से ही अपने शरीर का परित्याग करे । उस मुनि का यह कालपर्याय ही है । उस का इस प्रकार से शरीर त्याग करना विमोहापतन—महापुरुषकर्तव्य ही है और, हित, सुख, क्षम, निश्चय एवं आनुगामिक ही है । उद्देश समाप्ति ।

४६३-४६८

॥ इति पञ्चम उद्देश ॥

•

॥अथ षष्ठ उद्देश ॥

१ षष्ठ उद्देश का पञ्चम उद्देश के साथ सम्बन्धमतिपादन, प्रथम सूत्र का अवतरण, प्रथमसूत्र और छाया ।

४६९-४७०

विषय

- २ जो भिक्षु एक वस्त्र और एक पात्र के अभिग्रहधारी है, उसको यह भावना नहीं होती कि द्वितीय वस्त्र की याचना करूँगा। वह भिक्षु एषणीय वस्त्र की याचना करे, जो वस्त्र मिले उसी को धारण करे, यावत् ग्रीष्म ऋतु आवे जीर्ण वस्त्र का परित्याग कर देवे। अथवा—एक शाटक धारण करे, अथवा अचेल होजावे। इस प्रकार के मुनि की आत्मा लघुता-गुण से युक्त हो जाती है। उस भिक्षु का इस प्रकार का आचार तप ही है। भगवानने जो कहा है वह सर्वथा समुचित है, इस प्रकार वह भिक्षु सर्वदा भावना करे। ४७०
- ३ द्वितीय सूत्र का अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया। ४७०—४७१
- ४ जिस भिक्षु को यह होता है कि—मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है, मैं भी किसी का नहीं हूँ। वह साधु अपने को अकेला ही समझे। इस प्रकार के साधु की आत्मा लघुता गुण से संपन्न होती है उस साधु की यह भावना तप ही है। भगवानने जो कहा है वह समुचित ही है, ऐसी भावना वह साधु सर्वदा रखे। ४७१—४७२
- ५ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ४७२—४७३
- ६ साधु अथवा साध्वा आहार करते समय आहार को मुँह के दाहिने भागसे बाँये भाग की ओर स्वाद लेते हुए नहाँ ले जावे, उसी प्रकार बाँये से दाहिने की ओर नहीं ले जावे। इस प्रकार स्वाद की भावना से रहित होकर आहार करना तप ही है। भगवानने जो कहा है वह सर्वथा समुचित ही है, ऐसी भावना साधु को सर्वदा करनी चाहिये। ४७३—४७५
- ७ चतुर्थ सूत्र का अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ४७६
- ८ जिस भिक्षु को यह होता है कि—मैं इस समय ग्लान हूँ, इसलिये इस शरीर को पूर्ववत् परिचर्या करने में असमर्थ हूँ।



उस मुनि को चाहिय कि आहार को क्रमिक अल्प करे, आहार को अल्प कर के और कपायों को कुछ कर के अपनी आत्मा को समाहित करते हुए, और संसारजनित कर्म के क्षय करने की भावना रखते हुए इच्छित मरण कर।

४७६-४७९

९ पञ्चम सूत्र का अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया।

४८०

१० ग्रामादि किसी स्थानमें जाकर साधु तृण की याचना करे, तृण लेकर एकान्त स्थानमें जायें। वहाँ कल्पनीय भूमि की प्रतिच्छेदना प्रमार्जना कर के वहाँ पर तृण का संचार करे और फिर इच्छित मरण से शरीर त्याग करे। ऐसा मुनि सत्यवादी, रागद्वेषरहित, तीर्ण, ब्रह्म, जीवाजीवादिपदार्थज्ञ और अपारसंसार का पारगामी होता है। यह मुनि इस इच्छितमरण को सत्य समझकर अनकषिप परीपदोपसर्गों को सह कर, इस जिनशासनमें विश्वस्त हो कातर जनों के असह्य साधुओं के आचार का आचरण करता है। न्यायनिमित्त इच्छित मरण करने वाले साधु का यह परम पण्डित मरण ही है, यावत् वह आनुगामिक है। उद्देश समाप्ति।

४८१-४८७

॥ इति पण्ड उद्देश संपूर्ण ॥

\*

॥ अथ सप्तम उद्देश ॥

१ सप्तम उद्देशका षष्ठ उद्देशके साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया

४८८-४८९

२ ओ प्रतिमापारी साधु वरारहित हो कर संयममें तत्पर रहता है उस मुनिके चिन्तमें यह भावना होती है कि मैं तृणस्पर्श, धीतस्पर्श, उष्णस्पर्श और दशमशकस्पर्श सह सकता हूँ, और भी विषिप स्पर्शों को सह सकता हूँ; परन्तु लज्जाका नहीं छोड़ सकता हूँ। ऐसे साधुको कठिनान्न धारण करना कल्पना है।

४८९-४९१

विषय

- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।
- ४ उस संयममें पराक्रम करते हुए उस अचेल साधुको तृणस्पर्श, शीतस्पर्श, उष्णस्पर्श और दंशमशकस्पर्श प्राप्त होते हैं । वह साधु उन स्पर्शों को तथा अन्य भी विविध रपशों को सहता है । उसकी आत्मा व्याघवयुक्त होती है । उसका यह अचेलत्व तप ही है । उस साधुकी यह भावना सर्वदा होनी चाहिये कि भगवान् ने जो कहा है वह सर्वथा सगत है । ४९१-४९२
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । ४९२-४९३
- ६ जिस भिक्षुको यह होता है कि मैं दूसरे भिक्षुओंके लिये अशन आदि ला कर दूंगा और दूसरोंके लाये हुए अशनादिकको स्वीकार भी करूँगा १ । जिस भिक्षुको यह होता है कि मैं दूसरे भिक्षुओंके लिये अशनादिक ला कर दूंगा और दूसरेके लाये हुए अशनादिकको स्वीकार नहीं करूँगा २ । जिस भिक्षुको यह होता है कि मैं दूसरे भिक्षुओंके लिये अशनादिक लाकर नहीं दूंगा, परन्तु दूसरेके लाये हुए अशनादिकको स्वीकार करूँगा ३ । जिस भिक्षुको यह होता है कि-मैं दूसरे भिक्षुओंके लिये अशनादिक ला कर नहीं दूंगा और न दूसरेके लाये हुए अशनादिकको स्वीकार करूँगा ४ । ये चार प्रकारके अभिग्रहधारी मुनि होते हैं । पांचवे प्रकारके अभिग्रहधारी मुनि होता है । जिसका अभिग्रह इस प्रकारका होता है कि मैं अपनेसे वचे हुए एषणीय अशनादिकद्वारा साधर्मियों की वैयावृत्य करूँगा और साधर्मिकोंके द्वारा भी अपनेसे अवशिष्ट दिये गये एषणीय अशनादिकको स्वीकार करूँगा । ४९४-४९६
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । ४९७
- ८ जिस साधुको यह मालूम हो कि मेरा शरीर अब सशक्त नहीं है वह साधु सथारा करे । उद्देश समाप्ति । ४९८-४९९

॥ इति सप्तम उद्देश ॥

\*

विषय	पृष्ठाङ्क
१ अष्टम उद्देशका सप्तम उद्देशके साथ सम्बन्धमतिपादन, मयम गाथा और उसकी छाया ।	५००
२ बुद्धिमान् भीर मुनि क्रमशः मक्तपरिज्ञा, इक्षितमरण और पादपोषगमनरूप विमोहको प्राप्त कर, उस मक्तपरिज्ञानादिक के औचित्य अनौचित्यको विचार कर समाधिका परिपालन करे ।	५०१-५०२
३ द्वितीय गाथाका अवतरण, द्वितीय गाथा और छाया ।	५०२
४ मुनि बाह्य और आन्तरिक तपक्रम सेवन कर, शरीरके अशक्त हो जाने पर मक्तप्रत्याम्भान आदिमें स किसी एकको स्वीकार कर आहारादिकी गवेषणासे निवृत्त हो जाता है ।	५०२-५०३
५ तृतीय गाथाका अवतरण, तृतीय गाथा और छाया ।	५०३
६ वह मिथु अत्याहारी होता है, कपायादिको कृत्र्म करके दूसरोंके दुर्घर्षणोंको सह सता है । यदि उस मिथुको आहार न मिले तो वह आहारका परित्याग कर देता है ।	५०४-५०५
७ चतुर्थ गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०५
८ संश्लेषना क्रमेणान्ते मुनिको जीवन-मरणकी अभिलाषासे रहित होना चाहिये ।	५०६
९ पांचवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०६
१० संश्लेषनाकारी मुनि निर्जराकी अपेक्षा रस्तता हुआ पश्यस्थ हो कर समाधिकी परिपालना करे, और कपाय एवं शारीरिक उपकरणों को छोड़ कर अन्तःकरणको शुद्ध करे ।	५०६-५०७
११ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०७
१२ अपनी आयुके उपक्रमको जान कर मुनि संश्लेषनाकालके बीचमें ही मक्तप्रत्याम्भान कर ।	५०७-५०८

विषय	पृष्ठाङ्क
१३ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०८
१४ मुनि ग्राम अथवा अरण्यमें प्राणिवर्जित स्थण्डिलका प्रति- लेखन करके वहां पर दर्भका संथारा बिछावे ।	५०८
१५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०९
१६ मुनि आहारको छोड़ कर उस दर्भसंथाराके ऊपर शयन करे, अनुकूल प्रतिकूल सभी परिपहोंको सहे ।	५०९-५१०
१७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५१०
१८ उस शय्या पर उस मुनिके मांसशोणितको कीड़ियां और गृध्र आदि पक्षी खावे तो उनकी हिंसा न करे और न क्षतस्थानका प्रमार्जन ही करे ।	५१०
१९ दशवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५११
२० साधु यह विचार करे कि ये प्राणी मेरे शरीरकी हिंसा करते हैं रत्नत्रयकी तो नहीं करते। ऐसा विचार कर वह उन्हें निवारित न करे। अपनी शय्यासे कभी दूर न जाय और परीषहो- पसर्गोंका सहन करे ।	५११
२१ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया	५१२
२२ बाह्याभ्यन्तर ग्रन्थसे रहित अपनी आत्माको भावित करते हुए मुनि अन्तिमश्वासोच्छ्वासपर्यन्त समाधियुक्त रहे । इस प्रकारका मुनि कर्मके निःशेष होने पर मोक्षगामी होता है और यदि कर्म अवशिष्ट रह जाता है तो देवलोकगामी होता है। गीतार्थ संयमी इस इङ्गित मरणको सम्यक् प्रकारसे स्वीकृत करता है ।	५१२-५१३
२३ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५१३
२४ यह इङ्गितमरणरूप धर्म भगवान् महावीरने कहा है, यह मरण भक्तपरिज्ञामरणसे भिन्न है। इस मरणका अभिलाषी मुनि	

- शरीरके आवश्यक कार्य को छोड़ कर अन्य सभी कार्यों को छोड़े । ५१३-५१४
- २५ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५१४
- २६ वह मुनि दुर्गादि हरितकार्योंसे युक्त स्थानों पर नहीं बैठ, हरितकमपरहित स्थानपर ध्यान कर, आहार छोड़कर जुप चाप सभी परीषद्दोषसगौं को सहे । ५१४-५१५
- २७ चौदहवीं गाथाका अवतरण, गाथा-और छाया । ५१५
- २८ इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण हो जाने पर यदि ग्लानिका अनुभव होने लगे तो मुनि साम्यभावको चरण करे, वह मुनि पर्वतके समान अचल और समाहितचित्त होवे । इस प्रकारका मुनि सर्वदा अनिन्द्य होता है । ५१६
- २९ पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५१६
- ३० वह मुनि उस इच्छितमरणमें शरीरमें पीडा होने पर उस क्षेत्रके अन्दरमें अर्थात् मर्यादित भूमिमें इधर-उधर भ्रमण करे, अथवा शुककाष्ठके समान निबल रहे । ५१७
- ३१ सोलहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५१७
- ३२ इच्छितमरणमें मुनिके शरीरमें जब पीडा होवे तो उसे ओ करना चाहिये उसका ध्यान । ५१८
- ३३ सत्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५१९
- ३४ इस इच्छित मरणको स्वीकार करनेवाला मुनि अपनी इन्द्रियां को विषयोंसे निवृत्त करे, वह प्रतिष्ठेत्वनयोग्य पीठ-फलादिका अन्वेषण करे । ५१९-५२०
- ३५ अठारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५२०
- ३६ प्रतिष्ठेत्वनके अयोग्य पीठफलकादिके ग्रहणसे ज्ञानावरणीयादि कर्मोक्त धन्य होता है, अतः ऐसे पीठफलादिकका

विषय

ग्रहण नहीं करना चाहिये। इङ्कित मरणमें स्थित मुनि अपनी आत्माको काययोग और मनोयोगसे पृथक् करे और सभी परीषहोपसर्गोंको सहन करे।

५२०-५२२

३७ उन्नीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५२२

३८ इङ्कित मरणकी अपेक्षा श्रेष्ठ पादपोषगमन मरणमें जो मुनि स्थित होता है उसके सभी अङ्ग अकट जायें तो भी वह अपने स्थानसे नहीं उठे।

५२२-५२३

३९ बीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५२३

४० यह पादपोषगमन मरण भक्तपरिज्ञा और इङ्कितमरणसे श्रेष्ठ है, अतः मुनि पादपोषगमनमरण स्वीकार करे।

५२४-५२५

४१ इक्कीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५२५

४२ मुनि चतुर्विधाहारको छोडकर अचित्त स्थण्डिलमें पर्वतके समान अप्रकम्प रह कर विहित प्रत्युपेक्षणादि क्रिया करते हुए सभी प्रकारसे शरीर ममत्वका परित्याग करे। यदि उसे परिषहोपसर्गकी बाधा उपस्थित हो तो विचार करे कि यह शरीर जब मेरा नहीं है तो उसमें होनेवाली परिषहोपसर्गकी बाधासे मेरा क्या सम्बन्ध? वह मेरा कुछ भी नहीं विगाड सकती।

५२६

४३ बाईसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५२७

४४ इन परीषहोपसर्गों को तो यावज्जीवन सहना ही है। ऐसा विचार कर शरीर परित्यागनिमित्त, सकल शारीरिक व्यापारसे रहित हो कर पादपोषगमनमरणके विधिज्ञ वह मुनि सभी परीषहोपसर्गों को सहै।

५२७

४५ तेईसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५२७-५२८

विषय	पृष्ठांक
४६ यह मुनि ऐहिक काममोगोंका अनुरागी न बने, और मोक्षके स्वरूपका पर्यालोचन कर इन्द्रादि देवपत्नीकी भी अभिलाषा न करे।	५२८
४७ चौबीसवीं गाथाका अवतरण; गाथा और छाया।	५२९
४८ यदि रामा जीवनपर्यन्त निर्वाहके किय भनादिक प्रदान करे, और कोई देव दिव्य ऋद्धि देनेके लिये मगट होवे तो भी मुनि अपने तपको खण्डित नहीं करे। वह मुनि राज-मदक्ष ऐश्वर्यको और देवप्रदक्ष दिव्य ऋद्धिको आत्मकल्याण के प्रतिकूल ज्ञान कर ज्ञानाचरणीयादि सभी कर्मोंको विनष्ट करे।	५२९-५३०
४९ पचीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।	५३०-५३१
५० पाँचों प्रकारके शब्दादिकोंमें अथवा उनके साधक धर्मोंमें वृद्धि छोड़ कर मुनि पादपोषगमन मरणसे आयुकालका पार गामी होवे। मुनि तितिक्षाको उत्कृष्ट समझ कर मत्कपरिहा, इन्द्रितमरण और पादपोषगमन, इन तीनोंमेंसे किसी एकको अपनी शक्तिक अनुसार स्वीकार करे; क्यों कि ये तीनों ही कर्मनिर्जराकारक हैं। अष्टम छंदेकी समाप्ति।	५३१-५३२
५१ अध्ययनस्य विषयोंका उपसंहार।	५३२-५३५

॥ इति अष्टम अध्ययन ॥

\*

॥ अथ नवम अध्ययन ॥

( प्रथम उद्देश )

- १ नवम अध्ययनका पूर्वोक्त अध्ययनोंक साथ सम्बन्धमतिपादन, 'उपधानभुत' शब्दकी व्याख्या, अध्ययनके चारों उद्देशोंमें आये हुए विषयोंका दिग्दर्शन।

- २ प्रथम गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५३८
- ३ भगवान् महावीरस्वामीके चरित्रवर्णन का प्रस्ताव । भगवान् महावीरस्वामी उत्थित हो प्रव्रज्याकालको जान कर हेमन्त ऋतुमें प्रव्रजित हुए, और प्रव्रज्या ग्रहण कर तुरन्त ही वहां से विहार किये । ५३८-५३९
- ४ दूसरी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५३९
- ५ भगवान्ने जो वस्त्र धारण किया था वह तीर्थङ्करपरम्पराके रक्षार्थ; नहीं कि हेमन्तऋतुमें शरीरप्रच्छादन निमित्त । ५४०-५४१
- ६ तीसरी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४१
- ७ भगवान्के शरीरपर भ्रमरादि प्राणी कुछ अधिक चार महीनों तक चन्दनादिकी गन्धसे आकृष्ट हो कर विचरते थे और रक्तमांसकी अभिलाषासे उनके शरीरको डसते थे । ५४२
- ८ चौथी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४३
- ९ भगवान्ने एक वर्षसे कुछ अधिक काल तक वस्त्र धारण किया, उसके बाद वस्त्र त्याग कर वे अचेल हो गये । ५४२-५४३
- १० पांचवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४३
- ११ भगवान् जब रास्तामें विहार करते थे तो बालकगण उन्हें देख कर धूलि-पत्थर आदिका प्रक्षेप करते थे, और उनको देखनेके लिये दूसरे बालकोंको भी बुलाते थे । ५४३-५४४
- १२ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४४
- १३ भगवान् जब किसी वासस्थानमें विराजते थे, जहां कि स्त्री पुरुष आदि सभी रात्रिवासके लिये ठहरते थे। वहां किसी स्त्रीद्वारा प्रार्थित होने पर भी भगवान् उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं करते, अपि तु संयम मार्ग में अपनी आत्माको स्थापित कर ध्यान करते थे । ५४४-५४५



पिपय

पृष्ठाङ्क

- १४ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४५
- १५ गृहस्थलोग भगवान्के पास एकत्रित होते तो वे उनकी ओर लक्ष न दे कर अपने ध्यानमें ही मग्न रहते । यदि वे गृहस्थ उनसे कुछ पूछते तो चुपचाप वहांसे फल देते । वे ध्यानसे कमी भी विचस्मित नहीं होते । ५४६
- १६ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४६
- १७ भगवान्को कोई अभिवादन करता था तो वे उससे प्रसन्नता नहीं प्रकट करते थे, और यदि कोई अभिवादन न करे तो उस पर झुड़ भी नहीं होते थे । अनार्य देशोंमें भगवान्को यदि कोई ताड़न आदि करता तो भी उनका मास कल्पित नहीं होता । ५४६-५४७
- १८ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४७
- १९ भगवान् महाबीरस्वामी कठोर वचनोंको सहते थे, वृत्त्य, गीत, दण्डयुद्ध और मृष्टियुद्ध आदिको सुनने और देखनेके लिये उन्हें झुंझझुंझता नहीं होती । ५४८
- २० दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४८
- २१ भगवान्ने कमी कमी परस्पर कामकाममें संलग्न स्त्रियोंको देखा, परन्तु उन्हें राग नहीं हुआ । भगवान्ने समयकी आराधनानिमित्त परीपद्मोपसर्गों को कुछ भी नहीं गिना । ५४८-५४९
- २२ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४९
- २३ भगवान् साधिक दो वर्ष सचिच ब्रह्मका परित्याग कर एकद्व माकना माते और क्रोध छोड़ते हुए, सम्यक्त्वमाधना एवं आन्तिसे युक्त हो कर प्रज्ज्या ग्रहण की । ५४९-५५०
- २४ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५०

विषय	पृष्ठाङ्क
२५ भगवान् षड्जीवनिकायोंके स्वरूपको जान कर उनके आरम्भ का परिहार करते हुए विचरते थे ।	५६०
२६ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५१
२७ 'ये पृथिवी आदि षड्जीवनिकाय सचित्त हैं' । ऐसा विचार कर उनके स्वरूप और भेद-प्रभेदोंको जान कर उनके आरम्भ को परिवर्जित करके विचरते थे ।	५५१
२८ चौदहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५१-५५२
२९ स्थावर जीव त्रस हो कर उत्पन्न होते हैं, और त्रस जीव स्थावर हो कर । अथवा सभी जीव अपने उपाजित कर्मानुसार सभी योनियोंमें उत्पन्न होते हैं ।	५५२-५५३
३० पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५३
३१ भगवानने इस प्रकार समझा कि ये मोहयुक्त प्राणी द्रव्य और भाव उपधिसे युक्त हो कर कर्मके प्रभावसे क्लेशका अनुभव करते हैं । इस लिये भगवान् ने सभी प्रकारके कर्मों का परित्याग कर दिया ।	५५३
३२ सोलहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५४
३३ भगवानने दोनों प्रकारके कर्मोंको जानकर और आदानस्रोत, अतिपातस्रोत और दुष्प्रणिहित मनोवाक्यायको कर्मबन्धका कारण जान कर संयमको पाला ।	५५४-५५५
३४ सत्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५५
३५ भगवानने हिंसाको सर्वथा छोड़ कर अहिंसाका उपदेश दिया उन्होंने स्त्रियोंको सकल कर्मबन्धका मूल समझा, इस प्रकार उन भगवान्ने संसारके यथावस्थित स्वरूपको देखा ।	५५५
३६ अठारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५५६
३७ वे भगवान् आधाकर्मादिदोषयुक्त आहारादिको ज्ञानावरणीयादि कर्मोंका बन्ध समझा, इसीलिये उन्होंने उसका सेवन	

## विषय

पृष्ठाङ्क

नहीं किया। तथा मगवान्ने पापकारक स्तोत्र अन्नादिकको स्वीकार नहीं करते हुए मासुक आहारका सेवन किया।

५५६

३८ उक्तीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५५६-५५७

३९ उन मगवान्ने दूसरोंके वस्त्रका कमी भी सेवन नहीं किया, दूसरेके पाश्र्वमें भी उन्होंने भोजन नहीं किया। मगवान् अपमानकी गणना नहीं करके आहार धननेके स्थानमें आहारके निमित्त जात थे।

५५७

४० बीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५५७

४१ मगवान् अन्नपानके मात्राज्ञ थे, वे कमी भी मधुरादिरसोंमें आसक्त नहीं हुए। मगवान् सर्वदा अपतिष्ठ रहे। उन्होंने ने आखे कर्मी भी, नहीं धोयीं, और न उन्होंने ने कमी शरीर को स्वच्छभाया।

५५८

४२ इक्कीसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया।

५५९

४३ मगवान् मार्ग में चलते हुए न अपनी दृष्टि को तिरछी करते थे और न पीछे की ओर वे दृष्टिपात करत थे, कोई कुछ पूछता था तो कोई उत्तर भी नहीं दते थे, किन्तु आगे की ओर अपने शरीरममाण भूमि को दसते हुए यतनापूर्वक विहार करते थे।

५५९

४४ चाईसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया।

५५९

४५ मार्गमें चलत हुए मगवान् महावीर शिथिल प्राणुमें पशु छोड़ कर, दोनों बाहुओं को कन्धों पर नहीं रख कर किन्तु दोनों बाहुओं को पसार कर परीपह और उपसर्गों को सहने के लिये यत्न करते थे।

५६०

४६ तेईसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया।

५६०

४७ मगवान्ने इस प्रकार का आचार का सेवन किया। उन्होंने यह आचार इसलिय पाला कि दूसरे मुनि भी इसी तरह आचारकापावन करे। उद्देश समाप्ति।

५६०-५६१

॥ इति मयम उद्देश संपूर्ण ॥

## ॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
१ द्वितीय उद्देश का प्रथम उद्देश के साथ संबन्धप्रतिपादन, प्रथम गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६२
२ विहार में भगवानने जिन आसनों को, शय्याओं को सेवित किया उन्हें कहें—इस प्रकार जम्बू स्वामी का प्रश्न ।	५६२
३ द्वितीय गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६३
४ सुधर्मा स्वामी का उत्तर—भगवानने विहारकालमें शून्य गृहोंमें, सभाओंमें, प्रपाशालाओंमें, पण्यशालाओंमें, कारखानोंमें, पुआल की बनी कुट्टियोंमें निवास किया ।	५६३-५६४
५ तीसरी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६४
६ भगवानने कभी धर्मशालाओंमें, उद्यान स्थित गृहोंमें, नगर के मध्यभागमें, श्मशानमें, शून्यगृहमें, वृक्षमूलमें निवास किया ।	५६४
७ चौथी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६५
८ भगवानने इस प्रकारके आवासोंमें कुछ अधिक तेरह वर्षों तक निवास किया, और वहाँ पर निद्रादिप्रमाद और विस्रोत-सिका से रहित भगवान् ध्यानावस्थामें रहे ।	५६५
९ पाँचवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६६
१० भगवान् महावीर स्वामी अधिक सोते नहीं थे, यदि निद्रा आने लगती थी तो भगवान् सावधान होकर जागते रहते थे, अप्रित्तिज्ञ भगवान् छद्मस्थावस्थामें रात्रि के अन्तिम प्रहरमें अन्तर्मुहूर्त्तमात्र शयन करते थे ।	५६६
११ छठी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६६
१२ भगवान् महावीरस्वामी निद्राके दोषोंको अच्छी तरह जानते हुए निद्रा आनेके समय उठ कर, बाहर निकल कर, एक मुहूर्त्त भ्रमण कर फिर ध्यानमें बैठ जाते थे ।	५६६-५६७

विषय	पृष्ठाङ्क
१३ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५६७
१४ आश्रयस्थानोंमें भगवान्को भयकर, अनक प्रकारके उपसर्ग हुए और साँप, नेबले तथा गीध आदिचे भी उपसर्ग हुए ।	५६७
१५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५६७-५६८
१६ चोर व्यभिचारी भादि, शक्तिधारी प्रामरसक, व्यभिचारिणी स्त्रियाँ और अन्य पुरुष लोग भगवान्को उपसर्ग करत थे ।	५६८-५६९
१७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५६९
१८ भगवान् ऐहलौकिक पारलौकिक अनेक प्रकारके उपसर्गों का सहते थे, और अनेक प्रकारके सुरभि-दुरभिमन्थों को भी सहत थे ।	५६९
१९ दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५७०
२० भगवान् पांच समितियोंसे युक्त होकर अनेक प्रकारके स्वर्गोंको सहन क्रिय, अल्पमापी भगवान् सयममें अरति और विषयानन्दमें रति को दूर कर सयमके आराधनमें प्रवृत्त हुए ।	५७०
२१ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५७०
२२ शून्य घरोंमें अथवा निर्जन प्रदेशोंमें लोग भगवान्से विविध प्रश्न पूछते थे, परन्तु भगवान् मौन रहते थे । कभी कभी कोई कोई जार पुरुष आदि आ कर भगवान्से पूछते थे, परन्तु भगवान् मौन रहते थे, तब वे क्रुद्ध हो कर भगवान् को दण्ड सृष्टि आदिसे ताडते थे; लेकिन भगवान् निर्दिक्कार हो कर सब सह लेते थे ।	५७१
२३ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५७२
२४ भगवान्से कभी कोई पूछता—‘तुम कौन हो?’ तब भगवान् कहते हैं—‘मिष्टु हूँ । तब वे भगवान् को निकल जानेके लिये कहते तब भगवान् धाँसे चले जाते । यदि नहीं जानेको कहते तो भगवान् कपाययुक्त उन मनुष्योंके प्रति समभावसे मौन होकर धर्मध्यानमें संलग्न रहते ।	५७२
२५ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५७३

विषय

- २६ शिशिर ऋतुमें पवनके चलने पर कितनेक अनगार कांपते थे, कितनेक अनगार उस हिमवातसे बचनेके लिये निर्वात स्थानकी खोज करते थे । ५७३
- २७ चौदहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७३
- २८ उस हिमऋतुमें कितनेक अनगार शीतनिवारणके लिये संघाटी ओढते थे । परतीर्थिक तापसादि धुनी जला कर शीतचारण करते थे और गृहस्थ लोग विविध प्रकारके वस्त्र धारण करते थे । ५७४
- २९ पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७४-५७५
- ३० भगवान् महावीरने उस शिशिर ऋतुके हिमवातमें भी अनावृत स्थानमें ही रह कर हिमस्पर्शको समभावसे सहते थे । ५७५
- ३१ सोलहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७६
- ३२ भगवान् महावीरने इस प्रकारके दुःसह शीतोंको अनेकवार सहा । भगवान्का उद्देश इसमें यह था कि दूसरे साधु भी इसी प्रकार शीतका सहन करें । उद्देश समाप्ति । ५७६-५७७

॥इति द्वितीय उद्देश संपूर्ण॥

\*

॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

- १ तृतीय उद्देशका द्वितीय उद्देशके साथ सम्बन्धकथन, प्रथम गाथाको अवतरण, गाथा और छाया । ५७८
- २ भगवान् सर्वदा सभी प्रकारके स्पर्शों को सहते थे । ५७८-५७९
- ३ द्वितीय गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७९
- ४ भगवान्ने दुश्चर लाढ देशकी वज्रभूमि और शुभ्रभूमिमें विहार किया । वहां अन्तप्रान्त शय्या आदिका उन्होंने येनन किया । ५-५८०

विषय	पृष्ठाङ्क
५ तृतीय गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५८०
६ छाह देशमें वहाँके लोगोंने भगवान् को बहुत उपसर्ग किये । किन्तुमेक तो भगवान् की ताडना करते थे, और कुछे भगवान् को काटते थे और गिरा कर उनके ऊपर पद बैठते थे ।	५८०-५८१
७ चौथी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५८१
८ बहुत थोड़े ऐसे लोग थे जो हिंसक मनुष्योंको और काटते हुए कुत्तों को रोकते थे; अधिकतर तो ऐसे ही मनुष्य थे जो भगवान् को ताडन करके उनके ऊपर कुत्तों को हूँकाते थे ।	५८१
९ पाँचवीं गाथाका अवतरण, और छाया ।	५८२
१० छाह देशकी वज्रभूमिके लोग सुच्छअन्नमोजी और क्रूर स्वभावके थे । वहाँ पर अन्यतैर्यिक भ्रमण छाठी और नालिका ले कर बिहार करते थे ।	५८२-५८४
११ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५८४
१२ उस छाहदेशमें छाठी और नालिका ले कर यद्यपि अन्य तैर्यिक भ्रमण बिहार करते थे तो भी उन्हें कुछे काट लेते थे । यह छाह वस्तुतः बड़ा ही दुश्चर था ।	५८५
सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५८५
१४ भगवान् छाहदेशकी उस अनार्य भूमिमें भी छंड़े आदिके विना ही बिचरण करते हुए समी प्रकारके उपसर्गों को सहे ।	५८६
१५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५८७
१६ सप्रामक अग्रभागमें हाथी जैसे क्षत्रुसेनाको नीत कर उमक पारगामी होता है उसी प्रकार भगवान् भी परीपदोपसर्गोंको नीत कर उनक पारगामी हुए । बिहार करते हुए भगवान्	

- कभी २ ग्रामको प्राप्त नहीं करते थे अर्थात् ग्रामसे दूर अरण्य  
आदिमें स्थित मार्गपर होते उसी समय ग्रामवासी अनार्य-  
लोक आकर भगवानको परीपहोपसर्ग किये । ५८७
- १७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८८
- १८ भगवान् विहार करते हुए ग्रामके समीप पहुंचते थे कि  
ग्रामवासी लोग आकर उन्हें दण्डे आदिसे ताड़ित करते  
थे और कहते थे कि यहांसे चले जाओ । ५८८
- १९ दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८९
- २० अनार्य लोग भगवान् को दण्डे आदिसे आहत कर हल्ला  
मचाते थे । ५८९
- २१ ग्यारहवां गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८९
- २२ भगवान्के शरीरमें जहां कहीं घाव था वहीं ये अनार्य लोग  
नोंचते थे और भगवान् के ऊपर धूलि डालते थे । ५८९-५९०
- २३ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५९०
- २४ भगवान्को कितनेक अनार्य ऊपर उठाकर पटक देते थे,  
कितनेक उन्हे आसनसे गिरा देते थे; इन सभी उपसर्गोंको  
कायोत्सर्गस्थित धर्मध्यानलीन भगवान्ने समतापूर्वक सहा । ५९०-५९१
- २५ तेरहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५९१
- २६ संग्राम के अग्रभागमें शूर वीर पुरुषके समान भगवान् वहाँ  
पर मुख मोड़े विना आगे आगे विहार करते थे । ५९१-५९२
- २७ चौदहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५९२-५९३
- २८ भगवान् महावीरने इस प्रकार के उपसर्ग परीपहों को इसलिये  
सहा कि दूसरे मुनि भी मेरे देखादेखी उपसर्ग-परीपहों के  
सहनेमें दृढ रहें । उद्देश समाप्ति ।

॥ इति तृतीय उद्देश संपूर्ण ॥



- ३० मायारहित भगवान् स्वयमेव संसारका स्वल्प ज्ञानकर स्वयं सघुद्ध हो तीर्थप्रवर्धन के लिये उद्यत हुए । भगवान् कर्मों के क्षयोपशम, उपशम और क्षय से स्मृद्भूत आत्मशोभि द्वारा मनोवाक्काययोग को स्थिर रख कर, कपायाग्नि के प्रक्षमन से शीतीभूत होकर यात्रज्जीव पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त रहे । ६१४-६१६
- ३१ सप्रहर्षी गाथा का अन्तरण, गाथा और छाया । ६१६
- ३२ भगवानने इस प्रकार के आचार का धारंवार पालन किया । भगवानने यह आचार इसलिये पाखा कि दूसरे भी साधु मेरे देखादेखी इसी प्रकार से आचार का पाखन करे । चदेश समाप्ति । ६१६
- ३३ नवम अध्ययन का उपसंहार और शाल्मशस्ति । ६१७-६१९

॥ इति विषयानुक्रमणिका सम्पूर्ण ॥



## ॥ अथाचाराङ्गसूत्रस्य लोकसारनामकं पञ्चममध्ययनम् ॥

गतं चतुर्थमध्ययनं साम्प्रतं पञ्चममध्ययनं प्रारभ्यते । चतुर्थाध्ययने सम्यक्त्वं, तदन्तर्गतं ज्ञानं च निरूपितं, सम्यक्त्वज्ञानकारणजन्यं चारित्रं, तदेव प्रधानं मोक्ष-कारणमतस्तदेव लोके सारभूतमिति लोकसाराख्यमिदमध्ययनम् ; तथा हि—लोकस्य सारो धर्मो, धर्मस्य सारो ज्ञानं, ज्ञानस्य सारश्चारित्रं, तस्य च सारो मोक्ष इत्यस्य प्रतिपादनात्, तेन लोकसारतया चाग्निमेवात्र प्रतिपादयितव्यमस्ति । इहाध्ययनार्थाधिकारस्तु 'लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः' इति । उद्देशार्थाधिकारो यथा—

### ॥ आचाराङ्गसूत्र का लोकसारनामक पांचवां अध्ययन ॥

चतुर्थ अध्ययन प्रतिपादित किया जा चुका है । अब यहां पंचम अध्ययनका व्याख्यान प्रारम्भ होता है । चतुर्थ अध्ययनमें सम्यक्त्व एवं उस के अन्तर्गत ज्ञानका निरूपण किया है । इस पाँचवें अध्ययन का नाम 'लोकसार' है । लोकमें सारभूत चारित्र है । वह चारित्र सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे होना है, अर्थात् इनके सहित होनेवाला चारित्र ही सम्यक्चारित्र है । वही मोक्षका प्रधान कारण माना गया है । लोकका सार धर्म, धर्म का सार ज्ञान, ज्ञान का सार चारित्र और चारित्रका सार मोक्ष है । इस कारण लोकमें सारभूत होनेसे चारित्रका ही वर्णन इस अध्ययनमें किया जायगा । "लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः" अर्थात् चारित्र ही लोकका सार है, ऐसा विचारना चाहिये । इस प्रकार यहां पर यह अध्ययनका अर्थाधिकार है । उद्देश का अर्थाधिकार इस प्रकार है—

### आचारांगसूत्रनुं 'लोकसार' नामनुं पांचमं अध्ययन.

योऽथु अध्ययनं कृतेवाधं गयु छे उवे अर्हीथी पांचमा अध्ययनने प्रारभ्यथाय छे. योऽथा अध्ययनमा सम्यक्त्व अने तेना अतर्गत ज्ञाननी समज्जु आप-वामा आवी छे आ पांचमा अध्ययननु नाम "लोकसार" छे लोकमा सारभूत चारित्र छे ते चारित्र सम्यग्दर्शन अने सम्यग्ज्ञानथी थाय छे तात्पर्यं छे तेनाथी थनुं चारित्र तेज सम्यक् चारित्र छे तेने ज मोक्षनु प्रधान कारण मानवामा आवे छे. लोकने सार धर्म, धर्मने सार ज्ञान, ज्ञानने सार चारित्र अने चारित्रने सार मोक्ष छे आ कारणथी लोकमा सारभूत होवाथी चारित्रनु ज वर्णन आ अध्ययनमा करवामा आवेशे "लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः" अर्थात् चारित्र ज लोकने सार छे अमे मानवुं जेठअे आ अर्ही अध्ययनने अर्थाधिकार छे. उद्देशने अर्थाधिकार आ प्रमाणे छे —

## ॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
१ चतुर्थ उद्देश का तृतीय उद्देश के साथ संबन्धकथन, प्रथम गाथा का अन्वतरण, गाथा और छाया ।	५९४
२ भगवान् अवमोदरिका तप करते थे और कमी भी चिकित्सा (इलाज) नहीं करवाते थे ।	५९४-५९५
३ दूसरी गाथा का अन्वतरण, गाथा और छाया ।	५९६
४ भगवान् कमी भी रेचन और घमनका औषध नहीं लिया और गात्राभ्यञ्जन, सवाहन और दन्तप्रहासन नहीं किये ।	५९६-५९७
५ तीसरी गाथा का अन्वतरण, गाथा और छाया ।	५९९
६ भगवान् शय्यादि विषयों से निवृत्त, अहिंसक और श्लथ मापी होकर विचरते थे और क्षीतकाष्ठमें हल या लता मण्डप की छायामें बैठ कर धर्मध्यान प्याते थे ।	६००
७ चौथी गाथा का अन्वतरण, गाथा और छाया ।	६००
८ भगवान् ग्रीष्म ऋतुमें सूर्याभिमुख उत्कृष्टकासन (उत्कृष्ट आसन) से बैठ कर सूर्यकी चापना लेते थे, और नीरस ओदन, बेरका चूर्ण, कुन्माप आदि आदि से शरीरनिर्वाह करते थे ।	६००
९ पाँचवीं गाथा का अन्वतरण, गाथा और छाया ।	६०१
१० भगवान् इन नीरस ओदनादिकों को सेवित करते हुए आठ मास विताय, कमी अर्द्धमासिक चतुर्विंशतिवारस्याग्रूप तप किया ।	६०१
११ छठी गाथा का अन्वतरण, गाथा और छाया ।	६०१-६०२
१२ कमी कमी भगवान् अग्राई महीने तक, तो कमी कमी छ महीने तक पानी भी नहीं लेते हुए चोचिहार तपस्या की, और पारणा के दिनमें अन्त प्रान्त ओदनादि से पारणा किये ।	६०२
१३ सातवीं गाथाका अन्वतरण, गाथा और छाया ।	६०२
१४ भगवान् संप्रमत्समाधिको दम्बते हुए छठ, अष्टम, दशम और द्वादश तपका पारणा करते थे ।	६०२

विषय	पृष्ठाङ्क
१५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०३
१६ भगवानने पापकर्मोंका तीन करणतीन योगसे परित्याग किया ।	६०३
१७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०३
१८ भगवान् ग्राम और नगरमें प्रवेश करके उद्गमदोष और उत्पादनादोष रहित शुद्ध आहारको ग्रासैपणादोषका परिवर्जन करते हुए ग्रहण करते थे ।	६०३-६०४
१९ दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०४
२० भगवान् कौवे और कबूतर आदि पक्षियोंको पृथ्वी पर आहारके निमित्त स्थित देख कर उन्हें वाधा नहीं हो, इस प्रकारसे मार्गके एक ओरसे धीरे धीरे चलते हुए आहारकी गवेषणा करते थे ।	६०४-६०५
२१ ग्यारहवीं और बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०५
२२ ब्राह्मणों या शाक्यादि श्रमणों या अन्य जीवोंकी वृत्तिच्छेद नहीं हो; इस प्रकारसे आहारका अन्वेषण करते थे ।	६०५-६०६
२३ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०६
२४ भगवानको निर्दोष आहार जैसा-कैसा अन्त प्रान्त भी मिलता था उसीको ले कर संयममें स्थित रहते थे, और यदि नहाँ मिलता था तो वे किसीकी निन्दा नहीं करते थे ।	६०६-६०८
२५ चौदहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०८
२६ उत्कृष्टकादि आसनस्थित भगवान् निर्विकार हो कर ध्यान करते थे ।	६०८-६०९
२७ पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०९
२८ भगवान् कषाय और गृद्धि और ममत्वरहित हो कर ध्यान ध्याते थे । भगवान्ने छद्मस्थावस्थामें भी कभी प्रमाद नहीं किया ।	६०९-६१३
२९ सोलहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६१४

विषय

- ३० मायारहित भगवान् स्वयमेव ससारका स्वरूप जानकर स्वयं सघुद्ध हो तीर्थप्रवर्चन के लिये उद्यत हुए । भगवान् कर्मों के क्षयोपशम, उपशम और क्षय से समुद्भूत आत्मशोषि द्वारा मनोवाक्काययोग को स्थिर रख कर, कपायाग्नि के प्रथमन से शीतीभूत होकर यावज्जीव पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त रहे । ६१४-६१६
- ३१ सत्रहवीं गाथा का अदतरण, गाथा और छाया । ६१६
- ३२ भगवानने इस प्रकार के आचार का धारंवार पालन किया । भगवानने यह आचार इसलिये पाछा कि दूसरे भी साधु मेरे देखादेखी इसी प्रकार से आचार का पालन करे । विशेष समाप्ति । ६१६
- ३३ नवम अध्यायन का उपसंहार और शाल्लमशस्ति । ६१७-६१९

॥ इति विषयानुक्रमणिका सम्पूर्ण ॥



## ॥ अथाचाराङ्गसूत्रस्य लोकसारनामकं पञ्चममध्ययनम् ॥

गतं चतुर्थमध्ययनं साम्प्रतं पञ्चममध्ययनं प्रारभ्यते । चतुर्थमध्ययने सम्यक्त्वं, तदन्तर्गतं ज्ञानं च निरूपितं, सम्यक्त्वज्ञानकारणजन्यं चारित्रं, तदेव प्रधानं मोक्ष-कारणमतस्तदेव लोके सारभूतमिति लोकसाराख्यमिदमध्ययनम्; तथा हि-लोकस्य सारो धर्मो, धर्मस्य सारो ज्ञानं, ज्ञानस्य सारश्चारित्रं, तस्य च सारो मोक्ष इत्यस्य प्रतिपादनात्, तेन लोकसारतया चाग्निमेवात्र प्रतिपादयितव्यमस्ति । इहामध्ययनार्थाधिकारस्तु 'लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः' इति । उद्देशार्थाधिकारो यथा—

### ॥ आचाराङ्गसूत्र का लोकसारनामक पांचवां अध्ययन ॥

चतुर्थ अध्ययन प्रतिपादित किया जा चुका है । अब यहां पंचम अध्ययनका व्याख्यान प्रारम्भ होता है । चतुर्थ अध्ययनमें सम्यक्त्व एवं उस के अन्तर्गत ज्ञानका निरूपण किया है । इस पाँचवें अध्ययन का नाम 'लोकसार' है । लोकमें सारभूत चारित्र है । वह चारित्र सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे होना है, अर्थात् इनके सहित होनेवाला चारित्र ही सम्यक्चारित्र है । वही मोक्षका प्रधान कारण माना गया है । लोकका सार धर्म, धर्म का सार ज्ञान, ज्ञान का सार चारित्र और चारित्रका सार मोक्ष है । इस कारण लोकमें सारभूत होनेसे चारित्रका ही वर्णन इस अध्ययनमें किया जायगा । "लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः" अर्थात् चारित्र ही लोकका सार है, ऐसा विचारना चाहिये । इस प्रकार यहां पर यह अध्ययनका अर्थाधिकार है । उद्देश का अर्थाधिकार इस प्रकार है—

### आचारान्गसूत्रनुं 'लोकसार' नामनुं पांचमं अध्ययन.

योऽथ अध्ययनं कर्तव्यं गच्छेत् । इदं अर्थाधिकारं पांचमं अध्ययनं प्रारंभ्यते । यथा अध्ययनमा सम्यक्त्वं अने तेना अन्तर्गतं ज्ञानं सम्यक्त्वं आप-वामा आवी छे आ पांचमं अध्ययनं नाम "लोकसार" छे लोकमा सारभूत चारित्र छे ते चारित्र सम्यग्दर्शन अने सम्यग्ज्ञानथी थाय छे तात्पर्यं के तेनाथी थतुं चारित्र तेन सम्यक् चारित्र छे तेने न मोक्षतु प्रधान कारण मानवामा आवे छे लोकने सार धर्म, धर्मने सार ज्ञान, ज्ञानने सार चारित्र अने चारित्रने सार मोक्ष छे आ कारणेथी लोकमा सारभूत होवाथी चारित्रनु न वरुण आ अध्ययनमा कर्तव्यमा आवेशे "लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः" अर्थात् चारित्र न लोकने सार छे अने मानु जेथे अने अर्थाधिकार अध्ययनने अर्थाधिकार छे उद्देशने अर्थाधिकार आ प्रमाणे छे —

પ્રથમ ઉદ્દેશે-હિંસાસમારમ્માધિકાર પ્રથમ, યદ્યે હિંસાદય સાનયધ્યાપારા ચિધીયન્તે, તેપાં વિપયાણામધિકારો ઢિતીયઃ, વિપયાર્થમેવ વિહરમ્ મુનિર્ભવતીતિ ચ તૃતીય इत्यधिकारत्रय प्रतिपाद्यते ।

દ્વિતીય ચ-‘હિંસાદિતો વિપયાદિતોઽપ્રશસ્તૈકચર્યાંતો ના વિરતો મુનિર્ભવતી’-તિ ચ્ચિત્તમ્ ।

તૃતીય-एष विरक्त एव मुनिरपरिग्रहो निर्विण्णकाममोगम्भ भवतीति इक्षितम् ।

ચતુર્થે-चाऽगीतार्थमुनरेकाकिविहरणे मत्पत्राया भवन्तीति कथितम् ।

इस अध्ययन के छह उद्देश हैं, इन में-(१) प्रथम उद्देशमें प्रथम-हिंसासमाहारमाधिकार, द्वितीय-जिनके लिये हिंसा आदि साधन व्यापार किये जाते हैं उन विषयों का अधिकार, तृतीय-विषयों के लिये ही विचारण करनेवाला मुनि नहीं होता है, इसका अधिकार; इस प्रकार तीन अधिकार बतलाये गये हैं ।

(२) द्वितीय उद्देशमें यह बतलाया गया है कि-हिंसादि से विषयादि से तथा अप्रशस्त एकचर्यासे निवृत्त ही मुनि होता है ।

(३) तृतीय उद्देशमें इस बात की व्याख्या की गई है कि-जो हिंसादि से, विषयादिसे और अप्रशस्त एकचर्यासे निवृत्त है वही मुनि है; वही अपरिग्रही है और वही कामभोगों से विरक्त है ।

(४) चतुर्थ उद्देशमें अगीतार्थ मुनिको एकाकी हो कर चिप्यरना नहीं चाहिये, क्यों कि-इस प्रकार के विहार में उसे अनेक विघ्नबाधाएँ आती हैं, यह विषय बतलाया गया है ।

આ અધ્યયનના છ ઉદ્દેશ છે, તે ઉદ્દેશે પૈકી (૧) પ્રથમ ઉદ્દેશમાં પહેલાં-હિંસાસમાહારમાધિકાર બીજાં-જેને માટે હિંસા આદિ સાધન વ્યાપારો કરવામાં આવે છે તે વિષયોના અધિકાર, ત્રીજાં-વિષયોને માટે જ વિચારણા કરવાવાળા મુનિ નથી થતો-જેનો અધિકાર; આ પ્રકારે ત્રણ અધિકારો કહેવામાં આવેલા છે

(૨) બીજા ઉદ્દેશમાં એ બતાવવામાં આવ્યું છે કે હિંસાદિથી, વિષયાદિથી અને અપ્રશસ્ત એકચર્યાથી સ્થિત જ મુનિ થાય છે

(૩) ત્રીજા ઉદ્દેશમાં એ વાતની વ્યાખ્યા બતાવવામાં આવી છે કે જે હિંસાદિથી વિષયાદિથી અને અપ્રશસ્ત એકચર્યાથી સ્થિત છે, તે જ મુનિ છે, તે જ અપરિગ્રહી છે અને તે જ કામભાગોથી વિરક્ત છે

(૪) ચોથા ઉદ્દેશમાં આ ગીતાર્થ મુનિએ એકલવાયા (એકલવિહારી) છુપનમાં સ્ત્રીને વિચારવું ન જોઈએ, કારણ કે આવા પ્રકારના વિહારમાં તેને ઘણા પ્રકારનાં વિધેષ આવે છે આ વિષય બતાવવામાં આવેલ છે

पञ्चमे च—हृदोपमाः सर्वतो गुप्ता निःसङ्गा ज्ञानदर्शनचारित्रधारिणो विस्रोतसिकारहिताः संयमिनो भवेयुरित्यभिहितम् ।

षष्ठे च—कुदृष्टे रागद्वेषयोश्च परित्यागो वर्णितः ।

अनन्तरसूत्रसम्बन्धो यथा—पूर्वसूत्रे ‘साहिस्सामो नाणं वीराणं सहियाणं’ इत्यादिना चारित्रग्रहणं कथितं, चारित्रपरिपालनार्थमेव चेहाचारित्रवतां दोषा वर्णनीया इति । चारित्रदोषानेवोद्घाटयितुमादिमत्रमाह—‘आवंती’ इत्यादि ।

(५) पंचम उद्देशमें यह बतलाया गया है कि—मुनिको हृदके समान होना चाहिये, मन वचन और काय—गुप्तियुक्त होना चाहिये, स्त्री आदि के संगसे रहित होना चाहिए और सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्रका धारक होना चाहिये, सङ्गायादिक दोषों से रहित होना चाहिये ।

(६) छठे उद्देशके अदर साधुको उन्मार्ग में गमनका और राग एवं द्वेषका त्याग कर देना चाहिये, यह विषय बतलाया गया है ।

इस अध्ययनका अनन्तर सूत्रके साथ इस प्रकार सम्बन्ध है—पूर्व सूत्रमें—“साहिस्सामो नाणं वीराणं सहियाणं” इत्यादि सूत्रसे चारित्रका ग्रहण करना प्रकट किया गया है । जब तक अचारित्री (असंयमी) के दोष यहां नहीं बतलाये जायेंगे तब तक चारित्रका पालन नहीं हो सकता, इस लिये अचारित्रवानके दोषों को प्रकट करने के लिये प्रथम सूत्र कहते हैं—‘आवंती’ इत्यादि ।

(५) पात्रमा उद्देशमां ये अताववामा आव्यु छे के मुनिने हृदसमान होवु नेछंये मन, वचन अने क्रयाना योग स्थिर राअवा नेछंये, स्त्री आदिना सगथी दूर रहेवु नेछंये अने सम्यग्दर्शन ज्ञान अने चारित्रने धारणु करवावाणे होवो नेछंये सशयादिक दोषीथी परे होवो नेछंये

(६) छठ्ठा उद्देशनी अदर साधुने उन्मार्गमा विचरवानो त्याग अने राग तथा द्वेषनो त्याग करयो ते विषय अताववामा आव्यो छे

आ अध्ययननो अनन्तर सूत्रनी साथे ओवा प्रकारनो सअध छे—पूर्व सूत्रमा “साहिस्सामो नाणं वीराणं सहियाणं” इत्यादि सूत्रथी चारित्रने अहणु करवुं तेम अताववामा आवेल छे न्या सुधी अचारित्री ओटले के असयमीना दोष अताववामा न आवे त्या सुधी चारित्रनु पालन अनी शकतु नथी आथी चारित्रना पालन माटे अचारित्रवानोना दोषो प्रकट करवा सूत्रकार प्रथम आ सूत्र कहे छे—“आवंती” इत्यादि.



मूळम्—आवती केयावती लोयसि विप्परामुसति अट्टाप अण  
ट्टाप, एपसु चव विप्परामुसति, गुरू से कामा, तओ से मारते,  
जओ से मारते तओ से दूरे, नेव सो अते नेव सो दूरे ॥ सू० १ ॥

छाया—यावन्तं कियन्तो लोके विपरामुसन्ति अर्थाय अनर्थाय, एतेषु एव  
विपरामुसन्ति, दूरवस्तस्य कामा, तव स मारान्तं, यतं स मारान्तस्तथा स  
दूरे, नेव सोऽन्तर्नैव दूरे ॥ सू० १ ॥

टीका—‘यावन्तं’—इत्यादि। लोके=पञ्चास्तिकायरूपे चतुर्दशरज्ज्वात्मके वा,  
यद्वा—गृहस्यान्यतीर्थिके लोके, यावन्तः=यत्प्रमाणा अतीतानागतवर्तमाना, किय  
न्तः=ये केऽप्यसंयता आरम्भजीविनो मनुजा प्राणिनो वा, ते—अर्थाय=प्रयोजनाय

“ लोयसि ” पञ्चास्तिकायरूप अथवा चौदह राजुप्रमाणवाले लोकमें,  
अथवा गृहस्थ तथा अन्यतीर्थिकरूप लोकमें “ आवती केयावती ” जितने  
जितने भी असयमी—आरम्भजीवी प्राणी हैं वे “ अट्टाप अणट्टाप ”  
किसी प्रयोजन या बिना प्रयोजनसे घस स्यावर जीवोंका “ विप्परा  
मुसति ” अनेक प्रकारसे उपमर्दन (घात) किया करते हैं ।

विशेषार्थ—यह लोक—धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय  
जीवास्तिकाय एषं पुद्गलास्तिकाय, इन पांच अस्तिकायरूप द्रव्योंसे  
समन्वित है और चौदह राजु प्रमाणवाला है । इसमें जितने भी अस  
यमी जीव मृतकालमें हुए हैं, भविष्यत्कालमें होंगे और वर्तमानकालमें  
हैं, वे सब मृतकालमें आरम्भजीवी थे, भविष्यमें आरम्भजीवी होंगे  
और वर्तमानमें भी आरम्भजीवी हैं । आरम्भजीवी प्राणी प्रयोजन या

लोयसि ” पांच अस्तिकायरूप अथवा और राजु प्रमाणवाला लोक  
अथवा गृहस्थ तथा अन्यतीर्थिकरूप लोकमा आवती केयावती ” नेटला  
केटलाक पव्व असयमी अने आरभएवी प्राणीये छे तेव्वा “ अट्टाप अणट्टाप ”  
केटि पव्व प्रयोजन अगर तो प्रयोजन पजर तस स्यावर एवेना “ विपरामुसति ”  
अनेक प्रयोजनी उपमर्दन—घात कर्था करे छे

विशेषार्थ—यह लोक—धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, एषा  
स्तिकाय अने पुद्गलास्तिकाय, आ पांच अस्तिकायरूप द्रव्योंकी समन्वित छे अने  
चौदह राजु प्रमाणवाला छे तेनी अदर नेटला असयमी एवे मृतकालमा घवा छे,  
भविष्यकालमा घरे अने वर्तमानमा छे ते अथा मृतकालमा आरभएवी दत्ता,  
भविष्यमा आरभएवी घरे अने वर्तमानमा आरभएवी छे आरभएवी प्राणी

धर्मार्थकामाद्यर्थाय, पृथगपि धर्मार्थं=देवप्रतिमा-देवमन्दिर-निमित्तम्, अर्थार्थं =कृष्याद्यर्थं, कामार्थं=प्रासादाद्यर्थं च पृथिवीकायं, कृष्यादिसेचनाद्यर्थं जलकायं, पाकाद्यर्थं तैजसकायं, ग्रीष्मसन्तापोपशमनाय तालवृन्तादिना वायुकायम्, एवं पाकाद्यर्थं वनस्पतिकायं, तत्तदाश्रितं त्रसकायं च, एवमनर्थार्थं=निष्प्रयोजनाय-व्यर्थमिति यावत्, कौतुकवशात्पृथिव्यादिकं भृगयाद्यर्थं त्रसांश्च 'विपरामृशन्ति' विविधप्रकारेण परामृशन्ति=उपतापयन्ति-खनित्रकुदालादिशस्त्रेण घातयन्तीत्यर्थः, एवं शेषव्रतेष्वपि 'सत्यव्रते गृपावादिनो विपरामृशन्तो'-त्यादि

विना प्रयोजनसे भी त्रस स्थावर जीवों की हिंसादि कार्यों में प्रवृत्तिशील रहा करते हैं। धर्म अर्थ और काम, इन तीनों पुरुषार्थों की सिद्धिके लिये, अथवा पृथक्-धर्मादि एक एक के लिये ऐसे प्राणियोंसे जीवोंकी हिंसा अवश्य होती रहती है। देवप्रतिमा तथा देवमन्दिर बनवाने, कृष्यादि कार्य करने कराने और महल-मकान आदिके चिनाने में पृथिवीकायिक जीवों की, कृषि आदिके सेचनमें अष्कायिक जीवों की, भोजन आदिके तैयार करने कराने में तैजस्कायिक जीवोंकी, ग्रीष्मजन्य तापके उपशमन करने करानेमें पंखा आदिसे वायुकायकी, तथा शाक पाक आदिके लिये वनस्पति-कायकी एवं पृथिवी आदिके आश्रित त्रसकायिक जीवोंकी विराधना होती है। इसी प्रकार विना प्रयोजन भी-व्यर्थ ही कौतुकवश पृथिव्यादिक को पावडे एवं कुदाली आदि द्वारा खोदनेसे, शिकार आदिके करनेसे पृथिवी-कायिक आदि स्थावर एवं त्रसकायिक जीवोंकी हिंसा होती है।

प्रयोजन अगर कोई पक्ष प्रकारना प्रयोजन अगर त्रस अने स्थावर जिवोनी हिंसाना कार्यमा प्रवृत्तिशील रहा करे छे धर्म अर्थ अने काम आ त्रस पुत्र-पार्थनी सिद्धिने माटे अथवा पृथक्-धर्मादिना कोछ ओकेके कारणने माटे जेवा प्राणीयोथी जिवोनी हिंसा नइर थती रहे छे देवनी प्रतिमा बनावपी, मन्दिर बनाववु, जेतीनु काम करवु के करववु तेमा अने मडेल-मकान बनाववामा पृथ्वी-कायिक जिवोनी, जेती वगेरेना कामकाजमा, अष्कायिक जिवोनी, सोज्जन आदि तैयार करवा करववामा तेजस्कायिक जिवोनी अने गरमीमा ठडी हुवाना उपयोग माटे पथा आदिथी वायुकायिक जिवोनी तेमज पाक आदिने माटे वनस्पतिकायिक जिवोनी अने पृथ्वी आदिना आश्रित त्रसकायिक जिवोनी हिंसा थाय छे तेवी रीते कोछ पक्ष नतना कारण अगर व्यर्थ-कौतुकवश पृथ्वी आदिने पावडा केहाणी धत्यादि द्वारा जोहवाथी, शिकार जेवा कार्यो करवाथी पृथ्वीकायिक आदि स्थावर तथा त्रसकायिक जिवोनी हिंसा थाय छे

યોગ્યમ્ । एतेषु एष=पइजीवनिवायेष्वेव तत्तदुपघातकारिणः मूह्मबादरपर्याप्त-  
 कापर्याप्तकरूपान् जन्तुभिरस्य 'विपरामृशन्ति' वि=विविधप्रकारेण नानायानि  
 भाक्त्वेन परामृशन्ति=उत्पद्यन्ते । यद्वा-एतेषु एष तत्तज्जीवनिवायघातप्राप्तकर्म  
 मिस्तत्त्वेव जीवनिवायषु जन्म लब्ध्वा तेन तेन प्रकारेण विपरामृशन्ति=वि=  
 विविधं दु सं परामृशन्ति=मनुमन्ति ।

ભાવાર્થ—અહિંસા વ્રતકે ન પાલનેસે અસંયમી જીવ, ઘસ એવં  
 સ્થાવરકાયકી કિસી મી પ્રયોજનવશ હિંસા કરતે રહતે હેં । વિના પ્રયો  
 જન કે મી ઉનસે હિંસાકા પરિહાર નહીં હોતા, જૈસે—અપને પાસકી ઘાસ-  
 દૂધ આદિ ઉત્સાહના, મિટી ભોદના આદિ, હમી પ્રકાર રસ્તે ચલતે કિસી  
 વૃક્ષ આદિકી ઢાલી તોડ લેના, લકઢીસે કુસે આદિકો મારના, इत्यादि ।

इसी प्रकार जो सत्यव्रत अशौर्यव्रत आदि नहीं पालते हैं ऐसे  
 मृपावाही और चौरा आदि पाप करनेवाले प्राणी भी घस और स्थावर  
 की हिंसासे बचे नहीं रह सकते, उन्हें भी घस और स्थावरकी हिंसासे  
 होनेवाला पाप लगता ही रहता है, इस प्रकारकी योजना शेषव्रतों में भी  
 कर लेनी चाहिये ।

“ एतेष्वेव विपरामृशन्ति ”—इस प्रकार असंयमी जीव उम र  
 कायकी विराधना या विराधनाजन्य पापकर्मके पक्षसे उम र निष्कायके  
 जीवोंमें उत्पन्न होने हैं ।

ભાવાર્થ—અહિંસાવ્રત ન પાળવાથી અસંયમી જીવ ત્રસ અને સ્થાવરકાયક  
 જીવોની કોઈ પ્રયોજનવાળું વિન્યા કરતા રહે છે, કારણ વગર પણ તેમનાથી હિંસાને  
 ત્યાગ થઈ શકતો નથી જેવા કે આગપાસનું ઘાસ-ધરો વગેરે ઉખાડુ, માટી  
 ખોદવી, આ ઉપરાંત રસ્તે ચાલતા ચાલતાં વૃક્ષ વગરની ઠાળીઓ તો વી,  
 લાકડીથી કુતરા વગેરેને મારવા ઉત્પાદિ

આ પ્રકારે જે સત્યવ્રત, અશૌર્યવ્રત વગેરે પાળતા નથી જેવા છુડા બેઠા  
 અને ચારી આદિ પાપ કરવાવાળા પ્રાણી પણ ત્રસ અને ધ્યાવરની હિંસાથી  
 બની શકતા નથી તેજોને પણ ત્રસ અને સ્થાવરની હિંસાથી થતું પાપ લાગ્ય  
 વગર રહેતું નથી. આ પ્રકારની યોજના શેષવ્રતોના પણ કરી લેવી જોઈએ.

“ एतेष्वेव विपरामृशन्ति ” આ પ્રકારે અસંયમી જીવો તે તે કાયની વિરાધના  
 જન્ય પાપક્રમના બંધથી તે તે કાયોના જીવોમા ઉત્પન્ન થાય છે

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और चादरके भेदसे दो प्रकारके हैं। ये पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। अपनी २ योग्य पर्याप्तियाँ जिन जीवोंकी पूर्ण हो जाती हैं वे पर्याप्त, और जिनकी पूर्ण नहीं होती वे अपर्याप्त कहलाते हैं। ये असंजी ही होते हैं। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय-त्रिकलत्रय जीव तथा सजी पञ्चेन्द्रिय और असंजी पञ्चेन्द्रिय जीव भी पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। त्रिकलेन्द्रिय तीन असंजी ही होते हैं, इनके मन नहीं होता। इस प्रकार ये मानों प्रकारके जीव पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे चौदह प्रकारके होते हैं। जो असंयमी जीव किसी प्रयोजनवश या बिना किसी प्रयोजनके इनकी विराधना करता है वह इन्हीं जीवों में अनेक प्रकार की पर्याप्तियों को धारण करता है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवोंकी न किसी द्वारा घात होती है न इनके द्वारा किसीकी घात होती है, फिर भी मनकी दुष्परिणति से हिंसा होती है। इस कारण टीकाकारने जीवके चौदह भेदोंमें उनका यहां निर्देश किया है। अथवा—इन जीवोंकी जो जिस जिस रूपसे विराधना करता है वह इन जीवों की विराधना से होनेवाले कर्मबन्धके कारण उनही जीवनकार्योंमें जन्म धारण कर उसी उसी प्रकारसे अनेक दुःखों का अनुभव करता है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय एव सूक्ष्म अने चादरना लेहथी जे प्रकारे छे तेओ पर्याप्त अने अपर्याप्त छे पोतपोतानी योग्य पर्याप्ति जे एवोनी संपूर्ण थाय छे ते पर्याप्त अने जेमनी पर्याप्ति पुरी नथी थती ते अपर्याप्त कडेवाय छे आ एवो असंजी डोय छे, आ प्रकारे जे—एन्द्रिय एव, त्रयु—एन्द्रिय एव त्रार—एन्द्रिय एव, आ त्रयु विकलेन्द्रिय एवां, तथा सजि—पञ्चेन्द्रिय अने असंजि—पञ्चेन्द्रिय एव पणु पर्याप्त अने अपर्याप्त डोय छे। विकलेन्द्रिय त्रयु असंजी न डोय छे तेने मन नथी डोयुं आ रीते आ साते प्रकारना एव पर्याप्त अने अपर्याप्तना लेहथी यौह प्रकारे थाय छे, जे असंयमी एवो कोष पणु प्रयोजनवश अथवा तो प्रयोजन वगर तेनी विराधना करे छे तेओ ते एवोमा अनेक प्रकारनी पर्याप्तिये धारणु करे छे सूक्ष्म एकेन्द्रिय एवोनी न कोषनाथी घात थाय छे अने ते एवो द्वारा पणु कोषनी घात थर्छ शकती नथी, तो पणु मात्र मननी दुष्परिणतिथी हिंसा थाय छे, आ कारणु टीकाकारे एवना यौह लेहोमा तेओना अर्डी निर्देश करेस छे अथवा ते एवोनी जे जे प्रकारे विराधना करे छे तेओ ते एवोनी विराधनाथी थनारा कर्मबन्धने कारणु तेज एवनिकायोमा जन्म धारणु करी तेवा तेवा प्रकारे अनेक दुःखोना अनुभव करे छे।

ક્રિમયં સાવધવ્યાપારાન્ કરોતીત્યાદ્ 'ગુરવ' ઇત્યાદિ । તસ્ય=નરકનિગોદાદિ  
 કદુફલાનમિદ્વસ્ય પુંમ કામાઃ શબ્દાદિવિષયયા ગુરવઃ=અનતિક્રમણીયા દુસ્ત્યમતયા  
 શબ્દનિવૃત્તમનર્હાં ઇત્યર્થઃ, યો યસ્પાનતિક્રમણીય સ તસ્ય ગુરુર્મવતીતિ તાત્પર્યમ્,  
 યત શબ્દાદયા દુસ્ત્યજા અવસ્તસ્પ્રાપ્તય પટ્ટકાયોપમર્દનપ્રદૃત સ ગુરુકામઃ પાપ  
 મુપચિનાતીતિ માષ । પાપાપચયાષ્ ક્રિમિત્યાદ્—'તત' ઇત્યાદિ, તતઃ=પદ્મજી  
 ઘનિકાયપાતાનન્તરં ગુરુકામાનન્તરં ચ સ=ગુરુકામી 'મારાન્ત' મરણ મારઃ=

જીવ જન સાવધ વ્યાપારોંકો કર્યો કરતા હૈ ? ઇસકા ઉત્તરરૂપ  
 "ગુરવસ્તસ્ય કામા" યહ શાક્ય સુત્રકાર કહતે હૈ । ઇસમેં બે ષતલાતે હૈ  
 કિ ઉસકી ઇચ્છાઈ પ્રયલ હૈ । હિંસાદિક માષય વ્યાપારોં કે કરને મેં  
 ઉસે શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઈ નિમિત્ત હતી હૈ । જન ઇચ્છાઓંકિ અધીન  
 ષના હુઆ સંસારી જીવ સાવધ વ્યાપારોં કો કરતા હુઆ "નરકનિગો  
 વાદિક કે દુઃખોં કો હમેં મહન કરના પહેગા" ઇસ પ્રકારકે ભયસે  
 નિર્મુક્ત રહા કરતા હૈ । યાત મી સષ હૈ—જિન્હેં માષય વ્યાપારોંકિ ફલ  
 સ્યરૂપ નરકનિગોદાદિક કે ભયકર દુઃખોંકિ સહન કરનેકા કુછ મી  
 વિચાર નહીં હૈ એસે અજ્ઞાની પ્રાણિયોં કી શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઈ  
 યલિષ્ટ હોં તો ઇમ મેં આશ્ચર્યકી વાત હી કોનસી હૈ ? । જન પ્રકારકી  
 ઇચ્છાઓંકા અધીન જીવ ઇસ લિયે હોતા હૈ કિ વહ ઉન્હેં અજ્ઞાનસે  
 દુસ્ત્યજ માન પેઠા હૈ । જિસકા ઓઢના જિસે અષાક્ય હોતા હૈ વહ વિષય  
 ઉસે મારી માલૂમ દેતા હૈ । અજ્ઞાની જીવ શબ્દાદિક વિષયોંકો દુસ્ત્યજ

૯૪ આવા સાવધ વ્યાપાર શા માટે કરે છે ? તેના ઉત્તરમાં " ગુરવસ્તસ્ય  
 કામા" આ વાક્ય સૂત્રકાર કહે છે એમાં તેમણે બતાવ્યું છે કે એમની ઇચ્છાઓ  
 પ્રયત્ન છે હિંસાદિક પાપ કામો કરવામાં તેઓને શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઓ  
 નિમિત્ત બને છે આ ઇચ્છાઓને આધીન બનેલા સંસારી જીવ સાવધ વ્યાપારો  
 કરતા કરતા નરકનિગોદાદિકના દુઃખ અમારે ભોગવવા પડશે આવા પ્રકારના ભયથી  
 નિર્મુક્ત રહ્યા કરે છે વાત પશુ માત્રી છે એઓને પાપાદિ વ્યાપારોના ફળસ્વરૂપ  
 નરકનિગોદાદિકના ભયકર દુઃખો સહન કરવા પડશે એવો જ્ઞાણ નથી એવા  
 અજ્ઞાની પ્રાણિયાની શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઓને સ્પર્શ હોય તો તેમાં કોઈ જ્ઞાન  
 યની વાત નથી. આવી ઇચ્છાઓને આધીન થયેલા જીવો આ વજ્ર શબ્દ તેવું  
 કાર્ય નથી એવું તે અજ્ઞાનથી માની લેતા હોય છે જેવું છેકે જેઓને માટે  
 અશક્ય હોય છે તે વિષય તેઓને મનભારે ઠીલ લાગતા હોય છે અજ્ઞાની  
 શબ્દાદિક વિષયોને નહીં તરજાએજ સમજે છે એવો માટે અસંધિત જીવ

समझते हैं, इस लिये असंयमित जीव बन वे उन २ वैषयिक इच्छाओं की पूर्ति करनेके लिये षट्कायके जीवों का उपमर्दन करते हुए पापों का उपार्जन और वर्धन करते रहते हैं। इस प्रवृत्ति से वे “मारान्तः” जन्म मरण के चक्रसे नहीं छूटते हैं। “मरणं-मारः-आयुषो विनाशः”। ‘मार’ शब्दका अर्थ आयुका अंत-मरण है। वे जीव इसके भीतर ही रहते हैं, इससे परे नहीं होते हैं। परे होनेके साधनों से वे रिक्त-रहित हैं। जन्म-मरण के साधनों में ही जुटे हुए हैं। हिंसादिक पाप कर्मों से अथवा अपनी वैषयिक इच्छाओं के अनुसार प्रवृत्ति करनेसे संसार में किसी भी प्राणीका जन्म-मरणरूप बंधन नहीं छूटा है; न छूटेगा और न छूटता ही है। जन्म-मरणका अभाव उसी जीवको होता है कि जिसका भवान्तरोपग्राहि कर्म नष्ट हो चुका है। इस कर्म को नष्ट करनेके लिये इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनेकी एवं संयमित जीवनके आराधनकी आवश्यकता है। इससे विपरीत प्रवृत्ति में यह कर्म गुरुतर बंधता है, जो जीवको बारंबार जन्म-मरणके चक्रमें डालता रहता है “जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च” यह सिद्धांत है। जिसका जन्म है उसका मरण है जिसका मरण है उसका जन्म है। इसी समस्त अभि-

गनी तेजो ते ते वैषयिक इच्छाओंकी पूर्ति करवा भाटे छ प्रक्षरना लुवोनी हिंसा करे छे अने तेथी थतु पाप उपार्जन करे छे अने तेभा वधारो करता रहे छे. आवी प्रवृत्तिथी तेजो “मारान्त.” जन्म मरणना चक्रमाथी छूटी शकता नथी “मरणं-मारः=आयुषो विनाशः”। ‘मार’ शब्दको अर्थ आयुधनो अत-मरण छे, ते लुव जेनी अहर न रहे छे जेनाथी छूटा पडी शकता नथी, छूटा थवाना साधनोथी ते प्रथ हर छे, जन्म-मरणना साधनो साथे न सकणायेला रहे छे, हिंसादिक पापप्रवृत्तिना कर्मोथी अथवा पोतानी वैषयिक इच्छाओं अनुसार प्रवृत्ति करवाथी स साग्भा कोषपणु प्राणी जन्म-मरणना बंधनथी छूट्या नथी, न तो छूटी शकशे, अने न छूटे छे. जन्म-मरणनो अभाव ते लुवने न थाय छे के जेना भवान्तरोपग्राहि कर्मो नाश थयेला होय छे आ कर्मोना नाश करवा भाटे इन्द्रियो उपर विजय प्राप्त करवानी अने संयमित लुवनतु आराधन करवानी आवश्यकता छे आनाथी विपरीत प्रवृत्तिमा आ कर्म गुरुतर बंधाय छे जे लुवने बारवार जन्म-मरणना चक्रमा लध नय छे “जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च” जे सिद्धांत छे जेनो जन्म छे तेनु मरण छे जेनु मरण छे तेनो जन्म पणु छे आ यथा अभिप्रायने इदमभा राभीने

આયુષો વિનાશસ્તસ્ય અન્ત-મધ્ય एष वरीवर्ति, मृतो हि पुनर्मवान्तरોपप्राहिकर्म-  
सद्भावानुत्पद्यत एष, जातोऽपि पुनर्मवान्तरकर्मसम्बान्त्रियत एवेति, संसार मज्ज-  
नोन्मज्जनमासादयत्येवत्यर्थः । यद्वा मारः=कर्म संसारो वा, तस्यान्तर्वर्ती स भूयो  
जन्ममरणादिकं लभत एवेति, चक्रे च-

‘मां मारयते यस्मान्ममारिभूतश्च मारयति वाञ्छतः ।

अनुसमयं मरणादपि, कर्म भवो वा भवेन्मार ॥ ” इति ।

પ્રાય કો હૃદયમેં રમ્બકર ટીકાકાર કહતે હૈં કિ—“ મૃતો હિ પુનર્મવા  
ન્તરોપપ્રાહિકર્મસદ્ભાવાત્ ઉત્પદ્યત एष, જાતોઽપિ પુનર્મવાન્તરકર્મસમ્બાત્  
મ્નિયત एष ” ।

ટીક હી હૈ, મૃત આત્માકી મવાન્તરોપપ્રાહી કર્મ કે સદ્ભાવસે પુન  
ઉત્પત્તિ, ઓર ઉત્પદ્ય હુए का ठमी कर्मके सद्भावसे मरण होता है। अथवा  
-‘ मार ’ शब्दका अर्थ सामान्य कर्म या संसार है। असंयमी जीव वैष  
यिक सुख के घशवर्ती हो कर कर्मों का आलस्य करते हैं और पारपार  
जन्ममरणजन्म दुःखों को झीलते रहते हैं, कहामी है-

“मां मारयते यस्मान्ममारिभूतश्च मारयति वाञ्छतः ।

अनुसमयं मरणादपि, कर्म भवो वा भवेन्मार ” ॥१॥

માર શબ્દકી મ્યુત્પત્તિપ્રદર્શક ઇસ પદ્યસે યદી યાત ટીકાકારને  
પ્રદર્શિત કી હૈ । ઇમમેં માર-શબ્દકા અર્થ કર્મ યા સંસાર યતલાયા હૈ ।  
જો જિમકી હિંસા કરતા હૈ ઘહ ડમકા ઘરી હોતા હૈ, વૈરભાવસે સસારકા

ટીકાકાર કહે છે કે— મૃતો હિ પુનર્મવાન્તરોપપ્રાહિ-કર્મસદ્ભાવાત્ ઉત્પદ્યતે एष  
जातोऽपि पुनर्मवान्तरकर्मसम्बान्त्रियते ” ।

ટીકે જ છે મૃત આત્માની ભવાન્તરોપપ્રાહિ કમના મદ્ભાવથી શરીરી  
ઉત્પત્તિ અને ઉત્પત્તિ થયેલાનુ તે જ કમના મદ્ભાવથી મરણ યાજ છે અથવા  
‘ માર ’ શબ્દને અર્થ સામાન્ય કમ અથવા સસાર છે અસવથી શુભે વૈષ  
યિક સુખોને વશ બની કષ્ટોને આશ્રવ કરે છે અને વારનાર જન્મ-મરણના  
દુષ્ટોને લેખવતા રહે છે કહુ પદ્ય છે—

‘ માં મારયતે યસ્માન્મમારિભૂતશ્ચ મારયતિ વાન્તઃ ।

અનુસમયં મરણાદપિ કમ ભવો વા ભવેન્માર ॥

ટીકાકારે એ જ માર શબ્દની મ્યુ પત્તિપ્રદશક યાત આ પદ્યથી પ્રદર્શિત  
કરી છે આમા માર’ શબ્દને અર્થ કમ અથવા સસાર જતાવવામા આવેલ છે

मारान्तर्वर्तनेनापि किं तस्येत्याह—‘यत’ इत्यादि, यतो=यस्मात् सः=कामगुरुको मारान्तः=गुह्यगुह्य भवोपग्राहिवर्मान्तर्वर्ती मरणान्तर्वर्ती वा ततः=तस्मात् हेतोः सः दूरे =रत्नत्रयात्तत्कार्यभूतमोक्षाच्चदूरवर्ती भवतीत्यर्थः । यद्वा—सुखमिच्छन् हि कामान् सेवते, तत्सेवनाच्च मारान्तर्वर्तते, मारान्तर्वर्तनाद् हि जन्मजरामरणरोगशोकव्याकुलो मोक्षसुखादूर एव तिष्ठतीति तात्पर्यम् । यतोऽयं मारान्तर्वर्ती तस्मात् सः=गुरुकामसेवी नैव अन्तः=शब्दादिविषयसुखस्य मध्ये नैव वर्तते, अद्यापि तत्स्पृहासमुल्लासेनानवाप्तेष्ट- विषयस्य विषयसुखज्ञानयुक्तस्य तस्य तत्तृप्यनुभवाभावप्रायत्वात्, नैव स दूरे= तस्माद्विषयसुखाद्विरम्य दूरवर्ती नैव भवति, तदभिलाषस्यापरित्यागादिति ।

वर्धन होता है और इस वृद्धिसे वे दोनों परस्पर हिंस्य-हिंसक बनते रहते हैं ।

जो मारान्तर्वर्ती है अथवा वैषयिक इच्छाओं के पराधीन है वह असंयमी जीव रत्नत्रयरूप धर्मसे, अथवा उसके कार्यभूत मोक्षसे भी दूरवर्ती है । यही बात सूत्रकारने “ यतः स मारान्तस्ततः स दूरे ” इस वाक्यसे प्रदर्शित की है । तात्पर्य यह है कि रत्नत्रयरूप धर्म अथवा उसके कार्यभूत मोक्ष प्राप्त करनेके लिये वैषयिक इच्छाओं पर विजय प्राप्त करना होता है । जब तक प्राणी इच्छाओं के अधीन बना रहता है तब तक मुक्ति का मार्ग सदा उससे दूर रहता है । इच्छाओं का निरोध मोक्षाभिलाषीके लिये इस लिये बतलाया है कि इस प्रकारकी प्रवृत्ति से उसकी आत्मामें एक प्रकारकी अपूर्व शक्तिकी जागृति होती है, जो इसे कर्मक्षय करनेमें विशेष सहायक होती है । भीरु व्यक्ति कर्मों के साथ

वेरलावधी ससारतु वर्धन थाय छे अने आथी ते अन्ने परस्पर हिंस्य अने हिंसक बनता रहे छे

जे मारान्तर्वर्ती छे अथवा वैषयिक इच्छाओंने आधीन छे ते असंयमी एव रत्नत्रयरूप धर्मधी अथवा तेना कार्यभूत मोक्षधी पणु हर नेहर रहे छे आ ज वात सूत्रकारे “ यतः स मारान्तस्ततः स दूरे ” आ वाक्यधी प्रदर्शित करी छे, तात्पर्य अे छे के—रत्नत्रयरूप धर्म अथवा तेना कार्यभूत मोक्ष प्राप्त करवा माटे वैषयिक इच्छाओं उपर विजय प्राप्त करवे। जेधये न्या सुधी प्राणी इच्छाओंने आधीन अनी रहे छे त्या सुधी मुक्तिने मार्ग सहाने माटे तेनाथी हर रहे छे इच्छाओंने निरोध मोक्षाभिलाषी माटे आ कारणधी अताववाभा आवेद छे के—आवा प्रकारनी प्रवृत्तिधी तेना आत्मामे अेक प्रकारनी अपूर्व शक्तिनी जागृति थाय छे, अने ते कर्मक्षय करवाभा विशेष सहायक अने छे।



સંગ્રામ નહીં કર સકાતે । જો ઇન્દ્રિયોં કે વામ હું ષે હી મુક્તિમાર્ગમેં  
 મીઠુ હું । આત્મામેં જો સમય ૨ પર વિપયોંની અપ્રાપ્તિ સે અશાન્તિરૂપ  
 સંતાપ હો જાતા હૈં ઉસકા વૈપયિક ઇચ્છાઓં કે વ્મન સે સર્વથા અમાવ  
 હો જાતા હૈં । ઇસ અમાવકી પ્રકર્પતા કી વૃદ્ધિ સે આત્મા મુક્તિમાર્ગકા  
 સન્ધ્યા આરાધક બન જન્મ મરણકે વુ સ્વોં સે મદાકે લિયે છુટકારા પા  
 જાતા હૈં । ઇસી લિય સુઘ્રકારને યહા પર મુક્તિમાર્ગસે દૂર રહનેમેં અસં  
 યમીકે લિયે ઇસે કારણ યતલાયા હૈં । અથવા-જીવ જય ઇન્દ્રિયોં કે  
 અધીન હોતા હૈં તમી તો ઘટ મારાન્તર્વર્તી હોતા હૈં । કમી મી ઉમકી  
 ઇસ પ્રકારકી પ્રવૃત્તિ સે અધોપગ્રાહી કર્મ કા, અથવા ઉસકે સસાર કા  
 અમાવ નહીં હોતા; પ્રત્યુત ઉસે ઉનકે અન્તર્વર્તી હી રહના પડતા હૈં, અતઃ  
 મુક્તિકા માર્ગ ઓર મુક્તિ સદા ઉસસે દૂર રહતી હૈં ।

માચાર્થ—સસારી જીવ સુખ પ્રાપ્ત કરનેકી અભિલાષાસે વિપયોંકો  
 માંગતા હૈં । ઉસસે વહ મારાન્તર્વર્તી હોતા હૈં । મારાન્તર્વર્તી હોનેસે ઘટ  
 જન્મ, જરા, મરણ, રોગ ઓર શોકસે વ્યાકુલ હોતા રહતા હૈં ફિર  
 ઉસે મોક્ષસુખકી પ્રાપ્તિ કૈસે હો સકતી હૈં ? 'મોક્ષસુખકી પ્રાપ્તિકે લિયે  
 રત્નત્રય ઘર્મ કી આરાધના આવશ્યક હૈં । ઇસ આરાધના સે તો ઘટ

બીજી પ્રાણી કર્મોની સાથે સ્ત્રી શકતો નવાં જે ઇન્દ્રિયોના વામ છે તે જ મુક્તિ  
 માર્ગમા બીજી છે, આત્મામા જે સમય સમય પર વિપયોની અપ્રાપ્તિથી અશાન્તિ  
 રૂપ સંતાપ થઈ બાધ છે તેને વૈપયિક ઇચ્છાઓના દમનથી સર્વથા અમાવ  
 થઈ બાધ છે. આ અમાવની પ્રકૃપતાની વૃદ્ધિથી આત્મા મુક્તિમાર્ગને સાચી  
 આરાધક બની જ મ મરણના દુ ખોથી સંઘને માટે છુટકારો મેળવે છે તેટલા  
 માટે સુવ્રતરે આ જગ્યાએ મુક્તિમાર્ગથી દૂર રહેવામા નસકયમી છવો માટે  
 તેને કારણ બતાવેલ છે અથવા બ્યારે છવ ઇન્દ્રિયોને આધીન થાય છે ત્યારે  
 તે મારાન્તર્વર્તી થાય છે ક્યારેય પવુતેની આવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી ભવોપગ્રહી  
 કર્મને અથવા તને તજારનેા અબાવ યતો નથી પરંતુ તેને તેના વથ સ્ટેવુ  
 પડે છે તેથી મુક્તિના માર્ગ અને મુક્તિ સદા તેનાથી દૂર રહે છે

માચાર્થ—સસારી જીવ સુખ પ્રાપ્ત કરવાની અભિલાષાથી વિચયનો ભોક્તા  
 બને છે એથી કરી તે મારાન્તર્વર્તી બનાવે છે આત્માના વામથી તે જન્મ,  
 જરા મરણ શોક અને શોકથી વ્યાકુલ થતો રહે છે તો કરી તેને મોક્ષસુખની  
 પ્રાપ્તિ કેવી રીતે બને ? મોક્ષસુખની પ્રાપ્તિને માટે રત્નત્રય ધર્મની આરાધના  
 થવી આવશ્યક છે આ આરાધનાથી તો તે દશુ પદ્મ વચિત બની રહેવ છે,

अभी तक भी वंचित बना हुआ है अत एव—' नैव सोऽन्तर्नैव दूरे ' अर्थात्—यह जीव जिस वजहसे मारान्तर्वर्ती है इसी लिये गुरु-कामसेवी है। जब ऐसी वस्तुस्थिति है तो वह गुरुकामसेवी असंयमी जीव शब्दादिकविषयजन्य सुखोंके मध्यवर्ती तक भी नहीं है, क्यों कि अभी तक भी विषयजन्य सुखका अनुभव करनेवाला उसका ज्ञान एक तरहसे अभावरूप ही है। मध्यवर्ती तो तब वह माना जाता जब कि वैषयिक सुखों का अनुभव करते २ वह उनकी तृप्तिरूप पूर्णताके अनुभवके कुछ निकट आ जाता। पूर्णता के निकट तक आया हुआ वह इस लिये नहीं कहा या माना जा सकता कि अभी तक उसे इष्टवैषयिक सुखोंके भोगने की स्पृहा का समुल्लास जो हो रहा है। जब तक उसे इष्ट विषयकी प्राप्ति नहीं होती है तब तक वह मत्ता आकुलित रहा करता है। आकुलता में वैषयिकतृप्तिजन्य सुखकी प्राप्ति भी उसे नहीं होती है, अतः उसका ज्ञान इष्ट विषयकी प्राप्तिके अभावसे वैषयिक सुखानुभव से शून्य जैसा ही बना हुआ रहता है। यह मानी हुई बात है कि विषयों से तृप्ति जीवों को कभी नहीं होती है, एक के बाद एक विषयको भोगने की लालसा प्रतिक्षण उत्पन्न होती रहती है। जब यह हालत है तो फिर उसको तृप्तिरूप विषयभोगजन्य सुखकी पूर्णता कैसे

माटे ७—“ नैव सोऽन्तर्नैव दूरे ” अर्थात्—आ एव ७े माटे मारान्तर्वर्ती छे ते माटे गुरुकामसेवी छे न्यारे आ प्रक्षरनी वस्तुस्थिति छे तो ते गुरुकाम सेवी असंयमी एव शब्दादिकविषयजन्य सुखोना मध्यवर्ती सुधी पणु नथी, क्षरणु के डणु सुधी विषयजन्य सुखनो अनुभव करवावाणु तेनु ज्ञान ओक प्रक्षरे अलावडूप ७ छे मध्यवर्ती तो तेने त्यारे मानवामा आवे के न्यारे वैषयिक सुखोना अनुभव करता करतां ते तेनी तृप्तिरूप पूर्णताना अनुभवनी ७रा नलुक आवे पूर्णतानी नलुक आवेल छे ओम तेने न कडी शक्य के मानी शक्य, क्षरणु के तेने डणु सुधी छष्ट वैषयिक सुखोने लोगवानी स्पृहानो असुल्लान गडे छे न्या सुधी तेने छष्ट विषयनी प्राप्ति नथी थती त्या सुधी ते पोते मडा व्याकुल रहे छे व्याकुलतामा तेने वैषयिकतृप्तिजन्य सुखनी प्राप्ति पणु थती नथी आथी तेनु ज्ञान छष्ट विषयनी प्राप्तिना अलावधी वैषयिक सुखानुभवथी शून्य ७ेवु णनी रहे छे आ सिद्ध थयेली बात छे के विषयोथी एवोने तृप्ति छे पणु यती नथी, ओक पछी ओक विषयने लोगवानी लालसा लखे क्षणे उत्पन्न थती ७ रहे छे न्यारे आ डालत छे त्यारे तेने तृप्तिरूपी विषयभोग-

મિલ સક્તી છે ? જયે હસ પ્રકારકી પૂર્ણતાકા અનુભવ જીવકો નહીં હોતા છે તો વહ જીવ વિપયસુસ્વોકો ભોગતે २ અને મધ્યવેશ તક પ્રાપ્ત હો શુકા છે, યહ કૈસે માના જા સક્તા છે ? ક્યોં કિ વહ તો અમી તક મી અપને કો વિપયસુસ્વોં કે ભોગને કા પ્રારમ્ભક હી માનતા છે, અત્ત ઉસક જ્ઞાનમેં વૈપયિક ઘટિકે અનુભવકા અમાવ મા હી ક્ષલકતા રહતા છે । ઉસકા જ્ઞાન જયે ઘટિ કી પૂર્ણતા સે હી સર્વથા ઘંચિત હો રહા છે તો વહ ઉમ ઘટિ કે મધ્યતક પહુંચા હુઆ કૈસે માના જા સક્તા છે । ઉસમેં તો અમી વૈપયિક સુસ્વોં કો ભોગનેકી પ્રારમ્ભક દશાકા હી માન હો રહા છે । યહી ઘાત ટીકાકારને “ અઘાપિ તત્સ્વહાસમુદ્ધાસેન અનઘાપ્તેષ્ટવિપયસ્ય વિપયસુસ્વજ્ઞાનયુક્તસ્ય તસ્ય તત્સૃપ્સ્યનુભવામાવપ્રાપ્તવાત ” ઇન પંક્તિયોં મેં પ્રવર્શિત કી છે । અર્થાત્ અમી તક વિપયસુસ્વોં કી ઇચ્છાકે સમુદ્ધાસ સે, ઇષ્ટ વિપયકી પ્રાપ્તિ સે રહિત વિપયસુસ્વજન્ય જ્ઞાનસે યુક્ત ઉસ જીવકો વૈપયિક ઘટિકે અનુભવ કી શન્યતા જૈસી છે, હસ લિયે વહ વૈપયિક સુસ્વકે મધ્યવર્તી નહીં છે । વહ ગુરુકામસેવી વિપયસુસ્વસે વિરક્ત હો કર ઉનસે દૂર મી નહીં હોતા છે, ક્યોં કિ અમી તક મી જો ઉસકે ઉનકે સેવનકી અમિલાપા યની હુઈ છે ।

અન્ય સુખની પૂર્ણતા કેવી રીતે મળી શકે ? અમારે આ પ્રકારની પૂર્ણતાને અનુભવ છવને ઘતા નથી તા પછી તે છવ વિષયસુખને ભોગવતા ભોગવતાં તેના મધ્ય ભાગ સુધી પહોંચી શકેલ છે એ કેમ માની શકાય ? કારણ કે તે તેા હલુ સુધી પાતાને વિષયસુખે ભોગવવાના પ્રારમ્ભક જ માને છે માટે તેના જ્ઞાનમાં વૈપયિક તૃપ્તિના અનુભવનો અભાવ જ ભોવામા આવે છે એવુ જ્ઞાન અમારે તૃપ્તિની પૂર્ણતાના અનુભવથી જ વંચિત રહેલ છે ત્યારે એને તૃપ્તિના મધ્ય સુધી પહોંચેલ છે એવું કઇ રીતે માનવામા આવે, તેમા તો હલુ વૈપયિક ઝખા ભોગવવાની પ્રારમ્ભક દશા ભાસી રહેલ છે આ ઘાત ટીકાકારે ‘ અઘાપિ તત્સ્વહાસમુદ્ધાસેન અનઘાપ્તેષ્ટવિપયસ્ય વિપયસુસ્વજ્ઞાનયુક્તસ્ય તસ્ય તત્સૃપ્સ્યનુભવામાવપ્રાપ્તવાત ” આ પંક્તિઓમાં પ્રવર્શિત કરેલ છે અર્થાત્ હલુ સુધી વૈપયિક સુખેની ઇચ્છાના ઉદ્દાસથી ઇષ્ટ વિષયની પ્રાપ્તિથી રહિત વિષયસુખઅન્ય જ્ઞાનથી સુખા તે છવને વૈપયિક તૃપ્તિના અનુભવની ખામી દેખાઈ આવે છે, આ કારણે તે વૈપયિક સુખના મધ્યવર્તી નથી, અને તે ગુરુકામસેવી વિષયસુખથી વિરક્ત બની તેનાથી દૂર પણ કઇ શકતો નથી કારણ કે હલુ તેના વિષય વિષયસેવનની અમિલાપા બરી પડી છે

अथवा यथापूर्वकरणेन भिन्नग्रन्थिको गुरुकामी स किं कर्मणो मध्ये वर्तते वहि-  
र्वेति शिष्यजिज्ञासायामाह—‘नैवे’त्यादि। सः नैव अन्तः=कर्मणो मध्ये न वर्तते तस्य  
ग्रन्थिभेदेन कर्मक्षयोपपत्तेरवश्यम्भावित्वात्, नैव=नापि दूरे-देशोनकोटिकोटी-  
कर्मस्थितिकत्वात् ।

अथवा—“ नैव सोऽन्तर्नैव दूरे ” इसका यह भी अर्थ होता है—  
अपूर्वकरण से जिसने रागद्वेषरूपी ग्रन्थि ( गांठ ) का भेद कर दिया है  
वह अविरतसम्यग्दृष्टि जीव भी गुरुकामसेवी है, क्यों कि अभी तक  
भी उसके किसी भी प्रकारका संयम नहीं है, अतः इस अवस्थामें  
शिष्य गुरुदेवसे प्रश्न करता है कि उस सम्यग्दृष्टि जीवको कर्म के मध्य  
में स्थित मानना चाहिये या कर्मसे बाहिर रहनेवाला मानना चाहिये ? ।  
इस प्रकारकी शिष्यकी आशंका का समाधान इन पंक्तियों में सूत्रकारने  
किया है, वे कहते हैं—उसे कर्मके मध्यवर्ती इस लिये नहीं मानना  
चाहिये कि उसके ग्रन्थिका भेद हो चुका है और ग्रन्थिभेद होनेसे  
उसके कर्मोंका क्षय आगे अवश्यंभावी है । मध्यवर्ती तो वह जब माना  
जा सकता था कि वह जीव यदि वहीं रहना; परन्तु ऐसा तो है नहीं,  
क्यों कि उसके कर्मोंका क्षय नियमसे होगा । कर्मों से दूर उसे इस  
लिये अभी नहीं माना जा सकता है कि उसके कुछ कम अन्तःकोटा-  
कोटीसागरोपम कर्मों की स्थितिका सद्भाव है ।

अथवा—“ नैव सोऽन्तर्नैव दूरे ” अनेना अये पणु अर्थ थाय छे डे—अपूर्व-  
करणथी जेहे रागद्वेषरूपी गांठने लेही नागेल छे ते अविरतसम्यग्दृष्टि एव  
पणु गुरुकामसेवी छे, कारणु डे उणु सुधी तेनाभा डोई पणु प्रकारनो सयम  
नथी आथी आ अवस्थामा शिष्य गुरुदेवथी प्रश्न करे छे डे—आ सम्यग्दृष्टि  
एवने कर्मना मध्यमा स्थित मानवो डे, कर्मथी षडार रहेवावाणो मानवो  
लेछअे ? आ प्रकारनी शिष्यनी आशंकानु समाधान अे पक्षितअेना सूत्रकारे  
करेल छे, ते कडे छे डे—तेने कर्मनो मध्यवर्ती अेटला भाटे नहि मानवो लेछअे  
डे तेनी अथिनो लेद थछ युकेल छे, अने अथिलेद थवाथी अेना कर्मनो क्षय  
आगण अवश्य थवानो छे मध्यवर्ती तो अे त्यारे मनातो डे ते एव त्या ने त्या  
स्थिर रहेतो, परतु अेवु तो छे नहि, कारणु डे तेना कर्मनो क्षय नियमथी  
थवानो न कर्मथी दूर तेने अे भातर नथी मानवामा आवतो डे तेने थोडा  
ओछा अत डोटाडोटी सागरोपम कर्मनो स्थितिनो सद्भाव रहेल छे.

यदि वा लब्धधारिणोऽपि स नैव अन्तः=कर्मणः संसारस्य वा यद्य न वर्तते द्वादशरूपायः इति त्वात्, नैव च दूर, उत्कर्षता मोक्षगमनस्य साक्षात्कर्मप्रवृत्तानतिक्रमणात् ।

पठान्—य इमां द्वादशाह्वीमर्थरूपेण यथा प्ररूपितवान् न किं तदा संसारस्या तर्हि त्वाऽऽसीदिति जम्बूस्वामिप्रश्नयुत्तरयति— ' नैवे '—त्यादि । स तदा नैव अन्तः=संसारमप्य वर्तते स्म, तदानीं क्षीयघातिवर्षित्वुपपत्त्यात्, नापि दूर=तदानीमपि अघातिवर्षणां परमतसमयापक्षितत्वात् ॥ सू० १ ॥

अथवा—लब्धधारिण भी यह सम्यग्दृष्टि जीव कर्म और संसार के मध्यवर्ती नहीं है, क्यों कि उसके अनतानुषधी आदि पारह प्रकारकी कपायों का अभाव हो चुका है । मोक्षसे दूरवर्ती इसलिए नहीं है कि यह उत्कृष्ट से मात आठ अर्थमें मुक्ति की प्राप्ति कर लेगा ।

अथवा—जिन्होंने इस द्वादशागरूप आगमकी अर्थरूपसे प्ररूपणा की है वे उस समय संसार के अन्तर्वर्ती थे वा यहिर्वर्ती ? इस प्रकार के श्री जम्बूस्वामीके प्रश्नका उत्तर श्रीसुधर्मास्वामी देते हुए कहते हैं—इस द्वादशागरूप आगमकी अर्थरूपसे प्ररूपणा करनेवाले तीर्थङ्करादि परमात्मा न तो संसारके मध्यवर्ती थे और न संसार से दूर ही थे, क्यों कि उनके उस समय चार घातिया कर्मों का अभाव हो चुका था, इस लिये वे संसारके अन्तर्वर्ती नहीं थे, और घातीके चार अघातिया कर्मों का सङ्गाव था इसलिये उस समय वे संसार से यहिर्वर्ती भी नहीं थे ॥ सू० १ ॥

अथवा—लब्धधारिण पण्डिते नृभ्यश्चष्टि एव कर्म तेभ्यः संसारो मध्यवर्ती नहीं है उनके तेने अनतानुषधी आदि पार प्रकारना कथाभेदो अभाव यद्य सुकेल छे मोक्षधी इत्यवर्ती के भाटे नहीं है ते उत्कृष्टधी सक्त अठ लवभा मुक्तिनी प्राप्ति भोगधी देखे ।

अथवा—वेदोऽपि वा द्वादशाग्रूप आगमनी अर्थरूपधी प्ररूपणा करे छे तेको ते समये संसारने अन्तवर्ती कृत्वा के लक्षिवर्ती ? आ प्रकारना श्री जम्बू स्वामीकृत्वा प्रश्नते उत्तर श्री सुधर्मास्वामी आपत्ता कहे छे—आ द्वादशाग्रूप आगमनी अर्थरूपधी प्ररूपणा करवावागा तीर्थङ्करादि परमात्मा न तो संसारना मध्यवर्ती कृत्वा तेम संसारधी दूर पण्डित न कृत्वा केम के तेभने ते वभते चार घाती कर्मोना अभाव यद्य सुकेल कृत्वा तेधी तेको संसारना अन्तवर्ती न कृत्वा अने लक्षिना चार अघातीना कर्मोना सङ्गाव कृत्वा अथ काले ते समये तेको संसारधी लक्षिवर्ती पण्डित न कृत्वा ( सू १ )

यश्च प्राप्तसम्यक्त्वः संसारसागरतीरवर्ती स किं निश्चिनोति? इति दर्शयितुमाह  
- 'से पासइ' इत्यादि ।

मूलम्—से पासइ फुसियमिव कुसग्गे पणुन्नं निवडयं वा-  
एरियं, एवं बालस्स जीवियं मंदस्स अवियाणओ, कूराइं क-  
म्माइं वाले पकुब्बमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ,  
मोहेण गव्वं मरणाइ एइ, एत्थ मोहे पुणो पुणो ॥सू० २॥

छाया—स पश्यति पृषदिव कुशाग्रे प्रणुन्नं निपतितं वातेरितम्, एवं बालस्य  
जीवितं मन्दस्याविजानतः, क्रूराणि कर्माणि बालः प्रकुर्वाणस्तेन दुःखेन मूढो  
विपर्यासमुपैति, मोहेन गर्भं मरणाद्येति, अत्र मोहे पुनः पुनः ॥ सू० २ ॥

टीका—'स पश्यति' इत्यादि । सः=सम्यक्त्वमहिम्ना परिज्ञातसंसारसारोऽप-  
नीतमिध्यात्वजवनिकः प्रणुन्नं=सन्ततपूर्वापरपुद्गलोपचयात् प्रेरितं वातेरितं—वातेन=  
वायुना ईरितं=कम्पितं सत् कुशाग्रे=दर्भाग्रे निपतितं नि=नियतमधिकं वा पतितं  
पृषदिव=विन्दुं यथा पश्यति, तस्यातिस्तोकसमयमात्रस्थितिकत्वात्, एवं=तथैव

जिस जीवको सम्यक्त्व प्राप्त हो चुका है ऐसा जीव नियम से इस  
संसाररूपी सागरके तीरवर्ती ही माना गया है । इसकी विचारधारा कैसी  
होती है ? इस विषयको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार सूत्र कहते हैं—  
'से पासइ' इत्यादि ।

मिध्यात्वरूपी जवनिका (पड़दा)के अभावसे प्राप्त हुए सम्यक्त्व  
के प्रभावसे जिसने संसारकी असारता अच्छी तरहसे जान ली है ऐसा  
वह सम्यग्दृष्टि जीव अज्ञानी प्राणीके जीवनको दर्भ की अनीपर पड़ी  
हुई ओसकी बिन्दुके समान जानता है । जिस प्रकार दर्भकी अनीपर  
ठहरी ओसकी बिन्दु अति चञ्चल होती है, जरा सा भी पवन का झोंका

ने लवोने सम्यक्त्व प्राप्त थई चुकेल छे ते लवोने नियमथी आसंसार-  
रूपी सागरने तीरवर्ती मानवामा आवेल छे, तेनी विचारधारा केवी होय छे  
ये विषयने प्रगट करवा माटे सूत्रकार कडे छे—'से पासइ' इत्यादि

मिध्यात्वरूपी जवनिका (पडदा) ना अभावथी प्राप्त थयेल सम्यक्त्वना  
प्रभावथी नेछे संसारनी असारता सारी रीते नल्लेवी छे, जेवा ते सम्यग्दृष्टि  
लव अज्ञानी प्राणीना लवनने दर्भनी अथी उपर पडेला आकणना विंदु समान  
माने छे ने प्रकारे दर्भनी अथी उपर पडेला आकणना विंदु अति अचण होय छे,

मन्दस्य=अल्पस्य मूढस्येति यावत् अविजानत=नरकनिगोदाविकं कदुकफलं  
 सोपक्रमायुर्वाऽनवबुध्यमानस्यात् एष बासस्य=शिताशितप्राप्तिपरिहारानभिज्ञस्य  
 भीषितं=भीषनं सोपक्रमायुर्वाऽतिचञ्चल पश्यति=जानाति । परमार्यानिभिः किं  
 कुर्यादित्याह-‘क्रूराणी’-ति क्रूराणि=घातुकानि कर्माणि गलकर्तनादीनि प्राणा  
 तिपातादीन्यन्त्यादप्रकाराणि वा मनोबाह्यायैः प्रकुर्यात्=समाधरन् बास्य, तेन=  
 प्राणातिपातादिजनितकदुकफलोत्पादकन दुःखेन=शारीरमानसेन, दुःस्वजनकन  
 कर्मणा वा द्विविधयोनिषु भ्राम भ्रामं मूढ=तत्तद्भ्रमोपग्राहिकर्मजन्यकदुकफलान

उसे क्षणमात्रमें भूमि पर गिरा देता है, वह बहुत समय तक वहाँ  
 स्थिर नहीं रह सकती, वह तो बहुत ही थोड़े समय तक वहाँ ठहरती  
 है। उसी प्रकार अज्ञानी का जीवन भी यायु के तुल्य पूर्व और अपर  
 काल सम्बन्धी कर्मपुद्गलोंसे सदा प्रेरित बना रहता है। ज्यों ही हवाके  
 हल्के झोंके से धर्म के अन्न भाग पर स्थित भोसबिन्दुके समान आयु  
 कर्मका अन्त आ जाता है, या किसी शास्त्रघाताविकका निमित्त मिल  
 जाता है तो इसे भी विनष्ट होते देर नहीं लगती। यह भी अस्थिर और  
 क्षणिक है। अज्ञानी के जीवनको धर्म की भनी पर पड़ी हुई ओम की  
 बिन्दुकी उपमा इस लिये दी है कि जिस प्रकार वह अति चञ्चल-अस्थिर  
 है उसी प्रकार इसका जीवन भी, चाहे यह किसी भी गतिमें रहे; स्थिर  
 नहीं है। सर्वत्र क्षणिकता का एकच्छत्र राज्य छाया हुआ है। चाहे यह  
 नरकगतिमें रहे, चाहे निगोद में रहे, चाहे कहीं भी रहे; यह स्थिर नहीं।

पवनो नरक सरभो पञ्च अपातो हागतां ते अणुभात्रभा नमीन उपर  
 देहात् आयु छे ते त्या हावा समभ सुधी स्थिर रही शक्तु नधी, मात्र भौद्र  
 समभ सुधी न ते त्या टके छे ते न प्रकारे अज्ञानीनु एवन पञ्च पवनसहस्र  
 पूर्व अने अपर-काल समधी कमपुद्गलौधी सदा सम्भग रहे छे नकारे पव  
 नन्दा भाषारण्य अपाटाधी रक्षनी आधी उपर पडेला अक्षय्य विदुनी लेन आयु  
 कर्मना अत आवी आयु छे अथवा तो कोर्छ शस्त्रमात आदि निमित्त भणी  
 आयु छे त्तारे तेना पञ्च नाश यतां वार हाजती नधी, आ पञ्च अस्थिर अने  
 क्षणिक छे अज्ञानीनु एवनने इतनी अणु उपर पडेला जाकणविदु साथे उपमा  
 जे भागे आपवभा आवेल छे के जे प्रकारे जे अतिचञ्चल अने अस्थिर छे  
 जे न प्रकारे अज्ञानीनु एवन गमे ते स्थितिमां शीघ्र छतां स्थिर रहेतुं नधी  
 क्षणिकतायु ज्येकछत्र सन्त्य वारे तरङ्ग आपक छे गमे जे नरकप्रतिभां रहे  
 अगरे निगोदभा रहे, जमे ते स्थणे रहे छतां स्थिर नधी.

शङ्का—सम्यग्दृष्टि जीव भी अपनी पूर्वपर्यायों में अनेक गतियोंमें परिभ्रमण करते हैं, तथा जब तक उन्हें मुक्ति का लाभ नहीं हुआ तब तक उनका जीवन भी तो इस तरहसे अस्थिर ही है; फिर यहाँ वाल-जीवन को ही क्यों अस्थिर बतलाया ?

समाधान—यद्यपि यह शङ्का ठीक है, फिर भी यहाँ पर जो अज्ञानी के जीवन को ही अस्थिर बतलाया है उसका खास मतलब है, और वह यह है कि अज्ञानी का जीवन समकित के अभाव के कारण स्थिर नहीं हो सकता, सम्यग्दृष्टि का जीवन तो समकित के सद्भावके कारण स्थिर हो जाता है। समकित के होने पर यदि वह अवद्वायुष्क है तो नियमसे वह वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है और वहाँ से च्यव कर महाविदेहादिक क्षेत्रमें जन्म ले कर मुक्ति का लाभ प्राप्त करता है। इस तरहसे द्रव्य की अपेक्षा से उसका जीवन अस्थिर नहीं है, किंतु स्थिर ही है। परन्तु अज्ञानी का जीवन इस तरह का न होनेसे क्षणिक-अस्थिर है। अज्ञानी नरकनिगोदादिक के कटुक फल को जानता नहीं है। अपनी क्षण २ में व्यतीत होती हुई आयु का भी उसे कुछ भी ख्याल नहीं होता है। जैसा असमकित जीव होता है समकित जीव वैसा नहीं होता, वह तो शास्त्रादिकों के परिशीलन से या गुर्वादिक के निमित्त से

शङ्का—सम्यग्दृष्टि एव पणु पोतानी पूर्ण पर्यायोभा अनेक गतियोभा परिभ्रमणु करे छे तथा न्या सुधी तेने मुक्तिनो लाभ नथी थयो त्या सुधी तेनु एवन पणु तेवा प्रकारे अस्थिर छे त्यारे अर्द्धि पालएवनने न शा भाटे अस्थिर भताव्यु ?

समाधान—जे छे आ शङ्का ठीक छे छतां पणु आ स्थणे जे अज्ञानीना एवनने अस्थिर रूपमा भतावेद छे जेनो पास मतलब छे, अने ते जे छे जे अज्ञानीनु एवन समकितना अभावना कारणे स्थिर गनी शकतुं नथी, सम्यग्दृष्टिनु एवन तो समकितना सद्भावना कारणे स्थिर गनी नय छे समकित थवाथी जे ते अणुद्वायुष्क छे तो नियमथी ते वैमानिक देवोभा उत्पन्न थाय छे, अने त्याथी व्यवीने ते महाविदेहादिक क्षेत्रमा जन्म लधने मुक्तिनो लाभ प्राप्त करे छे आ प्रकारे द्रव्यनी अपेक्षाथी तेनु एवन अस्थिर नथी, अल्के स्थिर न छे परतु अज्ञानीनु एवन आ प्रकारनु न होवाथी क्षणिक-अस्थिर छे. अज्ञानी नरक-निगोदादिकना कटवा रूपने नाल्यतो नथी, पोताना क्षणु क्षणु व्यतीत थता आयुष्यनु पणु तेने लान होतु नथी जेम असमकिती एव होय छे तेम समकिती एव होतो नथी. ते तो शास्त्रादिकना परिशीलनथी



नरकनिगोदादिक के दुःखों का ज्ञाता होता है, क्षण २ में व्यतीत होने वाली अपनी आयु की एक २ घड़ी भी व्यर्थ नहीं खोता, समकित के समझावसे उसकी सफलता करता रहता है। इसी समस्त अभिप्राय को हृदयमें रख कर सूत्रकार ने “एवं चाल्स्स जीवियं मंदस्स भविष्या णओ” यह सूत्रांश कहा है। चाल्स्स विशेषण “मन्द” को जो लिखा है, उसका तात्पर्य यही है कि जय वह मन्द नरकनिगोदादिक के कड़क फल को अथवा क्षण २ में बीतनेवाली अपनी आयु को नहीं जानता है तो फिर वह अपने हित और अहित की प्राप्ति एवं परिहारका ज्ञाता भी कैसे हो सकता है?। यहां पर यह शङ्का कोई कर सकता है कि मन्द प्राणी नरकनिगोदादिक एवं अपनी व्यतीत होती हुई आयु को नहीं जानता है, इसलिये वह यह भी नहीं समझता है कि मेरा हित किसमें है और अहित किसमें? परन्तु सम्यग्दृष्टि भी तो ऐसा ही है तो फिर वह हितप्राप्ति और अहितके परिहार करनेमें समर्थ कैसे हुआ? सो ऐसी शङ्का करना ठीक नहीं; क्योंकि यह अभी बतला दिया गया है कि सम्यग्दृष्टि जीव शास्त्र के अनुशीलन से अथवा गुरुभादिक के उपदेश के निमित्तसे नरकनिगोदादिक के दुःखों का तथा अपनी व्यतीत होती हुई आयुका ज्ञाता

अथवा गुरु आदिना निमित्तधी नरक-निगोदादिकना दुःखोना व्यवहार जने छे, जने कखे कखे बटता जत्ता पोताना आमुष्यने अकेक घड़ी पख ते अर्थ जत्ता देते नथी समकितना सुदभावधी जेनी सकणता करतो रहे छे आ समस्त अभिप्रायने हृदयमा राणी सूत्रकारे “एवं चाल्स्स जीवियं मन्स भविष्याणओ” आ सूत्रांश कहेल छे मन्द आ विशेषण “मन्स” ने उदेशीने के लक्षणे छे जेने मतलब अछे छे के ज्यारे ते मद्भाषी नरकनिगोदादिकना कडवा हुणने अथवा ते कखे कखेमा बटती जत्ती पोतानी आमुष्यने नथी समजतो ते इरी ते पोताना हित जने अहितनी प्राप्ति तेमज परिहारना व्यवहार कर्न रीते जनी शके? आ स्थजे कौछ जेवी शका करी शके के मद्भाषी नरक-निगोदादिकने जने पोताना व्यतीत बत्ता जत्ता आमुष्यने व्यवहार नथी, भाटे ते आ पख नथी समज शकते के भाई हित जने अहित जग्मा छे? परतु सम्यग्दृष्टि छप पख ते जेवे ज छे त्यारे ते हितनी प्राप्ति जने अहितना परिहार करवामा समर्थ केवी रीते जाय छे? जेवी शका करनी ठीक नथी; कसए के कसएमा ज समभववामा जान्यु छे के-सम्यग्दृष्टि छप शास्त्रना अनुशीलनधी अथवा गुरु आदिकना उपदेशना निमित्तधी नरक-निगोदादिकना दुःखोना जत्ता जाय छे जने पोताना व्यतीत बत्ता आमुष्यने पख ज्ञाता जाय छे आ भाटे ते

होता है। इसीलिये तो वह “समयं गोयम मा पमायए” इस प्रभुके वाक्यानुसार प्रमाद में अपना एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाने देता। सावधान हो कर ही प्रत्येक क्रियाओं को करता है जिससे उसकी आयुका एक २ क्षण सफल बने। वह जानता है—यह जीवन क्षणभंगुर है, इसकी सफलता जैसे भी हो सके वैसे कर लेने में ही बुद्धिमानी है।

परमार्थसे अनभिज्ञ बने हुए वे बालजीव गलकर्तनादि जैसी घातक क्रियाओं अथवा अठारह प्रकारके पापस्थानकरूप प्राणातिपातादिकों को मन, वचन एवं काय से आचरते हुए प्राणातिपातादिजनित और कटुक फलके उत्पादक शारीरिक और मानसिक दुःखों से, अथवा दुःखोंको देनेवाले कर्मों से अनेक योनियों में बारंबार जन्म-मरण रूप परिभ्रमण करते रहते हैं।

भावार्थ—जिन्हें हित और अहित का कुछ भी भान नहीं होता है ऐसे अज्ञानी जीव क्रूर कार्यों को करने में जरा भी नहीं हिचकने। इन्हें इस बात का कुछ भी ख्याल नहीं होता कि इन कार्योंके करनेका अन्तिम परिणाम क्या होगा?। मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति उनकी ऐसे ही अधम गलकर्तनादि (गर्दन काटना आदि) रूप कार्योंके करनेमें लालसावाली बनी रहती है, इससे वे ऐसे २ अशुभकर्मों का उपार्जन

“समयं गोयम मा पमायए” आ प्रभुना वाक्यानुसार प्रमादमा पोतानु अेक पशु क्षणु निरर्थक न्वा हेतो नथी सावधान णनीने दरेक क्रियाओ करे छे नेथी तेना आयुष्यने अेकेक क्षणु पशु सक्रण णने, ते न्णु छे के—आ लवन क्षणु-लगुर छे तेनी सक्रणता नेटली णने तेटली सत्वर करी लेवी ते बुद्धिमाननु काम छे

परमार्थथी अज्ञात अेवो गाललव गलकर्तनादि नेवी घातक क्रियाओ अने अठार प्रकारना पापस्थानकरूप प्राणातिपातादिकोने मन, वचन अने कायाथी आचरीने प्राणातिपातादिजनित अने कटुकक्रणोना उत्पादक शारीरिक तेमन मानसिक दुःखोथी अथवा दुःखने हेवावाणा कर्मोथी अनेक योनियोमा बारवार जन्म-मरणरूप परिभ्रमणु करतो रहे छे

भावार्थ—जेने हित अने अहितनु कर्ष पशु लान नथी अेवो अज्ञानी लव घातकी कार्य करवामा जरा पशु उरतो नथी तेने अे वातनेो डेअ अेवो ग्याल नथी आवतो के आ कार्यनु अतिम परिणाम केवु आवशे तेनी मानसिक, वाचिक अने कायिक प्रवृत्ति गर्हन कापवा आदि अधम कार्यो करवामा लालसायुक्त णनी रहे छे, अेथी ते आवा आवा अशुभ कर्मोनु उपार्जन अने वर्धन

ઘૌર ઘર્ષન કરતે હૈં કિ જિનકા પરિણામ અધિષ્ઠ્યમેં ઉન્હેં મહાદુઃખ હાયક હોતા હૈં । નરકનિગોદાદિરૂપ અનેક યોનિયોં મેં ધાર ૨ ધ્રમણ કર બે ઘહાંકી અનન્ત ઘેદનાઓં કો સહતે ૨ અપને અમૂલ્ય જીવન કો ઘિલકુલ નષ્ટ કરતે રહતે હૈં । અનેક પ્રકાર કે શારીરિક ઇવં માનસિક દુઃખોંકી પ્રાપ્તિ જીવોં કો ઇસે હી કાર્યોં કે ફલ સ્વરૂપ હોતી હૈં ।

ઘે મૂઢ ઘાલજીઘ અનેક યોનિયોં મેં ઘુઃસ્વપ્રદ કર્મ કે કદુકફલ સે અનમિશ્ન હોતે હુપ જિસસે આત્મા કા કલ્યાણ હોતા હૈં જો અનેક દુઃખોં કા નાશક હૈં ઓર સાક્ષાત્ યા પરમ્પરારૂપ સે જો ઇસ જીઘ કો સુક્તિમેં હે જાતા હૈં ઇસે સુખજનક ડસ ધર્મકો દુઃસ્વરૂપ જાનતે હૈં ।

ભાઘાર્થ—જિસ પ્રકાર કામલા ( પીલિયા ) રોગ સે દૂપિતદષ્ટિઘાલા પ્રાણી અન્ય શુદ્ધ ( સપેદ ) પદાર્થોં કો ઘી પીતરૂપ સે ઘ્રહણ કરતા હૈ— જાનતા હૈ, ઠીક ડસી પ્રકાર જો જીઘ અનાદિ મિધ્યાત્વકર્મ કી ઘાસના સે ઓતપ્રોત હોતે હૈં ઘે પ્રાણી ઘી સુખદાયી ઘર્મ કો દુઃખદાયી રૂપસે જાનતે હૈં । ઘહ ડનકી મલિન આત્મા કા હી ઘોપ હૈં ।

અજ્ઞાનસે અઘે હુપ ઘે પ્રાણી દુઃખજનક માઘઘ ઘ્યાપારોં કો અપને દુઃખકો દૂર કરને કે લિઘે કરતે હૈં ।

કરે છે કે જેનું પરિણામ અધિષ્ઠ્યાં તેને મહાદુઃખદાયી ઘાય છે નરક-નિગોદાદિરૂપ અનેક યોનિયોમાં વારંવાર ધ્રમણ કરી તે ત્હાની અનન્ત ઘેદનાઓ સહન કરી પોતાનું અમૂલ્ય જીવનને નાશ કરે છે અનેક પ્રકારના શારીરિક અને માનસિક દુઃખોની પ્રાપ્તિ હોવેને એવાં કાર્યોના ફળસ્વરૂપ જ ઘાય છે

તે મૂઢ ઘાલજીઘ અનેક યોનિયોમાં દુઃખપ્રદ કર્મોના ક વા ફળોને અનમિશ્ન હોઈ જેનાથી આત્માનું કલ્યાણ ઘાય છે જે અનેક દુઃખોને નાશક છે અને સાક્ષાત્ અથવા પરંપરારૂપથી જે આ જીવને સુક્તિમાં લઈ લાય છે એવા સુખ-જનક તે ધર્મને દુઃખરૂપ બાલે છે

ભાઘાર્થ—જે પ્રકારે કમળાના રોગથી દૂપિત દષ્ટિઘાળા પ્રાણી વીજ શુદ્ધ પદાર્થોને પણ પીગાડી લેવા છે એવા પ્રકારે જે જીવ અનાદિ મિધ્યાત્વ કર્મોની ઘાસનાથી ઓતપ્રોત હાય છે તે પ્રાણી પણ સુખદાયી ધર્મને દુઃખદાયી બાલે છે, તે તેના મલિન આત્માને રોપ છે

અજ્ઞાનથી અધિષ્ઠ્યાં અનેકો તે પ્રાણી દુઃખ આપવાવાળા સાધન-પાપકારી આધારોને પોતાના દુઃખને દૂર કરવા માટે ઉપયોગ કરે છે

भिज्ञो विपर्यासं=वैपरीत्यं सुखजनकधर्मादेर्दुःखजनकादिरूपम् उपैति=प्राप्नोति, अज्ञानान्यो हि दुःखजनकसावद्यव्यापारं तदुपशमाय विदधातीत्यर्थः। अपि च मोहेन=तत्त्वविपर्यासरूपेणाविवेकेन, अत्रान्तभूतमोहस्य ग्रहणादादिमध्यवर्तिनो राग-द्वेषयोरपि ग्रहणं, तेन रागेण द्वेषेण वा, यद्वा-मिथ्यात्वकपायविषयाभिलाषमयेण मोहनीयेन कर्मणा, गर्भं=जननीजठरनिवासरूपं, तेन च मरणादि एति=गच्छति। मरणादीत्यत्रादिग्रहणात्—

भावार्थ—वे यह नहीं जानते हैं कि जिस प्रकार रक्त से दूषित वस्त्रकी शुद्धि रक्तसे नहीं होती है उसी प्रकार से सावद्य व्यापार जो स्वयं दुःखरूप या जीवों को दुःखदायी है, भला ! उनके करने से दुःखों का उपशम कैसे हो सकता है। ऐसा बोध उन्हें हो भी कहां से; क्यों कि ये तो अज्ञानसे अंधे जो हो रहे हैं। इनके चर्मचक्षु भले ही निर्दोष हों, परन्तु जिनसे भले-बुरे का बोध होता है इनके उन ज्ञानचक्षुओं पर अज्ञान का आवरण पड़ा हुआ है।

तत्त्वोंमें विपरीताभिनिवेश का कारण जो अविवेकरूप मोह है उससे, अथवा राग और द्वेषसे, या मिथ्यात्व-कपाय-विषयाभिलाष-स्वरूप मोहनीय कर्म से वे बालजीव जननी के जठरमें रहनेरूप गर्भावस्था एवं मरणदशा को प्राप्त करते हैं। यहां पर अन्तभूत मोह के ग्रहणसे उसके आदि और मध्यवर्ती राग और द्वेष का भी ग्रहण हुआ है। मरणमें गृहीत आदिपदसे—

भावार्थ —ते अज्ञान नहीं जानते हैं कि वे जीवों की दूषित वस्त्रकी शुद्धि बालजीव जननी नहीं तेवी रीते पापकारी व्यापार के स्वयं दुःखरूप होने के कारण दुःखदायी है तेना उपयोग करवाती दुःखोंको निवारणु शी रीते थोड़ा शक, अथवा उपदेश देने लागे पणु कथायी, काणु के अज्ञानकी आंध-गी व थोड़ा रहने के अना चर्मचक्षु भले निर्दोष है परन्तु जेनाथी लला-धुरानो बोध थाय ते ज्ञानचक्षुओं उपर अज्ञानको पड़ो पड़ो है

तत्त्वोंमें विपरीत आग्रहणु कारण के अविवेकरूप मोह है तेनाथी, अथवा राग अने द्वेषथी, अथवा मिथ्यात्व-कपाय-विषयाभिलाष-स्वरूप मोहनीय कर्मथी ते बालजीव माताना उदरमा स्थितिर्न गर्भावस्था अथवा मरणु दशाने प्राप्त थाय है आ स्थाने अन्तभूत मोहना अग्रहणुथी तेने आदि अने मध्यवर्ती राग अने द्वेषनु पणु अग्रहणु थयेल है, मरणुमा गृहीत आदि पदथी—

“ પુનરપિ જનનં પુનરપિ મરણં, પુનરપિ કર્મોપાર્જનકરણમ્ ।

પુનરપિ નરકનિગોદનિપાતઃ, પુનરપિ જનનીજટરે પાતઃ ॥૧॥” ઇતિ ।

પૂર્વે મરણ પુનર્ગર્ભગમનં, તતો જન્મ, તતઃ પાપહૃદિસ્તતો મૃત્તેં દિસાદિક્કૂર કર્મપ્રવૃત્તિસ્તતઃ કર્મણો મરસ્તેન ચ નરકનિગોદાદિપાત ઇતિ મજ્જનોન્મજ્જનનક્રમેણ મૂયો મૂયો ગર્ભસ્ય મરણાદેરેવ પ્રાપ્તિસ્તસ્ય મવસીતિ તાત્પર્યમ્, અત્ત એવ—અત્ત= અસ્મિન્ મોહ=અજ્ઞાને મોહનીય—મોહજન્યે ગર્ભજન્મજરામરણાદિકે કર્મમરે ચા પુન પુન પરિભ્રમતિ, સ તેમ્યો ન ઘર્ષિર્નિઃસર્તું પ્રમથતીતિ ભાષઃ ।

“ પુનરપિ જનનં પુનરપિ મરણ, પુનરપિ કર્મોપાર્જનકરણમ્ ।

પુનરપિ નરકનિગોદનિપાતઃ, પુનરપિ જનનીજટરે પાતઃ ॥”

इस पद्योक्त जन्ममरणादि की परम्परा का ग्रहण किया गया है। अर्थात्—मरण, पुनः गर्भमें गमन, फिर जन्म, फिर पापों का वर्धन, उससे हिंसादिक क्रूर कर्मों में प्रयत्न, उससे फिर कर्मों का उपार्जन, पश्चात् पुनः नरकनिगोदादिकर्म पतन; इस प्रकार की जन्म मरणादि की परंपरासे इस पाल अज्ञानी जीव का कभी भी छुटकारा नहीं होता है। जिन्म प्रकार समुद्रादि जलाशयमें पड़ा प्राणी उसीमें उतराता (ऊपरआता) और हृपता है उसी प्रकार जीव को भी चार २ गर्भ, जन्म और मरणाकी प्राप्ति होती रहती है। इसी आशय की पुष्टि सूत्रकारने “अत्र मोहो पुनः पुनः” इस सूत्रांश से की है।

“ પુનરપિ જનન પુનરપિ મરણ, પુનરપિ કર્મોપાર્જનકરણમ્ ।

પુનરપિ નરકનિગોદનિપાતઃ, પુનરપિ જનનીજટરે પાતઃ ॥”

આ પદ્યોક્ત જ મમરણાદિની પરપરાનું ગ્રહણ કરેલ છે અર્થાત્—મરણ, પુનઃ ગર્ભમાં આવવું ફરી જ મ, ફરી પાપોનું વર્ધન, એથી હિંસાદિક ક્રૂર કર્મોમાં પ્રવલન, એથી ફરી જન્મનું ઉપાર્જન પછી પુનઃ નરકનિગોદાદિકર્મ પતન, આ પ્રકારની જ મમરણાદિ પરપરાથી આ જાણ અજ્ઞાની એવ કષ્ટારેમ છુટકારા મેળવી શકતો નથી જે રીતે સમુદ્ર આદિ જળાશયોમાં પડેલા પ્રાણી એમાં જ ઉપર આવે છે અને ડૂબે છે આ રીતે આ જીવને પણ વારવાર જન્મ, જન્મ અને મરણની પ્રાપ્તિ થતી રહે છે આ આશયની પુષ્ટિ સૂત્રકારે અત્ર મોહો પુનઃ પુનઃ’ એ સૂત્રાંશ દ્વારા કરી છે.

भावार्थ—संसारमें राग, द्वेष, अज्ञान और मोह आदि मलिन भाव इस जीवके सबसे प्रबल शत्रु हैं। बाह्य शत्रु तो इसके लिये एक ही भवमें दुःखदायी होते हैं; परन्तु ये तो इसे भव २ में अनन्त कष्टों को देते रहते हैं। इसके ज्ञानादि गुणोंके निधानको लूट कर इसे नरक निगोदादिका अधिकारी बनाते रहते हैं। यह इन कारणोंसे जन्म मरणादिकी परम्परा से कभी छुटकारा नहीं पा सकता है। जिस प्रकार असहाय प्राणी समुद्रादि जलाशयमें पडने पर वहीं डूबता और उतराता है, वह जिस प्रकार वहाँ से बाहर नहीं निकल पाता, अन्तमें वेचारेका वहीं पर प्राणान्त हो जाता है। ठीक यही दशा इस अज्ञानी जीव की हो रही है। इस संसाररूपी समुद्रमें पड़ कर यह भी उसीमें डूबता रहता है और मरता रहता है। तप और संयमका प्रवहण प्राप्त किये विना इसका इससे उद्धार नहीं हो सकता है, अत मोक्षाभिलाषीका कर्तव्य है कि वह इस रागद्वेषादिरूप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। तभी यह अज्ञान-मोह-जन्य गर्भ, जन्म, मरणादिसे अथवा कर्मके भारसे रहित हो सकता है, अन्यथा—“अत्र मोहे पुनः पुनः” इन मोहादिरूप मलिन भावोंमें ही इसका जन्मजन्मान्तर का समय व्यतीत होता रहेगा।

लावार्थः—संसारमा रागद्वेष अज्ञान अने मोह आदि मलिन भावो आ लुपना अधार्थी प्रबल शत्रु छे, बाह्य शत्रु तो तेने भाटे अेक ज लवमा दुःखदायी थाय छे, परतु आ तो लवोलवमा अत त कष्टोने देता रहे छे, तेना ज्ञानादि गुणोना ल डारने दुटीने तेने नरक-निगोदादिना अधिकारी बनावे छे, आ डारणोने लर्ष जन्म-मरणादिनी परपराभाथी छुटकारो भेगवी शकतो नथी जेवी रीते असहाय प्राणी समुद्र आदि जलाशयोमा पडवाथी त्या दुजे छे अने उपर आवे छे, ते त्याथी जेम अडार नीकणवा असमर्थ डोय छे अने अते तेना त्याज देहात थाय छे, आवी ज दशा आवा अज्ञानी लुपोनी थती रहे छे आ संसाररूपी समुद्रमा पडी ते आज रीते तेमा दुजे छे अने भरे छे, तप अने संयमने जडाज अडलु डर्या सिवाय तेना उद्धार थर्ष शकतो नथी, आथी मोक्षाभिलाषीनु कर्तव्य छे के आवा रागद्वेषादिरूप शत्रुयो उपर विजय प्राप्त करे त्यारे ज ते अज्ञानमोहजन्य गर्भ जन्म मरणादिथी अथवा कर्मना भारथी रहित अनि शके छे, अन्यथा “अत्र मोहे पुनः पुनः” अे मोहादिरूप मलिन विचारोमाज तेना जन्मजन्मान्तरने समय व्यतीत थतो रहेसे.

યદ્વા-અન્ન-સસારે તત્તદ્ગતિપુ ધમ્મગ્મયાણસ્ય પુન પુનઃ કર્મવન્ધસ્તેન સાંસારિકદુઃસ્વ, તેન મોહે-પૂર્વોક્તસ્વરૂપે સમુત્પાદયતે, ઇતિ ॥ ૨૦ ॥

નનુ સંસારપરિભ્રમણામાવન્ન મોહામાવાત્, ત વ ત્રિશ્ચિટ્તજ્ઞાનાવિર્માવાત્, સોઽપિ વ મોહામાવાત્, તત્તથાન્યોન્યામ્મયો દુર્વાર, મોહામાવાદિશ્ચિટ્તજ્ઞાનાવિર્માવ, તસ્માન્ન મોહામાવ, ઇધં વ યાતન્ન ત્રિશ્ચિટ્તજ્ઞાનાવિર્માવો જાતો ન તાવત્કર્મોપશ્ચાત્તયે પુરુષસ્ય પ્રવૃત્તિ સ્યાદિત્યાપાત્તાયામર્થસમ્પ્રયાત્પિ પ્રવૃત્તિર્મયતીતિ વર્ણયતિ—‘સંસયં’ ઇત્યાદિ ।

“અન્ન મોહે પુનઃ પુનઃ” ઇમ ઘાવર્યાશકા ગીકાકાર ઇસ પ્રકારસે મી અર્થ કરતે હૈ—ઇસ સંસારમેં ઉન ૨ ગતિયોં મેં મટકનેવાલે ઇમ અજ્ઞાની જીવકો પુન પુનઃ કર્મવન્ધ, ઉસસે સાંસારિક દુઃસ્વોં કી પ્રાપ્તિ, ઉસસે પુન મોહ મેં પતન; ઇસ પ્રકારકે ભ્રમણમેં પજા હી રહના પડતા હૈ ॥ ૨૦ ॥

મોહકે અભાવસે ઇસ જીવકા સંસારમેં પરિભ્રમણ નહીં હોતા હૈ, પરન્તુ જય તક સમ્યગ્જ્ઞાન કા આધિર્માવ ઇસ જીવકે નહીં હોતા હૈ તવ તક મોહકા અભાવ નહીં હો સકતા હૈ, ઓર સમ્યગ્જ્ઞાન કા આધિર્માવ મી જય તક મોહકા અભાવ નહીં હોતા હૈ તવ તક નહીં હો સકતા । ઇસ પ્રકાર તો યહાં પર અન્યોઽન્યાઅય ઘોષ વુધાર હોગા; ક્યોંકિ મોહા માવસે સમ્યગ્જ્ઞાનાવિર્માવ હોતા હૈ, ઓર સમ્યગ્જ્ઞાનાવિર્માવ સે મોહા માવ, તવ તો જય તક સમ્યગ્જ્ઞાનકા આધિર્માવ નહીં હુઆ હૈ તવ તક કર્મોપશમનકે લિયે પુરુષ કી પ્રવૃત્તિ નહીં હો સકતી । ઇસ પ્રકારકી

‘અન્ન મોહે પુનઃ પુનઃ’ આ વાક્યાંશનો ટીકાકાર આ પ્રકારે પણ અર્થ કરે છે—આ સંસારમા તે તે ગતિઓમા ભટકનાર તે અજ્ઞાની હવને પુન પુનઃ કર્મવન્ધ તેનાથી સાંસારિક દુઃખની પ્રાપ્તિ પુનઃ મોહમા પતન; આવા પ્રકારના ભ્રમણમાં જ પડવું જ રહેવું પડે છે ॥ ૨૦ ॥

મોહના અભાવથી આ હવનનુ સંસારમાં પરિભ્રમણ થતું નથી. પરંતુ અર્થ સુધી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ આ હવને થતો નથી ત્યાં સુધી મોહનો અભાવ ઘણું શક્યતો નથી, અને સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ પણ અર્થ સુધી મોહનો અભાવ નથી થતો ત્યાં સુધી થતો નથી. આ પ્રકારે તો આ સ્થળે ‘અન્યોન્યાઅય’ ઘોષ અવશ્ય થયો; કેમ કે મોહના અભાવથી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ થાય છે, અને સમ્યગ્જ્ઞાનના આવિર્ભાવથી મોહનો અભાવ થાય છે ત્યારે તો અર્થ સુધી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ થતો નથી ત્યાં સુધી કર્મોપશમનને માટે પુરુષની પ્રવૃત્તિ

મૂલમ્—સંસયં પરિયાણઓ સંસારે પરિજ્ઞાણ ભવઈ; સંસયં  
અપરિયાણઓ સંસારે અપરિજ્ઞાણ ભવઈ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—સંશયં પરિજ્ઞાનતઃ સંસારઃ પરિજ્ઞાતો ભવતિ, સંશયમપરિજ્ઞાનતઃ  
સંસારોઽપરિજ્ઞાતો ભવતિ ॥ ૩ ॥

ટીકા—‘સંશય’—મિત્યાદિઃ સંશયમુભયકોટિવિષયકં જ્ઞાનમિત્યર્થઃ, પરિ-  
જ્ઞાનતઃ=અવબુધ્યમાનસ્ય સંસારઃ=સંશયવિષયીભૂતઃ પરિજ્ઞાતઃ=જ્ઞપરિજ્ઞયા સ્વરૂપેણ  
ફલેન ચ જ્ઞાતઃ સન્ પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞયા પરિત્યક્તો ભવતિ, તથૈવ સંગમ્ય અપરિ-  
જ્ઞાનતઃ સંસારોઽપરિજ્ઞાતઃ=જ્ઞપ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞયોરવિષયો ભવતિ । સ ચાત્ર સંશ-  
આશઙ્કા હોને પર સૂત્રકાર “ અર્થ મેં સંશય હોનેસે મી પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ ”  
ઇસ પ્રકાર ઉત્તરરૂપ સૂત્ર કહતે હૈ—“ સંસયં ” ઇત્યાદિ ।

ઉભયકોટિ કો સ્પર્શ કરનેવાલે જ્ઞાનકા નામ સંશય હૈ । તાત્પર્ય યહ  
હૈ કિ—સામાન્ય ધર્મકા પ્રત્યક્ષ હોને પર ઓર વિશેષ ધર્મ કા  
અપ્રત્યક્ષ હોને પર હી સંશયજ્ઞાન હોતા હૈ, જૈસે—ઘહ સ્થાણુ હૈ યા પુરુષ ?  
ઘહાં પર પુરુષ ઓર સ્થાણુ કા સામાન્ય ધર્મ ડંચાઈ આદિ હૈ । વિશેષ  
ધર્મ પુરુષ કે—શિર, હાથ, પૈર આદિ હૈ, તથા સ્થાણુ કે વક્રતા કોટર આદિ  
હૈ । દેખનેવાલે કો ઉભયપદાર્થગત સામાન્ય ધર્મ પ્રત્યક્ષ હૈ ઓર તદ્ગત  
વિશેષ ધર્મ અપ્રત્યક્ષ હૈ, તમી ઉસકા જ્ઞાન પરસ્પરવિરુદ્ધ ઉભય કોટિ  
કો સ્પર્શ કરતા હૈ, ઓર ઇસલિયે વહ જ્ઞાન સંશય—સ્વરૂપ હોતા હૈ ।  
ઇસ પ્રકાર સંશયકે સ્વરૂપ કો જાનને વાલે વ્યક્તિ કે લિયે સંશયજ્ઞાન  
કા વિષયભૂત ઘહ સંસાર પરિજ્ઞાત હોતા હૈ—જ્ઞપરિજ્ઞાદ્વારા સ્વરૂપ ઇવં

થઈ શકતી નથી આ પ્રકારની આશંકા થવાથી સૂત્રકાર “ અર્થમા સશય હોવાથી  
પણુ પ્રવૃત્તિ થાય છે ” આ પ્રકારે ઉત્તરરૂપ સૂત્ર કહે છે—“ સંસયં ” ઇત્યાદિ

ઉભય કોટિને સ્પર્શ કરવાવાળા જ્ઞાનતુ નામ સશય છે તાત્પર્ય કે—  
સામાન્ય ધર્મ પ્રત્યક્ષ હોય વિશેષ ધર્મ અપ્રત્યક્ષ હોય ત્યારે  
સશય જ્ઞાન થાય છે, જેમ—આ સ્થાણુ છે અગર પુરુષ ? આ જગ્યાએ પુરુષ અને  
સ્થાણુનો સામાન્ય ધર્મ ઉચાઈ આદિ છે, વિશેષ ધર્મ પુરુષને માથુ હાથ અને  
પગ આદિ છે જ્યારે સ્થાણુ ને વાકાપણુ અને પોલાપણુ આદિ છે જોનારને  
જાનને પદાર્થોના સામાન્ય ધર્મ પ્રત્યક્ષ છે અને તદ્ગત વિશેષ ધર્મ અપ્રત્યક્ષ  
છે ત્યારે જ તેનું જ્ઞાન પરસ્પરવિરુદ્ધ અનેક કોટિને સ્પર્શ કરે છે, અને એથી  
જ તે જ્ઞાન સશયસ્વરૂપ થાય છે આ પ્રકારે સંશયના સ્વરૂપને જાણનાર  
વ્યક્તિ માટે સશયજ્ઞાનનો વિષયભૂત આ સંસાર પરિજ્ઞાત થાય છે—જ્ઞ-પરિજ્ઞા



योऽर्थांशोभयकोटिकविचार एव गृह्यते, तत्रार्थो मोक्षस्तत्साधन च रत्नत्रयम् । मोक्ष संशयासम्भवं, तस्य परमपदत्वेन सकललैर्षिकैरभ्युपगमात् । मोक्षसाधने तु संशये सत्यपि महर्षिर्मवति, तत्संशयस्य प्रवृत्त्यङ्गत्वात् । तथाहि—‘चारित्र्यं मोक्षसाधनं भवति न वा?’ इति संशये सति तन्निवारणार्थं सद्गुरुरूपदेशभरणे महर्षिर्लोक्ये इत्यसे ।

एवमनर्थः संसारस्तत्कारणं च, तत्र संसारस्य तत्कारणस्य च संशयफलसे जाना गया यह संसार प्रत्याख्यानपरिज्ञा से परित्यक्त होता है । इसी प्रकार संशय को नहीं जाननेवाले व्यक्तिके लिये यह संसार अपरिज्ञात होता है—ज्ञ और प्रत्याख्यान-परिज्ञा का विषयमूल नहीं होता है । यहां अर्थ और अनर्थ इन उभयकोटिका विचारस्वरूप ही संशय ग्रहण किया है । यहां अर्थ-शब्दसे मोक्ष और उसके साधनमूल रत्नत्रयका ग्रहण हुआ है । मोक्षमें संशय का अभाव है; क्योंकि इसे परमपदरूप से अन्यमतानुयायियोंने भी स्वीकार किया है, परन्तु मोक्षके कारण-साधन में संशय है, तो भी यहां प्रवृत्ति होती है, क्योंकि तद्विषयक संशय उसमें प्रवृत्तिका कारण होता है । जैसे—“चारित्र्य मोक्षका साधन है या नहीं” इस प्रकार चारित्र्यमें मोक्ष साधनताविषय संशय होने पर उसे दूर करनेके लिये सद्गुरुके उपदेश का आश्रय करने की लोकमें प्रवृत्ति देखी जाती है ।

इसी प्रकार अनर्थ अर्थात्—संसार और उसके कारण के विषय में

दास स्वयं एव ज्ञानी ज्ञात आ संसार प्रत्याख्यान-परिज्ञाथी परित्यक्त धाम छे आ प्रकारे संशयने नहि बल्लुवावागी व्यक्ति भटे आ संसार अपरिज्ञात धाम छे—ज्ञ-परिज्ञा अने प्रत्याख्यान-परिज्ञानो विषयमूल धतो नही, आ स्थले अर्थ अने अनर्थ आ उभयकोटिना विचारस्वरूप ए संशय मानवाभा आबो छे आ स्थले ‘अर्थ शब्दही मोक्ष अने तेना साधनमूल रत्नत्रयनु जड़लु ठरवाभा आवेस छे मोक्षमा संशयनी अभाव छे, कारण के तेने परमपदरूपही थीं आ मता नुयायिआने पलु स्वीकार करेस छे परंतु मोक्षना कारणो-साधनोभा संशय छे, तो पलु प्रवृत्ति धाम छे कारण के ते विषयना संशय तेभा प्रवृत्तिनु कारण अने छे लेवी शीते आस्ति भासनु साधन छे के नहि ? आ प्रकारे चारित्र्यभा, मोक्ष-साधनविषयक संशय धता तेने दूर करवा भा’ सद्गुरुना उपदेशना आश्रय करवानी बाहमा प्रवृत्ति लेवाभा आवे छे

आ प्रकारे अनर्थ अर्थात् संसार अने तेना कारणना विषयमा संशय पलु

विषयत्वे सति ततो निवृत्तिरवश्य भवति, अनर्थसंशयस्य निवृत्त्यङ्गत्वात् । 'संशयं परिजानतः' इत्यनेन परिज्ञानविषयीभूतस्य संशयस्य-अर्थोऽनर्थो वा विषयः, तत्र-अर्थविषयकसंशयस्यानर्थविषयकसंशयतो भेदात् संशयस्य प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपं फलं भिन्नमेव भवति । विषयस्य ज्ञानभेदनियामकतया संशयपरिज्ञाने तदीयविष-

संशय भी उनकी निवृत्ति का कारण होता है, क्योंकि संसार और उसके कारणों में संशय होने पर ही उस ओर प्रवृत्ति होगी । प्रवृत्ति से उनके वास्तविक स्वरूप का बोध होगा । बोध होने पर उनसे निवृत्ति होगी । इस प्रकार परम्परारूपसे वह संशय निवृत्तिका कारण बनता है । यही बात "एवमनर्थः संसारस्तत्कारणं च" इत्यादि पंक्तियों में टीकाकारने स्पष्ट की है । अनर्थविषयक संशयके उसकी (अनर्थ की) निवृत्तिका कारण होने से, संसार और उसके कारणोंके विषयमें संशय होने पर उनसे निवृत्ति अवश्य होती है ।

"संसयं परियाणओ" इस पदसे सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि ज्ञानके विषयभूत संशय के अर्थ और अनर्थ, ये दो विषय हैं । वहां अर्थ-विषयक संशय का अनर्थविषयक संशय से भेद होनेसे उनके प्रवृत्ति रूप और निवृत्तिरूप फल परस्पर भिन्न ही हैं, क्योंकि विषयके ज्ञान-भेदका नियामक होनेसे संशयके विषयभूत पदार्थोंका परिज्ञान अवश्यभावी है ।

तेनी निवृत्तिनु कारणु भने छे, कारणु के संसार अने तेना कारणुओमा संशय थवाथी न ते तरङ्ग प्रवृत्ति थवानी प्रवृत्तिथी तेना वास्तविक स्वरूपनेओ बोध थशेओ । बोध थवाथी तेनाथी निवृत्ति थशेओ आ प्रकारे परपराङ्गथी संशय, निवृत्तिनु कारणु भने छे, आ बात "एवमनर्थ संसारस्तत्कारणं च" इत्यादि पंक्तिओमा टीकाकारे स्पष्ट करी छे, अनर्थ-विषयक संशय (अनर्थनी) निवृत्तिनु कारणु थाय छे, भाटे संसार अने तेना कारणुओना विषयमा संशय थवाथी तेनाथी निवृत्ति अवश्य थाय छे

"संसय परियाणओ" आ पदथी सूत्रकार ओवु समझवे छे के-ज्ञानना विषयभूत संशयना अर्थ अने अनर्थ ओ ओ विषयो छे ओनामां अर्थ-विषयक संशयनेओ अनर्थविषयक संशयथी लेद होवाथी ओनी प्रवृत्ति-निवृत्ति-रूप इत परस्पर जुड़ न छे, केभके विषयजान लेदनेओ नियामक थाय छे, भाटे संशयनु परिज्ञान होवाथी संशयना विषयभूत पदार्थोनु परिज्ञान अवश्य लावी छे,

યકપરિજ્ઞાનમવશ્યમ્માવિ, તત્તથ 'અર્થ સંસારોઽનન્તદુઃસ્વકારણં મથતિ ન ઘા ?' इति संशयादनर्थभूतसंसारमिदृषिर्मवति । सशयाऽपरिज्ञानं च सांभ्रयिकविषयस्याऽपरिज्ञाने नैव भवति । एवं ससारोऽपरिज्ञातमेव हि न तस्मादनर्थभूतात्संसारमिदृषिरिति समस्तसूत्रकर्तृलकार्थः ॥ ६० ३ ॥

इससे “यह संसार अनंत दुःस्वों का कारण है अथवा नहीं ?” इस प्रकारके संशय से अनर्थभूत संसारकी निवृत्ति होती है। संशय का अ परिज्ञान भी संशय के विषयभूत पदार्थों के अपरिज्ञानसे ही होता है। इस प्रकार यदि संसार अपरिज्ञात है तो उस अनर्थभूत संसार से निवृत्ति नहीं होती है। यह इस सूत्रका संक्षिप्त अर्थ है।

भावार्थ—ज्ञांकारने ‘विशिष्ट ज्ञानके सद्भावसे मोहका अभाव और मोहके अभावसे विशिष्टज्ञान का सद्भाव होगा’ इस प्रकार जो अन्योन्याश्रय दोष प्रकट कर ‘कर्मोपशान्तिके लिये पुरुषकी प्रवृत्ति जय विशिष्ट ज्ञानका उदय न होगा तब तक नहीं हो सकती’ ऐसा कहा है, उसका प्रत्युत्तर ही इस सूत्रमें प्रकट किया है। वे कहते हैं कि अर्थ संशय से भी प्रवृत्ति होती है। मोक्षमें किसी को भी संशय नहीं है, क्योंकि कि समस्त कर्मोंका अत्यन्त अभावस्वरूपवाला मोक्ष प्रत्येक आस्तिक सिद्धान्तकारने स्वीकार किया है। संशय मोक्षके कारणों में हो सकता है; क्योंकि कोई ज्ञानसे, कोई अज्ञानके नाशसे और कोई परस्पर

આથી “આ સ સાર અનન્ત દુઃખેનુ કારણ છે કે નહિ ?” આ પ્રકારના સંશયથી

અનર્થભૂત સંસારની નિવૃત્તિ થાય છે સંશયનું અપરિજ્ઞાન સંશયના વિષયભૂત પદાર્થોના અપરિજ્ઞાનથી થાય છે આ રીતે યદિ સંસાર અપરિજ્ઞાત છે તો તે અનર્થભૂત સંસારથી નિવૃત્તિ મળી શકતી નથી. એવો આ સૂત્રનો સંક્ષેપમાં અર્થ છે

ભાવાર્થ:—શકાકારે “વિશિષ્ટ જ્ઞાનના સદ્ભાવથી મોહનો અભાવ અને મોહના અભાવથી વિશિષ્ટ જ્ઞાનનો સદ્ભાવ થશે” આ પ્રકારે ‘અન્યોન્યાશ્રય દોષ પ્રગટ કરી કર્મોપશાન્તિને માટે પુરૂષની પ્રવૃત્તિ બધા સુધી વિશિષ્ટ જ્ઞાનનો ઉદય ન થાય ત્યાં સુધી નથી થઈ શકતી, એવું કહ્યું છે એનો પ્રત્યુત્તર આ સૂત્રમાં આપવામાં આવેલ છે તેઓ કહે છે કે—અર્થસંશયથી પણ પ્રવૃત્તિ થાય છે મોક્ષમાં કોઈને કશો પણ સંશય નથી, કેમ કે સમસ્ત કર્મોના અત્યંત-અભાવ-સ્વરૂપવાળા મોક્ષનો પ્રત્યેક આસ્તિક-સિદ્ધાંતકારે સ્વીકાર કરેલ છે સંશય, મોક્ષના કારણોમાં થઈ શકે છે કેમ કે કોઈ જ્ઞાનથી કોઈ અજ્ઞાનના નાશથી અને કોઈ પરસ્પરનિરપેક્ષ જ્ઞાન અને ચારિત્રથી સુખિતની

निरपेक्ष ज्ञान एवं चारित्र्य से मुक्ति की प्राप्ति होना बतलाते हैं, अतः कारणोंमें विवाद होने पर यह स्वाभाविक संशय होता है कि यह मान्यता ठीक है अथवा यह मान्यता ठीक है ?। इस प्रकार जब संशय होता है तो उसके निर्णयार्थ पुरुष की आकांक्षा उस ओर झुकती है। जिस प्रकार चना आदि बीजों के अंकुरोत्पादन करनेमें मनुष्य-किसान-को जब सन्देह होता है कि ये चने अंकुरोत्पादन कर सकते हैं या नहीं? तब यह उस उद्भूत संशय से प्रेरित हो कर उनकी परीक्षा करनेका उपक्रम करता है और उन्हें किसी वर्तन में पानी भर कर रख देता है। इस प्रकार संशय से प्रवृत्तिशील हो कर वह अपनी धारणा का निर्णय कर लेता है। इसी प्रकार मोक्षकारणक मान्यताएँ जब सन्देहके विषय-भूत बनती हैं, तब मोक्षाभिलाषी जीव उससे प्रेरित होकर सद्गुरु आदि विशिष्ट जानियों के उपदेश आदिके श्रवण की ओर प्रवृत्ति करता है और उससे सत्यासत्यका निर्णय करता है।

पदार्थ में जब तक सन्देह नहीं होता है तब तक उसके निर्णय करने की ओर प्रवृत्ति नहीं होती है, अतः विशिष्ट ज्ञानके अभावमें भी प्रवृत्ति होती है, यह बात निश्चित है। “संसार और उसके कारण अनन्त दुःखदायी हैं अथवा नहीं” इस प्रकार जब मोक्षार्थी जीवको उनमें

प्राप्ति भतावे छे, भाटे धारणुमा विवाह थवाथी आ स्वाभाविक संशय थाय छे के पड़ेदी मान्यता ठीक छे के आ मान्यता ठीक छे आवा प्रकारेना संशय न्यारे थाय छे त्यारे तेना निर्णय भाटे पुरुषनी आकांक्षा तेनी तरङ्ग वणे छे. जेवी रीते यणु आदि धीजेभां अंकुरोत्पादन करवा विषे मनुष्य-भेड़त-ने स'हेड़ उत्पन्न थाय छे के आ यणु आदि अंकुरोत्पादन करी शकशे के नहि ? त्यारे ते उह्लवेला ते संशयना धारणु तेनी परीक्षा करवाना कामे लागी नय छे अने तेने जण-पूणु डोष वासणुमा गणे छे आ प्रकारे संशयथी प्रवृत्तिशील भनी ते पेतानी धारणुना निर्णय करी वे छे जेवी ज रीते मोक्षना धारणुनी मान्यताओमा न्यारे सहेड़ उत्पन्न थाय छे त्यारे मोक्षार्थी एव तेनाथी प्रेरित थथ सद्गुरु आदि विशिष्ट ज्ञानिओना उपदेश आदिना श्रवणु करवानी प्रवृत्ति करे छे अने जे ठारा सत्य अने असत्यनो निर्णय करे छे

पदार्थमा नया सुधी सहेड़ नथी थतो त्या सुधी तेना निर्णय करवानी प्रवृत्ति नथी थती, भाटे विशिष्ट ज्ञानना अभावमा पणु प्रवृत्ति थाय छे, जे वात निश्चित छे. “संसार अने तेनु धारणु अनन्त दुःखदायी छे के नहि” आवा

સંશયવત્ સંસારઃ પરિજ્ઞાતો ભવતિ, વસ્તુપરિજ્ઞાનાન્ સર્વચિરતિરિતિ તાં નિર્વેપ્દુ માદ—‘જે છેપ્’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ—જે છેપ્ તે સાગારિય ન સેવહ્, કદ્દુ ઇવમધિયાણઓ ઘિહ્યા મદસ્ત ઘાલયા, લહ્યા દુરસ્થા પદિલેહાપ્ આગમિત્તા આણધિજ્જા આણાસેવણયાપ્—ત્તિધેમિ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

છાયા—યદછેષ્ઠઃ સ સાગારિકં ન સેવતે, કૃત્વા ઇવમધિજ્ઞાનતો દ્વિતીયા મન્દસ્ય ઘાસ્તા, લ્હાનપ્યર્યાન્ પ્રસ્યુપેહ્યાઽઽગમ્યાઽઽદ્વાપયેદનાસંબનતયતિ ઘ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

સન્દેહ હોતા હૈ તો વહ્ ઉસ સન્દેહસે ઉસકા નિર્ણય કર ઘહાં સે નિષ્ક્રમ હોતા હૈ, હસ લિયે ઘિદિષ્ટ જ્ઞાનકે અભાવમેં સંશય સે ‘મી ઝીઘકી જબ પદાર્થ કે નિર્ણય કરને કી ઓર પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ તો હસ પ્રકારસે અન્યોન્યા અય ઘોપ નહીં આતા હૈ, ક્યોં કિ મોહકે કારણભૂત સંસારાદિક પદાર્થો મેં ‘યે સુખદાયી હૈં અથવા નહીં?’ હસ પ્રકાર કે સન્દેહ કે નિર્ણયાર્થ ઉનમેં પ્રવૃત્તિશીલ પુરુષ કે સન્દેહ દૂર હોતે હી વિરાગપરિણતિ હો જાયગી । હસ પરિણતિકા નામ હી મોહકા અભાવ હૈ, અતઃ સૂત્રકાર કા યહ કપન કિ ‘સંશય કો નહીં જાનનેઘાલે કે લિયે સંસાર અપરિજ્ઞાત હૈ ઓર ઉસે જાનનેઘાલે કે લિયે વહ પરિજ્ઞાત હૈ’ ઠીક હી હૈ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

સંશયજ્ઞાનઘાલે કો સંસાર પરિજ્ઞાત હોતા હૈ ઓર ઉસકે પરિજ્ઞાત હોને પર ઉસે સર્વચિરતિકા લાભ હોતા હૈ, અતઃ ઉસ ચિરતિકા કો સૂત્ર કાર કહતે હૈ—‘જે છેપ્’ ઇત્યાદિ ।

પ્રકારે અથારે મોક્ષાર્થીં છવને તેમાં સદેહ ઘાય છે તે તે એ સદેહથી તેને નિજ્ઞય કરી ત્યારથી નિવૃત્ત ઘાય છે આ કારણે વિશિષ્ટ જ્ઞાનના અભાવમા સશયથી પણ અથારે પદાર્થને નિજ્ઞય કરવા તરફ છવની પ્રવૃત્તિ ઘાય છે ત્યારે ‘અન્યો ન્યાત્રય’ ઘાય અવતો નથી. કારણ કે મોહના કારણભૂત સંસારાદિક પદાર્થોમા એ મુખદાર્થી છે કે નહિ એવા પ્રકારના નિજ્ઞય માટે તેનામાં પ્રવૃત્તિશીલ પુરુષને સદેહ દૂર ઘવા જ વિરાગ-પરિણતિ ઘર્ષ જશે, આ પરિણતિનું નામ જ મોહને અભાવ છે માટે સૂત્રકારનું આ કથન કે સશયને નહિ જાણનારા માટે સંસાર અપરિજ્ઞાત છે અને તેને જાણવાવાળા માટે તે પરિજ્ઞાત છે’ ઠીક જ છે ॥ સૂ. ૩ ॥

સશયજ્ઞાનવાળાને સંસાર પરિજ્ઞાત ઘાય છે અને સંસાર પરિજ્ઞાત ઘવાથી તેને સર્વ વિરતિને લાભ ઘાય છે માટે એ વિરતિને સૂત્રકાર કહે છે—‘જહેપ્’ ઇત્યાદિ.

टीका—‘ग्रथ्छेक’ इत्यादि । यः कश्चित् छेकः=चतुरः परिजातविषयकडु-  
विपाक इत्यर्थः, स सागारिकं=मैथुनं दैवयानुपतैरश्वरूपं न सेवते=न करोति, मनोवा-  
कायैर्मैथुनपरायणो न भवतीत्यर्थः । यश्च मोहवशेन पुरुषवेदोदयान्मैथुनं सेवते स  
कृत्वा=विधाय गुर्वादिभिः पृष्टे सति एवं=मैथुनसेवनं, अविजानतः=अन्तर्भावितण्य-  
र्थतया अविज्ञापयतः गुरवे चानिवेद्यतस्तदपह्नुवानस्येत्यर्थः मन्दस्य=अज्ञस्य-अ-  
विदितमैथुनकडुकफलस्य द्वितीया=मैथुनसेवनादपरा मृषावादरूपा, यद्वा-द्वितीया  
=कृतपापापनोदार्थं पुनरकरणतयोत्थाय प्रायश्चित्तानाचरणरूपा, वालता=अज्ञानता  
भवति, उक्तञ्च—

जो कोई चतुर है, अर्थात् विषयों के कडुक विपाक का ज्ञाता है, वह देव, मनुष्य और तिर्यञ्चों के मैथुन का मन, वचन और काय से सेवन करने में परायण नहीं होता है । जो मोहके वशसे अथवा पुरुष वेद के उदयसे एकान्तमें कामसेवन करता है और गुरु आदिक के पूछने पर अपने कृत मैथुनको छिपाता है—नहीं प्रकट करता है, मैथुन के कडुक फलको नहीं जाननेवाले उस अज्ञके मैथुनसेवन से एक तो चतुर्थव्रत, भंगजन्य दोष लगता है, और पूछे जाने पर ‘मैंने मैथुन सेवन नहीं किया है’ इस प्रकार छिपाने से मृषावादरूप द्वितीय पापका भी वह पात्र होता है । अथवा कृत पाप को दूर करने के लिये ‘मैं अब इस पाप का सेवन नहीं करूंगा’ इस प्रकार के विचारसे युक्त होकर प्रायश्चित्त नहीं लेने से अज्ञानता का प्रसंग आता है । कहा भी है—

जे केई चतुर छे, ओटले विषयोना कडवा विपाकनो ज्ञाणकार छे, ते देव, मनुष्य अने तिर्ययोना मैथुनने मन, वचन अने अयाथी सेवन करवाभा परायण्य थतो नथी, जे मोडना वशथी अथवा पुइष-वेदना उदयथी ओकातभा काम-सेवन करे छे अने शुइ आदिना पुछवाथी पोते करेस मैथुन-पापने तेनाथी छुपावे छे- प्रगट करतो नथी, मैथुनना कडवा इणने न ज्ञाणनार ते अजानी जेवने मैथुन सेवनथी ओक तो चतुर्थव्रत-ल गजन्य दोष लागे छे, अने ज्यारे तेने पुछवाभा आवे छे त्यारे ते ‘मे मैथुन सेवेस नथी.’ आ प्रकारे छुपावे छे, तेथी मृषावादरूप भीज पापनो पात्र पणु ते थाय छे, अथवा करेला पापने इर करवा माटे ‘हुँ डवे आवा पापनु सेवन नहि कइ’ आ प्रकारना सकटप करीने पणु जे तेने माटे प्रायश्चित्त अगीकार करतो नथी तो तेने अज्ञानतानो प्रसंग आवे छे. कछु पणु छे—

“ જે સ્વલ્પ વિસર્ગ સેવક, સેવિકા યા જાળોપક, પરેણ યા પુદ્ગો નિષ્કલ, અહયા તં પરં સપ્ણ યા વાવિદ્યયરેણ યા વોસેણ ઉવર્તિપિઝ્જક ”-ઈતિ ।

છાયા—યઃ સ્વલ્પ વિપયં સેવતે, સેવિક્ષ્વા યા નાલોચયતિ, પરેણ યા પૃષ્ઠો નિહુત, અથવા ત પર સ સ્વેન યા વોપેણ વાપિષ્ઠતરેણ યા વોપેણોપલિમ્પતિ, ઈતિ ।

કિમેતેનેત્યાઈ—‘અધ્યા’-નિત્યાદિ, અધ્યાનપિ—યાજ્ઞાનપિ સ્વાપીનાનિત્યર્યાઃ, અર્થાન્—શબ્દાદિવિપયાન્, અથ દ્વિતીયાર્થે પ્રયમાઽઽર્પત્વાત્ ।

યદ્વા ‘કુરત્યા’ ઈતિ દેશીમાપયા ‘ઘરિદ્વા’ તેન સમ્યાન્=વિપયાન્ ચિષ્ઠા વ્યવિર્નિદધ્યાત્, અલભ્યાંચ મનસાઽપિ ન ચિન્તયેતિતિ માથ । પ્રત્યુપેક્ષ્ય=નરક નિગોદાદિદુઃસ્વનનકત્વેન પર્યાલોચ્ય, તાનેચ પરપ્રેહ ય કદુકફલપ્રદતયા આગમ્ય=

“ જે સ્વલ્પ વિસર્ગ સેવક, સેવિકા યા જાળોપક, પરેણ યા પુદ્ગો નિષ્કલ, અહયા તં પરં સપ્ણ યા વોસેણ વાવિદ્યયરેણ યા વોસેણ ઉવર્તિપિઝ્જક ” ઈતિ ।

જો વિપયસેવન કરતા હૈ; સેવન કરને પરવસકી ધાલોષના નહીં કરતા હૈ, દુસરે-શુભાદિકોં કે પૂછને પર વસે છિપાતા હૈ, યહ અપને વાપિષ્ઠતર ( શુક્તર ) વોપ સે સ્વયં ઉપલિપ્ત હોતા હૈ ।

ઈસ લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ મોક્ષામલાપી કા કર્મન્ય હૈ કિ વહ પ્રાપ્ત યો ઉન શબ્દાદિક વિપયોં કા યહ વિચાર કર ત્યાગ કરે કિ—ઈન કા વિપાક ઝીવ કો નરકનિગોદાદિકકે દુઃખોં કા જનક હૈ, તથા હનકે સેવનકર્મા, ઈસ લોક ઔર પરલોક, વોનોં લોકોં મેં મયંકર દુઃખોં કો ધોગતે હૈ । ઝિસ પ્રકાર યહ સ્વયં ઉનકા કદુક વિપાક જાન કર વનસે

જે સ્વલ્પ વિસર્ગ સેવક સેવિકા યા જાળોપક, પરેણ યા પુદ્ગો નિષ્કલ, અહયા તં પરં સપ્ણ વોસેણ યા વાવિદ્યયરેણ યા વોસેણ ઉવર્તિપિઝ્જક ”-ઈતિ ।

જે વિષયનું સેવન કરે છે, સેવન કરવા છતાં એની આલોચના કરતો નથી, બીજું શુદ્ધ આદિનાં પુણ્યો છતાં હુષાવે છે તે પોતાના વાપિષ્ઠ તર (શુદ્ધતર) દોષથી પોતે ઉપલિપ્ત થાય છે

આ કારણે સૂત્રકાર કહે છે કે—મોક્ષામીજનનું એ કર્તવ્ય છે કે તે પ્રાપ્ત પણ શબ્દાદિ વિષયોનો આ પ્રકારે વિચાર કરી ત્યાગ કરે કે શબ્દાદિ વિષયોના વિપાક છવને માટે નરક-નિગોદાદિક દુઃખોનું કારણ છે અને તેનું સેવન કરનાર આલોચ અને પરલોકમાં જન્મ કરે તેને ધોગવે છે જે પ્રકારે તે પોતે તેના કદવા વિપાક અર્જીને તેનાથી વિરક્ત થાય છે તે જ પ્રકારે તે બીજા

ज्ञात्वा अन्यानू=स्वातिरिक्तान् जनान् अनासेवनतया 'मैथुनमनासेवनीयम्' इत्यादिरूपेण आज्ञापयेत्=तीर्थकराज्ञामवधार्योपदिशेत् । स्वयमपि तस्माद्विरमेदित्यर्थोऽपि । इति ब्रवीमीत्यधिकारसमाप्त्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

अन्यदप्याह—'पासह' इत्यादि ।

मूलम्—पासह एगे ह्रस्वेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे । इत्थ फासे पुणो पुणो, आवन्ती केयावन्ती लोयंसि आरंभजीवी, एएसु चैव आरंभजीवी । इत्थवि वाले परिपच्चमाणे रमइ पावेहिं कम्ममेहिं, असरणे सरणंति मन्नमाणे, इहमेगोसिं एगचरिया भवइ । से बहुकोहे बहुमाणे बहुमाये बहुलोभे बहुरणे बहुनडे बहुसडे बहुसंकप्पे आसवसक्की पल्लिउच्छन्ने उट्टियवायं पवयमाणे, 'मा मे केइ अदक्खू' अज्जाणपमायदोसेणं सययं मूढे धम्मं नाभिजाणइ, अट्ठा पयमाणव ! कम्मकोविआ जे अणुवरया अविजाए पलिमुक्खमाहु, आवट्टमेव अणुपरियट्ठंति—त्तिवोसि ॥ सू० ५ ॥

छाया—पश्यत एकान् रूपेषु गृद्धान् परिणीयमानान् । अत्र स्पर्शान् पुन पुनः, यावन्तः कियन्तो लोके आरम्भजीविन, एतेष्वेव आरम्भजीविनः । अत्रापि बालः परिपच्यमानो गमते पापेषु कर्मसु, अकरणं शरणमिति मन्यमानः, इहैकेपापेकचर्या भवति । स बहुक्रोधो बहुमानो बहुमायो बहुलोभो बहुरजा ( बहुरतो ) बहुनटो बहुशठो बहुसंकल्प आसवसक्तिः पल्लितावच्छन्न उत्थितवादं प्रवदन्, 'मा मा केऽप्यद्राक्षुः' अजानप्रमाददोषेण सततं भ्रष्टो धर्मं नाभिजानाति, आर्ताः प्रजा मानव ! कर्मकोविदा येऽनुपरता अविद्यया परिमोक्षमाहुः, आवर्तमेवानुपरिवर्तन्ते, इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

विरत होता है उसी प्रकार दूसरे जीवों को भी "ये मैथुनादि विषय सेवन करने योग्य नहीं है" इस प्रकार उनसे विरक्त होनेका उपदेश देता है । "इति ब्रवीमि" इस प्रकार यह विषय जैसा मैंने भगवान् के मुख से सुना है वैसा ही है जम्बू ! तुम से कहा है ॥ सू० ४ ॥

और भी कहते हैं—'पासह' इत्यादि—

लुवेने पणु "मैथुनादि विषयो सेवन करवा योग्य नथी" आ प्रकारे तेनाथी विरक्त थवानो उपदेश आपे "इति ब्रवीमि" आ प्रकारे आ विषय ने प्रकारे मे भगवानना सुणेथी सालोये छे ते प्रकारे न छे न्भू ! तमने इहेल छे ॥ सू० ४ ॥

इरीथी पणु इहे छे—'पासह' इत्यादि



टीका—‘पश्यत’ इत्यादि । हे भव्यजीवा ! ययं रूपेण—शुक्लादिषु चक्षु  
रिन्द्रियप्रत्ययविषयेषु, बहुवचननिर्देशेन शब्दादिषु—शब्द—गन्ध—रस—स्पर्शेषु कटुक

हे भव्य ! देखो ये कितनेक संसारी जीव, चक्षु—इन्द्रियके विषय  
यमूत शुक्लादि रूपों में, तथा अन्य इन्द्रियोंके विषयमूत शब्द, गन्ध,  
रस और स्पर्शरूप विषयों में कि जिनका सेवन इन जीवोंको परि  
णाममें कटुक फल प्रदाता होता है उनमें कैसे मूर्च्छित हो रहे हैं ।  
इन्द्रियोंके विषयों में लुब्ध ये प्राणी उन २ विषयोंको प्राप्त करनेकी  
ओर झुकी हुई इन्द्रियों द्वारा विषयोंके सन्मुख और संसारके सन्मुख  
होते रहते हैं ।

भाषार्थ—इन्द्रियोंमें आसक्त प्राणी इन्द्रियोंके विषयोंमें अधीन  
बन कर उनके सेवनजन्य परिणाम का कुछ भी विचार न करके  
निरन्तर उन्हींमें आसक्त होता रहता है । उसे इस बात का भान  
ही नहीं होता कि इन विषयोंके सेवनसे इन्द्रियोंकी तृप्ति नहीं  
होगी । विषयामिलापा इन्द्रियोंको अपने २ विषय की ओर ही  
अधिकाधिक रूपमें आकृष्ट करती रहती है । इस परिणति से यह अपने  
संसार की वृद्धि ही करता है । एक २ इन्द्रियके विषयको सेवन करने  
वाले प्राणियोंकी वह दुर्दशा अपने नयनोंसे निहारता है फिर भी अपने  
को सुरक्षित मान रहा है, यही विषयोंके सेवनकी बल्यसा है । वह

हे भव्य ! जो तो पश्ये अ कटुका संसारी एवो यश्च इन्द्रियानां विषय  
यमूत शुक्लादि रूपेण तथा अन्य इन्द्रियानां विषयमूत शब्द, गन्ध, रस, रस, अने  
स्पर्शादि विषयेण हे तेषु सेवन ते एवोने परिणामेण कटुका फल आपणा  
वायु निवृत्ते ये येण केवा मूर्च्छित यत् पश्येते इन्द्रियानां विषयेण लुब्ध ते  
प्राणी ते ते विषयाने प्राप्त करवा तश्च वगती इन्द्रियो द्वारा विषयानां आभे अने  
संसारनी तश्च येवार्थ पश्येते

भाषार्थ—इन्द्रियेण आसक्त प्राणी इन्द्रियानां विषयाने अधीन बनी  
तेना सेवनना परिणामेण कश्चि पञ्च विचार कर्त्तव्यः हर—अभेश तेण आसक्त  
बनी रहे छ तने जे वाननु भान यनु नहीं क तेना विषयाना सेवनशी इन्दि  
येनी तृप्ति वधानी नहीं. विषयाना अमिलापा इन्द्रियेने योताना विषय तश्च  
अधिकारिक रूपेण येवती रहे छे. आ परिणतिथी त योताना संसारनी वृद्धि  
/ करे छे अक अक इन्द्रियाना विषयनु सेवन करनार प्राणानी दुईशा ते  
पोतानी आभे नुब्ये छ छन पञ्च योताने सुरति माने छे जेव विषयाना

तरविपाकजनकेषु एकान् कांश्चित् गृह्णान्=मूर्च्छितान् परिणीयमानान्-परि=सर्वतो  
नीयमानान्=इन्द्रियैर्विषयसम्मुखं संसारसम्मुखं परत्र नरकनिगोदादिषु वा प्राप्य-  
देखता है कि (१) स्पर्शन-इन्द्रिय का योही मत्त गजराज खड्डे में गिर कर  
अपने प्यारे जीवन का नाश कर देता है, (२) रमना-इन्द्रिय का कामी मत्स्य  
कांटेमें लगे हुए मांस की अभिलाषा में पड कर अपने प्राणों को खो देता  
है, (३) घ्राण-इन्द्रिय का वशीभूत वना विचारा भ्रमर कालके गालमें पड-  
जाता है। (४) चक्षुरिन्द्रिय का लोलुपी पतंग अपने प्राणों को दीपक की लौ में  
पड कर नष्ट कर देता है, (५) कर्ण-इन्द्रिय के विषय का लोभी मृग वधियों  
द्वारा अपने भोले-भाले जीवन का उत्सर्ग कर देता है। परन्तु यह सब  
कुछ अपनी आंखों से देखते हुए भी पांचों इन्द्रियों के विषयोंमें मत्त  
हुआ यह प्राणी फिर भी नहीं चेतता, यही बड़ी विचित्रता है। विष-  
यासक्त जीवों की विषयों की ओर प्रवृत्ति होनेसे संसारमें उनका पतन  
तो होता ही है, परन्तु वे परभवमें भी नरकनिगोदादिकमें जा कर  
निवास करते हैं। यद्यपि “संसारसम्मुखं” इस पदसे ही नरक-निगो-  
दादिकमें उनका पतन सिद्ध होता है, फिर भी “परत्र नरकनिगोदा-  
दिषु” यह जो वाक्य पृथक् रूपसे दिया है उसका अभिप्राय यह है  
कि अज्ञानी जीव अथवा चार्वाक (नास्तिक) जैसे भौतिकवादी प्रत्यक्ष

सेवननी भणवत्ता छे ते बुझे छे के-(१) स्पर्शन-इन्द्रियमा मत्त भनेको गजराज  
आडमा पडी पोताना प्यारा लवननो नाश करी हे छे (२) रमना-इन्द्रियनु  
दोलुपी माछुं गल (डाटा)मा लागेल मासनी अबिलाषामा पडी पोताना  
प्राणु जोध गेसे छे (३) घ्राण-इन्द्रियने वशीभूत भनेल लभरे काणना गालमा  
पडी लय छे (४) चक्षुइन्द्रियनो दोलुप पतंगीयो दीपकशिणामा पडी  
पोताना प्राणु न्योछवर करी हे छे (५) कर्ण-इन्द्रियना विषयनो दोली मृग  
शिकारीदारा पोताना लोणा लवननो नाश वडोरी ले छे परतु आभधु पोतानी  
सगी आये जेतो थके पणु पायो इन्द्रियोना विषयोमा मत्त भनेल आ मानव प्राणी  
चेततो नथी, आ न महान विचित्रता छे विषयायुक्त लवोनी विषयो तरइ प्रवृत्ति  
डोवाने लभ संसारमा तेनु पतन थतु न रहे छे, परतु परलवमा पणु तेने नरक-  
निगोदादिकमा निवास करवो पडे छे जे के “संसारसम्मुखं” आ पढथी न नरक-  
निगोदादिकमा तेनु पतन सिद्ध थाय छे, तो पणु “परत्र नरकनिगोदादिषु ” आ न  
वाक्य पृथक् रूपे आपेल छे तेनो अबिप्राय जे छे के अज्ञानी लव अथवा  
आर्वाक ( नास्तिक ) जेवा भौतिकवादी प्रत्यक्ष दृश्यमान आ मनुष्य अने तिर्य्य

ટીકા—‘પદ્મયત’ ઇત્યાદિ । હે મમ્યજીવા ! યૂયં રૂપેણ—શુક્લાદિપુ ચઘ્ન  
રિન્દ્રયમસ્યસવિપયપુ, વહુવચનનિર્વેશન પ્રત્યાદિપુ—અમ્—ગન્ધ—રસ—સ્પર્શેણુ કદુક

હે મમ્ય ! દેવો યે કિલનેક સંસારી જીવ, ચઘ્ન—ઇન્દ્રિયકે વિપ  
યમૂત શુક્લાદિ રૂપો મેં, તથા અન્ય ઇન્દ્રિયોકે વિપયમૂત ઘન્દ, ગન્ધ,  
રસ ઓર સ્પર્શસ્વ વિપયો મેં કિ જિનકા સેવન ઇન જીવો કો પરિ  
ણામમેં કદુક ફલ પ્રદાતા હોતા હૈ ઊનમેં કૈસે મૂર્ચ્છિત હો રહે હૈં ।  
ઇન્દ્રિયોંકે વિપયોં મેં લુન્ધ યે પ્રાણી ઊન ૨ વિપયોંકો પ્રાપ્ત કરને કી  
ઓર શુકી છુઈ ઇન્દ્રિયોં દ્વારા વિપયોંકે સન્મુલ્લ ઓર સંસારકે સન્મુલ્લ  
હોતે રહતે હૈં ।

માવાર્થ—ઇન્દ્રિયોં મેં આસક્ત પ્રાણી ઇન્દ્રિયોંકે વિપયોં મેં અધીન  
બન કર ઊનકે સેવનજન્ય પરિણામ કા કુચ મી વિચાર ન કરકે  
નિરન્તર ઊન્હોં મેં આસક્ત હોતા રહતા હૈં । ડસે ઇસ યાત કા માન  
હી નહીં હોતા કિ ઇન વિપયોંકે સેવનસે ઇન્દ્રિયોંકી તૃપ્તિ નહીં  
હોગી । વિપયામિલાપા ઇન્દ્રિયોંકો અપને ૨ વિપય કી ઓર હી  
અધિકાધિક રૂપમેં આફૂલ્લ કરતી રહતી હૈં । ઇમ પરિણતિ સે વહ અપને  
સંસાર કી વૃદ્ધિ હી કરતા હૈં । ઇક ૨ ઇન્દ્રિય ક વિપય કો સેવન કરને  
વાલે પ્રાણિયોં કી વહ વુર્દ્ધા અપને નયનોં સે નિહારતા હૈં કિર મી અપને  
કો સુરક્ષિત માન રહા હૈં, યહી વિપયોંકે સેવન કી યલ્લસતા હૈં । વહ

હે મમ્ય ! જો તે પશુ, જો કેવલાક સંસારી છવે વાસુ ઇન્દ્રિયના વિપ  
યમૂત શુક્લાદિ રૂપેણ તથા બીજા ઇન્દ્રિયેના વિપયમૂત ઘન્દ, ગન્ધ, રસ, અને  
સ્પર્શાદિક વિપયેણ કે જેનું સેવન તે છવેને પરિણામમાં ક વા ઇણ આપવા  
વાળું નિવડે છે એમાં કેવા મૂર્ચ્છિત થઈ રહેલ છે ઇન્દ્રિયેના વિપયેણ શુભ તે  
પ્રાણી તે તે વિપયેને પ્રાપ્ત કરવા તરફ ઘણતી ઇન્દ્રિયે દ્વારા વિપયેની આમે અને  
સંસારની તરફ ખેચાઈ રહેલ છે

માવાર્થ—ઇન્દ્રિયેના આસક્ત પ્રાણી ઇન્દ્રિયેના વિપયેને આધીન બની  
તેના સેવનના પરિણામને કાઈ પણ વિચાર કર્યા વગર હર-હમેશ તેમ અસકલ  
બની રહે છે, તેને જો વાતનું માન થતું નથી કે તેવા વિપયેના સેવનથી ઇન્દ્રિ  
યેની તૃપ્તિ થવાની નથી. વિપયેની અભિલાષા ઇન્દ્રિયેને પોતાના વિપય તરફ  
અધિકારિક રૂપમાં ખેચતી રહે છે જ્યાં પરિણતિથી તે પોતાના સંસારની વૃદ્ધિ  
ન કરે છે એક એક ઇન્દ્રિયના વિપયનું સેવન કરનાર પ્રાણીની છુઈશા તે  
પોતાની આખે જુલ્લે છે છતાં પણ પોતાને સુરક્ષિત માને છે એ જ વિપયેના

तरविपाकजनकेषु एकान् कांश्चित् गृह्णान्=मूर्च्छितान् परिणीयमानान्-परि=सर्वतो  
नीयमानान्=इन्द्रियैर्विषयसम्मुखं संसारसम्मुखं परत्र नरकनिगोदादिषु वा प्राप्य-  
देखता है कि (१) स्पर्शन-इन्द्रिय का मोही मत्त गजराज ग्वड्डे में गिर कर  
अपने प्यारे जीवन का नाश कर देता है, (२) रसना-इन्द्रिय का कामी मत्स्य  
काटेमें लगे हुए मांस की अभिलाषा में पड कर अपने प्राणों को ग्बो देता  
है, (३) घ्राण-इन्द्रिय का बशीभूत बना विचारा भ्रमर कालके गालमें पड-  
जाता है। (४) चक्षुरिन्द्रिय का लोलुपी पतंग अपने प्राणों को दीपक की लौ में  
पड कर नष्ट कर देता है, (५) कर्ण-इन्द्रिय के विषय का लोभी मृग बधिकों  
द्वारा अपने भोले-भाले जीवन का उत्सर्ग कर देता है। परन्तु यह सब  
कुछ अपनी आंखों से देखते हुए भी पांचों इन्द्रियों के विषयोमें मत्त  
हुआ यह प्राणी फिर भी नहीं चेतता, यही बड़ी विचित्रता है। विष-  
यासक्त जीवों की विषयों की ओर प्रवृत्ति होनेसे संसारमें उनका पतन  
तो होता ही है, परन्तु वे परभवमें भी नरकनिगोदादिकमें जा कर  
निवास करते हैं। यद्यपि “संसारसम्मुखं” इस पदसे ही नरक-निगो-  
दादिकमें उनका पतन सिद्ध होता है, फिर भी “परत्र नरकनिगोदा-  
दिषु” यह जो वाक्य पृथक् रूप से दिया है उसका अभिप्राय यह है  
कि अज्ञानी जीव अथवा चार्वाक ( नास्तिक ) जैसे भौतिकवादी प्रत्यक्ष

सेवननी भणवत्ता छे ते बुझे छे डे-(१) स्पर्शन-इन्द्रियमा मत्त भनेदो गजराज  
भाडामा पडी पोताना प्यारा लवननो नाश करी दे छे (२) रसना-इन्द्रियनु  
दोलुपी भाछुं गल (डाटा)मा लागेल मामनी अलिलाषामा पडी पोताना  
प्राणु जोड जेसे छे (३) घ्राण-इन्द्रियने वशीभूत भनेल लभरे घ्राणना गालमा  
पडी लय छे (४) चक्षुइन्द्रियने दोलुप पतंगीये दीपकशिषामा पडी  
पोताना प्राणु न्योछावर करी दे छे (५) कर्ण-इन्द्रियना विषयने दोली मृग  
शिडारीद्वारा पोताना लोणा लवननो नाश वडोरी दे छे परतु आणधु पोतानी  
सर्गी आणे लेतो थडे पणु पाये इन्द्रियोना विषयोमा मत्त भनेल आ मानव प्राणी  
चेततो नथी, आ ल मडान विचित्रता छे विषयासक्त लवोनी विषयो तरइ प्रवृत्ति  
डोवाने लई संसारमा तेनु पतन थतु ल रडे छे, परतु परलवमा पणु तेने नरक-  
निगोदादिकमा निवास करवो पडे छे ले डे “संसारसम्मुखं” आ पदथी ल नरक-  
निगोदादिकमा तेनु पतन सिद्ध थाय छे, तो पणु “परत्र नरकनिगोदादिषु ” आ ले  
वाक्य पृथक् रूपे आपेल छे तेनो अलिप्राय ये छे डे अज्ञानी लव अथवा  
चार्वाक ( नास्तिक ) लेवा लौतिकवादी प्रत्यक्ष दृश्यमान आ मनुष्य अने तिरथे

માપ્તાન, અમ્પિઅપિ ભાવં મદામોહાન્ પારદારિકાદીન્ આત્મોદ્ધવપથ ધનપ્રહરણાદિ મિર્દુત્તૈર્વાદ્યમાનાન્, મયત્વા-નાદ્ધરવિપુ સસક્તાન્, ધ્યમ્યાને ધર્માર્થ પરિણીયમાનાન્, યદ્વા વુધ્યમાનાન રાગદ્વેપવટાન વિપયસ્રોતોભિન્નત્ત્વ ત્થ પરિણીયમાનાન્, અથવા

દૃશ્યમાન હસ મનુષ્ય ઔર તિર્યગ્ગતિકો હી સમાર સમજ રહે હૈ ઔર इनके दुःखों को ही दुःख मान रहे हैं, परन्तु हमें यह समझाना है कि तुम्हारी मान्यता से भी अधिक संसार और दुःखराशि है। अपने हाथ से सबको सादेतीन हाथ समझना जिस प्रकार गलत है उसी प्रकार अपनी मान्यतानुसार ही संसार एवं दुःख समझना भी गलत है। यद्वा पर दुःखों का वर्णन चल रहा है, अतः उन्हीं की प्रधानता प्रकट करने के लिये नरकनिगोदादिक गतियों का यहाँ पर निर्देश किया गया है। नरकों के दुःखों से भी बढ़कर निगोद गति व दुःख होते हैं, जिन्हें विषयासक्त जीव प्राप्त करते हैं-सहन करते हैं।

इस लोकमें भी परदार-आसक्त महामोही जीव आक्रोश, धम, पधन, और प्रहरणादि-( शास्त्रादि )-जन्य दुःखों को तो प्राप्त करते हैं, साथमें उन्हें फासी भी लटकना पड़ता है।

अथवा-जानकारभी विषयोंमें आसक्त प्राणी राग और द्वेष से बढ हो कर विषयस्रोतोंद्वारा उनर विषयों की ओर झुकते रहते हैं। अथवा-वे

ગતિને જ સંસાર સમજે છે અને એના દુઃખોને જ દુઃખ માને છે પરંતુ અમારૂં વક્તાન્ય એવું છે કે તેમનાં માન્યતાથી પણ અધિક સંસાર તથા દુઃખશક્તિ છે પોતાના હાથથી બંધાને સાધ્યત્વ (૩૧) હાથ સમજવા, એ જે રીતે બૂલ બચુ છે તવા પ્રકારે પોતાની માન્યતાનુસાર જ સંસાર અને દુઃખ સમજવા પણ બૂલ ભરેલ છે આ સ્થળે દુઃખોનું વર્ણન થાલે છે માટે તેનાં પ્રધાનતા પ્રકટ કરવા નરકનિગોદાદિક ગતિઓનો આ જગ્યાએ નિર્દેશ કરેલ છે નરકોના દુઃખોથી પણ વધારે નિગોદગતિના દુઃખો છે જેને વિષયાસક્ત જીવ પ્રાપ્ત કરે છે-સહન કરે છે

આ લોકમાં પણ પરસ્ત્રી-આસક્ત જેવા મહામોહી જીવ દુઃખ, ધમ, ધન અને શસ્ત્રાદિજન્ય દુઃખોને તો પ્રાપ્ત કરે જ છે તેમ જ તેને ફાંસી પર પણ લટકવું પડે છે

અથવા જાણકાર પણ વિષયોમાં આસક્ત પ્રાણી રાગ અને દ્વેષથી બંધાઈને વિષયસ્રોતોદ્વારા તે તે વિષયોની તરફ ખેંચાતો રહે છે અથવા તે વિષયસેવનકર્મો

कर्मणा संसारसमुद्रे परिणीयमानान् पश्यत=प्रेक्षध्वम् । ते च विषयविषमूर्च्छिता किमासादन्यन्तीत्याह—‘अत्रे’-त्यादि, अत्र=इह संसारे इन्द्रियलोलुपाः स्पर्शान्=विषयासेवनजन्यदुःखानि पुनः पुनः लभन्त इत्यर्थः, आरम्भे वा प्रवर्तन्ते । के लभन्ते ? इत्याह—‘यावन्त’ इत्यादि, लोके=सावद्यव्यापारप्रवृत्ते गृहस्थलोके यावन्तः कियन्तः आरम्भजीविनः=सावद्यव्यापारपरायणा गृहस्था नरकनिगोदादीनि पूर्वोक्तानि दुःखान्यनुभवेषु । ये च गृहस्थाश्रिता द्रव्यलिङ्गिणस्तेऽपि दुःखभाजो भवन्तीत्याह—‘एतेष्वेव’-त्यादि, एतेष्वेव=सावद्यव्यापारतत्परेषु गृहस्थेष्वेव, आरम्भजीविनः=आरम्भेण=असंयमेन जीवितुं शीलं येषां ते आरम्भजीविनः=सेवार्थ

विषयसेवन-कर्मों द्वारा इस संसारसमुद्रमें धकेल दिये जाते हैं । विषयों में मूर्च्छित प्राणी क्या प्राप्त करते हैं ? इस विषयको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—‘अत्रे’-त्यादि, विषयलपट मानव इस संसारमें विषय सेवनजन्य दुःखोंको आरंभार प्राप्त करते रहते हैं, अथवा आरंभारिकों में प्रवृत्ति करते रहते हैं । गृहस्थ-जीवन, बिना सावद्य व्यापारों में प्रवृत्ति किये चल नहीं सकता, इस लिये सूत्रकार कहते हैं कि सावद्य व्यापारों में प्रवृत्तिशाली गृहस्थजन होते हैं, अतः इनमें जितने भी आरंभजीवी-सावद्य व्यापारोंको करनेमें लगे हुए गृहस्थजन हैं वे पूर्वोक्त नरक निगोदादिकोंके दुःखोंका अनुभव करनेवाले होते हैं । तथा गृहस्थोंके आश्रित जो भी द्रव्यलिङ्गी साधु होते हैं वे भी दुःखोंको प्राप्त करते हैं । यह बात “ एतेष्वेव आरम्भजीविनः ” इस सूत्रांश से प्रतिपादित किया है । आरंभ-असंयम से जीनेका जिनका स्वभाव होता है वे आरंभ-

द्वारा या संसारसमुद्रमें धकेलवाया आवे छे विषयोंमें मुग्ध बनल प्राणी शु प्राप्त करे छे ? या विषयने प्रकट करवा भाटे सूत्रकार कहे छे—‘अत्रे’ इत्यादि विषय-लपट मनुष्य या संसारमें विषय-सेवन-जन्य दुःखने वार-वार प्राप्त करतो रहे छे, अथवा आरंभ आदिमें प्रवृत्ति करतो रहे छे गृहस्थ-जीवन, अगर सावद्य व्यापारोंमें प्रवृत्ति किये आलसुं नहीं, या भाटे सूत्रकार कहे छे के-सावद्य व्यापारोंमें प्रवृत्तिशाली गृहस्थ भाषुसां होय छे, भाटे आभा जेटला पणु आरंभलक्षणी सावद्य व्यापार कर्वाया लागेल गृहस्थ भाषुसां छे तेओ पूर्वोक्त नरक-निगोदादिनां दुःखोंना अनुभव करवावाणा होय छे, तेमज गृहस्थोंना आश्रित जे द्रव्यलिङ्गी साधु होय छे तेओ पणु दुःखोंने प्राप्त करे छे, या बात “ एतेष्वेव आरम्भजीविनः ” या सूत्राशयी प्रतिपादित करवाया आवेल छे आरंभ-असंयमयी जीववाने जेना स्वभाव छे ओ आरंभलक्षणी छे,

સ્વેન સાકં નીયમાનગૃહસ્થૈ સમ્પાદિતેનાઘાકર્માદિદોષદૂષિતેનાશ્વમેનોપજીવિનો  
 દૃષ્ટિશાક્યાદયો ગૃહમ્યનિમયા વિહારિભોજ્યસભ્યપાર્શ્વસ્પાદયો વા મુનિવેપધારિણો  
 દ્રવ્યલિક્ષિતો ધા પદ્મજીવનિકાયોપમર્દકા\* સમુત્પદ્યતે ।

યદ્વા—एतेष्वेष=पद्मजीवनिकायण्वेष आरम्भजीविनो जायन्त । यत्र सम्य  
 भर्शनादिकमुपलभ्यापि विपरीतपरिणते\* साफल्यमनवाप्य धारिभ्रान्तरायोदया  
 धुनरपि सावधानुष्णायी भवतीति दर्शयति—

‘अत्रापि’—स्यादि, अत्रापि=आर्तमंयमाभ्युपगमेऽपि बाल =अविदिततत्त्व  
 दुःकफल परिपच्यमानः=विषयसृष्ट्याया परिपीड्यमानः, यद्वा ‘परितप्यमानः’

जीवी हैं । मायद्य व्यापार में तत्पर इन गृहस्थों में ही ये पद्मजीवनि  
 काय के उपमर्दक आरम्भजीवी, अर्थात्—सेवाके लिये अपने साथ जो  
 गृहस्थों को रम्वते हैं तथा उनके द्वारा निर्मापित और आघाकर्मोदि दोषों  
 से दूषित आहार से जो जीते हैं ऐसे दृष्टिशाक्यादि साधु, अथवा  
 गृहस्थों की नित्रामें विहार करनेवाले अथमन्न-पामस्यादिक, अथवा—  
 मुनिवेषधारी द्रव्यलिक्षी साधु उत्पन्न होते हैं । अथवा—ये आरम्भ  
 जीवी दृष्टिशाक्यादिक पद्मजीवनिकायों में ही उत्पन्न होते हैं ।  
 जो मम्यग्दर्शनादिकको प्राप्त कर के भी अपनी विपरीत परिणति  
 से उसकी मफलता को न पा कर पश्चात् धारिभ्र-अन्तराय ( धारिभ्र  
 मोहनीय ) के उदय से पुनरपि मायद्य व्यापारों को करनेवाला होता है,  
 उसको “ अत्रापि बाल परिपच्यमानो रमते पापेषु कर्मसु अशरणं  
 शरणमिति मन्यमान ” इस सूत्रांश से सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं कि—

સાવધ આપારમા તત્પર આ ગૃહસ્થોના જે પદ્મજીવનિકાયના ઉપમર્દક  
 આરમ્ભજીવી, અર્થાત્ સેવા માટે પોતાની સાથે જે ગૃહસ્થોને સાથે છે તથા  
 એના દ્વારા નિર્માપિત અને આઘાકર્મોદિ દોષોથી દૂષિત આહારથી જે ભવે છે  
 એવા કે ડા શાક્યાદિ સાધુ અથવા ગૃહસ્થોની નિત્રામા વિહાર કરવાવાળા અથ  
 સત્ર-પાસ-ઘાદિક અથવા મુનિવેષધારી દ્રવ્યલિક્ષી સાધુ ઉત્પન્ન થાય છે અથવા—  
 આ આરમ્ભજીવી કેડી, શાક્યાદિ પદ્મજીવનિકાયોના જે ઉત્પન્ન થાય છે

જે સમ્યગ્દર્શનાદિકને પ્રાપ્ત કરીને પણ પોતાની વિપરીત પરિણતિથી  
 તેની સુશળતાને પ્રાપ્ત ન કરતા પાછળથી ધારિભ્રાતત્ત્વ ( ધારિભ્રમોહનીય )  
 ના ઉદયથી પુન સાવધ વ્યાપારના કરવાવાળા બને છે સૂત્રકાર—“ અત્રાપિ બાલ  
 પરિપચ્યમાનો રમતે પાપેષુ કર્મસુ અશરણ મે શરણમિતિ મન્યમાનઃ આ સૂત્રાંશથી  
 તેના ભવેાનું પ્રદર્શન કરે છે કે—દીક્ષાને અંગીકાર કરીને પણ જે સાવધ

इतिच्छाया; परितप्यमानः=इष्टाप्राम्नावनिष्ठाधिगमे चेष्टत्रियोगे वा तद्व्याकुलतया सर्वतोऽन्तर्वहिर्वा तप्यमानः, एवम् अशरणं=पचनपाचनादिसावद्याचरणमेव शरणं=श्रेयस्करमस्तीति मन्यमानः=बुध्यमानो, विषयस्पृहाजवनिकातिरोहितसम्यग्दर्शनः सन् तत्रैवासक्तो भवतीत्यर्थ, पापेषु=पापजनकेषु कर्मसु=सावद्यव्यापारेषु रमते=क्रीडति । ' पावेहिं कम्मेहिं ' इत्यत्रार्पत्वात्सम्यगर्थे तृतीया । सावद्यव्यापारवतां गृहस्थादीनां का कथा? केचिन्मुनयोऽपि विषयविषयवर्णितान्तःकरणा अनाचारमाचरन्तीत्याह—' इहे '-त्यादि, इह=जिनशासने; एकेषां=गिथिलकर्मणां कुशीलपार्श्वस्थादीनाम् ' एकचर्या '-चरणं चर्यते वा चर्या, एकस्य चर्या एकचर्या-दीक्षा स्वीकार करके भी जो सावद्य व्यापार के कटुक परिणाम से अपरिचित है और विषयतृष्णा से सर्व प्रकार पीड़ित है, अथवा-इष्टकी अप्राप्ति और अनिष्टके सम्पर्क में, या इष्ट के वियोग होनेपर जो अत्यंत व्याकुल होने से सर्व प्रकार से अन्दर-बाहर सन्तप्त हो रहा है, तथा अशरण को ही अर्थात्-पचनपाचनादिकरूप सावद्य व्यापारों को ही ' ये शरण-श्रेयस्कर हैं ' ऐसा मान रहा है, वह विषयरूपी जवनिका (पर्दा) से तिरोहित समकितवाला हो कर उन सावद्य व्यापारों में ही आसक्तचित्त होता है, और उन्हीं पापजनक कार्यों—सावद्य व्यापारों में क्रीडा करता रहता है—आनंद मानता रहता है । अरे सावद्य व्यापारमें लवलीन गहस्थों की तो कथा ही क्या कहनी? परन्तु ऐसे भी कई मुनि होते हैं जो विषयरूपी विषसे घूर्णित-उद्भ्रान्त अन्तःकरण वन अनाचार सेवन करते हुए लजाते नहीं हैं । यही बात " इह एकेषाम् एकचर्या भवति "

व्यापारना कडा परिणामथी अपरिचित छे अने विषयतृष्णथी सर्व प्रकारे पीडित छे, अथवा छष्टनी अप्राप्ति अने अनिष्टना सपर्कथी, अगर छष्टिना वियोग थवाथी ने अत्यंत व्याकुल अनीने सर्व प्रकारथी अंदर अने अंदर सतप्त अने छे, अने अशरणने न अर्थात् पचन-पाचनादिकरूप सावद्य व्यापारने न आ ' शरण-श्रेयस्कर-छे ' अम माने छे, ते विषयरूपी जवनिका(पर्दा)थी तिरोहित समकितवाणा अनीने तेवा सावद्य व्यापारमा न लवलीन अने छे, अने तेवा न पापजनक कार्ये-सावद्य व्यापारमा रच्या-पर्या रडे छे-आनंद मानता रडे छे अरे ! सावद्य व्यापारमा तहीन गृहस्थानी तो बात न कथा करवी ? परन्तु अेवा पणु डेटलाड द्रव्यलिगी मुनिअो डोय छे के ने विषयरूपी विषथी उद्भ्रान्तचित्त अनीने अनाचारनु सेवन करवामा ललता नथी आ बात " इह एकेषाम् एकचर्या भवति " आ सूत्राशथी सूत्रकार कडे छे—



एकाकिविहारणं भवति । एकचर्यां प्रशस्तामशस्ताभ्यां द्विधा, साऽपि पुनर्द्रव्यमान  
मेदात्मत्येकं द्विविधा । द्रव्यतः प्रशस्ता स्यविरकल्पिकस्य प्रतिमापतिपक्षस्य भ्रष्टा  
घटगुणसम्पन्नस्य वा भवति, तदुक्तं स्थानाङ्गे—

“अद्विं ठाणेर्हि सपन्ने भगगारे अरिइ एगळ्ळविहारपठिमं उपसंपज्जिचामं  
विहरित्तए, तंजहा—‘सइवी पुरिसजाए (१), सव्वे पुरिसजाए (२), मेहावी  
पुरिसजाए (३), बहुसुए पुरिसजाए (४), सत्थिमं (५), अप्पहिगरणे (६),  
धितिमं (७), धीरियसपन्ने (८) । (ठा ८ सू १)

इस सूत्रांश से मूत्रकार कहते हैं—इस जिनशासनमें छिथिल कर्मवाले  
कुशील पासत्यादिकों की एकचर्या होती है—एकाकी विहार होता है ।  
आचरण करना या जो आचरित की जाती है वह चर्या है । एक की चर्या  
एकचर्या है । यह प्रशस्त और अप्रशस्त रूप से दो प्रकार की है । प्रशस्त  
और अप्रशस्त चर्या के भी द्रव्य और भावसे दो दो भेद हैं । चार प्रकार  
की मुनिप्रतिमा को धारण करनेवाले, अथवा भ्रष्टा आदि आठ गुण  
विशिष्ट स्वविरकल्पी साधुकी चर्या द्रव्यसे प्रशस्त चर्या है ।

स्थानाङ्गमें यही विषय ‘अद्विं ठाणेर्हि’ इत्यादि सूत्र से कहा है ।  
उसका अर्थ यह है—“आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार एकाकिविहारप्रतिमा  
को धारण कर विहार करनेलायक है । ये आठ स्थान ये हैं—(१) अद्वी  
पुरुषजात, (२) सत्य पुरुषजात, (३) मेधावी पुरुषजात, (४) बहुभुत  
पुरुषजात, (५) शक्तिमान्, (६) अस्वाधिकरणवाला, (७) धृतिमान्, और  
(८) धीर्यसम्पन्न” [ ठा ८ सू १ ]

आ लनशासनमा शिथिल कर्माणा कुशील पासत्यादिकोनी जेकचर्या थाप  
छ—कुशील पासत्यादिको जेकला विहार करे छे आचरण्णु करवुं अगार नेनु  
अचरण्णु कत्वाभा आवे छे ते चर्या छे जेकनी चर्या जेकचर्या छे आ प्रशस्त  
अने अप्रशस्त रूपधी जे प्रकारनी छे प्रशस्त अने अप्रशस्त चर्याना पणु द्रव्य  
अने भावधी जे भेद छे १२—आर प्रकारनी मुनिप्रतिमाने धारण्णु कत्वावोणा  
अथवा भ्रष्टा आदि आठ गुण सञ्चित स्वविरकल्पी साधुनी चर्या द्रव्यधी  
प्रशस्त चर्या छे स्थानाङ्गमां जे व विषय अद्विं ठाणेर्हि इत्यादिसूत्रधी कहां छे  
आठ स्थानेधी अप्त अणुआर जेककिविचारप्रतिमाने धारण्णु करी विहार  
करवाने लायक छे जे आठ स्थान आ छे—(१) अद्वी पुरुषजात (२) सत्य  
पुरुषजात, (३) मेधावी पुरुषजात, (४) बहुभुत पुरुषजात (५) शक्तिमान्  
(६) अस्वाधिकरणवाण, (७) धृतिमान् (८) धीर्यसंपन्न ’ (ठा ८ सू १)

छाया—अष्टभिः स्थानैः संपन्नोऽनगारोऽर्हति एकाकिविहारप्रतिमासुपसंपद्य विहर्तुं, तद्यथा—श्रद्धि पुरुपजातं (१), सत्यं पुरुपजातं (२), मेधावि पुरुपजातं (३), बहुश्रुतं पुरुपजातम् (४), गक्तिमत् (५), अल्पाधिकरणम् (६), धृतिमत् (७), वीर्य-सम्पन्नम् (८), इति ।

भावतः प्रशस्ता एकचर्या रागद्वेपरहितस्य भवति, भावतोऽप्रशस्तैकचर्या न भवति, सा च रागद्वेपसत्त्वेन स्यात्, भावस्त्वेकचर्यायां रागद्वेपासत्त्वम्, तयोरसत्त्वे चाप्रशस्ताया अभावात् । द्रव्यतोऽप्रशस्तैकचर्या च गृहस्थपाखण्डिकादीनामवसनपार्श्वस्थादीनां शिथिलकर्मणामनुपदवक्ष्यमाणक्रोधाद्यष्टदोषवतां भवति । प्रकृते

रागद्वेपरहित साधुकी चर्या भावसे प्रशस्त चर्या है। जिसका भाव अप्रशस्त है वह एकचर्या (एकाकिविहारिता) नहीं कर सकता, क्यों कि उसकी एकचर्या रागद्वेषके सद्भाव से होती है। भावभेदवाली एकचर्या में राग और द्वेषका सद्भाव नहीं होता है, इस लिये इनके असत्त्व में अप्रशस्तता नहीं आती है। तात्पर्य यह है कि अप्रशस्त-एक चर्या में “भावसे अप्रशस्त एकचर्या” यह भेद नहीं घटित होता है, क्यों कि भावों में अप्रशस्तता राग द्वेषके सद्भाव से ही आती है। जहाँ राग द्वेषके अभावसे एकचर्या होती है वह भाव से प्रशस्त एकचर्या है। राग द्वेष के निमित्त को ले कर जहाँ एकचर्या है वह भावसे एकचर्या नहीं है; किन्तु अप्रशस्त एकचर्या ही है। द्रव्यसे अप्रशस्त एकचर्या गृहस्थों, पाखण्डियों एवं साधुसमाचारी से शिथिल पासत्थादिकों तथा अनुपद कहे जानेवाले क्रोधादिक आठ दोष वालों के होती है। प्रकृत (प्रकरण) में

रागद्वेपरहित साधुनी चर्या लावथी प्रशस्त चर्या छे. जेना लाव अप्रशस्त छे ते ऐकचर्या (एकाकिविहारिता) नहीं करी शकते, कारण छे तेनी ऐकचर्या रागद्वेषना सहलावथी थाय छे लावलेहवाणी ऐकचर्यामा राग अने द्वेषना सहलाव अनतो नहीं, जे भाटे तेना असत्त्वमा अप्रशस्तता आवती नहीं तात्पर्य जे छे छे अप्रशस्त ऐकचर्यामा “लावथी अप्रशस्त ऐकचर्या” जे लेह अध जेसतो नहीं, कारण छे लावोमा अप्रशस्तता रागद्वेषना सहलावथी न आवे छे. न्या रागद्वेषना अलावथी ऐकचर्या थाय छे ते लावथी प्रशस्त ऐकचर्या छे रागद्वेषना निमित्तने लधने न्या ऐकचर्या छे ते लावथी ऐकचर्या नहीं, परतु अप्रशस्त ऐकचर्या न छे द्रव्यथी अप्रशस्त ऐकचर्या गृहस्थों, पाखण्डियों अने साधुसमाचारीथी शिथिल पासत्थादिक तथा अनुपद कहेवासां आववावाणा क्रोधादिक आठ दोषोथी युक्त ने थाय छे. प्रकृत (प्रकरण) मां

આપશસ્ત્રૈકચર્યાયા એવ પ્રસન્ન ઇતિ ચોધ્યમ્ । અપશસ્ત્રૈકચર્યાચારી કીદશ્ચો મવતી ત્યાહ—‘સ યદુઃક્રોધઃ’ ઇત્યાદિ, સ=વિપયસુસ્વલોલુપોઽપશસ્ત્રૈકચર્યાચારી મુનિઃ યદુઃક્રોધઃ—મહત્ઃ ક્રોધા કોપા યસ્ય સ યદુઃક્રોધઃ—અધિકક્રોધવાન્, યદુ માન=અતીવામિમાની, યદુમાયઃ=કુલ્કુલાદિમિરનલ્પમાયાવાન્, સર્વમિદમાહ રાઘર્યે વિષતે, અત એવ યદુલોમઃ, અત એવ યદુરજાઃ=અધિકપાપી, યદા—‘યદુરત’

અપશસ્ત્ર એકચર્યાં કા હી પ્રસન્ન હૈ, ઇતઃ ઇમ પ્રકરણ મેં અપશસ્ત્ર એકચર્યાં કા હી કથન સમજના ચાહિયે । ઇમ અપશસ્ત્ર એકચર્યાંવાલા વ્યક્તિ કૈસા હોતા હૈ ? ઇસકે લિયે સૂત્રકાર “સ યદુઃક્રોધઃ” ઇત્યાદિ પદોં સે ડસકા વિષરણ કરતે હૈ—વિપયસુસ્વલોલુપી યદુ અપશસ્ત્ર એકચર્યાંચારી મુનિ યદુત ક્રોધી હોતા હૈ । યદુત હૈ ક્રોધ જિસકે યદુ યદુક્રોધ હૈ । યદાં પર “યદુઃ ક્રોધાઃ” એમા જો યદુવચન કા પ્રયોગ કિયા હૈ, યદુ ક્રોધ કી અનેક જાતિયોં કા પ્રદર્શક હૈ । જઘન્ય મધ્યમ ડસ્કૂષ્ટ મેદસે ક્રોધ ત્રીન પ્રકાર કા હોતા હૈ । વિપયસુસ્વલોલુપી અપશસ્ત્ર એકચર્યાંચારી મુનિકે ક્રોધ કા ડસ્કૂષ્ટ પ્રકાર હોતા હૈ । અથવા યદુ અલ્પક્રોધી નહીં હોતા; કિન્તુ યદુત ક્રોધી હોતા હૈ । ઇમ વિષદ્શાં મેં મી ક્રોધકે ત્રીન પ્રકાર હોતે હૈ—અલ્પ ક્રોધ, મધ્યમક્રોધ ઓર યદુ ક્રોધ । યદાં પર ત્રીસરે પ્રકાર કે ક્રોધકા હી ગ્રહણ કિયા ગયા હૈ । ઇસી પ્રકાર—માન, માયા ઓર લોભાદિકોં મેં મી સમજા ડેના ચાહિયે । યદુ યદુતમાની હોતા હૈ, યદુત માયાવાલા હોતા હૈ, યદુત લોભી હોતા હૈ ।

અપશસ્ત્ર એકચર્યાંચારી પ્રસન્ન એવ છે માટે આ પ્રકરણમાં અપશસ્ત્ર એકચર્યાંચારીનું જ કથન સમજવું જોઈએ. આ અપશસ્ત્ર એકચર્યાંચારી વ્યક્તિ કેવી હોય છે ? તેને માટે સૂત્રકાર ‘સ યદુઃક્રોધઃ’ ઇત્યાદિ પદોથી તેનું વિષરણ કરે છે—વિપયસુસ્વલોલુપી તે અપશસ્ત્ર-એકચર્યાંચારી મુનિ યદુઃ ક્રોધી હોય છે યદુઃ ક્રોધ છે એને તે યદુક્રોધ છે આ જગ્યાએ “યદુઃ ક્રોધાઃ” એવો જ બહુવચનનો પ્રયોગ કરેલ છે તે કાષ્ઠની અનેક ભત્તીઓનું પ્રદર્શક છે જઘન્ય, મધ્યમ અને ડસ્કૂષ્ટના ક્રોધી ક્રોધ ત્રણ પ્રકારના હોય છે વિપય-સુસ્વ-લોલુપી અપશસ્ત્રએકચર્યાંચારી મુનિને ક્રોધને ડસ્કૂષ્ટ પ્રકારવાય છે અથવા તે અલ્પક્રોધી નથી હોતી; પરંતુ યદુઃ ક્રોધી હોય છે આ પ્રકારમાં પણ ક્રોધના ત્રણ પ્રકાર છે અલ્પક્રોધ; મધ્યમ ક્રોધ, અને બહુ ક્રોધ. આ સ્થળે ત્રીજા પ્રકારના ક્રોધને જ પ્રદર્શ કરવામાં આવેલ છે. એ જ પ્રકારે માન માયા અને લોભ આદિમાં પણ ત્રણ તરુણુ એ જ એ—તે યદુઃ માની હોય છે, બહુ માયાવાળા હોય છે, યદુઃ લોભી હોય છે યદુઃ લોભી યદુઃ

इतिच्छाया; वहुरतः=आरम्भादिसंसक्तः, वहुनटः=मोहाय नट इव वहून् वेपान् विदधाति, तद्यथा-क्वचित्कूर्ची क्वचिज्जटी क्वचित् शिखी क्वचिच्च मुण्डी भूत्वा तत्र तत्र सम्मानादिसमासादनाय त्रिविधवेपधारी तिष्ठतीत्याशयः । तथा वहुशठः बहुभिः प्रकारैः शाठ्ययुक्तः, किंच बहुसंकल्पः=वहून्-पूजां सत्कारमाहारादिकं च सततं संकल्पयति=प्रार्थयतीति बहुसंकल्पः, पुनः स कीदृशो भवतीत्याह-आसवे-बहुलोभी होनेका कारण यह है कि वह यही समझता है कि यह सब कुछ खाने के लिये ही है । इस प्रकार से वह खाद्य वस्तुओं के संग्रह करने में अधिक लोलुपी होता है-अधिक पापी होता है । अथवा-वहुरत होता है-आरंभ-समारंभादिकों में आसक्त रहता है । जिस प्रकार अन्य प्राणिनों को मोहित करने के लिये नट अनेक प्रकारके वेपों को धरता है उसी प्रकार यह भी अन्य जीवों को अपने ऊपर मुग्ध करने के लिये अनेक प्रकार के वेपों को धारण करता है-कभी अपनी डाढी के बालों को बढ़ा लेता है, कभी अपने शिरकी जटाओं को बढ़ा लेता है, कभी शिखा रखता है, कभी बालों का बिलकुल मुण्डन करा लेता है । इस प्रकार के अनेक वेपों को धर २ कर मान-सम्मान आदि प्राप्त करने का यह सदा अभिलाषी होता है । इसी दुर्वृत्ति से यह इस प्रकार के वेपों को समय २ धरता रहता है । यह बहुशठ होता है, अर्थात्-अनेक प्रकारों से अपनी शठता का उपयोग करता है । यह बहुसङ्कल्पी भी होता है-रात दिन यह यही विचार किया करता है कि मेरी प्रतिष्ठा

धारणु अे छे के ते अेवु ममजे छे के आ गधु भावा माटे न छे आ रीते ते भाध वस्तुअेनो स भ्रष्ट करवाभा अधिक लोलुपी गने छे माटे ते अहुनट-अधिक पापी होय छे. अथवा अहुनट होय छे-आर लसमार लाडिकोभा आसक्त रहे छे अहुनट होय छे-जे प्रकारे भील प्राणीअेने मोहित करवा माटे नट अनेक प्रकारना वेपो धारणु करे छे तेवी रीते आ पणु भील अेवोने पोतानी तरङ्ग मुग्ध करवा माटे अनेक प्रकारना वेपो धारणु करे छे-क्यारेक अे पोतानी दाढीना वाण वधारे छे, क्यारेक पोताना शिरनी नटाने वधारे छे, क्यारेक माथामा ओटवी राणे छे अने क्यारेक माथाने ओकणु सपाट अनावी हे छे, आ रीते अनेक प्रकारना वेपो धारणु करीने मान-सन्मानादि प्राप्त करवा सदा अबिलाषी रहे छे आ न इर्दृत्तिथी अे समय समय पर आवा प्रकारना वेपो धारणु करे छे. ते अहुशठ होय छे, अेटवे-अनेक प्रकारेथी पोतानी शठतानो उपयोग करे छे. ते अहुसंकल्पी पणु होय छे-रात दिवस ते अेपो विचार करे छे के भारी

त्यादि, आस्रषसक्तिः=आस्रषेषु प्राणातिपातादियु सक्ति = सङ्गो यस्यास्ति स आस्रषसक्तिः=ईसादिप्वभिसङ्गान्, एवं पञ्चिवावच्छन्नः=पलितेन=आरम्भसमारम्भादिकर्मणा अवच्छन्नः=प्रवृत्तः—युक्त इत्यर्थः, अपि च उत्थितवादम्=उत्थितः=रत्नप्रयसमाराधनाय समुद्यतस्तस्य वाद इव वादस्तं लोकव्यवहार्यं प्रवदन्, 'अहमपि भगवदुपदिष्टसंयमाचरणार्थं आसनोद्भासनाय च तत्परोऽस्मी'—त्येवं द्रुयन् प्रतिपिद्धा मप्येकाकिविहरणादिकामनुविष्टीति भावः । स सत्रघव्यापारमाधरंभेतस्येवं

कैसे पढे, कैसे लोग मेरा सत्कार करें, किस विधि से मुझे उत्सम २ आहारादिक सामग्री का लाभ हो । यह आस्रषसक्ती-कर्मों के आस्रष के कारणभूत प्राणातिपातादिक कार्यों में आसक्तिबाला होता है । यह पलितावच्छन्न होता है । आरंभ-समारंभादिक कर्मोंका नाम पलित है । उससे युक्त होना सो पलितावच्छन्न है । यह उत्थितवाद का कथन करनेवाला होता है । रत्नप्रय की आराधना करनेके लिये उद्यत होनेका नाम उत्थित है । लोकों की धंधना के लिये इसका कहना सो उत्थितवाद है । इस उत्थितवाद को यह अपने में इस प्रकार से प्रकट करता है कि 'मैं भी भगवत्प्रतिपादित संयम की आराधना करने के लिये, और उस उस स्थान पर जिनशासन की प्रभाषना के लिये कटियद् हूँ' । तात्पर्य यह है कि—इस प्रकार यह आगमनिपिद्ध एकाकिविहार करनेरूप मार्गका पथिक होता हुआ भी भगवत्प्रतिपादित संयममार्गके आराधक, और जिनशासन के प्रभावकरूप से अपनी स्थापति करता है । सावध

प्रतिष्ठा केवी रीते वधि, केवी रीते डोके भाई स भान करे, क्या कार्यभी भने उत्तम उत्तम आदारादि सामग्रीना हाल भणे ? ते आ अवसक्ति दोष छे-कर्मोना आस्रषना करवुभूत प्राणातिपातादिक कार्योंमा आसक्ति धरावनार भने छे ते पलितावच्छन्न होय छे, आरंभसमारंभादिक कर्मोनु नाम पलित भाय छे तनाधी मुक्त शत्रु ते पलितावच्छन्न छे उत्थितवादानु धन करनार भने छे, रत्नप्रयनी आस्रषना कस्वा भाटे उषत धनु तेनु नाम उत्थित छे डोकेने छेतस्वा भाटे केने भाव जवाववे। जे उत्थितवाद छे आ उत्थितवादाने ते पत्तानाभा जेवा प्रारंभ प्रारंभ करे छे के दुं पञ्च भगवत्प्रतिपादित संयमनी आस्रषना कस्वा भाटे भने ते ते स्थान पर जिनशासननी प्रभाषना भाटे कटियद् हुं तात्पर्य जे छे के—आ प्रकारे ते आगमनिपिद्ध एकाकीविहार कस्वाइय भागना अनुभाभी होय छय पञ्च भगवत्प्रतिपादित संयमभाजन आस्रषक भने जिन शासनना प्रभावकरूपी पत्तानी जाति करे छे सावध व्यापार कस्वा छय

चिन्तयति 'मा मा'-मित्यादि, केऽपि=अन्ये मां प्राणातिपातादिकारिणं प्रच्छन्ना-  
धर्मविधायिनम् मदीयेन अज्ञानप्रमाददोषेण, अज्ञानं च प्रमादश्चाज्ञानप्रमादौ, तयो-  
र्दोषस्तेन, 'अयं गुप्तपापमकार्यं करोति' इति मा अद्राक्षुः=नो पश्यन्तु-नो  
जानन्त्वित्यर्थः ।

यद्वा—'अज्ञानप्रमाददोषेण' इति पदं 'मूढः' इत्यनेनापि मध्यमणिन्यायेन  
सम्बध्यते, अत्राज्ञानग्रहणेन दर्शनमोहनीयं च गृह्यते, ततो दर्शनमोहनीयेन चारित्रमोह-  
नीयेन च मूढः=परमार्थानभिज्ञः सन् धर्म=श्रुतचारित्रलक्षण स्वीयधर्म-येन सकल-  
कर्मक्षयो भवति तं नाभिजानाति=नावबुध्यते । एतेषां का दशा भवति? इत्याह—  
'आर्त्ताः' इत्यादि, हे मानव ! हे भव्य ! सदुपदेशार्हत्वात्तस्य, आर्त्ताः=विषयक-  
पायैः पीडिताः प्रजाः-प्र=कर्षेण जायन्ते=चतुर्गतिषु कर्मणा समुत्पद्यन्त इति प्रजाः=

व्यापारों को करता हुआ भी यह अपने मनमें इस प्रकार से उस समय  
विचार करता है कि इस प्राणानिपातादिक अकार्य तथा गुप्तरूप से पाप  
करनेवाले मुझे और कोई न देख ले । इस प्रकार प्रमाद और अज्ञानके  
दोष से वह नहीं करने योग्य गुप्त पापों को करता है ।

अथवा—“ अज्ञानप्रमाददोषेण सततं मूढः ” इस प्रकार से भी  
मध्यमणिन्याय से “ अज्ञानप्रमाददोषेण ” इस पदका सम्बन्ध “मूढ”  
पद के साथ करने से यह अर्थ होता है कि-यह दर्शनमोहनीय एवं  
चारित्रमोहनीय के उदय से निरन्तर परमार्थ से अनभिज्ञ हो कर समस्त  
कर्मेंका क्षय करनेवाले श्रुतचारित्ररूप अपने आत्मधर्म को नहीं जानता है।  
ऐसे व्यक्तियों की दशाका चित्रण करते हुए सूत्रकार कहते हैं—  
“ आर्त्ताः ” इत्यादि, हे भव्य ! विषयकषायों से पीडित ऐसी प्रजा-

पशु अे चोताना मनमा ते वभते अेवा प्रकारेनो विचार करे छे डे ' आवा  
प्राणुतिपातादिक अकार्य तथा गुप्तरूपी पाप करवावाणा भने डेअ न्नेछिन  
नय ?' आवी रीते प्रमाद अने अज्ञानना दोषथी ते नहि करवा योग्य गुप्त  
पापो करे छे

अथवा—“ अज्ञानप्रमाददोषेण सततं मूढः ” आ प्रकारे पशु मध्यमणि  
न्यायथी “ अज्ञानप्रमाददोषेण ” आ पदनेो स अथ 'मूढ' पदनी साथे करवाथी अेवो  
अर्थ थाय छे डे ते दर्शनमोहनीय अने चारित्रमोहनीयना उदयथी निरन्तर पर-  
मार्थथी अनभिज्ञ अनी सभस्त कर्मेंना क्षय करवावाणा श्रुत-चारित्ररूप चोताना  
आत्मधर्मने न्णथो नथी आवी व्यक्तियोनी दशानु वर्णुन करता सूत्रकार कडे छे—  
“ आर्त्ता ”—छत्यादि छे लव्य ! विषयकषायथी पीडित अेवी प्रजा-प्राणी, कर्मकोविद-

પ્રાણિન, કર્મકોવિદા - કર્મણિ=આરમ્મસમારમ્માદૌ કોવિદા=વ્યાસસ્તત્પરા ઇત્યર્થઃ, ન તુ ધર્માચરણે, યે ષ અનુપરતા=સાવધવ્યાપારેભ્યોઽપરાહ્મુસ્વા, અવિષયા=રત્નપ્રપં વિદ્યા, ઉદ્વિપરીતા અવિષ્યા, તથા પરિમોક્ષ પરિ=સર્વતો મોક્ષમ્=આત્મનાઃ કર્માપનયનમ્, આહુ =કથયન્તિ । તે ધર્માનમિદ્ધાઃ કર્મવધકોવિદાશ્ચ વિષયવ્યાહ-વિષયકવસ્તિતાઃ, આવર્ત=માવાર્ત સસારમેવ અનુપરિવર્ત-તે=અનન્તમવજનક કર્મ સમુપાઝ્ય તપ્રૈવ મુહુર્મુહુઃપ્રામ્પન્તીત્યર્થ, ચારિત્રદોષેષુ ક્રોધાઘાષિક્ષ્યન પૈકચર્યા

-પ્રાણી કર્મકોવિદ=આરમ્મ સમારમ્મ આદિ કર્મોં મેં નિપુણ હોતી હૈ, ધર્મ મેં નહીં । “ પ્રકર્ષેણ જાય તે इति પ્રજાઃ ” ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર સમુપાર્જિત કર્મોં કે ઉદય સે જો વાર વાર ચતુર્ગતિસ્થ સંસાર મેં જન્મ ધારણ કરતે હૈં ઉનકા નામ પ્રજા-પ્રાણી હૈં ।

“ યે અનુપરતા અવિષયા પરિમોક્ષમાહુઃ ” જો સાવધ વ્યાપારોં સે અપરાહ્મુસ્વ હૈં વે ‘ અવિષ્યા સે હી સર્વ પ્રકાર સે મુક્તિ હોતી હૈ ’ એસા કહતે હૈં । રત્નપ્રપકા નામ વિષ્યા હૈ । ઇસ સે જો વિપરીત હૈ વહ અવિષ્યા હૈ । ધર્મ સે અનમિદ્ધા ઓર કર્મવધ મેં કોવિદ પ્રાણી વિષયરૂપી સર્પ કે વિષ સે કષલિત હો માવાર્તરૂપ સંસાર મેં હી અનુપરિવર્તન કરતે રહતે હૈં-અનન્તમવજનક કર્મોં કા આસ્રવ ઓર ઘન્ય કર કે ઉસી સંસાર મેં વાર વાર જન્મ-મરણ કરતે રહતે હૈં । ચારિત્ર કે દોષોં મેં ક્રોધાદિક કી અધિકતા સે પૈકચર્યારૂપ દોષ કી પ્રમાનતા હૈ । ઇસ સે સાવધ-વ્યાપારોં કા આચરણ હોતા હૈ । ઇમ આચરણ સે વિરતિ કા અભાવ ઓર ઉમ સે ઉમ મેં મુનિત્વ કા અભાવ હોતા હૈ । મુનિધર્મ કા પાલક ન હોને સે વહ

આરમ્મ સમારમાદિકોમીના નિપુણ હોય છે, ધર્મમાં નહિ “ પ્રકર્ષેણ જાયતે इति પ્રજાઃ ” આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર સમુપાર્જિત કર્મોના ઉદયથી જે વાર વાર ચતુર્ગતિસ્થ સંસારમાં જન્મ ધારણ કરે છે તેનું નામ પ્રજા-પ્રાણી છે

“ યે અનુપરતા અવિષયા પરિમોક્ષમાહુઃ ” જે સાવધ વ્યાપારથી અનિવૃત્ત છે તે અવિષયાથી જ સર્વ પ્રકારની મુક્તિ થાય છે તેવું કહે છે રત્નપ્રપનું નામ વિષ્યા છે આનાથી જે વિપરીત તે અવિષ્યા છે ધર્મથી અનમિદ્ધા અને કર્મ વધમાં કેવિદ પ્રાણી વિષયથી સર્પના વિષથી ક્ષલિત થઈ માવાર્તરૂપ સંસારમાં અનુપરિવર્તન કરતો રહે છે અનતમવજનક કર્મોના આસ્રવ અને બધ કરીને આ સંસારમાં વાર વાર જન્મ-મરણ કરતો રહે છે આ વિરતના દોષોમાં ક્રોધાદિકની અધિકતાથી ક્રોધવ્યાધિરૂપ દોષની પ્રમાનતા છે એનાથી સાવધ વ્યાપારોં આચરણ થાય છે આ આચરણથી વિરતિને અભાવ અને તેનાથી તેનામાં મુનિત્વનો

दोषस्य प्राधान्यात्सावद्यव्यापाराचरणेन विरनेरभावाद्गुनिः सन् चिरकालं जन्म-  
मरणं कुर्वन्तीति भावः । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थः पूर्ववत् ।

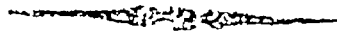
॥ पञ्चमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः समाप्तः ॥ ५-१ ॥

प्राणी चिरकालतक जन्म-मरण करता रहता है । “ इति ब्रवीमि ” इन  
पदोंका अर्थ पहिले की तरह है ॥ सू० ५ ॥

॥ पांचवे अध्ययन का प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ५-१ ॥

त्वनो अलाप आवे छे मुनिधर्मनु पावन न थवाथी ते प्राणी चिरकाल सुधी  
जन्म मरणु कर्तो रहे छे “ इति ब्रवीमि ” आ पदोनो अर्थ पहिलानी भाङ्क छे.

पांचमा अध्ययननो पहिलो उद्देश समाप्त ॥ ५-१ ॥





## पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देश ।

अभिहितः प्रथमोद्देशः साम्प्रतं द्वितीयः प्रारम्भ्यते । अस्य चाप्यनन्तरोद्देश-सम्बन्धः, पूर्वोद्देशे एकाकि-विहरणशीलं सावधव्यापारासक्ततया 'असंयतः' इत्यभिहितम् । अत्र च यथा सयतः स्याद्यथा प्रतिपाद्यते—

अथ हिंसादिषावधव्यापाराभिहृतं पञ्च मुनिर्मवतीति दर्शयति—'आवती' इत्यादि ।

मूळम्—आवती केयावती लोए अणारभजीविणो तेसु । एस्थो वरणे स झोसमाणे अय सधीति अदक्खु, जे इमस्स विग्गहस्स अय खणेत्ति अझेसी । एस मग्गे आरियहिं पवेइए । उट्ठिए नो पमायए, जाणित्तु दुक्ख पत्तेय साय । पुढोछदा इह माणवा, पुढो दुक्ख पवेइय । से अविहिंसमाणे अणवयमाणे पुट्ठो फासे विपणुए ॥ सू० १ ॥

## ॥ पांचवें अध्यायनका दूसरा उद्देश ॥

प्रथम उद्देश कहा जा चुका है । अब द्वितीय उद्देश का प्रारम्भ करते हैं । इस उद्देश का अनन्तर उद्देश के साथ सम्बन्ध इस प्रकार से है— प्रथम उद्देश में “ जो एकाकी विहार करता है वह सावध व्यापारमें आसक्त होने के कारण विरतिविहीन है, जो विरति से विहीन है वह मुनि नहीं है ” यह प्रकट किया है, यहाँ पर जीव के मुनिपना जिस रीति से आसक्तता है वही रीति प्रतिपादित की जाती है । अथवा 'हिंसादिक सावध व्यापारोंसे निवृत्त ही मुनि होता है' यह बात दिम्बलाई जाती है— “ आवती केयावती ” इत्यादि

## पांचमा अध्यायननो पीके उद्देश

प्रथम उद्देश कहेवाक अथे छे इवे पीके उद्देशनो प्रारंभ अथे छे आ उद्देशनो अनन्तर उद्देशनी साथे सम्बन्ध आ प्रकट छे— प्रथम उद्देशमां ने कोकाकी विहार करे छे ते सावध व्यापारिमां आसक्त होवाने कारणे विरति वगैरना छे, ते मुनि नहीं ” जेस प्रकट करे छे आ स्थले एवने मुनिपणु ने रीतिथी आवे छे ते ने रीति कहेवामा आवे छे अथवा हिंसादिक सावध व्यापारिणी निवृत्त न मुनि होय छे जे बात देजा वामां आवे छे— 'आवती केयावती' इत्यादि.

छाया—यावन्तः कियन्तो लोके अनारम्भजीविनस्तेषु । अत्रोपरतस्तज्जोपयन्  
अयं सन्धिरिति अद्राक्षीत्, योऽस्य विग्रहस्यायं क्षण इत्यन्वेपी । एष मार्ग आर्यैः  
प्रवेदितः । उत्थितो नो प्रमादयेत्, ज्ञात्वा दुःखं प्रत्येकं सातम् । पृथक्छन्दा इह  
मानवाः, पृथग् दुःखं प्रवेदितम् । सोऽविहिन्ननपयदन् स्पृष्टः स्पर्शान्  
विप्रणोदयेत् ॥ मृ० १ ॥

टीका—‘यावन्तः’ इत्यादि । लोके=मनुष्यलोके यावन्तः कियन्तश्च तेषु=  
पइजीवनिकायेषु अनारम्भजीविनः—आरम्भः=सावद्याचरणं, तद्विपरीतस्त्वनारम्भः  
तेन जीवितुं शीलं येषां ते अनारम्भजीविनः=संयमिनः, यद्वेन्द्रियविषयकपायेषु  
प्रवृत्ता आरम्भजीविनस्तद्भिन्ना अनारम्भजीविनो मुनयः सन्ति । ते हि स्वनिमित्त-  
पचनपाचनादिसावद्यव्यापारतत्पराद्गृहस्थाच्छरीरयात्रामात्रनिर्वाहार्थमशनादि गृ-  
हीत्वा निरवद्यानुष्ठानप्रवृत्ताः सन्तो नलिनीदलमम्बुनेत्र निर्लेपा भवन्तीति

इस मनुष्यलोक में कितनेक मनुष्य अनारम्भजीवी हैं । सावद्य  
व्यापारों में प्रवृत्ति का नाम आरम्भ है । इससे विपरीत का नाम अना-  
रम्भ है । इससे जीने का जिनका स्वभाव है वे अनारम्भजीवी हैं । अनार-  
म्भजीवी संयमी होते हैं ।

अथवा—इन्द्रिय विषय एवं कषायों में जिनकी प्रवृत्ति है वे आरम्भ-  
जीवी हैं, उनसे भिन्न मुनिजन ही अनारम्भजीवी हैं । अपने निमित्त  
पचन-पाचनादि सावद्य व्यापारों में तत्पर गृहस्थजन से शरीरयात्रामात्र  
के निर्वाहार्थ आहारादि लेकर निरवद्य-निर्दोष अनुष्ठान में प्रवृत्तिशील  
होने के कारण ये मुनि पानीसे कमलपत्र की तरह निर्लेप होते हैं । इससे  
यह निष्कर्ष निकलता है कि जो सावद्य व्यापारों में प्रवृत्तिशील हैं वे पूर्ण  
संयमाचरण से बाहर हैं, और जो इस हिंसादिक आरंभ से निवृत्त हैं वे

आ मनुष्य लोकमा डेटलाड मनुष्य अनारम्भजीवी छे सावद्य व्यापारोमा  
प्रवृत्तिनु नाम आरम्भ छे, तेनाथी विपरीतनु नाम अनारम्भ छे, तेनाथी जेना  
लुपवानो स्वभाव डोय ते अनारम्भजीवी छे अनारम्भजीवी संयमी डोय  
छे अथवा इन्द्रिय विषय अने कषायोमा जेनी प्रवृत्ति छे ते आरम्भजीवी छे,  
तेनाथी भिन्न मुनिजन न अनारम्भजीवी छे पोताना निमित्त पचनपाचनादि  
सावद्य व्यापारोमा तत्पर अहस्थजनथी शरीरयात्रामात्रना निर्वाह माटे आडा  
रदि लधने निरवद्य-निर्दोष अनुष्ठानमा प्रवृत्तिशील डोवाने कारणे पाण्ठीथी  
कमणपत्रनी भाङ्क निर्लेप डोय छे आथी जे लावार्थ निकजे छे के-जे सावद्य  
व्यापारोमा प्रवृत्तिशील छे ते पूर्ण संयम आचरणथी अडार छे अने जे आवा

तात्पर्यम् । एव तर्हि किमेतेनेत्याह—अप्रेत्यादि, अप्र=इह जगति उपरतः=  
हिंसाधारम्भाद् निवृत्तः, यद्वा—अप्र=वीतरागोपदिष्ट धर्म उत्पर सन् उपरतः=  
सावद्यव्यापारनिवृत्त सः तत्=पद्मजीवनिकायोपमर्दनात् समापतिर्धर्मोपयन्=  
सपयन् मुनिर्भवति । कनाशयेनाप्रोपरत ? इत्याह—‘अय’मित्यादि, अय=प्रत्यस

ही मुनि हैं—पूर्णसंयमाचरणमें लवलीन हैं। पूर्णसंयमाचरण में तत्परता  
ही वीतरागोपदिष्ट धर्माराधन में पूर्णतत्परता है, क्यों कि इसके हुए  
बिना वीतरागोपदिष्ट धर्म की पूर्ण आराधकता जीवों में नहीं आ सकती।  
जय तक पूर्ण धर्माराधकता नहीं प्राप्त हो जाती तब तक कर्मों के विनाश  
करने का मार्ग भी जीवों को प्राप्त नहीं होता; अतः कर्मों को नाश करने  
के लिये सच्चे मुनि होनेकी आवश्यकता है। इन सब विचारों को हृदय  
में रम्य कर सूत्रकार “अप्रोपरत तं सोपयन्” इस सूत्रांश का कथन  
करते हैं। इसमें धेधतलाते हैं कि इस संसार में जो हिंसादिक आरम्भ  
कार्यों से निवृत्त—पराह्नुस्व हो चुका है, अर्थात् सावद्य व्यापारों से जिसने  
अपने आप को हटा लिया है, या वीतरागप्रसूयारा प्रतिपादित धर्म में  
तत्पर हो कर जो सावद्य व्यापार से निवृत्त है, वह जीव पद्मजीवनिकाय  
के उपमर्दन से आश्रयित कर्मों का विनाश करता हुआ मुनि होता है। इस  
आशय से वह पद्मजीवनिकाय के हिंसादिक पापकर्मों से विरत होता  
है कि मुझे यह सधि मिली है, अर्थात्—यह महादुर्लभ नरपर्याय मुझे

दि सादिक आरंभ ही निवृत्त है ते व मुनि है—पूर्व संयम आचरणमा तस्मिन्  
छे पूर्व संयम आचरणमा तत्परता व वीतरागोपदिष्ट धर्म आसभनमा पूर्व  
तत्परता छे, कारणके जेना वजर वीतरागोपदिष्ट धर्मनी पूर्व आसभकता  
लवेना आवती नथी ज्या सुधी पूर्व धर्मआसभकता नथी प्राप्त वती त्यां सुधी  
धर्मिनि विनाश करवाने भाजं पद्य लवेने प्राप्त वतो नथी भाजे धर्मिनि नाश  
करवाने भाटे साया मुनि बनवानी आवश्यकता छे अ वधा विचारने हृदयमा  
सधीने सूत्रकार ‘अप्रोपरतः तं सोपयन्’ आ सूत्रने अर्थ करे छे तेमा ते वतावे  
छे ते ते हिंसादिक आरंभ कार्यों ही निवृत्त वध मुकेल छे अर्थात् सावद्य व्यापारों ही  
नेवे पीते पीतानी अतने उठावी लीपेद छे जने वीतरागप्रसूयारा प्रतिपा-  
दित धर्ममा जे पीताने तत्पर करे छे ते लव पद्मजीवनिकायना उपमर्दनथी  
आश्रयित धर्मिनि विनाश करीने मुनि बने छे आ आशयधी ते पद्मजीवनि-  
कायना हिंसादिक पापकर्मों ही विरत वध छे, ते बने आ सधि भजेद छे,

निर्दिष्टः सन्धिः=मनुष्यजन्मा-ऽऽर्यक्षेत्र-शोभनकुलोत्पत्ति-सकलपूर्णेन्द्रियनिर्धृति-श्रद्धा-संवेगादिप्राप्तिलक्षणः कर्मक्षपणावसरः, यद्वा-शुभाध्यवसायसन्धानस्वरूपोऽस्ति, इति यः अद्राक्षीत्=दृष्टवान्, एतादृशो मुनिः क्षणमपि न पञ्चविधप्रमादपरायणो भवेदित्यागयः । कश्च न प्रमत्तः स्यात् ? इत्याह—‘जे इमस्स’ इत्यादि । य उपलब्धतत्त्वो मुनिः अस्य=औदारिकस्य विग्रहस्य=गरीरस्य, तैजसं कार्मणं च शरीरमौदारिकान्तर्गतमेवेति ज्ञेयम् ; अयं=विद्यमानः क्षणः=क्षेत्रकालसंयमकर्मक्षपणश्रेणिरूपोऽवसरोऽस्ति, इत्यन्वेपी-इति=एवमन्वेष्टुं शीलमस्येत्यन्वेपी-क्षणगवेषणपरायणो भवति ।

मिली है । इस में भी आर्यक्षेत्र उत्तम कुल में मेरी उत्पत्ति हुई है । सकल इन्द्रियों की पूर्ण रचना, श्रद्धा संवेगादिक सद्गुणों की उपलब्धि मुझे हुई है । यही तो कर्मक्षय करने का अवसर है । अथवा मेरी आत्मा का यही निज स्वरूप है कि मैं सदा शुभ अध्यवसायों का सन्धान करता रहूँ । इस प्रकार जो अपनी ओर निहारता है—अपने निज स्वरूप का विचार करता रहता है वह एक क्षण भी पांच प्रकार के प्रमादों का सेवन नहीं करता । इस प्रकार का मुनि कौन होता है ? इस पर कहते हैं—‘जे इमस्स’ इत्यादि । जो तत्त्वज्ञ मुनि हैं वे सदा इस प्रकार का विचार करे कि ये जो औदारिक शरीर (तैजस और कार्मण शरीरों का इसी औदारिक शरीर में अन्तर्भाव कर लिया है) मुझे प्राप्त हुआ है उसका यह क्षण-क्षेत्र काल समय कर्मक्षपणश्रेणिरूप अवसर है, इस प्रकार जो अन्वेषी-क्षणगवेषण में परायण होता है वह सदा

अटके मने आ मडाहुर्लल नरपर्याय भणेल छे तेमा पणु आर्यक्षेत्र उत्तम कुणभा भारी उत्पत्ति थछ छे, सकल छन्द्रियोनी पूर्ण रचना श्रद्धा संवेगादिक सद्गुणोनी उपलब्धि मने थयेल छे, छवे तो कर्मक्षय करवाने अवसर छे, अने मारा आत्मानु अे न निज स्वरूप छे के ‘हु सदा शुभ अध्यवसायोना सधान करतो रहुँ ’ आ प्रकारे ने पोतानी तरक्ष निछाणे छे, पोताना निज स्वरूपने विचार करे छे ते अेक क्षणु पणु पात्र प्रकारना प्रमादोतु सेवन करतो नथी.

आवा प्रकारने मुनि कौणु छाय छे ? आ प्रकारनी शिष्यनी शकतु समाधान करवा माटे सूत्रकार कहे छे—‘जे इमस्स’ इत्यादि तत्त्वज्ञ मुनि छे ते सदा अेवा प्रकारने विचार करे के—ने आ औदारिक शरीर मने प्राप्त थयेल छे तेने आ क्षण-क्षेत्र काल समय कर्मक्षपणश्रेणीरूप अवसर छे आ प्रकारे ने अन्वेषी-

एतत्कथनस्य स्वकल्पितत्वनिरासायाह—‘एष’ इत्यादि, एषः=पूर्वोक्ता षष्ठ्य  
 मार्गो वा मार्गाः=सम्यग्दर्शनज्ञानचारिप्ररूपा मोक्षमार्गाः, आर्यैः=तीर्थङ्करगणधरैः  
 प्रवेदिताः=सदेवमनुजपरिषदि कथित । तेषां षष्ठमवाह—उत्थिताः=पृथादीनि  
 परित्यज्य सन्निभासाद्य रत्नप्रयाराधनाय समुद्युक्तः सन् नो प्रमादयेत्—क्षणमपि  
 पञ्चविधं प्रमादं नैव कुर्यादित्यर्थ । आत्मीपम्यनान्येषामपि हिंसादीनि नैव निद  
 प्यादित्याह—ह्यास्वेत्यादि, प्रत्यक=प्रत्यकप्राणिनां दुःखं=आरीरमानसिकं दुःख  
 जनक कर्म वा, तथा सात=सुखं च ह्यात्वा=बुद्ध्या उत्थितो नो प्रमादयदिति पूर्वोक्त  
 प्रमादरहित होता है ।

भाषार्य—जो तत्त्वज्ञ मुनि होता है, वह यही सदा विचार करता  
 है कि मुझे ऐसा कोई सा भी समय प्राप्त नहीं है जिसे मैं प्रमाद सेवन  
 में व्यतीत कर सकूँ। हाँ ! यदि कोई समय अवशिष्ट होता तो मैं उसे  
 प्रमादसेवन में व्यतीत कर देता, परन्तु इस प्राप्त औदारिक शरीर का  
 एक २ क्षण भी क्षेत्रकाल समय कर्मक्षपणभ्रंशिरूप है । इस प्रकार जो  
 एक २ क्षणकी भी सवा सावधानी रखते हैं वे कभी प्रमादवशा पतित  
 नहीं बन सकते । यह पूर्वोक्त कथन अथवा आगे जहा जानेवाला विषय  
 मैंने अपनी कल्पना से नहीं कहा है किन्तु यह सम्यग्-दर्शन ज्ञान चारित्र्य  
 स्वरूप मार्ग तीर्थङ्कर और गणधरादिक महापुरुषों ने देवसहित मनुष्यों  
 की परिषदा में कहा है । उन्हीं के वचनों को सूत्रकार कहते हैं—“उद्दिप  
 नो पमायए” इति । जो घर आदि को छोड़ कर, संधिको प्राप्त कर,

क्षुण्णवेपथुमां पशुषु थाय छे ते सदा प्रमादरहित भवे छे

भाषार्य—शिष्यनी पूर्वोक्त शक्तान् आ स्थणे सूत्रकारे समाधान करे छे  
 छे ते ठहे छे छे—ने तत्त्वज्ञ मुनि ज्ञेय छे ते सदा ज्ञेयो विचार  
 करे छे छे—भने ज्ञेयो ज्ञेय पशु समय प्राप्त यथो नथी नेने हु प्रमादसेवनमां  
 व्यतीत करी शक्तु कषय्य देवसमय अवशिष्ट ज्ञेय तेने प्रमाद सेवनमा  
 व्यतीत करी देत, परन्तु आ प्राप्त यथेव औदारिक शरीरनी जेक जेक क्षण पशु  
 क्षेत्रकाल समय कर्मक्षपणभ्रंशिरूप छे आ प्रकारे ने जेक जेक क्षुण्णनी पशु सदा  
 सावधानी राणे छे ते कदापि प्रमादवशा भनी शक्तता नथी आ पूर्वोक्त कथन  
 अथवा आग्रह ठहेवाभा आपनार विषय मे भारी पीतानी कल्पनाथी ठहे छे  
 नथी परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-स्वरूप आत्र तीर्थङ्कर भने गणधर आदि  
 महापुरुषोंने देवसहित मनुष्योंने प्रतिषदां ठहे छे जेभना व वचनेने  
 सूत्रकार ठहे छे छे—“उद्दिप नो पमायए” ने घर वने छेदीने अपसर

सम्बन्धः । सर्वेषां प्राणिनां सुखमभिलषणीयं, दुःखं च परिहरणीयं भवतीत्यालोच्य कस्यापि दुःखं नोत्पादयेदित्याशयः । सर्वेषां जन्तूनां दुःखजनकाध्यवसायोऽपि भिन्नो भवतीति दर्शयति—‘पृथग्’-त्यादि, इह=मनुष्यलोके संज्ञिलोके वा, मानवाः=मनुष्याः पृथक्छन्दाः=पृथग् भिन्नं छन्दः=अभिप्रायो येषां ते पृथक्छन्दा =भिन्नरुचयो भवन्ति, यथा क्षीरपानं कश्चित्सुखाकरोति कश्चित्च दुःखाकरोतीत्यादि, तथैव

रत्नत्रयों की आराधना के लिये कटिबद्ध है वह अपना एक क्षण भी पञ्चविध प्रमाद के सेवन में व्यतीत न करे। समस्त जीवों को अपने समान मान कर कभी भी उनकी हिंसा आदि न करे। प्रत्येक प्राणी के शारीरिक मानसिक दुःखों को, तथा उनके कारणभूत कर्मों को, तथा सुख को जानकर उत्थित व्यक्ति कभी भी प्रमत्त न बने। तात्पर्य यह कि—समस्त प्राणियों को सुख अभिलषणीय है और दुःख परिहरणीय है, ऐसा विचार कर किसी भी प्राणी को दुःखित न करे।

संसार के समस्त प्राणियों के दुःखजनक अभिप्राय भी एकसे न हो कर भिन्न २ ही होते हैं; अतः सूत्रकार “पुढो” इत्यादि पदसे इसी बात को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि इस मनुष्य लोक अथवा संज्ञिलोक में जितने भी मनुष्य और संज्ञि प्राणी हैं वे सब भिन्न २ अभिप्रायसंपन्न हैं। जैसे क्षीरपान किसी को सुखदायी होता है और किसी को दुःखदायी होता है, उसी प्रकार जो उपाय आदि किसी जीव को सुखप्रद होता है वही उपायादि अन्य जीव के लिये दुःखप्रद भी होता है। यह लो-

भेजनीने रत्नत्रयनी आराधना माटे तत्पर छे ते पोतानी अेक पषु क्षणु पात्र प्रकारना प्रमादना सेवनमा व्यतीत न करे समस्त लुवोने पोताना समान गणुीने कोर्ध वभत पषु तेनी डि सा आदि न करे प्रत्येक प्राणीना शारिरीक मानसिक दुःखोने तथा तेना कारणभूत कर्मोने तथा सुभने न्गणुीने उत्थित व्यक्ति कोर्ध वभत पषु प्रमत्त न भने तात्पर्य अे के—समस्त प्राणीओने सुभ अलिषणुीय छे अने दुःख परिहरणीय छे अेवु समलने कोर्ध पषु प्राणीने दुःखी न करे

संसारना समस्त प्राणीओना दुःखजनक अभिप्राय पषु अेक प्रकारना न होय—भिन्न भिन्न प्रकारना होय छे माटे सूत्रकार “पुढो” इत्यादि पदथी आ वातने समन्वयने कहे छे के—आ मनुष्यलोके तथा संज्ञिलोकमा नेटला पषु मनुष्य अने संज्ञि—प्राणी छे ते भधा भिन्न भिन्न अलिप्राय सपन्न छे नेवी रीते भीरनु सेवन कोर्धने सुभदायी होय छे अने कोर्धने दुःखदायी होय छे, अेवा प्रकारे ने उपाय वगेरे कोर्ध लुवने सुभदप होय छे ते न उपाय आदि अन्य लुवने माटे दुःखदायी होय छे

યદેવ કસ્યચિત્સુક્તાય મવતિ તદેવ પરસ્ય દુ સ્વાય વેતિ ' મિશ્નરુચિર્હિલોકઃ ' ઈતિ શ્લોકોક્તેરિતિ । યદ્વા-પૃથક્-છન્દાઃ=પૃથક્-સકલ્યા-અગણિતામિપ્રાયઃ-ઈતિ યાવત્, માનવા ઇત્યુપસ્ત્તણાદન્યેપામપિ સન્નિનાં પૃથક્-છન્દસ્વેન પ્રહણં ક્ષેયમ્ । યત્ એષ પ્રાણિનઃ પૃથક્-છન્દાસ્તસ્માદુપાવેર્યં કર્માપિ પૃથક્, કર્મજનિતં દુઃસ્વમપિ પૃથગેવ, કારણમેદસ્ય કાર્યમેવનિયામકત્વાત્, એતદેવ-કચયતિ ' પૃથગિ '-સ્યાદિ, સર્વેપાં જન્તુનાં દુઃસ્વં પૃથક્=મિશ્નરુપ પ્રવેદિતમ્ । એતત્સર્વમાલોખ્યાનારમ્મનીષીર્કિં ચિદધ્યાદિતિ દર્શયતિ-' સ ' ઇત્યાદિ । સ નિસિલજીવસુસ્વદુઃસ્વપરિણાયા કોક્તિ હૈ કિ "મિશ્નરુચિર્હિ લોક " લોગોં કી રુચિ મિશ્ન મિશ્ન હુઆ કરતી હૈ । અથવા-"પૃથક્-છન્દા ઇહ માનવાઃ " ઇસકા અમિપ્રાય યહ મી હૈ કિ મ નુષ્ય ઓર અ-ચ સંજી પ્રાણી જિતને મી હૈં એન સબકે છન્દ-સકલ્પ અમિપ્રાય પૃથક્-અગણિત હૈં । સંસાર મેં જિતને મી સંજી પ્રાણી હૈં વે સ્વ અપની અપની અપેક્ષા અગણિતઅમિપ્રાયચિશિષ્ટ હૈં । માનવ-શબ્દ ઉપલક્ષણ હૈ, ઇસસે અ-ચ સંજી પ્રાણિયોં કા મી યહાં પ્રહણ હો જાતા હૈ । જબ યહ માના ગયા હૈ કિ પ્રાણિયોં કે સંકલ્પ મિશ્ન ૨ યા અગણિત હૈં તો યહ મી ઇસસે સિદ્ધ હોતા હૈ કિ એનકે કર્તવ્ય કર્મ તથા કર્મજનક દુઃસ્વ મી મિશ્ન ૨ યા અગણિત હૈં, કયોં કિ કારણોં મેં જબ મેવ હૈ તય એસકે કાર્યોં મેં મી મેવ માનના પડતા હૈ, અતઃ યહ નિશ્ચિત હોતા હૈ કિ સમસ્ત જીવોં કા દુઃસ્વ પૃથક્-મિશ્ન ૨ રૂપમેં હૈ । ઇસ સ્વ કા વિચાર કર અનાર-મજીષી કયા કરે ? ઇસકી પ્રરૂપણા સૂત્રકાર " સોઅર્હિસમાણે અણઘયમાણે " ઇસ

આ પ્રકારની લોક કહેવત છે કે-મિશ્નરુચિર્હિ લોકઃ' લોકોની રૂપી મિશ્ન મિશ્ન પ્રકારની રહ્યા કરે છે અથવા-"પૃથક્-છન્દા ઇહ માનવાઃ" તેને અભિ પ્રાય એ છે કે મનુષ્યમાત્ર અને અન્ય સંજિ-પ્રાણી જેટલા છે તે બધાના છન્દ - સકલ્પ અભિપ્રાય અલગ અલગ છે સસારમાં જેટલા પણ સંજિ-પ્રાણી છે તે બધા પોતપોતાની અપેક્ષા અનુસિત અભિપ્રાય ધરાવનાર છે માનવશબ્દ ઉપલક્ષણ છે જેનાથી બીજા સંજિપ્રાણીઓનું પણ આ સ્થળે સમાવેશ થઈ શકે છે આથી આ માની લેવાયું છે કે પ્રાણીઓના સમસ્ત સકલ્પ મિશ્ન મિશ્ન અને અગણિત છે તે આથી પણ એ સિદ્ધ થાય છે કે તેનું કર્તવ્ય કર્મ તથા કર્મજનક દુઃસ્વ પણ મિશ્ન મિશ્ન અને અગણિત છે કેમ કે કારણમાં આથી ભેદ છે ત્યારે એમના કાર્યોમાં પણ ભેદ માનવો પડે છે આથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે સમસ્ત જીવોનાં દુઃસ્વો પણ મિશ્ન મિશ્ન રૂપનાં છે આ બધાને વિચાર કરી આરબજીવી એવ શું કરે ? આ અંગે " સોઅર્હિસમાણે

जन्तून् अविहिंसन्-त्रि=त्रिविधैरूपायैरहिंसन्=अत्रिराधयन्, अपि च अनपवदन्-  
 अपवदति=मृपावदति यः सोऽपवदन्, यश्च न तादृशः सः अनपवदन्=सत्यवादी, उप-  
 लक्षणादन्येषामपि अदत्तादानादिव्रतानां ग्रहणं, तेन-परधनान्यनाददत्, मैथुनमना-  
 सूत्रांशसे करते हैं-जब वह अनारम्भजीवी अपने आप को इतना  
 तयार कर लेता है कि जिससे वह अन्य समस्त प्राणियों के सुख और  
 दुःख का भली भाँति ज्ञाना हो जाना है, तब वह किसी भी प्राणी की  
 हिंसा नहीं करता है, और न ऐसा कोई उपाय भी करना है कि जिससे  
 अन्य प्राणियों को कष्ट पहुँचे। वह अपनी दैनिकचर्या को तथा अपनी  
 प्रवृत्ति को इतनी सुरक्षित रखता है कि उसमें किसी भी प्राणी को लेश  
 मात्र भी दुःख का अनुभव उमकी ओर से नहीं होने पाता है। झूठ  
 नहीं बोलता, परके धनादिकका अपहरण नहीं करता, कुशीलके सेवन  
 से सर्वथा परे रहता है और परिग्रह का भी वह विलकुल परित्याग कर  
 देता है। इस प्रकार उसकी जब अच्छी तरह से तयारी हो जानी है तब  
 वह वास्तविक मुनिपदकी शोभावाला होता है। सूत्रस्थ “अणवयमाणे”  
 पद अन्य अदत्तादानादिक व्रतों का उपलक्षक है। तात्पर्य यह कि-  
 हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के सर्वथा परिवर्जन  
 करने से ही मनुष्य मुनिपदको दीपानेवाला होता है। इन हिंसादि के त्याग  
 से वास्तविक रूपमें पंच महाव्रतों का वह सच्चा आराधक होता है।

अणवयमाणे” आ सूत्रनी प्रपञ्चा करता सूत्रकार उहे छे के न्यारे अे अनार-  
 लक्षणी पोतानी नतने अेटली उहे तैयाग करी ले छे के जेनाथी ते अन्य  
 समस्त प्राणीओना सुभ अने हु अनो सारी रीते नलक्षकार अनी नथ छे, अने  
 डोष पणु प्राणीनी अे हिंसा करतो नथी, तेमज मनमा अेवा विचार मरभो  
 आववा हेतो नथी के जेथी डोष प्राणीओने कष्ट पडोचे ते पोतानी दैनिक चर्याने  
 तथा प्रवृत्तिने अेटली सुरक्षित राखे छे के जेथी डोष पणु प्राणीने लेशमात्र पणु  
 हु अनो अनुभव अेना तर्कथी थवा न पावे जुहुं नथी पोततो, पारका धननी  
 चोरी नथी करतो, कुशीलसेवनथी अे सदा सर्वदा हर रडे छे, परिग्रहतो ते  
 सर्वथा परित्याग करी हे छे आ प्रकारे अेनी संपूर्ण तैयारी थध नथ छे त्यारे  
 ते वास्तविक मुनिपदने शोभावनार अने छे सूत्रस्थ “अणवयमाणे” पद छे अे  
 भीन अदत्तादानादिक व्रतानो उपलक्षक छे तात्पर्य अे के-हिंसा, जुहुं, चोरी,  
 कुशील अने परिग्रहनु सर्वथा परिवर्जन करवाथी न मनुष्य मुनिपदने शोभा-  
 वनार अने छे आहिंसादिना त्यागथी वास्तविक रूपमा पाथ महाव्रतानो अे साथे  
 आराधक अने छे.



સેવમાન', પરિપ્રદૈ ચ વર્જયન્ મુનિર્નિર્વતિ । અપરં તસ્ય કાર્યમુપદિશ્વતિ-‘સૃષ્ટઃ’  
 ઇત્યાદિ, સ પશ્ચમહાવ્રતનિર્વાહપરાયણઃ સૃષ્ટ-પરીપદોપસર્ગેરાલિક્તિત્વ સ્પર્શાન્  
 શીતોષ્ણાદિરૂપાન્ , સ્પર્શપ્રવહણસ્યોપલક્ષ્યત્વાદ્ યાનપિ શ્વદ્-રૂપ-રસાદીન્ વિપ્રજો-  
 દ્યેત્-વિ-વિશેષ્ય વિવિધોપાયૈર્ષા પ્ર-પ્રકર્ષેષ જીવિતસ્ય ક્ષમણ્નષ્ટતાદિસમા-  
 મોચનેન નોદ્યેત્-પેરયન્-શ્વદ્વાદિવિપયાલામેન સ્વાત્માન્ નાશમન્યેતેત્સર્પ્યઃ । મનો

મુનિજન કે અન્ય કાર્યોં કો પ્રકટ કરને કે લિયે સૂત્રકાર “પુદ્ધો કાસે  
 વિપણુક્ષણ” ઇસ સૂત્રાંશ સે ડનકા વિગ્દર્શન કરાતે છુપ કહતે હૈ કિ પાંચ  
 મહાવ્રતોં કે નિર્વાહ કરને મેં તત્પર વહ મુનિ પરીપહ ઓર ઉપસર્ગોં સે સમ-  
 ન્વિત હોતા હુઆ મી શીતોષ્ણાદિરૂપ સ્પર્શ તથા અન્ય-શબ્દ, રૂપ ઓર રસા  
 દિક વિષય કિ જિનકા યહા પર “સ્પર્શ” ઇમ ઉપલક્ષણરૂપ પદસે પ્રવહણ  
 હુઆ હૈ ડન કા સમ્બન્ધ વિશેષ રીતિ સે, અથવા વિવિધ ઉપાયોં ડારા  
 અપની આત્મા સે છુટા દેવે । “વિપ્રજોદ્યેત” ઇસ ક્રિયા મેં “પ્ર” શબ્દ  
 ઇસ ઘાત કા સમર્થન કરતા હૈ કિ ઇન વિપયાદિકરૂપ સ્પર્શોં સે સંબંધ  
 વિચ્છેદ કરનેકે લિયે મુનિ કો ઇસ ઘાતકા વિચાર કરના ણાહિયે કિ  
 યહ મેરા જીવન અત્યત્પ હૈ, કલ કે મરોસે પર મુદ્દે નહીં રહના ણાહિયે,  
 ઓ કુદ્ધ કરના હૈ ઉસે આજ હી અય હી કર ડાલના ણાહિયે, ક્યા પતા  
 કલ આવે યા ન આવે, ઇસ પ્રકાર જીવનમેં ક્ષણદષ્ટનષ્ટતાદિકી સમા-  
 લોચનાસે ઇન સ્પર્શાદિક વિષયોં કે સમ્બન્ધ સે આત્મા સ્વયં સંબેત હો  
 કર રહિત હો જાતા હૈ, ફિર ડનકી અપ્રાપ્તિમેં આકુલ્લા નહીં હોતી

મુનિજનના અન્ય કાર્યોને પ્રકટ કરવા માટે સૂત્રકાર “પુદ્ધો કાસે  
 વિપણુક્ષણ” આ સૂત્રકાંશ સમજાવતા કહે છે કે-પાંચ મહા વ્રતોથી નિર્વાહ  
 કરવામા તત્પર એવા મુનિ પરીપદ અને ઉપસર્ગોમા ભાગ લેનાર અને  
 શીતોષ્ણાદિરૂપ, સ્પર્શ તથા અન્ય શબ્દ રૂપ, ગંધ અને રસાદિક વિષયો કે  
 નેનો અર્થ “સ્પર્શ” આ ઉપલક્ષણરૂપ પદથી સ્વીકાર કરાયો છે તે સબધ  
 વિશેષ રીતિથી, અથવા વિવિધ ઉપાયોથી પોતાના આત્મથી દૂર કરે. ‘વિપ્રજો  
 દ્યેત્’ આ ક્રિયામા “પ્ર” શબ્દ એ વાતનું સમર્થન કરે છે કે આ વિષયા  
 દિક સ્પર્શેના સબધ વિચ્છેદ કરવા માટે મુનિએ આ વાતનો વિચાર કરવો  
 એટલે કે માફ આ જીવન અત્યત અત્પ છે ઠાવના બરોસે મારે ન રહેવું  
 એટલે કે કાઈ કરવું છે તે બાને જ અને આત્મારે જ કરવું એટલે કાલ થશે  
 કે કેમ એનો ભરોસો શું ? આ પ્રકારે ક્ષણ જીવન અને તેના નાશની મનમા સમા-  
 લોચના કરી આ સ્પર્શાદિક વિષયોના સબધથી, આત્મા સ્વયં સંબેત  
 બનીને અલિપ્ત બની બંધ છે પછી એને અપ્રાપ્તિમા આનુભવતા થતી નથી તેમ

शब्दादीनधिगम्य तेषु रागममनोज्ञान् प्राप्य तेषु च द्वेषं चापनयन् मध्यस्थभावेन तेषु वर्तमानो मुनिर्भवतीति सूत्रतात्पर्यम् ॥ सू० १ ॥

तादृशमुनेर्गुणानुपदर्शयति—‘एस’ इत्यादि ।

मूलम्—एस समियापरियाए वियाहिए, जे असत्ता पावेहिं कम्मेहिं, उदाहु ते आयंका फुसंति, इति उदाहु धीरे ते फासे पुट्टो अहियासइ । से पुठ्विपेयं पच्छापेयं भेउरधम्मं विद्धं-सणधम्मं अधुवं अणिइयं असासयं चयावचइयं विप्परिणाम-धम्मं पासह एयं रूवसंधिं ॥ सू० २ ॥

छाया—एष शमितापर्यायो व्याख्यातः, येऽसक्ताः पापेषु कर्मसु, उदाह तान् आतङ्गा स्पृशन्ति, इति उदाहुधीरस्तान् स्पृष्टोऽध्यासयेत् । स पूर्वमप्येतत् पश्चादप्येतद् भिदुरधर्मं विध्वंसनधर्ममधुत्रमनित्यमशाश्वतं चयापचयिकं विपरिणामधर्मं पश्यतैतं रूपसन्धिम् ॥ सू० २ ॥

टीका—‘एष’ इत्यादि, एष = परीषहप्रणोदकः शमितापर्यायः—शमोऽस्ति अस्येति शमी=शमवान्, तस्य भाव शमिता, तथा पर्यायश्चारित्रग्रहणं यस्य स शमि-

और न आत्मरत्नानि ही जगती है । इस सूत्रका भावार्थ यह है—“मनोज्ञ शब्दादिक विषयों की प्राप्ति में राग, और अमनोज्ञ—अरुचिकर की प्राप्ति में द्वेषको दूर कर मुनिका कर्तव्य है कि वह उनमें मध्यस्थभावसे वर्तन करे । तब ही वह सच्चा त्यागी—मुनि हो सकता है ॥ सू० १ ॥

इस प्रकार के मुनियों के गुणोंका प्रदर्शन सूत्रकार करते हैं—‘एस’ इत्यादि ।

जो परीषह का जीतनेवाला होता है वही शमिता—पर्यायवाला होता है । शम जिसके होता है वह शमी—शमवान् है । शमी का भाव शमिता

आत्मगदानी पणु नगती नधी आ सूत्रनी लावार्थ आ छे—के मनोज्ञ शब्दादिक विषयानी प्राप्तिमा राग अने अमनोज्ञ—अरुचिकरनी प्राप्तिमा द्वेषने दूर करवो, ओ मुनिनु कर्तव्य छे के—ते मध्यस्थलावधी वर्तन करे त्यारे न ते साये त्यागी ओटवे मुनि अने छे ॥ सू० १ ॥

आ प्रकारे मुनिओना गुणोनु वार्धुन करता सूत्रकार कहे छे—‘एस’ इत्यादि ओ परिषडेने लतवावाणो अने छे ते न शमिता—पर्यायवाणो अने छे शम अने थाय छे ओ न शमी—शमवान् छे, शमीनो लाव शमिता छे. शमिताथी

તાપર્યાય, વ્યધિકરણવહુઘીદિ । યદ્વા-સમ્યક્પર્યાય ઙ્ગિત્થાયા; 'સમ્યક્પર્યાયઃ =સમ્યક્=પ્રશસ્ત પર્યાયા યસ્ય સ સમ્યક્પર્યાયઃ=પ્રશસ્તચારિત્રવાન્ વ્યાગ્ન્યાત - વિ=વિવિધપ્રકારેણ આસ્પ્યાતઃ=ચયિતઃ । પરીપદ્ધાપસર્ગાપનાદક્ષસ્ય અસાતવેદની યક્મોઽયાદ્રોગસમુદયે તસ્યેવ તત્ત્વદનશીખ્તામાદ—' ઘેડસક્તા ' ઇત્યાદિ, યે=અનિર્દિષ્ટનામાન પાપેપુ=પાપજનકપુ ચારિત્રમાદનીયેપુ વા કર્મસુ અસક્તાઃ=અનિર્મરા, યદ્વા-પાપપુ કર્મસુ દિસાદિપુ અસક્તા=અસ્પૃષ્ઠાઃ સન્તિ, મૂલે ચાર્પસ્વાત્સમ્યક્યે વૃત્તીયા; ઉદાહ=કદાચિત્વાન્ પાપકર્મસ્વસક્તાન મુનોન્ આતદ્વાઃ=શીઘ્રપ્રાણચારિત્ર શૂલાદયો રોગવિશેષા સ્પૃશ્નન્તિ=આક્રામ્યન્તિ-અમિમચન્તીત્યર્થઃ, એ વેત્કિમેતે હૈ । શમિતા સે ચારિત્રકા ગ્રહણ જિમ્મકે દ્વોતા હૈ યહ શમિતાપર્યાયઘાલા હૈ । ઘહ વિવિધ પ્રકારસે કહા ગયા હૈ । અથવા—" સમિયાપરિયાપ " ઇસકી સંસ્કૃત ણ્યા " સમ્યક્પર્યાય " ખી દ્વોતી હૈ । સમ્યક્ કા અર્થ પ્રશસ્ત, પર્યાય કા અર્થ ચારિત્ર હૈ । પ્રશસ્ત હૈ ચારિત્ર જિસકા ઘહ સમ્યક્પર્યાયઘાલા-પ્રશસ્તચારિત્રચાલા વિવિધ પ્રકાર સે કહા હૈ । અર્થાત્-પરીપદ્ધો કા જીતનેઘાલા સમતામાય સે ચારિત્ર કા ગ્રહણ કરને ઘાલા અથવા-પ્રશસ્તચારિત્રચાલા કહા ગયા હૈ ।

પરીપદ્ધ ઓર ઉપમગો કો જીતનેઘાલે સાધુ કે અસાતાવેદનીય કર્મ કે ઉદય સે રોગસમુદય આને પર ઉસે ઘનકો મદન હી કરના ચાહિયે, યહ ઘાત મુદ્રકાર " જે અસક્તા " ઇત્યાદિ મુદ્રાંશ સે પ્રકટ કરતે હૈ । જો સાધુ પાપજનક કર્મો મેં અથવા ચારિત્રમોહનીય કર્મમેં અનાસક્ત હૈં ઉન્હેં કદાચિત શીઘ્ર પ્રાણચાતક શૂલાવિક રોગવિશેષો કા સામના ખી

ને ચારિત્ર મદન કરે છે તે શમિતા-પર્યાયવાયો બને છે

" સમિયાપરિયાપ " આની સંસ્કૃત ણ્યા " સમ્યક્પર્યાય " પણ યાચ છે. સમ્યક્ને અથ પ્રશસ્ત, પર્યાયને અર્થ ચારિત્ર છે જેનું ચારિત્ર મદન છે-વખાલુવા જેવું છે તે સમ્યક્પર્યાયવાળા-પ્રશસ્તચારિત્રવાળા વિવિધ પ્રકારે કહેવાય છે અર્થાત્-પરીપદ્ધોને છુતનાર અને સમતામાયથી ચારિત્રવુ મદન કરનાર અથવા-પ્રશસ્ત ચારિત્રવાળા કહેવાય છે

પરિપદ્ધ અને ઉપમગોને છુતનાર સાધુને અસાતાવેદનીય કર્મના ઉદયથી રોગને ઉપદ્રવ આવે તે બને તેવું મદન કરવો બોધ્યો. આ ઘાત સૂતકાર " જ અસક્તા ઇત્યાદિ સૂત્રોધા પ્રમ' કરે છે - જે સાધુ પાપ જનક કર્મોમા અથવા ચારિત્રમોહનીય કર્મમા અનાસક્ત છે તેને કદાચ શીઘ્ર પ્રાણચાતક શૂલાવિક રોગ

नेत्याह—‘इती’—त्यादि, इति=एतत् वक्ष्यमाणम्—उदाहुः=कथितवन्तस्तीर्थङ्करगण-  
धरादयः, किमाहुरित्याह—‘धीर’—इत्यादि—शूलादिरोगविशेषैः स्पृष्टः=अभिभूतः धीर-  
=तत्सहने धैर्यवान् सन् तान् स्पर्शान्=रोगविशेषोत्पन्नाः वेदनाः अव्यासयेत्=  
सहेत—नोद्विजेतेत्यर्थः । चारित्रमोहनीयकर्मणः क्षयोपशमनं चारित्रं लभते, वेदनी-  
योदयेन च केवलिनोऽपि रोगा अभिभवन्ति, ततश्च तै रोगैः स्पृष्टो मनोग्लानि न  
कुर्यादित्याशयः । किं चैतदपि चेतसि परिचिन्त्य वेदनां सहेतेत्याह—‘स’ इत्यादि,  
सः=रोगैरभिभूतः चिन्तयेत्—यत्—एतत् असातावेदनीयविपाकजनितं दुःखं पूर्वमपि

करना पड़ता है—उन पर प्राणघातक शूलादि रोगविशेष आक्रमण करते  
भी है । ऐसे मुनियों के लिये तीर्थङ्कर देवोंने या गणधरादिक महर्षियोंने  
यह (वक्ष्यमाण) बात कही है । क्या कही है ? इस जिज्ञासा का ‘धीरे’  
इत्यादि द्वारा समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं “किं वह धीर—वीर  
साधु शूलादिक रोग विशेषों से आक्रान्त होता हुआ भी उन शूलादिक  
जनित वेदनाओंको सहे, उनसे उद्विग्नचित्त न बने । चारित्रमोहनीय  
कर्म के क्षयोपशमसे जीव चारित्रकी प्राप्ति करता है । वेदनीय कर्म के  
उदय से अनेक प्रकार की वेदनाएं उत्पन्न होती हैं; अतएव केवलियों तक  
को भी रोगों का सामना करना पड़ता है । वे भी जब वेदनीय के उदय  
से रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं, तो साधारण मुनियों की तो बात ही  
क्या है ? इस लिये ऐसी परिस्थिति में मुनि को कभी भी आत्मग्लानि  
नहीं करनी चाहिये । दूसरे—अपने मनमें यह भी विचार कर वेदनाओं  
को सहन करना चाहिये कि मैं इस समय जो रोगादिकों से अभिभूत

वगेरेना सामना करवो पडे छे—जेना उपर प्राणघातक शूलादिक रोग अेकडकी  
आक्रमण करे छे जेवा मुनियेने भाटे तीर्थकर—देवोअे तेमन गणधरादिक मड-  
र्षिओअे आ वात डडी छे शु डहु छे ? आ गुजासानु सारासारद्वारा समाधान करता  
सूत्रकार डडे छे डे—अे धीर वीर साधु शूलादिक रोगधी आक्रात डोवा छता  
शूलादिक वेदनाओ सडे, जेनाधी अे उद्विग्नचित्त न बने चारित्रमोहनीय कर्मना  
क्षयोपशमधी अेव चारित्रनी प्राप्ति करे छे वेदनीय कर्मना उदयधी अनेक प्रकारनी  
वेदनाओ उत्पन्न थाय छे डेवजियेने पणु रोगोना सामना करवो पडे छे, तेओ  
पणु न्यारे वेदनीयना उदयधी रोगोधी वेशध नय छे तो पछी साधारण मुनि-  
योनी तो वात न शी करवी ? भाटे आवी परिस्थितिमा मुनिओ डही पणु आत्म  
ग्लानी करवी जेधओ नडी अीणु पोताना मनमा जेवो पणु विचार करी वेद-  
नाओने सडेवी जेधओ डे डु आ समय जे रोग आदिधी पिडीत छु अे अधा

મયૈવ સહનીયમ્, પતત્=પતદેવ દુઃખં પશ્ચાદપિ ધર્તમાનકામ્બાનન્તરં ધાર્દ્વમ્પાદાંબપિ મયૈવ સર્થં સ્પાત્, તીર્થક્રુરાદીનામપિ તત્સમ્મવાદિત્યર્થાર્યં સ્વાસ્માનં નાવમાન-યેત્, ઉક્તં—

હો રહ્યા હૃ, મો યહ સય અસાતાવેદનીય—કર્મજનિત ચિલાસ હૈ । હસ ઝીષ કે સાય હસકા સમ્બંધ પહિલે સે લગા આ રહ્યા હૈ । યહ અમી નધીન તો ષધા નહીં હૈ । તય જો કર્મ યંધા હૈ ઉસકા ઉદય તો આવેગા હી । ઉસકે ઉદયમેં સ્વેદમ્બિહ્ન હોના ઉસ કર્મ કે નધીન યંધકી રહતા કા કારણ હૈ, સમતા સે ઉસકે ફલ કો મોગના નિર્જરા કા હેતુ હૈ, મતઃ હસકા ઉદયજન્ય દુઃસ્વ પૂષ મેં મી મૈને હી મોગા હૈ ઓર આગે મી વૃદ્ધા-વસ્થા આદિ મેં ઘડી દુઃસ્વ મુક્ષે હી મોગના પહેગા । અરે ! મેરી તો યહાં પર કયા ગિનતી હૈ ? દુઃસ્વ યહ સમગ્ર ફર મુક્ષે થોહે હી છોડ દેગા કિ 'યહ સાધુ હૈ' । અરે ! મેરે જૈસોં કી કયા પાત ? તીર્થક્રુરાદિકોં કો મી તો કાપ્તોં કી સમાવના રહતી હૈ ।

નાવાર્થ—દુઃસ્વોં કે ધાને પર દુઃસ્વિત પ્રાણી જય અપને સમક્ષ અન્ય દૂસરે વ્યક્તિયોં કે દુઃસ્વોં કા વિષાર કરતા હૈ, તો ઉસે ધાગત દુઃસ્વોં કો સહને મેં પ્રોત્સાહન મિલ્યા હૈ, યહી પાત યહાં પર ટીકાકાર ને પ્રગટ કી હૈ, તીર્થક્રુરાદિષ્ જૈસે મહાપુરુષાં કા ઉસકે સમક્ષ ઉસ અવસ્થા મેં આદર્શ ઉપસ્થિત કિયા હૈ, જિસસે યહ દુઃસ્વોં કે સહને મેં

અસાતા-વેદનીય કર્મોને સિપાક છે આ જીવનની સાથે તેને અબંધ પહેલાથી જાણેલો છે, આ આજે નવીન તો બધાયેલ નથી, ત્યારે જે કર્મ બંધાયેલ છે તેને ઉદય અવવાને બ આ ઉદયમા આજ્ઞામણુ અનુભવથી તે કર્મને નવા બંધનુ બંધન બાધવા સમાન છે સમતાથી તેના જ્ઞાને ભોગવવું તે નિર્જસને હેતુ છે, જ્યેટલે તના ઉદયજન્ય દુઃખ પૂર્વમા પણ મે ભોવબ્યા છે અને આગળ પણ વૃદ્ધાવસ્થા આદિમા પણ દુઃખ મારે ભોગવવું પડ્યો. અરે ! મારી તો શુ ગણત્રી છે દુઃખ જોવું અમજીને મને નહીં છોટી રે કે 'જે સાધુ છે' તીર્થક્રુરાદિકને પણ કર્મની સમાવના રહે છે

નાવાર્થ—દુઃખના આવવાથી દુઃખિત પ્રાણી પોતાની સાથે બીજા અસ્થિ આના દુઃખને વિષાર કરે છે તો તેને આગળ આવવા દુઃખોને સહન કરવામા પ્રોત્સાહન મળે છે આ પાતને ટીકાકારે જ્યાં પ્રગટ કરેલ છે તીર્થક્રુરાદિક જેવા મહાપુરુષાના તેની સાથે તેવી અવસ્થામા આદર્શ ઉપસ્થિત કરેલ છે જેથી તે દુઃખો યદન કરવામા ટીકા-પોષે ન બની અપ આસ્ત્રિની પ્રાપ્તિ અન્ય કર્મોના

“स्वकृतपरिणतानां, दुर्नयानां विपाकः, पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।  
इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं, समपरिणतिभावात् सद्यते संयतैस्तत् ॥१॥” इति।

मलिनपरिणामी न बन सके। चारित्रकी प्राप्ति अन्य कर्म के क्षयोप-  
शमादिक का कार्य है और दुःखों का आना अन्य अन्य दूसरे कर्म के  
उदय का कार्य है। एक के क्षयोपशम में अन्य का भी क्षयोपशम हो  
जायगा यह तो कोई नियम नहीं है। अतः चारित्राराधन करनेवालों  
को कष्टों का सामना न करना पड़े यह मान्यता कैसे युक्तियुक्त हो सकती  
है। इसलिये कष्टों को भोगते समय आत्मा में समताभाव धारण  
करना ही श्रेयस्कर मार्ग है। आत्मग्लानि करना कर्मबन्धकी दृढता का  
कारण बनता है; इसलिये मोक्षार्थीजनका यह कर्तव्य है कि वह वीर्योल्लास-  
शाली बन उनका सदा सामना करनेमें कटिबद्ध रहे। कहा भी है—

“ स्वकृतपरिणतानां दुर्नयानां विपाकः,

पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।

इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं,

समपरिणतिभावात्सद्यते संयतैस्तत्” ॥१॥ इति,

इस प्रकार दुःखों के आने पर साधुजनका उनके सहन करने का  
यह विचार परम पवित्र है। वे यह सोच कर दुःखों को सहन करें कि  
मेरे कर्मों की निर्जरा का यही सुन्दर अवसर है।

क्षयोपशमादिकनु कार्य छे अने हु जेनु आववु जीवत कर्मोना उदयनु कार्य छे  
'अेकना क्षयोपशममा जीवतनु पणु क्षयोपशम अनी रहे छे' अेवो तो केछ नियम  
नथी, भाटे आ चारित्रनु आगधन करवावाणाने कष्टोनेो सामनेो न करवो पडे  
अे मान्यता डेवी रीते अ धणेसती थर्छ शके ? भाटे कष्टोने लोअवती समय  
आत्मामा समतालाव धारणु करवो अे श्रेयस्कर मार्ग छे, आत्मग्लानि करवी अे  
कर्मअ धननी दृढतानु कारणु अने छे, अेथी मोक्षार्थी जननु अे कर्तव्य छे के ते  
मझम अनी तेनेो सदा सामनेो करवामा कटिबद्ध रहे । कहुँ पणु छे—

स्वकृतपरिणतानां दुर्नयानां विपाकः, पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।

इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं, समपरिणतिभावात्सद्यते संयतैस्तत् ॥१॥ इति.

आ प्रकारना हु जे आववाथी साधुजननेो तेने सहन करवानेो तेवो विचार  
परम पवित्र छे ते अेवु विचारी हु जेने सहन करे के भास कर्मोनी निर्जरा  
आ सुदरमा सुदर अवसर छे

પરમાત્સરોડયં કર્મનિર્જરાયા ઇતિ જ્ઞમેત વેદનામિતિ તાત્પર્યમ્ । કિંચ-શ્દ શરીર રસાયનાદિસેવનેન સમુપનાતોપચયમપિ પાર્થિવામહુમ્મલદન્ત સારગુત્યં સ્પષ્ટહૃદ્નષ્ટમસ્તીત્યાહ-‘મિદુરધર્મ’ મિત્યાદિ, મિદુરધર્મ=મિદુરઃ ક્ષણમગુરો ધર્મ સ્વમાયો યમ્ય તત્ મિદુરધર્મ=ચિનશનશીલ શરીરમ્, ઔદારિકમ્ય સુપોપિતસ્યાપ

તથા—રસાયનાદિક કે સેવન સે હસ શરીરમેં પુષ્ટિ ધાતી હે તો ખી જિસ પ્રકાર મિદી કા કષ્ટા ઘટ ખીતર મેં સારરહિત હોતા હૈ—પાની કે છીટે લગતે હી જૈસે ઘટ દેસ્વતેર નષ્ટ હો જાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર સે હસ શરીર કી ખી યહી પરિસ્થિતિ હૈ । વેદના આદિ બલવાન્ આયુઃ ક્ષયકે કારણોં કે આ જાને પર મલ રસાયનાદિ અકિચિત્કર (રોગ હટાને મેં અસમર્થ) હો જાતે હૈં ઓર યહ શરીર ખી દેસ્વતેર નષ્ટ હો જાતા હૈ, અપના કિયા-કરાયા સય નિષ્ફલ હો જાતા હૈ । મુનિકો પેસા ચિચાર કર વેદનાઓં કે મહને મેં કાયરતા નહીં જાની ધાહિયે । હસ પ્રકાર ઉસકે વત્સાહ-વર્ષનાર્થ સુત્રકાર “મિદુરધર્મમ્ ચિદ્સણધર્મમ્” ઇત્યાદિ પદોં સે શરીર કા સ્વમાય પ્રદર્શિત કરતે હૈં । ક્ષણમગુર જિસકા સ્વમાય હૈ વહ મિદુરધર્મ હૈ । યહ ઔદારિક શરીર ચિનશનશીલ હૈ । અચ્છી તરહ સે પોપિત કરને પર ખી યહ અપને સ્વમાય કો નહીં ઓહતા હૈ । કદાચિત્ વેદનીય કા ઉદય હો જાતા હૈ તલ શીઘ્ર હસકે અગ-ઉપાગોં મેં અનેક પ્રકાર કે પરિવર્તન હોસે દેસે જાતે હૈં । હસીકી પુષ્ટિ ટીકાકાર-

હરી—અર્થાત્ રસાયનાદિકના સેવનથી શરીરમા પુષ્ટિ આવે છે તે પણ જે પ્રકારે માગીને કાચો ઘડો અદરથી સારસ્થિત હોય છે, તેને પાણીને ઘોડે માત્ર સ્પર્શ થતા જોત-જોતામા તે જળી નર્તિ નાશ પામે છે એ જ રીતે આ શરીરની પણ તેવી જ સ્થિતિ છે વેદના આદિ બલવાન્ આયુ ક્ષયના કારણે ઉપસ્થિત બનતાં બધા રસાયનાદિક અકિચિત્કર ( રોગને નિર્મૂળ કરવામાં અસમર્થ ) બની જાય છે અને આ શરીરને જોત-જોતામા નાશ થઈ જાય છે, અને કમુ કરાબુ બધુ નિર્મૂળ બની જાય છે મુનિકે આવે વિચાર હરી રોગની વેદના ચક્રન કરવામા કાઈ પ્રકારની કાયસ્તા બતાવવી ન જોઈએ. આ કારણે જોમનામા ઉત્સાહ દંડ બનાવવા સુત્રકાર ‘મિદુરધર્મમ્ ચિદ્સણધર્મમ્’ ઇત્યાદિ પદોથી શરીરને સ્વમાય કેવો છે તેનું પણ ન કરે છે—ક્ષણમગુર જોને સ્વમાય છે એ મિદુરધર્મ છે સુદર દેખાતો માનવદેહ વિનાશ માટે જ સજ થો છે અને તેનું જાલન-પાલન કરે છેતાં એ પોતાને સ્વમાય છા ના નથી. કોઈ વખત વેદનીયને ઉદય થાય છે ત્યારે તેના અજ ઉપાગોમાં શીઘ્ર અનેક પ્રકારનું

कदाचिद्वेदनीयोदयाच्छिरःकुक्षिनयनहृदयादिषु चावयवेषु स्वत एव शीघ्रं विशरारुत्वात् । अपि च-विध्वंसनधर्मं हस्तपादादेः कस्यचिदवयवविशेषस्योपघाताद्विध्वंसनम्=अधःपतनं धर्मो यस्य तद्विध्वंसनधर्मं जीर्णशीर्णपत्रादिवदधःपतनशी-

कुक्षिनयनहृदयादिषु चावयवेषु स्वत एव शीघ्रं विशरारुत्वात् ” इस पंक्तिसे करते हैं । मस्तक में, उदर में, आंखों में और हृदयादिक अवयवों में स्वत एव शीघ्र चिनशनशीलता प्रतीत होती है । यह तो प्रसिद्ध ही है—कि जब मस्तक में असातावेदनीय के निमित्त से प्रबल पीड़ा होती है या उसमें कोई भयंकर चोट लगती है तो ऐसी अवस्थामें देहान्त तक हो जाता है । यही हालत प्राणीकी पेटकी प्रबल पीडासे भी होती है । आंखों में दर्द होने से जो पहिले बड़ी लुभावनी एवं सुन्दर मालूम देती थी वे ही आंखें कुछ ही कालान्तर में फूट जाने से घृणास्पद बन जाती हैं । यदि ऐसा न भी हो तो भी उनकी रोशनी कम हो जाती है । हृदय की गति बंद होने से हृदा-कटा पद्मा भी एक मिनिट में काल के गाल में समा जाता है । इससे यही प्रतीत होता है कि इस औदारिक शरीर का कोई विश्वास नहीं, न जानें कब नष्ट हो जाय । इसका क्षण २ में परिवर्तन होता रहता है । इसी अपेक्षा से इसे भिदुरधर्मात्मक कहा गया है । तथा—यह शरीर विध्वंसनधर्मस्वरूप है । इसके किसी

परिवर्तन थतुं हेभाय छे आनी पुष्टिमा “ शिर कुक्षिनयनहृदयादिषु चावयवेषु स्वत एव शीघ्रं विशरारुत्वात् ” आ पकितथी कडे छे के—माथामा, पेटमा, आपोमा तेमज्ज हृदयादिके अवयवोमा स्वत एव तात्कालिके विनाश थाय तेवी प्रतीति डोय छे आ वात तो प्रसिद्ध ज छे के न्यारे माथामा असातावेदनीयना कारणे प्रभण पीडा थाय छे, अथवा तो एमा कोछ प्रभण चोट पडेांथी नय छे आ अवस्थामा प्राणीने देहान्त पषु आवी नय छे, आवी ज् डालत पेटना दर्दथी पषु अने छे आपोमा दर्द थवाथी पडेला ने भुभ ज् लोलावनारी सुदर हेभाती छती ते आपो थोडा ज् वभतमा कुटी ज्वाथी धृषुस्पद अनी नय छे, कदाय एवु न अने तो पषु अनी शशनी ओछी थर्ध नय छे हृदयनी गति अध पडवाथी सशक्त अने तद्वस्त माषुस अेक ज् मीनीटमा काणना विकराण पलमा ज्छ पडे छे आथी अे साभीत थाय छे के आ औदारिक शरीरने कोछ विश्वास नही, कोषु नल्ले क्यारे अने कर्ध घडीये अेना नाश थर्ध नय क्षण क्षणमा अेमा परिवर्तन थतुं ज् रडे छे आज् कारणे भिदुरधर्मात्मक कडेवामा आवेल छे आ शरीर ने विध्वंसनधर्मस्वरूप छे, अेना छाय यण



લમિત્યર્થઃ, एषम्-अधुषम्=अनिश्चितस्थितिकं चञ्चलम्यमावसात्, अनित्यम्-तथा-  
पच्युतानुत्पन्नस्विरायोघनस्वभाव नित्यं, न नित्यम्-अनित्यम्=अस्यापिस्वभावम्,

મી હસ્ત-પાદાદિક અંગવિશેષ મેં ડપઘાત-ચોટ આદિ કે લગને પર હસ  
કા અઘાપાત હો જાતા હૈ । જિમ પ્રકાર જીર્ણ-શીર્ણ પત્તોં કા અઘાપાતન  
હોતા રહતા હૈ, ઠીક યહી દશા હસ શરીર કી હોતી રહતી હૈ । મર્મસ્થાનો  
મેં યા હસ્ત-પાદાદિકોં (હાથ-પગ) મેં વિશેષ ચોટ લગને સે મૃત્યુ હો  
જાતી હૈ, યહ અનુભવસિદ્ધ ઘાત હૈ, હસલિયે હસે અધુષ મી કહા હૈ ।  
હસકે રહને કી કોઈ નિશ્ચિત સ્થિતિ નહીં હૈ । યદ્યપિ શાસ્ત્રોં મેં ઔદારિક  
શરીર કી સ્થિતિ ઉત્કૃષ્ટ ઔર જઘન્ય રીતિ સે પ્રદર્શિત કી ગઈં હૈ; પરતુ  
ડતની હી સ્થિતિ હસકે ઉદય મેં આવેગી યહ તો કોઈ નિશ્ચિત ઘાત  
નહીં । અકાલ મેં મી હસકા પતન હોતા દેખા જાતા હૈ । ક્યોં કિ હસ કા  
સ્વભાવ હી ચંચલ હૈ, સ્થિર નહીં, અતઃ હમ અપેક્ષા સે યહ અનિત્ય હૈ ।  
યદ્યપિ દ્રવ્યદષ્ટિ સે કિસી મી વસ્તુ કા સમૂલ ભાષા નહીં હોતા હૈ, તો મી  
પર્યાયદષ્ટિ સે પ્રત્યેક પદાર્થ પરિણમનશીલ હૈ । જો વસ્તુ અપને સ્વરૂપ સે  
અપ્રચ્યુત અમુત્પન્ન સ્થિર ઔર અયોગન સ્વભાવવાલી હોતી હૈ ઊમકા  
નામ નિશ્ચ હૈ । હસ પ્રકાર કી નિત્યતા સે જો રહિત હૈ, ઘહ અનિત્ય હૈ ।  
હસ શરીર મેં હસ પ્રકારકી નિત્યતા નહીં હૈ, ક્યોં કિ યહ પૂરણ-ગલન-

પ્રત્યાહિ કોઈ જાત ઉપર ઘાત આદિ લાગી જતા તેનો અઘ પાત યઈ વાઘ છે  
જેવી રીતે ઘડ ઉપરના છબ્બ પાઠકાને હવાનો સાધારણ સ્પર્શ લાગતા જ તે ખરી  
પઠે છે ઠીક આવી દશા આ શરીરની યતી રહે છે મમ મ્થાનોમ્ અને કાય પઞ્ચેમ્  
વિશેષ ચોટ લાગવાથી મૃત્યુ યાવ છે એ અનુભવસિદ્ધ ઘાત છે આ કારણે જેને  
અસ્થિર કહેવામા આવે છે તેને સ્થવાની કોઈ નિશ્ચિત સ્થિતિ નથી તો પણ શાસ્ત્રોમાં  
ઔદારિક શરીરની સ્થિતિ ઉત્કૃષ્ટ અને જઘન્ય રીતિથી પ્રદર્શિત કરેલ છે, પરતુ  
જેરહી જ સ્થિતિ તેના ઉદયમા આવશે જેવી તો કોઈ નિશ્ચિત ઘાત નથી.  
અકાલમા પણ તેનું પતન થવું અસંભવ નથી, કારણ કે તેને સ્વભાવ ચંચલ જ  
છે-સ્થિર નથી એથી આ અપેક્ષાએ આ અનિત્ય છે, પરતુ દ્રવ્ય-દષ્ટિથી કોઈ પણ  
વસ્તુનો યમુના નાશ થતો નથી તો પણ પર્યાયદષ્ટિથી પ્રત્યેક પદાર્થ પરિણમનશીલ  
છે જે વસ્તુ પાતાના સ્વરૂપથી અપ્રચ્યુત અનુ પત્ત સ્થિર અને અયોગન સ્વભાવ  
વાળી કોષ છે તેનું નામ નિત્ય છે આવા પ્રકારની નિત્યતાથી જે સ્થિત છે તે અનિત્ય  
છે આ શરીરમા જેવા પ્રકારની નિત્યતા છે નહિ, કારણ કે તે પૂરણ-અવન-

अशाश्वतम्-शश्वत्=सर्वदा भवं शाश्वतं, न शाश्वतम्-अशाश्वतं-नित्यावस्थान-  
रहितम्, एव चयापचयिकम्-इन्द्राहाराद्युपयोगादौदारिकायवर्गणापरमाणुनामु-  
पचयाच्चयः, तद्विरुद्धोऽपचयः, चयश्चापचयश्च चयापचयौ, तावस्त्यस्येति चयापच-  
यिकं=वृद्धिक्षयस्वभावम्; अत एव विपरिणामधर्मं वि=चिविधैः गर्भकौमारयोवनवा-  
र्धकादिरूपैः परिणामः=दुग्धस्य दधिवदन्यथाभावो विपरिणामः, स एव धर्मः स्वभावो

स्वभाववाला है। इसलिये यह प्रच्युत उत्पन्न और अस्थिर है। जिस प्रकार कूटस्थ नित्य में कोई भी जात का परिणामन दृष्टिपथ नहीं होता है उस प्रकार का कूटस्थ नित्य अयोधनस्वरूप यह शरीर नहीं है, इसलिये यह अनित्य है-अस्थायिस्वभाववाला है। जो निरन्तर रहे उसका नाम शाश्वत है, जो शाश्वत नहीं है उसका नाम अशाश्वत है। यह शरीर अशाश्वत इसलिये है कि इसका अवस्थान नित्य नहीं है। इसी प्रकार यह शरीर चय और अपचय विशिष्ट है-इष्ट आहारादिक के उपयोग-सेवन से औदारिक कायवर्गणा के परमाणुओं की वृद्धि से इसमें चयस्वभावता, और इससे विपरीत आहारादिक के उपयोग से अपचयस्वभावता सिद्ध है। चय और अपचय में द्वन्द्व समास है। चय और अपचय से जो युक्त हो-अर्थात् चय और अपचय जिस में हों वह चयापचयिक है। वृद्धिक्षयस्वभावस्वरूप यह शरीर है। समयानुसार घटती-बढती शरीर में होती हुई प्रत्यक्ष प्रतीत होती है, इसीलिये यह विपरिणामधर्मवाला है। जिस प्रकार दूध का परिणाम दही-आदि

स्वभाववाला है, आ कारणों से प्रच्युत उत्पन्न होने अस्थिर है जो प्रकारों कूटस्थ नित्यता कोई पक्ष नित्य परिणाम होनेमा आवतु नहीं से प्रकारों अयोधनस्वरूप आ शरीर नहीं भाटे आ अनित्य है-अस्थायी स्वभाववाला है जो निरन्तर रहे तेनु नाम शाश्वत है, जो शाश्वत नहीं तेनु नाम अशाश्वत है आ शरीर अशाश्वत अटला भाटे है के अनेकी अवस्था नित्य नहीं आ प्रकारों आ शरीर चय अने अपचय-विशिष्ट है इष्ट आहारादिकना उपयोग-सेवन-थी औदारिककायवर्गणाना परमाणुओंकी वृद्धिथी तेमा चय-स्वभावता-अने अनेकी विपरीत आहारादिकना उपयोगथी अपचय-स्वभावता सिद्ध है, चय अने अपचयमा सामसामो स्वभाव है चय अने अपचय नेमा डोय ते चयापचयिक है. वृद्धि-क्षय-स्वभावस्वरूप आ शरीर है, समयानुसार घट-बढ शरीरमा याय है तेम प्रत्यक्ष देजाई आवे है. आ कारणों से विपरिणामधर्म-वाली है. नेम दुधनु परिणाम दही आदि अवस्थाइप थाय है तेवी रीते आ

यस्य तद्विपरिणामधर्मम् एकस्मिन्नेव जन्मनि विविधावस्याविशेषैरनेकविध-  
परिणामस्वभावं शरीरं वर्धतेऽतो इ मुनय ! यूयम् एतरूपसन्धिममिदुराविस्म-  
माय शरीरं मुकुलजन्मवोषिलाभाद्यनसरं च पश्यत—प्रेक्षध्व जानीतेत्यर्थो वा, तेन  
शरीरे ममस्त्र विहाय तपसैयमादे साफल्यं विधेयमिति भावः ॥ सू० २ ॥

मिदुरधर्मादिस्वरूपं शरीरं विबोध्यतो यद्गन्धेषु वर्धयति—‘समुप्येह’—इत्यादि।

मूल्म—समुप्येहमाणस्स इच्छाययणरयस्स इह विप्पमुक्कस्स  
नस्थि मग्गे विरयस्स—त्विवेमि ॥ सू० ३ ॥

छाया—समुत्प्रेक्षमाणस्यैकायतनरतस्यह विप्रमुक्तस्य नास्ति मार्गो क्वित  
स्येति ध्रवीमि ॥ सू० ३ ॥

अवस्थारूप होता है उसी प्रकार इस शरीर के परिणामस्वरूप गर्भ-  
कौमार (वास्य अवस्था) और वीचन एवं वृद्ध अवस्थाएं हैं। इस प्रकार  
एक ही जन्म में इन अनेक अवस्थाविशेषों से इस शरीर का भिन्न २  
रूप में परिणामन होता हुआ देखा जाता है। इसलिये हे मुनियों!  
रूपसन्धि अर्थात् भिदुरादिस्वभावबाला रूप=शरीर को एवं उत्तमकुल  
में उत्पत्ति तथा वोषिलाभ आदि प्राप्त करने की सन्धि=अवसर को देखो।  
इसका अभिप्राय यह है कि—शारीरिकममता छोड़ कर तप संयम  
आदि का आराधन कर जीवन को सफल बनाओ ॥ सू० २ ॥

इन पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट शरीर को समझनेवाले मुमुक्षुजन  
को जो लाभ होता है, सूत्रकार उसे प्रकट करते हैं—‘समुप्येह’—इत्यादि।

शरीरानु परिव्याम-स्वरूपं मम व्याख्यायन्त्या अने वीचन तेमए वृद्ध  
अवस्थायां ए आ रीते कोठ ए ए ममा गुडी गुडी अनेक अवस्था उपलब्ध  
आ शरीरानु भिन्न भिन्न रूपमां परिव्यामे ए ने समयातुइल देभाए आवे ए  
आ ठारणे के मुनिये। रूपसन्धि अर्थात् भिदुरादिस्वभावबाला रूप, शरीरानु  
उत्तम कुलमा उत्पत्ति, लाभ आदि प्राप्त करवानी सन्धि=अवसरने गुणे-  
आने। अभिप्राय ये ए के शारीरिक ममदाने छोड़ने तप संयम आदितु  
आराधन करी एवनने सफल बनाने ॥ सू० २ ॥

आ पूर्वोक्त विशेषणों की विशिष्ट शरीरानु समख्यावाणा भाषाणी' एने  
ने लाभ प्राप्त ए तेने सूत्रकार प्रम करे ए—‘समुप्येह’—इत्यादि।

टीका—‘समुत्प्रेक्षमाणस्ये’—त्यादि। समुत्प्रेक्षमाणस्य—सम्=सम्यक् उत्प्रेक्षमाणस्य=पश्यतः—भिदुरादिधर्ममिदं शरीरमित्येवं निश्चिन्वत इत्यर्थः, एकायतनरतस्य=सकलसावद्यव्यापारेभ्य आत्मा आयत्यते यस्मिन्, निपुणाचरणे वा यत्नवान् विधीयते इत्यायतनं=रत्नत्रयम्, एकम्=सजातीयद्वितीयरहितम् आयतनम् एकायतनं, तस्मिन् रतः=तत्परः=एकायतनरतस्तस्य—रत्नत्रयसमाराधनपरायणस्य

जिसे यह दृढ प्रतीति हो चुकी है कि पौद्गलिक होने से यह शरीर भिदुरादिधर्मात्मक है, इससे आत्मकल्याण का मार्ग साधा जा सकता है, अतः इसकी उपयोगिता अवश्य कर लेनी चाहिये; नहीं तो न मालूम कब इसका पतन हो जावे और मैं यों ही संसार में परिभ्रमण करता रहूँ। इस प्रकार की पवित्र भावना के वशवर्ती हो कर जो सकल सावद्य व्यापारों से निवृत्त होते रहते हैं वे रत्नत्रयरूप निज आत्मस्वभाव में रत बनते हैं। तथा संसार, शरीर एवं भोगों से सर्वथा छोड़ी हुई कोंचली से सर्प की तरह जो अलिप्त रहते हैं, अपनी प्रवृत्ति को रातदिन वैराग्य की भावना रूपी पुटसे निर्मल बनाते रहते हैं, ऐसे विरत मुनि का नरकनिगोदादिक में गमन नहीं होता है। इन्हीं समस्त अभिप्रायों को चित्त में धारण कर सूत्रकार ने ‘समुत्प्रेक्षमाणस्य’ इस सूत्र का अवतरण किया है। वे कहते हैं—‘समुत्प्रेक्षमाणस्य’ यह शरीर भिदुरादिधर्मात्मक है, इस प्रकार से इस शरीरका अच्छी तरह से जिसे निश्चय हो चुका है, और इसीलिये जो “एकायतनरतस्य” एकायतनस्वरूप रत्नत्रय में रत बना हुआ है—सकल

जेनाथी आवी दढ जात्री थध चुकी छे डे पौद्गलिक डोवाथी आ शरीर भिदुरादिधर्मात्मक छे, जेनाथी आत्मकल्याणने मार्ग साधी शक्य छे, जेटले जेना उपयोग जरूरी करी लेवो जेधजे, न जखे क्यारे जेनु पतन थध जाय, आ संसारमा हु आन रीते परिभ्रमण करतो न रहु, जेवा प्रकारनी पवित्र भावनाने वश थध जे सकल सावद्य व्यापारोथी निवृत्त जने छे ते रत्नत्रय रूप योताना आत्मस्वभावमा रत जने छे, जने संसार शरीर तथा लोकोथी सर्प जेम उतारेली कायणीथी सदा दूर रहे छे ते रीते अलिप्त रही योतानी प्रवृत्तिने अहोरात्र वैराग्यनी भावनारूपी पुटथी निर्माण जनावतो रहे छे जेवा विरत मुनितु नरक-निगोदादिकमा गमन थतु नथी आ सधणा अलिप्रायेने दिलमा धारण करी सूत्रकारे ‘समुत्प्रेक्षमाणस्य’ आ सूत्रतु अवतरण करेले छे. ते कहेछे डे—‘समुत्प्रेक्षमाणस्य’ आ शरीर भिदुरादिधर्मात्मक छे आ प्रकारथी आ शरीरने सारी रीते जेने अनुभव थध गयो छे, जने तेथी न जे “एकायतनरतस्य”—

इह=शरीर जन्मनि समारे वा विप्रमुक्तस्य-परिग्रहममत्वादि रहितत्वेन वि=विविध-  
 प्रकारैः प्रकर्षेण च मुक्तस्य-वैराग्यभावनाया शरीराद्यनुरागरहितस्य, विरतस्य=  
 सावधन्यापाररहितस्य मुने मार्गं=नरकनिगोदादिगत्यागतिरूप पन्था नास्ति=  
 न विद्यत । विरतस्य मुने कर्मण शरीरस्य चासत्त्वात् नरकादिगतिषु गमनं भव-  
 त्यतस्तस्य स मार्गं नास्तीत्याशयः । इति प्रवीमि=न मया म्यमत्या प्रोक्तम्,  
 यद्गणत्सकाशान्मया भुक्तं तत् सर्वं त्वा प्रवीमि=कथयामि ॥ सू० ३ ॥

सावध व्यापारों से निवृत्त किया जाता है आत्मा जिसकी स्थिति में, अथवा  
 निपुण आचरण में यत्नवाला किया जाता है आत्मा जिसके द्वारा उसका  
 नाम आयतन है, वह रत्नत्रयस्वरूप है, यह आत्मा का निजधर्म है । इसके  
 साथ दिया गया " एक " विशेषण यह यत्नवाला है कि इसकी जोड़का  
 और कोई पदार्थ इस दुनिया में नहीं है । यह एक-असहाय-सर्वोत्कृष्ट धर्म  
 है । एकायतन में जो रत्न-खवलीन है, अर्थात् रत्नत्रयकी अच्छी तरह  
 से आराधना करने में तत्पर है वह एकायतनरत्न है । तथा " इह "   
 शरीर, जन्म अथवा संसार में " विप्रमुक्तस्य " परिग्रह एवं ममत्वादि  
 से रहित होनेसे जो " वि " विविध प्रकारों से और " प्र " प्रकर्ष से  
 " मुक्तस्य " वैराग्यभावना से शरीरादिक के अनुराग से रहित है  
 ऐसे सावध व्यापारों से रहित मुनि का मार्ग-नरकनिगोदादिक का गति-  
 आगतिरूप मार्ग नहीं होता है, कारण कि विरत मुनि के तत्कालीन कर्म  
 एवं शरीर का अमत्य होने से नरकादि गतियों में गमन नहीं होता है ।

एकायतनस्वरूप रत्नत्रयमा रत्न बनेला छे अथवा सावध व्यापारोंसे निवृत्त कशा छे  
 आत्मा केनी स्थितिमा अथवा निपुण आचरणमा यत्नवाला बनावी देवामा आवे  
 छे आत्मा केनाथी तेनु नाम आयतन छे ते रत्नत्रयस्वरूप छे आ आत्माना  
 निजधर्म छे तेनी साथे व्यापारामा आवेला ' एक ' विशेषण अे बतावे  
 छे के तेनी अेकत्वे केछ पदार्थ दुनियामा छे न नहि त अेक असहाय सर्वो  
 कृष्ट धर्म छे अेकायतनमा के तत्पर छे अर्थात् रत्नत्रयनी साथी रीते आरा  
 धना कशवामा तत्पर छे त अेकायतनरत्न छे तथा ' इह ' शरीर न म  
 अथवा संसारमा विप्रमुक्तस्य परिग्रह ममत्वादिथी रहित होवथी ते  
 वि " विविध प्रकारथी प्र प्रकर्षथी " मुक्तस्य वैराग्य भावनाथी शरीरादि  
 अत्नेनी ममत्वाथी रहित छे अेका सावध व्यापारोंथी रहित मुनिने मार्ग-नरक  
 निगोदादिनी गति-आगतिरूप मार्ग-कोतो नथी, कारण के विरत मुनिना तत्काली  
 तीय कर्म अथवा शरीरमा आसक्तत्वात् न होवथी नरकादि अनिष्टमां तेनु अमन

सावद्यव्यापारविरतो मुनिर्भवतीत्यभिधायाधुना तद्विपरीताचारमाचरन् परिग्रहवानिति दर्शयितुमाह—‘आवंती’ इत्यादि ।

मूलम्—आवंती केयावंती लोगंसि परिग्गहावंती, से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा, एएसु चेव परिग्गहावंती, एयमेव एगेसिं महब्भयं भवइ, लोगवित्तं च णं उवेहाए, एए संगे अविघाणओ ॥ सू० ४ ॥

छाया—यावन्तः कियन्तो लोके परिग्रहवन्तः, तदल्पं वा बहु वा अणु वा स्थूलं वा चित्तवद्वा अचित्तवद्वा, एतेषु चैव परिग्रहवन्तः । एतदेव एकेषा महाभयं भवति, लोकवित्तं च खलत्प्रेक्ष्यैतान् सद्भानविजानतः ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘यावन्तः’ इत्यादि, लोके=मनुष्यलोके यावन्तः=कियन्तः परिग्रहवन्तः—परिग्रहो येषामस्ति ते परिग्रहवन्तः=परिग्रहतत्परा भवेयुः । यस्य द्रव्यस्य परिग्रहस्तद् द्रव्यम् अल्पं=स्तोकं—मूल्यतः कपर्दिकादिक, प्रमाणतोऽर्कतूलादिकं,

इसलिये उसका वह मार्ग नहीं है । यह कथन मैंने अपनी बुद्धिसे कल्पित कर नहीं कहा है; परंतु जैसा मैंने भगवान् के मुख से सुना है वह सब वैसा तुमसे कहा है—इस प्रकार सुधर्मस्वामीने जम्बूस्वामीसे कहा ॥ सू० ३ ॥

‘सावद्य व्यापारों से विरत मुनि होता है’ इस बातको कह कर अब ‘जो इससे विपरीत अपनी प्रवृत्ति करता है वह परिग्रही है’ इस विषय को प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—‘आवंती’ इत्यादि ।

इस मनुष्य लोक में कितनेक मानव परिग्रहशाली हैं । यह परिग्रहीत द्रव्य, चाहे अल्प हो; चाहे बहुत हो, परिग्रह, चाहे अणुरूप में हो; चाहे स्थूलरूप में हो; चाहे सचित्त हो; चाहे अचित्त हो; इनमेंसे

यतु नथी, आ कारणे तेमनो ते मार्गं नथी आ कथन मे चोतानी बुद्धिथी कल्पेणु नथी, परतु आ मे भगवानना सुणेथी साल्लयु छे ये णधु तमोने कहु छे आ प्रकारे सुधर्म स्वामीये जम्बू स्वामीने कहु ॥ सू० ३ ॥

‘सावद्य व्यापारोथी विरत मुनि डोय छे,’ आ वात कहीने डवे ‘ने येनाथी विपरीत चोतानी प्रवृत्ति करे छे ते परिग्रही छे,’ आ विषयने प्रकट करवा माटे सूत्रकार कहे छे—“आवंती” इत्यादि

आ मनुष्यलोकाभा केटलाक भाणुसे परिग्रही छे -परिग्रह नेने छे ते परिग्रहीत द्रव्य लवे थोडु डोय, लवे वधारे डोय, लवे आणुरूप डोय, लवे स्थूलरूपमा डोय, लवे अचित्तरूपमा डोय, लवे अचित्त डोय, आमाथी कथ

बहु=अधिक वा-मूल्यतो रत्नादिकं, प्रमाणतः काष्ठादिकम्; अणु वा-मूल्यतो-  
 लघुवर्णादिकं, प्रमाणतो वत्नादिकं, स्पृशं वा-मूल्येन प्रमाणेन च गनादिकम् ।  
 तानि च द्रव्यमात्रमेव द्विविधानि योष्यानि; तथा हि-किञ्चित् वस्तु द्रव्यतोऽप्य  
 न भावत-वत्नादिमणिः, अपरं च भावतोऽप्य न द्रव्यत-परगृहकाष्ठादिकम्,  
 अन्यच्च द्रव्यतो भावताऽप्यल्प कपर्दादिकम्; उभयता बहु स्पृशं च गोशीर्षक  
 रिचन्द्रनादिकम् । यद्वा-परिग्रहवस्तुर्विधो द्रव्यक्षेत्रकामभावभेदात् । एतच्च सर्वं  
 चित्तवद् वा अचित्तवद् वा, उपलक्षणमिदंम्यापि ग्रहणम् । सर्वेषामेतेषां योगेन  
 कुछ भी जिसके पास हैं वह परिग्रही है । यह परिग्रह ही अविरतियों  
 और चिरतियों को महान् अयस्वरूप होता है । इस प्रकार इस लोकवित्त  
 को समझ कर जो इससे चिरत हैं उनके परिग्रहजय भय नहीं होता है ।  
 परिग्रह में अल्पता और अधिकता मूल्य की एवं प्रमाण की अपेक्षा से  
 बनलाई गई हैं । मूल्यकी अपेक्षा जिसके पास एक कोड़ी-मात्र अल्प परि  
 ग्रह है अर्थात् इतना भी जिसके परिग्रह हैं कि जिसकी कीमत एक कोड़ी है  
 वह भी परिग्रही है । प्रमाण की अपेक्षा-अर्कनुलादि (आककी रई)  
 मात्र भी जिसके परिग्रह है वह भी उसमें ममस्वभायचिशिष्ट होने से  
 परिग्रहयुक्त है । इसीप्रकार मूल्यकी अपेक्षा रत्नादिक, प्रमाणकी अपेक्षा  
 काष्ठादिक बहुत परिग्रह हैं । मूल्यकी अपेक्षा लघु-अणु नृणादिक, प्रमाण  
 की अपेक्षा घञादिक, मूल्य और प्रमाण से स्पृश हाथी घोड़े आदि  
 परिग्रह हैं । अचित्त और अचित्त परिग्रहके ग्रहण से मिश्र परिग्रहका  
 भी यहा ग्रहण हुआ है । इन समस्त के ग्रहण से अथवा कुछ २ के

पणु नेनी पसे उ तेने परिग्रही कहे उ आ परिग्रह व अविरतियो अने विस्त  
 येने महालयम्बउप उ आ प्रकार आ लो। परिग्रहने अमलने ने तेनाथी  
 विगत उ तेने परिग्रहने अय दातो नथी. परिग्रहमा अल्पता अने अपि  
 उता भूम्यनी अने प्रभाजनी अपे ॥थी लताववाभा आपी उ डिमननी अपेक्षा  
 नेनी पसे जेक कोपी मात्र अल्प परिग्रह उ अर्थात् जेटलो पणु परिग्रह उ के  
 नेनी डिमन जेक कोपी उ त पणु परिग्रही उ प्रभाजनी अपेक्षा आकडानु इ  
 मात्र पणु नेने परिग्रह उ त पणु तेनाभां भमत्वलाचिशिष्ट दोषाथी  
 परिग्रहयुक्त उ नथी रीने भूम्यनी अपेक्षा रत्नादिक, प्रभाजनी अपेक्षा कान  
 आदिक यलोअ परिग्रह उ भूम्यनी अपेक्षा लघु-अणु-नृणादिक प्रभाजनी अपेक्षा  
 वत्नादिक भूम्य अने प्रभाजनी स्पृश दापी योअ आदि परिग्रह उ अचित्त  
 अने अचित्त परिग्रहना ग्रहणगी मिश्र परिग्रहने पणु अति अल्प यथक उ

परिग्रहिणो भवन्ति, तदेवाह—एतेऽप्यित्यादि, एतेषु चैव=षड्जीवनिकायेष्वल्प-  
बहुस्थूललघ्वादिषु चैव प्राणिनः परिग्रहवन्तः=ममत्ववन्तो जायन्ते । यः कोऽपि  
विरतोऽविरतो वाऽल्पादिवस्तुजातेन परिग्रहवान् भवति, ततश्च पञ्च-महाव्रतेष्वेक-  
व्रतविराधनात् सर्वव्रतविराधको भवति, अनिवारितास्रवत्वादिति भावः । एतेषां  
परिग्रहात्तत्सेविनामपरिग्रहाभिमानिनां शरीरमनर्थार्थैवेत्याह—‘एतदेवे’त्यादि ।

ग्रहण से जीव परिग्रही होते हैं । इन षड्जीवनिकायरूप अल्प, बहु,  
स्थूल और लघुरूप परिग्रहमें मूर्च्छाशाली होने से जीव ममत्वपरिणामी  
होते हैं । जो कोई अविरत प्राणी अपने को विरतरूप से घोषित करता  
हुआ भी ‘ममेदं’-भावसे अल्प परिग्रहरूप वस्तु का भी ग्रहण करता है  
वह परिग्रही ही है । इसी प्रकार से पञ्चमहाव्रतों में से जो एक भी व्रतकी  
विराधना करता है वह अपने समस्त व्रतोंका विराधक होता है । कहीं  
किसी एक अंश में भी जिसके अपराध का सद्भाव हुआ है उसके समस्त  
अंशों में भी अपराधीपना आता है; क्यों कि ऐसी हालतमें उसके आस्रव  
का द्वार बंद नहीं होता । उत्तर गुणों में अतिचार भी ऐसा ही होता है  
यदि मूलगुणों का विध्वंसक न हो ।

शङ्का—अल्पादिवस्तुरूप परिग्रह के ग्रहण से यदि परिग्रहवत्ता  
मानी जावे तो फिर जो अल्पादिरूप परिग्रहका सेवन करते हुए भी  
अपने को अपरिग्रही कहते हैं उनके आहार एवं शरीरादिक भी

आ भधाना अडलुथी अथवा केअर केअरना अडलुथी लुव परिअडुी अने छे  
आ षड्जीवनिकायइय अल्प, बहु, स्थूल तेमअ लघुइय परिअडुमा मूर्च्छाशाली  
डोवाथी लुव ममत्वपरिणामी अने छे ने केअर अविरत प्राणी पोताने  
विरतइयथी नडेर करी ‘ममेदं’-भावथी अल्पपरिअडुइय वस्तु पणु अडलु  
करे तो ते परिअडुी अ छे आ प्रकारे पाय महाव्रतमाना अेक व्रतनी विरा-  
धना करे छे ते पोताना समस्त व्रताने विराधक अने छे कथाक केअर अेक  
अशमां पणु नेनामा अपराधने सदुलाव थयो पछी तेना समस्त अशेमा  
अपराधीपणु आवी नय छे, केअके अेवी डालतमा अेना आस्रवना द्वार  
अध नथी थता ने मूलगुणाने विध्वसक नडि डोय तो उत्तरगुणाने पणु  
अतिचार अेमअ डोय छे

शङ्का—अल्पादिवस्तुरूप परिअडुना अडलुथी ने परिअडुवत्ता मान-  
नामा आवे तो पछी अल्पादिरूप परिअडुतु सेवन करवा छता पोताने अपरि-  
अडुी डडे अेना आडार अने शरीरादिक पणु अनर्थाने कारणु अनशे ? आ



एकेपां=केपांचिद् विस्तानामविस्ताना या परिग्रहिणाम् एतदेव शरीरं महामयं=कारणे कर्मोपचारात्प्राणातिपातादिकरणेन नरकनिगोदादिकदुःकफल्परूपमहामयमनकत्वा महामयमेव भवति ।

यद्वा-यथा-पाणिपुटमाजिनां शरीरादारादेरन्यस्याप्यल्पस्य पात्रवत्त्वादेरसत्त्वाद् गृहस्यसप्तनि चापःकर्मोदिशोपदुष्टमाहारादिकमभ्रतां हि मद्गता कर्मण्येन पोषणाच्छरीरं महामयहेतुत्वान्महामयं, तथा तच्छरीरं शुद्धस्थानेऽनाच्छादनेन अनर्थके लिये होंगे ? इस शंकाका समाधान करने के लिये सूत्रकार " एतदेव एकेपां महामयं भवति " इस सूत्राण का कथन करते हैं। वे कहते हैं—चाहे विरतिसपन्न हो, चाहे उससे रहित भवती हो उसके धन्यादिरूप परिग्रह की मत्ता में भी ' भवेद् ' -भावसे अवश्य परिग्रहपना है । यह परिग्रहवत्ता ही उनके लिये नरकनिगोदादिक के भयंकर फलरूप महामय का कारण होने से महामयस्वरूप होता है ।

अथवा-परिग्रहयुक्त प्राणियों के " एतदेव " यह शरीर और आहारादिक महामयस्वरूप हैं, जैसे-जो पाणिपुट ( करपात्र ) में भोजन करनेवाले हैं, जिनके पास पात्र और बरतनादिक कुछ भी नहीं हैं; परन्तु वे गृहस्थों के यहा आभाकर्मदिक दोषोंसे दूषित आहारादिक के लेने से महान् कर्मों का बंध करनेवाले होते हैं, इससे उनका शरीरादिक उन्हें महामय का हेतु होने से महामयस्वरूप हैं । तथा-उनका शरीर, बरत से रहित होने से शुद्धस्थान निरावरण रहता है,

शरीरं समाधानं करपात्रं सूत्रकार ' एतदेव एकेपां महामयं भवति ' का सूत्र का कथन करे छे ते कहे छे के-कहे विरतिसपन्न होय कहे जेनाथी रहित भवती होय छतां अत्रापदिग्रह परिग्रहनी अत्तामां पञ्च भवेद्भावधी अवश्य परिग्रहपञ्च छे आ परिग्रहवत्ता न्येने भाये नरकनिगोदादिकना भयंकर इण्डरूप महाभयतु अश्यु होवाधी महाभयस्वरूप अने छे अथवा-परिग्रहयुक्त प्राणीज्येने " एतदेव " शरीर तेमन्य आहारादिक महाभय स्वरूप छे नेभके-ने पाणि पुट ( करपात्र ) थी न्ये भोजन करवावाण्य छे जेनी पासे पात्र तेमन्य वत्तादिक शोधं पञ्च नहीं परतु ने गृहस्थोने त्यां आभाकर्मदिक दोषधी दूषित आहारादिक होवाधी महान् कर्मोना जन्म करवावाण्य होय छे आधी तेना शरीरादिक तेने महाभयना हेतु होवाधी महाभयस्वरूप छे तथा तेनु शरीर बरतधी रहित होवाधी शुद्ध अंग शुद्ध रहे छे, आ कश्ये जेवी

લજ્જાયા અસત્વાલ્લોકનિન્દ્યત્વેન જિનશાસનલાઘવોત્પાદનાચ્ચ સ્વપર્યોર્મહાભયકારિ ભવતિ । મગવતાઽપિ સંયમે લજ્જાયાઃ પ્રાથમ્યમભિહિતં, તથાદિ-“લજ્જા-દયા-સંજ-મ-વં-ભચેર” ઇત્યાદિ । યસ્માત્પરિગ્રહોઽનર્થાય ભવતીત્યત ઉપદિશતિ-‘લોકવિત્ત’-મિ-ત્યાદિ । વિરતો મુનિઃ લોકવિત્તં લોકસ્ય=અસંયતલોકરય વિત્તં=ધનમ્ અલ્પાદિરૂપમ્, યદ્વા-‘લોકવૃત્ત’મિતિચ્છાયા, તેન-લોકસ્ય વૃત્તમાચરણમ્=આહાર-ભય-મૈથુન-પરિગ્રહસંજ્ઞારૂપં મહતે ભયાય ભવતીતિ, ચ=પુનઃ, સ્વલુ=વાક્યાલંકારે ઉત્પેક્ષ્ય=જ્ઞાત્વા જ્ઞપરિજ્ઞયા, પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞયા પરિહરેત્ । તાદૃશસ્ય યત્સ્યાત્તદાદ-‘एतान्’ ઇત્યાદિ । एतान्-पूर्वोक्तान् संगान्=द्रव्यपरिग्रहसम्बन्धान् अविजानतः=अभिदधतः-परिग्रहसम्बन्धरहितस्य मुनेः परिग्रहोत्पन्न महाभयं न भवति॥મૂ०૪॥

इसलिये ऐसी हालत में उनका शरीर लज्जारहित होने से लोक-निंदा का पात्र होता है, इससे जिनशासनकी अवलेहना होती है; इस-लिये उनका वह शरीर स्व-पर के लिये महाभयकारी होता है। संयममें भगवान्ने “लज्जा-दया-संजम-वंभचेर” इत्यादिवाक्यानुसार लज्जाके लिये प्रथम स्थान दिया है। जिस कारण से परिग्रह अनर्थकारी बतलाया गया है इसी लिये सूत्रकार कहते हैं-‘लोकवित्त’-मित्यादि। असंयतलोकका धन, अथवा-असंयत लोककी आहार, भय, मैथुन और परिग्रह-संज्ञारूप लोकवृत्त(‘लोकवित्त’की ‘लोकवित्तं’ या ‘लोकवृत्तं’ संस्कृतच्छाया होती है) उन्हें बड़े भारी भयके लिये होता है। सूत्र में “स्वलु” शब्द वाक्या-लंकार में प्रयुक्त हुआ है। इसलिये मोक्षार्थी जन लोकवित्त अथवा लोक-वृत्त को महाभयकारी ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उसका परित्याग करे। परिग्रह के परिवर्जन से त्यागी के जो लाभ होता है उसे सूत्रकार “एतान् संगान् अविजानतः” इस सूत्रांश से कहते हैं।

હાલતમાં તેનુ શરીર લજ્જારહિત હોવાથી લોકનિંદાને પાત્ર બને છે તેનાથી જીનશાસનની અવલેહના થાય છે, માટે તેનુ તે શરીર સ્વ અને પરને માટે મહાભયકારી બને છે. સયમમા ભગવાને “લજ્જા-દયા-સજમ-વંભચેર” ઇત્યાદિ વાક્ય અનુસાર લજ્જાને માટે પ્રથમ સ્થાન આપેલ છે. જે કારણથી પરિગ્રહ અનર્થકારી બતાવેલ છે તેને માટે સૂત્રકાર કહે છે-‘લોકવિત્ત’-ઇત્યાદિ અસંયત લોકનુ ધન અથવા અસંયત લોકના આહાર, ભય, મૈથુન અને પરિગ્રહ સંજ્ઞારૂપ લોકવૃત્ત તેના માટે ભારે ભયજનક હોય છે આ માટે મોક્ષાર્થી જન લોકવિત્ત અથવા લોકવૃત્તને મહાભયકારી જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી તેના ત્યાગ કરે. પરિ-ગ્રહના પરિવર્જનથી ત્યાગીને જે લાભ થાય છે તેને સૂત્રકાર “एतान् संगान् अविजानतः” આ સૂત્રથી કહે છે કે આ દ્રવ્ય-પરિગ્રહની સાથે પોતાનો સંબંધ

મપિ ધાન્યદ્વ્યાહ—‘ સે સુપદ્વિયુદ્ઠં ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સે સુપદ્વિયુદ્ઠ સૂવળીયતિ નચ્ચા પુરિસા ! પરમ  
ચક્તુ વિપરક્કમા । ણપ્સુ ચેવ ઘમચેર તિવેમિ । સે સુય ષ મે,  
અજ્ઙરથય ષ મે, ઘધપમુક્ત્વો અજ્ઙરથવ । પ્તથ ધિરપ્ અણગારે  
દીહરાય તિતિક્ષ્વપ્ । પમત્તે ઘહિયા પાસ, અપ્પમત્તો પરિવ્વપ્ ।  
ણ મોણ સમ્મ અણુવાસિજ્જાસિ—તિવેમિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા—તસ્ય સુપતિયુદ્ઠં મૂપનીતમિતિ જ્ઞાત્વા પુરુષ ! પરમચર્ધુર્વિપરાક્રમસ્વ ।  
પતેષુ ચૈવ પ્રમ્પર્ચ્યમિતિ ધ્રવીમિ । તદ્મ્ભર્તં ચ મયાઽધ્યાત્મકં ચ મે ષ ઘપ્રમાણોઽ  
ધ્યાત્મે एव । અથ ધિરતોઽનગારો દીર્ઘરાષ્ટ્રં તિતિક્ષ્વત । પ્રમત્તાન્ ષદ્ધિઃ પદ્ય, અપ્-  
મત્ત’ પરિવ્રજેત્ । પ્તન્મૌનં સમ્યક્ અનુઘાસયે , ઇતિ ધ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

ટીકા—‘ તસ્યે—’ ઇત્યાદિ, તસ્ય=પરિવ્રજરહિતસ્ય, સુપતિયુદ્ઠં—સુ=જ્ઞામનં પ્રતિ  
યુદ્ધ=જાગરિતં, મૂપનીતં=જ્ઞોમનં દર્શિતં જ્ઞાનાદિક્ષિક મુદ્ધિષ્કેઃ પ્રત્યક્ષજ્ઞાનિભિઃ  
इम ब्रह्म परिग्रह के साथ अपना संबंध नहीं रखनेवाले अर्थात् परिग्रह के  
संबंध से रहित मुनिको परिग्रहजन्य महाभय नहीं होता है ॥ सू० ४ ॥

और भी पात सूत्रकार प्रकट करते हैं—‘ से सुपद्वियुदं ’ इत्यादि ।

जो मनुष्य परिग्रह से रहित हैं उनका ही अपने मार्गमें सच्चा  
जागरण है और उनके ही ज्ञानादिकक्षिक निर्दोष हैं, अथवा—उनका  
अपने कर्तव्यपथ में जो जागरण है वह सुपनीत है—सीर्धुङ्करादिक प्रत्यक्ष-  
ज्ञानियों ने अच्छी तरह से प्रकट किया है, और इसी मार्ग की उन्होंने ने  
अपने शिष्यों को ज्ञानादिकत्रय की प्राप्तिके निमित्त युक्ति और दृष्टान्त  
नहिं सभवाવાગા અર્થાત પરિવ્રહતા સંબંધથી સંહિત મુનિને પરિવ્રહજન્ય મહા  
ભય હોતો નથી ॥ સૂ૦ ૪ ॥

इसी ओंठ जीहण पक्ष वात सूत्रकार प्रकट करे छे—‘ स सुपद्वियुदं ’ इत्यादि

के मनुष्य परिग्रहही रहित छे तेनु न पोटाना आगमा आमु जागरण  
छे, अने तेनु ज्ञान आदि निर्दोष छे अथवा तेनु पोटाना कर्तव्यपथमें के  
जागरण छे ते सुपनीत छे—सीर्धुङ्करादिक प्रत्यक्ष ज्ञानीयोओ सारी रीते  
प्रकट करेस छे अने ते मार्ग तेमके पोटाना शिष्योने ज्ञानादिकत्रयकी प्राप्ति

हेतुदृष्टान्तैः शिष्याणां प्रापितमित्यर्थः । इति=एवं ज्ञात्वा=विचार्य हे पुरुष!=हे भव्य! परमचक्षुः=परम-ज्ञानं तपः संयमो वा चक्षुः=नेत्रं यस्य स परमचक्षुः=से पुष्टि की है । यद्वा-इसी मार्गद्वारा उन्होंने अपने शिष्यों को ज्ञानादिकों की प्राप्ति कराई है ।

भावार्थ—यह राजमार्ग है कि परिग्रह के त्याग क्रिये बिना साधु को अपने कर्तव्य पथ में सच्ची आराधकता की जागृति नहीं हो सकती है । कारण कि इसके सद्भाव में सदा आत्मा में आकुलता रहती है । आकुलता में स्वधर्माराधन हो नहीं सकता । परिग्रह के सद्भाव में ही साव्यप्रवृत्ति एवं अनेक अनर्थों की परंपरा बढ़ती है । परिग्रह के त्याग से आत्मा में अपूर्व शांति और स्वरमणता आती है । अतः यही मार्ग सर्वोत्तम है । इस मार्ग का जो पथिक है वही सच्चे रूप में अपने कर्तव्य पथ का निभानेवाला और सम्यग्दर्शनादिकरूप मोक्षमार्गका अनुयायी है । इसी मार्गद्वारा तीर्थङ्करादिक प्रत्यक्षज्ञानियों ने अपने ध्येय की प्राप्ति की है और अपने शिष्यों को भी इसी मार्गके अनुसरण करने का उपदेश दिया है । हेतु और दृष्टान्तों से इसी मार्ग की उन्होंने पुष्टि की है ।

“ इति ज्ञात्वा ” इसलिये हे भव्य पुरुष! ऐसा समझ कर इसी मार्ग पर चल कर तुम ज्ञान अथवा संयम या तपस्वी चक्षुओं की प्राप्ति

निमित्ते युक्ति अने दृष्टान्तों से, तेमज आ मार्गद्वारा तेओओ पोताना शिष्योने जानादिकनी प्राप्ति करावी छे

भावार्थ—आ राजमार्ग छे के परिग्रहने त्याग कर्या वजर साधुने पोताना कर्तव्य पथमा सच्ची आराधकतानी नगृती भणी शकती नथी, कारण के परिग्रहना सद्भावमा आत्मानी सदा आकुलता रहे छे आकुलतामा धर्मनु आराधन नथी थई शकतुं. परिग्रहना सद्भावमा न साव्य प्रवृत्ति तेमज अनेक अनर्थोनी परंपरा बढ़े छे परिग्रहना त्यागर्थी आत्मासा अपूर्व शांति तेमज स्वरमणता आवे छे आ मार्गज सर्वोत्तम छे आ मार्गने के पथिक छे ते न साथा रूपमा पोताना कर्तव्यपथने निभावनार तेमज सम्यग्दर्शनादिकरूप मोक्षमार्गने अनुयायी छे आ न मार्ग द्वारा तीर्थङ्करादिक प्रत्यक्षज्ञानियोओ पोताना ध्येयनी प्राप्ति करी छे, अने पोताना शिष्योने पणु आ न मार्गनु अनुसरण करवाने उपदेश आपेल छे, हेतु अने दृष्टान्तोथी आ मार्गने तेमजे स्वीकार करी छे

“ इति ज्ञात्वा ” ओटला भाटे छे लव्य पुरुष! आ नमजने आ न मार्ग उपज आदी तमो ज्ञान अथवा संयम अथवा तपस्वी चक्षुओनी प्राप्ति करी शकथो—

मौलिकदर्शन सन् विपराक्रमस्व-सयमे ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मसपन्निरवधानु  
ष्ठानस्य तपसधाचरणेन वि-विशेषेण पराक्रमस्व-पराक्रमं कुरुष्व, तपोवीरो  
धर्मवीरश्च भवत्यर्थ, किमर्थं सयम पराक्रमोपदेशः? इत्यत आह—'एतेषु'  
इत्यादि, एतेषु चैव-परिग्रहाग्रहपराङ्मुखेष्वेव वस्तुता ब्रह्मचर्यं मैथुननिवृत्त्या-  
दिनवधिरूपं विद्यते नवरेषु सर्परिग्रहेषु, तेषु नवविधग्रहचर्यगुप्त्यसम्भवात् ।  
यद्वा-एतेषु-पङ्कजीविकायषु तदुपमर्दनविरतिरूपसयमाचरणमव ब्रह्मचर्यं, नान्यत् ।

कर सकते हो-मुक्ति मार्ग के दर्शाक बन सकते हो। जब अपरिग्रहता  
तुम्हें प्राप्त हो जायगी, तब ही तुम ज्ञानावरणीयादिक अष्ट प्रकार के  
कर्मों को समुन्मूलन करनेवाले निरवध अनुष्ठानरूप तप की आरा-  
धनामें विशेष पराक्रम करोगे और इस तरह से तुम तपवीर और धर्म  
वीर बन सकोगे। संयम अथवा तप में पराक्रमशाली होने का उपवेश  
इसीलिये दिया जाता है कि जो परिग्रह क ग्रहणमें पराङ्मुख हैं उन  
में ही वस्तुतः नौ प्रकार के मैथुन की निवृत्तिरूप ब्रह्मचर्यव्रतकी सम्यक्  
रीतिसे रक्षकता आती है, अन्योमें नहीं; कारण कि वे परिग्रहके ग्रहण  
करने में आसक्त होनेसे नौ प्रकार से उस ब्रह्मचर्यकी रक्षा नहीं कर  
सकते हैं। अथवा—"एतेषु चैव ब्रह्मचर्यम्"—इस वाक्यका यह भी  
अर्थ होता है, कि इन पङ्कजीविकायों के घात करनेकी विरतिरूप जो  
संयम है इसका आचरण करना ही ब्रह्मचर्य है, अन्य ब्रह्मचर्य नहीं है।

मुक्ति मार्गना इति च अन्या शक्ये न्यारे आ अपरिग्रहता तमे प्राप्त करी  
शक्ये त्पारे न तमे ज्ञानावरणीयादिक अष्ट प्रकारना कर्मोना नाश करवावाया  
निरवध अनुष्ठानरूप तपनी आसधनाभां विशेष पसकम कर्ये। अने आवी रीते  
तमे तपवीर अने धर्मवीर अन्या शक्ये। संयम अने तपमा पसकमसायी  
हावाने उपदेश के भाटे आपवामा आवेस के के ने परिग्रहता ब्रह्मणमा  
पसङ्मुप के तेमनामा परी रीते नव प्रकारना मैथुननी निवृत्तिरूप ब्रह्मचर्य  
मतनी सम्यक् रीतिधी रक्षकता आवे के जीवामा नदो। कारण के तेयो परि-  
ग्रहना ब्रह्मण करवावा आसकत हावाधी नव प्रकारना तेवा ब्रह्मचर्यनी रक्षा  
करी शक्य नथा अने "एतेषु चैव ब्रह्मचर्यम्" आ वाक्यने के पक्ष अर्थ  
थाय के के पङ्कजीविकायानी घात करवानी विरतिरूप संयम के तेनु अथ  
रूप करवुं के न ब्रह्मचर्य के जीव ब्रह्मचर्य नथी

इति=अधिकारसमाप्तौ; ब्रवीमि=कथितं वक्ष्यमाणं वा अभिदधामि । एतत् सर्वं भगवदुपदेशादेव मया ज्ञातमित्येवाह-‘ तदित्यादि ’ । यन्मया प्रोक्तं वक्ष्यमाणं वा तत् सर्वं मया श्रुतं तीर्थङ्करसकाशात्, तथा तत्सर्वमध्यात्मकम्-आत्मनि इत्याध्यात्मं तदेवाध्यात्मकं मे=ममान्तःकरणस्थितं, किं तत्सर्वमिति जिज्ञासायामाह-‘ बन्धे ’त्यादि, अध्यात्मे एव=ब्रह्मचर्ये एव व्यवस्थितस्य बन्धप्रमोक्ष =बन्धात्=कर्मबन्धात् प्रमोक्षो भवति ।

यद्वा—‘ बन्धप्रमोक्षौ ’ इतिच्छाया, ततो बन्धः=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मसम्बन्धः, प्रमोक्षः तस्मात्पृथग्भवनं च बन्धप्रमोक्षौ, उभावपि अध्यात्मे एव=

“ इति ब्रवीमि ”-इति पद अधिकार की समाप्तिका सूचक है, अर्थात् इस उद्देश में यहां तक अथवा इस सूत्रमें जो कहा है और आगे भी जो कुछ कहना हूं वह मैंने भगवान् के उपदेश से ही जाना है । इसी लिये सूत्रकार ने “ तच्च श्रुतं मया ” यह कहा है । यह कथित अथवा आगे प्रतिपाद्य समस्त विषय जिसे मैंने तीर्थङ्कर प्रभु से सुना है वह मेरी आत्मा में-अन्तःकरणमें स्थित है । उन्होंने यह कहा है कि-“ अध्यात्मे एव ” ब्रह्मचर्य में व्यवस्थित साधु की ही बन्धसे मुक्ति होती है-अर्थात् वह जीव प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध-इन चार प्रकार के कर्मबन्ध से रहित होता है । सो यही बात मैंने भी यहां पर कही है ।

अथवा—“ बंधप्रमोक्षौ ” की “ बंधप्रमोक्षौ ” यह भी संस्कृत छाया होती है । ज्ञानावरणीयादिक आठ प्रकारके कर्मोंका सम्बन्ध तो बंध है और उससे आत्मा का पृथक् होना प्रमोक्ष है । ये दोनों

“ इति ब्रवीमि ” इति पद अधिकारनी समाप्तिसु सूचक छे, अर्थात् आ उद्देशमा अर्हो सुधी अथवा आ सूत्रमा ने कहु छे अने आगण पणु ने कड कहु छु ते मया मे लगवानना उपदेशथी न नबुल छे माटे सूत्रकारे “ तत् श्रुतं च मया ” आ कहेल छे आ कहेल अथवा आगण ने कडेवामा आवशे ते समस्त विषय, नेने मे तीर्थङ्कर प्रभुथी सांलग्यु छे ते मारा आत्माभा-अतःकरणमा स्थित छे तेमणे अे कहु छे के “ अध्यात्मे एव ” ब्रह्मचर्यमा व्यवस्थित साधुनी न मधथी मुक्ति थाय छे, अर्थात् अे एव प्रकृतिमध, स्थितिमध, अनुभागमध, अने प्रदेशमध, आवा चार प्रकारना कर्ममधथी रहित अने छे ते न वात मे पणु अडि कही छे

अथवा “ बंधप्रमोक्षौ ” नी “ बन्धप्रमोक्षौ ” आ पणु संस्कृत छाया अने छे तथा ज्ञानावरणीयादिक आठ प्रकारना कर्मोना सम्बन्ध मध छे तेनाथी आत्मानु

આત્મન્યેષ સ્ત, રાગદ્વેષયોરાત્મન્યેષ સમ્ભવાત્ । અપિ ચ-અપ્ર-આરમ્મપરિગ્રહે  
 અપ્રસસ્તાષ્યાસ્મે યા ચિરત્-ઉપરત, અનગાર-મુનિ વીર્યરાત્ર-યાજ્ઞીર્વ પરિગ્ર  
 હાસસ્વાદ્ યત્ શ્રુતિપાસાદિકમ્ આત્માદિકં વા સમાપતેત્ તત્સર્વં ચિત્તિપત્-સહત ।  
 અન્યમપ્યુપદેશમાહ 'પ્રમત્તાન્'-इत्यादि, પ્રમત્તાન્-અસંયતાન્ આરમ્મપરિગ્રહીતાન્  
 કુલિક્લિન્ પરતીર્થિકાન્ બહિ-મગ્નવાદાશારૂપાદ્ ધર્માદ્બહિર્મૂતાન્ પશ્ય । અતો  
 મગ્નવાદાશારૂપી મુનિ' અપ્રમત્-સંયમાનુપાલનાર્થ પ્રયત્નયાન્, યદ્વા-અપ્રમત્-  
 પચ્ચવિધમમાદરહિત સન્ પરિગ્રજેત્-પ્રવ્રજ્યાં પરિપાલયત્-ચિદ્દેવિત્યર્થ । કિંચ

યંચ ઓર પ્રમોક્ષ "અષ્યાત્મે યથ" આત્મા મેં હી હું । ક્યોં કિ રાગ  
 ઓર દ્વેષ આત્મા મેં હી હોતે હું । જહાં યંચ હૈ વહીં મુક્તિ હૈ । તથા-  
 આરંમ ઓર પરિગ્રહ મેં અથવા અપ્રસસ્ત અષ્યાત્મ-રાગદ્વેષ વિશિષ્ટ  
 આત્મા મેં જો લીન નહીં હૈ-ઉનસે ચિરત્ક હૈ, ઉમ્ મુનિકો વીર્યરાત્ર-  
 જીવનપર્યન્ત પરિગ્રહ કે અસત્ત્વ સે જો શુષા તૃપા આદિ પરીપદ્ અથવા  
 કિસી ખી પ્રકાર કા રોગ ઉપદ્રવ આવે તો ઉન સય કા ઉસે મહન  
 કરના યાદિયે । તથા જો અસંયત્ હું, આરંમ-પરિગ્રહ મેં આમત્ક હૈ,  
 દ્રવ્યલિપ્તી હું એસે પામત્યાદિકોં ઓર પરતીર્થિકોં કો ઘીતરાગ પ્રમુકી  
 આજ્ઞારૂપ ધર્મમાર્ગસે યાહ્ન સમજના યાદિયે । જો ઘીતરાગપ્રમુકી  
 આજ્ઞાનુમાર પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે હું ઓર સંયમમાર્ગકી પરિપાલના કરનેમેં  
 પ્રયત્નશીલ હું યે અનગાર મુનિ હું । હમલિયે મગવાન્કી આજ્ઞાધર્તી  
 મુનિ અપ્રમત્ત હોકર અપને સંયમ કે પાલન કરનેકે લિયે પ્રયત્નશીલ  
 યન "પરિગ્રજેત્" પ્રવ્રજ્યા-માગધતી દીક્ષા કા અલે પ્રકાર પાલન કરે ।

પૃથક્ ધર્મુ તેનુ નામ પ્રમાણ છે આ જન્ને બધ અને પ્રમાણ 'અષ્યાત્મે યથ'  
 આત્મામા જ છે કારણ કે રાગ અને દ્વે । આત્મામા જ કોય છે આ જંપ છે  
 ત્યા માદા છે તથા આરભ અને પરિગ્રહમા અથવા અપ્રસસ્ત અષ્યાત્મ-સમ  
 દ્વેષવિશિષ્ટ આત્મા-મા જે લીન નથી એટલે તેનાથી વિરક્ત છે તે મુનિને વીર્યરાત્ર-  
 છવનપચ-પરિગ્રહના અસત્ત્વથી જે શુષા તૃપા આદિ પરીપદ્ અથવા કાઈ પણ  
 પ્રકારના રોગના ઉપદ્રવ આવે તો એ જખાને સદન કરવું જોઈએ. તથા જે અસંયત  
 છે આરભ પરિગ્રહમા આસક્ત છે દ્રવ્યલિપ્તી છે એવા પામત્યાદિક અને  
 પરતીર્થિકાને ઘીતરાગ પ્રમુકી આજ્ઞારૂપ ધર્મમાર્ગથી જલ્દાર મુગત્વા જોઈએ. જે  
 ઘીતરાગ પ્રમુકી આજ્ઞા-અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાયાગા છે અપ્રમત્ત છે અને સુધમ  
 માગની પરિપાલના કરવામા પ્રયત્નશીલ છે તે અનગાર-મુનિ છે. આ કારણે  
 અપ્રમત્તના આજ્ઞાવર્તી મુનિ અપ્રમત્ત જનીને પાંચાનુ સધમનુ પાલન કરવા મા?

एतत् मौनं-भगवदावेदितं चारित्रं हे शिष्य ! त्वं समनुवासयेः-सम्=सम्यक्=पूर्वोक्त-  
यथार्थरूपेण अनुवासयेः=परिपालय । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ इति पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ५-२ ॥

यह मुनिसंबंधी कर्तव्य-चारित्र भगवान् ने कहा है, सो हे शिष्य ! पूर्व में  
प्रतिपादित यथार्थरूप से तुम इसका पालन करो ! “इति ब्रवीमि” इस  
प्रकार श्री सुधर्मास्वामी ने श्री जम्बूस्वामी से कहा ॥

॥ पंचम अध्ययन का द्वितीय उद्देश समाप्त ५-२ ॥

प्रयत्नशील भनी “परिव्रजेत्” प्रव्रज्या-लागवती दीक्षाने लड़ी प्रकारे पालन करे  
आ मुनिसंधी कर्तव्य अटके चारित्र लगवाने उडेल छे, भाटे छे शिष्य । पडला  
उडेवामा आवेल यथार्थ रूपथी तमे तेनु पालन करे “इति ब्रवीमि” आ प्रकारे  
श्री सुधर्मास्वामीने श्री जम्बूस्वामीने उह्यो.

पांचमा अध्ययनने भीजे उद्देश समाप्त ॥ ५-२ ॥





## अथ पञ्चमाध्ययनस्य तृतीय उद्देश ।

उक्तो द्वितीयोद्देशोऽधुना तृतीयः समारम्भ्यते । एष चानन्तरोद्देशेन सम्बन्धः, पूर्वत्र चाधिरतिमान् अल्पादिद्रव्यैः परिग्रहवान् भवतीत्युपदर्शितम् । अत्र च मुने परिग्रहप्रतिपक्षभूतोऽपरिग्रहो व्याख्यातव्यो येन मुनित्वं न व्याहन्येतेति ।

मुने परिग्रहप्रतिषेधं प्रदर्शयति—‘आर्यती’ इत्यादि ।

मूलम्—आवती केयावती लोयसि अपरिग्गहावती एपसु  
चेव अपरिग्गहावती, सोच्चा वर्ड मेहावी पडियाण निसामिया  
समियाए धम्मे आरिण्हिं पवेइए जहित्थ मए संधी झोसिए  
एवमन्नरथ सधी तुज्झोसए भवइ, तम्हा वेमि नो निहणिज्ज  
वीरिय ॥ सू० १ ॥

छाया—यावन्त क्रियन्तो लोकेऽपरिग्रहन्त एतेषु चैनापरिग्रहन्तः, भुत्वा  
वाचं मेवावी पण्डितानां निश्चम्य समतया धर्म आर्यैः प्रवेदितो यथाऽत्र मया सन्धि  
सोपित एवमन्यत्र सन्धिदुसोपितो भवति, तस्माद्भवीमि नो निहन्याद्रीर्यम् ॥१॥

## पाँचवे अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

द्वितीय उद्देशका कथन हो चुका । अथ तृतीय उद्देशका प्रारम्भ  
होता है । इसका संबंध अनंतर उद्देश के साथ इस प्रकारसे है—द्वितीय  
उद्देश में यह प्रकट किया है कि अधिरतिसम्पन्न प्राणी अल्प आदि वस्तुओं  
से सम्पत्तिल होने पर परिग्रही होता है । इस उद्देश में उसके प्रतिपक्ष  
भूत अपरिग्रहवादका सिद्धान्त प्रतिपादित करना है, क्यों कि निष्परि  
ग्रहता से ही मुनिमें मुनिता आती है, अन्यथा नहीं ! इसलिये सर्वप्रथम  
मुनिके परिग्रह का प्रतिषेध करने के लिये कहते हैं “आर्यती” इत्यादि ।

## पाँचवा अध्ययनको तीसरे उद्देश

बीजा उद्देशतु वन्तव्य पई मसु इवे त्रीजे उद्देश शरु वाय उ नेने  
अथ अनतर उद्देशनी साथे आ प्रकारे उ—बीजा उद्देशमा जेम इदेवाग  
आवेत उ के अधिरतिस पल प्राणी अल्प आदि वस्तुओंकी सम्पत्तिल होनाथी  
परिग्रही अने उ आ उद्देशमा तेना प्रतिपत्त अपरिग्रहवादनो सिद्धांत सम  
आवे उ शरु के निष्परिग्रहनाथी ए मुनिमा मुनिता आवे उ बीजाथी नदि  
अरेवा अरे अथ प्रथम मुनिने परिग्रहना प्रतिषेध इत्याने इउ उ—“आवती” इत्यादि ।

टीका—‘ यावन्तः ’ इत्यादि, लोके=मनुष्यलोके यावन्तः कियन्तः=यावत्प्रमाणाः केचन अपरिग्रहवन्तः=अल्पस्थूलादिद्रव्यपरिग्रहरहिताः मुनयो भवन्ति, ते सर्वे संयमिनो हि एतेषु चैव=अल्पस्थूलादिष्वेव वस्तुषु ममत्वाभावाद् अपरिग्रहवन्तः=निष्परिग्रहाः अनगारा उच्यन्ते ।

इस मनुष्यलोक में कितनेक अल्प और स्थूल द्रव्य परिग्रहसे रहित मुनि होते हैं। वे समस्त संयमी इन अल्प स्थूलादि द्रव्यों में ममत्वरहित होने से अपरिग्रही कहे जाते हैं।

भावार्थ—“ अल्पस्थूलादिक द्रव्यों के परिग्रहसे रहित कितनेक मुनि हैं ” इस कथनसे कोई यह न समझ लेवे कि और भी कोई मुनि अल्प-स्थूलादि द्रव्यवाले भी होते होंगे। सूत्रकार का अभिप्राय यह है कि संसार में जितने भी प्राणी हैं वे सब प्रायः परिग्रहाधीन हैं। इस परिग्रहका विवेचन अल्पस्थूलादिक के भेदसे द्वितीय उद्देश के चौथे सूत्र में किया जा चुका है। समस्त प्राणियों में विरले ही मुनि होते हैं और वे परिग्रह के त्यागी ही होते हैं। अथवा—सूत्रकार को यहां पर मुनिधर्म का प्रतिपादन करना अभीष्ट है। द्रव्यलिङ्गी पासत्थादिक भी नाम से मुनिसंज्ञावाले हैं। दण्डशाक्यादिक भी लोकमें त्यागी मुनि कहलाते हैं, परन्तु इनमें वास्तविक मुनिपना नहीं है। क्यों कि जो परिग्रह से रिक्त होते हैं वे ही वास्तविक मुनि माने गये हैं। यद्यपि इन पासत्था-

आ मनुष्य लोकमा डेटलाक अल्प अने स्थूल द्रव्यपरिग्रहृथी रहित मुनिओ होय छे ते सर्वविरत सयमी आवा अल्प स्थूलादि द्रव्योमा ममत्वरहित होवाथी अपरिग्रही कडेवाय छे

भावार्थः—“ अल्प स्थूलादि द्रव्योना परिग्रहृथी रहित डेटलाक मुनि होय छे ” आ कथनथी कोछ ओम न समल्ल ले के भील कोछ मुनि अल्प स्थूलादि द्रव्यवाणा हुरे सूत्रकारनो अलिप्राय ये छे के—संसारमा डेटला प्राणी छे ते सधणा धरुं करी परिग्रहने आधीन छे आ परिग्रहनु विवेचन अल्प स्थूलादि-कना लेहृथी भील उद्देशना योथा सूत्रमा कडेवामा आवेल छे समस्त प्राणी-ओमा विरला न मुनि अने छे अने ते परिग्रहना त्यागी न होय छे. अथवा सूत्रकारे आ स्थणे मुनिधर्मनु प्रतिपादन करवु उचित समने छे द्रव्यलिङ्गी पासत्थादिक पणु नामथी मुनिसंज्ञावाणा छे द डी शाक्यादिक पणु लोकमा त्यागी—मुनि कडेवाय छे, परंतु तेओमा वास्तविक मुनिपणु नथी, कारणु के ने परिग्रहृथी हर रहे छे ते न वास्तविकपणु मुनि मानी शक्य ने के आवा पासत्थादिकमा पणु आह

परिग्रहः परिधर्ननीय इति कर्म जानातीत्याह—भ्रुत्वेत्यादि, मेघावी=साधुम  
 र्यादादानकुञ्जलः पण्डितानां=तीर्थङ्करगणधरादीनां “वर्द्ध” वाचं=परिग्रहनितनरक-  
 निगोदादिपरिभ्रमणककटुकफसस्वरूपां वाणीं भ्रुत्वा=समाकर्ण्य, अप्र ‘वर्द्ध’ इति  
 मूले द्वितीयार्थे प्रथमाऽऽर्पत्वात्; एव निश्चम्य भगवद्भजनमत्र धर्म इत्यवधार्य सचि  
 चाचिचमिभपरिग्रहपरित्यागाभिप्परिग्रहो भवतीति सम्बन्धः । स च धर्मः कीदृशो  
 भवतीत्याह—‘समतये’—त्यादि, धर्म=तीर्थङ्कराद्युपदिष्टः ‘सममया’ समस्य  
 भावः समता तथा—शत्रुमिषेण तुस्पस्वभावन वर्तनरूपो धर्म आर्ये =तीर्थङ्करिः प्रवे  
 दिकोंमें भी वाच्यरूप से मुनि की आकृति यगैरह होती है; परन्तु इस  
 आकृतिमात्र से मुनिता उनमें नहीं मानी गई है, ममेदं (ममत्व) भाव  
 का अल्पस्पृहादिक द्रव्यों में परित्याग ही वास्तविक मुनिपने का द्योतक  
 माना गया है । इसलिये मुनि होकर भी सय मुनि नहीं हैं । किन्तु  
 परिग्रह के परित्यागी ही मुनि हैं ।

“परिग्रह छोड़ने योग्य है” यह मुनिजन कैसे जानते हैं ? इसके  
 प्रत्युत्तर में सूत्रकार कहते हैं कि—“जो परिग्रही होता है वह नरक-  
 निगोदादिगतियों में परिभ्रमणरूप कटुक फलको प्राप्त करता है” इस  
 प्रकार तीर्थङ्कर गणधर आदि विशिष्ट ज्ञानियों की यात सुन कर साधु  
 की मर्यादा के ज्ञानमें कुशल अर्थात्—मेघावी साधु यह जान लेते हैं कि  
 परिग्रह छोड़ने योग्य है । तब ये मुनिजन सच्चित्त अच्चित्त और मिश्र  
 परिग्रहके त्यागसे निष्पन्नही होते हैं । तीर्थङ्करादिद्वारा प्रतिपादित धर्म कैसा  
 होता है ? ऐसी शिष्यकी जिज्ञासा के समाधानार्थ सूत्रकार कहते हैं—

इधमी मुनिनी आकृति वजरे होय छ परतु जे आकृति परधी मुनिपण्डु तेम  
 नामा मानवामा आवतु नधी, ममत्वभावने अल्पस्पृहादिक द्रव्योंमां परित्याग  
 न वास्तविक मुनिपण्डाने द्योतक मानवामा आवेस छ भाटे मुनि जनीने पण  
 जथा मुनि नधी परतु परित्यजना परित्यागी न मुनि छ

‘परिग्रह छोड़ना योग्य छ’—ते मुनिजन कैसी रीते जान्छे छ ? तेना प्रत्यु  
 त्तरमा सूत्रकार कहे छ के जे परिग्रही छ ते नरक-निगोदादि जतिजोमा परि  
 भ्रमणरूप कटका इजने प्राप्त करे छ, अथा प्रकारनी तीर्थङ्कर गणधर आदि विशिष्ट  
 ज्ञानीजोनी पाणी सांजनीने साधुनी मर्यादाना ज्ञानमा कुशल मेघावी मुनि जानी  
 ले छ के परिग्रह छोड़ना योग्य छ त्पारेते मुनिजन सच्चित्त अच्चित्त जने  
 मिश्र परिग्रहना त्यागधी निष्परिग्रही थाम छ तीर्थङ्करादिद्वारा समजवेस धर्म  
 केबो होय छ ? जेनी शिष्यनी अज्ञानता समाधान करवा भाटे सूत्रकार कहे  
 छ—तीर्थङ्करादिने जे धर्मने उपदेश आप्पे छ, ते धर्म जे छ के शत्रु जने

दितः=कथित', स्तुतिनिन्दादिषु सर्वत्र समभाववर्ती निष्परिग्रहो मुनिर्भवति, उक्तञ्च—

“ जे चंद्रणेण वाहुं आलिपइ, वासिणा वा तच्छेति ।

संयुणइ जो य णिंदति, महेसिणो तत्थ समभावो ” ॥ १ ॥ इति ।

छाया—यश्चन्दनेन बाहुमुपलिम्पति, वास्या वा तक्ष्णोति ।

संस्तौति यश्च निन्दति महर्षेस्तत्र समभावः ॥ १ ॥ इति ।

तीर्थङ्करादिने जिस धर्मका उपदेश दिया है वह धर्म यही है कि शत्रु और मित्र में मुनिजन समभावी रहें । शत्रु-मित्र में समभावसे वर्तने-वाला मुनि ही निष्परिग्रही होता है ।

भावार्थ—शत्रु मित्र में राग द्वेष रखनेवाले में निष्परिग्रहता नहीं आ सकती, कारण कि परिग्रह का लक्षण मृच्छा-ममत्व-भाव बतलाया गया है । राग होना ही ममत्वभाव है, अथवा ममत्वभावका कार्य राग है । कार्य के सद्भाव में कारण का सद्भाव माना ही जाता है । अतः राग के सद्भाव में सच्चित्तादिपरिग्रहता रागीमें आती है । इस हेतु निष्परिग्रह होनेके लिये शत्रु-मित्रमें समभावसे प्रवर्तन करनेरूप धर्मका उपदेश तीर्थङ्करादिक आर्य पुरुषों ने दिया है ।

कहा भी है—

“ जे चंद्रणेण वाहुं आलिपइ वासिणा वा तच्छेति ।

संयुणइ जो य णिंदति, महेसिणो तत्थ समभावो ” ॥१॥ इति—

मित्रमा मुनिजन समभावी रहे शत्रु-मित्रमा समभावथी वर्तवावाणा मुनि न निष्परिग्रही होय छे

भावार्थ—शत्रु-मित्रमा रागद्वेष राभवावाणांमा निष्परिग्रहिता आवती नथी, कारण हे परिग्रहंतु लक्षण ममत्वभाव अतावेले छे, राग थवे अये ममत्वभाव छे, ममत्वभावंतु कार्य राग छे, कार्यना सहलावमा कारणेना सहलाव मानवाना आवे छे, माटे रागना सहलावमा सच्चित्तादिपरिग्रहता रागीमा आवे छे आ कारणे निष्परिग्रह होवाने माटे शत्रु-मित्रमा समभावथी प्रवर्तन करवाइप धर्मना उपदेश तीर्थङ्करादिक आर्य पुरुषोअे कडेले छे कहु पय छे—

‘ जे चंद्रणेण वाहुं, आलिपइ वासिणा वा तच्छेति ।

संयुणइ जोय णिंदति, महेसिणो तत्थ समभावो ” ॥ १ ॥ धति

યદ્વા-‘ આરિર્ણિ ’ ઇતિ મૂલે સસમ્યર્થે તૃતીયા, તેનાઽઽર્યેવિવિચ્છાયા; આર્યેપુ=વેદમાપાચારિભાર્યેપુ, ઉપલક્ષણાદનાર્યેપુ ચ ધર્મઃ ધીતરાગેણ સમ- તયા=સમમાત્રેણ પ્રવેદિતઃ-સકલજીવોપકારાય સહસ્રતયા પ્રવર્તકસ્વાત્તેપામ્, “ જહા પુણ્ણસ્સ કત્થહ તહા તુચ્છસ્સ કત્થહ ” ઇત્યાદિવચનાત્, અથવા- ‘ સમિયાણ ’ ઇતિ મૂલસ્ય શ્મિતયતિચ્છાયા, તત્તમ ‘ શ્મિતયા શ્મી=ઇન્દ્રિયનો

उनका यह कथन है कि चाहे कोई भुजाओं में चंदनका छेप करे अथवा तलवार या कुल्हाड़ी से काटे, कोई उनकी स्तुति करे या निंदा करे; तो भी महर्षि वहां पर समभाववाले ही होते हैं।

अथवा—मूल सूत्र में “ आरिर्णि ” ऐसा पद है। जिसकी संस्कृत-छाया-पहिले “ आर्यः ” ऐसी की है। परन्तु जब “ आरिर्णि ” इस पद में ससमी विभक्ति के अर्थमें तृतीया विभक्ति मानेंगे तब इसकी छाया “ आर्येपु ” होगी। उस अवस्था में ऐसा इसका अर्थ होगा कि देशार्थ, भाषार्थ और चारिधायों में तथा उपलक्षण से अनार्यों में भी धीतरागप्रभुने समभावसे धर्मका उपदेश दिया है। क्योंकि धीतराग प्रभुकी प्रवृत्ति समस्त जीवोंपर उपकार करने के लिये एकसी होती है। “ जह्वा पुण्णस्स कत्थह तह्वा तुच्छस्स कत्थह ” ऐसा आगम का वचन है।

‘समियाण’ इस मूल पदकी संस्कृत-छाया ‘शमितया’ होती है। इन्द्रिय और मनका जो निग्रह करता है वह शमी है, शमीका भाव

આને ભાવ છે કે ભલે કોઈ ભુજાઓમાં ચંદનનો છેપ કરે અથવા તલવાર અથવા કુલ્હાડીથી તેને કાપે કેલ્લે એની સ્તુતિ કરે અથવા નિંદા કરે, તો પણ મહર્ષિ આમાં સમભાવ રાખવાનાર જ રહે છે

અથવા—મૂળ સૂત્રમાં “ આરિર્ણિ ” એવા પદ છે એની સંસ્કૃત છાયા પહેલાં આર્યઃ એમ કરી છે

પરંતુ જ્યારે આરિર્ણિ આ પદમાં સસમી વિભક્તિના અર્થમાં તૃતીયા વિભક્તિ માનવામાં આવશે, ત્યારે તેની છાયા “ આર્યેપુ ” એવી થશે. આવી અવસ્થામાં આવે એનો અર્થ થશે કે-દેશાર્થ, ભાષાર્થ અને ચારિત્ર્યાર્થમાં, તથા ઉપલક્ષણથી અનાર્યોમાં પણ ધીતરાગ પ્રભુએ સમભાવથી ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો છે. કારણ કે ધીતરાગ પ્રભુની પ્રવૃત્તિ સમસ્ત જીવો ઉપર ઉપકાર કરવા માટે એકધારી હોય છે. આગમનું વચન છે કે- જહ્વા પુણ્ણસ્સ કત્થહ તહ્વા તુચ્છસ્સ કત્થહ ”

“ સમિયાણ ” આ મૂલની સંસ્કૃત છાયા “ શ્મિતયા ” થાય છે. ઇન્દ્રિય અને મન ઉપર જે કાંઈ નિગ્રહ છે એ શમી છે. શમીનો ભાવ શમિત છે

इन्द्रियोपशमी, तस्य भावः शमिता तथा आर्यैः=तीर्थङ्करैः धर्मः प्रवेदितः, भगवान् मिथ्यादृष्टिप्ररूपितोपदेशस्य हेयतामुपदर्शयति-‘जहित्थ’ इत्यादि; अत्र=अस्मिन्नहच्छासनोक्ते रत्नत्रयात्मके मोक्षमार्गे मया घातिकर्म मोक्तुं कामेन यथा=येन प्रकारेण सन्धिः=सन्धानं सन्धिः कर्मपरम्परा, सन्धीयते वा सन्धिः=ज्ञानावरणीयादिकर्मसन्ततिः, सकृत्सन्नो द्रोषितः=अपनीतो दूरीकृतः, एवं=तथा अन्यत्र=कुतीर्थिकप्रतिपादितशासने सन्धिः=पूर्वोक्तो दुर्ज्ञोषितः=दुःखेनापनीतोऽपनेतुमशक्य इत्यर्थः, भवति, दोषराहित्येन वीतरागप्रतिपादित एव मोक्षमार्गः साधीयान्तु सर्वसमारम्भगीलेन सचित्तभोजिना रागद्वेषाग्रहवता परेण प्रतिपादितो मार्गो मोक्षाय भवतीत्यभिप्रायः, शमिता है। शमिता से आर्य तीर्थङ्करादिकों ने धर्म की प्ररूपणा की है—ऐसा समझना चाहिये।

वीतराग से अन्य अवीतराग मिथ्यादृष्टिका उपदेश हेय है—छोड़ने योग्य है—इस दान को प्रदर्शित करने के लिये स्वयं भगवान् कहते हैं—‘जहित्थ’—इत्यादि। इस आर्हत-शासनमें प्रतिपादित रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गमें घातिकर्मों को नाश करनेकी कामनावाले मैंने जिस प्रकार से कर्मपरंपरा-ज्ञानावरणीयादिक कर्मों की सन्तति सम्पूर्णरूपसे दूर की है उस तरह से वह कर्मपरम्परारूप संधिका अन्यत्र-मिथ्यादृष्टियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तमें दुर्ज्ञोषित-अपनयन-दूर करना अशक्य है। अर्थात् मिथ्यादृष्टियों के सिद्धान्त के सहारे यह कर्मपरम्परा नष्ट नहीं हो सकती है। अभिप्राय इसका यही होता है कि दोषरहित होने से वीतराग द्वारा प्रतिपादित ही मोक्षमार्ग सर्वोत्कृष्ट है, सर्वसमारम्भ-शमिताथी आर्य तीर्थङ्करादिकोअे धर्मनी प्ररूपणा करी छे अेम समजलु जेधअे.

वीतरागथी अन्य अवीतराग-मिथ्यादृष्टिनो उपदेश परेणर नथी-छोडवा योज्य छे-आ वात स्पष्ट करता स्वयं भगवान् कहे छे के—“जहित्थ” इत्यादि आ आर्हत शासनमा प्रतिपादित रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गमा घातिकर्मोना नाश करवानी कामनावाणा मे जे प्रकारथी कर्मपर परा-ज्ञानावरणीयादिक कर्मोनी सतति स पूर्ण रूपथी दूर करेख छे ते रीते अे कर्मपर परारूप सधीना अन्यत्र-मिथ्या-दृष्टिओद्वारा प्रतिपादित सिद्धातोमा दुर्ज्ञोषित-दूर करलु अशक्य छे अर्थात् मिथ्या-दृष्टिओना सिद्धातने सहारे आ कर्मपर परा दूर थध शकनार नथी अलिप्राय आनो अे छे के-दोषरहित थवाथी वीतरागद्वारा प्रतिपादित न मोक्षमार्ग सर्वोत्कृष्ट छे.

तस्मात्कारणात् प्रथीमि=कथयामि, यत् एतदाहते मार्गे सम्यग्व्यवस्थितेन मया कर्मापनीतम् तदा प्रथीमि अन्योऽपि संयतो वीर्यसंयमाचरणे तपसि वा सामर्थ्यं नो निहन्यात्=नो गोपयेत् अनिगृहितबन्धुवीर्येण मुनिना भाष्यमिति भावः, इति सुधर्मा स्वामी स्पृशिम्याय वीरभोक्तं प्रथीतीत्याशयः ॥ सू० १ ॥

अपि च स कथम्भूतो मयेत्? इत्याह—' जे पुव्वुट्टाई ' इत्यादि ।

मूळम्—जे पुव्वुट्टाई नो पच्छानिवाई, जे पुव्वुट्टाई पच्छानिवाई, जे नो पुव्वुट्टाई नो पच्छानिवाई, सेऽपि तारिसप सिया, जे परिभ्राय लोगमणुस्सिया ॥ सू० २ ॥

छाया—यः पूर्वोत्थायी नो पश्चाभिपाती, यः पूर्वोत्थायी पश्चाभिपाती, यो नो पूर्वोत्थायी ना पश्चाभिपाती, सोऽपि तादृश स्यात्, ये परिहाय लोकमन्वाभिताः ॥ सू० २ ॥

स्वभाषावाले सभित्तभोजन करनेवाले और राग एवं द्वेषमें आग्रहवाले अन्य मिथ्यादृष्टि अवीतराग द्वारा प्रतिपादित मार्ग भोक्तृप्राप्तिके लिये योग्य नहीं है । इसी कारण से मैं कहता हूँ कि इस आहृत मार्गमें अच्छी तरह से रहते हुए मैंने कर्मोंका नाश किया है, तो और अन्य संयतों से भी मेरा यही कहना है कि वे भी संयमके आचरणमें अपना तपकी आराधनामें अपनी शक्ति को नहीं छुपावें। जो अपने बल और वीर्यको छुपाता है वह सच्चा मुनि नहीं है। इस हेतु सच्चे मुनि होनके लिये अपने बल वीर्यको नहीं छुपाना चाहिये, तभी जा कर वह सचा मुनि हो सकता है। इस प्रकार सुधर्मास्वामीजी वीर भगवानद्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तको अपने शिष्य जम्बूस्वामीके प्रति कह रहे हैं ॥ सू० १ ॥

सुधर्मास्वामीजीके शिष्य जम्बूस्वामीजीने सभित्त भोजन करवावाला तेमका राग अने द्वेषमा आग्रह सभवावाला अन्य मिथ्यादृष्टि अवीतरागद्वारा प्रतिपादित मार्ग भोक्तृ प्राप्ति माटे योग्य नहीं आ कहले हुं ठहुं हुं के आ अहंत भावभंगीने से कहोने नाश करेले छे अन्वने पक्ष माई आ ठहेले छे छे तेला पणु सधमना आग्रहपणुमा अथवा तपनी आराधनामा पोतानी शक्तिने न छुपावे छे पोतानु वग अने वीर्य छुपावे छे अे साथी मुनि नहीं आथी साथी साथी मुनि धवा माटे पोतानु वग वीर्यने न छुपावतुं नोछे आथी अे साथी मुनि जनी शक्ये आ प्रभाते सुधर्मास्वामीजीने वीर भगवान पासधी अलेले सिद्धान्त पोताना शिष्य जम्बूस्वामीने कहले छे ॥ सू० १ ॥

टीका—‘य’ इत्यादि, यः=विचारितसंसारसारो धर्मानुष्ठानपरायणः पूर्वोत्थायी पूर्व-चारित्रग्रहणावसरे चारित्राचरणेनोत्थातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्थायी, नोपश्चान्निपाती-पश्चात्=चारित्रग्रहणानन्तरं निपतितुं शीलं यस्य नास्ति स नोपश्चान्निपाती भवति । सिंहवन्निष्क्रान्तः सिंह इव एकान्तविहरणशीलः गणधरादितुल्यः, इति प्रथमो भङ्गः, स चात्युत्तमः ।

तथा—मुनिजन को कैसा होना चाहिये ? इस बात को प्रकट करने के लिये कहते हैं—“जे पुव्वुद्दाई ” इत्यादि ।

‘पूर्व—चारित्रग्रहणावसरे चारित्राचरणेन उत्थातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्थायी’-चारित्र ग्रहण करने के अवसर में चारित्र के आचरण से अपनी वृद्धि करने का जिसका स्वभाव है वह पूर्वोत्थायी है । अर्थात्-चारित्र को अंगीकार कर के जो अपने चारित्रमय आचरण से अपने जीवनकी उन्नति करता है उसका नाम पूर्वोत्थायी है । वह पूर्वोत्थायी “नोपश्चान्निपाती ” चारित्र ग्रहण के अनन्तर अपने गृहीत चारित्र से कभी पतित नहीं होता है, क्योंकि इसका स्वभाव गृहीत चारित्र से निपतनशील नहीं होता है, प्रत्युत इसके परिणाम चारित्र ग्रहण के अवसरसे लगा कर सदा वर्धमान रहते हैं । इसीलिये वह पश्चान्निपाती नहीं होता है । सिंह की तरह एकान्त विहरणशील होने से यह गणधरादि के समान माना गया है । यह प्रथम भंग है । इस भंगवाला मुनि अति उत्तम है ।

इरी—मुनिजने डेवु थवु जेधंअे ? आ वातने प्रगट करता कडे छे—

“जे पुव्वुद्दाई ” धत्यादि

पूर्व—चारित्र-ग्रहणावसे चारित्राचरणेन उत्थातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्थायी—आरित्र अरुणु करवाना सभये आरित्र आयरणुथी पोतानी वृद्धि करवानो जेनो स्वभाव छे ते “पूर्वोत्थायी ” छे अेटले—आरित्रने। अंगीकार करी जे पोताना आरित्रमय आयरणुथी पोताना एवननी उन्नति करे छे अनु नाम पूर्वोत्थायी छे जे पूर्वोत्थायी “नोपश्चान्निपाती ” आरित्र अरुणु कर्या पछी पोते जेनो स्वीकार करेले छे जेनाथी अदित थतो नथी डेम डे जेनो स्वभाव अरुणु करेला आरित्रना पावनमा पूष ज मळम भनेलो डोय छे अथी जे आरित्र अरुणु कर्या पछीथी उत्तरोत्तर जेमा ज रत अनि रहे छे आथी ते “पश्चान्निपाती ” थतो नथी सिंहानी भाइक जे जेकांत विहरणशील होवाथी तेने गणधरादि समान मानवामा आवेल छे आ प्रथम भंग छे आ लगवाणा मुनि अति उत्तम छे



द्वितीयमङ्गमाह—‘य’ इत्यादि, यः कश्चित् पूर्वोत्थायी चारित्रं गृहीत्वा पश्चात्पिता—चारित्रान्तरायोदयात् पश्चात्पितनशीलः। आचारात्पतित शैलकः, लिङ्गात्पतितो नन्दिपेणकुमारः, दर्शनं पतितो जमालिः, आचारतो लिङ्गात्पतितः पश्चात्कृतः, कश्चिन्निरपि पतितो भवतीत्यभिप्रायः, अथ च द्वितीयो मङ्गः।

यो नो पूर्वोत्थायी पश्चात्पिता—इति तृतीयमङ्गस्याभावादप्रतिपादनं मूढे, उचिष्ठतो हि निपातो जायते, उत्थानप्रतिषेधे च क्लृप्तस्तरां निपातधितेति बोध्यम्।

जो पूर्वोत्थायी तो है; परन्तु चारित्र ग्रहण करके भी जो अपने गृहीत चारित्र से, पीछे चारित्र—अन्तराय के उदय से निपतनशील है—वह ‘पूर्वोत्थायी पश्चात्पिता’ ऐसा द्वितीय मंग है। जैसे आचार से पतित शैलक राजशक्ति हुए, लिङ्ग से पतित नन्दिपेण हुए, दर्शन से पतित जमालि हुए। आचार और लिङ्ग इन दोनों से पतित पश्चात्कृत हैं; जैसे कण्ठरीकादि। कोई २ आचार, लिङ्ग और दर्शन इन तीनों से भी पतित हुए हैं।

जो पूर्वोत्थायी तो नहीं है परन्तु पश्चात्पिता है। यह तृतीय मंग है। परन्तु इस मंग की समायना ही नहीं हो सकती है; कारण कि जो पूर्वोत्थायी होगा उसी में निपात का विचार लागू होता है। जब वहाँ उत्थान का ही प्रतिषेध है तो फिर निपात की विचारणा वहाँ कैसे हो सकती है? अर्थात्—चारित्र जिसने ग्रहण किया है उसीमें पीछे यह उत्थानशील है या अनुत्थानशील है—इस प्रकार का विचार किया जा

ने पूर्वोत्थायी तो है परन्तु चारित्र ग्रहण करवा पछी पोते ग्रहण करके चारित्रधी आगण वधी शकते नधी अने अन्तराय उदयना कारणे निपतन शील है—ते पूर्वोत्थायी पश्चात्पिता” अथ द्वितीय मंग है अथ के आचारधी पतित शैलक राजशक्ति यथा, लिङ्गधी पतित नन्दिपेण यथा दर्शनधी पतित जमाली यथा, आचार अने लिङ्ग, आ अनेधी पतित पश्चात्कृत है अथ—कण्ठरीका आदि। कौण्ड कौण्ड आचार लिङ्ग अने दर्शन आ त्रयेधी पञ्च पतित यथैव है।

ने पूर्वोत्थायी तो नहीं परन्तु पश्चात्पिता है आ तृतीय मंग है। परन्तु आ मंगनी समायना न थी, कारण के ने पूर्वोत्थायी उद्यम है अर्थात् निपातने विचार लागू यथा है अथारे त्या उत्थानने प्रतिषेध है त्या पछी निपात अने अनिपातनी विचारणा न करे रीते यथ शकते? अर्थात्—चारित्र नेहे ग्रहण करके है तेना विषयमां न अने आगण वधी शकते है के

चतुर्थमाह—यः गृहस्थतुल्यः नोपूर्वोत्थायी विरतेरसद्भावात्, अत एव नो-  
पश्चान्निपाती, उत्तिष्ठत एव निपातो नानुत्तिष्ठतो भवतीत्याशयः । सोऽपि=दण्डि-  
शाक्यादिरपि तादृशः=चतुर्थभङ्गान्तर्गतः सावद्याचरणतया नोपूर्वोत्थायी, यत एव  
नोपूर्वोत्थायी तत एव नोपश्चान्निपाती, गृहस्थसदृशः स्यात्, उभयोरप्यसंवृतास्रव-  
द्धारत्वात् । येऽप्यसमारम्भिणस्तेऽपि तादृशा एवेत्याह—‘येऽपी’त्यादि, येऽपि

सकता है । परन्तु जब मूलमें ही वह चीज उसके पास नहीं है तब उस  
विषय को लेकर उत्थान और पतन का विचार कैसे हो सकता है ?  
इसीलिये सूत्रकारने सूत्रमें इस तृतीय भंगका प्रतिपादन नहीं किया है ।

जो गृहस्थ के समान हैं, वे न पूर्वोत्थायी हैं और न पश्चान्निपाती  
हैं । पूर्वोत्थायी इसलिये नहीं है कि उनमें चारित्रका सद्भाव नहीं है, और  
इसीलिये वे पश्चान्निपाती भी नहीं हैं । चारित्र के सद्भाववाले में ही  
पश्चान्निपातित्व संभवित होता है, इसके अभाववाले में नहीं । ऐसे  
दण्डिशाक्यादिक है । ये चतुर्थभङ्ग के अन्तर्गत ही हैं । कारण कि ये  
सावद्य व्यापारों में प्रवृत्तिशील होते हैं; अतः इनका आचार सावद्य-  
विशिष्ट होने से इनमें विरति नहीं है । विरति के अभाव  
से ये पूर्वोत्थायी नहीं हैं । जब ये पूर्वोत्थायी नहीं हैं तो पश्चान्निपाती  
भी नहीं हैं । अतः ये गृहस्थ ही हैं । क्यों कि जिस प्रकार गृहस्थजन  
कर्मों के आस्रव के द्वार से असंवृत होते हैं, अर्थात् अविरति आदि

अटकी पडेल छे ओयो विचार करवानो रहे छे, परतु न्यां भूणभां न्नेनी  
पासे ये थीन नथी त्यां उत्थान अने पतनो विचार न् कर्हीते थर् शके  
आ न् कारणे सूत्रकारे सूत्रमा आ तृतीय ल गनो स्वीकार करेले नथी

ने गृहस्थनी रीते रहेवावाणा छे ते न तो पूर्वोत्थायी छे के न तो पश्चा-  
न्निपाती छे पूर्वोत्थायी आ माटे नथी के अने अरित्रनो सद्भाव नथी आ  
न कारणे पश्चात्-निपाती पणु नथी अरित्रसद्भाववाणाभां न् पश्चात्-निपा-  
तित्व सलवित डोय छे आना अलाववाणाभां नर्ही ओवा दडी शाक्यादिक  
छे. ने अतुर्थभङ्गना अन्तर्गत डोय छे कारणु के अे सावद्य व्यापारोमा प्रवृत्ति-  
शील रहेता डोय छे अेटले अेभनो आचार सावद्यविशिष्ट डोवाथी अेनामा  
विरतिरूपता नथी विरतिरूपताना अलावथी अे पूर्वोत्थायी नथी न्यारे अे  
पूर्वोत्थायी न् नथी तो पश्चान्निपाती पणु नथी, आथी अे गृहस्थ न् छे, कारणु के  
गृहस्थन न् कर्मोना आस्रवना द्वारथी असंवृत डोय छे. अर्थात्-

દ્રવ્યલિંગિનો દષ્ટિશાક્યાદયઃ લોકમ્=અવિરતલોકં પરિજ્ઞાપ=ત્રિવિધપરિજ્ઞાપા  
જ્ઞાત્વા પરિહૃત્ય ષ પુનસ્તમેવ લોકં સાવચવ્યાપારિણમ્ અન્વાભિતાઃ=તાદૃશ્લોક  
સ્વેનાનુસરણં કૃતવન્તઃ । પચનપાચનાદિવ્યાપારેભ્યઃ પૂર્વમુપરમ્ય પદ્માચારિયાન્તરાયો  
દયાત્પુનરપિ તમેવ સમારમ્મકર્ત્વં લોકમનુસરન્ત પાચનાનુમોદનામ્યાં ગૃહસ્વસદ્શા  
એવ મવન્તીત્યાશ્રયઃ ॥ મૂ૦ ૨ ॥

કર્મોં કે આનેકે દ્વાર હૈં, ગૃહસ્વજનકા કર્મોં કે આગમન કા યહ દ્વાર બંદ  
નહીં હોતા હૈ ડસી પ્રકાર અધિરતિ આદિ સે યુક્ત હોને કે કારણ સે  
વૃષ્ટિ-શાક્યાદિકોં કે મી કર્મોં કે આગમનકે દ્વાર ખુલે હી રહતે હૈં । યે  
કર્મોં કે આસ્રવ સે રહિત ડસ અવસ્થા મેં નહીં હો સકતે હૈં । હસી તરહ  
જો અસમાર મી તો હૈં, પરન્તુ પચન-પાચનાદિ કાર્યોં કી અનુમોદનાદિ કરતે  
હૈં યે મી ગૃહસ્વતુલ્ય હી હૈં, ઓર ચતુર્ય મંગમેં ડનકા અતમાંચ હોતા હૈ, યહ  
સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈં-દ્રવ્યલિંગી મુનિ વૃષ્ટિશાક્યાદિક ઘગૈરહ શપરિ  
જ્ઞાસે અધિરત લોક કો જાનકર ઓર પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાસે ડસકા પરિહાર  
કર ફિર ડસી સાવચ વ્યાપારી લોકકા જો અનુસરણ કરતે દેસે જાતે હૈં,  
અર્થાત્-યે પ્રથમ પચન-પાચનાદિ વ્યાપારોંસે અપને કો નિવૃત્ત કરકે મી  
પદ્માત્ ચારિત્ર-અન્તરાયકે ડવ્યસે ડસી સમારમ્મશીલ લોકકા અનુસરણ  
કરતે હુવ પાચન ઓર અનુમોદન સે ગૃહસ્વતુલ્ય હી હો જાતે હૈં ॥મૂ૦૨॥

અવિરતિ આદિ કર્મોંને આવવાતુ જે દ્વાર છે ગૃહસ્વજનને કર્મોંના અગમનતુ  
આ દ્વાર બંધ થતુ નથી જે પ્રકારે અવિરતિ આદિથી મુક્ત હોવાના કારણથી  
હથી શાક્યાદિકોંને પણ કર્મોંના અગમનનાં દ્વાર ખુલ્લા જ રહે છે જે કર્મોંના  
આસ્રવથી રહિત તે અવસ્થામા બની શકતાં નથી આ રીતે જે અસમારથી તો  
છે પરન્તુ પચન-પાચનાદિ કાર્યોંની અનુમોદના કરે છે જે પણ ગૃહસ્વતુલ્ય જ  
છે આથી ચતુર્ય મંગમાં એમને સમાવેશ થાય છે આમ સૂત્રકાર પ્રગટ કરે  
છે આથી દ્રવ્યલિંગી મુનિ હથી-શાક્યાદિક વિવેરે સ-પરિજ્ઞાથી અવિરત  
હોકોંને બાધીને અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી તેને પરિહાર કરીને હથી-તે સાવચ  
વ્યાપારી હોકોંતુ જ તે અનુસરણ કરતા રેખયામા આવે છે, અર્થાત્-તે પચન પાચ  
નાદિરેપ વ્યાપારથી પોતે નિવૃત્ત હોવા છતાં પણ પાછળથી ચારિત્ર-અન્તરાયના  
ઉદયથી તે સમારમ્મશીલ હોકનુ અનુસરણ કરતાં કરતાં પાચન અને અનુમો  
દનથી ગૃહસ્વતુલ્ય બની રહે છે ॥ મૂ૦ ૨ ॥

सर्वमिदं न मया खबुद्ध्या प्रोक्तमित्याह—‘ एयं ’ इत्यादि ।

मूलम्—एयं निघाय सुणिणा पवेइयं, इह आणाकंखी पंडिए अणिहे, पुठ्वावररायं जयमाणे, सया सीलं संपेहाए सुणिया भवे अकामे अझंझे, इमेण चेव जुज्झाहि, किं ते जुज्जेण वज्झओ ॥ सू० ३ ॥

छाया—एतज्ज्ञात्वा मुनिना प्रवेदितम्, इहाऽऽज्ञाकाङ्क्षी पण्डितोऽस्निहः, पूर्वापररात्रं यतमानः, सदा शीलं संपेक्ष्य श्रुत्वा भवेदकामोऽब्रह्मः, अनेन चैव युध्यस्व, किते युद्धेन वाह्यतः ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘ एत ’—दित्यादि, मुनिना = तीर्थङ्करेण एतत् = पूर्वोक्तम् उत्थाननिपतनादिकं वक्ष्यमाणं वा ज्ञात्वा=विमलकेवलालोकेन बुद्ध्वा प्रवेदितम्=अभिहितम् ।

यह सब मैंने अपनी बुद्धिसे नहीं कहा है—ऐसा कहते हैं—‘ एयं ’ इत्यादि तीर्थङ्कर भगवान् ने यह पूर्वोक्त उत्थान निपतनादिक अथवा वक्ष्यमाण विषय अपने निर्मल केवलज्ञानरूपी आलोक से जान कर ही कहा है ।

भावार्थ—सूत्रकार पूर्वोक्त कथन में अथवा आगे कहे जानेवाले विषयमें अपनी कल्पना से कथनका निषेध करते हुए उसमें वे तीर्थङ्कर—प्रणीतता प्रकट करते हैं । यह इसलिये प्रकट की गई है कि “ वक्तुः प्रामाण्यात् वचसि प्रामाण्यं ” वक्ताकी प्रमाणता से ही वचनमें प्रमाणता आती है । अन्यथा रथ्या—पुरुषादिक ( भटकते फिरते बजारू ) की तरह उसमें अप्रमाणता होनेसे वह अग्राह्य हो जाता है ।

आ सधणु मे भारी बुद्धिथी कडेल नथी, अेभ कडे छे—“ एयं ” इत्यादि तीर्थंकर लगवाने आ पूर्वोक्त उत्थान निपतनादिक अने वक्ष्यमाण विषय पोताना निर्माण केवणज्ञानरूपी आलोकथी ज्ञाणीने कहु छे

भावार्थ—सूत्रकार पूर्वोक्त कथनमा अने आगण कडेवाता विषयमां पोतानी कल्पनाथी कथननो निषेध करीने तेमा ते तीर्थंकर प्रणीतता प्रकट करे छे. आ अे माटे प्रकट करेले छे के “ वक्तुः प्रामाण्याद् वचसि प्रामाण्यम् ” अेटले वक्तानी प्रमाणताथी ज वचनमा प्रमाण्यता आवे छे. ते सिवाय रथ्या पुरुषादिक ( लटकता इरता अनइ ) नी माइके तेमा अप्रमाण्यता होवाथी ते अग्राह्य अनी जय छे,

उपदेश—‘इहे’—त्यादि इह=अस्मिन् मौनीन्द्रप्रवचने व्यवस्थित सन्  
 “आज्ञाकाक्षी” आज्ञा=तीर्थकृदुपदेशमाकाक्षितुं शीलं यस्यास्ति स आज्ञाऽऽकाक्षी  
 =अस्मिन्प्रवचनोक्तानुष्ठापी, अस्तिहः=मातापित्रादौ शब्दाविधिपय शरीरादौ वा  
 स्नेहवर्धितः पण्डितः=तीर्थहारापरिज्ञानकुशलः पापभीरुर्मवति, मातापितृषुभक्त  
 प्रादिस्नेहवर्धितः शफ्टरक्षार्यमक्षे तैस्त्रानवदेहस्थित्यर्थमेवाहारमभन् रागद्वेषशून्य  
 स्तीर्थहारापराधको मुनिः पण्डितो ममतीति वारुपर्यम् । अपि च—‘पूर्वे’त्यादि, पूर्वा-

“इहेत्यादि” पदों से तीर्थहृत्-प्रणीत वक्ष्यमाण विषय को प्रकट  
 करते हुए सूत्रकार कहते हैं—इस मौनीन्द्र (धीतराग) प्रवचनमें व्यव  
 स्थित मुनि को तीर्थहृत् भगवानने जो कुछ भी मुनिधर्मके विषय में  
 अपने उपदेश में कहा है उसका अनुष्ठान करना चाहिये। “आज्ञा-  
 तीर्थकृदुपदेशम् आकाक्षितुं शीलं यस्यास्ति स आज्ञाकाक्षी” क्योंकि यह  
 आज्ञाकाक्षी है—तीर्थहृत् भगवान् के उपदेशकी आकाक्षा (बांछा) करने  
 का जिसका स्वभाव होता है वही आज्ञाकाक्षी है। अर्थात् जो जिसके  
 शासन में रहता है वह उसके शासनोक्त नियमों का अनुष्ठायक होता  
 है। स्पेच्छानुसार प्रवृत्ति करनेवाला जिस प्रकार उस शासन से परिभूत  
 समझा जाता है उसी प्रकार जिनप्रणीत मुनिशासनको छोड़कर अपनी  
 इच्छानुसार चलनेवाला मुनि भी शासनसे परिभूत होता हुआ  
 आज्ञाकाक्षी (आज्ञा-आराधक) नहीं माना जाता है।

आज्ञाकाक्षी होने के लिये उसे मुनिधर्म के इन नियमों का पालन  
 आवश्यक है—अस्तिहः—अपने माता और पिता आदि में, शब्दादिक

“इह” इत्यादि पदोंकी तीर्थहृत् उद्देश्य वक्ष्यमाण विषयने प्रकट करने  
 सूत्रकार उद्देश्य—आ वीतराग प्रवचनमा व्यवस्थित मुनिने तीर्थहृत् भगवानने के  
 शक्तिपक्ष मुनिधर्मना विषयमां पोताना उपदेशमा उद्देश्ये तेन प्रवृत्तम् इत्यु  
 जेउद्देश्ये उद्देश्ये ते “आज्ञाकाक्षी-आज्ञाकाक्षी” अज्ञाने अनुसरन्ते उ  
 तीर्थहृत् भगवानना उपदेशनी आकाक्षा करनेके लिये स्वभाव उते अज्ञाकाक्षी उ  
 अर्थात् के लिये शासनमा उद्देश्ये ते तेना शासनधर्मना पालक भवे उ स्वेच्छानुसार  
 प्रवृत्ति कर्त्तव्यता के प्रकारे ते शासनधी विभुषण अज्ञानमा आवे उ ते प्रकारे  
 अनुप्रणीत मुनिशासनधी विभुषण पोतानी धर्मानुसार शासनवाजा मुनि पक्ष  
 शासनधी लक्षित भूत लनीने अज्ञानमा अराधक भवत्य नधी

आज्ञाकाक्षी यथा माते तेज्जे मुनिधर्मनां जेवा निवर्त्तनुं यत्न उद्यु  
 आवरथ उ-अस्तिहः—पोताना माता पिता आदिमा, शब्दादिक विषयमां, अने

विषयों में, अथवा शरीरादिकों में स्नेह-ममता-रहित होना । पण्डितः- तीर्थङ्कर प्रभुकी आज्ञा समझने में कुशलमति होना ।

भावार्थः—नियमों का अच्छी तरह से परिशीलन करनेवाला और उनका द्रव्य, क्षेत्र कालादि की व्यवस्था के अनुसार पालन करनेवाला व्यक्ति जिस प्रकार अन्धश्रद्धालु न हो कर अपने प्रत्येक कार्यको उपयोगपूर्वक करता है और तज्जन्य सुफल से लोक में प्रशंसनीय एवं कुशलमति माना जाता है उसी प्रकार से जो मुनि धर्म के प्रत्येक नियमोंका अच्छी तरहसे परिशीलन कर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे व्यवस्थानुसार उनका पालन करता है—उनका उचित रीतिसे हार्दिक लगन से सेवन करता है वह मेधावी मुनि कभी भी अपने कर्तव्यपथसे विचलित नहीं होता है, और मुनिधर्मपालनजन्य कर्मोंकी अनन्तगुणी निर्जरारूप सुफल से शोभित होता हुआ क्रमशः मुक्तिका लाभ करता है। इसलिये आवश्यकता है कि मुनिजन मौनीन्द्र ( वीतराग ) प्रवचनमें स्थित हो कर उसके प्रत्येक नियमों और उपनियमों के सच्चे ज्ञाता बनें । मुनिधर्ममें दक्ष मुनि पापभीरु होता है । माता-पितादिकमें स्नेहरिक्त मुनि शकट-गाडीकी रक्षा के लिये अक्ष ( धुरी ) में तैलदान की तरह देहकी स्थिति के निमित्त ही विना किसी राग-द्वेषके आहार करता हुआ तीर्थङ्कर प्रभुकी आज्ञा का पालक बन मुनिधर्मका सच्चा आराधक होता है ।

शरीर आदिकमा स्नेह ममता रहित थपु, पण्डित—अटके तीर्थ कर प्रभुनी आज्ञामा कुशलता प्राप्त करवी

भावार्थः—नियमोने सारी रीते पाणवावाणी अने तेने द्रव्य क्षेत्र काण आदिनी व्यवस्था अनुसार पालन करवावाणी व्यक्ति जेवी रीते अंधश्रद्धालु न बनीने पोताना प्रत्येक कार्यने उपयोगपूर्वक करे छे, अने तेथी लोकमा प्रशंसनीय तेमज कुशल बनाय छे आ ज रीते जे मुनिधर्मना प्रत्येक नियमोने सारी रीते कुशलतापूर्वक पाणे छे, द्रव्य क्षेत्र काण अने भावथी व्यवस्थानुसार पालन करे छे तेवो मेधावी मुनि केछि पणु वणते पोताना कर्तव्य-पथथी चलित थतो नथी, अने मुनि धर्मपालनजन्य कर्मोनी अनतगुणी निर्जरारूप सुखथी शोभित बनीने कर्मथी मुक्तिनो लाभ करे छे, आ कारखे आवश्यक छे जे मुनिजन वीतराग प्रवचनमा स्थित बनीने तेना प्रत्येक नियमो अने उपनियमोना साथी ननुकार बने. मुनिधर्ममा दक्ष मुनि पापभीरु होय छे. मातापितादिकमा स्नेहरहित मुनि गाडीना धरामा पुराता तेदनी भाङ्क देहनी स्थिति माटे ज

પરરાત્ર=રાત્રિ: પૂર્વાપરૌ ભાગૌ પૂર્વાપરરાત્રં, પૂર્વરાત્રસ્ય યામદ્વયાત્મકસ્ય મધ્યે પ્રથમો યામઃ, પ્થમપરરાત્રસ્ય પશ્ચિમો યામઃ, તત્ર પ્રહરદ્વયે જાગરિતઃ સન્ યતમાનઃ=પ્રતિક્રમણસ્વાધ્યાયધ્યાનાદિકમનુતિષ્ઠન્, ઉપલક્ષણાન્મધ્યવર્તિન્યા રાત્રે યામદ્વયે યથાવિધિ ધ્યાનઃ, રાત્રૌ યત્નકષયેન દિનેડપિ તત્કર્યનં સ્પષ્ટમેષ । શક્તિસચ્ચે સ્થવિરકલ્પિકા મધ્યવર્તિયામમધ્યેડપિ જાગ્રતિ । જિનકલ્પિકાચૈર્કં પ્રહરં સ્વપન્તિ, સત્તસુ પ્રહરેણુ જાગ્રતિ । ઇષં નિષ્ક્રમણપ્રવેશ્ચાદૌ મુનિર્વિવસે ચહુર્વિ

પૂર્વાપરરાત્રં યતમાનઃ—રાત્રિ કે પૂર્વ ઓર અપર ભાગોંકા નામ પૂર્વાપરરાત્ર હૈ । રાત્રિ કે ૪ પ્રહર હોતે હૈ । ઇક પ્રહર રાત્રિ કે ચૌથે હિસ્તે કો કહતે હૈ । પૂર્વરાત્ર કે દો પ્રહરોંમેં સે પ્રથમ પ્રહર મેં, પશ્ચિમ રાત્ર કે દો પ્રહરોંમેં સે અન્તિમ પ્રહર મેં ( અર્થાત્ રાત્રિકે ૪ પ્રહરોંમેં સે પહેલે ચૌથે પ્રહરોંમેં ) જાગ્રત રહુ કર પ્રતિક્રમણ, સ્વાધ્યાય ઓર ધ્યાનાવિક કરના । બાકી કે દુસરે તીસરે પ્રહરોંમેં યથાવિધિ નિદ્રા લેના । “ યતમાનઃ ” પદસે દિન મેં બી યથાવિધિ સ્વાધ્યાયાવિકા કરના સ્પષ્ટ સૂચિત હોતા હૈ । જય રાત્રિમેં બી પ્રતિક્રમણાવિકાકી વિધિ પ્રકટ કી ગઈ હૈ તો દિન મેં બી યથાવસર સ્વાધ્યાય કરના યહ યત્ન સ્થત સ્પષ્ટ હૈ । શક્તિ કે સન્નાય મેં સ્થવિરકલ્પી મુનિ રાત્રિકે મધ્યવર્તી દો પ્રહરોંમેં બી જાગરિત રહતે હૈ । જિનકલ્પી સાધુ ઇક પ્રહર હી નિદ્રા લેતે હૈ । બાકી દિન રાત્ર કે પ્રહરોંમેં જાગતે રહતે હૈ । ઇસીતરહ નિષ્ક્રમણ-પ્રવેશાવિકા મેં

કોઈ પણ શન-દેવ વગર જાહાર બ્રહ્મ કરીને તીર્થ કર ભગવાનની જ્ઞાના પાલક બની મુનિધમના સાચા આરાધક બને છે

પૂર્વાપરરાત્ર યતમાન—શત્રીના પૂર્વ અને અપર ભાગનુ નામ પૂર્વાપરરાત્ર છે શત્રીના ચાર પ્રહર છે, એક પ્રહરને શત્રીના ચૌથો ભાગ કહે છે પૂર્વ શત્રના બે પ્રહરમાથી પ્રથમ પ્રહરમા, પશ્ચિમ શત્રના બે પ્રહરમાથી અંતિમ પ્રહરમા ( અર્થાત્-શત્રીના ચાર પ્રહરમાથી પહેલા ચોથા પ્રહરમા ) ભયુત સ્ત્રીને પ્રતિક્રમણ, સ્વાધ્યાય તેમજ ધ્યાનાદિક કરવુ બાકીના બીજા અને ત્રીજા પ્રહરમા યથાવિધિ નિદ્રા લેવી. “ યતમાન ” પદથી દિવસે પણ યથાવિધિ સ્વાધ્યાયાદિક કરવુ તેણુ સ્પષ્ટ સૂચિત થાય છે જ્યારે શત્રીમા પણ પ્રતિક્રમણાદિકની વિધિ અપેલ છે તો દિવસમાં પણ યથાવસર સ્વાધ્યાય કરવુ, એ વાત સાચ સ્પષ્ટ છે શક્તિના સદ્ભાવમા સ્થવિરકલ્પી મુનિ શત્રીના મધ્યવર્તી બે પ્રહરમાં પણ ભગવત રહે છે છત્રકલ્પી સાધુ એક પ્રહર જ નિદ્રા લે છે બાકી દિન શત્રના પ્રહરમા ભગવાત રહે છે આ પ્રમાણે નિષ્ક્રમણ-પ્રવેશાદિકમાં મુનિ દિવસે

पयेऽपि यत्न विदधाति कि पुनरचक्षुर्विपयरात्रावित्यागयः । एतदेव प्रकटयति—  
'सदा शील'—मित्यादि, सदा=सर्वकाल शीलम्=अष्टादशसहस्रशीलाङ्गरथं चारित्रं  
वा, अथवा शीलं=पञ्चमहाव्रतसाधनभूतं गुप्तित्रयं सकलेन्द्रियदमन कषायनिग्रहं वा  
संप्रेक्ष्य=ज्ञात्वा तमेव यावज्जीवमनुपालयेत् । उक्तञ्च—

मुनि दिन में भी देख-भाल कर समितिपूर्वक प्रवृत्ति करता है । दिनमें  
भी जब वह यतनापूर्वक अपनी प्रत्येक क्रियाओंको करता है तो रात्रि में  
भी कि जिममें चक्षुरिन्द्रिय का विषय कोई भी पदार्थ स्पष्ट रूपसे नहीं  
होता है, उसे अपने प्रत्येक प्रवृत्ति में यतना रग्वनी ही चाहिये । अतः  
रात्रि में विहारादि नहीं करना यहवान भी स्वतः सिद्ध हो जाती है ।

“सदा शील संप्रेक्ष्य श्रुत्वा भवेदकामोऽङ्गञ्च” —सर्वकाल १८ हजार  
शीलो के भेदों का, या चारित्र का अथवा पांच महाव्रतों के साधनभूत  
गुप्तित्रय, सकलेन्द्रियोंका दमन और कषायों का निग्रहरूप शीलका अच्छी  
तरह ज्ञाता वन उसका यावज्जीवन पालन करे । गुरुके निकट शीलके  
पालने का और उसके नहीं पालने का परिणाम जानकर वैषयिक इच्छाओं  
से रहित होकर माया, तृष्णा अथवा क्रोध से रहित होवे ।

भावार्थ—१८ हजार शील के भेद जो आगमों में प्रकट किये गये  
हैं, मुनिका कर्तव्य है कि उनका भली प्रकार पालन करे । ५  
महाव्रत, ५ समिति और ३ गुप्ति, इस १३ प्रकार के चारित्र की आरा-

पणु ङाणी ङेधने समितिपूर्वक प्रवृत्ति करे छे द्विसे पणु ङ्यारे ते यत्ना-  
पूर्वक पोतानी प्रत्येक क्रियाओं करे छे तो सत्रीमा पणु के ङेमा यक्षुरिन्द्रियने  
विषय डेध पणु पदार्थ स्पष्ट रूपथी थतो नथी तेने पोतानी प्रत्येक प्रवृत्तिमा  
यत्ना राषवी ङेधये अटले सत्रीमां विडार आदि न करवा ये वात आथी  
स्पष्ट रीते सिद्ध थाय छे

“सदा शीलं संप्रेक्ष्य श्रुत्वा भवेदकामोऽङ्गञ्च” —सर्वकाल अद्वार हुनर  
शीलोना लेदने, अथवा आरित्रना अने पाय महाव्रतोना साधनभूत गुप्तित्रय, सकल  
धन्द्रियेनु दमन अने कषायोना निग्रहरूप शीलना सारी रीते ज्ञाता ङनी तेनु  
छुदगी पर्यन्त पालन करवु गुर्नी पासेथी शीलना पालनना अने नडि  
पाणवाना परिष्ठाभने ङाणीने वैषयिक इच्छाओथी रहित ङनी माया, तृष्णा अने  
क्रोधथी रहित थवु

भावार्थ —अद्वार हुनर शीलना लेद ङे आगमोमा प्रगट कराया छे ते माटे  
मुनिनु कर्तव्य छे के तेनु सारी रीते पालन करे पाय महाव्रत, पाय समिति,  
अने त्रणु गुप्ति, येवा तेर प्रकारना आग्रिनी आराधना करे पाय महाव्रतोना



“ महाव्रतसमाधानं, तथैवेन्द्रियसवरः ।

त्रिदण्डविरतित्वं च, कपायाणां च निग्रहः ” ॥ १ ॥

तत्र शीलमिति श्रुते” तत्र सगमपि नो प्रमादयदिति भावः । शीलवतो गुणमाह—भुत्वेत्यादि, यः भुत्वा=शीलपरिज्ञानं तदनुपालनफलं तद्विपरीत-कर्तृभां नरकनिगोदादिपरिभ्रमणं च गुरुसकाशादागमाद्वाऽऽकर्ष्य, अकामः=इच्छादि घना करे । ५ महाव्रतों के माघनभूत ३ गुप्तिका पालन और पांच इन्द्रिय और एक मनका दमन करना, कपायों का निग्रह करना ये सब बातें शील के ही अन्तर्गत हैं । मुनिजन को “ शील का पालन करना चाहिये ” इस की यक्तव्यतामें इन समस्त बातों का अर्थव्य पालन उचित है । इन सबका पालन मुनिधर्म से संबन्ध रखता है । कहा भी है—

“ महाव्रतसमाधानं, तथैवेन्द्रियसंवरः ।

त्रिदण्डविरतित्वं च, कपायाणां च निग्रहः ” ॥ १ ॥

अर्थात्—महाव्रतादिकों का आराधन शीलरूप से कहा गया है, ऐसा समझ कर इनके पालने में एक क्षण भी प्रमाद नहीं करना चाहिये । ‘भुत्वा’-इत्यादि पदोंद्वारा शीलवानके गुणको सूत्रकार कहते हैं— जो मुनि शीलके परिज्ञान, एवं उसके पालनजन्य फलको तथा शीलके सेवन से रहित मानवों के नरकनिगोदादिमें परिभ्रमणको गुरु से अथवा आगम से सुन कर इच्छादिकामसे रहित हो जाता है वह

आधारभूत त्रयु मुसितु पालन अने पाच धन्द्रिय अने जेठ मननुइमन इत्यु, कपायेने निग्रह इत्ये जे सवणी वाते शीलनी अन्तर्गत छे “ मुनिजनने शीलनु पालन इत्यु जेठजे आ प्रकालनी शीतोभा आ सवणी वातेनु अवश्य पालन इत्यु जेठजे आ अधानु पालन मुनिधर्म आवे सज्ज सजे छे इत्थं पज्ज छे—

“ महाव्रतसमाधानं, तथैवेन्द्रियसवरः ।

त्रिदण्ड-विरतित्वं च, कपायाणां च निग्रहः ” ॥ १ ॥

अर्थात् महाव्रतविहितो आराधन शीलरूपधी इहेल छे; जेवु सभलने तेना पालनमा जेठ क्षणने पज्ज प्रमाद इत्ये जेठजे नदी।

शीलवानना शुभने सूत्रकार इहे छे—‘भुत्वा’ इत्यादि।

जे मुनि शीलना परिज्ञानने, अने तेना पालनजन्य इज्जने, तथा शीलना सेवनधी रहित मानवना नरकनिगोदादिमा परिभ्रमणने शुइ अने आश्रमधी संसर्गने इच्छादि कामधी रहित जणी व्यथ छे ते आषा, क्रोध अने तृष्यधी

कामवर्जितः, एवम् अञ्जञ्जः=अविद्यमाना ब्रञ्जा=माया क्रोधस्तृष्णा वाऽस्य सोऽञ्जञ्जो भवेत् कामञ्जञ्जयोर्निषेधेन मोहनीयोदयोऽपि निषिध्यते; तन्निषेधा-  
देव शीलसम्पन्नो भवेन्नान्यथेत्यभिप्रायः, अयमत्र सारः—धर्मश्रवणानन्तरं कामञ्ज-  
ञ्जादिरहितो भवेदिति प्रतिपादनोत्तरगुणानां ग्रहणमुपलक्षणत्वेन मूलगुणग्रहणं च  
सिद्धम् । ततश्चाहिंसादिमहाव्रतधारी भवेदिति ।

ननु चानिहत्तवलवीर्यस्य शीलशालिनो भवदुपदेशानुष्ठायिनो मम साम्प्रतमपि  
न निखिलकर्मापनयो जातोऽतस्तदुपायं मह्यं ब्रूहि येन शीघ्रं सकलकर्मक्षयो भवेत् ।

क्रोध, माया अथवा तृष्णा से भी रहित हो जाता है । काम और झंझा  
—माया, क्रोध, अथवा तृष्णाके निषेध से मोहनीय के उदयका  
भी वहां निषेध हुआ समझना चाहिये, क्यों कि उसके निषेधसे ही  
वह शीलसंपन्न होता है; अन्यथा नहीं ।

भावार्थ—धर्मश्रवण के बाद “ काम और झंझा से वह रहित होवे ”  
इस प्रकार के प्रतिपादन से उत्तरगुणोंका ग्रहण सिद्ध हो जाता है, साथ  
में उपलक्षण से मूल गुणोंका भी । इस से यह बात सिद्ध होती है कि वह  
अहिंसादिक—महाव्रतधारी होवे । “ अणेण चैव जुञ्जाहि किं ते जुञ्जेण  
वज्झओ ” इस शेष सूत्रांश का खुलासा करने के लिये टीकाकार इसका  
अर्थ यों करते हैं—शिष्य गुरुदेवसे अरज करता है—“ मैं अपने बल और  
वीर्यको नहीं छिपा कर शीलके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होता हुआ आपके  
उपदेशानुसार प्रवृत्ति कर रहा हूं, फिर भी मेरे समस्त कर्मोंका विनाश  
अभी तक भी नहीं हुआ, अतः उसका उपाय आप कहें कि जिससे मेरे  
समस्त कर्म शीघ्र नष्ट हो जावें, मुझे आपके वचनों में पूर्ण विश्वास है,

पणु रडीत थछ नय छे काम, माया, क्रोध अने तृष्णाना निषेधथी मोहनीयना  
उदयनो पणु त्या निषेध थयो समनवो लेधये, कारणु के तेना निषेधथी  
न शीलसंपन्न अने छे भीलथी नही, तात्पर्य के—धर्मना श्रवणु पछी “ काम  
अने मायाथी पर अने ” आप्रकारना प्रतिपादनथी उत्तरगुणोनु ग्रहणु सिद्ध  
थाय छे साथे साथ उपलक्षणथी मूलगुणनो पणु ग्रहणु थाय छे आथी अे  
वात सिद्ध थाय छे अहिंसादिक—महाव्रतधारी अने

“ अणेण चैव जुञ्जाहि किं ते जुञ्जेण वज्झओ आ शेष सूत्रांशना खुलासे  
करवा माटे टीकाकार आनो अर्थ आ प्रकारे करे छे—

शिष्य गुड़ने अरज करे छे—“ माई पोतानु अण अने वीर्यने नडि छुपावीने  
शीलना अनुष्ठानमा प्रवृत्ति करतो हु आपना उपदेश अनुसार प्रवृत्ति करूं छुं  
छता मारा समस्त कर्मोना विनाश डणु सुधी थयो नथी, माटे आप अेना  
उपाय भने अतावे के लेथी मारा समस्त कर्म शीघ्र नाश पाये, भने आपना

भवद्वाक्येन चाहं सिंहेनापि यादृधु समर्थोऽस्मि कर्मक्षयार्थनिष्कान्तस्य न किम-  
 प्यक्षयमस्तीति तदुपाया वक्तव्यं । इति पूज्यवन्तं शिष्यं गुरुराह— 'अनेने 'स्यादि,  
 अनेन चैव=आँदरिक्शरीरद्वारा ज्ञानावरणीयाविकर्मशत्रुणा मह रत्नप्रयाराधनप  
 ताकाग्रहणाय शुक्य वा प्राणपरित्यागेनापि स्वयुष्यस्व=कर्मरिपुपराजयस्व, वापत  
 =आत्मना षड्विस्थितेन सिंहादिना मह ते=तव युद्धेन=सप्रामेण किम्=त्रयेत्यर्थ,  
 कर्मशत्रुविजयादव तव मफलम्मापनया भावीत्यवधार्य तत्रैव यतस्वेति हृदयम्॥सू०३॥

मैं आपकी आज्ञा से सिंह के साथ भी युद्ध करनेमें समर्थ हूँ, हे गुरु  
 दय ! मैं तो कर्मों के नाश करने के लिये ही घरसे निकला हूँ, मेरे लिये  
 अशक्य काम कुछ भी नहीं हैं, इसलिये कर्मक्षय जितना जल्दी से  
 जल्दी हो सके आप ऐसा उपाय शीघ्र कहें ” इस प्रकार पूछनेवाले  
 शिष्यजन व प्रति गुरुदेव कहते ह—हे शिष्य ! तुम इस औदारिक  
 शरीर से ही ज्ञानावरणीयादि कर्मशत्रुओं के साथ रत्नप्रय की आरा  
 भनारूप पताकाको ग्रहण करने के लिये, अथवा मुक्ति पाने के लिय प्राण  
 पण से ( प्राणों की परवाह किये बिना ) युद्ध करो, कर्मशत्रुओं पर  
 विजय प्राप्त करो, अपने से बाह्य सिंहादिक के साथ युद्ध करने से तुम्हें  
 क्या लाभ हो सकता है ? मोहनीय कर्मके जीतने से ही तुम्हारे समस्त  
 कर्मों का विनाश हो जायगा, ऐसा निश्चय कर उसके ही साथ युद्ध करने  
 का प्रयत्न करो ॥सू०३॥

वधनेभ्यः सपुत्र विद्याय उ आपनी आग्धी दु सिद्धिनी साधे पण युद्ध  
 कर्त्वा नभयः सु उे गुर्देव ! दु ते कर्मिना नाश कर्त्वा गाते व वेशधी नीकन्धे  
 पुं मादे भाते अशक्य ज्येव कालं काम नथी आ भाते भारा कर्मिना वृद्धीभ्य  
 वृद्धी दाय थाव ज्येवो उपाय तात्कालिक वनयो ” आ प्रकारे बुद्धि पासे पूछनाथ  
 शिष्यवन्तं गुर्देव इदं उे उे—द शिष्य ! तुं आ औदारिक शरीरधी व नाना  
 वस्त्रियादिक कर्मशत्रुज्जेनी साथ रत्नप्रयनी आराधनारूप पताकाने बद्धपु कर्त्वा  
 भाते अथवा मुक्ति भंगववा प्रपु पण (प्राणनी परवा कयी वभर) युद्ध कर-कर्म  
 शत्रुज्ये उपर विजय प्राप्त कर आदस्ता-पाराधी इर अवा सिंहादिकनी साथ युद्ध  
 कर्त्वाधी तने उ ॥ लाभ भगवना उ ? मोहनीय कर्मने हतवाधी व पास  
 समस्त कर्मिना विनाश पाये ज्येवो निश्चय करी ननी नाथे युद्ध कर्त्वाते प्रयत्न  
 कर भावनीयना विनाशधी नाश कर्त्वा कर्मिना ना कालिक नाश कर्त्वा वृद्धी ॥ सू० उ व

दुष्पारसंसारपारावारे मज्जतो जनस्य तर्तुमिदं सुसाधनमनेकभवेषु प्राप्तुमश-  
क्यमिति दर्शयति—‘ जुद्धारिहं ’ इत्यादि ।

मूलम्—जुद्धारिहं खलु दुर्लभं, जहित्थ कुसलेहिं परिज्जावि-  
वेगे भासिए, चुए हु बाले गब्भाइसु रज्जइ, अस्सिं चयेयं पवुच्चइ,  
रूवंसि वा छणंसि वा, से हु एगे संविद्धपहे मुणी अन्नहा लोगमुवे-  
हमाणे, इय कम्म परिणाय सव्वसो से न हिंसइ, संजमइ, नो पग-  
व्वभइ, उवेहमाणो पत्तेयं सायं, वण्णाएसी नारभे कंचणं सव्वलोए  
एगप्पमुहे विदिसप्पइन्ने निविण्णचारी अरए पयासु ॥ सू० ४ ॥

छाया—युद्धार्हं खलु दुर्लभं, यथाऽत्र कुशलैः परिज्ञाविवेको भाषितः, च्युतो  
हु बालो गर्भादिषु रज्यते; अस्मिन्श्चैतत्प्रोच्यते, रूपे वा क्षणे वा, स हु संविद्ध-  
पथो मुनिः, अन्यथा लोकमुत्प्रेक्षमाणः, इति कर्म परिज्ञाय सर्वतः स न हिनस्ति,  
संयमयति, नो प्रगल्भते, उत्प्रेक्षमाणः प्रत्येकं सातं, वर्णादिशी नारभते कंचन सर्व-  
लोक एव प्रमुखो विदिकप्रतीर्णो निर्विण्णचारी अरतः प्रजासु ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ युद्धार्हं ’—मित्यादि, इदमौदारिकशरीरं युद्धार्हं—परीपहादिभिः सह  
भावसंग्रामयोग्यं खलु=अवधारणे तस्य दुर्लभमित्यनेन सम्बन्धस्तेन दुर्लभं खलु=

दुष्पार इस संसाररूपी समुद्र में परिभ्रमण करनेवाले प्राणी के लिये  
यह सुसाधन अनेक भवों में भी दुर्लभ है—इस बात को सूत्रकार प्रदर्शित  
करते हैं—“ जुद्धारिहं ” इत्यादि ।

मनुष्यों के शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं । इस औदारिक  
शरीर से ही समस्त कर्मों का नाश होता है । यद्यपि औदा-  
रिक शरीर तिर्यञ्च और मनुष्यों का होता है तो भी तिर्यञ्च के औदारिक  
शरीर की यहां विवक्षा नहीं है । कर्मों के क्षय का कारण होने से मनुष्य  
के ही औदारिक शरीर की विवक्षा है । इसलिये सूत्रकार कहते हैं कि

दुष्पार आ संसाररूपी समुद्रमा परिभ्रमणु करवावाणा प्राणु भाटे आ  
सुसाधन अनेक लयेमा पणु दुर्लभ छे—आ वातने सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—  
“ जुद्धारिहं ” इत्यादि

मनुष्यना शरीरने औदारिक शरीर कडे छे आ औदारिक (मनुष्य शरीर)  
थी न समस्त कर्मोना नाश थाय छे. औदारिक शरीर तिर्यञ्च अने मनुष्योतु  
डोय छे, परन्तु तिर्यञ्चना औदारिक शरीरनी विवक्षा अर्द्धि नथी मनुष्यना न  
औदारिक शरीर कर्मोना क्षयतु कारणु डोवाथी जोनी विवक्षा छे सूत्रकार कडे

दुर्लभमेव—दुःखेनैव लभ्यम् कर्मयुद्धार्हमनुप्यशरीरलाभेन तत्र सर्वकर्मक्षयोऽवश्यं  
 क्षीघ्रमेव भावीति शिष्यकृतपूर्वमभस्योचरममिदित्तम् । कश्चन मरुदेवीवत् तेनैव  
 मवेन कर्मक्षयमासादयति, कश्चिच्च सुषाहुकुमारवत्सप्ताष्टमवैः, अपरं कश्चिच्च  
 देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्तनेति, तेन किमायातमित्याह—‘यद्ये’—त्यादि, यथा—यन

यह मनुष्य का औदारिक शरीर परिपक्वादिकों के साथ भाषयुद्ध के योग्य  
 है, यह शरीर ही उनसे युद्ध कर सकता है; अन्य वैक्रियादिक नहीं।  
 इस शरीर की प्राप्ति दुर्लभ है, यद्ये पुण्यानुषधी पुण्यसे ही यह  
 मनुष्य तन मिलता है। इसलिये शिष्य को आश्वासन देते हुए गुरु  
 महाराज कहते हैं कि “कर्मयुद्धार्हमनुप्यशरीरलाभेन तत्र सर्वकर्म  
 क्षयोऽवश्यं क्षीघ्रमेव भावीति” तुम घयराओ नहीं, यदि हमारे बचनानु-  
 सार तुम प्रवृत्तिशील रहोगे तो विश्वास रम्यो इस प्राप्त हुए शरीर से  
 तुम कर्मों का शीघ्र विनाश कर सकोगे, कारण कि कर्मों के माप युद्ध  
 करने योग्य यह औदारिक शरीर तुम्हें प्राप्त हुआ है। इस प्रकार पहिले  
 शिष्यद्वारा किये गये प्रश्न का यह उत्तररूप समाधान है। इस शरीरद्वारा  
 कोई २ जीव मरुदेवी जैसे उसी मवसे कर्मक्षय कर देते हैं। कोई २  
 सुषाहुकुमार की तरह सात आठ मव में, और कोई २ देशोन अर्ध  
 पुद्गलपरावर्तन कालमें कर्मों के क्षयक होते हैं। इसलिये जिस प्रकारसे

ઉ—મનુષ્યનુ આ ઔદારિક શરીર પરીપક્વાદિકાની સાથે મુદ્ધ કરવા યોગ્ય છે  
 આ શરીર જ એની સાથે મુદ્ધ કરી શકે છે અન્ય વૈક્રિયાદિક શરીર નહિ ।  
 આ શરીરની પ્રાપ્તિ દુર્લભ છે - મહા પુણ્યાનુબધથી જ આ મહામુખ્ય મનુષ્ય  
 કેહ પ્રાપ્ત થાય છે

આ માટે શિષ્યને આશ્વાસન આપતા ગુરુ મહારાજ કહે છે કે—“કર્મયુદ્ધાર્હ  
 મનુષ્યશરીરલાભેન તત્ર સર્વકર્મક્ષયોઽવશ્યં ક્ષીઘ્રમેવ ભાવીતિ” તમે ગભરાઓ નહિ  
 આશા વચન અનુસાર તમે પ્રવૃત્તિશીલ રહેશો તો વિશ્વાસ રાખો આ પ્રાપ્ત થયેલ  
 શરીરથી તમે કોઈને શીઘ્ર વિનાશ કરી શકશો, કારણ કે કોઈની સાથે મુદ્ધ  
 કરવાને માટે ઔદારિક શરીર તમાને પ્રાપ્ત થયેલ છે આ પ્રકારે પહેલાં શિષ્યદ્વારા  
 કરાએલા પ્રશ્ને આ ઉત્તરરૂપ સમાધાન છે આ શરીરદ્વારા કોઈ કોઈ છવ મરુદેવી  
 જેવા આ ભવમા જ કર્મક્ષય કરી દે છે કોઈ કોઈ ગુણાદુકુમારની માફક સાત  
 આઠ ભવમા કોઈ કોઈ દેશોન અર્ધપુદ્ગલપરવર્તનકાળમાં કોઈની યાજક મામ

प्रकारेण अत्र=अस्मिन् संसारे कुशलैः=भावकुशलैः=तीर्थकरणधरादिकैः परिज्ञा-  
विवेकः=परिज्ञायाः=ज्ञप्रत्याख्यानभेदेन द्विविधायाः विवेकः=द्रव्यतो भावतश्च  
विचारः भाषितः=रुथितः, तत्र द्रव्यतो विवेकः कलत्रपुत्रमित्राणां स्वशरीरस्य  
चासारतया चिन्तनम्, भावतो विवेको ममत्ववर्जनम्, तपःसंयमाभ्यां कर्मनिर्जरा भव-  
तीति विवेको जायते । परिज्ञाभेदमेवाह—यश्च पूर्वोत्थायी चारित्रान्तरायोदयात्  
पश्चान्निपाती स च्युतः=धर्मात् मनुष्यजन्मतो वा पतितः परिभ्रष्ट इत्यर्थः, हु=  
वितर्कः; बालः=धर्मपतनजनितनरकनिगोदादि भ्रमणप्रतीकारज्ञानकलाविकलः गर्भा-

इस संसारमें कुशल तीर्थङ्करादि द्वारा परिज्ञाविवेक कहा गया है । उस  
के अनुसार प्रवृत्ति करनेवाला मुनि उसी भव से या परंपरा रूप से कुछेक  
भवों में कर्मों का विनाश कर मुक्ति का लाभ प्राप्त करता है । परिज्ञा  
दो प्रकार की कही है । १ ज्ञपरिज्ञा २ प्रत्याख्यानपरिज्ञा । परिज्ञा का  
विवेक भी द्रव्य और भावसे दो प्रकारका है । स्त्री, पुत्र, मित्र और  
अपने शरीर का असारतारूप से चिन्तन करना द्रव्यविवेक है । ममत्व  
का त्याग करना यह भावविवेक है । अर्थात्—‘तप और संयम से कर्मोंकी  
निर्जरा होती है’ इस प्रकार का विवेक उत्पन्न होना भावविवेक है ।  
“चुए हु वाले गन्भाइसु रज्जइ” यहां सूत्रकार—परिज्ञा के भेदों को कहते  
हैं—जो पूर्वोत्थायी है, परन्तु चारित्रान्तराय के उदय से पश्चान्निपाती  
है वह च्युत है—धर्म से अथवा मनुष्यजन्मसे पतित है—भ्रष्ट है । “हु”  
वितर्क में हैं । धर्मसे पतित होनेपर मेरा भ्रमण नरकनिगोदादिक गतियों

छे आ माटे जे प्रकारथी आ ससारमा कुशल तीर्थ करदिद्वारा परिज्ञाविवेक  
कडेवाथेक छे ते अनुसार प्रवृत्ति करवावाणा मुनि ते ज लवमा अथवा  
परपरा रूपथी थोडाक लवोमा कर्मोना विनाश करी मुक्तिना लाभ भेजवे छे.  
परिज्ञा जे प्रकारनी कही छे १ ज्ञ-परिज्ञा, २ प्रत्याख्यान-परिज्ञा परिज्ञानो  
विवेक पणु द्रव्य अने भावथी जे प्रकारनो छे स्त्री, पुत्र, मित्र अने चोताना शरीरनी  
असारता रूपथी चिंतन करवु द्रव्य-विवेक छे ममत्वनो त्याग करवो भावविवेक छे  
तप अने संयमद्वारा कर्मोनी निर्जरा थाय छे—आ प्रकारनो विवेक उत्पन्न थयो भाव-  
विवेक छे ” “चुए हु वाले गन्भाइसु रज्जइ ” अहि सूत्रकार परिज्ञाना भेदो कडे छे  
जे पूर्वोत्थायी छे, परन्तु चारित्रना अंतरायथी पश्चान्निपाती छे, ते च्युत छे—धर्मथी  
अथवा मनुष्यजन्मथी पतित छे—भ्रष्ट छे “हु” शब्द वितर्कमा छे. धर्मथी  
पतित थवाथी माई भ्रमण नरक निगोदादिक गतिओमा थये, आ प्रकारनु

दिपु=गर्भादिजन्यदुःखविशेषपु, आदिपदेन जन्म-कुमार-यौवन-जरा-मरण-नरक  
निगोदादिरूपदुःखेषु, यथा-गर्भादिपु=वेदविकल्पपु ससारविकल्पपु वा रज्यते=  
आसक्तो भवति तत्रैव पच्यते दक्षत चेत्यर्थः। यथा 'रज्जइ' इत्यस्य 'रीयते'

में दोगा-इस प्रकार के तत्प्रतीकार स्वरूप ज्ञान से जो रूढ़ित है वह बाल  
है। बाल जीव गर्भादिकों (गर्भादिजन्यदुःखविशेषों) में आसक्त होता  
है। यहीं पर पचता रहता है यहीं पर तड़पता रहता है। "गर्भादि"  
के आदि पद से जन्म, कुमार, यौवन, जरा, मरण, नरक और निगो  
दादिक के दुःखों का ग्रहण हुआ है इन दुःखों में अथवा शरीरके विकल्पों  
या संसारविकल्पों में आसक्त बना है। यथा-"रज्जइ" इसकी छाया  
"रीयते" भी होती है। जिसका यह भाव है कि बालजीव गर्भादिकों  
में बारंबार जन्म मरण धारण करता रहता है।

भावार्थ—परिज्ञा के भेदों को प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते  
हैं कि जो चारित्र्य को छे कर भी पश्चात् चारित्र्यान्तराय के उदय से उससे  
पतित हो जाते हैं वे बालजीव हैं उनका छुटकारा इस संसार से नहीं होता  
—नरकनिगोदादिकके कष्टोंका और जन्म, धान्यादिक अवस्था अन्य अनक  
कष्टोंका उन्हें समय २ पर सामना करना पड़ता है। चारित्र्य जैसी सुन्दर

तत्प्रतीकार स्वरूप ज्ञानधी ने रूढ़ित छे ते आल छे आल एव अर्भादिक  
(गर्भादिजन्यदुःखविशेष) मा आसक्त होय छे अर्थात् त पते रहे छे  
गर्भादि ना आदि पदधी जन्म, कुमार, यौवन, वृद्धावस्था, मरण, नरक  
अने निगोदादिकना दुःखोनु अहंलु भयेत छे आ दुःखेषामा अथवा शरीरना  
विकल्पोमा अथवा संसारविकल्पोमाए वाग एव आसक्त अनी रहे  
छे अथवा—रज्जइ ज्येनी छाया 'रीयते' पज्ज अने छे नेने आ अथ छे  
के-वाग-एव अर्भादिकमा बार बार जन्म मरणना देश करतो रहे छे

भावार्थः—परिज्ञाना भेदने प्रकट कस्या भागे सूत्रकार कहे छे के—चारित्र्य  
अहंलु कस्या छत्त पज्ज चारित्र्यान्तरायना उदयधी ने पतित अनी अथ छे जे  
आलएव छे ज्येने छुटकारे आ अर्थात् त पते नधी नरक निगोदादिकना  
तेमअ जन्म, वृद्धावस्था आदिना अनेक दुःखोने ज्येने अथय समय पर  
सामने करवे पटे ११ चारित्र्य नेनी सुंदर वस्तु अथवा अथवा छत्त ने तेने

इतिच्छाया; तेन गर्भादिषु रीयते=गच्छति । कुत्रेति कथितमिति प्रश्ने गुरुराह—  
 'अस्मि' नित्यादि, अस्मिन्=आर्हतप्रवचने, एतत्=पूर्वकथित वक्ष्यमाणं च प्रोच्यते  
 =प्रकर्षेण कथ्यते तीर्थकरणधरैः, वक्ष्यमाणमाह—'रूपे'—इत्यादि, रूपे=रूप-  
 वद्विषये, वा-ग्रहणात् शब्दादौ गृह्यः, 'क्षण' क्षणनं=क्षणः=हिंसा तत्र, वा-शब्दा-  
 दवृत्तचौर्यादौ, प्रवृत्तिं विदधाति । अत्र रूपग्रहणेन विषयेषु रूपस्य प्रधानतया, एव-  
 मास्रवेषु हिंसायाः प्राधान्येन च तयोर्ग्रहणादन्येषामपि शब्दादीनामास्रवाणां च ग्रहणं  
 भवति । रूपवद्विषयलाभाय गर्मात्परिभ्रष्टो गर्भादौ रज्यते । इदमत्र प्रोन्यते इत्य-  
 नेन सम्बन्धः, यश्चैतद्विपरीताचारधारी स कीदृशो भवतीत्याह—'स' इत्यादि,

वस्तु हाथमें आ जाने पर जो उसे खो देता है वह मनुष्य जन्म के लाभसे  
 वंचित हो जाना है और उसे तिर्यश्चादि गतिमें परिभ्रमण करना पडता है ।

इसलिये इस आर्हत प्रवचनमें जीवों को समझाने के लिये ही यह  
 पूर्वोक्त कथन तथा आगे कहा जानेवाला विषय प्रतिपादित किया है ।  
 वक्ष्यमाण विषयमें सूत्रकार यही कह रहे हैं कि भगवान् तीर्थकर गण-  
 धरादिक का यह आदेश है कि जो मनुष्य या मुनि रूपयुक्त विषयों में  
 और शब्दादिक पदार्थों में गृह्य बना हुआ है वह, हिंसा में और शेष  
 झूठ, चोरी आदिकों में प्रवृत्तिशील है । यहां विषयों में रूप की प्रधानता  
 होने से रूप के ग्रहणसे शब्दादिकों का, आस्रवों में हिंसा की प्रधानता  
 होने से उसके ग्रहण से अन्य झूठ, चोरी आदि अन्य आस्रवों  
 का ग्रहण हो जाता है इस प्रकार "अस्मिञ्चैतत् प्रोच्यते" यहां तक  
 इन पदों का संबंध है । जो पूर्वोक्त से विपरीत अपनी प्रवृत्ति रखता है

ખોષ ઁસે છે તે મનુષ્ય જન્મના લાભથી વચિત જ બની બચ છે. અને તેણે  
 તિર્યચ આદિ ગતિમા પરિભ્રમણ કરવુ પડે છે

આ માટે આ આર્હત પ્રવચનમા છુવોને સમબલવા માટે આ પૂર્વોક્ત  
 કથન અને આગળ કહેવામા આવનાર વિષય પ્રતિપાદિત કર્યો છે. વક્ષ્યમાણ  
 વિષયમા સૂત્રકાર એમ કહે છે કે-ભગવાન તીર્થ કર ગણુધરાદિકનો આ આદેશ  
 છે કે, જે મનુષ્ય અથવા મુનિ રૂપયુક્ત વિષયોમા અને શબ્દાદિક પદાર્થોમા  
 ડુબ્બ બનેલ છે તે, હિંસા તેમજ ચોરી, જુઠ આદિમા પ્રવૃત્તિશીલ છે આદિ  
 વિષયોમા રૂપની પ્રધાનતા હોવાથી રૂપના ગ્રહણથી શબ્દાદિકોના, આસ્રવોમા  
 હિંસાની પ્રધાનતા હોવાથી હિંસાના ગ્રહણથી બીબ ચોરી જુઠ આદિ  
 અન્ય આસ્રવોનુ ગ્રહણ થઈ બચ છે આ પ્રકારે "અસ્મિન્ચૈતત્ પ્રોચ્યતે" આદિ  
 સુધી આ પદોના સબધ છે જે પૂર્વોક્તથી વિપરીત પોતાની પ્રવૃત્તિ રાખે છે



स=गर्भादिमासिनिदानविषयकपायामिष्वद्गज्ञानवान् पर्मादपत्ति आसन्ननिवृत्तः,  
 हुखधारणे, तेन स एव नान्य मुनि=सयत्, सन्नद्धपथः=अभ्यस्तरत्नप्रयो  
 मुनिर्भवेत्, अपि च अन्यथा मिश्रपारेण लोकां=विषयकपायमध्यमध्यासीन हिंसा  
 दिपरायणमसयत्लोकम्, उत्प्रेक्षमाण =बुध्यमान, तत किमित्याह-‘इती’-स्यादि,

यह कैसा होता है? इसके समाधानार्थ सूत्रकार “स ह्य सविद्वपयो  
 मुनि’ इस शेषाशका कथन करते हैं-गर्भादिककी प्राप्ति के कारणभूत  
 जो विषयकपाय हैं उनमें जो अनभिलाषी है, जो यह समझ चुका है  
 इस जीवका गर्भादिक में पतन विषयकपायों के सेवन से ही होता है  
 यह धर्म से अपत्ति होता हुआ कर्मास्त्रों से जुदा रहता है। यद्वा “हु”  
 अवधारण अर्थ में है। इससे यह अभिप्राय निकलता है कि जो विषया  
 दिकसे निवृत्त है यही धर्म से अपत्ति और आस्त्रों से रहित है, अन्य  
 नहीं; यही वास्तविक मुनि है, अन्य नहीं; यही सविद्वपथ है—  
 अभ्यस्त रत्नत्रयवाला है और अभ्यस्त रत्नत्रयवाला ही सत्त्वामुनि हो  
 सकता है, अन्य नहीं; यही मुनिरत्न असंयत लोकको विषयकपायोंके  
 मध्यमें पड़ा हुआ जानकर तथा हिंसादिक पापों से अनिवृत्त समझ कर  
 उससे निवृत्त हो मन, बचन और काय से प्राणियों की हिंसा से निवृत्त  
 हो जाता है, दूसरोंको भी इस कार्य में प्रवृत्त नहीं करता है और न  
 इस कार्य में लगे हुए व्यक्तियों की वह अनुमोदना ही करता है; क्यों

ये देवे होय छे ? आना समाधानभा सूत्रकार ‘से ह्य सविद्वपयो मुणी” आ  
 शेषाशनु कथन करतां कहे छे के - गर्भादिकनी प्राप्तिना कारणरूप के विषय  
 कपाय छे जेना के अस्त्रवाप वगरना जनी आ समस्त सुकेल छे के आ  
 लवनु विषयादिकना सेवनधी न गर्भादिकभा पतन यतुं स्के छे जने के धर्मधी  
 पतित न जनता कर्मास्त्रोधी बुझे स्के छे. अहिं हु” शब्द अवधारण  
 अर्थभा छे आधी जे अभिप्राय निकसे छे के के विषयादिकधी निवृत्त छे जे  
 धर्मधी अपत्ति जने आस्त्रोधी रहित छे जीव नहि. जे न वास्तविक मुनि  
 छे जीव नहि. जे / साया पथ उपर छे अस्त्ररत्न-रत्नत्रयवाणा छे अस्त्ररत्न-  
 रत्नत्रयवाणा न साया मुनि जनी शके छे, जीव नहि. आया मुनिरत्न  
 असयत होकेने विषयकपायोना मध्यभा पडेला जेधु जने हिंसादिक पापोधी  
 अनिवृत्त जेधुने जेनाधी निवृत्त धर्म मन, वचन जने कथाधी प्राणीजोनी  
 हिंसाधी निवृत्त जनी बन्ध छे जने जीवजोने आवा कर्माधी शक छे केग के जे जे

इति=पूर्वोक्तकारणैः यद् वद्धं कर्म=ज्ञानावरणीयादिकं तत्कारणं च सावधव्यापाररूपं सर्वगः=सर्वप्रकारेण परिज्ञाय=द्विविधपरिज्ञया ज्ञात्वा परिहृत्य च सः=कर्मपरिज्ञायी न हिनस्ति=मनोवाक्काययोगैः प्राणिनो न हन्ति, उपलक्षणान्न घातयति, नानुमोदयतीत्यर्थोऽपि। अपि च किं करोतीत्याह-संयमयति-पचनपाचनादिनवकोटिभ्यः स्वात्मानं निवर्तयति। यद्वा-संयमयति=सप्तदशविधं संयमं करोति, किन्तु नो प्रगल्भते=न धाष्ट्यं विदधाति-‘ किं संयमक्रियया प्रतिलेखनादिक्रियया च’ इत्यादिरूपमौद्धत्यं नाचरति। उपलक्षणतया स न क्रुध्यति, नापि जातिकुलादिमानमावहति, किं वह जानता है कि हिंसादिक पापों से अथवा पूर्वोक्त कारणों से जीवों के ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का बंध होता है, इसलिये ज्ञानावरणीयादिक कर्मों को तथा उनके कारणरूप सावध व्यापारों को वह भली प्रकार ज्ञ-परिज्ञासे जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञासे उनका त्याग करता है। इस प्रकार वह कर्मपरिज्ञायी मुनि मन, वचन और काय से तथा कृत कारित और अनुमोदनसे उन सबका परित्यागी होता है। तथा-पचनपाचनादिकसे अपने आपको नवकोटिसे विशुद्ध रखता है, अथवा १७ प्रकार के संयम का आचरण करता है, इतने पर भी उसके अन्तःकरणमें मानकी मात्रा भी नहीं आती है, अथवा-संयम क्रिया या प्रतिलेखनादि क्रिया के आचरण से क्या हो सकता है ? इस प्रकार की वह धृष्टता नहीं करता है। उपलक्षण से यह यह बात भी जानी जाती है कि वह मुनि इतना सब कुछ करता हुआ भी न कभी क्रोध करता है और न कुलादिक का गर्व ही करता है, न कहीं लुभाता है और न किसी की

छे डे-हिंसादिक पापेथी अथवा पूर्वोक्त कारणेथी लोभेने ज्ञानावरणीयादिक कर्मोने अथ याय छे आ माटे ज्ञानावरणीयादिक कर्मोने, तथा येना कारणरूप सावध व्यापारोने ये सारी रीते ज्ञ-परिज्ञाथी लोभो प्रत्याख्यान-परिज्ञाथी येने त्याग करे छे आ प्रकारे ये कर्मपरिज्ञाथी मुनि मन, वचन अने कायाथी तेमज कृत, कारित अने अनुमोदनथी आ अधानो त्याग करनार डोय छे, तेमज पचन पाचनादिकथी पोतानी लतने नव कोटिथी विशुद्ध राणे छे अथवा १७ सत्तर प्रकारना संयमनु आचरण करे छे आभ छता येना हिलमा मानेना लेशमात्र मोह लगतो नथी, अथवा संयमक्रिया अथवा प्रतिलेखनादि क्रियाना आचरणथी शु थई शके छे ? आवी धृष्टता पणु तेना मनमा लगती नथी उपलक्षणथी ये वात पणु मानवामा आवी छे डे ये मुनि आटेलु करवा छता पणु न तो क्यारे क्रोध करे छे डे न तो लति अने दुण आदिनी गर्व करे छे न तो कयाय

न लुभ्यति, न प्रतारणां करोति, इत्याद्यपि क्षमम्, असंयमपरायणाऽकर्तव्याचरणे मनागपि न प्रपत इत्याद्ययम् । मुनि किमवधार्यं प्रगल्भादिर्षं न विदधीतेत्याह— 'उत्प्रेक्षमाण' इत्यादि, प्रत्येकम्=एकैकस्य प्राणिन सातं=सुखमसातं च उद्वे-

प्रनारणा (ठगना) ही करता है। परन्तु जो अमंयमसेवी है—असंयम में परायण है, वे इन अकर्तव्यों के करने में जरा भी मकोष नहीं करते हैं। मुनिजन घृष्टता आदि जो नहीं करते हैं उसका कारण यह है कि वे विचारते हैं कि इस समारमें प्रत्येक प्राणी सुखामिलापी है।

भाषार्थ — उद्वेगना क करनेसे जीवों को संक्लेश होता है, संक्लेश दुःख का एक प्रकार है। मुनिजन ऐसा कोई सा भी व्यवहार नहीं कर सकते हैं जो अन्य जीवों को दुःखकारक हो। उनकी सदा यही धारणा होती है कि दुनिया के जितने भी जीव हैं वे सप मेर तुल्य सुखामिलापी हैं। जिस प्रकार अप्रतिकूल आचरण से मुझे कष्ट का अनुभव होता है उसी प्रकार से मेरे भी अनिष्ट आचरण से इन्हें कष्ट का अनुभव होगा, अतः वह समस्त जीवों में आत्मोपमता (आत्मतुल्यता) मानता है। इसलिये वह किसी भी प्राणी का स्वप्न में भी घात करने का विचार तक नहीं करता है। जो अन्य जीवों के घात करने तक के विचार को निन्दित समझता है वह मत्वा—दूसरों के लिये उम अनिष्ट

लोभाय छे अथवा न तो कोर्छने छे छे परतु ने असंयमसेवां छे—असंयममा पराधत्तु छे तेवे आवा अकर्तव्यां करवाभा नरा पक्ष सकोय करेते नधी. मुनिजन घृष्टता आदि नधी करवा तेनु करवा छे छे छे तेवे। वे विवा रता क्षय छे के आ ससारना प्रत्येक प्राणी सुखामिलापी छे

भाषार्थ:—उद्वेगना करवाधी एवोने उद्वेगना थाय छे संक्लेश के दुःखो अक प्रकार छे मुनिजन आवा कोर्छ पक्ष व्यवहार करी शकता नधी के ने अन्य एवोने दुःखकारक होय। जेनां सदा केके न पादषु। दहे छे के दुनियाना नेवा पक्ष एव छे के वधा भात समान सुखामिलापी छे ने प्रकारे अप्रतिकूल आचरणो मने दुःख। अनुभव थाय छे आ न प्रकारे भास अनिष्ट आचरणधी जेभन पक्ष क्व पक्षानु जेवे त समस्त एवोभा आत्मोपमता (आत्मतुल्यता) मानता होय छे आ आत्मतुल्यता को पक्ष प्राणीना स्वप्नमा पक्ष घात करवाने विचार उरभाव्य कर प नधी ने अन्य एवोने घात करवाना विचारने निन्दित सम है के आवा जीवोना अनिष्ट किया करवाभा

क्रिया करनेमें प्रवृत्त होने की प्रेरणा या उपदेश भी कैसे दे सकता है। जब यह बात है तो फिर जीवोंका घात करनेवाले प्राणियोंके कृत्यों की वह अनुमोदना भी नहीं कर सकता है। इसीलिये वह हिंसादिक पापोंसे नवकोटिसे निवृत्त होता है। यह बात “उत्प्रेक्षमाणः प्रत्येकं सातम्” इस सूत्रांगसे ध्वनित होती है। अथवा इसका यह भी आशय निकलता है कि मुनि प्रत्येक संसारी जीवोंके सुख और दुःख जानते हैं, अर्थात् जिन जीवोंके जितना सुख और दुःख उदयमें होगा—उतना उन्हें भोगना ही पड़ेगा, उनके उसमें न तो कोई कमी करनेवाला है और न कोई वृद्धि करनेवाला है—इस प्रकार से वे समस्त जीवोंके सुख और दुःखके जाना है, तो भी वे ऐसा समझ कर अपनी प्रवृत्ति को स्वच्छन्द नहीं बनाते। वे ऐसा विचार नहीं करते हैं कि मेरी अच्छी प्रवृत्तिसे किसी भी जीवके सुख दुःखमें परिवर्तन तो हो नहीं सकता, फिर क्या जरूरत है कि मैं अपनी प्रवृत्ति को संयमित रखूं, सुख दुःखका भोग प्रत्येक जीवोंके कर्माधीन है, मैं अपनी शुभ प्रवृत्तिसे किसी भी जीवके कर्मोदय को थोड़े ही टाल सकता हूं। इस प्रकारका विचार करना मुनिजनके लिये योग्य नहीं है ऐसा वे जानते हैं। यद्यपि कोई भी जीव किसी भी जीवके कर्मोदय को टाल नहीं सकता है। जिस

प्रवृत्त थवानी प्रेरणा डे उपदेश पणु डध रीते दध शके ? न्त्यारे आवी वात छे तो पछी एवोना घात डरवावाणा प्राणीओना दृथोनी ते अनुमोदना पणु डरी शकता नथी, अेटला माटे तेओा डिआदिड पापोधी नवकोटीधी निवृत्त थाय छे आ वात “उत्प्रेक्षमाण प्रत्येकं सातम्” आ सूत्राशथी ध्वनित थाय छे, अथवा ओनो ओ पणु अर्थ निकणे छे डे मुनि प्रत्येक संसारी एवोना सुण अने दुःख न्णु छे अर्थात् ने एवोना नेटला सुण अने दुःखनो उदय आवशे अेटलु ओणे भोगवपु न पडशे तेने न डेध ओधु डरी शके छे न डेध वधारी शके छे आ प्रकारथी तेओा समस्त एवोना सुण अने दुःखना न्णुडार डोय छे, तो पणु तेओो ओ नमओने पीतानी प्रवृत्तिने स्वच्छंदी बनवता नथी तेओो ओवो पणु विचार डरता नथी डे भारी सारी प्रवृत्तिथी डेध पणु एवना सुण दुःखसा परिवर्तन थध शकतुनथी, तो पछी दुःख मारी प्रवृत्तिने आवा डामोमा शु डरवा लगाडु ? सुण दुःखनु भोगवपु ओ प्रत्येक एवोने कर्माधीन छे दुःख मारी सारी प्रवृत्तिथी डेध पणु एवना कर्मोदय थोडो न टाणी शकु छु ? आ प्रकारनो विचार डरवो मुनिजन माटे योग्य नथी तेवु ते न्णु छे ने डे डेध पणु एव डेध पणु एवना कर्मोदयने टाणी शकतो नथी ने एवनु ने

સમાણઃ=જાનાન , પ્રગલ્ભાદિકં ન ક્વિદધીત । અથ આત્મૌપમ્યેન પરં ન દન્યામ  
 ઘાતયન્નાનુમોદયેદિત્યર્થોઽપિ વ્યક્તિત । જ્વલિષ્ઠાન્યસ્ય મુલ્લદુઃસે મન્યસ્વાપિ  
 મયત , યથા-પુત્રકલ્પાદિમુલ્લદુ સ્વામ્યાં પિતૃ-પત્યાદેઃ મુલ્લદુઃસે જાયેતે, પરન્તુ  
 તત્ર પુત્રકલ્પયોઃ સ્ત્રીરે માનસે અપિ મુલ્લદુઃસે, અપગસ્ય વ માનસે ઇવ મુલ્લદુઃસે  
 ઇતિ વિવેકઃ ।

જીવ કે જો હોનહાર હૈ યહ હે કર હી રહેગા, હમને ધોડા સા  
 મી સદેહ નહીં, હમારે અનેકે પ્રતિ શુભ કરને સે અનેકા શુભ  
 નહીં હો સકતા હૈ, યહ નિશ્ચિત્ત મિદ્ધાન્ત હૈ । તો મી મુનિજન  
 સવ જીવો પ્રતિ શુભ પ્રવૃત્તિ હી કરતે હૈં, કિસી મી જીવમાત્રક પ્રતિ  
 કષ્ટકારક પ્રવૃત્તિ નહીં કરતે હૈં । ઉમકા કારણ યહી હૈ કિ યે સમસ્ત  
 જીવો કો અપને સમાન વેચ્ચતે હૈં, જાનતે હૈં । યે યહ અચ્છી તરહસે અનુ  
 મય કરતે હૈં કિ જિમ પ્રકાર હમેં દુસ્તરોં કી અશુભ પ્રવૃત્તિ સે કષ્ટ  
 હોતા હૈં ઉસી પ્રકાર હમારી અશુભ પ્રવૃત્તિ સે મી દુસ્તરે જીવો કો કષ્ટ  
 હોગા । યસ યહી સોચ સમજ્ઞ કર યે અપને આચાર વિચાર કો પથિત્ર  
 ઓર દુસ્તરોં કો હિતકારી હો ઁસા હી કરતે હૈં । યહ માના કિ યે દુસ્તરોં  
 કે કર્મોં કો ટાલ નહીં સકતે, પરન્તુ હતના તો કર સકતે હૈં કિ અનેકે  
 અશુભ મેં નિમિત્ત ન યન કર અશુભ કર્મોં પાર્જન સે યથ સકતે હૈં ।  
 હસીલિયે મુનિ સમસ્ત જીવો કો અપને સમાન જાન કર અનેકી ન સ્વયં  
 હિંસા કરતે હૈં, ન દુસ્તરોં સે કરાતે હૈં ઓર ન હિંસા કરનેવાલે કી  
 અનુમોદના હી કરતે હૈં ।

ધનાર હાય છે તે ધર્મને જ રહે છે, આમા ધોડા પણ સન્દેહ નથી. માસ બેના  
 પ્રત્યે શુભ કરવાના પ્રયાસથી પણ બેનુ શુભ ધર્મ શકવાનુ નથી આ નિશ્ચિત  
 ત્રિદાત છે તેા પણ મુનિજન આ બધા છવો તરહ શુભ પ્રવૃત્તિ જ કરે છે  
 કેઈ પણ છવમાન તરહ કષ્ટકારક પ્રવૃત્તિ કરવા નથી. બેનુ કારણ બે છે કે  
 તેઓ સમસ્ત છવોને પોતાની માફક જ ગુણે છે-બાલે છે તેઓ ત્રારી રીતે  
 અનુભવ કરે છે કે જે પ્રકારે બીજાઓની અશુભ પ્રવૃત્તિથી અને દુખ યથ છે  
 બે જ રીતે મારી અશુભ પ્રવૃત્તિથી બીજાને દુખ ધરે, આ સમજ વિચારી  
 તેઓ પોતાના અધ્યાર-વિચાર પવિત્ર તથા બીજાઓને ક્ષિતકારી અને તેમ જ  
 કરે છે બે માને છે કે તેઓ બીજાના કર્મોને ત્રાગી શકવા નથી પરંતુ બેટકું  
 તેા કરી શકે છે કે તેના અશુભ કર્મોં પાર્જનથી બચી શકે છે આ મા' મુનિ  
 સમસ્ત છવોને પાતાના સમાન બાબી બેની ન પાતે હિંસા કરે છે ન બીજાથી  
 કસવે છે ક ન તો દિસા કરવાવાગાને અનુમોદન આપે છે

क्वचिच्चान्यम्य मुग्धदुःखे परेण तद्विपरीतरूपेणानुभूयेते, यथा गन्धुप्रभृतेः सुखेनाऽपरो दुःखं, दुःखेन च मुग्धमनुभवति, तत्रापि चैकम्य शारीरे मानसे अपि, परस्य मानसे एवेति हृदयम् ।

मध्यस्थभावापन्नस्य परप्राणिसुखेन सुखं दुःखेन च दुःखं जायते “समः शत्रौ च मित्रे च” इत्यत्रोक्तत्वादिति तच्चम्, तेन किं प्रकृते ? इत्याह—  
‘वर्णादेशी’—त्यादि, सर्वलोके=ऊर्ध्वादिलोके वर्णादेशी=वर्णयते=प्रशस्यते येन स वर्णः=साधुकारस्तमादेष्टुं शीलं यस्य स वर्णादेशी=यशःकीर्त्यभिलाषी, यद्वा

संसार जीवों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे अपने स्वजनको इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होने में अपने को सुखी तथा अप्राप्ति होने में दुःखी मानते हैं; जैसे पुत्र कलत्रादिकों के शारीरिक एवं मानसिक सुखदुःख में सुखी दुःखी हुआ करते हैं। कहीं इससे विपरीत भी प्रवृत्ति देखी जाती है; जैसे—शत्रुके सुखी होने पर किसी को मानसिक कष्ट होता है और उसके दुःखित होने से उसे मानसिक सुख होता है। परन्तु जो माध्यस्थ्यवृत्तिसंपन्न होते हैं उन्हें समस्त प्राणियोंको चाहे वह अपना हित हो चाहे वह शत्रु हो उसे—सुखी देख कर सुख होता है और उसके दुःख से उन्हें दुःख होता है, उनमें पक्षपात की वृत्ति नहीं होती है। क्यों कि “समः शत्रौ च मित्रे च” समभावी सदा शत्रु और मित्रमें समभाव रखते हैं। इससे प्रस्तुत प्रकरण में यह बान आई कि मुनि-जन जो सदा समभावी होते हैं वे समस्त लोक—उर्ध्व, मध्य और अधःलोक में वर्णादेशी होते हैं। यश कीर्त्ति, स्वपर—कल्याण तथा

संसार जीवों में यह प्रवृत्ति देखाई आवे छे डे तेन्ना पोताना स्वजनने इष्ट पदार्थोंनी प्राप्ति थवामा पोताने सुखी तथा अप्राप्ति थवामा दुःखी माने छे जेभ डे पुत्र कलत्रादिना शारीरिक अने मानसिक सुख दुःखमा सुखी दुःखी अन्या करे छे डेई स्थणे आनाथी विपरीत प्रवृत्ति पणु देणवामा आवे छे, जेभ डे शत्रुना सुखी थवाथी डेईने मानसिक कष्ट थाय छे अने तेना दुःखी थवाथी तेने मानसिक सुख थाय छे परतु जे माध्यस्थ्यवृत्तिसंपन्न छे तेने समस्त प्राणीओने—लवे ते पोताने शत्रु डोय डे डितेच्छु डोय अने—सुखी देणी सुख थाय छे अने तेना दुःखी दुःख थाय छे, तेनामा पक्षपातनी दृष्टि डोती नथी, डारणु डे “सम शत्रौ च मित्रे च”—समभावी सदा शत्रु अने मित्रमा समभाव राणे छे आथी चालु प्रकरणमा आ वात आवी डे मुनिजन महा सम-भावी डोय छे ते समस्त लोक—उर्ध्व, मध्य अने अध लोकमा वर्णादेशी डोय छे यश,

वर्णः=धूमं तदादशी=स्वपरकल्पयाणाभिजापी, अथवा-‘वर्णादेशी’ वर्ण शरीरका  
 न्ति’, तदाशो=तदमिकाही, अपि च स ‘एकप्रमुख’ एकस्मिन् मोक्ष समये  
 वा प्रगते मुखं यस्य वा एकप्रमुखः=माद्यु तत्कारणे च निवेशितान्तःकरण, एव  
 विदिकप्रतीर्णः=मोक्ष-सत्साधनाभिमुखी प्रवृत्तिर्दिक्, तद्विपरीता विदिक सावधाकरण  
 रूपा संसाराभिमुखी प्रवृत्ति सा प्रतीर्ण प्र=प्रकर्षेण तीर्ण =रागद्वेषमूलकाग्राह-

शरीरकान्तिकी इच्छा रम्यनेवाले को वर्णादेशी कहते हैं। अर्थात्-समस्त  
 जीवों को अपने समान समझने की कामनायाला वर्णादेशी है। मुनिजन  
 समस्त जीवों को आत्मसदृश जानते हैं। तथा मुनिजन-‘एगप्यमुद्दे’  
 एकप्रमुख होते हैं, एक कुशल मोक्षमें या मोक्षके कारण समयमें उनका  
 अन्तःकरण लगा हुआ रहता है। ये विदिकप्रतीर्ण होते हैं, मोक्ष अथवा  
 उनके साधनों की ओर झुकी हुई प्रवृत्तिका नाम दिक् है उससे विपरीत  
 प्रवृत्ति विदिक है, सावध आचरणरूप संसाराभिमुखी विदिकप्रवृत्ति  
 को जिन्होंने अच्छी तरहसे पार कर दिया है, छोड़ दिया है, रागद्वेष  
 जिसके मूल हैं ऐसे अगाध संसाररूपी पारावारसे जो पार हो चुके हैं  
 ये विदिकप्रतीर्ण हैं। बाह्यी पदार्थ पुत्र-कलत्रादिकों में एवं आभ्यन्तर  
 में क्रोधादिकों में उन्हें सदा निर्बेद (वैराग्य) होना है। मुनिजन ऐसा ही  
 अपना आचार विचार रम्यते हैं कि जिससे संसारावस्था के स्त्रीपुत्रा  
 दिकों में ममता न हो सके तथा क्रोधादिक के कारण उपस्थित होने पर

क्षिति स्वपर कल्पाय तथा शरीर कान्तिकी इच्छा स्रजवावाजाने वर्णादेशी कहे थे,  
 अर्थात्-समस्त जीवोंने पोताना समान समझवानी कामनायाला वर्णादेशी  
 थे मुनिजन समस्त जीवोंने ओक आत्माइय माने थे जने मुनिजन  
 “एगप्यमुद्दे” ओकप्रमुख होय थे ओक डेवण मोक्षमा अक्षवा मोक्षना कारण  
 समयमा तेनुं जत करण वाजु रहे थे तेओ विदिकप्रतीकु होय थे. मोक्ष  
 अथवा तेना साधनेणी तरह इणेली प्रवृत्तिनुं नाम दिक् थे जेनाथी विपरीत  
 प्रवृत्ति विदिक थे सावध आचरणरूप संसाराभिमुखी विदिकप्रवृत्तिने जेने  
 ललीबाति पाते पार करैय थे-छोडी दीपी थे रागद्वेष जेना भूण थे जेवा  
 अगाध संसाररूपी सागरने जेओ तरी चूक्या थे तेओ विदिकप्रतीकुं थे  
 आक्ष पदार्थ पुत्र कलत्रादिकमा तेमज आभ्यन्तरमा क्रोधादिकमा जेभने  
 सदा वैराग्य साथ थे मुनिजन जेवा ज पोताना आचार विचार सजे थे के  
 जेनाथी संसार अवस्थाना स्त्री पुत्रादिकमा ममता न यथंशके तेम ज क्रोधादिकना

संसारपारावारतीर्णः, एव 'निर्विण्णाचारी' निर्विण्णः निर्वेदो वाह्ये पुत्रक-  
लत्रादौ आभ्यन्तरे क्रोधादौ च तिरस्कारः, परित्याग इत्यर्थः, तद्वान्=निर्विण्णः=  
वाह्याभ्यन्तराभिष्वङ्गरहितः, तस्य चारः=आचरणमनुष्ठानमिति यावत्, सोऽस्यास्तीति  
निर्विण्णाचारी=तीर्थंकरणधराद्युपदिष्टमार्गानुष्ठायी, किञ्च 'प्रजासु अरतः'  
प्रजायन्त इति प्रजाः=जीवास्तासु अरतः=अनासक्तः समारम्भनिवृत्त इत्यर्थः, तत्र  
ममत्वविवर्जितो वा, यद्वा-प्रकर्षेण जनयन्ति पुत्रादिकं यास्ताः प्रजा योषितस्तासु  
अरतः अनासक्तः, स्त्रियो हि पुरुषं स्वासक्तं नानाप्रकारेण नर्तयन्ति, उक्तञ्च—

भी उन्हें क्रोधी न होना पड़े । इस प्रकार वाह्य और अन्तरंग परिग्रहसे  
रहित आचरण इनका होता है, इसीका नाम निर्विण्णाचारी है । अर्थात्  
तीर्थङ्कर एवं गणधरादिकोंने जिस प्रकार से मुनिमार्गका उपदेश दिया  
है उसीके अनुसार वे उस मार्गके अनुष्ठायक होते हैं। "प्रजासु अरतः"  
प्रजा शब्दका अर्थ जो पैदा होते हैं ऐसे जीव है । उनमें अरत-अनासक्त  
मुनिजन होते हैं, ऐसा समारंभ वे नहीं करते कि जिससे जीवोंका  
अकल्याण, या घातादिक हों । जीवों में ममत्वरहित होना भी प्रजामें  
अरत होना है । अथवा पुत्रादिकों को उत्पन्न करनेवाली स्त्रियोंका नाम  
भी प्रजा है । मुनिजन स्त्रीवर्ग में आसक्तिसे रिक्त होते हैं, कारण कि  
वे जानते हैं कि स्त्रियां अपने में आसक्त पुरुष को अनेक प्रकार के नाच  
नचाती हैं, कहा भी है—

कारण उपस्थित यथा पशु तेने क्रोधी न थवु पडे आ प्रकारे आह्य अने  
अन्तरंग परिग्रहथी रहित आचरण तेमनु होय छे आनु न नाम निर्विण्णाचारी  
छे अर्थात्—तीर्थंकर अने गणधरादिकोये वे प्रकारथी मुनिमार्गने उपदेश  
आप्यो छे ये अनुसार ते मार्ग पर चलनारा तेओ होय छे "प्रजासु अरत"  
प्रजा शब्दने अर्थ वे पैदा थाय छे येवां वे एव ते छे येमा अरत-अनासक्त  
मुनिजन होय छे येवो समारंभ ये नथी कृता के जेनाथी एवोनु अकल्याण  
थाय अथवा घात आदि होय एवोमा ममत्वगहित गहेवुं ये पशु प्रजमा अरत  
थवु छे अथवा पुत्रादिकोने उत्पन्न करवावाणी स्त्रीओनु नाम पशु प्रजा छे  
मुनिजन स्त्रीवर्गनी आसक्तिथी विरक्त होय छे कारण के तेओ नाल्यता होय  
छे के स्त्रीओ पोतानामा आसक्त थनार पुइधने अनेक प्रकारना नाच नचावे छे  
कहु पशु छे



“ एता इसन्ति च रुदन्ति च विश्वेतो-विश्वासयन्ति च नरं न च विश्वसन्ति ।  
 तस्माभरण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यं श्मशानघटिका इष वर्जनीया ॥ १ ॥  
 आनन्दयन्ति रमयन्ति विदम्बयन्ति, निर्मत्स्यन्ति रमयन्ति विपादयन्ति ।  
 एताः प्रविश्य सद्यं हृदयं नराणां, किं नाम धामनयना न समाचरन्ति ” ॥२॥इति ।

“ एता हસન્તિ ચ રુદન્તિ ચ વિશ્વેતો,  
 વિશ્વાસયન્તિ ચ નરં ન ચ વિશ્વસન્તિ ।  
 તસ્માભરણ કુલ-શીલસમન્વિતેન,  
 નાર્યં સ્મશાનઘટિકા ઇષ વર્જનીયા ॥ ૧ ॥  
 આનન્દયન્તિ મદયન્તિ વિદમ્બયન્તિ,  
 નિર્મત્સયન્તિ રમયન્તિ વિપાદયન્તિ ।  
 એતાઃ પ્રવિશ્ય મદયં હૃદય નરાણાં,  
 કિં નામ ધામનયના ન સમાચરન્તિ ” ॥ ૨ ॥

ये घनके लिये हंसती और रोती रहती हैं । दूसरों को विश्वास करा देती हैं पर स्वयं दूसरों का विश्वास नहीं करती । इसलिये कुलीन पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे इनका श्मशानके घटके समान परिहार कर दें ।

ये पुरुषों के विश्वमें प्रवेश कर उसे कमी आनन्दित करती है तो कमी उसे मशोन्मत्स यना देती हैं । कमी उसकी नाना प्रकारसे विदम्बना करती हैं, तो कमी विश्वारे का अपमान करती हैं । कमी उससे रमती हैं तो कमी कमी उसे विपादयुक्त कर देती हैं । ऐसी कौनसी क्रियाएँ यथनी हैं जो ये न करती हों ।

“ एता इसन्ति च रुदन्ति च विश्वेतो, विश्वासयन्ति च नरं न च विश्वसन्ति ।  
 तस्माभरण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यं श्मशानघटिका इष वर्जनीया ” ॥ १ ॥  
 “ आनन्दयन्ति मदयन्ति विदम्बयन्ति, निर्मत्स्यन्ति रमयन्ति विपादयन्ति ।  
 एताः प्रविश्य सद्यं हृदयं नराणां, किं नाम धामनयना न समाचरन्ति ” ॥२॥

એ ઘનને માટે હસતી અને રોતી રહે છે બીજાને પોતાને વિશ્વાસ કરાવી દે છે પરંતુ પોતે બીજાને વિશ્વાસ કરતી નથી. આ માટે કુલીન પુરુષોનું એ કર્તવ્ય છે કે તેઓ એને શ્મશાનની ઘટીની માફક પશ્ચિદાર કરી દે. એ પુરુષોના વિશ્વમાં પ્રવેશ કરી ક્યારેક આનંદિત બનાવે છે તો ક્યારેક મદોન્મત બનાવી દે છે ક્યારેક એની નાના પ્રકારે મક્કરી કરે છે તો ક્યારેક બીજાશું અપમાન કરે છે ક્યારેક આટલે છે તો ક્યારેક જિન બનાવી દે છે એવી કોઈ ક્રિયા નથી કે જે એ ન કરતી હોય.

एतादृशः कंचन=कमपि प्राणातिपातादिसावद्यव्यापारं नारभते=न कुरुते, वर्णादेशीत्यादिसकलविशेषणैर्मुनेः सकलाचारपरिशीलनशीलत्वमवगम्यत इति हृदयम् ॥ सू० ४ ॥

यः पुनरेतादृशः स कीदृशो भवतीति दर्शयति—‘से वसुमं’ इत्यादि ।

मूलम्—से वसुमं सव्वं समन्नागयपन्नाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावकम्मं तं नो अन्नेसी, जं सम्मंति पासह तं मोणंति पासह, जं मोणंति पासह तं सम्मंति पासह, न इमं सकं सिढिलेहि अदिज्जमाणेहिं गुणासाएहिं वंकसमायारेहिं पमत्तेहिं अगारमावसंतेहिं, मुर्णा मोणं समायाए धुणे कम्मसररिगं, पंतं लूहं सेवंति वीरा सम्मत्तदंसिणो, एस ओहंतरे मुणी तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिएत्तिवेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेनात्मनाऽकरणीयं पापं कर्म तन्नो अन्वेपी, यत्सम्यक् पश्यत तन्मौनमिति पश्यत, यन्मौनं पश्यत तत्सम्यगिति पश्यत; नैतच्छक्यं शिथिलैराद्र्थमाणैर्गुणास्वादैर्वक्रसमाचारैः प्रमत्तैरगारमावसद्भिः, मुनिमौनं समादाय धुनीयात् कर्मशरीरकं, प्रान्तं रूक्षं सेवन्ते वीराः सम्यक्त्वदर्शिन, एष ओघन्तरो मुनिः, तीर्णो मुक्तो विरतो व्याख्यात इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

इस प्रकारके इन समस्त विशेषणोंवाले वे मुनिजन “नारभते कंचन” कोई भी सावद्य व्यापार नहीं करते हैं। इन वर्णादेशी आदि समस्त विशेषणों से मुनिमें अपने सकल आचारों की परिशीलनशीलनता जानी जाती है ॥सू० ४॥

जो मुनि ऐसा होता है वह कैसा होता है ?—इस बात को कहते हैं ‘से वसुमं’ इत्यादि—

आ पूर्वोक्त प्रकारना समस्त विशेषणवाणा ये मुनिजन “नारभते कंचन” कोधपिण्ण सावद्य व्यापार करता नथी वर्या देशी आदि समस्त विशेषणोथी मुनिजननी सकल आचारना परिशीलनता जण्णी शक्य छे

ये मुनि आवा डोय छे ते केवा डोय छे ? आ वातमा सूत्रकार कहे छे —‘से वसुमं’ इत्यादि

ત્રીકા—‘મ વસુમાન’—इत्यादि, वसु=द्रव्यं भावत संयमरूप, तदस्या स्तीति वसुमान=तप मयमादिमान निवृत्तपचनपाचनादिसावधव्यापार इत्यर्थः, म मुनि सर्वममन्वागतप्रज्ञानेन सम्=सम्यक् अनु=साम्यादागतं=प्राप्तं=समन्वागतं सर्वं च तत्समन्वागत सर्वममन्वागतं, तादृश प्रज्ञान पदार्थसार्थाविभावकभाचार्य परम्पराऽऽगतं यस्य म सर्वसमन्वागतप्रज्ञानस्तान सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन—तादृश-

वसु शब्दका अर्थ द्रव્ય है। द्रव्य दो प्रकार का है। १-द्रव्यद्रव्य (याह्य द्रव्य), २-भावद्रव्य। द्रव्यद्रव्य द्विरण्य सुवर्ण धनादिक है। तप मयमादिरूप भावद्रव्य है। यह भावद्रव्य जिनके होना है वे वसुमान कहे जाते हैं। मुनिजन भावद्रव्यवाले ही होते हैं। तप और संयमरूप ही द्रव्य इनके पास रहता है। इस द्रव्यका अस्तित्व ही पचनपाचनादिरूप सावधव्यापारकी निवृत्ति स्वरूप है—अर्थात् जहाँ य द्रव्य है वहाँ पर सावधव्यापार नहीं होता है। ऐसा वह वसुमान मुनि सर्वसमन्वागत विज्ञानयुक्त आत्मा से यह समझकर कि पापकर्म अकरणीय है उसे नहीं गण्यता है—अभिलाषा नहीं करता है। “सर्वसमन्वागत” इस पदमें सर्व, सम, अनु, आगत ऐसे चार शब्द हैं। सम् शब्दका अर्थ—सम्यक्, अनु शब्दका अर्थ—साम्यभावसे, आगतका अर्थ है—प्राप्त हुआ, अर्थात् निर्दोष समताभावेसे प्राप्त हुआ, सर्व पदके साथ समन्वागतका कर्म धारण समान हुआ है। सर्व समस्त जो समन्वागत वह सर्वसमन्वागत है। सर्वसमन्वागत प्रज्ञान है जिसे वह सर्वसमन्वागतप्रज्ञान है।

વસુ શબ્દનો અર્થ દ્રવ્ય છે દ્રવ્ય બે પ્રકારનું હોય છે ૧ બાહ્યદ્રવ્ય, ૨ ભાવદ્રવ્ય બાહ્ય દ્રવ્ય દીરા માત્રી, સુવર્ણ અને ધન આદિ છે, અને ભાવદ્રવ્ય તપ તપા આદિ હોય છે આ ભાવદ્રવ્ય જેની પાસે દોષ છે તે વસુમાન કહેવાય છે મુનિ તો ભાવ દ્રવ્યવ્યાપાર જ હોય છે તપ અને સવમયથી દ્રવ્ય જ તમની પાસે હોય છે આ દ્રવ્યનું અસ્તિત્વ જ પચન-પાચ નાદે પ નાવધ વ્યાપારની નિવૃત્તિ સ્વરૂપ છે -અર્થાત્—જ્યાં આ દ્રવ્ય છે ત્યાં સાવધ વ્યાપાર શક્ય નથી એવા એ વસુમાન મુનિ સર્વસમન્વાગતવિજ્ઞાન જ્ઞાન આ માથી એ સમ અને કે સપકર્મ અકરણીય છે એને નથી ગણ્યતા એની અભિલાષા નથી રહેતા તપમમન્વાગત આ પદમ મત સમ, અનુ આગત એવા તો શબ્દો છે સમ શબ્દનો અર્થ—સમ્યક્ અનુ શબ્દનો અર્થ— સામ્યભાવ આવાનો તપ પ્રાપ્ત થયુ આગત નિર્દોષ મમત્વા ભાવથી પ્રાપ્ત થયુ તે સમ થાત છે મય પછી મારે સમન્વાગતતા કર્મધારણ સમામ થયા છે સ્વ સમન્વા જે સમ થાત તે મય સમન્વાગત છે

रूपपरिगतेन आत्मना अकरणीयं=विधातुमयोग्य यत् पापं=पापजनकं कर्म प्राणाति-  
पातादिरूपं तत् पापं कर्म नो अन्वेपी तत् अन्वेष्टुं=गवेषयितुं शीलं यस्य सोऽन्वेपी  
नो भवेत्, परिज्ञातपरमार्थेनात्मना पापकर्म नो विधेयमित्याशयः । पापकर्मपरि-  
त्यागेन सम्यग्ज्ञान, तेन च पापकर्मपरित्याग इति दर्शयति—

‘यत्सम्यग्नि’-त्यादि-हे गिप्याः ! गृयं यत् सम्यक्=सम्यग्ज्ञानं सम्यक्तवं  
वा इति पश्यत ” तन्मौनं=मुनेः कर्म मौनं=संयमाचरणमस्ति; इति पश्यत, एवं

भावार्थ—समताभाव से मुनिजन जितना भी सम्यग्ज्ञान प्राप्त  
करते हैं वह सर्वसमन्वागतप्रज्ञान है । अथवा गुरुपरंपरा से जो ज्ञान  
प्राप्त होना आ रहा है वह भी सर्वसमन्वागतप्रज्ञान है । छठवें गुणस्था-  
नवर्ती मुनिको इस गुणस्थानमें जितना ज्ञान होना चाहिये उसकी  
अपेक्षा से ही उस ज्ञान में सर्व विशेषणकी सार्थकता समझनी चाहिये,  
पदार्थों के स्वरूपका आविर्भावक तथा आचार्यपरंपरा से आगत यह  
सर्वसमन्वागतज्ञान जिस आत्मा में होता है वह सर्वसमन्वागतप्रज्ञान  
आत्मा है ।

इस ज्ञानविशिष्ट आत्मा से मुनिजन यह जानते हैं कि पाप-पाप-  
जनक प्राणातिपातादिरूप कर्म करनेके अयोग्य है । इसलिये वे उनके  
अन्वेषी-गवेषणा करनेके स्वभाववाले नहीं होते है—अर्थात् पापगवेषी  
नहीं होते है । तात्पर्य यह है कि मुनिजनों की आत्मा परमार्थकी ज्ञाता  
है; अतः वे उस आत्मा से पापकर्म विधेय ( करने योग्य ) नहीं है—  
ऐसा समझते हैं ।

“यत् सम्यक् पश्यत तन्मौनमिति पश्यत, यन्मौनं पश्यत तत्स-

भावार्थ—समता भावથી मुनिजन नेटलु પણ सम्यक् ज्ञान प्राप्त કરે  
છે તે સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન છે અથવા ગુરુ પરપરાથી જે જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતું  
આવ્યું છે એ પણ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન છે છઠ્ઠા ગુણસ્થાનવર્તી મુનિને  
આ ગુણસ્થાનમા નેટલુ જ્ઞાન થવું જોઈએ એની અપેક્ષાથી જ એ જ્ઞાનમા  
સર્વ વિશેષણની સાર્થકતા સમજવી જોઈએ પદાર્થોના સ્વરૂપના આવિર્ભાવક  
તથા આચાર્ય પરપરાથી આગત આ સર્વસમન્વાગત જ્ઞાન જે આત્મામા પ્રગટે  
છે તે સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન આત્મા છે, આ જ્ઞાનવિશિષ્ટ આત્માથી મુનિજન એ  
બંધુ છે કે પાપ-પાપજનક પ્રાણાતિપાતાદિરૂપ કર્મ કરવા યોગ્ય નથી, આ  
માટે તે એના અન્વેષી-ગવેષણા કરવાના સ્વભાવવાળા થતા નથી અર્થાત્ પાપ-  
ગવેષી બનતા નથી મુનિજનોના આત્મા પરમાર્થનો જ્ઞાતા છે આથી એ  
આત્માઠારા પાપકર્મ કરવાયોગ્ય નથી એમ એ સમજે છે

यन्मौनमिति पश्यत तत्सम्यगिति पश्यत, उमयोरकत्वमित्यभिष्यञ्जनायोमयप्रा-  
 प्युद्देश्यविधेययोर्विपर्यासन कथनमिति वाच्यम्, ध्यानस्य फल विरति सम्यक्त्वा  
 मिष्यञ्जन च, कैरेतस्समाचरितुं न शक्यत इत्याह—'नैतच्छक्यम्'—मित्यादि।  
 शिथिलैः—मन्वपरिणामत्वाद् ईषद्दीर्घं संयमे उपसि वा घृतिहृदवावर्जितैरसप्त-  
 म्यगिति पश्यत"—पापकर्मके परित्यागसे सम्यग्ज्ञान, उससे पापकर्म  
 का परित्याग होता है, यह पाप हम सूत्राण से सूत्रकार प्रकट करते  
 हुए कहते हैं—

हे शिष्यवृन्द ! तुम जिसे सम्यग्ज्ञान समझते हो वह मुनिका कर्म  
 —संयमाचरणरूप है और जो मुनिका कर्म है वह सम्यग्ज्ञान है—ऐसा  
 समझो। इन दोनों में एकता है इस बातको प्रकट करनेके लिये दोनों  
 जगह इन दोनों उद्देश्य और विधेयोंका विपर्यास—हेरफेर से कथन किया  
 गया है—ऐसा समझना चाहिये। ज्ञानका फल विरति और सम्यक्त्व का  
 अभिष्यञ्जन—प्रकट करना—है।

भाषार्थ—प्रथम कथनमें सम्यग्ज्ञान उद्देश्य और मौन—मुनिकर्म—  
 संयमाचरण विधेय है, द्वितीय कथनमें मुनिकर्म उद्देश्य और सम्यग्ज्ञान  
 विधेय है। चारित्रिका निर्माण करना और सम्यक्त्वका प्राप्तिभाव करना  
 ये उस ज्ञानके फल हैं।

नैतच्छक्यमित्यादि—यह सम्यग्ज्ञानरूप मुनि—कर्म शिथिल  
 आर्द्रधर्माण, गुणास्वादी, वक्रसमाचारवाले, प्रमत्त, गृहस्थ पुरुषों

'यत् सम्यक् पश्यत तन्मौनमिति पश्यत, कर्मौन पश्यत तत्सम्यगिति पश्यत।'

पापकर्मना परित्यागधी सम्यग्ज्ञान, ज्ञेयधी पापकर्मना परित्याग वाच्य  
 छे आ वात आ सूत्रांशवा सूत्रकार प्रकट करता कहे छे—

हे शिष्यवृन्द ! तमि जेने सम्यग्ज्ञान समझे छे। ते मुनिना कर्म—संय-  
 माचरणरूप छे जेने जे मुनितु कर्म छे ते सम्यग्ज्ञान छे जेभ समझे आ  
 जेनेभा जोकवा छे आ वात प्रकट करवा भाटे जेने स्थणे ज ते उद्देश्य जेने  
 विधेयना विपर्यास—हेरफेरी कथन करैल छे—जेभ समझनु जेछेजे. ज्ञाननु  
 हण विरति जेने सम्यक्त्वनु अभिष्यञ्जन—प्रकट करनु ते छे

भाषार्थ—प्रथम कथनमा सम्यग्ज्ञान उद्देश्य जेने मौन—मुनिकर्म—संयमा-  
 चरण विधेय जीका कथनमा मुनिकर्म उद्देश्य जेने सम्यग्ज्ञान विधेय छे चारि-  
 त्रनु निर्माण करनु जेने सम्यक्त्वना प्राप्तिभाव करयो ते जे ज्ञाननु हण छे

नैतच्छक्यमित्यादि—जा सम्यग्ज्ञानरूप मुनिकर्म शिथिल, आर्द्रधर्माण,  
 गुणास्वादि, वक्र समाचारवाण, प्रमत्त गृहस्थ पुरुषोंकी समाचारित जनी शक्य

पार्श्वस्थादिभिः आद्रर्चमाणैः=पुत्राद्यभिष्वङ्गप्रेम्णा आर्द्रीक्रियमाणैः; अपरं च गुणास्वादैः गुणेषु=शब्दादिषु आस्वादः=अभिरुचिर्येषां ते गुणास्वादास्तैः, एवं वक्रसमाचारैः-वक्रः=कुटिलः समाचारः=अनुष्ठानं वर्तनमिति वा येषां ते वक्रसमाचारास्तैः-मायानिकृतिमद्भिः, किञ्च प्रमत्तैः=निद्रादिपञ्चविधप्रमादवद्भिः 'अगारमावसद्भिः, अगारं=गृहम् 'आवसद्भिः'-आ=समन्तादतिगृह्यया वसद्भिः-गृहवासिभिः, एतादृशैः पुरुषैरेतत्सम्यग्ज्ञानरूपमौनानुष्ठानं विधातुं न शक्यं भवति । केनेदं मौनानुष्ठानं कर्तुं शक्यमित्याह-'मुनिः' इत्यादि । मुनिः=शिथिलादिपूर्वोक्तविशेषणवर्जितः संयमी मौनं=सर्वसावद्यव्यापारपरित्यागरूपं मुनिभावं समादाय=सम्य-

से नहीं समाचारित हो सकता है। जो शिथिल है-मन्दपरिणामी होनेसे कमजोर-संयम या तप आराधनमें धैर्य एवं दृढता से रहित है ऐसे अवसन्न पार्श्वस्थ-आदिकों से, पुत्रादिकों में जिनके ममत्व परिणाम जाग्रत है अतएव उससे जिनका अंतःकरण भीजा-अतिशय मुग्ध बना हुआ है ऐसे आर्द्रीक्रियमाण-अत्यन्तमोही मानवोंसे, शब्दादिक विषयों में जिनकी रुचि लवलीन है, वे गुणस्वादी है ऐसे गुणस्वादियों से, वक्र-समाचारवालों-जिनका अनुष्ठान अथवा वर्तन कुटिल है ऐसे मायावी मनुष्यों से, निद्रादिक पञ्चप्रमाद सेवन करनेवालों से, और जो गृहमें अत्यंत गृह्यता से रहते हैं ऐसे गृहवासी गृहस्थों से कभी भी यह मुनि-कर्म सेवित नहीं हो सकता है । इस मौनको कौन आचर सकता है ? इसके लिये " मुनिमौन समादाय धुनीयात् कर्मशरीरकम् " सूत्रकार यह कहते है अर्थात्-उपर्युक्त इन शिथिलादिक विशेषणोंसे जो रहित है ऐसे संयमी मनुष्य ही सर्वसावद्यव्यापार का परित्यागरूप मुनिभाव-मौन का अच्छी

नथी ने शिथिल छे-मदपरिणामी डोवाथी कमजोर-संयम या तप आराधनामा धैर्य तेमज दृढताथी रहित छे जेवा अवसन्न पार्श्वस्थ-आदिडोथी, पुत्रादिडोमा जेनु ममत्व परिणाम नदभ्रत छे माटे तेनाथी जेनु अन्त करणु बीज्तजेलु-अतिशय मुग्ध जनेलु छे जेवा आर्द्रीक्रियमाण-अत्यंत मोही मानवोथी, शब्दादिक विषयोमा जेनी इत्थी लवलीन छे ते गुणस्वादी छे जेवा गुणस्वादीयोथी, वक्र समाचारवाणा-जेनु अनुष्ठान अने वर्तन कुटिल छे जेवा मायावी मनुष्योथी, निद्रादिदि पात्र प्रमाद सेवन करवावाणाथी, अने जे घरमा घण्टी आसकितथी रहै छे जेवा घरवासी गृहस्थाथी ज्यारेय पणु आ मुनि-कर्म सेवित थरु शकतु नथी आ मौनने डोणु आचरी शकै छे ? आ माटे " मुनिमौन " धत्यादि सूत्रकार कहै छे, अर्थात्-उपर मुजभना जे शिथिलादिक विशेषणोथी ने रहित छे जेवा संयमी मनुष्य न सर्व सावद्य व्यापारना परित्यागइप मुनिभाव-मौनने सारी

गृहीत्वा कर्मशरीरक=कर्मणं शरीरमुपलभ्यमानौदारिकमपि धुनीयान्=कम्पयेत्  
 कर्माणि दूरीकुर्यादित्यर्थः, पुननप्रकारमत्राह—'प्रान्त' मित्यादि, सम्यक्त्वदर्शिन'  
 समत्वदर्शिनो वा वीराः=कर्मविदारणकुशलं प्रान्त=निम्मार पुराणकुख्यादिकं  
 पर्युषितं ब्रह्मचर्यादिनिष्पन्नं तत्रमिश्रितमन्नादिकं वा रुसं=घृतादिविकृतिकनि  
 त्तम् अन्नं तदपि विगताङ्गारधूमं सवत्=सुज्जले, स कीदृशो भवती? स्यात् 'एषा=  
 प्रान्तस्व्याहारी मुनि'=सयमी आघन्तरो भवति, स एष तीर्णो विमुक्तो विरतो

तरह ग्रहण करके कर्मशरीर—कर्मणशरीर, एवं उपलक्षण से इस औदा  
 रिक शरीर का भी कम्पन—घिनाश कर देते हैं। घिनाशप्रकारको सूत्र  
 कार—“ प्रान्तं रुसं सेयन्ते वीरा सम्यक्त्वदर्शिनः ” इस सूत्रांग में प्रक  
 रते हैं—सम्यक्त्व अथवा समस्य को देखनेका जिनका स्वभाव है वे  
 सम्यक्त्वदर्शी हैं, ऐसे मनुष्य ही कर्मों के घिनाश करने में कुशल होते  
 हैं, इसलिये वे वीर कहलाते हैं। ये वीर प्रान्त—नि सार पुरानी कुलर्षी  
 आदिका, पर्युषित—शीतल ब्रह्म—पालचना आदिसे तैयार हुआ, अथवा  
 छाछ आदिसे मिश्रित पालचना आदिका, तथा रुस—घृतादिक विकृतिसे  
 रहित ऐसे भोजनका अंगार धुमादि दोषों से रहित होने पर ही सेवन  
 करते हैं आहाररूपमें ग्रहण करते हैं। प्रान्त एवं रुस आहार छेनेवाले ये  
 मुनिजन ओघन्तर होते हैं। भाव ओघरूप संसार से पार हो जाते हैं।  
 “तीर्णो मुक्तो विरतो व्याख्यातः” इसलिये ये ओघन्तर मुनि तीर्ण  
 मुक्त और विरत तीर्थंकर प्रमुञ्जारा कहे गये हैं।

शरीर अक्षय्य शरीर कर्मशरीर—कर्मणशरीर जैव उपलक्षणधर्म आ औदारिक शरीरने  
 पक्ष विनाश कर दे छे विनाशना प्रकारने सूत्रकार ' प्रान्त रुस ' छत्यादि  
 सूत्रशरीर प्रकट करे छे सम्यक्त्व अथवा समत्व जेवाने जेने स्वभाव छे  
 तेज्ये सम्यक्त्वदर्शी छे जेवा मनुष्य जे कर्मिनि विनाश करवाभा कुशल होय  
 छे भागे त वीर कहवाय छे जे वीर प्रान्त निम्मार पुरानी कुलर्षी आदिना,  
 पर्युषित—शीतल ब्रह्म—पालचना आदिना तथा रुस—घृतादिक विकृतिसे रहित जेवा भोजनना  
 अंगार धुमादिक दोषोत्री रहित होवाभी ते सेवन करे छे—आहाररूपमां अक्षय्य  
 करे छे रुस आहार छेवावाणा आ मुनिजन ओघन्तर जने छे भाव जेव  
 रूप संसारभी या अक्षय्य छे तीर्णो मुक्ते विरतो व्याख्यात आ भागे  
 जे ओघन्तर मुनि तालु मुक्त जने विरत तीर्थंकर प्रमुञ्जारा कहवाय छे

भवतीति व्याख्यातः=तीर्थकृद्भिः कथितः, सकलसमारम्भवर्जितो रागद्वेषरहितो मुनिर्जीवन्नपि मुक्त एव घातिकर्मचतुष्टयाभावादित्याशयः । इति ब्रवीमि-इत्य-स्यार्थस्तुक्त एव ॥ सू० ५ ॥

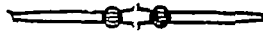
॥ पञ्चमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ५-३ ॥

भावार्थ—सकल समारंभों से रहित, राग और द्वेषसे वर्जित मुनि चार घातिया कर्मों के अभाव से जीते हुए भी मुक्त ही है । “ इति ब्रवीमि ” इन पदों का अर्थ पहिले कहा जा चुका है ॥

॥ पंचम अध्ययनका तृतीय उद्देश समाप्त ॥ ५-३ ॥

भावार्थ—सकल समारंभों से रहित राग अने द्वेषही वर्जित मुनि चार घातिया कर्मों के अभाव से जीते हुए भी मुक्त ही है “ इति ब्रवीमि ” का पहिले का अर्थ आगेण कहेवाच गये छे.

पांचमा अध्ययनने त्रीजे उद्देश समाप्त ॥ ५-३ ॥





## अथ पञ्चमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देश ।

गतस्त्वृतीपोरेषु इदानीं तृतीय प्रारम्भते । पूर्षत्र परिग्रहवतो दोषसूपाय्य  
तन्निरासेनैव धिरत संयमी भवतीति वर्णितम् । अत्राव्यक्तस्यैकधरस्य मुनिवत्  
प्रणश्यतीति प्रदर्शनाय तस्य प्रत्यवायाः प्रतिपादनीयाः सन्तीति सम्मति तस्य  
दोषोद्भादनायाह—' गामाणु ' इत्यादि ।

मूलम्—गामाणुगाम दूङ्जमाणस्स तुज्जाय दुप्परक्कत  
भवइ अवियत्तस्स भिक्खुणो ॥ सू० १ ॥

छाया—ग्रामानुग्रामं द्रवतो ( विहरतः ) दुर्यातं दुप्पराक्कान्तं भवत्यव्यक्तस्य  
भित्तोः ॥ सू० १ ॥

' ग्रामानुग्राम 'मित्यादि, ' ग्रामानुग्रामं ' प्रसति शुद्ध्यादिगुण य' स

### ॥ पांचवें अध्ययनका चतुर्थ उद्देश ॥

तृतीय उद्देशका वर्णन किया अप चतुर्थ उद्देशका सूत्रकार वर्णन  
करते हैं ।

पूर्व उद्देशमें परिग्रहीके दोषोंका कथन कर यह फललाया गया है  
कि परिग्रहके त्यागसे ही धृती संयमी होता है । इस उद्देशमें अव्यक्त-  
अनभिज्ञ एकलविहारी से मुनिपना नहीं सब सकता है—इस विषयको  
विद्वानके लिये उसके प्रत्यवाय-विघ्नसमूह प्रतिपादनीय-कथन करनेके  
योग्य हैं । इसलिये सूत्रकार सर्वप्रथम उसके दोषोंके प्रकट करनेके  
लिये कहते हैं " गामाणु० " इत्यादि—

शुद्धि आदि गुणोंका जो ग्राम करता है—अर्थात् (शुद्ध्यादिक गुण

### पांचमा अध्ययननो शोधो उद्देश

त्रीण उद्देशानु वर्णन कर्युः, इवे सूत्रकार शोधो उद्देशानु वर्णन करे छे

पूर्व उद्देशमा परिग्रहवतो दोषोनु वर्णन करी छे अताववामा आनु छे  
इ परिग्रहना त्यागधी न मती संयमी अने छे आ उद्देशमा अव्यक्त-अन  
भिज्ञ एकलविहारीसी मुनिपणु सभासि शकतुं नसी—आ विषय समभाववा भाटे अने  
प्रत्यवाय-विघ्नसमूह प्रतिपादनीय-कथन करवा भोज्य छे आ भाटे सूत्रकार सर्व  
प्रथम तेना दोषोने प्रकट करवा भाटे करे छे " गामाणु० " इत्यादि—

शुद्धि आदि गुणोना के नाश करे छे अर्थात् शुद्धि आदिना शुद्ध अर्थ

ग्रामस्तस्माद्ग्रामाद् अनु=पश्चादितरो ग्रामो ग्रामानुग्रामः, यतश्चलति स ग्रामस्तद्भिन्नो गम्यमानोऽनुग्रामस्त द्रवतः=एकचर्यया विहरतः-अव्यक्तस्य=श्रुतेनावस्थया बोधयेन वा बालस्य भिक्षोः=भिक्षाशीलस्य मुने दुर्योतं-दुष्टं गमनं, तस्य विहरणं निन्द्यमित्यर्थः, दुष्पराक्रान्तं=दुष्टं पराक्रान्तं=पराक्रमणं तस्य पराक्रमणस्फोरणं निन्द्यं भवति, अव्यक्तस्यैकचर्यया चारित्रान्तरायोदयेन ब्रह्मचर्यस्खलनादेरवश्यम्भावात् ।

जहां पर निवास करने से प्रायः शिथिल होते हैं उसका नाम ग्राम है । उससे दूसरा गम्यमान ग्राम-जहां जाया जाता है-वह अनुग्राम है ॥ एकचर्या से-एकाकी ग्रामानुग्राम विहार करनेवाले, जो आगम से अव्यक्त-अनभिज्ञ है, या वयसे अव्यक्त है, अथवा आगम वय दोनोंसे अव्यक्त है, उस मुनिका विहार निन्द्य है । एकाकी विहार करनेका उसका पराक्रम निंदायोग्य है-प्रशंसनीय नहीं है-आगमानुकूल नहीं है । कारण कि इस प्रकारके मुनिको उस एकाकी विहारमें चारित्र अन्तरायके उदयसे ब्रह्मचर्यव्रतकी स्वलना अवश्यभावी है ।

भावार्थ-आगमादि से जो अव्यक्त है ऐसे मुनिका एकाकी ग्रामानुग्राम विहार करना उचित नहीं है । जो मुनिजन एकाकी विहार करने के अपने पराक्रमकी प्रशंसा करते हैं । उनका इस प्रकारका कथन निन्द्य है । कारण कि श्रुतादि से अव्यक्त मुनिका वह एकाकी विहार उसके ब्रह्मचर्यव्रतकी क्षतिका कारण अवश्य बन जाता है ॥

निवास करवाथी अरेपर शिथिल भने छे अनु नाम ग्राम छे अनाथी पीणु गम्यमान ग्राम-न्या नवाय छे ते अनुग्राम छे एकचर्याथी एकाकी ग्रामानुग्राम विहार करवावाणा ने आगमथी अव्यक्त-अनभिज्ञ छे अथवा उभरथी अव्यक्त छे अथवा आगम अने वय अनेथी अव्यक्त छे अवा मुनिने विहार निन्द्य छे एकाकी विहार करवातु तेनु पराक्रम निंदा योग्य छे-प्रशंसनीय नथी-आगम अनुक्षण नथी, कारण के आ प्रकारना मुनिना तेवा एकाकी विहारथी चारित्र अतरायना उदयथी ब्रह्मचर्य व्रतनी स्वलना निश्चित भनी रहे छे

भावार्थ-आगमथी ने अव्यक्त छे अवा मुनिने एकाकी ग्रामानुग्राम विहार करवा उचित नथी ने मुनिजन एकाकी विहार करीने चोताना पराक्रमनी प्रशंसा करे छे तेनु अवा प्रकारनु कथन निन्द्य छे कारण के श्रुतादिथी अव्यक्त मुनिने ते एकाकी विहार तेना ब्रह्मचर्य व्रतनी क्षति (नाश)नु कारण भनी न्य छे.

વ્યક્તાવ્યક્તમદન મુનિર્દિવિષ', તત્ર ચતુર્મઙ્ગી યયા—શ્રુતેનાવ્યક્તો વ્યક્તાવ્ય  
વ્યક્તઃ (૧) શ્રુતેનાવ્યક્તો વ્યક્તાવ્યક્ત (૨) શ્રુતેન વ્યક્તો વ્યક્તાવ્યક્ત (૩)  
શ્રુતેન વ્યક્તો વ્યક્તાવ્યક્ત (૪) ।

તત્ર શ્રુતેન વ્યક્તાવ્યક્તઃ—શ્રુતેનાવ્યક્તઃ—આગમાનમિદ્ધ, વ્યક્તાવ્યક્ત-  
કોવ્યક્તવ્યક્ત અષ્ટવર્ષાદારમ્ય પચ્ચવિંશતિવર્ષપર્યન્તઃ, એવં ચોમયયાવ્યક્તસ્ય  
સંયમાત્મવિરાષનયોઃ સમ્મવાનૈકચર્યાં કલ્પતે, એવ પ્રથમો મઙ્ગઃ (૧) ।

શ્રુતેનાવ્યક્તસ્ય વ્યક્તાવ્ય વ્યક્તસ્વાપિ સા ન કલ્પતે, શ્રુતસ્વાનવગમેનોમપ-  
વિરાષનાસમ્મવાત્ ઇતિ દ્વિતીયો મઙ્ગ (૨) ।

(વ્યક્ત ધૌર અવ્યક્ત કે મેદસે મુનિ દો પ્રકારકે હૈ) યહાં પર યહ  
ચતુર્મઙ્ગી વનતી હૈ, જૈસે—(૧) જો શ્રુતસે મી અવ્યક્ત હૈ ધૌર વ્યક્ત મી  
અવ્યક્ત હૈ, (૨) શ્રુતસે અવ્યક્ત હૈ, વ્યક્ત હૈ, (૩) શ્રુતસે જો  
વ્યક્ત હૈ, વ્યક્ત અવ્યક્ત હૈ, (૪) શ્રુતસે મી વ્યક્ત હૈ ધૌર વ્યક્ત મી  
વ્યક્ત હૈ ।

इनमें ("श्रुत और व्यक्ते अव्यक्त है") इस प्रथम भंगका खुलासा  
अर्थ इस प्रकार है (श्रुतसे) अव्यक्तका मतलब आगमानमिदधसे है जो  
आगमका ज्ञाता नहीं है (व्यक्ते) अव्यक्तका अर्थ अल्पवयस्कसे है । आठ  
वर्षसे लेकर २५ वर्ष तकका साधु अल्पवयस्क माना गया है । इस तरह  
दोनों प्रकारसे जो अव्यक्त है उसका संयमकी और आत्माकी विराषना  
संभवित है । इससे एकाकी विहार इसका कल्पित नहीं है । यह  
प्रथम भंग है ।

શ્રુતસે અવ્યક્ત ધૌર વ્યક્ત મુનિકી મી એકચર્યાં કલ્પ્ય નહીં

વ્યક્ત અને અવ્યક્તના લેહધી મુનિ બે પ્રકારના છે અર્ધિયા બે વ્ય-  
ક્તી બને છે જેમ (૧) જે શ્રુતથી પણ અવ્યક્ત છે, અને વ્યક્તી પણ અવ્યક્ત  
છે (૨) શ્રુતથી અવ્યક્ત છે, વ્યક્તી વ્યક્ત છે, (૩) શ્રુતથી જે વ્યક્ત છે વ્યક્તી  
અવ્યક્ત છે (૪) શ્રુતથી પણ વ્યક્ત છે અને વ્યક્તી પણ વ્યક્ત છે

આમાં શ્રુત અને વ્યક્તી અવ્યક્ત છે " આ પ્રથમ ભંગને ખુલાસો આ  
પ્રકારે છે શ્રુતથી અવ્યક્તનો મતલબ જે અગમનો જ્ઞાતા નથી. વ્યક્તી નાની  
ઉમરનો છે આઠ વર્ષથી માથે ૨૫ વય સુધીનો સાધુ અલ્પ વયસ્ક માનવામાં  
આવેલ છે આ રીતે બન્ને પ્રકારથી જે અવ્યક્ત છે તેના સંયમની અને આત્માની  
વિરાષના સંભવિત છે એથી એકાકી વિહાર તેને કલ્પ નથી. આ પ્રથમ  
ભંગ છે શ્રુતથી અવ્યક્ત અને વ્યક્તી વ્યક્ત મુનિની પણ એકચર્યાં કલ્પિત

श्रुतेन व्यक्तस्य वयसा चाव्यक्तस्यापि सा न कल्पते; अल्पवयस्कस्य स्वभावचापल्यादिना सकलजनतोपहासपात्रत्वात् । परिपहोपसर्गादिसहनासम्भवाच्च । एष तृतीयो भङ्गः (३) ।

उभयथा व्यक्तानामष्टगुणसम्पन्नानां प्रतिमाप्रतिपन्नानां स्थविरकल्पिकानां वा कारणवशादेकचर्या कल्पते । कारणाभावे च तेषामपि प्रतिषिद्धैकचर्या, अष्टगुणाः— श्रद्धा-सत्य-मेधा-बहुश्रुतत्व-शक्त्य-अक्लेशित्व-धृति-वीर्यात्मकाः स्थानाङ्गाष्टमस्थानो-

है । कारण कि शास्त्र-आगमसे अनभिज्ञ होने के कारण उसके उभय-संयम और आत्माकी विराधना संभवित है । यह द्वितीय भंग है ।

३ श्रुतसे व्यक्त और वयसे अव्यक्त मुनिकी भी एकचर्या कल्पित नहीं है । कारण कि अल्पवयस्क होनेसे वह मुनि स्वाभाविक चपलता की वजहसे सकल जनता की हंसीका पात्र हो जाता है । तथा वह परी-षह और उपसर्गादिकको भी सहन नहीं कर सकता है । यह तृतीय भंग है ।

४ जो मुनि दोनों प्रकारसे व्यक्त हैं और आठ गुणोंसे संपन्न हैं उनके लिये, और जो प्रतिमाओंके धारक हैं उनके लिये, तथा जो स्थविरकल्पी हैं कारणवश उनके लिये एकचर्या कल्पित है, परन्तु कारण के अभावमें स्थविरकल्पीकी एकचर्या प्रतिषिद्ध है । श्रद्धा, सत्य, मेधा, बहुश्रुतत्व, शक्ति, अक्लेशित्व, धृति और वीर्य ये ८ आठ गुण स्थानाङ्गके आठवें स्थान में कहे हुए हैं । एकचर्या में गुप्ति समिति आदि जो साधु के गुण हैं उनमें दोषबाहुल्य की संभावना रहती है; (जैसे कि पूर्वोक्त परिस्थिति-

नथी, कारणु के शास्त्र-आगमथी अनभिज्ञ होवार्थी तेना भन्ने संयम अने आत्मानी विराधना संभवित छे आ भीने लग छे.

श्रुतथी व्यक्त अने वयथी अव्यक्त मुनिनी पणु ऐकचर्या कल्पित नथी कारणु के नानी उभर होवार्थी ते मुनि स्वाभाविक चपलताना कारणु सकल जनतानी हासीने पात्र भनी न्य छे तथा अे परिषु अने उपसर्गादिकने पणु सहन करी शकते नथी आ भीने लग छे

७ मुनि भन्ने प्रकारथी व्यक्त छे अने आठ गुणथी संपन्न छे तेना भाटे अने ७ प्रतिमाओंना धारक छे तेना भाटे, तथा ७ स्थविरकल्पी छे कारणुवश तेना भाटे ऐकचर्या कल्पित छे परतु कारणुना अभावमा स्थविरकल्पीने ऐकचर्या प्रतिषिद्ध छे श्रद्धा, सत्य, मेधा, बहुश्रुतत्व, शक्ति, अक्लेशित्व, धृति अने वीर्य आठ गुण स्थानाङ्गना आठमा स्थानमा कहेल छे ऐकचर्यामा, गुप्ति समिति आदि ७ साधुना गुणु छे तेमा दोष अने लूलनी संभावना रहे छे. ते पणु

का निद्रया, एकचर्यायां समितिगुण्यादिसाधुगुणेषु दोषबाहुस्यसम्भवात्, तथा हि मुनेरेकाकिनो विहरत स्त्री-कुक्कुर-परतीर्थिककृतपरामर्षाविशुद्धमिसाधनदोष निवरो जागर्ति । रोगाद्यवस्थायां वैयाहृत्याद्यसम्भवेनात्मसयमविराधनायाश्च सम्भवः, राग-द्वेषादिवशेनैकाकी विचरन् सुखकामी मुनि सागरतरङ्गव्याकुला परिनिर्गतो मीन इय नश्यति ।

गच्छमातस्य मुनेर्वहुगुणाधिगमा जायते, तथा हि-सामाधार्यां सम्पृकृपाङ्गनं, श्रुताध्ययनादिना ज्ञानाधुपार्जनं, तन्निधयाऽन्यथा गच्छगतपाल्लवृद्धापीनां सम्पत्तिर्निर्वाहः, सयमे सीदतां स्थिरीकरणादिना जिनमन्थनमभावकत्वात्स्वपरतारक्ष्यं च भवतीति भावः ॥ सू०१ ॥

पूर्वोक्तमेवाय प्रकटयति—'घषसा वि' इत्यादि ।

संपन्न कोई मुनि एकाकी विहार करते समय स्त्री, कुक्कुर, परतीर्थिक-जनद्वारा परामर्षित हो सकता है । तथा अविशुद्ध-अकलित भिक्षा-दिक से प्राप्त भोजनके ग्रहण करनेसे आहार संपत्ती दोषोंसे भी बह नहीं बच सकता है । यदि कभी किसी रोगादिकका आक्रमण इसके ऊपर हो जाता है तो ऐसी दशा में उसकी कोई दूसरा समातीय मुनि न होनेसे वैयाहृति भी ठीक २ नहीं हो सकती है, ऐसी अवस्थामें वह अपनी आत्मा एवं संयमका विराधक भी हो सकता है । रागद्वेषादिके वशसे अकेला विहार करता हुआ सुम्नामिलापी मुनि समुद्रकी तरङ्गसे व्याकुल होकर उस बाहिर निकले हुए मत्स्यकी तरह नष्ट हो जाता है ।

(अपने समुदाय-गच्छमें रहनेवाले मुनिके लिये अनेक गुणोंका लाभ होता है, जैसे—मुनिसामाधारीका अच्छी तरहसे पालन होता है ।

कौं पूर्वोक्त परिस्थिति अपना मुनि ओकाही विचार करती करते हैं, इतक, परतीर्थिक जन विदेशे द्वारा परामर्षित घष साक छे तथा अकलित-अविशुद्ध भिक्षा-दिकसे प्राप्त भोजनग्र ग्रहण करनेसे आहार-संपत्ती दोषोंसे भी बह सकता नहीं है । ऐसी दशा में कौं समादिकु आक्रमण त्वाए तेना उपर धाय ते ओकी दशा में तेना कौं समादिकु समातीय मुनि न होवाये सास्वार पण ही हीक वनी शकती नहीं । आनी अवस्था में ते पोताने आ गत मत्स्य सव मनो विराधक पण वने छे रागद्वेष आदिना वशासे ओकटा विचार करतार मुष्मिलितानी मुनि समुद्रना तरङ्गसे व्याकुल वनीने तामगी नदर नीक नदर भाउता माके विनय धर्म छे

पानान्ना समुदाय-गच्छमें रहनेवाले मुनिके लिये अनेक गुणोंका लाभ प्राप्त

मूलम्—वयसा वि एगे बुइया कुप्यन्ति माणवा, उन्नयमाणे  
य नरे महया मोहेण मुज्झइ, संवाहा वहवे भुज्जो भुज्जो दुरइ-  
कमा अजाणओ अपासओ, एयं ते मा होउ, एयं कुसलस्स दंसणं,  
तद्दिट्ठीए तस्मुत्तीए तत्पुरक्कारे, तस्सन्नी तन्निवेसणे, जयं विहारी  
चित्तनिवाई पंथनिज्झाई पलिवाहिरे पासिय पाणे गच्छिज्जा।सू०२।

छाया—वयसाऽप्येक उक्ताः कुप्यन्ति मानवाः, उन्नतमानश्च नरो महता  
मोहेन मुह्यति, संवाधा वहवो भूयो भूयो दुरतिक्रमा अजानतोऽपश्यतः, एतत्ते मा  
भवतु, एतत्कुशलस्य दर्शनम्, तद्दृष्ट्या तन्मुक्त्या तत्पुरस्कारः, तत्संज्ञी तन्निवेगनः,  
यतमानविहारी चित्तनिपाती पथिनिर्ध्यायी पर्यवाहो दृष्ट्वा प्राणिनो गच्छेत् ॥सू०२॥

टीका—‘वयसे’त्यादि, एके=केचन मानवाः तपःसयमाचरणविरताः  
एकाकिविहारिणःसाधवः, गृहस्थादिभिर्वचसाऽपि=शिक्षावचनेनापि उक्ताः=कथिताः

शास्त्रादिकके अध्ययनसे ज्ञानादिकका उपार्जन होता है। उसकी निश्चा  
से गच्छमें रहनेवाले अन्य बाल वृद्ध मुनिजनोंका अच्छी रीतिसे निर्वाह  
होता है। संयममें शिथिल बने हुए अन्य मुनिजनोंको उसमें स्थिर करने  
आदिसे वह जिनप्रवचनका प्रभावक होता है, इससे उसमें स्व और  
परकी तारकता भी आती है ॥सू०१॥

सूत्रकार “वयसा वि” इत्यादि सूत्रद्वारा पूर्वोक्त अर्थका ही  
प्रदर्शन करते हैं।

सच्चे तप और संयमके आचरणसे रहित कितनेक एकाकी विहार  
करनेवाले मानव-साधु गृहस्थजनों के ऊपर उनके द्वारा शिक्षावचनोंसे  
समझाये जाने पर क्रोध करते हैं। यहाँ सूत्रकारने जो साधुजन के अर्थ

छे जेम डे मुनिसामाचारीनु सारी रीते पालन थाय छे शास्त्रादिकना अध्ययनथी  
ज्ञानादिकनु उपार्जन थाय छे तेना आधारे गच्छमा रहेवावाणा अन्य पाण वृद्ध  
मुनिजनोने सारी रीते निर्वाह थाय छे संयममा शिथिल बनेला अन्य मुनि-  
जनोने तेमा स्थिर बनाववा आदिथी ते जिनप्रवचनोने प्रभावक बने छे  
तेनाथी तेनामा स्व बने परनी तारकता पणु आवे छे ॥ सू० १ ॥

सूत्रकार “वयसावि” इत्यादि सूत्रद्वारा पूर्वोक्त अर्थनु ज प्रदर्शन करे छे  
साथा तप बने संयमना आचरणथी रहित डेटलाक ओकाकी विहार करवावाणा  
मानव-साधु गृहस्थजनोनी उपर तेजोना द्वारा शिक्षावचनोथी समजणु अयाता  
क्रोध करे छे अर्हि सूत्रकारे जे साधुजनना अर्थमा मुनि शब्दने प्रयोग न करी

सन्त कुप्यन्ति=क्रुध्यन्ति, अप्र मुनिवाचकशब्दं विहाय मानवसमूहेन कथनमेकाकि  
 निहारिणो निन्दास्पदत्वसूचनार्थम्; भाष्ये चारमनेन कथमपमानितः इत्यादि ।

यद्वैव कथयन्ति-किं परेऽप्यनुचिंताचारचारिणो न सन्ति यदस्मानेवाभिसिप  
 न्ति भवन्त इत्यादि घुषन्त' सतप्य'ते । अथवा-वचसाऽप्युक्ता एते व्यर्थजीविना  
 कुसिम्भरा भवन्ति-इत्यादियाप्यैरभिहिताः कुप्यन्ति, अपि-शब्दो भिन्नक्रमस्तेन  
 कुप्यन्तीत्यनेनान्वयस्ततः अभिज्ञपन्ति वा । कथं पुनरिमे नरकनिगोदादिपातन-

में मुनि शब्दका प्रयोग न कर सामान्य मानव शब्दका प्रयोग किया  
 है उससे यह सूचित होता है कि एकाकी विहार करनेवाला साधु निन्दा  
 का पात्र है । एकाकी विहार करनेवाले साधुको जब कोई गृहस्थ-  
 जन समझता है तो उससे अपना अपमान समझते हैं और कहते हैं  
 कि मैं इससे क्यों अपमानित किया जाता हूँ, इस बातको विचार कर  
 के उस समझानेवाले पर क्रुपित हो उठते हैं ॥ अथवा अपने को सम  
 झानेवाले गृहस्थजनसे ये यह कह दिया करते हैं कि इस प्रकार के अनु  
 चित आचारका आचरण करनेवाले क्या और दूसरे नहीं हैं जो आप  
 हमारा ही तिरस्कार कर रहे हैं, हमें ही समझा रहे हैं, इस प्रकार से भी  
 वे संतप्त हो उठते हैं । अथवा इनका जीवन ही व्यर्थ है ये तो अपने  
 उद्गर निर्वाह के लिये ही साधु हुए हैं ” इस प्रकार के वचनमात्रसे कहे  
 जाने पर भी ये उन पर क्रुपित हो उठते हैं । ‘अपि’ शब्द भिन्न-  
 क्रमवाला है “कुप्यन्ति” इस क्रियाके साथ उसका संबंध होनेसे  
 कुप्यन्ति अपि ” श्लोक भी करते हैं और “अभिज्ञपन्ति” (घाप भी देते

सामान्य मानव शब्दने प्रयोग करेव छे जेधी जे सूचित बाय छे के जेहाकी विहार  
 करवावाणा साधु निदाने पात्र छे जेहाकी विहार करवावाणा साधुने जे कौड  
 गृहस्थजन समझवे छे ते तेनाधी ते घातानु अपमान समझे छे जने ठडे छे  
 के आ शा भाटे भाशे अपमान करे छे आ वातनो विचार करीने ते समझववा-  
 वाणा उपर क्रुपित जने छे जववा तेने समझववाए गृहस्थजनने ते जेवुं सभ  
 जावे छे के आवा प्रहारना अनुचित आचारनु आचरण करवावाणा शुं कौड वीज  
 नधी ? जे आप जभाशे ज तिरस्कार करवा रही छे जभने ज समझवो छे  
 आ प्रहारधी पक्ष ते सतप्त जने छे जववा ‘जेभनु लवन जवई’ छे जे  
 ते घातानु उद्गर निर्वाह भाटे ज साधु बरेव छे-आ प्रहारना वचन मात्र  
 ठडेवा ज ते क्रुपित जनी जव छे ‘अपि शब्द भिन्नक्रमवाणा छे  
 ‘ कुप्यन्ति’ आ क्रिमाणी साथ तेना संबंध होवाधी “ कुप्यन्ति अपि ” क्रुप  
 पक्ष करे छे जने ‘अभिज्ञपन्ति’ साथ पक्ष के छे नरकनिगोदादि अतिशय

कक्रोधकारिणो भवन्तीत्याह—‘उन्नतमान’ इत्यादि ‘उन्नतमानश्च’ उन्नतो मानो गर्वो यस्य स उन्नतमानः जात्यादिमानसम्पन्नः नरः=मनुष्यो महता मोहेन=प्रवल-कषायोदयेन मुह्यति=विवेकरहितो भवति ।

ततस्तस्य किं भवतीत्याह—‘संवाधा’ इत्यादि । अजानतः=एकचर्याजनित-कुगतिफलमवुध्यमानस्य, अपश्यतः=अज्ञानान्धत्वेन तपःसंयमाराधनशिवसुखफल-मप्रेक्षमाणस्य तस्य वद्वचः=अधिका. संवाधाः संवाधयन्ति यास्ताः संवाधाः= वेदनाः परीपहोपसर्गजन्याः भूयो भूयः पुनः पुनः दुरतिक्रमाः=दुःखेन लङ्घनीयाः

हैं । नरकनिगोदादि गतियोंमें जीवका पतन करानेवाले क्रोधके वशीभूत कर्षो होते हैं ? इसके लिये सूत्रकार “ उन्नतमानश्च नरो महता मोहेन मुह्यति ” कहते हैं अर्थात् (जिसे उन्नत मान होता है,) जात्यादि मदसे जो संपन्न होता है, ऐसा मनुष्य बड़े भारी मोहसे-प्रवल कषायसे विवेकरहित हो जाता है ॥ विवेकसे विहीन होने पर वह ‘साधुमानव एकचर्यासे कुगतिरूप फलकी प्राप्ति करता है ॥ इस सिद्धान्तसे अनभिज्ञ हो जाता है) और साथमें उसे यह भी नहीं मालूम रहता है (कि तप और संयम की आराधनासे शिव-सुखरूप फलकी प्राप्ति होती है) इस अपनी मनमानी हालतमें उसे परीपह और उपसर्गजन्य (अनेक वेदनाओंका पुनः पुनः भयंकर सामना करना पड़ता है) अर्थात् ऐसे एकलविहारी परीपह उपसर्गजन्य ऐसी २ वेदनाओंके जालमें फँस जाते हैं कि जिनसे रक्षण पाना उन्हें बहुत भारी हो जाता है (इसलिये शिष्यजनों की इन वेद-

एवमु पतन करवावाणा क्रोधने वशीभूत केम अने छे ? आने माटे सूत्रकार “ उन्नत ”-इत्यादि कहे छे अेटके के नेने उन्नत मान थाय छे, जति आदिना महथी ने सपन्न होय छे अेवा मनुष्य धषा लारी मोडथी-प्रबल कषायना उदयथी विवेकरहित अनी नय छे विवेक वगरना अनवाथी ते ‘साधु-मानव एकचर्याथी कुगतिरूप इणनी प्राप्ति करे छे’-आ सिद्धातथी अनलिज्ञ अनी नय छे साथो-साथ तेने अे पषु माधुम नथी रडेतु के तप अने सयमनी आराध-थी शिव-सुखरूप इणनी प्राप्ति थाय छे. आ पोतानी मनमानी हालतमा परिषड अने उपसर्गजन्य अनेक वेदनाअेनो तेणु वारवार लय कर सामनेो करवो पडे छे अर्थात्-आवा अेकलविहारी परिषड उपसर्गजन्य अेवी अेवी वेद-नाअेनी नगमा इसी नय छे के नेनाथी रक्षषु भेणववु धषु अधरु अनी नय छे आ कारणु शिष्यनोनी आ वेदनाअेथी सदा रक्षषु अनी रडे आ अलिप्रायथी



ममन्ति, सर्वसुपपाद्य क्षिप्य प्राह—'एत' दिव्यादि । इ क्षिप्य ! ते=तव एकाक्षि-  
 विहारपीडाया दुर्भङ्गनीयत्वमजानतोऽपश्यतो गुर्वाज्ञापरिज्ञापालकस्य च एतत्=पूर्वो-  
 क्त पाषाणा दुरतिक्रमणीयत्वं मा भवतु । स्वया कदाऽप्यकषयांमसिपिप्पनेन न भवि-  
 त्क्यमित्युपदेशः । सुधर्मास्वामी प्राह—'कुशलस्ये'त्यादि, कुशलस्य=मगधतो  
 महावीरस्य एतत्=पूर्वकथित दर्शनं गुरुसन्निहितमभिवसतो गुप्था एकाक्षिविहारिणो  
 दोषाश्च ममन्तीत्यादिरूपोऽभिप्रायोऽस्ति ।

नाओंसे सदा रक्षण घना रहे, इस अभिप्रायसे सूत्रकार कहते हैं कि—“एतत्से  
 मा भवतु” हे क्षिप्य ! तुम कभी भी एकाक्षी विहार करनेवाले मत बनना,  
 नहीं तो तुम्हें भी परीपद और उपसर्गादिकोंसे उद्भूत अनेक प्राणान्तकारी  
 कष्टोंका सामना करना पड़ेगा । तुम इन कष्टों से अनभिज्ञ हो, तुम क्या  
 जानो कि एकाक्षी विहार करनेसे कैसे २ कष्टों और उपद्रवोंको झेलना  
 पड़ता है, हे क्षिप्य ! तुम गुरुकी आज्ञाक पालक हो, इसलिए तुम  
 से हमारा यही कहना है कि तुम कभी भी एकाक्षी विहारी न होना । ऐसे  
 धर्तन से ही तुम पूर्वोक्त पाषाणोंसे सदासुरक्षित रहोगे ।) श्रीसुधर्मा  
 स्वामी कहते हैं, कुशल उपदेशक मगधान महावीरका यह पूर्वकथित दर्शन  
 —अर्थात् सिद्धान्त है । इसका अभिप्राय यह है कि गुरुके निकट रहने  
 वाले शिष्योंको अनेक प्रकारसे लाभ होता है, तथा इससे विपरीत-  
 एकाक्षी विहार करनेवालों में अनेक दोष उत्पन्न होते हैं ।

सूत्रकार ठहरे थे— 'एतत्से मा भवतु' हे क्षिप्य ! तमे कदापि यत् ओकाक्षी  
 विहार कर्त्वावाणा जनये नदि, नदि तो तमारे यत् परीपद अने उपसर्गा  
 दिहोथी उत्पन्न अनेक प्राणांतकारी कष्टोने सामने करवे पड़ेगे. तमे आ  
 कष्टना अज्ञकार न होवाथी तमोने शु अजर पडे के ओकाक्षी विहार कर्त्वाथी  
 कर्ष कर्ष अतना दुग्धो अने उपद्रवो भोजववा पडे थे हे क्षिप्य ! तमे  
 सुग्नी आगना पालक थे आ कर्त्वे तमने भाई के कडेवानु थे के तमे कदि  
 यत् ओकाक्षिविहारी जनये नदि. आवा वत नथी ए तमे पूर्वोक्त उपद्रवोथी  
 सदा सुरक्षित रहेथे, श्री सुधर्मास्वामी ठहरे थे कुशल उपदेशक मगधान महावीरनु  
 आ पूर्वकथित दर्शन जेटके सिद्धांत थे आने अभिप्राय जे थे के—सुग्नी पसे  
 रहेवावाणा शिष्योने अनेक प्रकारने लाभ भव्य थे अने तेनाथी विपरीत ओकाक्षी  
 विहार कर्त्वावाणां अनेक दोष उत्पन्न थाय थे.

एकचरस्य दोषानभिधाय सम्प्रति गुरुनिकटस्थितस्य मुनेः कर्तव्यं दर्शयति—  
'तद्दृष्ट्या' इत्यादि । 'तत्संज्ञी' संज्ञानं संज्ञा तस्य=गुरोः संज्ञा तत्संज्ञा, सा  
अस्यास्तीति तत्संज्ञी गुरोरिद्वित-चेष्टितज्ञः, तन्निवेशनः=गुरुकुलनिवासी, 'तत्पुर-  
स्कार.' तस्य=गुरोः पुरस्कारः=विनयवैयावृत्त्यादिनिखिलकार्यकरणेऽग्रेसरो मुनिः,  
'तद्दृष्ट्या' तस्य=गुरोर्दृष्टिरभिप्रायस्तया ।

यद्वा—'तद्दृष्ट्या' तस्मिन्=निरवधानुष्ठाने दृष्टिस्तया । 'तन्मुक्त्या'  
तेन=गुरुणा कथिता मुक्तिः—सर्वविषयविरतिस्तन्मुक्तिस्तया विचरेत् । सर्वदा गुरु-

एकाकी विहार करनेवालों के दोषोंका कथन कर अब सूत्रकार गुरुके  
निकट बसनेवाले मुनिके कर्तव्योंको बतलाते हैं—

तद्दृष्ट्या इत्यादि-गुरुकी संज्ञा जिसके है वह तत्संज्ञी है अर्थात्  
गुरुके अभिप्रायों एवं चेष्टाओंको जो जाननेवाला है । जो तन्निवेशन-  
गुरुका निवेशनवाला-गुरुकुलमें रहनेवाला है । तत्पुरस्कार-गुरुकी विनय  
वैयावृत्ति आदि समस्त कार्योंके करनेमें जो अग्रेसर रहता है ऐसा मुनि  
गुरुके अभिप्रायसे अथवा निरवध अनुष्ठानमें दृष्टिसे और तन्मुक्ति-  
गुरुसे प्रतिपादित सर्वविषयविरतिरूप मुक्तिसे विचरण करे ।

भावार्थ—(गुरुसमीप में) वर्तमान शिष्य ही (उनकी आज्ञानुसार  
संयमकी आराधनाशील बन कर सम्यग्ज्ञानादिकके लाभसे युक्त होता  
है; अन्य एकलविहारी नहीं । गुरुजनके निकट निवास करनेवाला शिष्य  
यत्मानविहारी-यत्नाको करते हुए विहार करनेका स्वभाववाला होता  
है । चित्तनिपाती-गुरुकी रुचिसे चलनेके स्वभाववाला-आचार्य महा-

अेककी विहार करवावाणाना होषेतु कथन करी हवे सूत्रकार शुर्नी निकट  
बसवावाणा मुनिना कर्तव्येने भतावे छे

तद्दृष्ट्या इत्यादि शुर्नी संज्ञा नेने छे ते तत्संज्ञी छे, अर्थात् शुर्ना  
अभिप्राये अने चेष्टा अनेने लब्धवावाणा छे ने तन्निवेशन-गुरुकुलभा रहेवावाणा छे,  
शुर्ने विनय वैयावृत्ति आदि समस्त कार्ये करवाभा ने अग्रेसर रहे छे अवा  
मुनि शुर्ना अभिप्रायथी अथवा निरवध अनुष्ठानभा दृष्टिथी अने तन्मुक्ति-शुर्वणे  
प्रतिपादित सर्वविषयविरतिरूप मुक्तिथी विचरण करे

भावार्थ—शुर्समीप रहेनार शिष्य ने तेनी आज्ञानुसार संयमने  
आराधनाशील अनीने सम्यग्ज्ञानादिकना लाभथी युक्त अने छे पणु अेकल-  
विहारी नही, शुर्जननी निकट निवास करनार शिष्य यत्नाको करतां करता  
विहार करवाना स्वभाववाणे अने छे.

समीपे वर्तमानस्तदाह्वानुसारी संयमी सम्यग्ज्ञानादिकं समते नैकाकिविहारीति हृदयम्, स च कीदृशो भवेदित्याह—‘यत्तमानविहारी’—स्यादि । यत्तमानविहारी यत्तमानः=यतना कुर्वाण सन् विहर्तुं शीलं यस्य स यत्तमानविहारी, अपि च ‘चित्तनिपाती’ चित्तं गुरोरभिरुचिस्तेन निपतितुं शीलं यस्य स चित्तनिपाती=आचार्याभिप्रायानुगमनशील’, एवं च ‘पथिनिर्घ्यायी’ कुत्रापि निर्गतस्य गुरोः पन्थानं=मार्गं निर्यातुं शीलं यस्य स पथिनिर्घ्यायी=गुरुमार्गानुगामी, उपलक्षणं श्रय्यादिप्रलोकी चाहारगवेषीत्यादेरपि बोध्यम् । अन्यथा—‘पर्ययाह्य’ परि=सर्वत आचार्यस्याग्रतः पृष्ठतः स्थित्वा अथाह्य=अदूरवर्ती गुरोरग्रहावस्थायी, प्राणान्= एकेन्द्रियादिजीवान् हृष्टान्=वीक्ष्य तदुपमर्दनं परिहरन् गच्छेत्=गुरोर्भाषा विचरेत्॥

राजके अभिप्राय अनुसार प्रवृत्तिशील होता है । पथिनिर्घ्यायी—कहीं भी पाहर गये हुए गुरु महाराज के ध्यान—अवलोकन करनेके शीलबाला—उनके आगमनकी प्रतीक्षाबाला—गुरुके मार्गपर चलनेबाला, उपलक्षणसे उनकी शय्या—आसन आदि का निरीक्षण करनेबाला, उनके लिये आहारदिककी गवेषणा करनेबाला इत्यादि बातोंका भी संग्रह कर लेना चाहिये । तथा—पर्ययाह्य—आचार्य महाराजके आगे और पीछे स्थित हो कर भी जो दूरवर्ती न हो—गुरुप्रवृत्त नियमादिकोंका पालक हो अर्थात् गुरुदेव जो भी पञ्चसंख्यण देवें उसे प्रसन्नचित्तसे ग्रहण करनेबाला हो । ऐसा मुनि ही एकेन्द्रियादिक जीवोंको आत्मौपम्येन देखकर—जान कर उनके उपमर्दनसे विरक्त हो गुरुकी आज्ञामें रहनेयोग्य है । उनकी आज्ञानुसार अपनी प्रत्येक चर्चा करनेबाला मुनि ही उनके निकट रह सकता है ॥ सू० २ ॥

गुरुनी इषिधी बालबाना स्वभाववाणा आचार्य महाराजना अभिप्राय अनुसार प्रवृत्तिशील बने छे ठाँउं पञ्च संख्ये जकार जयेछा गुरुना आजमननु ध्यान, अवलोकन कस्यानी वृत्तिवाणा तेना आजमननी प्रतीक्षावाणा, गुरुना आज पर बालबाना, उपलक्षणधी तेनी शैया—आसन आदिनु निरीक्षण कस्यावाणा गुरु भागे आचार्यदिकनी गवेषणा कस्यावाणा इत्यादि बातोंने पञ्च संग्रह करी देवे नेछे तदा पर्ययाह्य—आचार्य महाराजनी आजग बने पाछा स्थित बनीने पञ्च इस्वर्ती न होय बने गुरु—प्रवृत्त—निर्भ्राडिकोना पालक होय अर्थात् गुरुदेव ने पञ्च पञ्चसंख्ये दे तेने प्रसन्नचित्तधी अद्वय कस्यावाणा होय जेना मुनि ए एकेन्द्रियादिके छवोने आत्मौपम्यधी देवीने—अर्थात् आत्मसमभन बान्नीने तेना उपमर्दनधी विरक्त होय गुरुनी आज्ञाभा रहेबाथोअ होय छे जेमनी आज्ञानुसार चेतानी प्रत्येक चर्चा कस्यावाणा मुनि ए तेमनी शर्भीप स्वी शके छे ॥ सू० २ ॥

अपि चान्यदपि दर्शयति—‘ से अभिक्रममाणे ’ इत्यादि ।

मूलम्—से अभिक्रममाणे पडिक्रममाणे संकुचमाणे पसारमाणे विणिवट्टमाणे संपलिमज्जमाणे, एगया गुणसमियस्स रीयओ कायसंफासं समणुचिन्ना एगतिया पाणा उदायंति, इहलोगवे-यणविज्जावडियं जं आउट्टीकयं कम्मं तं परिन्नाय विवेगमेइ, एवं से अप्पमाएण विवेगं किट्टइ वेयवी ॥ सू० ३ ॥

छाया—सोऽभिक्रामन् प्रतिक्रामन् संकुचन् प्रसारयन् विनिवर्तमानः संपरि-मृजन्, एकदा गुणसमितस्य रीयमाणस्य कार्यसंस्पर्शमनुचीर्णा एके प्राणिनोऽप-द्रान्ति, इहलोकवेदनवेद्यापतितं यद् आकुट्टीकृतं कर्म तत्परिज्ञाय विवेकमेति, एवं तस्याप्रसादेन विवेकं कीर्तयति वेदवित् ॥ सू०३ ॥

टीका—‘ सोऽभिक्राम ’न्नित्यादि, सः=पूर्वोक्त आचार्यादेशकारी मुनिः, ‘ अभिक्रामन् ’=अभि=साम्मुख्येन क्रामन्=व्रजन्, प्रतिक्रामन्=प्रत्यागच्छन्, संकु-चन्=पाणिपादादीनां संकोचं कुर्वन् प्रसारयन्=तानेव संकुचितानवयवान् विस्ता-रयन्, विनिवर्तमानः=सकलसावद्यक्रियाभ्यो वि=विशेषेण निवर्तमानः=परावर्तमानः संपरिमृजन्=सं=सम्यक्तया परि=सर्वतःमृजन्=पाण्याद्यवयवान् देहन्यासस्थानं च रजोहरणादिना परिशोधयन् गुरुकुले संवसेत् । एतेषां विशेषणानामुपलक्षणतयो-

इसी विषयसे लगती हुई और भी बात कहते हैं “ से अभि-क्कमाणे ” इत्यादि ।

पूर्वोक्त रीतिसे आचार्य के आदेशका पालन करनेवाला मुनि जाते समय, आते समय, हस्त और पादादिकों के फैलाते एवं उनका संकोच करते समय सकल-सावद्य क्रियाओं से अच्छी तरह रहित होता हुआ तथा हस्त-पादादिक अवयवोंका एवं अपने उठने बैठने आदिके स्थानका रजोहरणादिकसे परिमार्जन करता हुआ गुरुकुलमें रहनेके लायक होता है । अर्थात्-गुरुकुलमें निवास वही मुनि कर सकता है जो

आ विषयने लगती थीलु पणु बात डडे छे “ से अभिक्रममाणे ” इत्यादि

पूर्वोक्त रीतिथी आचार्यना आदेशनु पालन करवापाणा मुनि जवाना समये आववाना समये, डाय अने पणु डेलावता अने येनो स डोय करता समये सकल सावद्य क्रियाओथी मारी रीते रहित अनी तेमज डाय पणु आदि अवयवोनु अने पोताना जेसवा उडवाना स्थाननु रनेडरणादिकथी परिमार्जन करता शुड-डुणमा रहेवाने लायक अने छे अर्थात्-शुडडुणमा निवास ते मुनि करी शके छे

पवेशनपार्श्वपरिवर्तनादिक्रमपि मुनीनां यथाविधि करणीयत्वेन घोष्यम् । तत्रोपब  
 श्नं गुरोरोऽपि उत्कटास्नानादिनाऽवस्थानम्, चिरावस्थानासमस्व पृथिवीप्रत्युपसंग  
 परिमार्जनपूर्वकं कुक्कुटाचरणोद्धारणेनावयवसक्रोचप्रसारादिर्क कुर्वन् मयूरवर्गी  
 वापमर्दनशक्ति एकपार्श्वस्थायी सुप्तोऽपि जाग्रदिव प्रमार्जनपूर्वकपार्श्वपरिवर्तन-  
 विधायी विहरत् । एवं च सदा सर्वथाऽप्रमत्तो मुनि सक्रमां क्रियां विदधीतेति

अपने आचार्य के आदेशका पालन करनेवाला हो, तथा यत्नपूर्वक  
 प्रत्येक गमनागमनादिक एवं हस्तप्रसारणादिक क्रियाओंका कर्त्ता हो ।  
 यत्नसे प्रवृत्तिशील साधु सकल सावधव्यापारोंसे रहित होता है ।  
 ये सूत्रस्थ विशेषण मुनियोंकी अन्य उपवेशन-बैठना, शयन-सोना  
 तथा पार्श्वपरिवर्तन-करवट बदलना आदि क्रियाओंके उपलक्षक हैं ।  
 मुनिजनोंको ये क्रियाएं भी यथाविधि ही करना चाहिये-ऐसा समझना  
 चाहिये । शुरूके आगे उत्कटादिक आसनसे बैठना उपवेशन है । इस  
 आसनसे यदि यह बहुत समय तक न बैठ सके तो पृथिवीको-बैठनेक  
 स्थानको देखभाल कर और रजोहरण से उसे परिमार्जित कर कुक्कुटा  
 चरणके उद्धारणसे शारीरिक अवयवोंकी संकोच अथवा विस्तार-  
 प्रसारना आदि क्रियाको करता हुआ वह मयूरकी तरह जीवोंकी बिरा  
 घनासे उरता हुआ एक करवटसे सोया हुआ होने पर भी जगें हुए की  
 तरह दूसरी करवट लेनेके स्थानको रजोहरणादिकसे प्रमार्जन-पूज कर  
 फिर करवट लेवे । अप्रमत्त मुनि इसी प्रकार निरन्तर अपनी समस्त  
 क्रियाओंको करे ।

ने पोताना आचार्यना आदेशनु पालन करनार होय तथा यत्नपूर्वक प्रत्येक  
 गमनागमनादिक कर्त्तने हस्तप्रसारणादि क्रियाओंना करवावाण होय, कलाधी  
 प्रवृत्तिशील साधु सकलसावध व्यापारीही रहित होय छे

आ सूत्रमा मुनिज्योनी अन्य क्रियाज्यो के नेभनु तेमज्जे यथाविधि पालन  
 करवानु होय छे ते पताववाभा आवेण छे उपवेशन-वैठनु शयन-सुपुं तथा  
 पार्श्वपरिवर्तन-पञ्चु करवटुं आ क्रियाज्यो मुनिजनोको यथाविधि करणी ज्येथको.  
 सुप्तीनां सामे उक्त-आदि व्यासनधी वैठनु ज्येथको को आसनधी ज्ये ते पथारे  
 सुभय वैसी न शके तो पृथ्वीपर-वैठवाना स्थानने इती रीते ज्येथ र्त्तेउरजुधी  
 साह करी शारीरिक अवयवोनी कुक्कुटी माहक सकोच अथवा विस्तार छत्यादि  
 कर्त्तानु प्रसाराया आदि क्रियाज्यो नियमसर करतो कहे। योऽनी माहक लवोनी  
 विशधनाधीकरतो र्त्ते कोक पठजे सुतेण होय कर्त्तने जीपु पञ्चु इरवता सञ्चैव गनी

ભાવઃ। અપ્રમાદપૂર્વક-સવલકાર્યકારિણોઽન્તરાયોદયાત્ યદ્ભવેત્તદ્દર્શયતિ-‘એકદે’-  
ત્યાદિ, એકદા=કદાચિત્, ‘ગુણસમિતસ્ય’ ગુણેન=મુનિગુણેન અપ્રમાદાદિના  
સમિતઃ=સંયુતો ગુણસમિતરતસ્ય, રીયમાણસ્ય=સમ્યગ્ગચ્છત્ પૂર્વોક્તાભિક્રમણાદિ-  
વિશેષણવિશિષ્ટસ્ય મુનેઃ ‘કાયસંસ્પર્શ’ કાયસ્ય=શરીરસ્ય સસ્પર્શઃ=કાયસસ્પ-  
ર્શસ્તમ્ સમનુચીર્ણાઃ=સંપ્રાપ્તાઃ સમ્પાતિમાદય એકે=કેચન પ્રાણાઃ=દ્વીન્દ્રિયાદયઃ  
અપદ્રાવન્તિ=મ્નિયન્તે । અત્ર મરણરૂપપશ્ચિમાવસ્થાયા ગ્રહણાત પૂર્વાવસ્થાયા અપિ  
ગ્રહણં ભવતિ; તથાહિ-કેચન હસ્તાઘાઘાતેન સંઘાત્યન્તે, અપરે મ્લાયન્તિ, અન્યે  
પરિતપ્યન્તે । અત્ર ચ કર્મવન્ધસ્ય વૈચિત્ર્ય વર્તતે, તથથા શૈલેશીમુપગતસ્ય પાળ્યાઘ-

અપ્રમાદપૂર્વક અપની સકલ ક્રિયાઓંકો કરનેવાલે મુનિજનકે  
અન્તરાયકે ઉદયસે જો હો જાતા હૈ ઉસે સૂત્રકાર “એકદા ગુણસમિ-  
તસ્ય” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશસે પ્રકટ કરતે હૈ । મુનિગુણ-અપ્રમાદસે યુક્ત ઉસ  
મુનિકે કદાચિત્ ચલતે સમયમેં, અર્થાત્-જાતે ઉઠતે વૈઠતે સમયમેં શા-  
રીરિક સ્પર્શકો પ્રાસકર દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ વિરાઘિત હો જાતે હૈ અથવા  
યહાં પર મરણરૂપ પશ્ચિમ-અન્તિમ અવસ્થાકે ગ્રહણસે ઉસસે પૂર્વ અવસ્થા  
કા મી ગ્રહણ હોતા હૈ, ઇસસે યહ બાત ઇતની ઓર સમજ્ઞ લેના  
ચાહિયે કિ કોઈ ૨ કુન્થવાદિક જીવ ઉસકે હસ્તાદિકકે આઘાતસે  
વિરાઘિત હો જાતે હૈ, કોઈ કોઈ મ્લાન હો જાતે હૈ ઓર કોઈ કોઈ  
સંતાપ પાતે હૈ ।

યહાં પર કર્મવન્ધકી વિચિત્રતા હૈ, જૈસે—શૈલેશી અવસ્થાસંપન્નકે

રનેહરણાદિક્થી એ સ્થાન પુણને પડખુ બદલે આ રીતે મુનિએ નિરન્તર પોતાની  
બધી ક્રિયાઓ કરવી નેઈએ

પ્રમાદરહિત પોતાની બધી ક્રિયાઓ કરનાર મુનિજનને કોઈ કોઈ વખત  
અન્તરાયના ઉદયથી ને થાય છે તે સૂત્રકાર “એકદા ગુણસમિતસ્ય” ઇત્યાદિ  
સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરે છે-મુનિગુણ અપ્રમાદથી યુક્ત એવા મુનિને કદાચ આલતા  
સમયે અર્થાત્ આવતા-જતા, ઉઠતા બેસતાના સમયે શારીરિક સ્પર્શ પ્રાપ્ત  
કરી દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ વિરાઘિત બની જાય છે અથવા અહિં પર મરણરૂપ  
પશ્ચિમ-અન્તિમ અવસ્થાના ગ્રહણથી એને એની પૂર્વ અવસ્થાનુ પણ ગ્રહણ થાય  
છે આથી એ વાત સમજી લેવી નેઈએ કે કોઈ કોઈ કુન્થવાદિક જીવોની તેના  
હસ્તાદિકના અડવાથી વિરાઘના થઈ જાય છે કોઈ કોઈ જીવ મ્લાન થઈ જાય  
છે, કોઈ કોઈ સંતાપ કરે છે

અહિંયા કર્મબંધનની વિચિત્રતા છે. જેમ કે-શૈલેશી-અવસ્થા-સંપન્નના

વચસ્પર્શજનિત મશકાદિસત્ત્વઘાતેऽપિ વન્ધહેતુમૂલાત્મવિપરિણામામાનાન્નૈય  
કર્મવધો મન્નિસુમર્હતિ, ઉપશાન્તક્ષીણમોહસયોગિકેવલ્લિન્નમ સામાયિકઃ કર્મવન્ધો  
જાયતે, સ્થિતિહેતુક્રકપાયામાવાત્ । અત્રાયં વિવેકઃ—

પ્રથમસમયે વન્ધો દ્વિતીયસમયે વેદન તૃતીયે ચ નિર્મરણં જાયતં, ઇતિ  
તૃતીયસમયસ્ય નિર્જરસામાયિકત્વાત્ સામાયિકત્વેન પ્રતિપાદનમ્ ।

અપ્રમત્તસંયતે કર્મવધો જઘન્યતોઽન્તર્મુહર્ત્તસ્થિતિકઃ, ઉત્કૃષ્ટશાન્તકોટિ  
કોટિસ્થિતિકઃ । પ્રમત્તસયતેરપ્યનાકુટ્ટિકયા મવર્ષમાનસ્ય મ્વચિત્ક્રાચિત્ કરચર  
હસ્તાદિક અવયવકે સ્પર્શસે મશકાદિક પ્રાણિયોક્તી ચિરાચના મી હો  
જાતી હૈ તો મી વધકે કારણમૂલ આત્માકે પ્રમાદાદિરૂપ પરિણામક  
અભાવ હોનેસે અનેકે કર્મવધ નહીં હોતા હૈ । ઉપશાન્ત મોહ, ક્ષીણમોહ  
ઔર સયોગી કેવલીકે યોગકા સઙ્ગાવ હોનેસે એકસમયસ્થિતિક સાત્વાવેદ  
નીય કર્મકા વધ હોતા હૈ; ક્યોં કિ અનેમ્ સ્થિતિકા કારણમૂલ કપાય  
કા અભાવ હૈ । ઘહાં યહ સમજના ચાહિયે—

પ્રથમ સમયમ્ વધ, દ્વિતીય સમયમ્ વેદન, ઔર તૃતીયમ્ વસ વધે  
હૃષ્ટ કર્મકી નિર્જરા હોતી હૈ । હસ પ્રકાર તૃતીય સમયકો નિર્જરસામા  
યિક હોનેસે સામાયિકરૂપસે કહા હૈ ।

અપ્રમત્તસયતિમુનિકા કર્મવધ જઘન્ય અન્તર્મુહર્ત્ત ઔર ઉત્કૃષ્ટ  
અન્તઃકોટિકોટિસ્થિતિચાલા હોતા હૈ । અનાકુટ્ટિકા (અજાનપને)સે  
પ્રવૃત્ત પ્રમત્તસંયતિ સાધુકે હાથ પૈર ઔદિકે સંઘટનસે ક્લાપિત્ કહીં  
કિસી પ્રાણીકી ચિરાચના હો જાય તો વસસે અનેકા કર્મવધ જઘન્ય

હસ્તાદિક અવયવના સ્પર્શમી મશકાદિક પ્રાણીઓની વિરાચના પણ ઘઈ વ્ય  
હે તે પણ બંધના કારણમૂલ આત્માના પ્રમાદાદિરૂપ પરિણામને અભાવ  
હોવાથી એને કમ બંધન થતું થી ઉપશાન્તમોહ, ક્ષીણમોહ અને સયોગી કેવલીને  
યોગને સદ્ભાવ હોવાથી એકસમયસ્થિતિક સાત્વાવેદનીય કર્મને વન્ધ યામ  
હે કેમકે આમાં સ્થિતિના કારણમૂલ કપાયને અભાવ છે અહિં એ સમજવું જોઈએ—

પ્રથમ સમયે વધ, બીજે સમયે વેદન, અને ત્રીજે સમયે એના વધ  
ચેલા કર્મની નિર્જરા અને છે આ રીતે ત્રીજા સમયને નિર્જર સામાયિક હોવાથી  
સામાયિક રૂપથી કહો છે

અપ્રમત્ત સયતિ મુનિના કર્મવધ જઘન્ય અન્તર્મુહર્ત્ત અને ઉત્કૃષ્ટ  
અન્તઃકોટીકોટીસ્થિતિવાલો હોય છે અભાવપણથી પ્રવૃત્ત પ્રમત્તસયતિ  
સાધુના હાથ પગ આદિના અઠવાથી કદાચ કોઈ સ્થળે કોઈ પ્રાણીની વિરાચના ઘઈ

गाद्यवयवसंस्पर्शात् प्राण्युपघातादौ जघन्यत उत्कृष्टतश्च कर्मबन्धः पूर्वोक्त एव विशेषिततरः । अयं कर्मबन्धस्तस्मिन्नेव भवे क्षीयते इति सूत्रेण दर्शयति—‘इह०’— इत्यादि—एतेषां यत् कर्म तदिहलोकवेदनवेद्यापतिम्—इह=अस्मिन्नेव लोके=भवे वेदनं=भोगः इहलोकवेदनम्, तत्र-वेद्यम्—प्रकरणानुरोधात् प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम् =इहलोकवेदनवेद्यम् तत्र आपतितं=तत्कारणत्वेन समायातम्=इहलोकवेदनवेद्यापतितं वर्तमानभवीयभोगानुबन्धि भवतीत्यर्थः । आकुट्टीकृतकर्मणि यत्कर्त्तव्यं तद् दर्शयति—‘जं’ इत्यादि, मुनिः यत्कर्म आकुट्टीकृतम् आकुट्ट्या=आभोगेन इच्छयेत्यर्थः, कृतं=विहितं कर्म आकुट्टीकृतम्, प्राणिघातेन तदिच्छया कायसंघटनादिना च जातं यत्कर्म ज्ञानावरणीयादि तज्जनकं वा प्राणातिपातादिरूपकर्म तत् सर्वं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहृत्य च विवेकं=दशप्रकारप्रायश्चित्तान्यतमग्रहणरूपं यद्वा विवेकं पृथग्भावं पुनरकरणरूपम् एति=प्राप्नोति, आकुट्टीकृतकर्मणोऽपि तपसा छेदेन पुनर्व्रतारोपणेन तथा घोरतरतपः सयमवैयावृत्त्यादिसमाराधनेन च तस्मिन्नेव भवे कर्मबन्धापनयनं भवतीति भावः । विवेकवान् मुनिस्तथा समाचरति येन कर्मबन्धो न भवतीति तात्पर्यम् ।

और उत्कृष्ट पूर्वोक्त स्थितिवाला होता है । परन्तु अप्रमत्त मुनिसे प्रमत्त मुनिके विशेषतर होता है । इस कर्मबन्धका इसी भवमें क्षय हो सकता है । इसीको सूत्रसे दिखलाते हैं—‘इह०’ इत्यादि—

इनका जो पूर्वोक्त कर्मबन्ध है, वह इहलोकवेदनवेद्यापतित है । अर्थात्—इसी भवमें भोगमें आकर नष्ट होनेवाला होता है । आकुट्टिका से किये गये कर्ममें क्या करना चाहिये, वह ‘जं’ इत्यादिसे दिखलाते हैं । प्राणिघातसे, प्राणिघातकी इच्छासे तथा कायसंघटन आदिसे जो ज्ञानावरणीयादि कर्म उत्पन्न हुए तथा उनके जनक प्राणातिपातादि कर्म उत्पन्न हुए तथा उनके जनक प्राणातिपातादि कर्म आचरित हुए, उनको ज्ञपरि-

ण्य तो ऐथी ऐना कर्मबन्ध न्धन्य अने उत्कृष्ट पूर्वोक्त स्थितिवाला अने छे परतु अप्रमत्त मुनि करता प्रमत्त मुनिने विशेषतर कर्मबन्ध थाय छे आ कर्मबन्धने आ न लवमा क्षय थर् शकै छे अने सूत्रथी अतावेले छे. “इह” इत्यादि

आने के पूर्वोक्त कर्मबन्ध छे ते धल्लोकवेदनवेद्या-पतित छे अर्थात् आ न लवमा लोगववा अने नष्ट थवावाणे होय छे आकुट्टिकाथी करायेला कर्ममा शु करवु जेधये, आ “जं” इत्यादिथी अतावेले छे—प्राणिघातथी, प्राणिघातनी इच्छाथी, तथा कायसंघटन वगैरेथी के ज्ञानावरणीयादि कर्म उत्पन्न



कर्मविवेकमाह—' एषमित्यादि, वेदवित् स्वसमयपरसमयस्तीर्यकरो गणघर  
 अतुर्दक्षधरो वा एषं=पूर्वोक्तप्रकारेण वक्ष्यमाणप्रकारेण वा अप्रमादेन=प्रमादवर्जनैः  
 दक्षप्रकारमायुधिसेषु कस्यचन सम्पगाचरणेनेत्यर्थ , तस्य कर्मणो विवेकं पृथग्मा  
 वमभावं वा कीर्षयति=कथयति ॥ सू० ३ ॥

ज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यान परिज्ञासे परिहार कर मुनि विवेकको  
 अर्थात् दशविध प्रायश्चित्तोंमें किसी एकको ग्रहण करके अथवा पूर्वोक्त  
 आचरण फिर कमी न करना, इस प्रकार विवेकको प्राप्त करता है।

जान बूझ कर जिन्होंने प्राणिघात आदि किया, ऐसे मुनिका भी  
 कर्मबन्ध तपसे, छेदसे, कुपारा वीक्षा देनेसे तथा घोरतर तप संयम वेया-  
 वष आदिके समाराधनसे उसी भवमें नष्ट हो जाता है। समीक्षा तात्पर्य  
 यह है कि विवेकवान् मुनिको वैसा आचरण करना चाहिये, जिससे  
 कर्मबन्ध न हो, प्राणियों की हिंसासे, इच्छासे और शारीरिक संघटन  
 भाविसे उत्पन्न क्रुधा जो ज्ञानावरणीयादिक कर्म है, अथवा इस कर्मका  
 उत्पादक जो प्राणालिपातादिकरूप कर्म हैं, उन मयका अपरिज्ञासे जान  
 कर और प्रत्याख्यान परिज्ञासे परित्याग कर दश प्रकारके प्रायश्चित्तोंमें  
 से एक प्रायश्चित्तरूप जो विवेक नामका प्रायश्चित्त है उसका जो पालन  
 करता है वह विवेकवान है। अथवा-विवेक शब्दका अर्थ-पृथग्भाव  
 भी है। पृथग्भावाका अर्थ है-जिस कार्यका त्याग कर दिया है उसका

भाव तथा तेना क्वचिद् प्राणालिपातादि कर्म आवृत्ति होने तेने ज्ञ-परिज्ञाभी  
 विनाही अने प्रत्याख्यान परिज्ञाभी परिहार करी मुनि विवेकने अर्थात् दशविध  
 प्रायश्चित्तमांसा ठोड् छेकने अक्षय करी अथवा पूर्वोक्त आचरण करी कडि न  
 करवानु अ प्रकाशना विवेकने प्राप्त करे छे

समञ्जसा छत्ता लेखे प्राणघात उत्थादि कर्तुं जेवा मुनिनां कर्मण ध, तपभी  
 छेदभी, वीछ वषत वीक्षा देवाधी तथा घोरतर तप, संयम, वेयावष आदिना  
 समासधनभी जे न भवमां नाश पाये छे. ज्ञान तात्पर्य जे छे ते विवेकवान  
 मुनिजे जेनु आचरण करुं जेछेजे लेखी कर्मणन्ध न बाध. प्राणालिपाती द्विसाधी,  
 प्राणघातनी उत्थाधी अने शारीरिक संघटन आदिभी उत्पल भवेत्ते जे ज्ञानावर  
 णीयादिक कर्म छे अथवा अ कर्मना उत्पन्न के प्राणालिपातादिकरूप कर्म छे,  
 जे अमाने ज्ञ-परिज्ञाभी ज्ञान अने प्रत्याख्यान परिज्ञाभी परित्याग करी इस  
 प्रकारा प्रायश्चित्तमांसी जेके प्रायश्चित्तरूप के विवेक नामनु प्रायश्चित्त छे जेनु  
 जे पालन करे छे ते विवेकवान छे अथवा विवेक शब्दको अर्थ-पृथग्भाव पण  
 छे " पृथग्भावा अने अर्थ छे- जे कार्यना त्याग करी छे ते करीधी न करुं

कीदृशः पुनरप्रमादी भवतीति दर्शयति 'से पभूयदंसी' इत्यादि ।

मूलम्—से पभूयदंसी पभूयपरिन्नाणे उवसंते समिए सहिए सयाजए दट्टुं विप्पडिवेएइ अप्पाणं—किमेस जणो करिस्सइ, एस से परमारामो जाओ लोगंसि इत्थीओ, मुणिणो हु एयं पवेइयं, उच्चाहिज्जमाणे गामधम्ममेहिं, अवि निव्वलासए, अवि ओमोयरियं कुज्जा, अवि उड्ढं ठाणं ठाइज्जा, अवि गामाणुगामं दूइज्जा, अवि आहारं बुच्छिदिज्जा, अवि चए इत्थीसु मणं, पुव्वं दंडा पच्छा फासा पुव्वं फासा पच्छा दंडा, इच्चेए कळहासंगकरा भवंति, पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणाए त्तिवेमि, से नो काहिए नो पासणिए नो मामए णो कयकिरिए वइगुत्ते अज्झप्पसंबुडे परिवज्जए सया पावं, एयं मोणं समणुवासिज्जासि—त्तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—स प्रभूतदर्शी प्रभूतपरिज्ञान उपशान्तः समितः सहितः सदा यतः दृष्ट्वा विप्रतिवेदयत्यात्मानं—किमेव जनः करिष्यति, एव तस्य परमारामो जातो लोके स्त्रियः, मुनिना हु एतत्पवेदितम्, उद्वाध्यमानो ग्रामधर्मैः, अपि निर्वलासकः, अप्यवमौढर्यं कुर्यात्, अप्यूर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत्, अपि ग्रामानुग्रामं द्रवेत्, अप्याहारं व्यवच्छिन्धात्, अपि त्यजेत् स्त्रीषु मनः, पूर्वं दण्डाः पश्चात्प्रपन्नाः पूर्वं स्पर्शाः पश्चाद्दण्डाः,

फिर नहीं करना । इस विवेक प्राप्त मुनि अपनी प्रवृत्ति इस प्रकारकी रखता है कि जिससे उसे नवीन कर्मका बन्ध नहीं होता है । इस प्रकार स्व-पर सिद्धान्तवेदी तीर्थङ्कर, गणधर, अथवा चतुर्दशपूर्वके पाठी श्रुतकेवली भगवान पूर्वोक्त प्रकारसे अथवा वक्ष्यमाण प्रकारसे यही कहते हैं कि जो मुनि दश प्रकारके प्रायश्चित्तका भी सम्यक् रीतिसे सेवन करता है वह अपने कर्मोंके अभावका—इन्हें अपनी आत्मासे भिन्न करने का कर्त्ता होता है ॥सू०३॥

आ विवेक प्राप्त मुनि पोतानी प्रवृत्ति जेवा प्रकारनी राजे छे डे जेथी जेने नवीन कर्मनो अन्ध यतो नथी आ रीते स्व-पर सिद्धांतवेदी तीर्थंकर, गणधर जेने चतुर्दश पूर्वना पाठी श्रुतकेवली भगवान पूर्वोक्त प्रकारथी जेने वक्ष्यमाण प्रकारथी जे जे डडे छे डे जे मुनि इस प्रकारना प्रायश्चित्तोभाथी डोअ जेके प्रायश्चित्ततु पणु सम्यक् रीतिथी सेवन करे छे ते पोताना कर्मना अलावने जेटके तेने पोताना आत्माथी शुद्ध करवाने कर्ता जेने छे ॥ सू०३ ॥

इत्येते कर्मदासङ्करा भवन्ति; मत्पुपेक्ष्याऽऽगम्याऽऽज्ञापयदनासकनयति प्रवीमि,  
स नो कयकः नो प्राप्तिः नो कृतक्रियो नागृह्णीऽध्यात्मसंभृत' परिवर्जयेत् सदा  
पापम्, एतन्मौनं समतुवासयेदिति प्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘स प्रभूतदर्शी’ त्यादि, सः=सयमी ‘प्रभूतदर्शी’ प्रभूत=भूत-  
भविष्यद्वर्तमानकालीनं प्रमादविषयकं द्रष्टुं क्षीलं यस्य स प्रभूतदर्शी-उपार्जितकर्मणः  
कारुण्यऽप्यवश्योपमोम्यत्वेन वर्णनशील इत्यर्थः, किंच ‘प्रभूतपरिज्ञानः’ प्रभूत=  
प्रभुरं परिज्ञानं प्राणिपरिपाळनोपायस्य संसारापवर्गहेसोश्च सम्यग्ज्ञानं यस्य स  
प्रभूतपरिज्ञान-इयापादेयपरिज्ञानकुञ्जल, किंच उपशान्तः=इन्द्रियनोइन्द्रियोप  
शमन कपायोपशमनेन च शान्तिमुपयात्, समितः=ईयादिपञ्चसमितिभिः संयुक्तः,  
यद्वा-‘समित’ सम्=सम्पत् रत्नत्रयम्-इतः=प्राप्त । सहितः=ज्ञानादि-

મુનિ કિસ પ્રકાર અપ્રમાદી હોતા છે, ઇસ યાતકો કહતે છે “સે  
પમૂપદંસી” ઇત્યાદિ—

મૂત, ભવિષ્યત્ ઓર વર્તમાનકાલ સમ્યગ્ની પ્રમાદકે વિષયકો વેચ્ચને  
કા જિસકા સ્વભાવ હોતા છે વહ પ્રમૂતદર્શી છે-અર્થાત્-ઉપાર્જિત કર્મ  
કાલત્રયમેં મી અન્યથા નહીં હોતા છે, ડસકા ફલ અવશ્ય ભોગના પડતા  
છે-ઇસ પ્રકારકી નિસ્સંદેહ દષ્ટિસે યુક્ત છે, પ્રમૂતજ્ઞાની છે-અર્થાત્-પ્રાણિ  
ગણકી રક્ષાકે ઉપાય, સંસાર ઇવં અપવર્ગકે કારણોં કા જિસે સમ્યક્જ્ઞાન  
છે, હેય ઓર ઉપાય તત્ત્વકા જિસે વાસ્તવિક ભાન છે, વહ પ્રમૂતજ્ઞાની છે।  
જો ઉપશાન્ત છે, ઇન્દ્રિય ઓર નોઇન્દ્રિય-મનક ઉપશમ તથા કપાય કે  
ઉપશમસે જો શાન્તિકો પ્રાપ્ત હો પુકા છે, ઇયાં આદિક પાંચ સમિતિયોં  
સે જો યુક્ત છે, અથવા-સમ્-સમ્યક્ રત્નત્રયકી જિસે પ્રાપ્તિ છે, સહિત-

હેવા પ્રકારને મુનિ અપ્રમાદી હોય છે આ વાતને કહે છે “સે પમૂપદંસી” ઇત્યાદિ.

મૂત ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાળ સમ્યગ્ની પ્રમાદના વિષયને દેખવાને જેનો  
સ્વભાવ છે તે પ્રમૂતદર્શી છે અર્થાત્ ઉપાર્જિત કર્મ કાલત્રયમા પણ નિષ્ફળ  
બનતું નથી તેથી તેનું જળ અવસ્થા સેજવવું પડે છે આ પ્રકારની અસંકોચ  
દષ્ટિથી મુક્ત છે પ્રમૂતજ્ઞાની છે-પ્રાણિજલુની રક્ષાને ઉપાય, સંસાર અને મોક્ષનાં  
કારણોં જેને સમ્યક્ જ્ઞાન છે હેય અને ઉપાયે તત્ત્વને વાસ્તવિક ભાન છે  
તે પ્રમૂતજ્ઞાની છે જે ઉપશાન્ત છે-ઇન્દ્રિય અને નોઇન્દ્રિય-મનના ઉપશમથી  
તથા કપાયના ઉપશમથી જે શાન્તિને પ્રાપ્ત કરી શકે છે, ઇયાં આદિક પાંચ  
સમિતિઓથી જે મુક્ત છે અથવા સમ્-સમ્યક્ રત્નત્રયની જેને પ્રાપ્તિ છે, જ્ઞાન

पञ्चाचारैः संपन्नः, एवं 'सदायतः' सदा=सर्वदा यतः=यतनावान् प्रमादरहितः । एतादृशो मुनिर्गुरुसमीपस्थितः कर्मणोऽपनयनं करोति ।

तस्य योषिदादिपरीषहोपनिपाते यद्विधेयं तद्दर्शयति—'दृष्ट्वा'—इत्यादि, पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टः प्रमादवर्जितो मुनिः आत्मानं=स्वं दृष्ट्वा उपसर्गविधान—तत्परं स्त्रीजनं विप्रतिवेदयति=समालोचयति, किं समालोचयतीत्याह—'किमेष' इत्यादि, एष जनः=स्त्रीजनः ममापकारं किं करिष्यति? न किमपीत्यर्थः, यद्वा—रोगाभिभवादौ एष स्त्रीजनो मम तस्यामवस्थायां न त्राणाय वा शरणाय वा स्यादतः किं करिष्यति=न किमपीत्यर्थः । स्वीकृतपञ्चमहाव्रतस्य विमलकुलललाम-

ज्ञानादिक पांच आचारों से जो संपन्न है, तथा सदा जो यतनावान् है, प्रमादरहित है, ऐसा मुनि गुरुके समीप रह कर कर्मोंका नाश करता है ।

इस मुनिके स्त्री आदि द्वारा परीषह तथा उपसर्ग उपस्थित किये जाने पर इसे जो विधेय है, वह 'सूत्रकार "दृष्ट्वा-इत्यादि" पदोंद्वारा स्पष्ट करते हैं—वे कहते हैं कि इन पूर्वोक्त विशेषणोंसे युक्त एवं अप्रमादी वह मुनि जब इसके उपर स्त्री आदिकों के द्वारा उपसर्ग आदि किये जाते हैं—अथवा उपसर्ग करने में तत्पर यह जब उन्हें देखता है, तो विचारता है कि यह स्त्री मेरा क्या अपकार करेगी, कुछ भी नहीं । अथवा जिस समय मेरे कोई रोग वगैरहका उपद्रव होगा उस अवस्था में भी यह उस रोगसे न मुझे बचा सकती है और न मुझे कोई सहारा ही दे सकती है । मैं पंचमहाव्रतों का धारी हूं । मैं इस मुनिकुलका तिल-

दिक पाय आयाशेथी ने सहित छे तथा ने यतनावान छे—प्रमादरहित छे येवो मुनि गुरुना समीप रहने कर्मोना नाश करे छे

स्त्री आदि द्वारा परीषह तथा उपसर्ग यता, आ मुनिनु ने कर्तव्य छे, तेने सूत्रकार "दृष्ट्वा-इत्यादि" पदोंद्वारा स्पष्ट करे छे. ते कहे छे के—आवा पूर्वोक्त विशेषणोथी युक्त अने अप्रमादी ते मुनि न्यारे तेना उपर स्त्री विगेरे आदि द्वारा उपसर्ग वगेरे करवामा आवे छे, अथवा उपसर्ग करवामा तत्पर ते न्यारे तेने हेणे छे, तो ते विचारे छे के आ स्त्रीजन भारे शु अपकार करशे? काठ पणु नही अने ने समय मने रोग वगेरेने उपद्रव थशे अे अवस्थामा पणु ते स्त्री अे रोगथी ग्यावी शकशे नहि अने मने साथ पणु आपी शकशे नहि. हु पाय—महाव्रतधारी छु, हु आ मुनिकुलोना तिलक-

भूतस्य तिरस्कृतविषयसुखस्युत्सुहस्यावधूतजीवनमनोरथस्य मम किमप्य स्त्रीजनं  
करिष्यतीति सततसमालोचयतीत्यर्थः । एषः=स्त्रीजनस्तु तस्य प्रमादिन परमारामं  
परमानन्दस्थानं जातोऽस्ति, किन्तु न ममाप्रमादिनः, यतो हि स्त्रियाः=नार्याः लोके  
=विषयिभोके मोहात्पादिन्यो भवन्ति, न सयतल्लोकः ।

एतत्कथनं न स्वमतिकल्पितमिति दर्शयति—'मुनिने' इत्यादि एतद्=सर्वं  
पूर्वाक्तं वक्ष्यमाणमुपदेशवचनं च 'हु' अवधारणे, मुनिना=तीर्थहरादिना प्रवेदितं  
=द्वादशविधपर्यदि प्ररूपितम् ।

कर्मत इ । वैषयिक स्पृहाका मैं अन्तकर चुका हूं, अपने जीवनके पहिले  
अथत अवस्थाके समस्त मनोरथों को त्याग चुका हूं, मैं जब इस परि-  
स्थितिमें उपस्थित हूं तो अब इस स्त्रीद्वारा कृत उपसर्गोंकी मैं अपेक्षा  
ही क्या करूं । इसमें क्या शक्ति है जो मुझे लाख उपसर्ग करने पर भी  
अपने पयसे विचलित कर सके ? हां ! यह तो उन्हें ही हर तरफसे अपन  
लक्ष्यसे भ्रष्ट कर सकती है जो प्रमादमय आनंदके इच्छुक हैं—प्रमादी  
हैं, मुझ अप्रमादी को नहीं । क्योंकि स्त्रियोंका वश विषयीलोकमें कार्य  
कारी होता है, सयमीलोकमें नहीं ।

इस कथनमें स्वमतिकी कल्पनाका निषेध करते हुए सूत्रकार कहते  
हैं "मुनिना" इत्यादि । यह समस्त पूर्वोक्त कथन तथा आगे और  
भी जो कुछ कहा जानेवाला है वह सब तीर्थहर गणधरादि द्वारा ही  
उपदिष्ट है । यहाँ "हु" शब्द अवधारणार्थमें है । उन्होंने यह सब

भूत हूँ, वैषयिक स्पृहानो मैं त्याग करे हूँ — पितृणां जपनना पडेवाना  
अथत अवस्थाना समस्त मनोरथाना त्याग करी चुका हूँ, हुँ न्यारे आ  
परिस्थितिमा उपस्थित हूँ तो अब आ स्त्रीजनद्वारा अपात्वा उपसर्गोंनी हुँ  
अपेक्षा केम शक्ती शकु ? तेनाभां शु शक्ति छे के मने लाख उपसर्ग करवा  
छवा यखु मारा पितृणां पदथी विचलित करी शके ? हां ! जे ते जेने न  
लक्ष्यी ब्रष्ट करी शके छे के जे प्रमादमय आनन्दनो उच्छिन्नार — प्रमादी छे मारा  
नेवा अप्रमादीने नहँ । केम के स्त्रीजने पश विषयी लोको न अनत्वा होय छे  
नयभी जेने पश अनत्वा नथी ।

आ वातभां स्वमतिकी कल्पनाको निषेध करीने सूत्रकार कहे छे "मुनिना"  
इत्यादि आ आशुभि पूर्वोक्त कथन जने अबे पछी कहेवाया अपनार कथन  
आ अशु तीर्थहर जखुधर आदि द्वारा न उपदिष्ट छे अरि "हु" शब्द

तमेव वक्ष्यमाणोपदेशमाह—‘उद्वाध्यमान’ इत्यादि, हे शिष्य ! यदि मुनि-  
‘ग्रामधर्मैः’ ग्रामाणाम्=इन्द्रियसमूहानां धर्माः=स्वभावाः=ग्रामधर्मास्तैर्ग्रामधर्मैः  
स्वस्वविषयसमासक्तस्वभावैः ‘उद्वाध्यमानः’ उत्=प्रावल्येन वाध्यमान=परिपी-  
ड्यमानो भवेत्तदा निर्वलाशकः’ ‘निर्वलं=प्रणीतरसवलरहितपुराणकुलत्यादिकम्  
अम्लतक्रमिश्रितं बल्लचणकादिनिष्पादितपर्युषितकरपट्टिकादिकं वा अश्नाति=शुद्धक्ते  
यः स निर्वलाशकः, नीरसाशनेन ग्रामधर्मस्यावश्योपशमसम्भवात्, ‘अपि’ शब्दः  
सम्भावनायाम् । निर्वलाशनेऽपि यदि न मोहोपशमस्तत किं कुर्यादित्याह—‘अप्य-  
वमौर्दर्य’—मित्यादि, जीवनयात्रानिर्वाहार्थं केवलम् अवमौर्दर्यम्=ऊनोदरिक्तपो-

विषय १२ प्रकार की परिषद में प्रतिपादित किया है। वक्ष्यमाण विषयको स्पष्ट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं “उद्वाध्यमान” इत्यादि। हे शिष्य ! यदि कदाचित् मुनि ग्रामधर्म-अपने २ विषयों में समासक्त-स्वभाववाली इन्द्रियोंसे-प्रबलरूपसे वाधित किया जाय तो उस समय उसे चाहिये कि वह निर्वल-इन्द्रियों को उत्तेजित नहीं करनेवाले रस-बलरहित ऐसे पुरानी कुलथी आदि अन्नका तथा ग्वट्टीछाछसे मिश्रित बालचणा आदिसे निष्पादित ऐसे पर्युषित (ठण्डावासी) करपट्टिका (रोटी) आदिका भोजन करे। नीरस भोजनके करनेसे ग्राम धर्मका अवश्य ही उपशमन होता है। “अपि” शब्द संभावना में है। नीरस भोजन करने पर भी यदि ग्रामधर्मका उपशमन न हो-मोहकी शांति न हो तो क्या क्या करे ? इस प्रकारकी आशंका का समाधान करनेके निमित्त सूत्रकार “अप्यवमौर्दर्य कुर्यात्” कहते हैं। जीवनयात्राके

अवधारणु अर्थभां छे तेओओ आ सधणो विषय १२ प्रकारनी परिषदमा प्रतिपादित करेले छे वक्ष्यमाणु विषयने स्पष्ट करवा भाटे सूत्रकार कडे छे “उद्वाध्यमान” इत्यादि छे शिष्य ! कदाच कोर्ध मुनि ग्रामधर्म-पोतपोताना विषयोमा समासक्त स्वभाववाणी इन्द्रियोथी प्रबल रीते वाधित करवामा आवे तो ओ समये ओखे जेध ओ के ते निर्मण इन्द्रियोने उत्तेलत नहि करवावाणा रसबलरहित ओवा पुरातन कुलथी आदि अन्ननु तथा पाटी छाशथी मिश्रित बालचणुा वगेरेथी निष्पादित ओवा ठंडी-वासी रोटीली आदिनु लोबन करे. नीरस लोबन करवाथी जे ग्रामधर्मनु उपशम न अने—मोहनी शान्ति न थाय तो शु शु करे ? आ प्रकारनी शकानु समाधान करवा निमित्ते सूत्रकार “अप्यवमौर्दर्य कुर्यात्” कडे छे अर्थात्—एवनयात्राना निर्वाह भाटे साधुबन ओवी डालतमा

विशेष कुर्यात्, ततोऽपीन्द्रियग्रामाणामनुपशम ऊर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत्=वाह ऊर्ध्वोक्तस्य  
 कायोत्सर्गेण शीतोष्णादिरूपामातापनां कुर्यादित्यर्थः । रात्रौ दिवसेऽपि वैकृद्विप्रि-  
 त्तुर्यामक्रमेण तत्र तिष्ठेत्सिन्ध्याय, तेनाप्यनुपशमे 'ग्रामानुग्रामं' ग्रामो यतो विहरति,  
 अनुग्रामो यत्र विहरति तं=ग्रामानुग्रामं ग्रामाद्ग्रामान्तरं द्रष्टेत्=विहरेत्-तदा  
 न तत्र तिष्ठेत्, एवं करणेऽप्यनुपशमे आहारमपि न्युच्छिन्द्यात् । किमहुना येन क-  
 नोपायेन मरणमपि कुर्यात् किन्तु स्त्रीषु मनो न निदध्यात् । तदेवाह-"अपि नप  
 इत्यीसु मर्णं" अपि त्यजेत् स्त्रीषु मनः, स्त्रीविषयं गतं मनो निवारयत् । न  
 तत्र मनो निदध्यादित्यर्थः । स्त्रीसङ्गिनां यद् भवति तदाह-"पूर्वं 'मित्यादि, पूर्वम्"  
 निषाह के लिये साधुजन ऐसी हस्तप्रतमें ऊनोदरी-मृन्मसे कम अल्प  
 आहार लेये । यह याद्व्यतप है । इतना करने पर भी यदि ग्रामधर्मकी  
 शांति न हो तो ऐसी परिस्थितिमें "ऊर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत्" हाथोंको  
 ऊँचा करके कायोत्सर्गपूर्वक दीत और उष्णादिरूप आतापनयोग धारण  
 करे । रात्रिमें भी एक दो तीन और चार प्रहर क्रमसे कायोत्सर्ग करे ।  
 इतने पर भी ग्रामधर्म शान्त न हो तो ग्रामानुग्राम विचरण करे । जहाँ  
 ठहरा हुआ है वह ग्राम, जहाँ जाना होता है वह अनुग्राम है । उस  
 समय बड़ा न ठहरे । फिर भी ग्रामधर्म शांत न हो तो ऐसी दृश्यामें  
 आहार का त्याग कर देवे ।

अधिक क्या कहा जाय, जिस उपायसे वैषयिक अभिलाषा उत्पन्न  
 न हो सके, मोहका उपशमन हो ऐसा ही उपाय करते रहना चाहिये ।  
 परन्तु स्त्रियों की ओर मनको नहीं लगाना चाहिये । स्त्रीसंग करनेवालों के  
 उनीदरी-मृन्मसी को छोड़ कर आहार ले, आ आहार तप छे आटवुं करवा छत्ता  
 पक्षु के आमधर्मनी शान्त न भाय तो कोवी परिस्थितिमा "ऊर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत्"  
 हाथोंने उच्य करी कायोत्सर्ग पूर्वक शीतल आने गरभीरूप आतापन योग धारण  
 करे स्त्रिणा तथा विवसना पक्षु कोठ वे त्रक्षु आने आर प्रहर क्रमसे कायोत्सर्ग  
 करे आटवुं करवा छत्ता पक्षु के आमधर्म शान्त न जाने तो गगेशाम विचरता रहे,  
 जहाँ पाते शकिये छे ते ग्राम छे जन्मा जनु छे ते अनुग्राम छे त्या को शकिये नहि छत्ता  
 पक्षु के आमधर्म शान्त न भाय तो कोवी इशामा आहारनेय त्याग करी दे पक्षु  
 शुं कहेवातु होय । न उपययी वैषयिक अभिलाषा उत्पन्न न भाय-मोहनु उप  
 शम आने कोवो उपाय करता रहेतु जोध को परतु स्त्रीको तरह मनने बाजवा  
 देतु न जोध को स्त्रीसंग करवावाण्य माटे के दु भा भोगववा पठे छे सूत्रकार

सद्गात्पूर्वं दण्डाः=तदासङ्गस्य चिरसुपुष्टीकरणायार्थाजनतत्परस्य कृष्यादिसावद्य-  
व्यापारपरस्य तिरस्कृतक्षुत्पिपासादेरप्यत्र लोके दुःखविशेषरूपाः, पश्चात्=उप-  
भोगानन्तरं स्पर्शाः=तदासेवनजन्यकर्मविपाकेन नरकादियातनाकारका दुःखविशेषा  
भवन्ति, यद्वा-पूर्वं तत्प्राप्तये दण्डाः=यष्ट्यादिप्रहाररूपाः पश्चात्=तदनन्तरं राज-  
दण्डादिजनितावयवादिच्छेदनसमुत्पन्नदुःखविशेषाः, एवं पूर्वं स्पर्शाः=आश्लेषा-  
दिना स्पर्शाः=आपातसुखविशेषाः पश्चाच्च दण्डाः=परत्र नरकपातादिरूपा इह च

लिये जिन कष्टों को भोगना पड़ता है सूत्रकार उनका वर्णन “ पूर्वदण्डा ”  
इत्यादि पदोंसे करते हैं—स्त्रीसंगको चिरकाल तक पुरिपुष्ट करनेके  
लिये कामीजन अर्थके उपार्जन करनेमें तत्पर होते हैं—अर्थ संग्रहशील  
होते हैं—कृषी आदि सावद्यव्यापारों में लगते हैं। भूख प्यास आदिकी  
बाधाएं सहन करते हैं। मतलब—सावद्य व्यापारजन्य और भूख प्यास  
आदि जन्य अनेक “ दण्ड ” दुःखविशेषोंको वे भोगते हैं। पश्चात्—स्त्री-  
सेवन से उद्भूत कर्मके विपाकसे नरकादिकों की यातनाप्रदायक दुःख-  
विशेषोंका उन्हें सामना करना पड़ता है।

अथवा—प्रथम स्त्रीप्राप्तिके लिये लकड़ी आदिके अनेक प्रहाररूप  
दण्डोंको और पीछे राजाकी तरफसे दण्डरूपमें प्राप्त अवयव आदिका  
जो छेदन है उस जन्य अनेक कष्ट कामियोंको भोगना पड़ता है। इसी  
प्रकार प्रथम स्त्री आदिके आलिङ्गनसे “ स्पर्शाः ” आपातसुखविशेष-  
काल्पनिक आनंद, पश्चात् परभवमें नरकादि गतियोंमें गमनरूप एवं

येनु वर्णन “ पूर्वदण्डा ” इत्यादि पदोर्थी करे छे स्त्रीसंगने लाभा सम्य  
सुधी परिपुष्ट करवा भाटे कामीजन धन भोगववाभा तत्पर रहे छे—अर्थसंग्रहशील  
भने छे भेती आदि सावद्य व्यापारोभा लागे छे, भूख तरस आदिनी  
विटंभण्यो सहन करे छे, मतलब सावद्यव्यापारजन्य अने भूख तरस आदि  
जन्य अनेक “ दण्ड ” दुःख वगेरेने ये लोगवे छे पछी स्त्रीसेवनथी उद्भूत  
कर्मना विपाकथी नरकादिकोनी यातनावाणु दुःखविशेषोने तेणु सामना करवो पडे  
छे अने प्रथम स्त्रीप्राप्ति भाटे लाकडीयो तेमज तेना जेवा भीन् प्रहारो तेमज  
पाछणथी रान्यता तरश्थी दंडपमा मणनार भन्धन कारागार इत्यादि अनेक  
प्रकारना दुःख कामीयोये लोगववा पडे छे आ प्रकारे प्रथम स्त्री आदिनां आलि-  
गनथी “ स्पर्शा ” काल्पनिक आनंद अने पछी परभवमा नरकादिगतियोभा  
गमनरूप, ये लोकभा हाथ, लुल, वगेरेनु छेदन जेवा अनेक दंड कामीयोये



इस्तजिहाच्छेदादिरूपा दण्डविशेषा जायते । अन्यदप्याह—'इत्येत' इत्यादि,  
इति=पूर्वोक्तदण्डस्पर्शादिमाप्त्या एते=स्त्रीसङ्गसम्मवा कामाः कलहाऽऽसङ्गरा  
भवन्ति । स्त्रीदोषहृनां नृपादीनां कुदादिना विनाशस्य सर्वजनवेष्टत्वात् । यथा-  
स्त्रीनिमित्तं क्रोध-रागयोः सम्रावस्य सर्वजनप्रसिद्धत्वात् । उपलक्षणान्मान  
मायादिकारकत्वमपि बोध्यम् । ततः किं विशेषमित्याह-प्रस्युपेक्ष्येत्यादि,  
प्रस्युपेक्ष्य=स्त्रीसङ्गस्य सर्वथाऽप परत्र च दण्डस्पर्शादिकारकत्वं कलहाऽऽसङ्कार  
कत्वमपि विचार्य भागम्य=वत्सर्वं पुबुध्वा अनासेननया=तदासेननपरिषर्जनेन  
स्वात्मानं परं वा आशापयेत्=तस्यागे नियोजयेत् इति मगबद्वाक्यमनुसृत्य तदा

इस लोकमें हाथ, जीम आदिका छेदन आदि स्वरूप अनेक-दण्ड-  
विशेष कामियों को सहना पड़ता है । इस प्रकार पूर्वोक्त दण्ड और  
स्पर्श आदिकी प्राप्तिसे स्त्रीप्रसंगसे समुद्भूत ये काम कलहके आसंगके  
उत्पन्न करनेवाले होते हैं । यह बात सर्वजन को मालूम ही है कि स्त्रीके  
निमित्तसे परस्पर अनेक राजाओं में युद्ध छिड़े हैं और वे उनके विनाश  
के हेतु हुए हैं ।

अथवा-स्त्रीप्राप्तिके लिये क्रोध और रागका सम्राव भी प्राणियोंमें सर्व-  
जनप्रसिद्ध ही है । उपलक्षणसे यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि वे  
स्त्रीसंगसे उत्पन्न काम, मान और माया आदि कषायोंके भी उत्पादक होते  
हैं । इसलिये इस स्त्रीप्रसंगको इस लोक और परलोकमें सर्व प्रकारसे  
दण्ड एवं स्पर्श आदिका करनेवाला तथा कलहके आसंगका उत्पादक  
विचार कर और इस सबको जानकर मुनिको चाहिये कि वह अपनी  
आत्माको उसके सेधन करनेके सर्वथा त्यागसे युक्त करे, तथा परको

सकन करवा पड़े छे आ प्रकार पूर्वोक्त दण्ड स्पर्श आदिनी प्राप्तिधी स्त्रीप्रसंगधी  
उत्पन्न आ काम, कलहना आसंगने उत्पन्न करनार अने छे आ बात सर्व  
जनने मालूम छे अनीय निमित्तधी परस्पर अनेक राजाओंमां युद्ध भर्ना छे अने  
तेओ ओना विनाशना हेतु अन्ना छे अथवा स्त्री प्राप्ति माटे क्रोध अने रागने समुद्भाव  
पक्ष प्राप्तिओमां सब जनप्रसिद्ध छे उपलक्षणधी आ बात पक्ष समल देवी ओछओ  
के स्त्रीसंगधी काम मान अने माया इत्यादि कषयो पक्ष उद्भवते छे  
आ माटे आ स्त्रीप्रसंगने आ दौक अने परलोकमां सब प्रकारधी दण्ड अने  
स्पर्श आदिना करवावाणा तेमक कलहना आसंगने उत्पादक छे ओवा  
विचार करी आ अधाने अक्षीने मुनिओ ओछओ के पीताना आत्माने तना

सद्गा दुःखकराः कलहाऽऽसङ्गकराश्चेति तत्परिहारं च सर्वं कथयामि। अन्यदपि परित्यागसाधनमाह 'स' इत्यादि, सः=स्त्रीसङ्गजनितनरकनिगोदादिकटुकफलाभि-  
ज्ञत्वेन तत्परिहारी मुनिर्नो कथकः स्त्रीणां जातिकुलनेपथ्यशृङ्गारादिकथाकारको न  
भवेद्रहसि तस्यै धर्मादिकमपि न कथयेदिति भावः। एवं नो प्राश्निकः प्रश्नं  
करोतीति प्राश्निकः=स्त्रियं न किमपि पृच्छेत्, तथा हि—कीदृशस्ते पतिः? त्वां  
सम्मानयति न वा? कथं त्वं खिन्नेव प्रतिभासि? तव का सन्ततिः पुत्रो वा पुत्री?  
परिणीता पुत्री न वा? कस्मै दत्ता? दास्यसि न वा? स कीदृशः? धार्मिको धनि-

भी उसके सेवनका सर्वथा त्याग करावे। इस प्रकार भगवानके वचन  
अनुसार स्त्रीप्रसंगको दुःखप्रद एवं कलहासंगकारक जान कर मैंने ये सब  
उसके परित्याग का प्रकार कहा है। मुनिको इतना और भी करना  
चाहिये कि वह कभी भी उसकी जातिकी, उसके कुलकी, उसके  
वेष-भूषाकी तथा शृङ्गार आदिकी चर्चा नहीं करे और न उसके लिए  
एकान्तमें धर्मादिक का उपदेश ही दे। न स्त्रीसे उसके विषयकी कोई  
बात करे अर्थात्—“तुम्हारा पति कैसा है? तुम्हारा वह आदर करता है  
या नहीं? आज तुम उदास सी क्यों मालूम देती हो? तुम्हारे क्या  
संतान है पुत्र है या पुत्री? तुमने पुत्रीका विवाह कर दिया है कि नहीं?  
यदि कर दिया है तो किसके साथ किया है? यदि नहीं किया है तो  
क्यों नहीं किया? तुम्हारा जमाई कैसा है—धर्मात्मा है? धनिक  
है? या नहीं?” इत्यादि रूपसे पूछनेसे मुनिको अपने चारित्र्यमें दूषण

सेवनथी सदा हर राप्ते अने पीनअने पणु अनेना त्याग भागे' होरे अने  
सर्वथा अनेना त्याग करावे आ प्रकारे लगवानना वचन अनुसार स्त्री-प्रसंगने  
दुःखप्रद अथवा कलह आसंगकारक लक्ष्मीने मे आना परित्यागने प्रकार कहेल  
छे मुनिअ अटलु' अथवा पणु करणु लेछ'अ के ते क्यारेथ तेनी नतिनी, अनेना  
कुणनी तेमज शृंगारादिकनी क्यथा न करे अने तेने अकान्तमा कही धर्मादिक  
उपदेश पणु न आये तेमज स्त्री साथे तेना विषयनी कोछ बात न करे अर्थात्—  
तमारो पति केवो छे? तमारो अ आदर करे छे के नहिं? आणे तमे उदास  
केम हेभाव छे? तमारो शु संतान छे, पुत्र छे के पुत्री? तमे पुत्रीने विवाह  
करी दीयो छे के नहिं? क्यो छे तो कोनी साथे क्यो छे? नथी क्यो तो केम  
नथी क्यो? तमारो जमाई अने तेनु कुदुय केम छे? धर्मात्मा छे? धनिक  
छे? के केम धत्यादि रीते पुछवाथी मुनिने चोताना चारित्र्यमा दूषण आवे छे.

क्यास्ति न वा ? इत्यादिवाक्यैः प्रभकरणे चारिभद्रोपः सम्मषतीति नैव कदाचि-  
दपि प्रभं कुर्यादिति भावः। अन्यथ नो मामकः=संसारवस्यापरिणीतायामपि तस्यां  
न ममत्वं कुर्यात् किं पुनरन्यस्याम् । एवं नो कृतक्रियः - कृता=विहिता क्रिया=  
स्त्रीसङ्गप्राप्त्यर्थमद्रोपाङ्गादिवेष्टारूपा मनस कृतक्रियो न भवेत् । अनेन काय  
योगो निरुध्यते । एवं वाग्गुप्तः वाचा गुप्तो वाग्गुप्तः=वाचंयमः, स्त्रिया सह रहसि  
वार्तालापादिकं न कुर्यादित्यर्थः, किञ्च-अध्यात्मसंभृतः-आत्मनि-अन्तःकरणे  
इत्यध्यात्मं तेन संभृतः=संवरयुक्त निवृत्त इत्यर्थः, अनेन मनोनिरापो वर्धितः,  
आता है । इसलिये ऐसे प्रभ मुनिजनको स्त्रियोंसे करनेका निषेध है ।

इसी तरह मुनिको चाहिये कि यह अपनी संसारदृशामें विबाही  
हूई स्त्रीमें भी ममत्त्व न रखे-करे । जब उसे निज स्त्रीमें भी ममत्त्व करने  
के त्यागका आदेश है तो फिर मला ! वह अन्य स्त्रीमें ममत्त्व भी कैसे  
कर सकता है, अर्थात्-नहीं कर सकता । मुनिको कृतक्रिय भी नहीं  
होना चाहिये-स्त्रीप्रसंगकी प्राप्तिके निमित्त उसे अंग और उपाङ्गादिककी  
वेष्टाका सर्वथा त्यागी होना चाहिये । इस कथनसे उसे काययोगके  
निरोध करनेका आदेश दिया गया है । अर्थात् इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे  
काययोगका निरोध होता है । मुनिको वाग्गुप्त-वाचंयम होना चाहिये,  
एकान्तमें स्त्रीके साथ वार्तालाप आदि नहीं करना चाहिये । इससे वचन  
नयोगका निरोध होता है । इसी प्रकार मुनिको अध्यात्मसंभृत होना  
चाहिये-मनोयोगका निरोध करना चाहिये । इस प्रकारसे अपनी प्रवृत्ति

आ आरे आना प्रभो स्त्रीको साथे करवा मुनिजन आरे निषेध छे आ प्रभारे  
मुनिजने ओरछे छे ते पोतानी संसारी इशामा विवाहित धर्मेली  
स्त्रीमा पण ममत्व न शजे. अन्यारे तेने पोतानी स्त्रीधी पण ममत्व न लभ  
वाने आदेश छे त्तारे जील स्त्रीकोमा ते ममत्व कर् शीते करी शके ?  
अर्थात् नहि करी शके मुनिजे कृतक्रिय पण न जनपु ओरछे. स्त्रीप्रसंगनी  
प्राप्तिना निमित्त तेने आन तेम उपागादिकनी वेष्टाना त्यागी जनपु ओरछे.  
आ कथनधी तेने काययोगना निषेध करवाने आदेश अपायेस छे अर्थात् आ  
प्रकारनी प्रवृत्तिधी काययोगने निषेध साथ छे मुनिजे वाग्गुप्त-वाचंयम  
जनपु ओरछे. ओकंतमा स्त्रीनी साथे वार्तालापादिनहि करवे ओरछे. आनाधी  
वचनयोगने निषेध साथ छे आ शीते मुनिजे अध्यात्मसंभृत जनपु ओरछे  
ओरछे मनोयोगने निषेध जनपु ओरछे. आ प्रकारनी पोतानी प्रवृत्ति शभनाए

एतादृशः सन् मुनिः सदा=सर्वकालं पापं=स्त्रीसङ्गजनितं दुष्कृतं पापजनकं कर्म वा मैथुनादिकं परिवर्जयेत्, उपलक्षणं प्राणातिपातादिपरित्यागस्यापि। उपसंहरन्नाह-  
'एत' दित्यादि-एतत्=उद्देशारम्भतो यदुक्तं तत् सर्वं "मौनं"=मुनेः=संयतस्याऽय  
मौनस्तं संयमं समनुवासयेत्=परिपालयेत् इति। ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥मू०४॥

॥ पञ्चमाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशः समाप्तः ॥ ५-४ ॥

रखनेवाला मुनि सदा स्त्रीप्रसंगजनित दुष्कृत अथवा पापजनक मैथुना-  
दिक कर्मसे निवृत्त होता है। प्राणातिपातादिक पापकर्मका भी यह  
उपलक्षक है, इससे निवृत्त होनेसे मुनि हिंसादिक पापकर्मोंसे भी  
निवृत्त हो जाता है ऐसा समझ लेना चाहिये! इस प्रकारका उपसंहार  
करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि मुनि इस मौन-संयम का सदा पालन  
करे। "ब्रवीमि" इस पदका अर्थ पहिले कह ही दिया गया है ॥

पांचवें अध्ययनका चौथा उद्देश समाप्त ॥ ५-४ ॥

मुनि सदा स्त्रीप्रसंगी जनता दुष्कृत अने पापजनक मैथुनादिक कर्मथी निवृत्त  
थाय छे प्राणातिपातादिक पापकर्मनो पण्य अये उपलक्षक छे. आनाथी निवृत्त  
थवाथी मुनि हिंसादिक पापकर्मोथी पण्य निवृत्त जनी नय छे अयेवो अर्थ  
समझ लेवो जेध अये आ प्रकारे उपसंहार करता सूत्रकार कहे छे के, मुनि आ  
मौन-संयमनु सदा पालन करे "ब्रवीमि" आ पदको अर्थ अगाउ कही  
देवाभा आवेल छे

पांचमा अध्ययनको चौथो उद्देश समाप्त ॥ ५-४ ॥



## पञ्चमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देश ।

गतवर्तुर्थ उद्देशोऽधुना पञ्चम समारभ्यते । एष चानन्तरसम्बन्ध - पूर्वोद्देशे च एकधरस्याव्यक्तस्य ब्रह्मोऽप्याया भायते तत्परिहाराय ज्ञानादिमाप्तये च ब्रह्मसदृशस्य पञ्चाचारसेविन आचार्यस्य समीपे वसता कायवाक्यमनोगुप्तिमता स्मृपादि सङ्ग्रहितेन त्रिप्येण विचरणीयमित्याचार प्रदर्शित । स एषाप्रचारो लोके सार

### पांचवे अध्ययनका पांचवां उद्देश ।

चतुर्थ उद्देश समाप्त हुआ, अब पंचम उद्देशका प्रारम्भ होता है । इस उद्देशका चतुर्थ उद्देशके साथ संबंध है और वह इस प्रकारसे है, चतुर्थ उद्देशमें सूत्रकारने यह प्रदर्शित किया है कि जो एकधर्या करने वाले अव्यक्त मुनि हैं उन्हें उस धर्यामें अनेक दोष लगते हैं, इसलिये उन दोषोंके परिहारके लिये तथा ज्ञानादिक गुणोंकी प्राप्तिके हेतु मुनिके चाहिये कि वह ब्रह्म तुल्य एवं पञ्च आचारोंमें निरत अपने आचार्य गुरुदेवकी निष्ठामें ही रहें । मनोगुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्तिका पालन करे । स्त्री आदिके प्रसंगसे सदा दूर रहें । आचार्य गुरुदेवकी छत्रच्छाया के सहारे ही विहार करे । ऐसा ही मुनिका आचार है । और यही लोकमें सारमृत-उत्तम माना गया है । इसी आचारका मोक्षके सारणी मृत तीर्थङ्कर आदिकोंने सेवन किया है । अतः इसी आचारका सूत्र

### पाचमा अध्ययनना पांचमो उद्देश

आधो उद्देश समाप्त यथे इवे पाचमा उद्देशने प्रारम्भ धाय ते आ उद्देशने धाय उद्देश आये सज्जध ते अने ते जे प्रकारे उ-आधा उद्देशमा सूत्रकारे आ रणु इरेष ते जे जेकयधो कथावाग्ग अव्यक्त मुनि छे, जेने जे धर्यामा अनेक दोष लागे छे आधी आ दोषाना निवारणु भाटे तेभज्ज्ञानादिक गुणोनी प्राप्तिना हेतुधी मुनिके ब्रह्मगुप्ति जे/वे धाय आचारामा निरत पोदाना आचार्य गुडदेवनी छायामा न रहेणु जे/जे मनोगुप्ति वचन-गुप्ति अने कायगुप्तिनु पालन करे, स्त्री आदिना प्रसंगधी सदा दूर रहे, आचार्य गुडदेवनी छत्रछायाना नेसराध विहार करे, जेवे न मुनिना आचार छे अने जे न लोकमा सारमृत-उत्तम मानवाभा आवेस छे आ आचारनु मोक्षना सारणी जेवा तीर्थङ्करादिकोके सेवन क्युं छे जेटवे आ न आचारनु सूत्र

भूतो निर्वाणसारथिभिस्तीर्थकृद्भिः सेवित इति स एवात्र प्रतिपादयितव्योऽस्ति ।

सम्प्रति दृष्टान्तेनाऽऽचारस्य सारत्वप्रकटनायाह—‘ से वेमि ’ इत्यादि ।

मूलम्—से वेमि तं जहा—अवि हरए पडिपुण्णे समंसि भोमे चिट्ठइ उवसंतरए सारक्खमाणे, से चिट्ठइ सोयमज्झगए से पास सव्वओ गुत्ते, पास लोए महेसिणो जे य पन्नाणमंता पवुद्धा अरंभोवरया सम्ममेयांति पासह, कालस्स कंखाए परि-व्वयांति त्तिवेमि ॥ सू० १ ॥

छाया—तद् ब्रवीमि तद्यथा—अपि इदः प्रतिपूर्णः समे भौमे तिष्ठति उपशान्तरजाः समारक्षन्, स तिष्ठति स्रोतोमध्यगतमत्तत् पश्य सर्वतो गुप्तः, पश्य लोके महर्षयो ये च प्रज्ञानवन्तः प्रवुद्धा आरम्भोपरताः सम्यगेतदिति पश्यत, कालस्य काङ्क्षया परिव्रजन्ति इति ब्रवीमि ॥ सू० १ ॥

टीका—‘ तद् ब्रवीमि ’ इत्यादि, अहं यादृशगुणगणसमुद्भूत आचार्यो भवेत्तादृशं तीर्थङ्कराज्ञया तत्सर्वं ब्रवीमि=त्वां कथयामि, तदेव प्रतिपादयितुमाह—‘ तद्यथे ’—त्यादि, तद्यथा=वाक्यप्रतिपादनार्थम्, अपि शब्दो भङ्गचतुष्टयसग्राहकः । प्रतिपूर्णः =स्वच्छजलैः सार्वकालिकपुष्पादिभिरन्तश्चरजलजन्तुभिश्च समन्तात्पूर्णः शोभितो वा, कार उसे प्रतिपादन योग्य समझकर इस उद्देशमें प्रतिपादन करते हैं । सर्व प्रथम वे दृष्टान्तसे आचारमें सारभूतता प्रदर्शित करनेके लिये कहते हैं “ से वेमि ” इत्यादि—

शिष्य को लक्ष्यकर सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्य! आचार्य महाराज कैसे २ गुणोंसे युक्त होते हैं, मैं तुम्हें यह कहता हूँ । यहां आचार्य महाराजको जो जलाशयकी उपमा दी गई है उसका मतलब यह है—जिस प्रकार—सम भूमिभागमें स्थित जलाशय कभी शुष्क—पानीसे रिक्त नहीं होता है, न कभी वह विकृतिको ही प्राप्त करता है, सदा पानीसे

झरे प्रतिपादन योग्य समस्त आ उद्देशमां प्रतिपादन कर्तुं छे सहु प्रथम ध्यातयी आचारमा साग्लूतता प्रदर्शित करवानु कडे छे “ से वेमि ” इत्यादि

शिष्यने लक्ष्यणिन्दु भनावी सूत्रकार कडे छे हे छे शिष्य! आचार्य महाराज देवा देवा गुणोथी युक्त होय छे ते हु तमने समस्तपु छु आर्हि आचार्य महाराजने जणाशयनी उपमा आपवामा आवी छे. जेने मतलब आ छे हे जे प्रकृति-समलूमि भागमा स्थित जणाशय केरि वपत पाणी विनानु डोतु नथी तेम न तो कही ते विकृतिने प्राप्त करे छे. सदा सर्वदा पाणीथी

‘ઉપશાન્તરજાઃ’=ઉપશાન્તં=નષ્ટ રજો ધૂમ્નિર્યત્ર સ ઉપશાન્તરજાઃ, યતો પર્વતો  
 પ્રલાદિમપાતે જલં રજસ સમ્પર્કાત્કલ્પ વર્ષાપિગમે ચ રજસોઽપગમાશ્નરવાદા-  
 વતિનિર્મલં જાયતે । સમારણન્=અન્ત સ્થિતજલજન્તૂન્ સમ્પર્ક પરિપાલયન  
 દ્વઃ=અગાધજલાશયઃ, સમે=ઉચ્ચાવચરદિતે-મૌમે=ધૂમેઃ=પૃથિવ્યા અર્થ મૌમો-  
 મૂમાગસ્તસ્મિન્ સમે મૂમાગે યથા તિથ્થિતિ કદાચિદપિ ન શુષ્યતિ નાપિ વૈકલ્પ્ય-  
 પગચ્છતિ, તથૈવાધાર્યોઽપિ દ્વદશત્ અનુપ્રદર્શ્યમાનમજ્જવતુષ્ટ્યાન્તર્ગતપ્રથમમજ્જાપસ્થિતો  
 જ્ઞાનાવિસમન્વિત્ પટત્રિશ્વરગુણમૂષિતા પચ્ચાધાયુક્તોઽવિપસમ્પત્તિશાલી મયેત્,  
 તાશ્ચાષ્ટસપદો યથા—

જલપાલય ભરા રહતા હૈ, સમસ્ત જાતુઓકે પત્ર પુષ્પાવિકોં ઓર જલચર  
 જાતુઓસે વહ ચારોં ઓરસે વ્યાસ-પૂર્ણ રહા કરતા હૈ, ઘોમિત રહતા  
 હૈ, તથા ઉપશાન્તરજ હોતા હૈ-ધૂલિ ધાદિ જિસમેં ઉપશાન્ત રહતી હૈ,  
 યથાપિ ઘર્ષાજાતુમેં વૃષ્ટિકે હોને પર જલ ધૂલિકે સમ્પર્કસે કલ્પિત હો  
 જાતા હૈ તો મી ઘર્ષાકે નષ્ટ હોને પર ધૂલિકે અપગમ હોનેસે શરદકાલ  
 મેં વહી જલ અત્પંત નિર્મલ હો જાતા હૈ । તથા અપને મીતર રહે હુગ  
 જલચર જીર્ષોકા વહ સદા પાલક હૈ । હસી પ્રકાર જ્ઞાનાદિ શુક્ત, છત્તીસ  
 ગુણોસે વિમૂષિત તથા પંચ આચાર વિશિષ્ટ આચાર્ય મી નીચે કહે ગયે-  
 નિમ્નલિખિત ચાર મંગલોમેંસે ૧ પ્રથમ મંગલમેં સમ્મિલિત હોનેસે જલાશય  
 કે તુલ્ય માને ગયે હૈ । તથા આઠ પ્રકારકી સંપદાઓસે મી સુષોમિત  
 હોતે હૈ । યે આઠ પ્રકારકી સંપદાયોં યે હૈ—

જાતુ રહે છે બધી જાતુઓમાં પુષ્પ પાંદડાં અને જળચર જાતુઓથી ચાર  
 તરફ એ હર્ષું મર્ષું રહે છે શોભી રહે છે અને સદા શાન્તિ આપનાર રહે  
 છે પૂજા વચ્ચે તેનામાં પડી શાન્ત બને છે વર્ષાજાતુમાં વૃષ્ટિના કારણે જળ  
 પૂજના સંપર્કથી ઠંડોજી બને છે પરંતુ વર્ષાકાળ બાદ પૂજા નીચે બેસી જવાથી  
 શરદકાળમાં એ જળ અત્યંત નિર્મળ બની બચે છે અને પીતાનામ્ રહેલા  
 જળચર હવેનું સદા પાલન કરે છે એ પ્રકારે જ્ઞાનાદિશુક્ત, છત્તીસગુણમૂષિત  
 અને પાંચ આચાર વિશિષ્ટ આચાર્ય પણ નીચે જણાવવામાં આવેલ ચાર ભવિષ્યોથી  
 પહેલાં જગમાં સમ્મિલિત દોષાથી જળાશય તુલ્ય માન્યા બધા છે તેમજ આઠ  
 પ્રકારની સંપદાઓથી પણ એ શુશોભિતદોષ છે તે આઠ પ્રકારની સંપદાઓ-આચાર,  
 શુત, શરીર બચન, વાચના, મતિ, પ્રયોગમતિ અને સત્કથપરિજ્ઞા છે.

“ आचार सुअसरीरे, वयणे वायण मई पओगमई ।

एस सुसंपया खलु, अट्टमिया संगहपरिजा ॥ ”

छाया—आचारः श्रुतं शरीरं वचनं वाचना मतिः प्रयोगमतिः । एताः सुसम्पदः खलु अष्टमी संग्रहपरिजा ॥ ” इति । निर्मलजानादिभिः प्रतिपूर्णः, उपशान्तरजा—उपशान्तमोहनीयः, समारक्षण=पङ्जीवनिकायं चतुर्विधसङ्घं गच्छगतसाधुन् स्वात्मानं च सम्यक् रक्षन् समे भौमे=स्त्रीपशुपण्डकादिपरिवर्जिते शोभने स्थाने तिष्ठति । अत्र हृदोपमानेन हृदादेश्चतुर्विधतयाऽऽचार्योऽपि तादृश एव भवति, तत्र चतुर्भङ्गी यथा—

(१) एकः सीतासीतोदाप्रवाहहृदादिवत्परिगलत्स्रोताः पर्यागलत्स्रोताश्च ।

“ आचार सुयसरीरे वयणे वायण मई पओगमई । एस सुसंपया खलु अट्टमिया संगहपरिजा ” ॥ आचार, श्रुत, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोगमति, और संग्रहपरिजा । (द. श्रु. स्कं. अ. ४)

निर्मल ज्ञानादिकोंसे प्रतिपूर्ण होते हैं । मोहनीयकर्मके उपशमन से ये उपशान्तरज होते हैं । पङ्जीवनिकाय, चतुर्विधसङ्घ तथा गच्छमें रहनेवाले साधुओंके एवं अपनी आत्माके अच्छी रीतिसे रक्षक होते हैं । स्त्री, पशु, पण्डक-नपुंसक आदिसे वर्जित स्थानमें ये रहते हैं; इसलिये जलाशयके समस्त विशेषण इनमें घटित होते हैं । हृद-जलाशयकी उपमा देनेसे यह बात ज्ञान होती है कि जिस प्रकार जलाशय चार प्रकारके होते हैं, उसी प्रकार आचार्य भी चार तरहके होते हैं । वह चतुः-प्रकारता इस चतुर्भङ्गीसे जानी जाती है । जैसे—

(१) कोई एक आचार्य, सीता सीतोदा नदीके प्रवाहका हृद कि जिससे दूसरा प्रवाह निकलता है और बाहरसे दूसरा प्रवाह भी जिसमें आकर

निर्भण ज्ञानादिकोथी ते प्रतिपूर्णं छे, मोहनीय कर्मना उपशमनथी ते उपशान्तरज होय छे पङ्जीवनिकाय, चतुर्विधसङ्घ तथा गच्छमां रडेवावाणा साधुओना अने पोताना आत्माना सारी रीते रक्षक होय छे स्त्री, पशु, नपुंसक आदिथी वर्जित स्थानमा अरे रडे छे आभाटे जणाशयना समस्त विशेषण तेमनामां ण धयेसता छे हृद-जलाशयनी उपमा देवाथी आ वात नणी शकय छे के जेवी रीते जणाशय चार प्रकारना होय छे अरे ज रीते आचार्य पणु चार प्रकारना होय छे ते चार प्रकार चार ल गथी नणी शकय छे जेम (१) केह ओक आचार्य सीता सीतोदा नदीना प्रवाहनी तरह-जेमाथी अीने प्रवाह कुटतो होय छे अने अडा-



(२) द्वितीयो हि पद्मप्रदादिवत्परिगल्बन्तोता नो पर्यागन्बन्तोताः ।

(३) तृतीयो लवणसमुद्रवद् नो परिगल्बन्तोता पर्यागन्बन्तोता ।

(४) चतुर्थो मनुष्यभाकषामसमुद्रयमोपरिगल्बन्तोता नो पर्यागन्बन्तोताभेति ।

प्रथममङ्गान्तर्गत आचार्यः शास्त्रमधीतेऽध्यापयति च जलस्य प्रवेश-निर्गम  
वद् ज्ञानप्रदानादानयोः सम्भवात्, स चायं स्वविरकल्पिकः । द्वितीयमङ्गस्यस्तीर्थद्व-  
रादिस्तस्य निर्गमस्थानीयार्थागमसद्भावात्, कपायोदयासम्भवेन प्रवेशस्थानीय  
मिलता द्वै वैसे होते हैं ।

(२) दूसरे कोई एक आचार्य पद्मप्रदा आदिके समान होते हैं कि जिससे  
प्रवाह तो निकलता है, परंतु दूसरा प्रवाह जिसमें आकर नहीं मिलता है ।

(३) तृतीय कोई एक आचार्य लवणसमुद्रके मुख्य होते हैं कि जिससे  
और कोई दूसरा प्रवाह तो नहीं निकलता है परन्तु जिनमें दूसरा प्रवाह  
आकर मिलता है ।

(४) चतुर्थ—कोई २ ऐसे भी आचार्य होते हैं जो मनुष्यलोकसे  
पाहर रहे हुए समुद्रकी तरह न उमसे दूसरा कोई प्रवाह निकलता है  
और न जिनमें और कोई प्रवाह ही आकर मिलता है ।

इनमेंसे प्रथम अंगके अन्तर्गत आचार्य शास्त्र पढ़ते हैं और अन्यको  
पढ़ाते हैं । ज्ञानके आनेजानेकी तरह इनमें ज्ञानका आदान-प्रदान होता  
रहता है । इस अंगके अन्तर्गत आचार्य स्थविरकल्पी होते हैं । दूसरे अंग  
के अन्तर्गत तीर्थद्वारादि होते हैं । क्यों कि इनसे जलप्रवाहके निर्गमके

रथी जीने प्रवाह पण जेमां आवीने भगते होय छे (२) जीने कोछ जेक  
आचार्य पद्मप्रदा आदि समान-जेमांवी प्रवाह निकले छे परतु जीने प्रवाह  
आपी तेमां भणी शकते नथी तेवा-होय छे (३) कोछ जेक आचार्य पद्म  
आर जेवा जेमांवी कोछ प्रवाह तो नीकणते नथी परतु जेनाग्य जीने  
प्रवाहो आपी भगे छे आवा होय छे (४) कोछ कोछ जेवा पण आचार्य होय  
छे जे मनुष्य लोकधी जद्वार जेवा समुद्री पेटे न जेमांवी जीने कोछ प्रवाह  
निकले छे जेने न तो जेमां कोछ प्रवाह आवीने भगते होय छे जेमां प्रथम  
अजना अतत्रत आचार्य शास्त्र शीजे छे जेने शीजे-एव छे जेजना आवना  
ज्जानी भाकके तेमनाभा ज्ञाननु आवणु-एणु जननु से छे जे अजना  
अतत्रत आचार्य स्थविरकल्पी होय छे जीने अजना अन्तर्गत तीर्थद्वारादि  
होय छे जेजणु के तेमनाधी जेजप्रवाहन्य निभम शमान अथइपधी आगमनु

श्रुताध्ययनादेरसत्त्वात्, तपःसंयमादिना कर्मक्षपणं सुतरां जायते तेनापि च निर्गमस्थानीयत्वं सिद्ध्यति, घातिकर्मक्षयेण नूतनकर्मणामागमनासम्भवेन प्रवेशस्याभावात् । तृतीयभङ्गपतितो लवणोदधितुल्यो याथालन्दिकः । तथा हि-उदका-र्द्रकरेखा यावता कालेन शुष्यति तत आरभ्य पञ्चरात्रिन्दिवलक्षणः कालो 'लन्द' शब्देनात्र गृह्यते, लन्दमनतिक्रम्य यथालन्दं, तेन चरतीति याथालन्दिक उक्तपरिमितकालविशेषाचारीत्यर्थः, स चोत्कृष्टतः एकस्थाने पञ्चरात्रिन्दिवं यावत्तिष्ठति, सामान अर्थरूपसे आगमका निर्गम होता है । कषायके उदयकी असंभवता होनेसे इनमें जलप्रवाहके प्रवेश के तुल्य दूसरोंसे श्रुतके अध्ययन आदिके प्रवेशका सम्भव नहीं होता है । तप और संयमादिकद्वारा कर्मका अभाव स्वतः हो जाता है, इससे भी इनमें निर्गमस्थानीयता सिद्ध होती है । घातियाकर्मोंके क्षयसे नूतन कर्मोंके आगमनकी असंभवतासे वहाँ पर उनके प्रवेशका अभाव है । तृतीय भंगवर्ती लवणोदधि के तुल्य याथालन्दिक साधु हैं । जितने समयमें गीले हाथकी रेखा शुष्क होती है इतने समयसे लगाकर पांच रात और दिनके समयका नाम यहाँ लन्द माना गया है । इस लन्दकालका उलंघन नहीं करना यथालन्द है । इस कालके अनुसार जो चलता है-अपनी चर्चा करनेवाला है वह याथालन्दिक साधु है । यह साधु उत्कृष्ट रीतिसे एक जगह पांच रातदिन तक ठहर सकता है । इस यथालन्दकल्पको पांच मुनियोंका समुदायरूप गण

निर्गम थाय छे कषायना उदयनी असलवता डोवाथी तेमनामा न्ण प्रवाडना प्रवेशतुल्य बीणओथी श्रुत अने अध्ययन आदिनो प्रवेशनो सलव नथी डोतो तप अने सयम आदि द्वारा कर्मनो अभाव स्वत थनी रह्ये छे आथी तेमनामां निर्गमस्थानीयता सिद्ध अने छे, घातिया कर्मोना क्षयथी, नवा कर्मोना आगमननी असलवताथी ओमनामा ओना प्रवेशनो अभाव छे त्रीण लग मुण्ण लवणुसमुद्रतुल्य याथालन्दिक साधु छे, जेटला समयमा बीना हाथनी रेखा शुष्क डोय छे जेटला समयथी लगाडी पाय रात अने द्विसना समयनु नाम अडि लन्द मान्यु छे आ लन्द काणतु उलघन नडि करवु ते यथालन्द छे, आ काणने अनुसार जे थाले छे-पोतानी थर्था करवावाणा छे ते याथालन्दिक साधु छे आ साधु उत्कृष्ट रीते पाय रात द्विस सुधी ओक गाभमा रह्ये शके छे. आ

पञ्चमुनिसख्यको गणो भवति, स एव गणोऽयं कल्पं प्रतिपद्यते, एते प्रायो जिन  
 कल्पिकल्पकल्पं परिपालयन्ति, अयं चाचायादेः धृतादिकं गृह्णाति किन्तु न कस्मै-  
 चित् प्रददाति, अत एव लक्षणोदघिसादृश्यं प्रवेशसख्येऽपि निर्गमासत्त्वात्। चतुर्थं  
 मङ्गल्यं प्रत्येकबुद्धः, स च न कस्मै चिद् ददाति नापि प्रतिगृह्णाति मनुष्यक्षेत्र  
 विष्विस्समुद्रवत् प्रवेश-निर्गमोभयामावात्।

तस्य प्रथममङ्गल्यस्थविरकल्पिकस्य धृतदानग्रहणसम्भवन स्वरूपमाह—‘स’  
 इत्यादि, हे शिष्य ! स्रोतोमध्यगत प्रवेशनिर्गमप्रवाहान्तर्वर्ती स इदो यथा चाक्षो-  
 ही पालता है। ये मुनि जिनकल्पी के तुल्य आचारका पालन करते हैं।  
 यह गण आचार्य आदिसे श्रुत आदिका अध्ययन तो करता है, परन्तु  
 अन्यके लिये वह उसे प्रदान नहीं करता है। इसीलिये इसको लघणोदधि  
 के तुल्य कहा है। क्योंकि कि इसमें ज्ञानादिकका प्रवेश होनेपर भी फिर  
 उससे उसका पाठिर निकलना-अन्यके लिये उसका प्रदान करना  
 नहीं होता है।

चतुर्थ भंगके अन्तर्भूत प्रत्येक बुद्ध हैं। वे न किसीसे ज्ञानादिकको  
 ग्रहण करते हैं और न किसीके लिये उसका प्रदान ही करते हैं। मनु-  
 ष्यक्षेत्रके पाहर रहे हुए समुद्रकी तरह उनमें प्रवेश और निर्गम दोनोंका  
 सर्वथा अभाव रहता है।

प्रथम भंगके अन्तर्गत स्थविरकल्पीके धृतके आदानप्रदानका संभव  
 होनेसे सूत्रकार उसके स्वरूपको प्रकट करते हैं—“स” इत्यादि—वे शिष्य

व्याख्यान-इसके पाठ मुनिज्येष्ठाना समुद्रवत् अत्र पाठे उ अत्र मुनि जिनकल्पीनी  
 तुल्य आचार्य पालन करे उ अत्र अत्र अत्र अत्रिधी धृत आदिनु अध्ययन तो  
 करे उ परन्तु जीवने भाटे ते तेनु प्रदान करता नहीं अत्र भाटे तेभने एवम्  
 सागरनी तुल्य अत्र उ अत्र उ तेभां ज्ञानादिकने प्रवेश होवा उत्र पत्र  
 तेभांभी अत्र नीकगत - अन्यने भाटे तेनु प्रदान वतु नहीं

व्याख्या-जन्तु अन्तर्गत प्रत्येक बुद्ध उ अत्र न तो कोऽपिभी ज्ञानादिक  
 ग्रहण करे उ न कोऽपि अत्र तेनु प्रदान करे उ मनुष्यक्षेत्रभी अत्र रहेता  
 समुद्रनी तरह ज्येष्ठाना प्रवेश अत्रे नित्रम अत्रेने अत्र अत्राव रहे उ

प्रथम जन्तु अन्तर्गत स्थविरकल्पीभां धृतना आववा-ज्वाने अत्र  
 व्याधी सूत्रकार ज्येष्ठाना स्वरूपने प्रकट करे उ ‘स’ इत्यादि अत्र शिष्यने

भ्यस्तथैव सः=आचार्यः सर्वतः=सर्वप्रकारेण इन्द्रियनोऽन्द्रियोपगमरूपया गुप्त्या गुप्तस्तिष्ठतीति पश्याआचार्य इवान्येऽपि मुनयस्तादृशगुणसम्पन्ना भवन्तीति निर्दिशति - 'पश्ये' त्यादि, महर्षयः=महान्तश्च ते ऋषयो महर्षयो महासंयमिनः । किञ्च ते के हृदोपमा महामुनयः? ये च प्रज्ञानवन्तः-प्रकर्षेण ज्ञायते बुद्ध्यन्तेऽनेनेदं वेति प्रज्ञानं, परस्य स्वस्य चालोकादिवदवभासकत्वात् प्रज्ञानम्=आगमस्तदेषामस्तीति प्रज्ञानवन्तः =आगमतत्त्वपरिज्ञानकुशलाः ।

को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे शिष्य ! जिस प्रकार प्रवाहके मध्यवर्ती-जिससे दूसरा प्रवाह निकलता है और जिसमें दूसरा प्रवाह आकर मिलता है ऐसा हृद अक्षोभ्य होता है उसी प्रकार वह आचार्य भी सर्व प्रकारसे इन्द्रिय और नोइन्द्रियोके उपगमरूप गुप्तिसे सदा रक्षित रहा करते हैं । आचार्यके समान अन्य मुनिजन भी जो इसी प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न होते हैं उन्हें इसी भंगके अन्तर्गत ही समझना चाहिये । इसी बातको "पश्ये"त्यादि सूत्रांगसे प्रकट करते हैं-विशिष्ट संयमका जो आराधन करते हैं वे महर्षि कहलाते हैं । ये महर्षि हृदके तुल्य होते हैं । ये प्रज्ञानसंपन्न होते हैं । प्रज्ञान शब्दका अर्थ यहां आगम है । क्यों कि प्रकाश आदिकी तरह इसीके द्वारा स्व और परका यथार्थ-रीतिसे बोध होता है । यह आगम जिनके होता है-अर्थात् जो इस आगम तत्त्वके ज्ञाता होते हैं वे प्रज्ञानवान् है ।

स बोधन करीने कुछ छे डे-डे शिष्य । जे म प्रवाहनी पथमा रहेवो छे छे जेमाथी भीजे प्रवाह नीकजे छे अने जेमा भीजे प्रवाह आवीने मजे छे अक्षोभ्य होय छे, अने रीते अे आचार्य पणु सर्व प्रकारथी इन्द्रिय अने नोइन्द्रियना उप शमरूप गुप्तिथी सदा रक्षित रह्या करे छे आचार्यनी समान भीजे मुनिजन पणु जे आ प्रकारना गुणोथी स पन्न होय ते पथा आ लगना अन्तर्गतज समजवा. आ बातने "पश्ये" इत्यादि सूत्राशथी प्रकट करे छे-विशिष्ट संयमनु जे आराधन करे छे ते महर्षि कहेवाय छे अे महर्षि छेदना समान होय छे. अे प्रज्ञानसंपन्न होय छे प्रज्ञान शब्दना अर्थ अहि आगम छे. केम डे प्रकाश आदिनी माइके अेमना द्वारा स्व अने परना यथार्थ रीतथी बोध थाय छे आ आगम जेनामा होय छे अर्थात् जे आगम तत्त्वना वास्तुकार छे ते प्रज्ञानवान् छे

केचित्तादृशा अपि मृनयो बोध्यायस्य दुरवगाहित्वेन च क्वचिद् हेतूदाहरणादीनां सम्पन्नानासम्भवात्संशेरत् न सम्पत्त्वमाप्नुवन्तीति तभिरसायाह- 'प्रबुद्धा' इत्यादि, प्रबुद्धा=प्रकर्षेण बुद्धा=तीर्थहराहानुसारेण सम्पत्परिशीलितवत्त्वा, तादृशा अपि कर्मणा गुरुत्वाद्यदि साध्यावरणाभोपरमेत् तद्वद्बुद्धासायाह

शङ्का—प्रज्ञानसम्पन्न मुनि भी बोध्य—सम्पन्नने योग्य पदार्थ जब दुरवगाह होता है—बड़ी मुश्किलसे जाननेमें आता है, या कहीं २ पर हेतु उदाहरणादिकके स्वरूपका वास्तविक भान उन्हें नहीं होता है, उस पदार्थ के स्वरूपमें संदेहशील हो जाते हैं ऐसी हालतमें तो वे समकित के काम से ही बंधित रहते होंगे ?

समाधान—यह बात नहीं है। इसीका स्पष्टीकरण सूत्रकारने "प्रबुद्धा" इस पदसे किया है। बोध्य अर्थ दुरवगाह होने पर भी या हेतु और उदाहरणादिक का सम्पन्न परिज्ञान न होने पर भी वे उस पदार्थमें संदेहशील नहीं होते हैं। क्यों कि ये तीर्थहर भगवानकी आज्ञाके अनुसार ही अपनी प्रवृत्ति रखते हैं। जो बात सम्पन्नमें नहीं आती है, उस पर ये अविश्वासी नहीं होते हैं। उनको आज्ञाके माफिक ही ये तत्त्वोंका परिशीलन करते हैं। उन पर सदा दृढ विश्वास रखते हैं। इसीका नाम समकित है।

शङ्का—प्रज्ञानसम्पन्न मुनि प्रबु, बोध्य—सम्पन्नने योग्य पदार्थ बोध्य हेतु उदाहरणादिकके स्वरूपका वास्तविक भान तेने होतु नही. जे समय जे पदार्थना स्वरूपमां संदेहशील अने जे जेवी कालतमा तेजो समकितना बाकधी बंधित रहेता ह्ये ?

उत्तर—आ बात नहीं, आनु स्पष्टीकरण सूत्रकारे 'प्रबुद्धा' जे पदधी करेले जे बोध्य अर्थ छे होवा छता प्रबु अर्थना हेतु अने उदाहरणसुदु सम्पन्न परिज्ञान न होवाधी प्रबु तेजो जे पदार्थमा संदेहशील अनता नही, करेले तेजो तीर्थकर भगवाननी आज्ञा अनुसार न पोतानी प्रवृत्ति करे छे. जे बात सम्पन्नमां नही आवती जेना पर जे अविश्वासी नही अनता. तेमनी आज्ञानी भाकठ न तेजो तत्त्वोनु परिशीलन करे छे जेना पर सदा दृढ विश्वास रखे छे तेनु नाम न समकित छे

—‘आरम्भे’त्यादि, आरम्भोपरताः-आरम्भेभ्यः=पचन-पाचनादिसावद्यव्यापारेभ्यः  
उपरताः=विरताः त्यक्तारम्भा भवन्ति, एतत्=यत्पूर्वमुक्तं मया वक्ष्यमाणं वा एत-  
त्सर्वं सम्यक्=समीचीनमस्तीति यूयं पश्यत । वक्ष्यमाणमेवाह—‘कालस्ये’त्यादि,  
ते पूर्वोक्ता महर्षयः कालस्य=समाधिमरणस्य काङ्क्षया=स्पृहया परिव्रजन्ति=रत्न-  
त्रयरूपे मोक्षमार्गे सर्वत उद्यमयन्ति । आचार्या मुनयो वा निर्भया अक्षोभ्या हृदोपमाः  
सन्तो विचरन्तीत्याशयः । ‘इति’—अधिकारसमाप्तौ, ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० १॥

शङ्का—ऐसे होने पर भी कर्मकी दुर्निवारतासे यदि ये सावद्य-  
व्यापारों के आचरणसे निवृत्त न हों तो इसका क्या उत्तर है ?

समाधान—यह शङ्का ठीक नहीं है, कारण कि ये पचनपाचनादिरूप  
सावद्य व्यापारोंसे सदा विरक्त ही रहते हैं । माना कि कर्मोंका उद्यम  
दुर्निवार है, तो भी ये पचनपाचनादिरूप सावद्य व्यापारोंमें कण्ठगत  
प्राण होने पर भी प्रवृत्तिशील नहीं होते हैं—इस कथनपर आपको विश्वास  
रखना चाहिये । ये पूर्वोक्त महर्षिजन समाधिमरणरूप कालकी चाहना  
से तथा आगे भी जो विषय कहा जानेवाला है उस पर यह सत्य है,  
ऐसा मान कर रत्नत्रयरूप मुक्तिके मार्गमें सर्व प्रकारसे उद्यमशील  
रहते हैं ।

भावार्थ—आचार्य अथवा मुनिजन मोक्षमार्गमें निर्भय और अ-  
क्षोभ्य हो कर विचरण करते हैं इसी लिये पूर्वोक्त प्रकारसे इन्हें हृदकी  
उपमा दी गई है । सूत्रस्थ इति शब्द अधिकारके समाप्ति के सूचनार्थ है ।

शङ्का—आम डोवा छता पणु कर्मना दोगोने लक्ष कदाच सावद्यव्या-  
पारेना आचरणार्थी निवृत्त न थाय तो आनो कथो उत्तर छे ?

उत्तर—आ शङ्का ठीक नहीं, कारण छे ये पचनपाचन आदि सावद्य  
व्यापारेथी सदा विरक्त रहे छे कर्मोना उद्येतु कारण निवारी शङ्कानुं नहीं  
तो पणु ये पचन पाचनादिस्य सावद्य व्यापारेमा प्राणुं ज्वानी छेदली घडी  
सुधी पणु प्रवृत्तिशील थता नहीं आ कथन उपर विश्वास राखवो नेछे ये  
आ पूर्वोक्त महर्षिजन समाधि मरणरूप काणनी आहनाथी तथा आगण पणु ने  
विषय कडेवामा आवनार छे ये रीते आ सत्य छे येम मानी रत्नत्रयरूप मुक्ति  
मार्गमा सर्व प्रकारे उद्यमशील रहे छे

भावार्थ—आचार्य अथवा मुनिजन मोक्षमार्गमा निर्भय अने अक्षो-  
भरना अपनी विचरण करे छे, आथी ज पूर्वोक्त प्रकारथी येमने हृदनी उपमा

आचार्याधिकारमभिधाय शिष्यकर्तव्यमधुना दर्शयति—'चित्तिगिच्छ' इत्यादि  
 मूम्—चित्तिगिच्छसमावहणेन अप्पाणेण नो लहइ समारिह,  
 सिया वेगे अणुगच्छति असिया वेगे अनुगच्छति, अणुगच्छमाणेहि  
 अणुगच्छमाणे कह न निविज्जे ॥ सू० २ ॥

छाया—विचिकित्सासमापन्नेनाऽऽत्मना न लभते समारि, सिता वैकेऽनु  
 गच्छन्त्यसिता वैकेऽनुगच्छन्ति, अनुगच्छन्निरनुगच्छन् कथं न निषिद्येत ॥ सू० २ ॥

टीका—'विचिकित्से'त्यादि, 'मुनि' विचिकित्सासमापन्नेन—विचिकित्सा  
 =इहा तां समापन =सम्=सम्यग्देशत सर्वतथापकाः=प्राप्त=विचिकित्सासमापनस्तेन  
 आत्मना समापिम्=अन्त करणान्ति न लभते=न प्राप्नोति, संशयात्मानो हि मोहनी

“ग्रहीमि” पदका अर्थ पहिले कई उद्देशोंमें प्रकट किया जा चुका है ॥ सू० १ ॥

आचार्य महाराज का अधिकार कह कर अथ सूत्रकार शिष्यजनके  
 कर्तव्यका कथन करते हैं—“चित्तिगिच्छ” इत्यादि ।

मुनिको जिनेन्द्र उपदिष्ट तत्त्वमें शास्त्रशील नहीं होना चाहिये, क्यों  
 कि शांकावृत्ति रस्मनेसे चित्तमें शांति नहीं आ सकती है । इसी बातको  
 सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं । विचिकित्सा शब्दका अर्थ संशय है । यह  
 संशय मुनिके चित्तमें किमी भी तत्त्वमें चाहे देशरूपसे हो चाहे सर्वरूपसे  
 हो तो वह उसके चित्तमें कमी चैन नहीं लेने देता है ।

क्यों कि संशयका स्वभाव ही इसी प्रकारका है, जो उचित होने  
 पर आत्माको इतस्तन परस्पर विरुद्ध अनक विषयोंकी ओर दौड़ाता

आपवाभा आवी छे सूत्रस्थ धृति शब्द अधिकारणी समाप्तिनी सूचनाइय छे  
 ग्रहीमि पढने अथ पढेला वषुा उद्देशेभा प्रकट करवामा आवी  
 ज्येष्ठ छे ॥ सू० १ ॥

आचार्य महाराजना अधिकारने कही सूत्रकार हवे शिष्यजनना कर्तव्यनु  
 वषुन करे छे “चित्तिगिच्छ” इत्यादि ।

मुनिजे जिनेन्द्र उपदिष्ट तत्वभा शास्त्रशील बनवु न जेछेजे. कम के  
 शकितवृत्ति शम्बाधी चित्तभा शान्ति आवी शकती नबी. आज वात सूत्रकार  
 प्रकट करे छे विचिकित्सा शब्दने अर्थ संशय छे आ संशय मुनिना चित्तभा  
 कर्षवषु तत्वभा यहे देशरूपभा होव याहे सव रूपधी होव संशय तेना चित्तने  
 क्माथिय चैन होवा दे नहि. कम के संशयने स्वभाव जे प्रकारने होव छे के तेने  
 उदय यतां आत्माने-इत्तव परस्पर विरुद्ध अनेक विषयानी तरह बोधा करे

योदयाद्युक्तिसिद्धेऽप्यर्थे मोहमुपगच्छन्ति, तथाहि—दर्शने धर्मास्तिकायाऽधर्मास्तिकायादौ वीतरागोक्ते तपसि संयमे च संशयाना दृश्यन्ते, एवमनेकत्र जीवादि-विषये संशयो भवितुमर्हति । अर्थस्य सुखाधिगम-दुरधिगमानधिगमभेदेन त्रैविध्यम् , सुखाधिगमः शब्दादेः प्रत्यक्षः श्रवणनिपुणस्य भवति, दुरधिगमस्त्वकुशलस्य भवति, अनधिगमस्तु वहिरादेः। तत्रानधिगमस्तु न वस्तु । सुखाधिगमविषये विचि-

रहता है । संशयात्मा प्राणी मोहनीयके उदयसे युक्तिसिद्ध भी पदार्थमें सुग्ध बन जाया करता है । धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायादि पदार्थ युक्तिसिद्ध एवं वीतरागप्रभुद्वारा प्रतिपादित है, तप और संयम भी जिनेन्द्र-देवद्वारा ही कहे हैं तो भी संदेहशील मनुष्य इनमें संदेह करते हुए देखे जाते हैं । अधिक क्या कहें ? संदेहशील मनुष्य जीवादिक पदार्थोंके अस्तित्व तकमें भी सदा संदेह किया करते हैं । सुखाधिगम, दुरधिगम और अनधिगमके भेदसे अर्थ ३ प्रकारका है । जिनकी श्रोत्रादि इन्द्रियां अपने विषयभूत पदार्थोंके विषय करनेमें अनुपहत हैं ऐसे मनुष्यादिकों को शब्दादिक अर्थका प्रत्यक्ष सुखपूर्वक-विना किसी रुकावटके अच्छी तरहसे होता है । जिनकी इन्द्रियों-श्रोत्रादिकोंमें कोई दोष है उन्हें इसका प्रत्यक्ष दुरधिगम-बड़े कष्टसे होता है । जो वहिरे आदि है उन्हें शब्दादिक पदार्थोंका अनधिगम होता है । अनधिगम कोई वस्तु नहीं है, इसलिये इसमें तो संदेह होता नहीं है, सन्देह वस्तु में हुआ करता है ।

छे, स शयात्मा प्राणी मोहनीयना उदयथी युक्तिसिद्ध पदार्थमा पणु सुग्ध भनी नय छे धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायादि पदार्थ युक्तिसिद्ध अटले वीतराग प्रभुद्वारा प्रतिपादित छे, तप अने संयम पणु जिनेन्द्रदेवे न् भतावेल छे तो पणु स देहशील मनुष्य आमा पणु स देह करता देभाय छे अधिक शु कडेवु ? स देहशील मनुष्य लवादिक पदार्थोना अस्तित्वमा पणु सदा स देह कया करे छे सुखाधिगम, दुरधिगम, अने अनधिगमनो लेदथी त्रणु प्रकारे अर्थ थाय छे, जेनी श्रोत्रादि इन्द्रियो पोताना विषयभूत पदार्थना विषय करवामा अनुपहत ( अण्ड ) छे जेवा मनुष्य-आदिने शब्दादिक अर्थनो प्रत्यक्ष सुख-पूर्वक-कोटिपणु नतनी रुकावट वगर सारी रीते थाय छे जेनी इन्द्रियो-श्रोत्रादिकोमा कोठ दोष छे जेने जेनो प्रत्यक्ष दुरधिगम-लारे कष्टथी थाय छे जे भदरा आदि छे तेने शब्दादिक पदार्थोना अनधिगम थाय छे, अनधिगम कोठ वस्तु नथी आ माटे जेमा तो स देह थतो न् नथी स देह वस्तुमा थाय छे जे



कित्साया न सम्भवः, स एव देशकालस्वभावव्यवहितस्तु संशयविषयो भवति ।  
 देशतो विप्रकृष्टमेर्वादिविषय, कालतो विप्रकृष्टे ऋषभदेवादौ, स्वभावतो विप्रकृष्टे  
 परमाण्वादिविषय च स देशो जायते । संशयात्मा गुरुणोपदिष्टोऽपि सम्यक्स्वरूपा  
 बोधिं न कदापि प्रामोदीत्यात्मोभ्य पूर्वाक्तविषये मुनि कदाचिदपि संशयं न  
 कुर्यादित्याशयः ।

जिस पदार्थका बोध अनायाससे होता है, उसमें भी संदेहके लिये  
 जगह नहीं है; परन्तु यही सुखाधिगम पदार्थ जय स्वभाव, देश  
 और कालसे विप्रकृष्ट (दूर) हो जाता है तब इसमें भी संदेहशील  
 प्राणियोंको संदेह होने लगता है । देशसे विप्रकृष्ट मेरु आदि पदार्थ हैं,  
 कालसे विप्रकृष्ट ऋषभदेवादि तीर्थदूर हैं । स्वभाव अपेक्षा दूरवर्ती पर  
 माणु आदि पदार्थ हैं । इनमें अज्ञ-संदेहशील व्यक्तियोंको संदेह होनेमें  
 कोई आश्चर्य जैसी बात नहीं है । संशयात्मा व्यक्ति गुरुके द्वारा उपदिष्ट  
 होनेपर भी सम्यक्स्वरूप बोधिके लाभसे वंचित बनारहता है । गुरुदेव उसे  
 हर तरहसे प्रत्येक पदार्थका स्वरूप अच्छी रीतिसे समझाते भी हैं तो  
 भी उनके ऊपर उसकी सच्ची भद्रा सजग नहीं होती है, इस प्रकार  
 विचार करके मुनिका कर्तव्य है कि यह धीतराग प्रभु द्वारा प्रतिपादित  
 धर्म अधर्मादि द्रव्यों में तथा तप और संयमादिक आत्महित साधक  
 विषयोंमें संदेह कभी भी न करे ।

पदार्थोंमें बोध अनायाससे थाय छे तेमा पणु स देहने भाटे स्थान नथी, परंतु  
 आ सुखाधिगम पदार्थ जय स्वभाव देश अने काणथी दूर थाय छे त्पारे  
 आभां पणु स देहरील प्राणीज्जोने स देह यथा लावे छे देशथी दूर भेइ  
 आदि पदार्थ छे अने काणथी दूर ऋषभादि तीर्थदूर छे स्वभाव अपेक्षा दूर  
 वर्ती परमाणु आदि पदार्थ छे अणु स देहरील व्यक्तिज्जोने स देह शब्दमां  
 कौण आश्चर्य जेवी बात नथी । संशय आत्मा व्यक्ति के नेने सुइयास उपदेश  
 मज्जे होय छे अणु पणु सम्यक्स्वरूप बोधिना लाभथी वंचित रहे छे अह  
 देव तेने हरक प्रकारे प्रत्येक पदार्थनु स्वरूप आरी शिने समझवे छे तो पणु  
 तेना उपर साथी भद्रा जात्रती नथ। अ प्रकारे विचार कराने मुनिनु कर्तव्य  
 छे के ते वीतराग प्रभुद्वारा प्रतिपादित धर्म अधर्मादि द्रव्योंमां तथा तप अने  
 संयमादिक आत्महित साधक विषयोंमां संदेह कही पणु न करे ।

यद्वा—‘वित्तिगिच्छे’त्यस्य ‘विद्वज्जुगुप्सा’ इतिच्छाया । तेन विद्व-  
ज्जुगुप्सासमापन्नेन विदुषां=मुनीनां परिज्ञातसंसारसारभावानां जुगुप्सा=अनादरः  
विद्वज्जुगुप्सा=स्नानाद्यकरणेन गात्रस्य मलोपहतत्वदुर्गन्धत्वादिकथनेन साधूनां  
निन्दा तां समापन्नेन=संप्राप्तेन=अनगारतिरस्कारपरायणेन आत्मना=अन्तःकरणेन  
परतैर्थिकः समार्धि=रत्नत्रयरूपं न लभते ।

कश्च समार्धि लभत? इति प्रश्ने तं दर्शयति—‘सिता’ इत्यादि, एके=केचन  
लघुकर्माणः सिताः शब्दादिविषयानुरागेण पुत्रादिस्नेहेन च वद्धा अपि संसारि-  
णः, ‘वा’ शब्दोऽत्राप्यर्थकः, अनुगच्छन्ति लघुकर्मत्वात्तीर्थङ्करगणधरादिप्ररूपि-

अथवा—“वित्तिगिच्छ” इसकी संस्कृत छाया “विद्वज्जुगुप्सा”  
ऐसी भी होती है । इसका यह अर्थ होता है कि विद्वान् मुनि कि  
जिन्होंने भले प्रकारसे सांसारिक प्रत्येक पदार्थका वास्तविक स्वरूप जान  
लिया है, जो संसारकी असारतासे अच्छी तरहसे परिचित हो चुके हैं  
ऐसे मुनिके निन्दा, घृणा आदि करनेवाले अन्यमती जन नीच गोत्रादि-  
कके बंधक होते हैं और रत्नत्रयरूप समाधिकी प्राप्तिके लाभसे सदा  
वंचित बने रहते हैं ।

रत्नत्रयरूप समाधिके प्रापक (प्राप्त करनेवाले) कौन जीव होते  
हैं, इसे प्रकट करनेके लिये टीकाकार “सिता” इत्यादि सूत्रांशकी  
व्याख्या करते हैं, कोई एक लघुकर्मी संसारी जीव यद्यपि शब्दादिक  
विषयोंके अनुरागसे अथवा पुत्रादिकोंके स्नेहसे उनमें मोहित बने रहते  
हैं—उनके ममत्वमें फंसे रहते हैं, तो भी लघुकर्मी—कर्म अल्प  
होनेसे तार्थङ्कर और गणधरादि प्रदत्त उपदेशका अनुसरण करते हैं ।

अथवा:—“वित्तिगिच्छ”—એની સંસ્કૃત છાયા ‘વિદ્વજ્જુગુપ્સા’ પશુ થાય  
છે. જેનો અર્થ એવો થાય છે કે વિદ્વાન મુનિઓ કે જેઓ સંસારની અસારતાથી  
સારી રીતે પરિચિત બની ચૂક્યા છે, જેઓએ સારી રીતે સાંસારિક પ્રત્યેક પદાર્થ  
નું વાસ્તવિક સ્વરૂપ જાણી લીધું છે, તેઓની નિંદા ધૂણા કરવાવાળા અન્યમતી  
નીચ ગોત્રાદિકના બંધક થાય છે અને રત્નત્રયરૂપ સમાધિની પ્રાપ્તિના લાભથી તે  
સદા વંચિત બની રહે છે

રત્નત્રયરૂપ સમાધિને પ્રાપ્ત કરવાવાળા કેવા જીવ હોય છે—આ પ્રગટ કરવા  
માટે ટીકાકાર “સિતા” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશની વ્યાખ્યા કરે છે. કોઈ એક લઘુકર્મી  
સંસારી જીવ જે કે શબ્દાદિક વિષયોના અનુરાગથી અને પુત્રાદિકોના સ્નેહથી  
તેમા મોહિત બની રહે છે, તેના મમત્વમા ફસી રહે છે તો પણ લઘુકર્મી  
—કર્મ અલ્પ—હોવાથી તે તેની ગણધરાદિ એ કહેલ ઉપદેશનું

તમ્પદેશ્મનુસરન્તિ । एवं वा=अथवा एक=संशयवर्जिता असिता =विषय-पुत्र-  
दाराद्यनुरागैरवदा अनगारा अनुगच्छन्ति, अत्र वा अथ पसान्तरद्योतकः ।

આચાર્યમાર્ગાનુગામિનઃ પુરુષસ્ય મવતિ સમ્યક્સાધિગમ ઇત્યાદિ-‘અનુગ  
છઙ્ગિ’રિત્યાદિ, અનુગછઙ્ગિઃ=આચાર્યમતિપાદિતોપદેશાનુગામિભિઃ સિતૈરસિતૈર્વા  
પ્રેરિત સઃ અનનુગછઙ્ગન્=સાવધાધારનારિણમનનુસરન્ સાવધવ્યાપારમકુર્ષ્ણિત્યર્થઃ,  
કથં ન નિર્વિષેત્=સર્વેવિષયચિરતિરૂપવૈરાગ્યં કથં ન પ્રાપ્નુયાત્?અપિ તુ પ્રાપ્નુયાદેષ ।

इसी तरह जो कोई एक संशयबिहीन होते हैं वे असित-पंचेन्द्रियों के  
विषयों एवं पुत्र पत्नीके अनुराग से विमुक्त हो कर अनगार अवस्था-  
संपन्न होते हैं और तीर्थक्षुरादिप्रणीत उपदेशक अनुसार अपनी प्रवृत्ति  
बालू रखते हैं । यहा सूत्रस्थ “ वा ” शब्द दूसरे पक्षका द्योतक है ।

જો આચાર્યકે જતાયે હુપ માર્ગકે અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરતે હેં ઉન્હેં  
સમ્યક્સ્વકા લાભ હોતા હૈ-ઇસ જ્ઞાનકો “અનુગછઙ્ગિ” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ  
દ્વારા સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હેં । આહે સિત હોં, આહે અસિત હોં, જો આચા-  
ર્યદ્વારા પ્રવક્ત્ર ઉપદેશ કે અનુરૂપ ચલતે હેં, ઉન્હેં રત્નત્રયરૂપ સમાધિકા  
લાભ હોતા હૈ ઓર ઇનકે દ્વારા ઉસ ઓર પ્રવૃત્તિ કરનેકે લિપે પ્રેરિત  
કિયા ગયા અન્ય-દૂસરા વ્યક્તિ ખી, જો સાવધ વ્યાપારમેં પ્રવૃત્તિશીલ  
વ્યક્તિયોં જ્ઞા ન અનુસરણ કરતા હૈ ઓર ન ઉસે સ્વયં ખી કરતા હૈ,  
સર્વ વિષયોંકી ચિરતિરૂપ વૈરાગ્યકો ધારણ કયોં નહીં કર સક્તા હૈ ?  
અર્થાત્ અવશ્ય ધારણ કર સક્તા હૈ । આચાર્યપ્રદર્શિત માર્ગ પર ચલ-

અનુસરણ કરે છે એ જ રીતે જે કોઈ એક સંશયવિહીન હોય છે તે પંચેન્દ્રિ-  
યોના વિષયો અને પુત્ર અને પતિના અનુસારથી વિમુખ બની અનુસાર  
અવસ્થા-સંપન્ન બને છે અને તીર્થે કસ્ટિપ્રણીત ઉપદેશ-અનુસાર પોતાની પ્રવૃત્તિ  
બાલુ રાખે છે

આચાર્યે જતાવેલ માર્ગ અનુસાર જે પ્રવૃત્તિ કરે છે એને સમ્યક્ત્વને  
લાભ થાય છે આ વાતને “અનુગછઙ્ગિ” ઈત્યાદિ સૂત્રદ્વારા સૂત્રકાર પ્રકટ  
કરે છે આચાર્યદ્વારા આપેલા ઉપદેશને અનુરૂપ ચાલે છે તેને રત્નત્રયરૂપ  
સમાધિને લાભ થાય છે અને તેના દ્વારા જે તરફ પ્રવૃત્તિ કરવા માટે પ્રેરિત  
કસ્ટમેલ બીજી વ્યક્તિ પણ જે સાવધ વ્યાપારમાં પ્રવૃત્તિશીલ બન્યાબેનુ અનુ-  
સરણ કરવા નથી અને પોતે પણ કરવા નથી તે સર્વ વિષયોની વિસ્તિરૂપ  
વેશ-અને ધારણ કેમ કરી શકવા નથી? અર્થાત્-અવશ્ય ધારણ કરી શકે છે

आचार्यमार्गानुयायी शङ्काकाङ्क्षादिरूपमिथ्यात्वं विहाय सम्यक्त्वं प्राप्नुयादेवेत्यर्थः।  
 यद्वा—अनुगच्छद्भिः=आचार्याक्तं जानद्भि कैश्चित्संयमरीतिपालनविषये  
 चोपदिष्टो मुनिः, ज्ञानानुदयाद्बुद्धिमान्द्येन च अननुगच्छन् मनस्यनवधारयन् कथं  
 न निर्विद्येत; अपि तु निर्विद्येत=पश्चात्तापं प्राप्नुयादेवेत्यर्थः। प्राप्तनिर्वेदश्च चेतसि  
 परिचिन्तयति यदहमभव्योऽस्मि, न संयमो मे वर्तते। अत एव सम्यगुपदिष्टमपि  
 कर्तुं न शक्यमित्यादि। एवंविधपश्चात्तापप्रतिपन्नं सितमसितं वाऽऽचार्य आश्वा-  
 नेवाला प्राणी शङ्का, कांक्षा आदिरूप मिथ्यात्व का बमन कर-उसे छोड़  
 कर सम्यक्त्वको प्राप्त कर ही लेता है।

अथवा—आचार्यप्रतिपादित सिद्धान्त को जाननेवाले कितनेक  
 मनुष्यों या मुनियोंद्वारा संयमकी रीतिके पालनेके विषयमें उपदिष्ट  
 मुनि ज्ञानके अनुदयसे अथवा बुद्धिकी मंदतासे आचार्य प्रतिपादित  
 सिद्धान्तका यथावत् पालक न होनेसे क्या खिन्न नहीं होता है ? अर्थात्  
 अवश्य खिन्न होता है।

भावार्थ—प्रेरित होने पर भी जब यह यथावत् संयम अथवा तपका  
 आराधक नहीं हो पाता है उस समय इसे एक प्रकारकी आत्मग्लानि  
 होती है। उस अवस्थामें यह विचारता है कि मैं अभव्य हूं, संयमका  
 पालक मैं नहीं हो सकूता, यही कारण है कि यह विषय मुझे वार २ सम-  
 झाया जाता है, आचार्य मुझे समझानेमें जरा सी भी करकसर नहीं  
 रखते हैं फिर भी मैं यथावत् रीतिसे उनके कहे अनुसार चलनेमें अस-

आचार्ये सूयवेदा मार्गं उपर आलवावाणा प्राणी शङ्का, आकाक्षा आदिरूप मिथ्या  
 त्वने हर करी-अने छोडी सम्यक्त्वने प्राप्त करी ले छे

अथवा—आचार्य प्रतिपादित सिद्धांतने लक्षणवावाणा डेटलाक मनुष्यो अने  
 मुनियोद्वारा संयमनी रीतना पालनना विषयमा उपदिष्ट मुनि ज्ञानना अनुदयथी  
 अने बुद्धिनी मंदताथी आचार्य प्रतिपादित सिद्धांतना यथावत् पालक न होवाथी  
 शु भिन्न नथी थतो ? अर्थात् अवश्य भिन्न थाय छे

भावार्थ—प्रेरित होवा छता पणु न्यारे ते यथावत् संयम अने तपना  
 आराधक अनी शकतो नथी त्यारे तेने अेक प्रकारनी आत्मग्लानि थाय छे, आ  
 अवस्थामा अे विचार छे के हुं अव्यय छु, संयमना पाणक हुं अनी शकतो  
 नथी, अे न करणु छे के आ विषय अने वार वार समझववामा आवे छे, आचार्य  
 अने समझववामा जरा पणु कर संयता नथी छता पणु न गलान नीनी

સયતિ-મો મધ્ય ! નિર્વેદ મા ગમ', સમ્યક્ષમાપ્ત્યા મન્યસ્ત્વં, ત્સ્માપ્તિમ્ પ્રન્યમેદેન, પ્રન્યમેદમ્ મન્યસ્યૈવ જાયતે, અમન્યસ્ય 'નાઈ મન્ય' ઇત્યાદિપુદ્ગેરવ્યનુદયાત્-  
 ઇતિ વિષયર્થે ત્વ મા પ્રિયીદતિ તાત્પર્યમ્ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

एष च विषयविरतिरूपो निर्वेदो द्वादशकपायस्योपशमाधन्यतमस्य सत्त्वे  
 जायते, स तयाऽधिगतस्तर्हि तत्र दर्शन-चारित्रमोहनीययो क्षयोपशममाप्तौ साम्प्रतं

મર્થ હી ઘના રહતા હું । ઇસ પ્રકાર પચાસાપકો કરનેવાલે સિતજન  
 અપષા અસિત જનકો આચાર્ય આપ્યાસન વેતે હુર કહતે હૈં કિ "હે  
 મધ્ય ! તુ ઉદાસ ન ઘન-આત્મગ્લાનિ મત કર । તુ મધ્ય હૈં, તુજે સમ  
 કિતકા લામ હુધા હૈ, સમકિતકા લામ પ્રન્યમેદસે હી હોતા હૈ,  
 પ્રન્યમેદ તો મન્યકો હી હોતા હૈ, અમન્યકો નહીં અમન્યકે  
 તો "મેં અમન્ય હું" તેસા ક્યાલ તક મી નહીં હોતા હૈ" । એસા વિષાર  
 કર તુમ સેવસ્વિદ્ મત હો ॥ સૂ૦ ૨ ॥

यह विषयोसे विरतिरूप निर्वेद १२ कपायोंके क्षयोपशममेंसे  
 किसी एकके सत्त्व होने पर होता है । यह विषयविरतिरूप निर्वेद यदि  
 तुझे प्राप्त हो चुका है तो तुझे दर्शनमोहनीय एवं चारित्रमोहनीयके क्ष  
 योपशमकी प्राप्ति हो चुकने पर भी इस समय ज्ञानावरणीय कर्मका  
 सद्भाव होनेसे ही प्रतिपादित तत्पर्यार्थमें सकल वस्तुके बोधक ज्ञानकी

તેમના ઠહેવા મુજબ ચાલવામાં અસમય જ બની રહું છું આ પ્રકારને પચા-  
 ત્પ અસ્વાવાળા સિતજન અને અસિતજનને આપ્યામ્ આપ્યાસન આપીને ઠહે  
 છે કે 'હે મધ્ય ! તુ ઉદાસ બની આત્મગ્લાનિ ન કર તુ જાલ છે, તને સમકિ-  
 તનો લાલ મયો છે, સમકિતનો અધિકેદથી જ થાય છે, પ્રન્યમેદ તો જાલને  
 જ થાય છે અમન્યને નહિ અમન્યને તો 'હું અમન્ય હું' એવો જાલ  
 પડ્ય નથી આવતો" એવો વિષાર કરી તમે નિરાશ ન બનો ॥ સૂ૦૨ ॥

આ વિષયોથી વિરતિરૂપ નિર્વેદ ૧૨ કપાયોના ક્ષયોપશમમાંથી કોઈ  
 એકનો સત્ત્વ હાવાથી બને છે. તે વિવેકવિસ્તિરૂપ નિર્વેદ જે તને પ્રાપ્ત થઈ  
 ચૂક્યું છે તો તને દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયના ક્ષયોપશમની પ્રાપ્તિ  
 થઈ જાય છે ત્ય પછી આ સમય જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો સદ્ભાવ હોવાથી જ પ્રતિ  
 પાદિત તત્પર્યમા સકલ વસ્તુના બોધક જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થયેલ નથી. માટે તમે

ज्ञानावरणीयसत्त्वात्प्रतिपादितेऽपि तत्त्वार्थे सकलवस्तुनो न ज्ञानं भवति, तदधिगमार्थं  
जिनोक्तवचनश्रद्धानरूपं सम्यक्त्वमवलम्बनीयमिति दर्शयति—‘तमेव’ इत्यादि।

मूलम्—तमेव सच्चं नीसंकंजं जिणेहिं पवेइयं ॥ सू० ३ ॥

छाया—तदेव सत्यं निःशङ्कं यज्जिनैः प्रवेदितम् ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘तदेवे’त्यादि, यत् धर्माधर्माकाश-काल-पुद्गलादिकं जिनैः=  
वीतरागैः प्रवेदितं द्वादशपर्यादि प्ररूपितं, तदेव वस्तुजातं सत्यं=वास्तविकम्,  
एवकारान्वायन्यैर्थिकादिप्ररूपितम्, किञ्च निःशङ्कं भगवदभिहितेषु परमसूक्ष्मेषु

प्राप्ति नहीं हुई है, सो तुम उस अधिगम-ज्ञानकी प्राप्तिके लिये जिन-  
प्रतिपादित वचनोंमें श्रद्धानरूप सम्यक्त्वका अवलम्बन करो। इसी  
वातको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘तमेव’ इत्यादि।

जिस धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य और पुद्गलद्रव्य  
का वर्णन वीतरागप्रभुने १२ प्रकारकी सभामें किया है, वही भगवत्-  
प्ररूपित द्रव्य वास्तविक-सत्य है। सूत्रमें ‘एव’ पद अन्यतीर्थिकप्ररू-  
पित तत्त्व वास्तविक नहीं है इस वातका बोधक है। निःशंक शब्द यह  
प्रकट करता है कि भगवानने जिन सूक्ष्म, अन्तरित तथा दूर रहे हुए  
पदार्थों की प्ररूपणा की है और जो केवल शास्त्रों से ही जाने जाते हैं ऐसे  
परमाणु आदि पदार्थोंमें “ ये हैं या नहीं हैं ” इस प्रकारके संदेहका नाम  
शंका है—ऐसी शंका जिनमें नहीं है वे निःशंक है।

ते अधिगम-ज्ञाननी प्राप्ति भाटे एनप्रतिपादित वचनोभा श्रद्धानरूप सम्यक्त्वमुं  
अवलम्बन करो आ वातने सूत्रकार सभजवे छे “तमेव” इत्यादि.

वीतराग प्रभुजे १२ प्रकारनी सभाओभा धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आका  
शद्रव्य, कालद्रव्य अने पुद्गलद्रव्यमुं जे वर्णन करेले छे ते भगवत्-प्ररूपित  
द्रव्य वास्तविक सत्य छे सूत्रमा “एव” पद अन्य तीर्थिकप्ररूपित तत्व  
वास्तविक नथी आ वातना बोधक छे निशक शब्द जे प्रकट करे छे जे  
भगवाने जे सूक्ष्म अन्तरित तथा दूर रहेला पदार्थोनी प्ररूपणा करी छे अने  
जे केवण शास्त्रोधी न नाली शंकाय छे जेवा परमाणु आदि पदार्थोमा “आ  
छे जे नथी” आ प्रकारना संदेहनु नाम शंका छे आनी शंका जेनामा नथी  
जे निशक छे.

शास्त्रमात्रज्ञेयेषु परमाप्त्रादिषु चार्थेषु अस्ति वा नास्ति इत्येवमाकारं सन्देहं शङ्का सा निर्गता—अपगता यस्मात् तन्निःशङ्कं—संशयरहितमस्ति स्वसमय परसमयपरिज्ञाकुशलाचार्याणामप्राप्त्या देश—काल—स्वभावविप्रकृष्टेषु सूक्ष्मातीन्द्रियपदार्थसार्थेषु तत्साधकहेतुदृष्टान्ताद्यभावाच्च ज्ञानावरणीयोदयेन सम्यग्ज्ञानात्सर्वेषुपि जिनप्रवचने संशयादिरहितेन भाव्यमित्याशयः । अतस्तथ्यभूतार्थप्रतिपादके धीतरागप्रवचने भद्रा कार्या । उक्तञ्च—

“धीतरागा हि सर्वज्ञा, मिथ्या न भ्रुवते क्वचित् ।

यस्मात्तस्माद्भवस्तेषां, तथ्यं भूतार्थदर्शनम् ॥ १ ॥ इति ॥

भावार्थ—स्वसमय और परसमयके ज्ञाता आचार्योंकी अप्राप्तिसे देश, काल और स्वभाव विप्रकृष्ट ऐसे सूक्ष्म, अतीन्द्रिय पदार्थों में उनके साधक हेतु दृष्टान्तोंके अभावसे तथा ज्ञानावरणीय कर्मके उदयसे सम्यग्ज्ञान उद्भवस्य जीवोंके नहीं हो सकता है तो भी मुनियोंको जिनप्रवचनमें संशयरहित ही होना चाहिये । कभी उनके विषयमें संशय नहीं करें । कारण कि तथ्य ( सत्य ) और भूतार्थ ( विद्यमान ) प्रतिपादक ही धीतराग प्रभुके वचन होते हैं । इसलिये उनमें भ्रद्वा ही करणीय है । कष्टा भी है—

धीतरागा हि सर्वज्ञा मिथ्या न भ्रुवते क्वचित् ।

यस्मात्तस्माद्भवस्तेषां तथ्यं भूतार्थदर्शनम् ॥ १ ॥

धीतराग ही सर्वज्ञ होते हैं । वे कहीं पर भी किसी भी अवस्थामें

भावार्थ—स्व समय अने पर समयना ज्ञाता आचार्योंनी अप्राप्तिसे देशकाल अने स्वभाव विप्रकृष्ट जेवा सूक्ष्म अतीन्द्रिय पदार्थोंमें जेना साधक हेतु दृष्टान्ताना अभावथा अने ज्ञानावरणीय कर्मना उदयसे सम्यग्ज्ञान उद्भवस्य जेवने यतो नथा. ता पणु मुनियोजे अन प्रवचनमा अशय रक्षित रडेपु जेथजे. कही जेभना विषयमां संशय न करे. कारण के सत्य अने विद्यमान प्रतिपादक व धीतराग प्रभुना वचन अने थे अ भागे जेमां भद्रा व शक्यी जेथजे कहुं पणु थे—

धीतरागा हि सर्वज्ञा मिथ्या न भ्रुवते क्वचित् ।

यस्मात्तस्माद्भवस्तेषां तथ्यं भूतार्थदर्शनम् ॥ १ ॥

धीतराग व सर्वज्ञ होय थे जे कहीं पणु स्थले कहीं पणु अवस्थामें

किं गृहस्थस्यैव शङ्का भवत्युत गृहीतचारित्रस्य मुनेरपीत्यागङ्गायामिदमुत्तरम्—  
उभयोरपि शङ्का मोहनीयोदयप्रावल्येन भवति, तत्प्रावलयस्योभयत्र सभवात् ॥ सू० ३ ॥  
संगयो हि प्रव्रजितुमिच्छोर्भवति तत्र यद्विचारणीयं तदाह—‘सङ्घिस्स’ इत्यादि।

मूलम्—सङ्घिस्स णं समणुन्नस्स संपव्वयमाणस्स समियंति-

मन्नमाणस्स एगया समिया होइ (१), समियंति मन्नमाणस्स  
एगया असमिया होइ (२), असमियंति मन्नमाणस्स एगया समिया  
होइ (३), असमियंति मन्नमाणस्स एगया असमिया होइ (४),  
समियंति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा समिया होइ  
उवेहाए (५), असमियंति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया  
वा असमिया होइ उवेहाए (६), उवेहमाणो अणुवेहमाणं वूया  
उवेहाहि समियाए, इच्चेवं तत्थ संधी झोसिओ भवइ, से  
उट्टियस्स ठियस्स गइं समणुपासह, एत्थवि वालभावे अप्पाणं  
नो उवदंसिज्जा ॥ सू० ४ ॥

छाया—श्रद्धिनः खलु समनुज्ञस्य संप्रव्रजतः सम्यगिति मन्यमानस्यैकदा  
सम्यग् भवति (१), सम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यग् भवति (२), असम्य  
गिति मन्यमास्यैकदा सम्यग् भवति (३), असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यग्  
मिथ्याभाषण नहीं करते हैं। इसलिये उनके वचन ही तथ्य और भूतार्थ  
-प्रतिपादक होते हैं।

शङ्का—त्रया शङ्का गृहस्थोंके ही होती है अथवा संयमीजनोंके भी?  
उत्तर—शङ्का दोनोंके होती है, कारण कि शङ्काका कारण मोहनीय  
कर्मके उदयकी प्रवलता है। यह कर्म दोनोंके संभवित है ॥ ३ ॥

जो दीक्षा ग्रहण करनेका अभिलाषी है उसके शङ्का होती है। इस  
विषयमें जो विचारणीय बात है वह सूत्रकार कहते हैं “सङ्घिस्स” इत्यादि।

मिथ्या लाषणु करता नथी, आशी तेमनु वयन न सत्य अने विद्यमान-  
प्रतिपादक अने छे.

शङ्का—शङ्का शु गुहस्थोने न थाय छे के सयमी ननोने पाणु थाय छे?

उत्तर—शङ्का अन्नेने थाय छे शङ्कानु कारणु मोहनीय कर्मना उदयनी  
प्रभणता छे आ कर्म अन्नेमा सलपित छे

ने शिक्षा ग्रहणु करवाना अलिदाषी छे तेने शङ्का थाय छे आ विषयमा  
ने विचारवानी बात छे ते सूत्रकार कडे छे—“सङ्घिस्स” इत्यादि.



भवति (४), सम्यगिति मन्यमानस्य सम्यग् वा असम्यग् वा सम्यग् भक्त्युत्प्रेक्षया (५), असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग् वा असम्यग् भक्त्युत्प्रेक्षया (६) । तत्रे समागोऽनुत्प्रेक्षमाणं द्रुयादुत्प्रेक्षस्य सम्यक्तया, इत्यर्थं तत्र सन्निर्घोषितो भवति, तस्योत्थितस्य गतिं समनुपश्यत, अप्रापि षालमावे आत्मानं नोपदर्शयेत् ॥४०॥

टीका—‘अद्विन’ इत्यादि—अद्विनाः=अद्वावत्, अद्वा-हि वीतरागस्य गुरोश्च वचने विश्वासः सा यस्यास्ति स अद्वी तस्य अद्विनः=आर्हतमार्गाऽऽस्यावत् समनुद्धस्य मोक्षमार्गविहारिभिर्मुनिभिर्मात्रितस्य सयमार्हस्य संप्रव्रजतः=वैराग्येण प्रव्रज्यां स्वीकृषाणस्य जीवादिस्वरूपे संशयो यदि भवेत्तदा तदेव सत्यं निःशङ्कं यञ्जिनैः प्रवेदितम् इत्यादि सम्यग्पदज्ञेन तत्र प्रवृत्तस्य प्रवृत्तकर्मकस्योत्तरसमये सम्यक्त्वस्याधिक्यं साम्यं न्यूनत्वमभावो वा जायेतेत्याशयः । तादृशीमेव विचित्रा-

वीतराग वचनोर्मि विश्वासका होना अद्वा है । इस अद्वाविशिष्ट व्यक्ति का नाम अद्वी है । मोक्षमार्गमें विचरण करनेवाले मुनियोंके द्वारा संयमके योग्य बनाये गये—संयम धारण करनेकी ओर प्रवृत्त किये का नाम समनुद्ध है । संयमको धारण जिसने कर लिया है—अर्थात् वैराग्य-पूर्वक भागवती वीक्षा जिसने स्वीकृत कर ली है वह संप्रव्रजत् है । ऐसे व्यक्तिको यदि कदाचित् जीवादिक तत्त्वोंके स्वरूपमें संदेह हो जाता है तो वह इस अद्वल अद्वा पर कि “जिनेन्द्रदेवने जो कुछ कहा है वही सत्य निःशङ्क सत्य है” अपनी संदेहशील प्रवृत्तिका उन्मूलन कर देता है । इससे वह उत्तरकालमें समकित्तके लाभकी अधिकता की प्राप्ति कर लेता है । अथवा जीवादिक तत्त्वोंमें संदेहशील होने पर मिथ्यात्व

वीतराग वचनोर्मा विश्वास होवे के व अद्वा है अथ अद्वाविशिष्ट व्यक्ति का नाम अद्वी है मोक्षमार्गमें विचरण करनेवाला मुनियोंके द्वारा संयमने योग्य बनावेला—संयम धारण करनेवाली तरह प्रवृत्त होनेका नाम समनुद्ध है संयम लेके धारण करी लीपैल है अर्थात् वैराग्यपूर्वक भागवती वीक्षा लेके स्वीकारी है ते संप्रव्रजत् है अर्थात् व्यक्तिने कदाचित् जीवादिक तत्त्वोंके स्वरूपमें संदेह कदाचित् होवे है तो तं आ अद्वल अद्वा पर के जिनेन्द्रदेवे के कर्षि कर्षुं है के निःशङ्क सत्य तत्त्व है” पीतानी संदेहशील प्रवृत्तिने दूर करे है अर्थात् ते उत्तरकालमें समकित्तका लाभने अधिकताकी प्राप्ति करी वे है अने

त्मपरिणतिं दर्शयति 'सम्यग्' इत्यादि—तस्य शङ्कारहितस्य=पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टस्य  
सम्यग्गिति=जिनप्रवेदिततत्त्वमेव सम्यग् इति=एवं मन्यमानस्य=अवबुध्यमानस्य एक-  
दा=पश्चात्समये सम्यग् भवति संशयाभावेन जिनोक्ते शङ्काद्युत्पादासम्भवात् ॥१॥

तस्य संप्रव्रजतः श्रद्धावतः पूर्वं सम्यग्गिति मन्यमानस्य एकदा=तदुत्तरकाले  
परतीर्थिकशास्त्रपरिशीलनेन छद्मस्थविनिर्मितैकान्तनिश्चयनयप्रतिपादकग्रन्थावलो-

प्रकृतिके उदयमें वह समकित लाभसे वंचित हो जाता है । यदि उत्तर-  
कालमें समकित प्राप्तिकी अधिकता उसे न हो तो समकितका लाभ जितने  
रूपमें उसे पूर्व अवस्थामें हुआ है उसी रूपमें बना रहता है, अथवा  
उसकी अपेक्षा न्यून भी हो जाता है ।

भावार्थ—आत्मा उपशम समकितको पा कर अन्तर्मुहूर्तकालके बाद  
नियमसे या तो समकितके अभावसे मिथ्यात्वदशासम्पन्न हो जायगा  
या क्षायोपशमिक समकितवाला हो जावेगा । क्षायोपशमिकसे वृद्धि कर  
वही आगे क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो जाता है । इस प्रकारकी विचित्र  
आत्मपरिणतिका प्रदर्शन कराते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जिनवचनमें  
शंकारहित हो कर प्रवृत्तिशील उस प्राणीको उस समय “जिनोक्त तत्त्व  
ही सत्य है” इस प्रकारके विश्वाससे समकितका लाभ होता है; कारण  
कि समकितको नहीं होने देनेवाले जो शङ्कादिक दोष हैं वे उस समय  
उस आत्मासे पृथक् हो जाते हैं १। “सम्यग्गिति मन्यमानस्यैकदा अस-  
म्यग् भवति” जिनप्रवचनमें श्रद्धासम्पन्न उसी मानवका ज्ञान जो पहिले

लुप्तक तत्वेमा सन्देहशील होवाथी मिथ्यात्वप्रकृतिना उदयमां ते समकित-  
लाभथी वंचित भवे छे कदाच उत्तरकालमां समकित प्राप्तिनी अधिकता अने  
न भवे तो समकित लाभ नेटला रूपमां अने पूर्व अवस्थामा भवे छे अने  
रूपमा भवे रहे छे, अथवा अनेनी अपेक्षा ओधी थर्ध नय छे

भावार्थ—आत्मा उपशम-समकितना कारणे अन्तरमुहूर्त पछी नियमथी  
अथवा समकितना अभावथी मिथ्यात्वदशास पन्न भनी नशे अथवा क्षायोपशमिक  
समकितवाणा थर्ध नशे क्षायोपशमिकथी आगण वधी ते क्षायिकसम्यग्दृष्टि थर्ध नय  
छे आ प्रकृतिनी विचित्र आत्मपरिणतितु प्रदर्शन करावता सूत्रकार कहे छे के,  
अनवयनमा शंकारहित रही प्रवृत्तिशील अने प्राणीने अने समय “जिनोक्त तत्त्व  
न सत्य छे” आ प्रकृतिना विश्वासथी समकितना लाभ थाय छे कारणे के  
समकितने रोकवावाणा न शंकादिक दोष छे ते अने समय अनेना आत्माथी दूर  
थर्ध नय छे (१) “सम्यग्गिति मन्यमानस्यैकदा असम्यग् भवति” अन  
प्रवचनमा श्रद्धासम्पन्न अने मानवतु ज्ञान न पहेला समकित रूपमा छे

કનેન ધ વ્યામોહિતમતેમિધ્યાત્વપરિણીતતયા જેવામાસદ્દાન્ટામાસાદીન્ રાગ  
દ્વેષાદિના જેવદ્દાન્ટાનભિજાનત' સમ્યક્ત્વચિત્તાન્ત કરણસ્ય વિપરીતશ્વેદાસમુત્થા  
નાનન્તરમ્ અસમ્યગ્ મવતિ, જિનાક્તં યત્ સમ્યક્ તત્તસ્યાઽસમ્યગિતિ ચેતસિમત્તિ-  
માતિ સ્યાદ્દાદસિદ્ધાન્તરહસ્યવિસ્મૃતત્વાત્ । આભિપતિ ધાનેકાન્તવાદમ્, યયા શિ  
યસ્સત્ ન તદસ્સત્ યથાસત્તકથમપિ ન સદ્ મવિતુમર્હતિ, એવં યમ્હિસ્ત્યં ન તદનિત્ય

સમકિમરૂપમે ધા ઉત્તરકાલમે પરતીર્થિક શાસ્ત્રોકે પરિશીલનસે અપથા  
છદ્ધસ્થજનોને જિન ગ્રન્થોમે એકાન્તરૂપસે નિશ્ચયનયકા ઘર્ણન કિયા હૈ  
ઉન ગ્રન્થોકે અથલોકન સે મતિમે ધ્યામોહ ઉત્પન્ન હો જાનેકે કારણ  
જેસ્વામાસ એવં દદાન્ટામાસોકો મી સચ્ચે જેતુ ઓર સચ્ચે દદાન્ટરૂપ  
માન હેના હૈ । જિસસે ઘહ મિધ્યાત્વસે યુક્ત હો જાનેકે કારણ સમકિત  
સે ઘચિત અન્તઃકરણવાલા હો જાતા હૈ । ક્યોં ફિ હસકે હૃદયમે વિપરીત  
અદ્વાકા નિવાસ હોતા હૈ । હસ કારણ યહ સ્યાદ્દાદ સિદ્ધાન્તકે રહસ્યકા  
મૂલ જાનેસે ફિર જિનોક્ સમ્યક્ તત્ત્વોકો મી અસમ્યક્રૂપસે માનને  
લગ જાતા હૈ, અનેકાન્તવાદકા ફિર તો ઘહ સ્વચ્છન કરને લગ જાતા હૈ,  
અથનાક હી કહ ઉઠતા હૈ ફિ ઘાહરે ! સ્યાદ્દાદ સિદ્ધાન્ત ! તું તો એક  
વિલક્ષણ હી સિદ્ધાન્ત હૈ સત્ અસત્, નિત્ય અનિત્ય આદિ અનેક પર  
સ્પરધિરોધી ઘર્મોકો જો તું એક હી જગહ સ્વીકાર કરતા હૈ, બલા !  
યહ મી કોઈ ઘાત હૈ । અરે ! જો સત્ હોગા ઘહ અસત્ નહીં હોગા ઓર

ઉત્તર કાળમા બીજા ધમનાં શાસ્ત્રોના સંબંધવાધી અથવા તેા પુલાસ  
માણસો કે જેણે હુન પ્રયોગા એકાન્ત રૂપથી નિશ્ચયનયનું વર્ણન કર્યું છે  
એવા પ્રયોગા અવલોકનથી મતિમાં અમણા ઉત્પત્ત ધર્મ જવાના કારણે હેતવા  
લાસ અને દદાન્ટામાસોને પણ સાચા હેતુરૂપ અને સાચા દદાન્ટરૂપ માની  
લે છે, આથી તે મિધ્યાત્વથી યુક્ત બની જવાના કારણે સમકિતથી વચિત  
અતઃકરણવાળા બની બાક છે. કેમકે એના હૃદયમા વિપરીત અદ્વાને નિવાસ  
થવા પ્રમ્થો હોય છે આ કારણે એ સ્યાદ્દાદસિદ્ધાન્તના રહસ્યને મૂલી જવાથી  
જિનોકત સમ્યક્ત્વને પણ અસમ્યક્રૂપથી માનવા લાગી બાક છે અનેકા  
ન્તવાદને પછી તેા એ અદન કરવા માટે છે, અમાનક જ કહી ઉઠે છે કે વાહરે !  
સ્યાદ્દાદ સિદ્ધાન્ત ! તું તો એક વિલક્ષણ જ સિદ્ધાન્ત છે સત્ અસત્, નિત્ય  
અનિત્ય આદિ અનેક પરસ્પર વિરોધી ધર્મોના જે તું એક જ સામે સ્વીકાર  
કરે છે, બલા આ પણ કોઈ ઘાત છે, અરે ! જે સત્ છે તે અસત્ ન થા શકે

यच्चाभित्यं न तन्नित्यं भवितुमर्हति, विरुद्धयोर्धर्मयोरेकत्रावस्थाने जगति विरोध एव विलयं गच्छेत्, तेन न युक्तोऽयमनेकान्तवादः, एकस्मिन् बहुधर्मसाधकहेतोस्तादृशदृष्टान्तस्य चासम्भवात् ॥ २ ॥

कस्य चिच्चैतद्वैपरीत्यमाह—‘ असम्यगि ’त्यादि—मिथ्यात्वानुबन्धिनः कस्य चित् असम्यक्—‘ पौद्गलिकः शब्दः ’ इत्यादि वीतरागोक्तं तत्त्वं न साधीय इति जो असत् होगा—वह सत् नहीं होगा। इसी प्रकार जो वस्तु नित्य है वह अनित्य कैसे हो सकती है और जो अनित्य होगी वह नित्य कैसे हो सकती है। यदि परस्पर विरुद्ध धर्मोंका भी एकत्र अवस्थान माना जायगा तो फिर जगतमें विरोध नामक कोई वस्तु ही नहीं रहेगी, समस्त वस्तुओं में परस्पर संकरता ही हो जायगी, परन्तु ऐसा तो है नहीं; अतः अनेकान्तवाद सिद्धान्त युक्तियुक्त सिद्धान्त नहीं है तथा ऐसा कोई हेतु या दृष्टान्त भी नहीं है कि जिसके बलपर एकही वस्तुमें परस्पर विरोधी धर्मोंकी सत्ता साधी जा सके २। “ असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग् भवति ” मिथ्यात्वका अनुबन्ध जिसकी आत्मामें लगा हुआ है ऐसा मनुष्य वीतरागप्रतिपादित तत्त्वको पहिले असम्यक् समझता है, मिथ्यात्व के आवेशमें वह विचारता है कि जैनसिद्धान्तमें शब्द को जो पुद्गल की पर्याय माना गया है वह ठीक नहीं है, इसी प्रकार आत्माको व्यापक न मानकर उसे जो स्वदेह प्रमाण माना है सो यह भी मान्यता

अने असत् सत् थर्ष शके नहि आ प्रकारे जे वस्तु नित्य छे ते अनित्य कर्ष रीते थर्ष शके अने जे अनित्य होय ते नित्य क्कम थर्ष शके जे परस्पर विरुद्ध धर्मोने पण् अेकत्र अवस्थान मानवामा आवे तो पछी जगतमा विरोध नामनी कोर्ष वस्तु न नही रहि—समस्त वस्तुओमा परस्पर अेकता न् अनी जवानी, परतु आलुं तो नथी, आधी अे अनेकान्तवाद युक्तियुक्त सिद्धात नथी तेम अेवा कोर्ष हेतु के दृष्टात पण् नथी के जेना जेर उपर अेक न् वस्तुमा परस्पर विरोधी धर्मोनी सत्ता अेकइप अनी शके (२) असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग् भवति ” मिथ्यात्वना अनुबध जेअना आत्मामा लागेल छे अेवा मनुष्य वीतराग प्रतिपादित तत्त्वने असम्यक् समजे छे. मिथ्यात्वना आवेशमा अे विचारि छे के “ जैन सिद्धातमा शब्दने जे पुद्गलनी पर्याय मानवामा आवेल छे ते सायु नथी ” आज प्रकारे आत्माने व्यापक न मानी अेने स्वदेह प्रमाण मानेल छे अे मान्यता पण् उचित नथी, धत्यादि इपथी

=एवं मन्यमानस्य मिथ्यात्वोदयमावच्यनाऽनर्थक बहु विप्रलपतस्तस्य एकदा-  
 कदाचित् परिणामवैचित्र्यामिथ्यात्वोपक्षमेन आचार्योपदेशात्सम्यक्त्वनिश्चयेन च  
 संशयादिके दूरीभूते सति यज्जिनोक्त तत्त्वं तत्सम्पत्ति मवति । संशयापनयस्तस्य  
 कथमिति चेच्छृणु, एवं यदि शब्दो न पौद्गलिको भवेत्तर्हि तद्विहितानुग्रहोपघातो

उचित नहीं है-इत्यादिरूपमें यह आत्मा धीतराग प्रतिपादित तत्त्वमें  
 असम्यक्पना देखता है । इस प्रकार उसकी मान्यताका कारण प्रबल  
 मिथ्यात्वका उदय है । इसकी प्रयत्नामें यह और भी अनेक अनर्थक  
 मान्यताओंकी कल्पनाको सम्यक् माना करता है, जगत्को ईश्वरकर्तृक  
 माननेका भी यही कारण है । इस प्रकार उसके मिथ्यात्वकी घासनासे  
 प्रसूकथित मार्ग-ठुल्ला-अथर्था प्रतिभासित होता है । परन्तु जय उसकी  
 निष्पक्ष आचार्यादिक के सम्यग् उपदेशसे अथवा परिणामकी विचित्रता  
 से या मिथ्यात्वके उपद्रामसे आखे खुलती हैं, तत्त्वका वास्तविक भान  
 निश्चय उसे होता है तो उसकी पूर्वमान्यता में सहसा परिवर्तन हो जाता  
 है, संशय दूर होते ही फिर उसे यही निश्चय होता है कि जो धीतरागने  
 तत्त्वोंके स्वरूपका प्रतिपादन किया है वही वास्तविक है । शब्द आकाश  
 का गुण न होकर पुद्गलकी ही एक पर्याय है यदि यह पौद्गलिक न होता  
 तो उसके द्वारा जो कर्ण-हन्त्रियका उपघात देवनेमें आता है यह आका  
 शके अमूर्तिक होने पर उसके गुण को भी अमूर्तिक होनेसे कैसे हो

ते आत्मा धीतराग प्रतिपादित तत्त्वमां असम्यक्पदं लुप्ये च आ प्रकाशनी  
 ज्ञेनी मान्यतानु कारण प्रबल मिथ्यात्वने उदय च ज्ञेनी प्रबलतामां ज्ञेनील  
 पण अनेक अनर्थक मान्यताओंकी कल्पनाने सम्यक् मान्या करे च जगतने  
 ईश्वर कर्तृक भानपानु पण आ कारण च आ प्रकारे ज्ञेने मिथ्यात्वनी वास  
 नाधी प्रसू कथित मार्ग ठुल्ला-अथर्था प्रतिभासित जने च परन्तु त्व्यरे  
 ज्ञेनी निष्पक्ष आचार्यादिकना सम्यग् उपदेशमी अथवा परिणामनी विचित्रताधी  
 अथवा मिथ्यात्वना उपद्राममी आजे पुते च-तत्त्वनु वास्तविक भान ज्ञेने धवा  
 पामे च त्व्यरे ज्ञेनी पूष मान्यतामा सहसा परिवतन यथ व्यव च संशय  
 दूर यता च इरी ज्ञेने ज्ञे निश्चय लंधार्थ व्यव च के धीतरागे तत्त्वाना स्वर्  
 पने ने रीते कट्टेव च ते च वास्तविक च शब्द आकाशना गुण नधी पण  
 पुत्रवनी च ज्ञेक पर्याय च कदाय ज्ञे पौद्गलिक न दोत तो ज्ञेना कारा कर्ण  
 हन्त्रियने ने उपघात ज्ञेवाम आवे च ते आकाश अमूर्तिक ज्ञेनाधी ज्ञेना

कर्णेन्द्रियस्य न स्याताम्, अमूर्तत्वाद् गगनवत्, न चायं तथेत्यादि न्यायावतारेण तस्य बाधकतर्कापनयो जायते ॥ ३ ॥

मिथ्यात्ववासनावसितान्तःकरणस्यार्हतशासनापरिशीलकस्य कस्य चिद् असम्यक्=स्याद्वादतत्त्वं न शोभनं कथमेकैव समयेन परमाणुः सप्तमपृथिवीतलतः समुत्थाय लोकान्तं यावद्गच्छति ? इति=एवं मन्यमानस्य कुतर्कग्रहिलस्य एकदा=कुतर्कनिकरप्रसरावसरे असम्यग् भवति । इत्थं हि कुतर्कोद्भावितार्थास्ते विवदन्ते-चतु-

सकता है? इसी प्रकार अनुग्रह भी जो शब्दसे उसका होता है वह भी नहीं हो सकता । भला! अमूर्तिक आकाशसे भी कहीं अनुग्रह और उपघात होते हैं। अतः अनुग्रह और उपघातकारक होनेसे शब्द मूर्तिक ही है । इस प्रकारसे वह युक्तिवादके बलपर अपने पूर्वबाधक तर्कका अपनयन कर (छोड़) देता है, इसलिये उसका वही ज्ञान सम्यक् ज्ञान हो जाता है ३ ।

“असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यक् भवति” मिथ्यात्वकी वासनासे जिसका अन्तःकरण वासित हो जाता है तथा जिनेन्द्र प्रतिपादित सिद्धान्तका जिसने परिशीलन भी नहीं किया है ऐसे मनुष्यके चित्तमें “स्याद्वादतत्त्वं सुन्दर नहीं है” इस प्रकारका असम्यक् उद्भूत होता है। उस कारणसे वह स्याद्वाद-सिद्धान्त-प्रतिपादित कथन को असम्यक् मानता है और कहता है कि जो जिनशास्त्रमें यह लिखा है कि एक पुद्गलका परमाणु एक समयमें १४ राजू प्रमाण गमन करता

शुष्मने पणु अमूर्तिक होवाथी कथ शीते थथ शके? ये प्रकारे अनुग्रह पणु ने शब्दथी अनेो थाय छे ये पणु न थथ शके लला। अमूर्तिक आकाशथी पणु कही अनुग्रह अने उपघात थथ शके? अनुग्रह अने उपघातकारक होवाथी शब्द मूर्तिक न छे, आ प्रकारथी ते युक्तिवादना अण उपर पोताना पूर्वभाधक तर्कने छोडी दे छे आथी अणु अे ज्ञान सम्यक् अनी नय छे (३)

“असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यक् भवति” मिथ्यात्वनी वासनाथी अणु अन्तःकरण वासनावानु अने छे तथा अनेन्द्र प्रतिपादित सिद्धान्त अणु परिशीलन पणु कथुं नथी, अेवा मनुष्यना चित्तमा स्याद्वाद तत्व अरोअर नथी ” आ प्रकारनेो असम्यक् उद्भूत थाय छे, अे कारणथी अे स्याद्वाद सिद्धान्त प्रतिपादित कथनने असम्यक् माने छे अने कडे छे के अण शास्त्रमा अणु लण्यु छे के अेक पुद्गलना परमाणु अेक समयमा

दंशरज्जुस्वरूपलोकस्य मयमघरमाकाशप्रदेशयोर्योगपद्यसम्बन्धात् परमाणोस्तास-  
 त्प्रमाणत्वं दृष्टारमेव जायेत लोकान्तद्वयगतप्रदेशयोर्भेद्व्यमापद्येत इत्यादियुक्तिमि-  
 स्तस्यासम्पत्त्वमिति, परन्तु ते देशानां प्रिया अनवगाहितवीतरागागमानान्नान्ति  
 यथा विद्यसापरिणामेन परमाणोराधुगतिकतयैकसमयेनासङ्घेयप्रदेशातिक्रम्य  
 भवतीति ॥ ४ ॥

है सो यह बात समझमें नहीं आती है, कारण कि एक समयमें ही  
 सप्तम नरकसे उठ कर कैसे लोकके अन्ततक बह जा सकता है। इस  
 प्रकारकी मान्यतावालेका ज्ञान कुतर्कसे युक्त होता है, और इस ही  
 कुतर्कके फलपर इस पूर्वोक्त मान्यताका निषेध करता है। निषेधमें वह  
 यह कुयुक्ति देता है कि एक ही समयमें जय परमाणु चौदह राजू गमन  
 करता है तो उसका लोकके आदि और अंतके प्रदेशके साथ युगपत्  
 संघर्ष होने पर परमाणुमें भी चौदह-राजू प्रमाणता आ जायगी। अन्यथा  
 युगपत् भावि अंतके प्रदेशके साथ उसका संघर्ष नहीं हो सकता है;  
 तथा उसका युगपत् संघर्ष मानने पर लोकके आदि अंत प्रदेशोंकी भी  
 एकता आवेगी। ऐसा कहनेवाले अज्ञानी वीतरागोपदिष्ट आगमके ज्ञाता  
 न होनेसे इस बातको नहीं समझते हैं कि स्वाभाविक परिणामसे एक  
 परमाणु दीर्घ गतिवाला होनेसे एक समयमें असंख्यात प्रदेशोंका उल्लं-  
 चन कर जाता है ॥

१४ शब्दप्रमाण गमन करे छे तेही आ वात समझनां जेसती नही ॥१४॥ के  
 जेक समझमा अ सप्तम नरककी छडी छई रीते लोकना अन्त सुधी जे पछेवाणी  
 शके आ प्रकास्नी मान्यतावाणा ज्ञान कुतर्कथी भरेवा होय छे अने जे अ  
 कुतर्कना वज उपर तेजो आ पूर्वोक्त मान्यतानो निषेध करे छे निषेधमां ते  
 जेही कुयुक्ति रजु करे छे के जेक अ समझमा ज्यारै परमाणु १४ शब्द रीते  
 शके छे तो तेनो लोकना आदि अने अन्तना प्रदेशनी साथै युगपत् संघर्ष  
 होवाथी परमाणुमा पक्ष १४ शब्द प्रमाणता आनी जय, आ सिवाय युगपत्  
 आदि अन्तना प्रदेशनी साथै जेनो संघर्ष होथ शके नही अने जे जेनो  
 युगपत् संघर्ष मानवामा आवे तो लोकना आदि अन्त प्रदेशनी पक्ष जेकटा  
 आववाणी आवुं कहेवावाणा अज्ञानी वीतराजना उपदेशेद आगमकी बलुकार  
 न होवाथी आ वातनेसमल शकता नही के स्वाभाविक परिणामथी जेक परमाणु  
 त्वस्ति गतिवाणा होवाथी जेक समझमा अस अय प्रदेशानु उल्लंघन करी शके छे ॥४॥

परमार्थप्रकटनपूर्वकं भङ्गानुपसंहरन्नाह—‘सम्यग्’ित्यादि, सम्यगित्येवं मन्यमानस्य शङ्कादिवर्जितस्य सम्यग् उपादेयं वस्तुपादेयत्वेनैव जानतः, यत् सर्वज्ञोपदिष्टत्वेन सम्यक् यच्चासर्वज्ञोपदिष्टत्वेनासम्यक् तद्द्वयमपि तस्य उत्प्रेक्षया=नयाभिप्रायसमालोचनया सम्यक्त्वपरिगृहीतया सम्यग् भवति ॥ ५ ॥

पूर्ववैपरीत्येनाह—‘असम्य’गित्यादि. असम्यगिति मन्यमानस्य स्याद्वादनयोक्तजीवाजीवादितत्त्वं यद्यपि सम्यगेव तथाऽप्यसम्यगिति जानतश्छद्मस्थस्यार्वा-

“सम्यगिति मन्यमानस्य सम्यक् वा असम्यक् वा सम्यक् भवति उत्प्रेक्षया” उपादेय वस्तुको उपादेयरूपसे और हेय वस्तुको हेयरूपसे माननेवाले तथा ज्ञात विषयको निःशंकरूपसे मानने और जाननेवाले सम्यग्दृष्टिका ज्ञान सम्यक् होता है। “सर्वज्ञके द्वारा कथित विषय सम्यक् और असर्वज्ञद्वारा प्रतिपादित विषय असम्यक् है” इस प्रकार इन दोनों बातोंका सम्यकनयकी अपेक्षासे विचार करनेवाले सम्यग्दृष्टि मनुष्यका ज्ञान सच्चा ही माना गया है ५। “असम्यगिति मन्यमानस्य सम्यग् वा असम्यग् वा सम्यग्भवति उत्प्रेक्षया” स्याद्वादनयकी अपेक्षा से ही जीव और अजीवादि तत्त्वोंका स्वरूप कहा गया है, इसलिये उस स्वरूप विशिष्ट वे जीवादिक तत्त्व सम्यक् ही हैं, परन्तु छद्मस्थोंकी दृष्टिमें यह नयविचारणा ठीक २ समझमें नहीं आ सकनेके कारण और ऊपरी रूपसे ही वस्तुको जाननेके कारणसे उनका ज्ञान अधूरा रहता है, अतः

“सम्यगिति मन्यमानस्य सम्यक् वा असम्यक् वा सम्यक् भवति उत्प्रेक्षया” उपादेय वस्तुने उपादेय इयर्थी अने हेय वस्तुने हेयषष्ठ्यर्थी मानवावाणा तथा ज्ञात विषयने नि शङ्कइयर्थी मानवा अने नालुवावाणा सम्यग्दृष्टितुं ज्ञान सम्यक् होय छे “सर्वज्ञ तरङ्गथी कडेवाभा आवेल विषय सम्यक् अने असर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित विषय असम्यक् छे” आ प्रकारे आ अने वातोने सम्यकनयनी अपेक्षार्थी विचार करवावाणा सम्यग्दृष्टि मनुष्यतुं ज्ञान सायु न मान्युं गयेल छे (५) “असम्यगिति मन्यमानस्य सम्यग् वा असम्यग् असम्यग् भवति उत्प्रेक्षया” स्याद्वादनयनी अपेक्षार्थी नं लुव अने अलुवादि तत्वोनु स्वइय कडेवाभा आवेल छे आ भाटे अे स्वइयविशिष्ट ते लुवादि तत्व सम्यक् न छे. परतु छद्मस्थोनी दृष्टिमा आ तथ्य विचारणा ठीक ठीक समजवाभा नहि आववाना कारणे तेनु ज्ञान अधूर् रह्ये छे अेटले ते वस्तुना वास्तविक स्वइयर्थी अनभिज्ञ अनी



અર્થિત્વેન યત્ સમ્યગ્ વા અસમ્યગ્ વા સર્વતસ્ય ઉત્પ્રેક્ષયા—અસમ્યક્પર્યાલોચનયાઽ-  
પરિશુદ્ધાધ્યવસાયત્વેન ચ મિધ્યાત્વપરિગૃહીતતયા અસમ્યગ્ મચતિ, યથૈષ સંશયાદિઃ  
પૂર્વમઙ્કુરિત્તસ્તૈષ્વ ફલિત્ત ઇત્યર્થઃ ॥ ૬ ॥

ઇત્ય સમ્યગુત્પ્રેક્ષાપરઃ પરોપદેશદાને સમયો મચતીત્યાહ—'ઉપ્રેક્ષમાણ'  
ઇત્યાદિ—ઉત્પ્રેક્ષમાણઃ=જિનશાસનપરિકર્મિતપુદ્ધિતયા સકલ્લહેયોપાદેયપદાર્થસાર્યા  
વગતિપૂર્વકં સમ્યગસમ્યક્ ચ સતતં સમાલોચન્ અનુત્પ્રેક્ષમાણં લોકાનુગમનશીલં  
વે વસ્તુકે ઘાસ્તવિક સ્વરૂપસે અનભિજ્ઞ ઘન એકાન્ત-મત-પ્રતિપાદિત  
વસ્તુકે અપયાર્થ સ્વરૂપકો યયાર્થ-સમ્યક્ ઔર યયાર્થ સ્વરૂપકો અસમ્યક્  
માન યેઠતે હેં । ઇસલિયે યયાર્થ સ્વરૂપ જાનનેયાલોં કી દૃષ્ટિમેં યહ ઉનકી  
માન્યતા અપયાર્થરૂપ હી હે; યયોં કિ જૈસી પ્રતીતિ હોતી હી યૈસા હી જ્ઞાન  
ઇન્હેં હોતા હે । અસમ્યક્ પ્રતીતિકા કારણ અસમ્યક્ પર્યાલોચના યા અપ  
રિશુદ્ધ અધ્યવસાય હે । ઇસકા ખી કારણ નિશંકરૂપસે જ્ઞાનકા અમાઘ  
હે । ઇસલિયે જિસ રૂપસે સંશયાવિક ઇન્હેં વસ્તુકે વિષયમેં ઉત્પન્ન હોતે  
હેં ઘસી રૂપસે વે ઘહાં ફલિત ખી હોતે હેં ૬ ।

ઇસ પ્રકાર ઘાસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વમેં યયાર્થ અયાર્થપનેકા કારણ સમજ  
કર જો ઇસ વિષયકા વિચાર કરનેમેં ઘસુર હેં વે પરક્રમે ઇસ વિષયકી  
દૃઢતા સપાદનાર્થ સમજાતે હેં કિ હે અભ્ય ! 'ઉત્પ્રેક્ષમાણોઽનુત્પ્રેક્ષમાણ  
ગ્રયાદુત્પ્રેક્ષસ્વ સમ્યક્તયા' મેને ઇસ પદાર્થકી અચ્છી તરહસે પર્યાલોચના  
કર સી હે—જિનશાસનમેં જિસ તત્ત્વકા વર્ણન જિસરૂપસે કિયા ગયા હેં

એકાન્તમત-પ્રતિપાદિત વસ્તુના અવધાર્થ સ્વરૂપને યયાર્થ-સમ્યક્ અને અવધાર્થ  
સ્વરૂપને અસમ્યક્ માની યેઠા છે આ માટે યયાર્થ સ્વરૂપ બાણુવાણાની દૃષ્ટિમાં  
આ તેની માન્યતા અવધાર્થ રૂપ જ છે કેમ કે એવી પ્રતીતિ યાય છે તેવું  
જ્ઞાન તેને યાય છે અસમ્યક્ પ્રતીતિનું કારણ અસમ્યક્ પર્યાલોચના અને અપ-  
રિશુદ્ધ અધ્યવસાય છે અનુ પક્ષ કારણ નિશંકરૂપથી જાનને અભાવ છે  
આ માટે જે રૂપથી તેને સશયાવિક વિષય વસ્તુમા ઉત્પન્ન થાય છે એવા રૂપમાં  
તેનું જ્ઞાન મળે છે (૧)

આ પ્રકારે વસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વમા યયાર્થ અવધાર્થનું કારણ સમજને જે  
આ વિષયને વિચાર કરવામા ઘસુર છે તે જીવને આ વિષયની દૃઢતા સપાદન  
માટે સમજાવે છે કે હે અભ્ય ! 'ઉત્પ્રેક્ષમાણો'—ઈત્યાદિ.

મે આ પદાર્થની સારી રીતે પર્યાલોચના કરેલ છે. જિનશાસનમા જે વસ્તુ

सम्यगसम्यगादिसमालोचनारहितं संशयितमतिं जनं ब्रूयात्=कथयेत् हे-भव्य !  
सम्यक्तया=आर्हतशासनोक्तरीत्या समभावनया उत्प्रेक्षस्व=समालोचय पक्षपातरा-  
हित्येन जीवाजीवादितत्त्वमार्हतशासनोक्तं साधीयोऽथ वा परतैर्थिकोद्भावितमिति  
नेत्रे निमील्य स्वान्तःकरणे तत्त्वं विभावयेत्यर्थः ।

यद्वा 'उत्प्रेक्षमाणः'-उत्=प्राबल्येन प्रेक्षमाणः संयमे समुद्योगपरः, अनु-

वह असंदिग्ध है, उसमें सन्देहके लिये थोड़ासा भी स्थान नहीं है ।  
इतने तत्त्व हेय हैं, इतने उपादेय हैं, इतने ज्ञेय हैं । वीतराग प्रतिपादित  
वस्तुस्वरूप ही यथार्थ है; अन्य छद्मस्थ कथित नहीं । इस प्रकार जिन-  
शासनसे परिकर्मित बुद्धि, होनेसे हेय और उपादेय पदार्थोंकी अवगति-  
पूर्वक उनमें सम्यक् असम्यक्पनेकी समालोचना करनेवाला विद्वान् मुनि-  
जन, लोकानुगमनशील एवं सम्यक् असम्यक्की आलोचनासे रहित  
ऐसे संशयित मतिवाले जनके प्रति संबोधनार्थ कहते हैं कि हे भव्य !  
कम से कम तू आंखोंको मींचकर अपने चित्तमें पक्षपातसे रहित होकर  
इतना तो विचार कर कि जिस प्रकारसे वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन जिन  
भगवान्ने किया है वह ठीक है या परतीथिकजनोंने जिस वस्तुतत्त्वका  
प्रतिपादन किया है वह ठीक है ।

अथवा—जो संयमके परिपालन करनेमें पूर्ण उद्योगशील हैं वे  
उसमें अनुत्साहित हुए अथवा संदेहशील हुए मनुष्यको समझावें कि

पण्डित जेवा रूपमा आपेक्ष छे ते असंदिग्ध छे, तेमा सन्देह करवानु जरा  
पण्डित स्थान नहीं आटलु तत्व डेय छे, आटला उपादेय छे, आटला ज्ञेय छे.  
वीतराग प्रतिपादित वस्तुस्वरूप ज यथार्थ छे, पीण छद्मस्थथी प्रतिपादित  
वस्तुस्वरूप यथार्थ नहीं आ प्रकारे लनशासमा परिकर्मित बुद्धि हुवाथी  
डेय अने उपादेय पदार्थोनी अवगतिपूर्वक तेमा सम्यक्-असम्यक्पण्डितानी समा-  
लोचना करवावाणा विद्वान् मुनिजन, लोकानुगमनशील अने सम्यक् असम्यक्की  
आलोचनाथी रहित जेवा सशय मतिवाणा माणुसने संबोधन करी कडे छे के  
डे भव्य ! तु तारी आपेने अन्ध करीने पक्षपातरहित थई मनमा  
थोडा तो विचार कर के जे प्रकारे वस्तुस्वरूपतु प्रतिपादन लन भगवाने  
करेल छे ते ठीक छे के परधर्मीओजे जे वस्तुतत्त्वतु प्रतिपादन करेल छे ते ठीक छे ?

अथवा—जे संयमनु परिपालन करवामा पूर्ण उद्योगशील छे तेओ  
आनाथी उत्साह वगैरना अनेता अथवा अ देर अतिव्यापन ... ..

श्रेयसमान्=उत्तमपरहितं संशयात्कं जनं द्रुयात्, सम्यक्त्वे=सयमे उत्प्रेक्षस्व=समु-  
द्योगं विवेदि-तत्र पराक्रमस्वेत्यर्थः, किमाश्रित्येदमुक्तमित्याह-‘ इत्येष ’मित्यादि,  
इत्येन=पूर्ववर्धितरूपेण तत्र=संयमे सन्धिः=ज्ञानावरणीयादिकर्मणां परम्परा  
घोषितः=सपितः-दूरीकृतो भवति ।

साहस्योत्प्रेक्षणशीलस्य यद्भवति तदाह-‘ तस्ये ’स्यादि, हे शिष्याः ! तस्य=  
भद्रावतः उत्पितस्य प्रमनितुमुद्यतस्य सम्यक्त्वे संशयरहितस्य स्थितस्य=आचार्य  
स्यादेशे उदन्तिके च वर्तमानस्य गति=सदाचरभरुपां पदति गुर्यं समनुपश्यत  
=सम्यक् प्रेक्षन्वम्, पूर्वोक्तस्य भद्रावत सर्वजनमहंसापात्रस्य ज्ञाने दर्शने च इतरं

हे भव्य ! तू इस संयमकी परिपालनानिमित्त पूर्ण प्रयत्नशील रह ।  
क्यों कि इस संयमकी आराधनामें ही ज्ञानावरणीयादिक द्रव्य-भाष  
कर्मोंकी परंपरा के नाश करनेकी शक्ति रही हुई है । इस प्रकार प्रयत्न  
शील व्यक्तिके लाभ को प्रकट करनेके लिये सूत्रकार “तस्योत्पितस्य  
गतिं समनुपश्यत” कहते हैं । उस अद्वासम्पन्न एवं भागवती वीक्षा ग्रहण  
करनेके लिये उद्यमशील मनुष्यको यह एक बड़ा भारी लाभ होता है  
कि जब वह शास्त्ररहित होकर आचार्यके निकट बसता या उनकी आज्ञा  
में रहता हुआ संयमकी आराधना करनेमें सह्यीन होता है तब उसे सम्य-  
क्त्वेके परिज्ञानपूर्वक रत्नत्रयकी आराधनासे मुक्ति का लाभ होता है । इस  
प्रकार शिष्योंको सम्बोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि देखो, अद्वा  
सम्पन्न व्यक्ति सर्वजनकी प्रशंसाका पात्र बन कर, ज्ञान और दर्शनमें  
इदताकी प्राप्तिसे चारित्र्यमें निश्चलता धारण करता हुआ रत्नत्रयकी

मनुष्यने सम्भवे के हे भव्य ! तु आ संयमने पाणवाभा पूर्वपक्षे प्रयत्न  
शील रहे, केम के आ संयमनी आराधनाभा व ज्ञानावरणीयादिक द्रव्यलाभ  
कर्मोंनी परधराने नाश इश्वानी शक्ति छे आवा प्रयत्नशील व्यक्तितना  
लाभने प्रकट इत्या सूत्रकर “ तस्योत्पितस्य गतिं समनुपश्यत ” इहे छे-आवा  
अद्वासपत्त जने भागवती वीक्षा अरुण इत्याभां उद्यमशील मनुष्यने आ जेके  
भेटे लाभ भाव छे के ज्यारे ते शकारकित जनी आवाधनी पसे रही अथवा  
ज्येमनी आराभा रही संयमनी आराधना इत्याभा तहीन जने छे त्यारे तेने  
सम्भइत्वना परिज्ञानपूर्वक रत्नत्रयनी आराधनाधी मुक्तिने लाभ भाव छे आ  
प्रकारे शिष्योने संबोधन इत्या सूत्रकार इहे छे के ज्यो अद्वासपत्त व्यक्ति  
सर्वजननी प्रशंसाने पात्र जनी ज्ञान जने इश्वरभां इहवानी प्राप्तिधी चास्त्रिभा

चारित्र्ये निश्चलत्व सम्यक्त्वपरिज्ञानपूर्वकरत्नत्रयाराधनेन मोक्षाधिगमश्च भवतीति सम्यक् पश्यतेति तात्पर्यम् ।

यद्वा-तस्य=संयमोद्योगवतः उत्थितस्य तदुद्योगे सततं जाग्रतः गतिं=मोक्ष-प्राप्तिरूपां तत्साधिकां रत्नत्रयसमाराधनरूपा वा तथा स्थितस्य संयमसमुद्योग-वैपरीत्येन वर्तमानस्य साव्रध्वन्यापारनिरतस्य दण्डिशाक्यादेः गतिं=तदाचरणरूपां पद्धतिं सर्वजननिन्दारूपां नरक-निगोदादिगमनं च समनुपश्यत=सम्यग् विचारय-ध्वम्, उभयोर्गतिं समवधार्य संयमे तपसि च पराक्रमध्वमित्यर्थः । संयमसमुद्योग-वर्जितस्याधमा गतिर्भवतीति किं तेन प्रकृते समायातमित्याह-‘अत्रापीति । अत्र संयमानुद्योगरूपे बालभावे-बालस्य-अत्रिदित-संयमानाचरणजनितनरक-

आराधनासे मोक्षका पात्र बन जाता है । जो संयममें उद्योगशाली हैं, एवं उस उद्योगमें जो निरन्तर जागृतिसम्पन्न हैं ऐसे मनुष्यको मुक्तिका लाभ या मोक्षप्राप्तिके कारणभूत रत्नत्रयकी आराधनाकी प्राप्ति होती है; परन्तु जो इससे विपरीत-दशासंपन्न हैं ऐसे दण्डिशाक्यादिकोंकी इस लोकमें निंदा होती है और परलोकमें उन्हें नरकनिगोदादिककी गति प्राप्त होती है । इस प्रकार विचारकर हे शिष्यो ! तुम संयम तपमें सदा प्रयत्न-शील रहो ! इस कथनसे यह प्रकृतमें बात सिद्ध होती है कि जो संयममें समीचीन उद्योगसे रिक्त है उनकी अधम गति होती है, और जो उसमें उद्योगवाले हैं उनकी उर्ध्वगति-उत्तम गति होती है । इसलिये “अत्रापि बालभावे आत्मानं नोपदर्शयेत्” इस संयमके अनुद्योगरूप बालभावमें कि जिसमें संयमके अनाचरणजन्य नरकनिगोदादिक गतियोंके कटुक फलका

निश्चयता धारण करी रत्नत्रयकी आराधनाथी मोक्षने पात्र बनी जय छे जे सयमा उद्योगशाली छे अने जे उद्योगमा जे निरन्तर जागृतिसम्पन्न छे जेवा मनुष्यने मुक्तिने लाभ अथवा मोक्षप्राप्तिना कारणभूत रत्नत्रयकी आराधनाकी प्राप्ति थाय छे, परन्तु जे जेनाथी विपरीतदशासंपन्न छे-सावध व्यापारमा भुञ्जेत छे जेवा दण्डिशाक्यादिकोनी आ लोकमा निंदा थाय छे अने परलोकमा तेने नरकनिगोदादिकनी गति प्राप्त थाय छे, आ रीते जन्नेनी गतिने विचार करी छे शिष्यो ! तमे सयम अने तपमा सदा प्रयत्नशील रहो आ कथनथी जे बात सिद्ध थाय छे के जे सयमना पालनमा शिथिलता अतावे छे तेनी अधम गति थाय छे अने जे जेना पालनमा उद्योगशील रहो छे ते उर्ध्व ( उत्तम ) गति प्राप्त करे छे आ माटे “ अत्रापि बालभावे आत्मानं नो-पदर्शयेत् ” आ अत्रापि बालभावे आत्मानं नो-पदर्शयेत्

निगोदादिकदुःखमस्य भावः—अभिप्राय आचरणमित्यर्थः पापमावन्तस्मिन् कुमार्गप्रवृत्तलोकचरित इत्यर्थः । आत्मानं—सवभेयस्यानं निजं नोपदर्शयेत्—नोपस्थापयेत्—न तत्र स्वात्मानं पातयेदित्यर्थः । यया केचित् ' नित्यत्वादमूर्त्तत्वात् मास्त्यात्मनः प्राणातिपातादिर्गगनस्येषति प्रतिपादयन्ति धालभावमाचरन्ति च तथा मुनयो न कुर्युरित्याह्वय । अपिचन्द्रोऽत्र भिन्नक्रमस्तेन अत्रालभावे स्वात्मानमुपदर्शयेदित्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

आत्मनो इननं न ममतीति मत्वा प्राणिजननादीं प्रवृत्तं पुरुषं तस्मात्किवर्तयितुं इत्यमानस्य इन्तुभैरपमापादयन्नाह—' तुमसि ' इत्यादि ।

मूलम्—तुमसि नाम सञ्चेष ज हतव्यति ममसि, तुमसि नाम सञ्चेष ज अज्जावेयव्यति ममसि, तुमसि नाम सञ्चेष ज परियावेयव्यति ममसि, एष ज परिचितव्यति ममसि, ज उह

मान नहीं होता है, कुमार्गप्रवृत्त लोकके द्वारा सेवित ऐसे आचरणमें सर्व कल्याणके पात्रस्वरूप अपनी आत्माको संलग्न न करो, उस आचारमें अपनी आत्माका पतन न करो । सारांश इसका यह है कि जैसे कोई अन्यमति—' आकाशकी तरह नित्य और अमूर्त्त होनेसे जीवका घात नहीं होता है ' इस प्रकार मानते हैं और पालभावका आचरण करते हैं, उस प्रकार साधुको नहीं करना चाहिये ॥ सू० ४ ॥

आत्माका इनन नहीं होता है ऐसा समझकर जो प्राणियोंके हिंसा-विक कार्यमें प्रवृत्त हैं उन पुरुषोंकी उस कार्यसे निवृत्ति करानेके लिये तथा इत्यमान और इन्तामें एकता है इस घातको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—' तुमसि ' इत्यादि ।

नश्चिन्नेवाह्नि गतिशोना कृत्वा इणु भान होतु नशी, कुमार्ग प्रवृत्त लोकोपी सेवित जेवा अचरन्तुमा सर्वकल्याणना पात्रस्वरूप पालना अन्तमाने न जया हो—जे आचार्यपी पालना आत्मानु पतन न करे। साशय आने को छे छे—नेम कोछे अन्य मति ' आकाशपी भाइके नित्य अने अमूर्त्त होवपी अन्ता (एव)पी घात घती नशी ' अ प्रकारे आने छे अने आणभावनु अचरन्तु करे छे, अ रीते मुनिजे करवु कोछेजे नाह ॥ सू० ४ ॥

आत्मा कृष्णार्थ शक्ते। नशी, कोवु समलने ने आच्छीशोना हिंसाविक कर्ममा प्रवृत्त छे जेवा पुरुषोनी जे कार्यपी निवृत्ति कलववा माटे ' इत्यमान अने इन्तामा अकता छे, अ घात प्रकट करवा सूत्रकार कहे छे— तुमसि इत्यादि

वेयव्वन्ति मन्नसि, अंजु चेयं पडिबुद्धजीवी, तम्हान हन्ता नवि  
घायए, अणुसंवेयणमप्पाणेणं जं हंतव्वं नाभिपत्थए ॥ सू०५॥

छाया—त्वमसि नाम स एव यं हन्तव्यमिति मन्यसे, त्वमसि नाम स एव  
यमाज्ञापयितव्यमिति मन्यसे, त्वमसि नाम स एव यं परितापयितव्यमिति मन्यसे,  
एवं यं परिग्रहीतव्यमिति मन्यसे, यम् अपद्रावयितव्यमिति मन्यसे, ऋजुश्चैतत्प्रति-  
बुद्धजीवी, तस्मान्न हेन्ता नापि घातयेत्, अनुसंवेदनमात्मना यद् हन्तव्यं  
नाभिप्रार्थयेत् ॥ सू० ५ ॥

टीका—‘त्वमसी’ त्यादि—त्वं यं प्राणिनं हन्तव्यं=दण्डकशा—शस्त्रादिभिर्हिं-  
सनीयम् इति=एवं मन्यसे=जानासि स एव प्राणी त्वमसि सकलात्मनश्चेतनादि-  
समानलक्षणत्वात्, नामेति सम्भावनायाम्; इदमत्र तत्त्वम्—हननेन गगनवदमूर्त्तस्या-  
त्मनो हिंसा न भवति किन्तु शरीरस्यैव, तच्च शरीरं जीवस्याश्रयभूतमतीवप्रिय-

सूत्रकार दूसरींका घात करनेवालोंको उपदेश देते हुए कहते हैं  
कि तुम जिनको मारनेयोग्य—दण्ड—चायुक शस्त्र आदिकोंसे यह मारने-  
लायक है, ऐसा समझते हो वही तुम हो; क्यों कि उसमें और तुममें  
कोई अंतर नहीं है। शास्त्रकारोंने जीवका लक्षण चेतना बतलाया है।  
यह लक्षण ऐसा कोईसा भी जीव नहीं है कि जिसमें न पाया जाता  
हो। अतः इस जीवके सामान्य लक्षणसे युक्त होनेसे समस्त जीव लक्ष-  
णकी अपेक्षासे एक हैं।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा अमूर्त्त है, जो अमूर्त्त होता है उसका  
आकाशकी तरह हनन—विनाश—घात नहीं हो सकता है, घात मूर्त्त  
शरीरका ही होता है। परंतु फिर भी जो हिंसा मानी जाती है उसका  
कारण यह है कि हिंसकद्वारा जीव उसका आश्रयभूत शरीरसे वियुक्त कर

सूत्रकार णीज्जानी घात करवावाणाने उपदेश आपता कहे छे के तमे जेने  
मारवा योग्य—दण्ड, चायुक शस्त्र वगेरेथी जे मारवालायक छे जेवु समझे छे  
जे तमे छे, केम के जेनामा जने तमारामा कोर्छ अन्तर नथी शास्त्रकारेजे  
जवजु लक्षणु चेतना पतावेले छे जे लक्षणु जेवो कोर्छ पणु जव नथी के  
जेनामा न होय जेथी जे लजना सामान्य लक्षणुथी नक्की छे के समस्त जव  
लक्षणुनी अपेक्षाथी जेक छे

भावार्थ—आत्मा अमूर्त्त छे, जे अमूर्त्त होय छे तेना आकाशनी भाङ्क  
हनन—विनाश—घात नथी थर्छ शकतो घात मूर्त्त शरीरनो ज थाय छे;  
छता पणु तेमा हिंसा मानवामा आवे छे, तेजु कारणु जे छे के हिंसा—करनार

મતસ્તચ્છરીરાષ્ટસ્ય વિયોજનમેષ હિંસા, તયારિ—

“પૃષ્ઠેન્દ્રિયાણિ ત્રિવિધં વલં ચ,  
ઉચ્છ્વાસ—નિઃશ્વાસમધાન્યદાયુઃ ।

પ્રાણા વૃષ્ટૈતે મગવઙ્ગિરુક્તા,—

સ્તેપાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥ ૧ ॥

इति वचनात् । किञ्च जीवस्य सर्वथा नामूर्त्त्वादिसमधिगमो यतो गगनस्त्वेष  
हननादिरूपविकारो नापद्येत किन्तु स कर्मभिन्मूर्त्तोऽपि क्षरीराधिष्ठितत्वादिति तस्य

વિયા જાતા છે । इस क्रियाका नाम हिंसा है । क्यों कि जीवका भाव  
यमूर्त होनेसे वह शरीर उसे अत्यन्त प्रिय था, हिंसक उसे अपने हिंसा

રૂપ કર્મદ્વારા વિનષ્ટ કર દિયા । हिंसाका लक्षण भी यही किया है ।  
श्लोक—पृष्ठेन्द्रियाणि त्रिविधं वलं च, उच्छ्वास—निःश्वासमधान्यदायुः ।

પ્રાણા વૃષ્ટૈતે મગવઙ્ગિરુક્તા,—સ્તેપાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥૧॥

અર્થ—પાંચ ઇન્દ્રિય, ત્રણ વલ, ઉચ્છ્વાસ નિશ્વાસ ઓર ધાયુ ઇન  
૧૦ પ્રાણોક્ત વિયોગ કરના હિંસા છે ।

दूसरी बात यह है—कि आत्मा सर्वथा अमूर्त भी नहीं है, क्यों  
कि कर्मबन्धकी अपेक्षा वह कथंचित् मूर्त माना गया है । सर्वथा  
अमूर्त मानने पर ही गगनादिककी तरह उसमें हननादिरूप विकार

દાસ આશ્વભૂત શરીરથી છુવને વિબુક્ત કરી દેવામા આવે છે. આ ક્રિયાત  
નામ હિંસા છે કેમ કે છુવના આશ્વભૂત હોવાથી જે શરીર તેને અત્યવ પ્રિય  
હતુ, હિંસક પેતાના હિંસારૂપ કર્મદાસ તેને નાશ કરી નાખ્યો. હિંસાત  
લક્ષણ પણ આમ કહેલ છે

‘પૃષ્ઠેન્દ્રિયાણિ ત્રિવિધ વલં ચ,

ઉચ્છ્વાસનિઃશ્વાસમધાન્યદાયુઃ ।

પ્રાણા વૃષ્ટૈતે મગવઙ્ગિરુક્તા—

સ્તેપાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥ ૧ ॥”

અર્થ—પાંચ ઇન્દ્રિય, ત્રણ વલ, ઉચ્છ્વાસ, નિશ્વાસ અને ધાયુ આ  
इस प्राणोने। वियोज करने ते हिंसा छे पीछे वात जे छे के आत्मा  
सर्वथा अभूत पलु नहीं, केम के कर्मबन्धनी अपेक्षा ते कथंचित् भूत मन्-  
जेल छे सदा अभूत मानवाधी जगनादिकनी भाइके तेमा हननादिरूप विकार  
यछ शकती नहीं, परन्तु जेवी भान्यता जेकान्त रूपी जैन धर्मनी नहीं. क्याइ

હનનાદિકમુપપદ્યત એવ । એવં સર્વત્રૈવાત્મૌપમ્યં વિભાવનીયમિતિ દર્શયતિ-‘ત્વમસી’ ત્યાદિ-ત્વં યં=જીવમ્ આજ્ઞાપયિતવ્યં=દુષ્કરણમિતિતકાર્યે નિયોજનીયમિતિ મન્યસે ત્વં સ એવાસિ । એવમપરેષ્વપિ યોજ્યમ્ । તત્ર પરિતાપયિતવ્યં=શારીર-માનસ-પીડયા ઉપતાપયિતવ્યં પરિગ્રહીતવ્યં=સ્વાયત્તીકરણીયમ્ । અપદ્રાવયિતવ્યં પ્રાણૈર્વ્ય- નહીં હો સકતા હૈ । પરંતુ એસી માન્યતા એકાન્તરૂપસે જૈનધર્મકી નહીં હૈ । જવ વહ શરીરમેં અધિષ્ઠિત પ્રત્યક્ષરૂપસે પ્રતીત હોતા હૈ તો ફિર ઉસકે વિઘાત હોને પર ઉસકા ખી વિઘાત માના જાતા હૈ । હસી પ્રકાર આત્મોપમતા સર્વત્ર-વક્ષ્યમાણ પદોંકે અર્થકે સાથ ખી સમન્વિત કર લેની ચાહિયે; યહી વાત “ ત્વમસિ નામ સ એવ યમાજ્ઞાપયિતવ્યમિતિ મન્યસે ” હત્યાદિ પદોંમે પ્રકટ કી ગઈ હૈ-તુમ જિસ દુષ્કર એવં અન- મિતત કાર્યમેં અન્ય જીવોંકો “ યે વહાં નિયુક્ત કરનેયોગ્ય હૈ ” એસા સમજ્જકર નિયુક્ત કરતે હો સો એસા વ્યવહાર તુમ્હારા ઉન જીવોંકે સાથ નહીં હૈ, કિન્તુ યહ વ્યવહાર તુમ સ્વયં અપને હી સાથ કરતે હો એસા સમજ્જના ચાહિયે; ક્યોં કિ ઉનમેં ઓર તુમમેં જીવકે સામાન્ય લક્ષણ કી અપેક્ષા કોઈ અંતર નહીં હૈ । હસી પ્રકાર જિન જીવોંકો તુમ શારી- રિક એવં માનસિક પીડા પહુંચાને યોગ્ય માનકર ઉન્હેં ઉસ તરહકી પીડા પહુંચાતે હો, પ્રાણોંસે ઉન્હેં વિયુક્ત કરતે હો, પરિગ્રહણ યોગ્ય માનકર તુમ જિન જીવોંકા દાસ-દાસી આદિરૂપમેં પરિગ્રહ કરતે હો, યહ સબ

એ શરીરમા અધિષ્ઠિત પ્રત્યક્ષ રૂપથી પ્રતીત થાય છે તો પછી એનો વિઘાત થવાથી તેનો પણ વિઘાત માની લેવાય છે આ પ્રકારે આત્મોપમતા સર્વત્ર-વક્ષ્યમાણ પદોના અર્થની સાથે પણ સમન્વિત કરી લેવી જોઈએ. આ વાત “ તુમસિ ” ઇત્યાદિ! પદોમા પ્રગટ કરેલ છે તમે જે દુષ્કર એવા અનભિમત કાર્યમાં અન્ય જીવોને “ આ ત્યા નિયુક્ત કરવા યોગ્ય છે ” એવું સમજીને નિયુક્ત કરો છો, એવો વ્યવહાર તમારો એ જીવોની સાથે નથી, પરંતુ આ વ્યવહાર તમે ફક્ત પોતાની જ સાથે કરો છો, એમ સમજવું જોઈએ. કેમકે એનામાં અને તમારામાં જીવસામાન્યલક્ષણની અપેક્ષા કોઈ અંતર નથી આ રીતે જે જીવોને તમે શારીરિક અને માનસિક પીડા પહોંચાડવા યોગ્ય માનીને એને એવી બલતની પીડા પહોંચાડો છો, પ્રાણોથી તેને છુટા પાડવા યોગ્ય માનીને તમે તેને પ્રાણોથી વિયુક્ત કરો છો, પરિગ્રહણ યોગ્ય માનીને તમે જે જીવોનું દાસ-દાસી આદિ રૂપમા પરિગ્રહ કરો છો, આ સઘળો વ્યવહાર તમારો તે જીવો સાથેનો ઉચિત



परोपचितव्यमिति, एतानि च वाक्यानि हिंसाविशेषप्रतिपादकान्येष सन्ति । स्वस्य  
 इननाज्ञापनपरितापनपरिग्रहापद्राव्याधिकार्यकारिणं कंचिद्विभोक्तव्यं यथा दुःखं  
 भायते तथैवापरस्यापि; इननाधिकारी चेत्त्रं मघेस्तदाऽऽत्मौपम्येन तत्तत्कार्यादौ  
 दुःखानि मवन्तीत्यालोच्य कस्य चिन्न इननादौ प्रवर्तितव्यमित्याशयः । एतदा

व्यवहार तुम्हारा उन जीयोंके साथ उचित नहीं है; क्यों कि जिस प्रकार  
 अपनी हिंसा करनेवालेको देखकर तुम्हें दुःख होता है, अपनेको अनु-  
 चित एवं दुष्कर कार्यमें नियुक्त करानेवालेको जानकर जैसे तुम्हें कष्ट  
 का अनुभव होता है, अपनेको परिताप पहुँचाने योग्य जाननेवाले व्यक्ति  
 को देखकर जैसे स्वयंको सताप होता है, अपनेको दास-दासीरूपमें  
 समझनेवालेके प्रति जैसे तुम्हें तिरस्कार आघत होता है और जैसे अपने  
 को प्राणोंसे वियुक्त करनेयोग्य माननेवालेके ऊपर तुम्हें क्रोध होता है  
 उसी प्रकार यदि तुम भी इस प्रकारका व्यवहार दूसरोंके प्रति करते हो तो  
 तुम्हारा यह व्यवहार आत्मोपमतासे तुम्हें स्वयं दुःखप्रद होगा । कारण कि  
 हिंसनीय, आज्ञापनीय, परितापनीय, परिग्रहणीय और अपद्रावणीय तुम  
 स्वयं हो जाते हो । अतः अन्यको उस २ व्यवहार के योग्य मानना ही स्वयं  
 अपनेको उस २ व्यवहारके योग्य मानना है । ये पूर्वोक्त समस्त वाक्य  
 हिंसाके प्रकारोंके ही प्रतिपादक हैं ऐसा समझना चाहिये । अतः आत्मज्ञानी  
 मुनिका कर्तव्य है कि वह कभी भी किसी भी जीवके हिंसादिक कार्योंमें

नहीं के रीते तमारी हिंसा कृपावाण्यने जेधने नेटहुं दुःख तमने याव छे  
 पाताने अनुचित जेवा दुःखर कार्यभा नियुक्त करनारने साने जेध जेभ तमने  
 दुःखने अनुभव याव छे तमने परिताप पहुँचावठनार उचितने आवी के रीते  
 तमने सताप याव छे तमने दास-दासी रूपे समझनार तरह जेचो तमने तिर-  
 स्कार उचित याव छे अने जेभ तमने प्राणुषी वियुक्त करवा योज्य मानवाण्य  
 ऊपर तमने क्रोध याव छे, आर रीते तमे पक्ष जावा प्रकारने व्यवहार नीब  
 जेना तरह करे तो तमारी आ व्यवहार अतःमाघमताथी तमने दुःखदायक  
 थरे, कारण के हिंसनीय, आज्ञापनीय, परितापनीय, परिग्रहणीय, अने अपद्रावणीय  
 तमे स्वयं जनी अव छे आगे जीवने तेने व्यवहारने योज्य मानवु ते स्वयं पाताने  
 के ते ते व्यवहारने योज्य मानवा अवसर छे आ पूर्वोक्त समस्त वाक्य हिंसा  
 प्रकारने प्रतिपादक छे जेवु समझवु जेधजे, जेधी आत्मज्ञानी मुनिनु कर्तव्य

शयेनैव स एव त्वमसीति सर्वत्रैक्यप्रतिपादनमिति तवानिष्टप्राप्तौ यथा दुःखं जायते तथैवान्यस्येति सम्यक् समालोचयेति भावः । उपलक्षणमेतन्मृषावादादीनामपि । हन्तु-हन्यमानयोरैक्यकथनेन किमायातमित्याह-‘ऋजु’रित्यादि-एतत्प्रतिबुद्धजीवी-एतस्य=हन्तु-हननीयैक्यस्य यत्प्रतिबुद्धं=प्रतिबोधः परिज्ञानं तद् एतत्प्रतिबुद्धम् तेन जीवितुं शीलं यस्य स एतत्प्रतिबुद्धजीवी हननादिव्यापारनिवृत्तश्च ऋजुः=सरलः-प्रगुणः आत्मसमसकलप्राणिगणदुःखदर्शी भवति । ततः किमि-

प्रवृत्ति न करे । इसी आशयसे सूत्रकारने “स एव त्वमसि” इस वाक्यसे सर्वत्र हन्यमान-हन्ता आदिमें एकता का कथन किया है । जिस प्रकार अनिष्टकी प्राप्तिमें तुम्हें दुःख होता है उसी प्रकार अन्यके साथ कृत यह अनिष्ट व्यवहार इन्हें भी दुःखप्रद होता है, इस प्रकार मोक्षाभिलाषी मुनिको सदा विचार करते रहना चाहिये, यही सूत्रकारका आशय है । “त्वमसि नाम स एव यं हन्तव्यमिति मन्यसे ” यह सूत्रांश मृषावाद आदिका उपलक्षक है । हन्ता और हन्यमानमें जो एकताका कथन किया है उसका यह अभिप्राय है-जो एतत्प्रतिबुद्धजीवी है-हन्ता और हन्यमानमें एकताका प्रतिबोधसे ही जिसका जीनेका स्वभाव है, अर्थात् दूसरोंके घातादिक व्यापारसे निवृत्त जिसका जीवन है ऐसा ऋजु जीव अपने तुल्य समस्त जीवोंको मानकर उनके दुःखका दर्शी होता है । इससे उसे इस बातका बोध होता रहता है कि जिस प्रकार मेरी हिंसा होने पर मुझे

छे डे ते कदि पणु कोधपणु एवनी डि साना कार्यमा प्रवृत्ति न करे. आ आशयथी सूत्रकारे “ स एव त्वमसि ” आ वाक्यथी सर्वत्र हन्यमान-हन्ता आदिमा ऐकतानु कथन करेल छे ने प्रकारे अनिष्टनी प्राप्तिथी तमोने इ भ थाय छे ऐ न प्रकारे अन्यनी साथे अनिष्ट व्यवहार ऐने पणु इ भप्रद थतो डोय छे आ वातनो मोक्षाभिलाषी मुनिऐे सदा विचार करता रहेवु जेधऐे, आवो सूत्रकारने आशय छे. त्वमसि नाम स एव यं हन्तव्यमिति मन्यसे ” आ सूत्रांश मृषावाद आदिनु उपलक्षक छे हन्ता अने हन्यमानमा ने ऐकतानु कथन करेल छे ऐने आ अभिप्राय छे डे ने ऐतत्प्रतिबुद्धजीवी छे-हन्ता अने हन्यमानमा ऐकताना प्रतिबोधथी न नेनो एववानो स्वभाव छे, अर्थात् भीजना घातादिक व्यापारथी निवृत्त-ऐमनु एवन छे, ऐवा दयावान एव पेतानी तुल्य समस्त एवोने मानी ऐना इ भमा सहसागी अने छे आथी ऐने ऐ वातनु ज्ञान थर्तु रहे छे डे ने प्रकारे भारी डि सा थवाथी मने इ भ थाय ऐ न प्रकारे अन्य

स्याह—'तस्मा'दित्यादि-यस्माद् इत्यमानस्य दुःखं स्वात्मन इव जायते तस्मात् कारणात् स्वोपम्येन न हन्ता परमाणिमाणविराघको न भवेत्, तथैव नापि घातमेत्, अपि शब्दाद् अन्तं नानुमोदयेदिति। अपि च आत्मना यदितरस्य अनु=पश्चात् संवेदनम्=अनुभाषनम्-मोहनीयोत्प्रेयेन यद् इननादिना दुःखमुत्पादितं उत्पाद्यात् त्मनाऽनुभवनीयं भवति, इत्यवधार्यं यं कंचिद् इन्तव्यमिति मन्यमानस्तं नामिषां येत्=कदाचिदपि इन्तव्यतया नेच्छेत्, फल्यचिदपि घातं मनसाऽपि नो कामयेत्, किंपुनः क्वयेन वचसेति हृदयम् ॥ सू० ५ ॥

दुःख होता है उसी प्रकार अन्य प्राणीको भी हिंसा होते समय दुःख होता है। इसलिये स्वात्मोपमताके ध्यानसे परप्राणीके प्राणोंका विराघक कमी भी मुनिजनको नहीं होना चाहिये। जिस प्रकार यह स्वयं हिंसासे विरक्त होता है, उसी प्रकार उससे यह अन्य जनको भी निवृत्त करता है। "अपि" शब्दसे हिंसामें प्रवृत्त अन्यजन की यह अनुमोदना भी नहीं करता है यह योच होता है। "अनुसंवेदनमात्मना यद् इन्तव्यं प्रायेयेत्" अनु शब्दका अर्थ पश्चात् और संवेदन शब्दका अर्थ अनुभाषन है। मोहनीय कर्मके उदयसे जो इननादिक व्यापारोंद्वारा अन्य जीवोंको दुःख पहुंचाया जाता है वह दुःख पश्चात्-पीछे मारनेवालोंके द्वारा भोगनेयोग्य होता है, ऐसा विचार कर-निश्चय कर "यह इन्तव्य है" इस प्रकारकी परिणतिसे कमी भी किसी भी जीवको मारनेयोग्य नहीं समझना चाहिये। जब मनसे भी इस प्रकारकी घात करनेरूप परिणतिके चिन्तन

प्राणीजिने पक्ष हिंसा घते समये दुःख वाप्ये च आ भाटे स्व आत्माना प्रभाषना ध्यानधी जीव आषीना प्रषुना नाशकर्ता मुनिजने कही पक्ष न अननु वेधजे के रीते के पोताना मनधी च हिंसाधी विरक्त वाप्ये, तेवी च रीते जीवने पक्ष हिंसाधी निवृत्त बनावे छे

"अपि" शब्दधी हिंसाभां प्रवृत्त जीव आषुसने पक्ष जे अनुमोदन आपत्ता नधी, जेयो अर्थ वाप्ये छे "अनुसंवेदन" धत्तादि। अनु शब्दने आर्थ पश्चात् अने संवेदन शब्दने अर्थ अनुभाषन छे मोहनीय कर्मना उदयधी के लव हिंसाधिक व्यापारोद्वारा जीव लवने केवुं दुःख पहुंचावटे छे तेवुं दुःख पाछगधी आस्पासजे पोते च सोअने छे जेयो विचार करी-निश्चय करी "आ इन्तव्य छे" आ प्रकारनी परिणतिधी कदि पक्ष लवने आस्वा योग्य समअनु न वेधजे अन्धारे मनभां पक्ष आ प्रकारने घात कस्वाइप विचारनु

आत्मनाऽनुसंवेदनं कृतमित्यभिहितं, तत्र संवेदनस्य सुख-दुःखरूपतया कणाद-गौतमानुयायिनेवात्मनो गुणभूतेन विशेषगुणेन ज्ञानेन भेदोऽथवा चाभेद एवात्र शिष्यप्रश्ने सुधर्मास्वामी प्राह-‘जे आया’ इत्यादि ।

मूलम्—जे आया से विन्नाया, जे विण्णाया से आया जेण वियाणइ से आया, तं पडुच्च पडिसंखाए, एस आयावाई समियाए परियाए वियाहिये त्तिबेमि ॥ सू० ६॥

तकका विचार मुनिजन या सामान्य जनके लिये निषिद्ध है तो काय और वचनसे तो इस प्रकारकी परिणतिका निषेध स्वतः ही हो जाता है । मुनिजनके लिये सर्वथा मन, वचन और कायसे परजीवोंकी हिंसा आदिका सर्वथा त्याग करना चाहिये यही इसका भावार्थ है ॥सू०५॥

“आत्माको दूसरे जीवोंकी हिंसा आदि नहीं करना चाहिये; क्यों कि हिंसाजन्य पापकर्मका फल उसे भोगना पड़ता है ऐसा निश्चय कर वह सर्वथा हिंसा आदिका त्याग करे” ऐसा जो आपने कहा है सो इस प्रकारका निश्चय आत्मा ज्ञानसे ही करता है । तब हम पूछते हैं कि जिस प्रकार कणाद और गौतमके अनुयायियोंने आत्मासे ज्ञानगुणको सर्वथा भिन्न माना है, उसी प्रकार क्या आत्मासे ज्ञान गुणका सर्वथा भेद या अभेद आप भी मानते हैं? इस प्रकार जम्बूस्वामीके प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीसुधर्मास्वामी महाराज कहते हैं—“जे आया” इत्यादि—

चित्तं कश्चु मुनिजन अने सामान्य जनने भाटे निषिद्ध छे, तो काया अने वचनथी तो आ प्रकारनी परिणतिने निषेध स्वतः नै अपनी नय छे मुनिजनने भाटे सदा मन वचन अने कायाथी परलवोनी हिंसा आदिनो सर्वथा त्याग छे—अे आनेो लावार्थ छे ॥ सू० ५ ॥

“आत्माअे भीण लवोनी हिंसा आदि न कश्चु नोअेअे, केम के हिंसा-जन्य पापकर्मनु कण अेणु लोणववु पडे छे, अेवो निश्चय करी ते हिंसा आदिनो त्याग करे” अेवु आपे कहु छे. पणु आ प्रकारनो निश्चय ते आत्मा ज्ञानथी नै करे छे, त्तारे अमे आपने आ पूछीअे छीये के ने प्रकारे कणुाद अने गौतमना अनुयायीअेअे आत्माथी ज्ञान गुणुने सर्वथा भिन्न मानेल छे, अे प्रकारे आप पणु शु आत्माथी ज्ञान गुणुने सर्वथा लेद या अलेद माने छे ? आ प्रकारना जम्बूस्वामीना प्रश्ननो उत्तर देता श्री सुधर्मास्वामी महाराज कहे छे—“जे आया” इत्यादि.

જ્ઞાયા—ય આત્મા સ વિજ્ઞાતા, યો વિજ્ઞાતા સ આત્મા, યેન વિનાનાતિ સ આત્મા, તં પ્રતીત્ય પ્રતિસંસ્થ્યાયતે, એવ આત્મવાદી સમ્યક્પર્યાયો વ્યાહત इति પ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

ટીકા—‘ય આત્મે’ત્યાદિ—ય આત્મા=નિત્ય ઉપયોગમક્ષણો જીવઃ સ વિજ્ઞાતા=વિજ્ઞાનકર્તાઽપિ સ એવ પ્રસ્પાઠ, ન પુનરાત્મન પદાર્થસાર્થબોધક જ્ઞાન પૃથક્; યો વિજ્ઞાતા=પદાર્થપરિચ્છેદક ઉપયોગઃ સ એવ આત્મા=જીવ ઉપયોગમક્ષણ, ઉપયોગસ્ય ચ જ્ઞાનસ્વરૂપત્વન જ્ઞાનાત્મનોરમેદસિદ્ધિરિત્યર્થ ।

નિત્ય ઓર ઉપયોગલક્ષણવાલા જીવ હી આત્મા હૈ ઓર ઘઠી વિજ્ઞાન ક્રિયાકા કર્તા હૈ । હસ આત્માસે પદાર્થોકા બોધક જ્ઞાનગુણ સર્વથા મિલ્લ નહીં હૈ । હસી પ્રકાર જો પદાર્થપરિચ્છેદક ઉપયોગ હૈ ઘઠી આત્મા હૈ, ક્યોં કિ આત્મા સ્વયં ઉપયોગલક્ષણવાલા હૈ । યહ ઉપયોગ હી-જ્ઞાનસ્વરૂપ હૈ । હસલિયે જ્ઞાન ઓર આત્મામેં અમેદ હૈ ।

માર્થ—શિષ્યને જો યહ પ્રશ્ન કિયા ધા કિ આત્માસે જ્ઞાનગુણ સર્વથા મિલ્લ હૈ ક્યા ? હસકા ઉત્તર સૂઠકારને યહાં વિયા હૈ, લે કહતે હૈં કિ આત્મા ઓર જ્ઞાનગુણમેં પરસ્પરમેં સર્વથા મેદ નહીં હૈ, ક્યોં કિ આત્મા કા લક્ષણ ઉપયોગ હૈ, ઓર યહ ઉપયોગ ત્રિકાલમેં મી આત્માસે સર્વથા મિલ્લ નહીં હોતા હૈ, હસી પ્રકાર ઉપયોગ સ્વરૂપસે પરિણત હી આત્મા હૈ । ઉપયોગ લો પ્રકારકા હૈ—૧ જ્ઞાનોપયોગ, ઓર હસરા વર્ણનોપયોગ । વર્ણનોપયોગમેં પદાર્થકા સામાન્ય પ્રતિભાસ હોતા હૈ, જ્ઞાનોપયોગમેં પદાર્થ

નિત્ય અને ઉપયોગલક્ષણવાળા જીવ જ આત્મા છે અને એ જ વિજ્ઞાન ક્રિયાના કર્તા છે આ આત્માથી પદાર્થોનું બોધક જ્ઞાનગુણ સર્વથા મિલ્લ નથી, આમ લે પદાર્થ-પરિચ્છેદક ઉપયોગ છે એ જ આત્મા છે કેમકે આત્મા સ્વયં ઉપયોગલક્ષણવાળો છે આ ઉપયોગ જ જ્ઞાનસ્વરૂપ છે આ માટે જ્ઞાન અને આત્માના અલેક છે

માર્થ—શિષ્યે લે એવો પ્રશ્ન કર્યો હતો કે આત્માથી જ્ઞાનગુણ સર્વથા મિલ્લ છે ? એનો ઉત્તર સૂઠકારે આપેલ છે એ કહે છે કે આત્મા અને જ્ઞાનગુણના પરસ્પરના સર્વથા મેદ નથી, કેમકે આત્માનું લક્ષણ ઉપયોગ છે, અને એ ઉપયોગ તરુ કાળમાં પણ આત્માથી સર્વથા મિલ્લ યઈ શકતો નથી. આ રીતે ઉપયોગસ્વરૂપથી પરિણત જ આત્મા છે. ઉપયોગ લે પ્રકારનો છે, (૧) જ્ઞાનોપયોગ, (૨) વર્ણનોપયોગ. વર્ણનોપયોગમાં પદાર્થનો સામાન્ય પ્રતિભાસ થાય

नन्वत्राभेदप्रतिपादनेन सौगतमतप्रवेशस्ते हि-ज्ञानात्मनो रैक्यं प्रतिपादयन्तीति चेन्न, अभेदो हि-यथा-‘ नीलो घट ’ इत्यादौ नीलघटयोरेकत्र स्थिता-वपि न तयो रैक्यमपि तु नीलघटयोरभेद एव। अन्यथा-नीलगुणनाशे घटनाश-प्रसङ्गस्य दुर्वारत्वं समापद्येत। तथैव प्रकृते ज्ञानात्मनोरभेदेन तद्धर्मयोरेकत्र स्थिता-वपि तयोर्ज्ञानात्मनोरैक्यमपि त्वभेद एवेत्यदोषात्।

का भिन्न २ रूपसे विशेष बोध होता है। ऐसा कोई सा भी क्षण नहीं है जब आत्मा अपने इस स्वभावसे रहित हो तथा यह स्वभाव आत्माको छोड़ कर निराधार कहीं प्रतीत होता हो। आत्मा ही तत्तदुप-योगस्वरूप परिणमित होता रहता है। इससे यह बात प्रतीतिकोटिमें स्थिर होती है कि आत्मासे ज्ञानगुण और ज्ञानगुणसे आत्मा स्वतन्त्र-भिन्न नहीं है।

शङ्का—ज्ञान और आत्माका अभेद माननेपर अपसिद्धान्त नामक निग्रहस्थान आता है; क्यों कि यह मान्यता जैन सिद्धान्तकी मान्यता पुष्ट न कर उल्टी सौगत ( बौद्ध ) मान्यताका ही समर्थन करती है। यह ज्ञान और आत्माका अभेद बाद बौद्धोंका है न कि जैनियोंका।

उत्तर—जिस प्रकार “ नीलो घट; ” “ नीला घट ” इस वाक्यमें नील और घट इन दोनोंकी एकत्र स्थिति होने पर भी इन दोनों में एकता नहीं मानी जाती है, किन्तु अभेद ही माना जाता है। अन्यथा दोनोंमें एकता मानने पर नीलगुणके नाश होने पर घटके नाशका भी

छे, ज्ञानोपयोगमां पदार्थना भिन्न भिन्न इपथी विशेष बोध थाय छे जेवी केअ पणु क्षणु नथी होती के आत्मा पोताना आ स्वभावथी रहित अने आ स्वभाव आत्माने छोडी शकतो नथी, आत्माथी ज्ञानगुणु अने ज्ञानगुणुथी आत्मा स्वतन्त्र-बुद्धा नथी

शङ्का—ज्ञान अने आत्मानो अलेह मानवाथी अपसिद्धात नामक निग्रह-स्थान आवे छे, केअ के आ मान्यता जैन सिद्धातनी मान्यताथी विरुद्ध बौद्ध मान्यतानु समर्थन करे छे ज्ञान अने आत्मानो अलेहवाद बौद्धोने छे, जैनोने नथी

उत्तर—जे प्रकारे “ नीलो घट ” नीलो घटो-आ वाक्यमां नील अने घट आ अन्नेनी अेकत्र स्थिति होवा छता पणु आ अन्नेमा अेकता मनाती नथी, पणु अलेह अ मानवामा आवे छे अन्यथा-अन्नेमा अेकता मानवाथी

प्रसंग होगा उसी प्रकार प्रकृतमें ज्ञान और आत्मामें भी एकता नहीं है किन्तु अमेद ही है, इस प्रकार पूर्वोक्त दोष नहीं आता है।

भाषार्थ—शङ्ककारने जो ज्ञान और आत्माके अमेदमें बौद्धवादका समर्थन करना प्रकट किया है उसका यहां पर प्रत्युत्तर दिया गया है—एकतामें और अमेदमें अन्तर है। बौद्ध सिद्धान्त आत्मामें अमेद नहीं मानता है किन्तु यह दोनोंमें एकता मानता है। इससे ज्ञानकी अथवा आत्माकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं होती है, किन्तु दोनोंमें एकता ही सिद्ध होती है। इस एकतामें या तो आत्माहीका अस्तित्व सिद्ध होता है या ज्ञानका। दोनोंका नहीं। अमेद पक्षमें ऐसा नहीं है। वहां पर “मीलो घट” की तरह अमेद होने पर भी दोनोंकी सत्ताका विलोप नहीं होता है। गुण और गुणीमें एकता मानने पर गुण गुणीका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं बनता है। गुण गुणीरूप और गुणी गुणरूपमें परिवर्तित हो जाते हैं। परन्तु अमेद पक्षमें यह बात नहीं आती, दोनोंकी स्वतन्त्र स्वरूपसे सत्ता रहती है—इस पक्षमें इतना होता है कि गुण गुणीको छोड़कर और गुणी गुणको छोड़ कर परस्पर निरपेक्षरूपमें नहीं रहते हैं। किन्तु परस्पर सापेक्षरूपमें ही इनकी वृत्ति बनी रहती है। नील और घट

नीलशुद्धता नाश भवामी घटना नाशने पक्ष प्रसन्न बने. आ व रीते प्रकृतमा ज्ञान बने आत्मानमा पक्ष ज्येष्ठता नमी छत्ता अलेह छे, आ प्रकारे पूर्वोक्त दोष आवते नमी.

भाषार्थ—शङ्ककारने जो ज्ञान बने आत्मानमा अलेहमा बौद्धवादनु समर्थन प्रकट करेह छे तेने आ स्थले प्रत्युत्तर अपायेह छे ज्येष्ठतामा बने अलेहमा अन्तर छे बौद्ध सिद्धांत ज्ञान बने आत्मानमा अलेह नमी मानते, परन्तु ते बन्नेमा ज्येष्ठता माने छे ज्येष्ठतामा ज्ञाननी बने आत्माननी स्वतंत्र सत्ता सिद्ध होती नमी परन्तु बन्नेमा ज्येष्ठता व सिद्ध बाध छे आ ज्येष्ठतामा या ते आत्मानु अस्तित्व सिद्ध बाध छे या तो ज्ञाननु बन्नेनु नकि. अलेह पक्षमां ज्येष्ठ नमी, त्या “मीलो घटा”नी भाइह अलेह होवा छत्ता पक्ष बन्नेनी सत्तामे विज्ञाप धते नमी, शुद्ध बने शुद्धीमा ज्येष्ठता मानबाधी शुद्ध शुद्धीनु स्वतंत्र अस्तित्व बनतु नमी. शुद्ध शुद्धीइप बने शुद्धी शुद्धीइपमां परिवर्तित बने छे परन्तु अलेह पक्षमां आ बात आवती नमी, बन्नेनी स्वतंत्र स्वइपधी सत्ता रहे छे. आ पक्षमां ज्येष्ठहुं छाप छे के शुद्ध शुद्धीने छोडीने बने शुद्धी शुद्धीने छोडीने परम्पर निरपेक्ष इपमा रहेता नमी, परन्तु परस्पर—सपिध-

न च नीलनाशे घटोऽपि नीलात्मना नष्ट एवेति दृष्टान्तासिद्धिरिति वाच्यम् ;

इन दोनोंमें परस्परमें एकता नहीं है किन्तु अभेद सम्बन्ध ही है। ऐसा नहीं है कि नीलस्वरूप घट और घट स्वरूप नील है। किन्तु घटको छोड़कर नीलकी और नीलको छोड़कर घटकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यदि इन दोनोंकी एकता मानी जावे तो नीलके नाश होने पर घटका नाश होना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता है।

शङ्का—नीलके नाश होने पर नीलात्मना घटका भी तो नाश हो जाता है—इसलिये दृष्टान्तकी असिद्धि है।

भावार्थ—यह जो अभी कहा गया है कि नील और घटकी एकता मानने पर नीलस्वरूप के नष्ट होने पर घटका भी नाश होना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता—अतः दोनोंमें एकता न मान कर अभेद ही मानना चाहिये, इस पर प्रतिवादीका यह आक्षेप है कि नीलके नाश होने पर नीलस्वरूपसे घटका भी नाश हो जाता है इसलिये यह दृष्टान्त सिद्ध नहीं है; किन्तु असिद्ध ही है। दृष्टान्त वादी और प्रतिवादी दोनों को सिद्ध हुआ करता है; इसीलिये दृष्टान्तके बलसे वादी अपने साध्यकी सिद्धि करता है। असिद्ध दृष्टान्तसे नहीं।

इपमा એમની પ્રવૃત્તિ બની રહે છે, નીલ અને ઘટ આ બંનેમાં પરસ્પરમા એકતા નથી, પરંતુ અભેદ સંબંધ જ છે. એવું નથી કે નીલ સ્વરૂપ ઘટ અને ઘટ સ્વરૂપ નીલ છે, પરંતુ ઘટને છોડીને નીલની અને નીલને છોડીને ઘટની સ્વતન્ત્ર સત્તા નથી બે આ બંનેની એકતા માનવામા આવે તો નીલના નાશથી ઘટનો પણ નાશ થવો જોઈએ, પરંતુ એવું બનતું નથી.

શંકા—નીલનો નાશ થવાથી નીલાત્મના ઘટનો પણ નાશ થઈ જાય છે. આ માટે દૃષ્ટાન્તની અસિદ્ધિ છે.

ભાવાર્થ—અહીં જે કહેવાયું છે કે નીલ અને ઘટની એકતા માનવાથી નીલ સ્વરૂપનો નાશ થવાથી ઘટનો પણ નાશ થવો જોઈએ પરંતુ એવું બનતું નથી માટે બંનેમા એકતા ન માનીને અભેદ જ માનવા જોઈએ. આ ઉપર પ્રતિવાદીનો એ આક્ષેપ છે કે નીલનો નાશ થવાથી નીલ સ્વરૂપથી ઘટનો પણ નાશ થાય છે, આ કારણે આ દૃષ્ટાન્ત સિદ્ધ નથી; પરંતુ અસિદ્ધ જ છે. સિદ્ધ દૃષ્ટાન્તજ વાદી અને પ્રતિવાદી બંનેને માન્ય હોય છે; માટે જ દૃષ્ટાન્તના બળથી વાદી પોતાના સાધ્યની સિદ્ધિ કરે છે અસિદ્ધ દૃષ્ટાન્તથી નહીં.





ज्ञानात्मनोरभेदमुपपाद्य करणभूतेन ज्ञानेनाभेदप्रतिपादनायाह—‘येन’त्यादि, येन=मत्यादिना ज्ञानेन करणभूतेन क्रियारूपेण वा पदार्थं विजानाति=वि=विशेषेण सामान्यविशेषादिरूपेणेत्यर्थः, जानाति=ज्ञानविषयीकरोति सः=कारणभूतः क्रियाभूतो वा आत्मा, आत्मनः परिणामित्वात्, अत एव ‘स्व आत्मानमात्मना जानातीत्यादावेकस्यापि कथञ्चिद्भेदमादाय तथा प्रतीतिः कर्तृ-कर्म-करण-क्रियादीनामैक्यादुपपद्यते ।

ज्ञान और आत्माका अभेद कह कर करणभूत ज्ञानके साथ भी आत्माका अभेद है—इस बातको प्रतिपादन करनेके निमित्त सूत्रकार कहते हैं—“येन विजानाति स आत्मा ” कि जिस मति आदि करणभूत अथवा क्रियारूप ज्ञानसे आत्मा पदार्थोंको सामान्य और विशेष आदि रूपसे जानता है उस करणरूप या क्रियारूपमें वह आत्मा ही परिणत हुआ है । क्यों कि आत्माका स्वभाव परिणमनशील है, कूटस्थ नित्य नहीं । अतः आत्मा ही उस करणज्ञान अथवा जाननेरूप क्रियासे परिणत हुआ है । “स्व आत्मानम् आत्मना जानाति ”—आत्मा आत्माको आत्मासे जानता है—इस वाक्यप्रयोगमें एक आत्मा ही कथंचित् भेददृष्टिकी अपेक्षासे कर्ता, कर्म, क्रिया और करणरूपसे परिणत होता है, आत्मा कर्ता, आत्मानं कर्म, आत्मना करण और जानाति यह क्रिया है । यहां आत्मा ही एक पदार्थ कथंचित् भेदकी अपेक्षासे नानाकारक रूपमें परिणत होता हुआ प्रकट किया गया है । ऐसा होने पर भी आत्मारूप पदार्थमें अनेकता-परस्परमें कर्ता कर्म आदिमें भिन्नता सिद्ध नहीं होती है ।

ज्ञान અને આત્માનો અભેદ કહી કરણભૂત જ્ઞાનની સાથે આત્માનો અભેદ છે આ વાતને પ્રતિપાદન કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે “ યેન વિજાનાતિ સ આત્મા ” એ મતિ આદિ કરણભૂત અથવા ક્રિયારૂપ જ્ઞાનથી આત્મા પદાર્થોને સામાન્ય અને વિશેષ આદિ રૂપથી જાણે છે તે કરણરૂપ અથવા ક્રિયારૂપમાં તે આત્મા જ પરિણત થયેલ છે કેમકે આત્માનો સ્વભાવ પરિણમનશીલ છે, કૂટસ્થ નિત્ય નથી માટે આત્મા એ જ કરણ જ્ઞાન અને જાણવારૂપ ક્રિયાથી પરિણત થયેલ છે. “ સ્વ આત્માનમ્ આત્માના જાનાતિ ” આત્મા આત્માને આત્માથી જાણે છે, આ વાક્યપ્રયોગમાં એક આત્મા જ કહેલા ભેદદૃષ્ટિની અપેક્ષાથી કર્તા, કર્મ, ક્રિયા અને કરણરૂપથી પરિણત બને છે આત્મા કર્તા, આત્માનમ્ કર્મ, આત્માના કરણ અને જાનાતિ આ ક્રિયા છે. અહીં આત્મા જ એક પદાર્થ કહેવાયેલા ભેદની અપેક્ષાથી નાના

ननु मुनिस्तपसा कर्म धुनोतीत्यादी कर्म-कर्म-करण-क्रियाणां मेदस्याऽऽपामरसाधारणतया कथमैक्यामिधानमिति चेन्न—आत्मनस्तु परिणामित्वेन कर्म-करण-क्रियारूपेणापि परिणामादेकत्वस्य सौलभ्यात्, कर्म-कर्म-करण-क्रियाणा

“मुनिस्तपसा कर्म धुनोति” इस वाक्यमें कर्ता, कर्म, करण और क्रियामें परस्पर भिन्नता साधारण से साधारण प्राणी तकको भी प्रतीत होती है? फिर आप कर्ता, कर्म आदि कारकों में परस्परमें भ्रम कता कैसे कहते हैं, सो ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्यों कि हमारा तो सिर्फ इतना ही कहना है कि परिणामी होनेसे एक ही आत्म पदार्थ कर्ता, कर्म, करण और क्रियारूपमें परिणत होता देखा जाता है, हम यह तो कहते नहीं हैं कि अमेदमें ही कर्ता-करणादि रूपकी प्रतीति होती है। यह प्रतीति तो अमेदमें भी होती है और मेदमें भी होती है। “आत्मा ज्ञानसे आत्माको जानता है” यहाँ पर अमेद है इसमें भी कर्तादि रूपकी प्रतीति होती है। “मुनि तपसे कर्मको नष्ट करता है” यहाँ पर मेदमें कर्ता कर्म आदिकी प्रतीति होती है, और करणरूप ज्ञानसे आत्माका अमेद संघर्ष है ऐसा मानना चाहिये। कर्ता, कर्म, करण और क्रियाओंकी प्रतीति अमेदमें भी कर्षकित् मेद विवक्षाके वशासे बन जाती है। इस व्यवहारमें कोई विरोध नहीं है

प्रकाशना रूपमा परिशुद्ध भवेत् ज्ञानव्यवस्थां आवेत् तत्र ज्ञानु ज्ञेया ज्ञातां पक्षे  
आत्मज्ञानपदार्थानां ज्ञानेकत्वा-परस्परभा कर्ता कर्म आदिनां विभक्त्या-सिद्ध भवती नन्वी

“मुनिस्तपसा कर्म धुनोति” का वाक्यमें कर्ता, कर्म, करण ज्ञाने क्रियाओं परस्पर विभक्त्या साधारण्यमां साधारण्य प्राणीने पक्षे प्रतीत वाच्ये। तो का कर्ता कर्म, आदिनां परस्पर विभक्त्या केम कहेते। तेम कहेते न ज्ञेयं ज्ञेयं के ज्ञानार्थ तो इहमे ज्ञेयं व कहेते। त्र के परिणामी होवाधी ज्ञेयं आत्म पदार्थ कर्ता, कर्म, करण ज्ञाने क्रियापक्षी परिशुद्ध भवेत् ज्ञेयानां आवेत् त्र ज्ञेयं तो ज्ञेयं कहेते। नन्वी के ज्ञेयं कर्ता करण आदिपक्षी प्रतीति वाच्ये। का प्रतीति ज्ञेयं पक्षे वाच्ये ज्ञाने ज्ञेयं पक्षे वाच्ये ज्ञाने ज्ञेयं पक्षे वाच्ये। का कर्म ज्ञेयं ज्ञेयं पक्षे कर्ता आदि रूपनी प्रतीति वाच्ये। “मुनि तपसी कर्मने नष्ट करे।” कर्म ज्ञेयं कर्ता कर्म आदिनी प्रतीति वाच्ये। ज्ञाने करणरूप ज्ञानधी आत्मज्ञाने ज्ञेयं सज्जं त्र ज्ञेयं ज्ञानपक्षे ज्ञेयं कर्ता, कर्म, करण ज्ञाने क्रियाओंनी प्रतीति ज्ञेयं पक्षे ज्ञेयं शीते वेद विवक्षाना पक्षधी ज्ञानी रहे। का व्यवहारमां जोध विरोध नन्वी, ज्ञाने ज्ञेयं

मैक्येऽपि कथं चिद्भेदमादाय तथा व्यवहारः । उक्तञ्च—

“ भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते । ” इति ।

प्रकृते ज्ञानात्मनोरेकत्वे किमायातमित्याह—‘ तमित्यादि ’—तं ज्ञानस्वरूप-

और इसलिये इस प्रकारका व्यवहार होता है । कहा भी है ।

“ भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते । ” इति ।

शङ्का—प्रकृतमें ज्ञान और आत्माका अभेद संबंध मानने से आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं ?

उत्तर—तमित्यादि—ज्ञान स्वरूप आत्माकी प्रतीतिसे उसी स्वरूपसे आत्माका कथन किया जाता है ।

भावार्थ—ज्ञान और आत्माका अभेद मानने पर यह लाभ होता है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप सिद्ध होता है । अन्यथा आत्मामें जडत्वका प्रसंग होगा; क्यों कि भेद संबंधमें आत्मा अज्ञस्वभाव ठहरता है । समवायादि संबंध से आत्मामें ज्ञानका संबंध मान लेने पर भी उसमें ज्ञत्व धर्म नहीं आ सकता; कारण कि समवाय एक और नित्य होने से ज्ञानका संबंध आत्मासे ही करायेगा, अन्य आकाशादिकके साथ नहीं; इसमें कोई नियामक तर्क नहीं है । अतः अभेद पक्षमें आत्मामें तत्स्वरूपताकी सिद्धि होती है यह एक बड़ा भारी लाभ है । दूसरे—ज्ञान और

आ प्रकारने व्यवहार होय छे. कहु पणु छे—“ भूतिर्येषा क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते ” इत्यादि.

शङ्का—वास्तवमां ज्ञान अने आत्मानो अलेह संबंध मानवाथी आप शुं सिद्ध करवा भागो छे ?

उत्तर—तमित्यादि—ज्ञानस्वरूप आत्मानी प्रतीतिथी अे न स्वरूपमा आत्मानुं कथन कडेवाभा आवे छे.

भावार्थ—ज्ञान अने आत्मानो अलेह मानवाथी आ लाभ थाय छे के आत्मा ज्ञानस्वरूप सिद्ध थाय छे, अे सिवाय आत्माभा नडत्वने प्रसंग अने, केम के लेह संबंधमां आत्मा अज्ञस्वभाव ठरे छे, समवायादि संबंधथी आत्माभां ज्ञानने संबंध मानी लेवाथी पणु अेभा ज्ञत्व धर्म आवी शकतो नथी, कारण के समवाय अेक अने नित्य होवाथी ज्ञानने संबंध आत्माथी न कराशे. अन्य आकाशादिकेनी साथे नहीं. आभा केछ नियामक तर्क नथी आथी अलेह पक्षमा आत्माभां तत्स्वरूपतानी सिद्धि थाय छे, आ अेक धरो मोठो लाभ छे. पीणुं

માત્માનં પ્રતીત્ય=મવલમ્મ્ય પ્રતિસરભ્યાયતે=તે નૈવાત્મના કષ્યતો જ્ઞાનાત્મનોરેકત્વ  
સ્વીકર્તા કં ગુણમાસાદયતીત્યાહ 'પપ' ઇત્યાદિ-પપઃ=આત્મવાદી જ્ઞાનાત્મૈકત્વ-  
વાદી 'સમ્યક્પર્યાયઃ' સમીષા=સમ્યગ્માથેન પર્યાય સપમાધરણં યસ્યેવિ સ  
સમ્યક્પર્યાયાઃ-સમ્યગનગારાચારવારી,

યદ્વા—'શમિતાપર્યાય' ઇતિચ્છાયા । શમિતાપર્યાયાઃ=શ્મોડ્સ્માસ્તીતિ  
શ્મી તસ્ય માવઃ શમિતા તયા પર્યાયો યસ્ય સ શમિતાપર્યાયાઃ=ઉપશ્ચાન્તકપાયાઃ  
ધ્યામ્યાતઃ=તીર્થકુદ્ધિ કથિતઃ ॥ મૂ० ૬ ॥ ઇતિ પ્રવીમિ '-ઇત્યસ્યાર્થસ્તુક પથ ।  
॥ પદ્મમાધ્યપનસ્ય પદ્મમ ઉદ્દેશઃ સમાસઃ ॥ ૫-૫ ॥

આત્માકા અમેદ સંપંથ માનનેવાલા આત્મવાદી સમ્યગ્માથસે સંયમ-  
મુનિયોકે આચારકા આચરણ કરનેધાલા હોતા હૈ । હસ કથનમે સાંક્ય-  
મતકા સ્વપ્જન ક્રિયા હૈ । સાંક્યસિદ્ધાન્તમે જ્ઞાન પ્રકૃતિકા ધર્મ માના  
ગયા હૈ, આત્માકો કમલપત્રકી તરહ નિર્લેપ પતલાયા હૈ, અતઃ મુનિયો  
કે સમ્યક્ આચારકે આચરણ કરનેકા ષોધ પ્રકૃતિકો હી હોગા, આત્માકો  
નહી । ફિર આત્માકો હસ પ્રકાર કે કષ્ટમે પઢનેસે લાભ હી ક્યા હૈ ?  
પ્રકૃતિકે સંપંથ વિષ્ણેદ્ હોતે હી જ્ઞાનકે અમાથમે આત્મા અજ્ઞ થન જાને  
સે જહસ્યરુપ હો જાયગા । પરન્તુ પેસા તો હૈ નહી; ક્યો કિ સ્વાનુભવસે  
આત્મા સ્વરુપસે ચેતન હૈ ઓર હસીલિયે યહ અપની મલિન પરિણતિકો  
ઠોઢનેકે લિયે મુનિયોકે નિર્મલ આચારકા પાલનકે લિયે પ્રયત્નશીલ  
હોતા હૈ । અથવા "સમિયાપ પરિયાપ"ની સસ્કૃત ણ્યા "શમિતાપર્યાયાઃ"  
મી હોતી હૈ, તપ હસ પ્રકારસે અર્થકી સંગતિ હોતી હૈ કિ જ્ઞાન ઓર

જ્ઞાન અને આત્માને અમેદ સંપંથ માનવાવાળા આત્મવાદી સમ્યગ્માથથી  
સુયમ-મુનિયોના આચારનુ આચરણ કરવાવાળા અને છે આ વાતમાં સામ્ય-  
મતનુ પડન કરેલ છે સામ્ય-સિદ્ધાન્તમા જ્ઞાન પ્રકૃતિને ધર્મ માનેલ છે  
આત્માને તો કમલપત્રની માફક નિર્લેપ જતાવેલ છે આથી મુનિયોના સમ્યક્  
આચારનુ આચરણ કરવાનો યોધ પ્રકૃતિને જ છે આત્માને તરહ પછી આત્માને  
આ પ્રકારના દુષ્ટોમાં પડવાથી લાભ શુ છે પ્રકૃતિને સંપંથ વિષ્ણેદ્ યવાથી  
જ્ઞાનના અભ્યાસમાં આત્મા અને ધર્મ જવાથી જહસ્યરુપ જની જરી પરત  
એવુ તો છે નહિ; કેમ કે સ્વાનુભવથી આત્મા સ્વરૂપથી ચેતન છે અને એ મા  
એ પોતાની મલિન પરિણતિને છે આ માટે મુનિયોના નિમલ આચારનુ પાલન  
કરવા માટે પ્રયત્નશીલ અને છે. અથવા 'સમિયાપ પરિયાપ'ની સસ્કૃત ણ્યા  
શમિતાપર્યાય જનુ યોધ છે તો આ પ્રકારે અર્થની સંગતિ થાય છે કે જ્ઞાન અને

આત્માકે અભેદ સમ્બન્ધમેં યહ શમિતાપર્યાયવાલા-ઉપશાન્તકષાય-વાલા હોતા હૈ । એસા તીર્થંકર પ્રશુને કહા હૈ ।

ભાવાર્થ—જ્ઞાન ઓર આત્માકા અભેદ સમ્બન્ધ હૈ જય ઇસ પ્રકારકી પ્રતીતિ હોગી તમી તો જાકર મનુષ્ય ઉસ અપની નિર્મલ જ્ઞાન અવસ્થા કો, જો કષાયોને મલિન કર રહી હૈ; પ્રાપ્ત કરનેકે લિયે, ઉન કષાયો કો દમન કરનેકે લિયે યા ઉન્હેં ઉપશમિત કરનેકે લિયે પ્રયત્નશીલ બનેગા । નહીં તો મૂલમેં અજ્ઞ હોનેસે ઉન કષાયોકો દમન કરને યા ઉપશમિત કરનેકા ઉપાયોકા ઘોધ ઉસે કૈસે હો સકેગા । ઇસલિયે આત્મા ઓર જ્ઞાનમેં અભેદ હો માનના શ્રેયસ્કર હૈ । ભેદ નહીં । “ ઇતિ વ્રવીમિ ” ઇન પદોકા અર્થ પહિલે હી કહા જા ચુકા હૈ ॥

॥ પંચમ અધ્યયનકા પંચમ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૫ ॥

આત્માના અભેદ સંબંધમાં આ શમિતાપર્યાયવાળા-ઉપશાન્તકષાયવાળા બને છે, એવું તીર્થંકર પ્રભુએ કહ્યું છે.

ભાવાર્થ — જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ સંબંધ છે ન્યારે આ પ્રકારની પ્રતીતિ થશે ત્યારે મનુષ્ય પોતાના નિર્મળ જ્ઞાનની અવસ્થાઓને, કષાયોએ બે મલીન કરી રાખી છે, પ્રાપ્ત કરવા માટે, તે તે કષાયોનું દમન કરવા માટે અથવા તેઓને ઉપશમિત કરવા માટે પ્રયત્નશીલ બનશે નહિ તો ભૂલમા અસ હોવાથી એ કષાયોનું દમન અને ઉપશમિત કરવાના ઉપાયનો યોધ એને કેવી રીતે થશે. આ માટે આત્મા અને જ્ઞાનમા અભેદ માનવો શ્રેયસ્કર છે ભેદ નહિ “ ઇતિ વ્રવીમિ ” આ પદનો અર્થ અગાઉ કહેવાયેલ છે

પાંચમા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૫ ॥

। अथ पञ्चमाध्ययनस्य षष्ठ उद्देश ।

गतः पञ्चमोद्देश इदानीं षष्ठं प्रारभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायमभिसम्बन्धः । पूर्वत्र इदसदृश आचार्यो मवेदिति कथितम् । अत्रोद्देशे—‘तादृशाचार्यसंसर्गव आचार्यशुभूपगारतेन मुनिना विपद्यभिकप्रिभ्रसपापन्धिकमदानां गृहस्थानां

॥ पांचवें अध्ययनका छठा उद्देश ॥

पंचम उद्देशका व्याख्यान हो चुका, अब इस समय छठे उद्देशका व्याख्यान प्रारंभ होता है । इस उद्देशका पूर्व उद्देशके साथ सम्बन्ध है और वह इस प्रकार है—पूर्व पंचम उद्देशमें आचार्य महाराजको इव (प्रह) की उपमा दी है । उस इव उपमित आचार्यके पास शिष्यको रहना चाहिये, यह भी अच्छी तरह खुलासा किया जा चुका है । उनके निकट निवास करनेसे शिष्य किस २ संसर्गसे परे रहता है इस बातका इस उद्देशमें प्रदर्शन करना सूत्रकारको अभीष्ट है; अतः सर्व प्रथम यहाँ इस विषयका विवेचन करनेके लिये सूत्रकार, इस अभिप्रायसे प्रेरित हो कि इदोपमित आचार्यके संसर्गसे उनकी सेवा वैयावृत्ति करनेमें रत भिस्तबाळा साधु ३६३ पाखण्डिकोके मतके संसर्गसे, गृहस्थोके भधिक सम्पर्कसे एवं परतीर्थिकोंके संगसे पृथक् हो जाता है, “अणाणाप एगे” इत्यादि सूत्र

पांचमा अध्ययनना छठो उद्देश

पांचमो उद्देश ठहोवाक श्रुतको छे, कवे छमु उद्देशने प्रारंभ शक छे आ उद्देशने पूर्व उद्देश साथ संबन्ध छे, अने ते जे प्रकार छे क-पूर्व पांचमा उद्देशमा सुह-भेदासजने कहनी उपमा देवामा आवी छे इव उपमित आचार्य महाराजनी पास शिष्य रहेवु लेकजे-जेनो-प्रत्यु सारी रीते खुलासा करवामा आशयो छे जेभनी पास रहेवासी शिष्य कथा कथा संसर्गशी दूर रहे छे जे वाचनु स्पष्टीकरण आ उद्देशमा सूत्रकारने करवु छिट छे, माटे सहु प्रथम जकी आ स्थितनु विवेचन करवा माटे सूत्रकार इदोपमित आचार्यना संसर्गशी तेनी सेवा वैयावृत्ति करवामा रतभित्तवाणासाधु उरुद पापलीजेना मतना संसर्गशी अने परतीर्थियिना संसर्गनिराजो अने छे आ अलिप्रायशी प्रिति अनी “अणाणाप एगे” इत्यादि सूत्रने प्रारंभ करे छे, आमां जे सर्व प्रथम

परतीर्थिकानां च संसर्गपरित्यागो विधेयः' इति प्रतिपादयिष्यते । तत्रादौ पाष-  
ण्डिकमार्गपरित्यागमेव दर्शयति—'अणाणाए' इत्यादि—

मूलम्—अणाणाए एगे सोवट्टाणा आणाए एगे निरुवट्टाणा,  
एयं ते मा होउ, एयं कुसलस्स दंसणं, तद्दिट्ठीए तम्मत्तीए  
तप्पुरक्कारे तस्सच्ची तन्निवेशणे ॥ सू० १ ॥

छाया—अनाज्ञायामेके सोपस्थाना आज्ञायामेके निरुपस्थानाः, एतत्ते मा  
भवतु, एतत्कुशलस्य दर्शनम्, तद्दृष्ट्या तन्मुक्त्या तत्पुस्कारस्तत्संज्ञी तन्निवेशनः। सू० १ ॥

टीका—'अनाज्ञाया' मित्यादि—एके=केचन सदसद्विवेकविकला इन्द्रिय-  
विषयपाशवद्धाः, अनाज्ञायां=तीर्थङ्करानुपदिष्टे स्वच्छन्दमार्गे 'सोपस्थानाः' सह  
उपस्थानेन=संयमाभासोद्योगेन ये स्थितास्ते सोपस्थानाः=सावधाचरणप्रवृत्ताः  
वीतरागोपदिष्टधर्मरहिताः सन्ति, ते हि—'वयमपि संयमिनः' इति सगर्बं वदन्तो  
लोकान् वञ्चयन्तीत्यर्थः। किञ्च एके=केचन निन्दितमार्गानुगामितया दूषितान्तः—

का प्रारम्भ करते हैं। इसमें वे सर्व प्रथम ३६३ पाषण्डियोंके मार्गके  
परित्याग करनेका उपदेश देते हैं—

कोई एक सत् और असत्के विवेकसे विकल हुए प्राणी इन्द्रियोंके  
विषयरूपी पाशसे बद्ध हो कर तीर्थङ्करद्वारा अनुपदिष्ट स्वच्छन्दमार्गमें  
प्रवृत्ति कर संयमाभासके आराधनके प्रयत्नमें उद्यमशील रहते हैं। स्व-  
च्छन्द-प्रवृत्ति-विशिष्ट होनेसे ऐसे जीव सावध आचारी होते हैं और  
इसीलिये वे वीतरागद्वारा उपदिष्ट मार्गसे बहिर्भूत माने जाते हैं। ये  
संयमाभासी जीव "हम भी संयमी हैं" इस प्रकार गर्व करके संयमी  
होनेका लोगोंके समक्ष भाव प्रगट करते हैं और भोलेभाले प्राणियोंको  
अपने जालमें फसाते रहते हैं। कोई एक ऐसे भी हैं जो तीर्थङ्कर प्रभुकी

उ६३ पा० अ० ३०० भाग० १० परित्याग करवाने का उपदेश आपे छे

कोई एक सत् अने असत्ना विवेकथी विकल अनेल प्राणी इन्द्रियोंना  
विषयरूपी पाशथी अ धारने तीर्थंकरद्वारा प्रतिपादित थयेला रस्ते प्रवृत्ति करी  
सयमाभासना आराधनना प्रयत्न करवाना उद्यमशील रहे छे स्वच्छन्द-प्रवृत्ति-  
विशिष्ट होवाथी अयेवा एव सावध आचारी अने छे अने अयेथी अे एव वीत-  
रागद्वारा उपदिष्ट मार्गथी हूर रहे छे अयेवा, सयमाभासी (द्रव्यलिंगी)  
एव "अमे पणु सयमी छीये" आ प्रकारना गर्व करीने सयमी  
होवाने लोको समक्ष भाव प्रगट करे छे, अने लोणाभाणा भाषुसोने चोतानी  
अणमां इसावता रहे छे, कोई अयेवा पणु होथ छेके जे तीर्थंकर प्रभुनी आज्ञानुं



करणाः प्रमादिनाः, आज्ञायां=भगवदुक्तमोक्षमार्गं निरूपस्यानाः=निर्गतमपस्यान्व-  
धोगो येषां ते निरूपस्याना वीतरागप्ररूपिताचारधरणवर्जिताः सन्ति। एतत्पूर्वोक्तं

आज्ञाकी आराधना करनेके उद्योगसे ही रहित हैं। ऐसे जीव निन्दित मार्गके अनुसरण करनेवाले होनेकी वजहसे दूषित अन्तःकरणवाले एवं प्रमादशील रहा करते हैं। ये भगवत्कथित मोक्षमार्गमें निरुद्यमी होते हैं। भगवानने जिस आचारके पालन करनेका उपदेश दिया है वे इस आचारके पालन करनेमें वे विमुग्ध रहा करते हैं।

भावार्थ—संसारमें कितनेके ऐसे मनुष्य हैं जो तीर्थङ्कर अप्रतिपा-  
दित मार्गमें उद्योग करते रहते हैं। स्वेच्छानुसार अपनी निरर्गल प्रवृत्ति  
यनाये हुए हैं। समझाये जाने पर भी ऐसे जीव आत्मकन्याणके मार्ग  
की तरफ ऋजु नहीं होते। कुछ ऐसे भी जीव हैं जो प्रभुप्रतिपादित मार्गमें  
वचनसे वर्जित हैं।

प्रथम कोटिके जीव लोकोंको प्रसारणा करने (ठगने)के निमित्त  
द्रव्यलिङ्गी साधुका षेव पहिनकर अपनेको वास्तविक संयमी घोषित करते  
हैं, तब दूसरी कोटिके मनुष्य मूलमें ही तीर्थङ्कर भगवानकी आज्ञाके  
आराधक नहीं होते हैं। यदि उन्हें समझाया जाय तो वे समझ सकते  
हैं और यथार्थ आचारकी ओर ऋजु हो सकते हैं, शिष्यको संबोधित  
करते हुए सूत्रकार आशीर्वाद वचनरूपमें उससे कहते हैं कि हे शिष्य!

आराधन इत्याम् उद्योजरहितं च आवा मनुष्यं निन्दितमाजनु अनुसस्युः  
वावाण्यं होवाने इत्येव दूषितं अताकस्युवाणा अने प्रमादशील रहा करे छे जेवा  
एवे भगवत्कथित मोक्षमार्गमां निरुद्यमी होव छे भगवाने ने आवास्तु पालन  
इत्याने उपदेश आये छे जे आवास्तु पालन इत्यादी विमुग्ध रहा करे छे.

भावार्थ—संसारमा डेटलाक जेवा मनुष्य छे ने तीर्थङ्कर अप्रतिपादित  
मार्गमां उद्योजशील रहे छे अने स्वेच्छानुसार पोतानी सिद्ध प्रवृत्ति कथे  
अथ छे अने समभववाच्छ्रुतां पक्ष आवा मनुष्ये आत्मकन्याणना मार्ग तरहे  
वणता नवी कोछि जेवा पक्ष एव छे ने प्रभुप्रतिपादित मार्गमां उद्यमभी इर छे  
प्रथम कोटिना एव लोकाने ठगवा निमित्ते द्रव्यलिङ्गी साधुनो वेश पहिरी  
पोताने आवा सबगी बहिर करे छे जेनाथी पीछ कोटिना एव भूगमां व  
तीर्थङ्कर अजवाननी आज्ञाना आराधक नवी कीटा, जेमने जे समभववाभा  
आवे तो समल शके छे अने बधाय आवास्तु तरहे जे वणी शके छे शिष्यने  
संशोधन इत्यां सूत्रकार आशीर्वाद वचनरूपमां जेमने कहे छे के छे शिष्य।

निन्दितमार्गाचरणं श्रेयोमार्गानाचरणं चैतद्वयं ते=तव गुरुवाक्यानुयायिनः, मा भवतु । ताभ्यां नरक-निगोदादिदुर्गतिरवश्यम्भाविनीत्यवधार्य ततो निवर्तितव्यमित्याशयः । एतस्य स्वमतिकल्पितत्वं परिहर्तुमाह-‘एत’ दित्यादि-एतत्=पूर्वोक्तं कुमार्गाचरणं सन्मार्गस्खलनं च दुर्गतिनिदानमिति कुशलस्य=सर्वज्ञस्य दर्शनम्=अभिमतम् आशय इत्यर्थः ।

यद्वा—पूर्वोक्तवैपरीत्येन एतत् अनाज्ञायां निरुपस्थानत्वमाज्ञायां च सोपस्थानत्वमित्युभयं कुशलस्य दर्शनमस्ति ।

“एतत्ते मा भवतु” ये पूर्वोक्त प्रथम कोटिवालेका निन्दित आचरण और द्वितीय कोटिवालेका श्रेयोमार्गका अनाचरण यह दोनों प्रकारकी प्रवृत्ति गुरुवाक्यके अनुसार प्रवृत्तिशील तुझमें नहीं होवे । क्यों कि इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे जीव नरक निगोदादिकके दुःखोंका अवश्य भोगनेवाला होता है, इस प्रकार अपनी आत्मामें दृढ़ विश्वाससम्पन्न बन इस दुष्प्रवृत्तिसे सदा अपनी रक्षा कर-उस ओरसे अपने को सदा बचाता रह ! हे जम्बू ! सर्वज्ञ भगवान् की यही आज्ञा है । यह मैं अपनी बुद्धिसे नहीं कहता हूँ । “एतत्कुशलस्य दर्शनम्” इस सूत्रांशका यह भी भाव होता है कि पूर्व में जो यह कहा है कि अनाज्ञामें सोपस्थानता और आज्ञामें निरुपस्थानता तुझमें नहीं होवे-सो इन दोनोंसे विपरीत तू अपनी प्रवृत्ति बना, अर्थात्-अनाज्ञामें निरुद्यमी और आज्ञामें सोद्यमी बन-यही सर्वज्ञकी आज्ञा है, अथवा-अनाज्ञामें सोपस्थानता और आज्ञा

“एतत्ते मा भवतु” आ पूर्वोक्त प्रथम कोटीवाणानु निन्दित आचरण अने भील कोटिवाणानु श्रेयमार्गमा अनाचरण आ अन्ने प्रकारनी प्रवृत्ति शुद्ध वाक्यना अनुसार प्रवृत्तिशील ताराभां न अने, केम के आ प्रकारनी प्रवृत्तिथी एव नरकनिगोदादिकना हु अने लोगवनार अवश्य अने छे आ प्रकारे पोताना आत्माभां दृढविश्वाससपन्न अनी अराध प्रवृत्तिथी सदा तारी रक्षा करे अे तरइथी सदा पोतानी अतने अथाव हे जम्बू ! सर्वज्ञ भगवाननी आ आज्ञा छे आ हु मारी बुद्धिथी कडेतो नथी “एतत्कुशलस्य दर्शनम्” आ सूत्रांशने अे पशु लावार्थ थाय छे के पूर्वे ने कडेवामा आव्यु छे के अनाज्ञामा सोपस्थानता अने आज्ञामा निरुपस्थानता ताराभा न थाय, माटे आवा दोषेथी विपरीत तु तारी प्रवृत्ति अनाव अर्थात् अनाज्ञामां निरुद्यमी अने आज्ञामा सोद्यमी अने अेवी सर्वज्ञनी आज्ञा छे अथवा-अनाज्ञामां

अथवा—पूर्वोक्तमेतद्वयं विहाय निरन्तरं गुरुकुलनिवासिना त्वया माम्पम्, एतत्—शिष्यं प्रत्युपदेशवचनं कुञ्जस्य दर्शनम् । एतस्यैवार्थस्य प्रकटनायाह—  
 'तद्वृष्टये 'त्यादि—'तद्वृष्टया तन्मुक्त्या तत्पुरस्कारस्तत्संगी तन्निवेदनः' इत्यादेभ्यो-  
 स्यात्प्राध्ययने चतुर्थो देशे मोक्षा । आचार्यदृष्ट्या वर्तमानस्तदुक्ताधारधरणी-  
 स्तद्विज्ञाकारपरिहस्तज्ञानोपयुक्तो मुनिर्नित्यं गुरुकुलवासी भवेदित्यर्थः । कुमा-  
 र्गाऽऽसेवनं सन्मार्गाऽसेवनं च कल्याणमार्गविधातकं भवतीति तयोर्गुरुस्मीपा-  
 में निरूपस्थानताको छोड़ कर हे शिष्य ! तू निरन्तर गुरुकुलका निवासी  
 बन—इस प्रकार शिष्यको समझानेके लिये सूत्रकारने सर्वज्ञके आज्ञावचन  
 का यह प्रवर्षान किया है—“ तद्वृष्टया तन्मुक्त्या तत्पुरस्कारस्तत्संगी तन्नि-  
 वेदानः ” । इसी अर्थको पुष्ट या प्रकटन करनेके लिये सूत्रकारके इन पदों  
 का व्याख्यान टीकाकारने पहिले इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देशके दूसरे  
 सूत्रमें कर दिया है । इसका भावार्थ यही है कि आचार्यकी निम्नामें रह  
 मेवाला, उनके कहे अनुसार अपनी दैनिक चर्चाका आचरण करनेवाला  
 और उनके इंगित—आकारका ज्ञाता ऐसा शिष्य ज्ञान, ध्यान और अध्य-  
 यनमें निरत रहता हुआ गुरुकुलमें निवासके योग्य होता है । कुमार्गाका  
 आसेवन और सन्मार्गाका अनासेवन करना ये दोनों बातें कल्याणमार्गकी  
 निरोधक या विधातक मानी गई हैं; इसलिये जो शिष्य गुरुकुलमें निवास  
 करेगा—गुरुकी निम्नामें या उनके समीप रहेगा उसके पास इस प्रकारकी  
 प्रवृत्ति नहीं हो सकती ! इसलिये शिष्यको गुरुकुलनिवासी बननेकी

शोभस्थानता अने आत्मां निरूपस्थानवाने छोड़ने के शिष्य ! तू निरन्तर गुरु  
 कुलने निवासी बन. आ प्रकार शिष्यने समभववा भाटे सूत्रकारे सर्वज्ञकी  
 आज्ञाका पचनने प्रदर्शित करेले छे—“ तद्वृष्टया ” इत्यादि । जे व जेवनी पुष्टि  
 अने प्रकट करवा भाटे सूत्रकारेण आ पद्येनु व्याख्यान टीकाकारे पड़ेले आ व  
 अध्ययनका शिष्या उद्देशता जीका सूत्रमां करेले छे जेने भावार्थ जे छे के  
 आचार्यनी निम्नां रहेवावाण जेमना करवा अनुसार पद्यानी दैनिक चर्चातु  
 अध्ययन करवावाण अने जेमना कबने व्यववावाण जेवा शिष्य ज्ञान, ध्यान  
 अने अध्ययनमां निरत रहने गुरुकुलमां निवासने बोध्य जने छे. कुमार्गतु  
 आसेवन अने सन्मार्गतु अनासेवन करवु जे जने वाते कल्याण मार्गनी  
 निरोधक अने विधातक मानी जई छे आ कारणे जे शिष्य गुरुकुलमां निवास  
 करेले, गुरुनी निम्नां अने तेनी समीप रहेले जेनी पासे आधा प्रकारनी  
 प्रवृत्ति जनती नही. आ कारणे शिष्यने गुरुकुल निवासी जनापवा तरे सूत्र

સ્થાનેન ન કદાડપ્યવસરસમ્ભવ इति भावः ॥ सू० १ ॥

તાદૃશઃ કં ગુણમાસાદયતીત્યાહ—‘ અભિભૂય ’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—અભિભૂય અદક્ષૂ અણાભિભૂઃ પમૂ નિરાલંબણયાઃ  
જે મહં અવહિમણે, પવાણ પવાયં જાણિજ્ઞા, સહ સંમઙ્યાઃ  
પરવાગરણેણં અન્નેસિં વા અંતિણ સુચ્ચા ॥ સૂ૦ ૨ ॥

છાયા—અભિભૂયાઃદ્રાક્ષીદનભિભૂતઃ પ્રશુર્નિરાલમ્બનતાયા યો મહાન્ અવહિ-  
મનાઃ, પ્રવાદેન પ્રવાદં જાનીયાત્, સહ સમ્મત્યા પરવ્યાકરણેનાન્યેષાં વાડન્તિકે  
શ્રુત્વા ॥ સૂ૦ ૨ ॥

ટીકા—‘ અભિભૂયે ’ ત્યાદિ—યઃ ‘ તદ્દૃષ્ટ્યા ’—ઇત્યાદિ—વિશેષણવિશિષ્ટો  
શ્રુતિઃ, અભિભૂય=પરીષહોપસર્ગ ઘાતિકર્મચતુષ્ટયં વા પરાજિત્ય, અનભિભૂતઃ=અનુ-  
કૂલ—પ્રતિકૂલોપસર્ગેણ પરતૈર્થિકૈર્વા ન પરાભૂતઃ, સન્ અદ્રાક્ષીત્=જિનોક્તતત્ત્વમીપ્સિત-  
વાન્, સ નિરાલમ્બનતાયાઃ=પૂર્વ—પશ્ચાત્સંયોગત્યાગેન નિરાધારતાયાઃ પ્રશુઃ=સમર્થઃ,

ઓર સૂત્રકારકા યાસ પ્રેરણાત્મક યહ આદેશ હૈ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

હસ પ્રકારકા શિષ્ય કૌનસે ગુણકા ભાજન હોતા હૈ, હસ બાતકો  
પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ “ અભિભૂય ” ઇત્યાદિ ।

જો મુનિ “ તદ્દૃષ્ટ્યા તન્મુક્ત્યા ” ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત સૂત્રાંશ પ્રતિપાદિત  
વિશેષણોં સે યુક્ત હોતા હૈ તથા પરિષહ ઓર ઉપસર્ગોં કો યા કર્મચતુ-  
ષ્ટયકો જીતકર જો ડનસે અવ્યાહત પરાક્રમવાલા હોતા હૈ, અનુકૂલ  
પ્રતિકૂલ ઉપસર્ગોં અથવા પરતૈર્થિકોંસે અજેય હોતા હુઆ જિનેન્દ્રદ્વારા  
પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપકા જો વિચારક હોતા હૈ, વહ પૂર્વસંયોગ ઓર  
પશ્ચાત્સંયોગકા પરિત્યાગી હો કર કિસીકે ભી અવલમ્બન—સહારેકી  
અપેક્ષા નહીં રચતા હૈ । હસ સંસારમેં માતા, પિતા, પુત્ર, સ્ત્રી ઓર મિત્ર

કરને આ મુખ્ય પ્રેરણાત્મક આદેશ છે

આ પ્રકારને શિષ્ય કેવા ગુણને ધારક હોય છે, આ વાતને પ્રગટ કરવા  
માટે સૂત્રકાર કહે છે “ અભિભૂય ” ઇત્યાદિ ।

જે મુનિ “ તદ્દૃષ્ટ્યા તન્મુક્ત્યા ” ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત સૂત્રાંશ પ્રતિપાદિત વિશે-  
ષણોંથી યુક્ત હોય છે તથા પરિષદ અને ઉપસર્ગોંને અથવા ચાર ઘાતિયા કર્મને  
છતીને જે તેનાથી અવ્યાહત પરાક્રમવાળા થાય છે. અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉપસર્ગોં  
અને પરતૈર્થિકોંથી વિજ્યથી બનીને જિનેન્દ્રદ્વારા પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપના જે  
વિચારક હોય છે તે પૂર્વસંયોગના પરિત્યાગી બનીને કોઈના પણ આશીયાળા  
રહેવાની અપેક્ષા રાખતો નથી

अथवा—पूर्वोक्तमेतद्व्युत्पन्नं विहाय निरन्तरं गुरुकुलनिवासीनां त्वया माध्यमं, एतत्—शिष्यं प्रत्युपदेशवचनं कुसलस्य दर्शनम् । एतत्स्यैवार्थस्य प्रकटनाया—  
 'तद्वृष्टये 'स्यादि—'तद्वृष्टया तन्मुक्त्वा तद्व्युरस्कारस्तत्संगी तद्विषेधनाः' इत्यादेर्ष्या-  
 स्याऽप्राप्ययमे चतुर्यां देशे प्रोक्ता । आचार्यदृष्टया वर्तमानस्तदुक्ताधारधरपत्री-  
 स्तद्विज्ञिताकारपरिज्ञस्तद्विज्ञानोपयुक्तो मुनिर्नित्यं गुरुकुलवासी मधेदित्यर्थः । कुमा-  
 र्गाऽऽसेवनं सन्मार्गाऽऽसेवनं च कस्याणमार्गाविधातकं भवतीति तयोर्गुरुसमीप-  
 में निरुपस्थानताको छोड़ कर है शिष्य ! तू निरन्तर गुरुकुलका निवासी  
 बन—इस प्रकार शिष्यको समझानेके लिये सूत्रकारने सर्वप्रथम आशावचन  
 का यह प्रदर्शन किया है—“ तद्वृष्टया तन्मुक्त्वा तद्व्युरस्कारस्तत्संगी तद्वि-  
 सेधनाः ” । इसी अर्थको पुष्ट या प्रकटन करनेके लिये सूत्रकारके इन पदों  
 का व्याख्यान टीकाकारने पहिले इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देशके दूसरे  
 सूत्रमें कर दिया है । इसका भावार्थ यही है कि आचार्यकी निम्नमें रह  
 नेवाला, उनके कहे अनुसार अपनी दैनिक र्थोंका आचरण करनेवाला  
 और उनके इंगित-आकारका ज्ञाता ऐसा शिष्य ज्ञान, ध्यान और अध्य-  
 यनमें निरत रहता हुआ गुरुकुलमें निवासके योग्य होता है । कुमार्गाका  
 आसेवन और सन्मार्गाका अनासेवन करना ये दोनों बातें कस्याणमार्गाकी  
 निरोधक या विधातक मानी गई हैं; इसलिये जो शिष्य गुरुकुलमें निवास  
 करेगा—गुरुकी निम्नमें या उनके समीप रहेगा उसके पास इस प्रकारकी  
 प्रवृत्ति नहीं हो सकती ! इसलिये शिष्यको गुरुकुलनिवासी बननेकी

सोपस्थानता अने आशामां निरुपस्थानताने छेडीने हे शिष्य ! तू निरन्तर गुरु  
 कुलने निवासी बन. आ प्रकारे शिष्यने समभाववा भाटे सूत्रकारे उपसर्ग  
 आशामा वचनने प्रदर्शित करेव छे—“ तद्वृष्टया ” इत्यादि । जे व अर्थनी पुष्टि  
 अने प्रकट करवा भाटे सूत्रकारना आ पडोनु व्याख्यान टीकाकारे पहिले आ व  
 अध्ययनना बाधा उदेशना नील सूत्रमां करेव छे जेना भावार्थ जे छे हे  
 आचार्यनी निम्नमां रहेवावाण जेमना कथा अनुसार पोतानी दैनिक र्थोंनु  
 आचरण करवावाण अने जेमना भावने आचवावाण जेवा शिष्य ज्ञान, ध्यान  
 अने अध्ययनमां निरत रहोने गुरुकुलमां निवासने योग्य अने छे. कुमार्जनु  
 आसेवन अने सन्मार्जनु अनासेवन करव जे जन्ने वातो करवावु मार्जनी  
 निरोधक अने विधातक मानी जछे छे आ कारणे जे शिष्य गुरुकुलमां निवास  
 करेव, गुरुनी निम्नमां अने तेनी समीप रहेव जेनी पास आवा प्रकारनी  
 प्रवृत्ति अन्ती नथी. आ कारणे शिष्यने गुरुकुल निवासी अनाचना तरे सूत्र

સ્થાનેન ન કદાઽપ્યવસરસમ્ભવ ઇતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

તાદૃશઃ કં ગુણમાસાદયતીત્યાહ—‘ અભિભૂય ’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—અભિભૂય અદક્ષૂ અણભિભૂઃ પમૂ નિરાલંબણયાઃ  
જે મહં અવહિમણે, પવાણ પવાયં જાણિજ્ઞા, સહ સંમડ્યાઃ  
પરવાગરણેણં અન્નેસિં વા અંતિણ સુચ્ચા ॥ સૂ૦ ૨ ॥

છાયા—અભિભૂયાઽદ્રાક્ષીદનભિભૂતઃ પ્રમુનિરાલમ્બનતાયા યો મહાન્ અવહિ-  
ર્મનાઃ, પ્રવાદેન પ્રવાદં જાનીયાત્, સહ સમ્મત્યા પરવ્યાકરણેનાન્યેષાં વાઽન્તિકે  
શ્રુત્વા ॥ સૂ૦ ૨ ॥

ટીકા—‘ અભિભૂયે ’ ત્યાદિ—યઃ ‘ તદ્દૃષ્ટયા ’—ઈત્યાદિ—વિશેષણવિશિષ્ટો  
મુનિઃ, અભિભૂય=પરીપહોપસર્ગ ઘાતિકર્મચતુષ્ટયં વા પરાજિત્ય, અનભિભૂતઃ=અનુ-  
કૂલ—પ્રતિકૂલોપસર્ગેણ પરતૈર્થિકૈર્વા ન પરાભૂતઃ સન્ અદ્રાક્ષીત્=જિનોક્તતત્ત્વમીપ્સિત-  
વાન્, સ નિરાલમ્બનતાયાઃ=પૂર્વ—પશ્ચાત્સંયોગત્યાગેન નિરાધારતાયાઃ પ્રમુઃ=સમર્થઃ,

ઓર સૂત્રકારકા યાસ પ્રેરણાત્મક યહ આદેશ હૈ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

હસ પ્રકારકા શિષ્ય કૌનસે ગુણકા ભાજન હોતા હૈ, હસ વાતકો  
પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ “ અભિભૂય ” ઇત્યાદિ ।

જો મુનિ “ તદ્દૃષ્ટયા તન્મુક્ત્યા ” ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત સૂત્રાંશ પ્રતિપાદિત  
વિશેષણોં સે યુક્ત હોતા હૈ તથા પરિષહ ઓર ઉપસર્ગોં કો યા કર્મચતુ-  
ષ્ટયકો જીતકર જો ડનસે અવ્યાહત પરાક્રમવાલા હાતા હૈ, અનુકૂલ  
પ્રતિકૂલ ઉપસર્ગોં અથવા પરતૈર્થિકોંસે અજેય હોતા હુઆ જિનેન્દ્રદ્વારા  
પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપકા જો વિચારક હોતા હૈ, વહ પૂર્વસંયોગ ઓર  
પશ્ચાત્સંયોગકા પરિત્યાગી હો કર કિસીકે ભી અવલમ્બન—સહારેકી  
અપેક્ષા નહીં રખતા હૈ । હસ સંસારમેં માતા, પિતા, પુત્ર, સ્ત્રી ઓર મિત્ર

કરનેા આ મુખ્ય પ્રેરણાત્મક આદેશ છે.

આ પ્રકારનેા શિષ્ય કેવા ગુણુનેા ધારક હોય છે, આ વાતને પ્રગટ કરવા  
માટે સૂત્રકાર કહે છે “ અભિભૂય ” ઇત્યાદિ ।

જે મુનિ “ તદ્દૃષ્ટયા તન્મુક્ત્યા ” ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત સૂત્રાંશ પ્રતિપાદિત વિશે-  
ષણોથી યુક્ત હોય છે તથા પરિષહ અને ઉપસર્ગોને અથવા ચાર ઘાતિયા કર્મને  
છતીને જે તેનાથી અવ્યાહત પરાક્રમવાળા થાય છે. અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉપસર્ગો  
અને પરતૈર્થિકોથી વિજયી બનીને જીનેન્દ્રદ્વારા પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપના જે  
વિચારક હોય છે તે પૂર્વસંયોગના પરિત્યાગી બનીને કોઈના પણ ઓશીયાળા  
રહેવાની અપેક્ષા રાખતો નથી.

આલમ્બનનપેહી મવતીત્યર્થ । અથ્વા સંસારે માતા-પિતૃ-પુત્ર-કલ્પ-મિષત્વ  
 આલમ્બનમૂતાઃ સન્તીતિ યદાપાતતાઃ પ્રતિમાતિ ન તુ વાસ્તવિકં, તેજ્ઞાજ-શરણાસ-  
 મ્મવાષે નાઽઽલમ્બનમૂતા, તત્સમ્બન્ધસ્ય મોહાદિજનકત્વેન કુગતિરેતુત્વાત્ । એવ  
 યો વિમાનયતિ સ સંયમાદૃષ્ટે ન કિમપ્યાલમ્બનમમિલપતીતિ માષઃ । ક'તાદૃષ્ટ ?  
 ઇતિ પ્રશ્ને પ્રાહ-'યો મહા' -નિત્યાદિ-યઃ-રત્નપ્રયસમારાધકઃ મહાન્-મહાપુરુષો  
 સ્વુકર્મા અષ્ટિર્મનાઃ=ધર્મિઃ=તીર્થકુરોપદેશાદન્યપ્ર ન ચિયતે મનાઃ=ચિત્તં યસ્ય  
 સોઽષ્ટિર્મનાઃ=ત્રીતરાગાઘાતુયાપી પરિહૃતપરતૈર્ધિક્મતો મવતિ । સ એવ ષ  
 પ્રવાદેન-પ્રકૃષ્ટેન વાદેન=પૂર્વાધાર્યપારમ્પરિકોપદેશેન પ્રવાર્દ=ત્રીતરાગવધનં  
 જાનીયાત્=જ્ઞાનવિપયીકુર્યાત્-સમાલોચયેદિત્યર્થ' ।

આદિ અલમ્બનમૂત પદાર્થ કુપરસે હી મોહી જીવકો માલૂમ પઢતે હૈ, વિવેકદષ્ટિસે દેશ્વને પર તો યે ચિલકુલ નિઃસ્તાર હી હૈ, હનસે કિસી મી પ્રકારસે કિસી મી જીવકી ન તો રક્ષા હી હો સકતી હૈ ઓર ન યે કિસીકે લિયે ઘ્રાણશરણરૂપ હી હૈ । હનકે સાથ જનનીજનકત્વાદિરૂપ સંબંધ મોહકા જનક હોનેસે હમ જીવકો કુગતિમૈં હી પહુંચાનેકા એક માત્ર કારણ બનતા હૈ" હસ પ્રકાર જો વિચારતા હૈ થહ સંયમકે સિવાય કિસી મી વસ્તુ કો અપના અલમ્બનમૂત નહીં સમજતા હૈ ।

એસા કૌન મનુષ્ય હો સકતા હૈ ? હમ પ્રશ્નકા ઉત્તરરૂપ સમાધાન ફરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ "યો મહાન્ અષ્ટિર્મનાઃ પ્રવાદેન પ્રયત્નં જાનીયાત્" જો રત્નપ્રયકી આરાધનાસે મહાન્-સ્વુકર્મી બના હૈ તથા તીર્થકુરકે ઉપદેશકે સિવાય જિમકા ચિત્ત અન્યતીર્થિકોકે ઉપદેશમૈં

આ સસારમા માતા, પિતા પુત્ર, સ્ત્રી અને મિત્ર અદિ અવલબનમૂત પદાર્થ ઉપરથીજ મોહ પમાદનાથ હવને માહુમ પડે છે, વિવેક દષ્ટિથી જ્ઞેવાથી તો આ બધા તદન નિસ્સાર જ છે જ્ઞેવાથી કોઈ પણ પ્રકારે કોઈ પણ હવની ન તો રક્ષા થઈ શકે છે કે ન તો તે કોઈ ને માટે ત્રાણ શરણરૂપ છે જ્ઞેમની સાથે જનની જનક ઇત્યાદિ રૂપ સબધ મોહના કારણ હોવાથી આ હવને કુગતીમાં પહેલા આ વાતા કારણમૂત બને છે આ પ્રકારે જે વિચાર છે તે અવમન્ય સિવાય કોઈ પણ વસ્તુને પોતાને અલબનમૂત માનતા નથી.

જ્ઞેવો કયો મનુષ્ય હોઈ શકે છે ? આવા ઉત્તરરૂપ સમાધાન ફરતાં સૂત્રકાર કહે છે 'યો મહાન્ અષ્ટિર્મનાઃ' ઇત્યાદિ. જે રત્નપ્રયની આરાધનાથી મહાન્-સ્વુકર્મી બન્યા છે તથા તીર્થકરના ઉપદેશ સિવાય જેનું ચિત્ત

यद्वा—‘अवहिर्मानः’ नानाविधलौकिकसिद्धिदर्शनेनापि सर्वज्ञोपदेशात् वहिः= पृथग्भूते परमते न विद्यते मनो यस्य स तथा । ताश्च सिद्धय इन्द्रजालकसदृश्य एवेति

संलग्न नहीं होता है ऐसा वीतरागके मतका पथिक एवं अन्य एकान्त-वादिओंके सिद्धान्तकी ओर नहीं झुकनेवाला मनुष्य पूर्व आचार्य परम्परा से आगत उपदेशद्वारा वीतरागके वचनका, संशय-विपर्यय आदि दोषों से रहित ही विचार करनेवाला हो सकता है ।

भावार्थ—ऐसा कौन मनुष्य हो सकता है ? इस प्रश्नका समाधान यहां पर सूत्रकारने किया है । वे कहते हैं कि ऐसा वही मनुष्य हो सकता है कि जिसने सम्यग्दर्शनादिककी आराधनासे अपने जीवनको कर्मके भारसे लघु बना लिया है, अर्थात्—जो आसन्नसंसारि है, तथा जिसके चित्तमें वीतराग धर्मके सिवाय अन्य धर्मके प्रति धार्मिक भावनासे थोड़ी सी भी श्रद्धा नहीं है; क्यों कि वीतराग धर्मको ही वह अपना सब कुछ समझता है तथा पूर्व आचार्य परंपराके अनुसार प्रवाहरूपसे चले आये उपदेशसे ही जो वीतरागके वचनका श्रद्धालु बना है, जो यह अच्छी तरहसे समझ चुका है कि वीतरागवचन संशय विपर्यय एवं अनध्यवसाय आदि दोषोंसे रहित हैं, वही उत्कृष्टसंयमी है ।

अथवा—“अवहिर्मानः” इस पदका अर्थ इस प्रकारसे भी होता

भीम धर्मवाणाना उपदेशमा लागतु नथी एवा वीतरागनो अनुगामी अने ऐकान्तवादीयोना सिद्धान्तनी तरङ्ग नहि जुकवाणाना मनुष्य पूर्व-आचार्य परपराथी आवेल उपदेशद्वारा वीतरागना वचनमां, संशय-विपर्यय आदि दोषोथी रहित विचार करवाणा थछ शके छे

भावार्थ—ऐसे कौन मनुष्य होछ शके छे ? या प्रश्ननु समाधान अहि सूत्रकारे करेल छे, ये कहे छे के एवो एवो मनुष्य होछ शके छे के नेने सम्यग्दर्शनादिकनी आराधनाथी पोताना एवतने कर्मना भारथी लघु गनावी दीधेल छे अर्थात् ने आसन्नसंसारि—हुलुकर्मी छे, तथा नेना चित्तमा वीतराग धर्म सिवाय अन्य धर्म तरङ्ग धार्मिक भावनाथी थोड़ी मात्र पणु श्रद्धा नथी डेम के वीतराग धर्मने न ए पोतानु सर्वस्व समने छे तथा पूर्व-आचार्य-परपराअनुसार प्रवाहउपथी आल्या आवता उपदेशथी ने वीतरागना वचनोना श्रद्धालु अनेल छे, अने ए सारी रीते समल यूकेल छे के वीतराग वचन संशय विपर्यय अने अनध्यवसाय आदि दोषोथी रहित छे ए न-उत्कृष्ट संयमी छे

अथवा—“अवहिर्मान” या पदको अर्थ या प्रकारथी पणु थाय छे के



विचार्य प्रवादेन=भगवद्बचनेन प्रवादं=मिथ्यात्वधिकप्रिसृतपरतैरिच्छमत्तं जानीयात्=  
अनासेन्यतया बुद्धयेत्, मिथ्यात्वविस्तारतया ज्ञात्वा परीक्ष्य च तेषां मत्तं स्वल्पं  
दिश्यते । ते च परतैर्यिकप्रवादाः परस्परविरुद्धायां नैकत्र पर्यवसिष्ठार्यास्तद्यथा-

हे कि पूर्वोक्त यह जीव अन्य मतमें अनेक प्रकार की सिद्धियों को देखता  
है, तो भी उसका खिस उस ओर नहीं झुकता है । कारण कि यह  
समझता है कि अनेक प्रकारकी उन २ सिद्धियोंसे विशिष्ट वे सिद्ध  
इन्द्रजालियों जैसे ही हैं । इस प्रकार विचार कर यह बीतराग प्रसुके  
बचनोंके सहारेसे ३६३ पाखंडियोंके मतको अनासेव्य-सेवन करनेके  
अयोग्य ही मानता है-ये सब मिथ्यात्वके ही चिलास हैं, इनसे आत्मिक  
शांतिलाभ नहीं हो सकता है ऐसा जानकर और उन्हें अपनी बुद्धि  
रूपी तर्कणाफी कसौटी पर कस कर घाघकोटिमें परिगणित नहीं करता  
है । इनसे अब भोलेभाले जीवोंका भविष्यमें अहित न हो जाय इस  
विचारसे उनमें यह प्रमाणता का भी खण्डन करता है । वह जानता है  
कि इन मतोंमें प्रतिपादित विषय परस्परमें विरुद्ध अर्थकी प्ररूपणा करता  
है, जो कुछ विषय इनमें लिखा गया है वह ठीक नहीं है, कारण कि  
जिस विषयको एक स्थान पर हेय बताया है उसी विषयको दूसरी जगह  
उपादेय पतलाया गया है । हम देखते हैं कि वेद जो एक सनातन सिद्धांत  
का उनकी मान्यतानुसार सयसे पुराना और प्रमाणिक ग्रन्थ है उसमें

पूर्वोक्त ते एव अन्य मतमां अनेक प्रकारनी सिद्धिबोने देखे छे तो प्रसु तेनु  
खिस ते तरक खण्ड नथी करणु के ते खभने छे के अनेक प्रकारनी तेवी  
तेवी सिद्धिबोधी मुक्त ते सिद्ध छ-त्राजिक भाइके छे अ प्रकाशने विचार  
हरी के पीतसग प्रसुना बयनेना आधारी ३६३ पाखंडिबोना मतने सेवन  
करवाने अथेअ भाने छे आ जपु मिथ्यात्वने व वितास छे केनाथी आत्मिक  
शान्तिने खण भगी शकते नथी, केवुं जपु अने केने पीतानी बुद्धिथी  
तर्कनी कसौटी पर कसीने ब्रह्मण करवा वायक मानते नथी केनाथी नील  
भोगभाग्य भाजुसेनु अहित अविध्यमां न अनेके विचारथी आवा भाजुसे  
समसु तेना विचारानु के अहन करतो रहे छे के जपु छे के आवा भतेमां  
प्रतिपादित विषय परस्परमा विरुद्ध अर्थनी प्ररूपणा करे छे के कोछ निव  
केमां तजेत छे ते असाभर नथी करणु के के विषयने केक स्थले देव जता  
देत छे त्परे के व विषयने जीके स्थले उपादेय पतयेत छे वेद के सनातन  
सिद्धांतमा केपनी मान्यता अनुसार ब्रह्मधी पुसतन अने प्रमाणित प्रथ छे

प्रथमं तावद्वेद एव “मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि” इत्येकत्राभिधायाऽऽपरत्र च  
“अग्निषोमीयं पशुमालभेत” इति विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वादप्रमाणम् ।

एवं संसारस्येश्वरो निमित्तकारणं भवतीति वैशेषिकास्तेषामपि समानमातृ-  
पितृजातयोः पुसोर्भाग्यवैषम्येण सुखदुःखादेर्वैचित्र्यदर्शनात्तेऽप्यन्ततः प्राक्तनशुभा-  
शुभकर्मफलरूपमदृष्टस्वीकुर्वाणाः प्रष्टव्याः, यदि च भवद्भिरीश्वरस्य निमित्तकारणता

पहिले “मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि” इस वाक्यसे हिंसा करनेका  
निषेध किया है, फिर दूसरी जगह “अग्नीषोमीयं पशुमालभेत” इस  
मन्त्रपदसे अग्नीषोम यज्ञ करनेके लिये पशुके मारनेका विधान किया  
है, इस प्रकारसे परस्परमें विरुद्ध अर्थकी प्रतिपादकता उसमें भरी पड़ी  
है। जिसमें इस प्रकारके परस्पर विरोधी कथन देखनेमें आता  
है, और जहां युक्तिसे भी विरोधी तत्त्वोंका प्ररूपण हुआ है, भला!  
वह वेद प्रमाणता की कोटिमें कैसे आ सकता है? इसी प्रकार वैशेषिक  
सिद्धान्तकार इस जगतका कर्त्ता “एक ईश्वर है” ऐसा मानते हैं। परन्तु  
जब उनसे यह प्रश्न किया जाता है कि एक ही माता पितासे उत्पन्न हुए  
पुरुषोंमें सुख दुःख आदिकी विचित्रता क्यों देखी जाती है? परमात्माके  
द्वारा उत्पन्न किये गये इन जीवोंमें यह विषमता क्यों? इसका वे समा-  
धान करते हुए कहते हैं कि इस विषमताका कारण उनके भाग्यकी

येमा प्रथम “मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि” आ वाक्यधी हिंसा करवानो निषेध  
करवामा आवेल छे, इरी ओने स्थणे “अग्नीषोमीयं पशुमालभेत” आ मन्त्र  
पदधी अग्नीषोम यज्ञ करवा माटे पशुने मारवानु विधान करेल छे आ रीते  
अनेक स्थणोमा आ प्रकारधी परस्पर विरुद्ध अर्थनी प्रतिपादकता येमा लरी  
पडी छे जेमा आ प्रकारना परस्परना विशेषी कथन जेवामा आवे छे अने  
युक्तिधी पशु विशेषी तत्त्वोनु प्रश्नपशु करायेल छे ते वेद प्रमाणतानी कोटीमा  
कथ रीते आवी शके? जे न रीते वैशेषिक सिद्धान्तकार आ जगतना कर्ता  
“एक ईश्वर छे” जेम माने छे परतु न्यारे जेमने आ प्रश्न करवामा आवे  
के जेक माताधी उत्पन्न थजेल पुरुषोमा सुख दुःख धत्यादिनी विचित्रता केम  
हेभाय छे? परमात्माजे न उत्पन्न करेल आ एवोमा आवी विषमता केम? आनु  
समाधान करता जे कहे छे के आ विषमतानु कारण जेना लाग्यनी विषमता  
छे तेजे जे रीतना शुल अने अशुल कर्मो कर्या छे जे अनुसार तेने सुख

મુચ્ચિર તેડપિ ષાઙદષ્ટવિગેયઃ સ્વીક્રિયત ષ્વ, તર્હિં ઈશ્વરસ્ય કારમતાં વિનૈવાઙ્ઙ  
 નૈષ સર્વં સેસ્પતિ, અદષ્ટં સુ શુમાશુમકમફલરૂપમેષ ક્ષિમીશ્વરસ્ય કર્વત્સુરુઙ્ઙ  
 હેનેસ્પલ્મ્ ।

કાપિભાસ્તુ—‘મઠુધિરેવ કર્મી પુરુષસ્તુ મત્તિષ્ઠેત્ર [શ્રીર] તર્હિં નિર્ણો-

વિપમતા હૈં, ડન્હૈનિ જૈસા કુછ શુમ ઓર અશુમરૂપ અદષ્ટ કમાયા હૈ  
 ડસીકે અનુસાર ષે સુસ્વદુઃસ્વ આદિકો મોગા કરતે હૈં । ડસમેં ઈશ્વરકી  
 કયા અપેક્ષા હૈ? જમ ષે ડસ પ્રકારકા ડત્તર ડેતે હૈં તવ ડમ ડનસે પૂછતે  
 હૈં કિ જમ તુમ ડમ જગતકા નિમિત્તકારણ ઈશ્વરકો કલ્પિત કરતે હો  
 તો ફિર સુસ્વદુઃસ્વાદિકકી વિચિત્રતાકા કારણ અદષ્ટકી કલ્પના કયો  
 કરસે હો । કયો અદષ્ટકો સુસ્વદુઃસ્વાદિકકા કારણ માનસે હો? ડસ  
 પ્રકારકી માન્યતામેં ઈશ્વરમેં સર્વશક્તિમત્સાકા અમાય માત્તા હૈ; કયો કિ  
 ઈશ્વરકી અપેક્ષા અધિક શક્તિશાલી પદાર્થ ઇક અદષ્ટ આપકે કથના-  
 મુસાર સિદ્ધ હોતા હૈ; ડસલિયે જમ અદષ્ટ હી સબકે માગ્યકા વિષતા  
 હૈ તો ફિર ઈશ્વરકો ષીષમેં ઙાલકર કયો ડસકી ઈશ્વરતા પર કલંક લગાતે  
 હો । જિસે અદષ્ટ માના ગયા હૈ, ડસે હી જૈન સિદ્ધાન્તકી પરિમાયા  
 મેં કર્મકા ફલ સુસ્વ દુસ્વ કહા ગયા હૈ ડસલિયે ડસ વુરુ-  
 ઙકો છોડકર ષાસ્ત્રધિક વસ્તુસ્થિતિકા વિચારક પનો । ડસ પૂર્વોક્ત  
 કથનસે વૈશેષિક સિદ્ધાન્તમેં પરસ્પર વિરુદ્ધાર્થપ્રસ્પક્ષતા પ્રકટ કી ગઈ હૈ ।

દુઃખ આદિ લોગવવા પડે છે આમા ઈશ્વરની શી અપેક્ષા છે, આરે તે આ  
 પ્રકારનો ડત્તર ડે છે ત્યારે અમે તેને પૂછીએ છીએ કે આરે તમે આ જ  
 તનુ નિમિત્ત કારણ ઈશ્વરને માને છે તો પછી મુખ્ય દુઃખ ઈશ્વરની વિચિ  
 ત્રતાનુ કારણ અદષ્ટની કલ્પના કેમ કરે છે? અદષ્ટને કેમ મુખ્ય દુઃખ કારણ  
 માને છે? આ પ્રકારની માન્યતામા ઈશ્વરમા સવ શક્તિમત્તાને અભાવ આવે છે  
 કેમકે ઈશ્વરની અપેક્ષા અધિક શક્તિવાળા પદાર્થ એક અદષ્ટ આપના કથનાનુ  
 મુસાર સિદ્ધ હોય છે આ માટે આરે અદષ્ટ જ સદુના ભાગ્યને વિષતા છે તો  
 પછી ઈશ્વરને વચમા નાખીને એનો ઈશ્વરતા ડપર કલંક કેમ લગાડો છે. એને  
 અદષ્ટ માનવામાં આવેલ છે એને જ જૈન સિદ્ધાન્તની પરિમાયામા કર્મનુ ડમ  
 મુખ્ય દુઃખ કહેવાયેલ છે. આ માટે એ દુશ્વરદને ઠોડી ષાસ્ત્રધિક વસ્તુસ્થિતિના  
 વિચારક બને આ પૂર્વોક્ત કથનથી વૈશેષિક સિદ્ધાન્તમા પરસ્પર-વિરુદ્ધાર્થ-પ્રસ્પક્ષતા  
 પ્રકટ કરવામા આવેલ છે

સાચ્ય સિદ્ધાન્તની પણ આવી જ દશા છે એમલે પ્રકૃતિ અને પુરુષ આ

निष्क्रियो निःसङ्गः पुष्करपलागवर्जिल्लेपः उपभोक्ता न तु कर्ता तदुपभोगार्थमचेत-  
ना प्रकृतिः सर्वमुपकल्पयति' इति कथयन्ति, असमीचीनं तद्वर्गनम्—अचेतनस्य लोके  
प्रवर्तकत्वादवर्गनेन दृष्टान्तासम्भवादप्रमाणम् । एवमीश्वरः प्रपञ्चरूपस्य जगतो

सांख्यसिद्धान्तकी भी यही दशा है, उन्होंने प्रकृति और पुरुष इस प्रकारसे दो मौलिक तत्त्व माने हैं। उनका कहना है जो कुछ करती—धरती है वह सब प्रकृति ही करती है, पुरुष—आत्मा नहीं। वह तो अकर्ता है, भिन्न २ शरीरवर्ती है, निर्गुण निष्क्रिय एवं निःसंग है। जिस प्रकार जलमें रहता हुआ भी कमलका पत्र उससे अलिप्त रहता है, ठीक इसी तरहसे आत्मा भी है। प्रकृति—प्रदत्त समस्त सुखदुःखादिकों का भोग करना ही उसका काम है, स्वयं यह किसी भी बातका कर्ता नहीं है। अचेतन प्रकृति जो भी कुछ करती है वह सब इस आत्माके उपभोगके लिये ही करती है, स्वयंके लिये नहीं। प्रकृति जड़ और पुरुष चेतन है। इस प्रकारका यह सांख्यका कथन ठीक नहीं है, क्यों कि लोकमें ऐसा कोई सा भी दृष्टान्त नहीं मिलता है कि जिसके बलपर अचेतनमें भी प्रवर्तकता मानी जा सके। प्रकृति जब स्वयं अचेतन है तो कार्यों की करनेवाली कैसे हो सकती है ? बिना किसीकी प्रेरणा पाये वह पुरुषके उपभोगके लिये प्रवृत्ति कैसे कर सकेगी ! हां यदि इस विषयमें कोई दृष्टान्त मिलता तो उसके बलपर सांख्योंका यह कथन मान्य भी हो जाता। यदि

प्रकार्थी ये मौलिङ्ग (मुष्य) तत्त्व मानेले छे, येभनु कडेवु छे के ये कर्त करे छे ते प्रकृति न करे छे, पुरुष—आत्मा नहि. ये तो अकर्ता छे, सिन्न सिन्न शरीरवर्ती छे, निर्गुण, निष्क्रिय अने निःसंग छे. येभ नगभा रहेवा छता डमणपत्र तदन अलिप्त रहे छे आ न प्रमाणे आत्मा पणु छे प्रकृतिप्रदत्त समस्त सुख दुःखादिने लोण करेवे ये न येनुं काम छे, स्वय (पोते) ये कोष पणु वातनो कर्ता नथी. अचेतन प्रकृति ये पणु कर्त करे छे ये पणु आ आत्माना उपभोग माटे न करे छे, पोताने माटे नहि प्रकृत नड अने पुरुष चेतन छे आ प्रकारनु सांख्यनु कथन हीक नथी, केभ के लोडभा येवे कर्त पणु दृष्टात नथी मणतो के येना मण उपर अचेतनमा पणु प्रवर्तकता मानवामा आवे प्रकृति न्या पोते न अचेतन छे त्या ये कार्ये करवावाणी क्यार्थी थथ शके ? कोष प्रेरणा मल्या वगर ये पुरुषना उपभोग माटे प्रवृत्ति कर्त रीते करी शके ? आ विषयमा कोष दृष्टात होत तो येना नेर उपर सांख्यनु ये कथन मान्य पणु थथ शकत कदाच अहिं येवी शका करवामा आवे के नेन

યહાં પર યહ શક્ય કી જાવે કિ જૈનસિદ્ધાન્તકારોને જિન્હે કર્મ માના હૈ વે મી તો અચેતન હૈ, ઊન અચેતનોં મેં સુસ્વદુ સ્વાદિરૂપ ફલકે પ્રતિ પ્રવર્તકતા દેખી જાતી હૈ, ઊસી પ્રકાર પ્રકૃતિમેં મી પ્રવર્તકતા માનનેમેં ક્યા ઠાનિ હૈ ? હમ પ્રકાર દૃષ્ટાન્તકી અસંભવતા યતલાકર જો હસ કયન કો અપ્રમાણ યતલાયા ગયા હૈ વહ ઠીક નહોં હૈ; સો સાંક્યોંકા એસા કહના જૈનસિદ્ધાન્તકે પ્રતિકૂલ હૈ । જૈનસિદ્ધાન્તકારોને કાર્મણચર્ગણારૂપ દ્રવ્યમેં જીવકી રાગાદિક પરિણતિકે નિમિત્તકો લેકર કર્મરૂપસે પરિણમન માના હૈ, કાર્મણચર્ગણાઓં કા પરિણમન ( કર્મરૂપ હોના ) વિના નિમિત્ત કે નહીં હોતા । અત જય હનમેં અશુદ્ધજીવકે વિભાવમાર્ગોં કો લેકર કર્મરૂપસે પરિણમન હોતા હૈ તમી યે સુસ્વદુ સ્વાદિકરૂપ ફલકે પ્રતિ પ્રવર્તક માને ગયે હૈ । સાંક્યસિદ્ધાન્તકે અન્દર પ્રકૃતિમેં હસ તરહસે પ્રવર્તકતા નહીં માની ગઈ હૈ; ક્યોં કિ આત્મા સ્વયં નિર્ગુણ ઇવં અકર્તા માના ગયા હૈ । પ્રકૃતિકો હસ પ્રકાર વિભાવપરિણતિસે અધિષ્ઠિત હો કર યદિ કાર્યકી કરનેવાલી માના જાવે તો ફિર ઊસે જો “મૂલપ્રકૃતિ-રવિકૃતિઃ” કારણરૂપ હી માના ગયા હૈ સો યહ માન્યતા ઠીક નહીં માની જા સકતી; કારણ કિ હસ પ્રકારકી માન્યતામેં ઊસમેં વિકૃતિ આનેસે વહ કાર્યરૂપ કિમી અપેક્ષાસે માની જાવેગી । વિશેષ જિજ્ઞાસુઓંકો યહ વિષય ન્યાયગ્રન્થોંસે દેખ લેના ચાહિયે ।

સિદ્ધાન્તકારોને જેને કમ માનેલ છે એ પણ અચેતન જ છે, એ અચેતનમા સુખ દુઃખાદિ ક્ષણ તરફ પ્રવર્તકતા એવામાં આવે છે, એ જ રીતે પ્રકૃતિમા પણ માનવામા કમુ નુકશાન છે ? આ રીતે દષ્ટાન્તની અસંભવતા બતાવીને આ કથનને અપ્રમાણિત કહેલ છે તે બસબર નથી અમ સાખ્યોંતુ કહેવું જૈન સિદ્ધાન્તથી વિરુદ્ધ છે જૈન સિદ્ધાન્તકારોને કાર્મણચર્ગણાપ્રવ્યમા અવની રાગાદિક પરિણતિના નિમિત્તને લઇને કર્મરૂપથી પરિણમન માનેલ છે કાર્મણચર્ગણાઓંતુ પરિણમન ( કર્મરૂપ જુ ) કોઈ નિમિત્ત સિવાય શું નથી. આથી અમારે આમાં અશુદ્ધ અવના વિશ્વપ્રભાવેને લઇ કર્મરૂપથી પરિણમન માલ છે ત્યારે એ સુખ દુઃખના ક્ષણ તરફ પ્રવર્તક માનવામા આવેલ છે સાખ્ય સિદ્ધાન્તમા પ્રકૃતિમા આ પ્રકારથી પ્રવર્તકતા માનવામાં આવી નથી; કેમ કે આત્મા સ્વયં નિર્ગુણ અકર્તા માનવામાં આવેલ છે પ્રકૃતિને આ રીતે વિભાવપરિણતિથી અધિષ્ઠિત થઇ કમ કરવાવાળી માનવામા આવે તો પણ એને જે “મૂલપ્રકૃતિરવિકૃતિ” કારણરૂપજ માનવામા આવેલ છે આ માન્યતા બસબર મર્ષ થકે નહિ. કારણ કે આ પ્રકારની માન્યતાથી એનામા વિકૃતિ આવવાથી કોઈ અપેક્ષાથી એને પણ કાર્યરૂપ માનવામા આવશે પણ અજાણા ધરાવનારે આ વિવચન્યાવચન-ધોમા એઇ લેવો એઇએ.

निमित्तकारणं समवायि [ उपादान ] कारणं चास्तीत्यङ्गीकुर्वन्तोऽविद्याविभ्रमं सकलप्रपञ्चजातं शुक्तौ रजतवद् ब्रह्मणि जगदध्यरतम् [ आरोपितम् ] नेदं रजतमिति विशेषदर्शनादधिष्ठानमात्रावशेषो यथा, तथैव 'नेह नानाऽस्ति किञ्चने'त्यादि विशेषदर्शनादधिष्ठानमात्रावशेषमद्वैतं ब्रह्म सिध्यति इत्यादि ब्रुवन्तो वेदान्तिनः प्रष्टव्या

इसी प्रकार वेदान्तियोंका कथन भी परस्परविरुद्धार्थ प्ररूपक है। वह इस प्रकारसे है—“वे इस जगतरूप प्रपंचका निमित्तकारण एवं समवायि ( उपादान ) कारण एक ईश्वर को मानते हैं। घट-पट-मठ-शकट और कट ( चटाई ) आदि जो अनेक वस्तुरूप प्रपच प्रतिभासित होता है वह सब अविद्या-मायारूप विभ्रमसे मालूम पडता है, जैसे-शुक्ति ( सीप )में रजतका ज्ञान होता है। शुक्तिमें जिस प्रकार रजतका आरोप होता है, उसी प्रकार एक ब्रह्ममें इस जगतका आरोप होता है। उत्तरकालमें जिस प्रकार “ यह रजत नहीं है ” इस प्रकार बाधक प्रत्यय होता है और इससे सिर्फ अधिष्ठानमात्र-शक्ति अवशिष्ट बची रहती है, उसी प्रकार इस संसारमें प्रत्यक्ष दृश्यमान ये नाना पदार्थ कुछ नहीं हैं, किन्तु अविद्या-माया विभ्रमसे अनेकरूप प्रतिभासित होते हैं, वास्तविक नहीं हैं। वास्तविक तो एक ब्रह्म ही है। इस प्रकार उत्तरकालीन बाधक प्रत्ययसे एक अधिष्ठानमात्ररूप अद्वैत ब्रह्मकी ही सिद्धि होती है ” इस प्रकारका यह वेदान्तियोंका कथन भी ठीक नहीं है। कारण कि

आ रीते वेदान्तवादीभ्योऽनु कथन पणु परस्पर विशेष अतावनार छे ते आ प्रकारे छे “ तेभ्यो आ जगतइय प्रपचनु निमित्तकारणु अने उपादानकारणु अेक ईश्वरने माने छे घट-पट-मठ शकट अने कट ( साहडी ) इत्यादि ने अनेक वस्तुइय प्रपच प्रतिभासित डोय छे आ अणु अविद्या-मायाइय विभ्रमथी देणाय छे, नेम सीपमा रजतनु ज्ञान डोय छे. सीपमा नेम रजतने आरोप थाय छे, आ न प्रकारे अेक ब्रह्ममा आ जगतने आरोप थाय छे. उत्तर काणमा ने रीते “ आ रजत नथी ” आ प्रकारे बाधक प्रत्यय ( ज्ञान ) डोय छे अने आथी इक्षत अधिष्ठान मात्र सीप अवशिष्ट अनी रहे छे, आ रीते आ स सारमा प्रत्यक्ष देणाता विविध पदार्थो कांछ नथी, पणु अविद्या-मायाना विभ्रमथी अनेक इय देणाय छे, वास्तविकमा नथी, वास्तविक तो अेक ब्रह्म न छे आ रीते उत्तरकालीन बाधक प्रत्ययथी ( ज्ञानथी ) अेक अधिष्ठानइय अद्वैत ब्रह्मनी न सिद्धि डोय छे ” आ प्रकारनु वेदान्तिभ्योऽनु अे कथन पणु ठीक नथी, कारण के अेक न

યહાં પર યહ શક્ત કી જાવે કિ જૈનસિદ્ધાન્તકારોને જિન્હે કર્મ માના હૈ  
 વે મી તો અષ્ટેતન હૈ, ઊન અષ્ટેતનોં મેં સુસ્વદુઃસ્વાદિરૂપ ફલકે પ્રતિ  
 પ્રવર્તકતા વેચ્ની જાતી હૈ, ઊસી પ્રકાર પ્રકૃતિમેં મી પ્રવર્તકતા માનેમેં  
 ક્યા જ્ઞાનિ હૈ ? ઇમ પ્રકાર દૃષ્ટાન્તકી અસંભવતા ઘતલાકર જો ઇસ કપન  
 કો અપ્રમાણ ઘતલાયા ગયા હૈ યહ ઠીક નહીં હૈ; સો સાંખ્યોક્ર એસા કહના  
 જૈનસિદ્ધાન્તકે પ્રતિફૂલ હૈ । જૈનસિદ્ધાન્તકારોને કાર્મણર્થર્ગણાસ્પ પ્રત્યમેં  
 જીવકી રાગાદિક પરિણતિકે નિમિત્તકો લેકર કર્મરૂપસે પરિણમન  
 માના હૈ, કાર્મણર્થર્ગણાઓં કા પરિણમન ( કર્મરૂપ હોના ) ઘિના નિમિત્ત  
 કે નહીં હોતા । અતઃ જય ઇનમેં અશુદ્ધજીવકે ઘિભાવમાવોં કો લેકર  
 કર્મરૂપસે પરિણમન હોતા હૈ તમી યે સુસ્વદુઃસ્વાદિરૂપ ફલકે પ્રતિ  
 પ્રવર્તક માને ગયે હૈ । સાંખ્યસિદ્ધાન્તકે અન્દર પ્રકૃતિમેં ઇસ તરહસે  
 પ્રવર્તકતા નહીં માની ગઈ હૈ; ક્યોં કિ આત્મા સ્વયં નિર્ગુણ ઇયં અકર્તા  
 માના ગયા હૈ । પ્રકૃતિકો ઇસ પ્રકાર વિભાવપરિણતિસે અધિષ્ઠિત હો કર  
 યદિ કાર્યકી કરનેવાલી માના જાવે તો ફિર ઊસે જો “મૂલપ્રકૃતિ-  
 રવિકૃતિ” કારણરૂપ હી માના ગયા હૈ સો યહ માન્યતા ઠીક  
 મહીં માની જા સક્તી, કારણ કિ ઇમ પ્રકારકી માન્યતામેં ઊસમેં  
 યિકૃતિ આનેસે યહ કાર્યરૂપ કિસી અપેક્ષાસે માની જાવેગી ।  
 વિશેષ જિજ્ઞાસુઓંકો યહ ઘિપય ન્યાયઘન્યોસે દેખ લેના ઘાહિયે ।

સિદ્ધાંતકારોને જેને કમ માનેલ છે એ પણ અષ્ટેતન જ છે, એ અષ્ટેતનમાં  
 મુખ્ય કુ ખાદિ ક્ષણ તરફ પ્રવર્તકતા બેવામાં આવે છે, એ જ રીતે પ્રકૃતિમાં પણ  
 માનવામાં કમુ નુકશાન છે ? આ રીતે દૃષ્ટાન્તની અસંભવતા બતાવીને આ જ્ઞાનને  
 અપ્રમાણિત કહેલ છે તે બરાબર નથી આમ સાંખ્યોનું કહેવું જૈન સિદ્ધાંતથી વિરૂદ્ધ  
 છે જૈન સિદ્ધાંતકારોને કાર્મણર્થર્ગણરૂપ પ્રત્યયા જીવની સગાદિક પરિણતિના  
 નિમિત્તને લઈને કાર્મણર્થર્ગણ પરિણમન માનેલ છે કાર્મણર્થર્ગણને પરિણમન  
 ( કર્મરૂપ યવુ ) કોઈ નિમિત્ત સિવાય ઘટું નથી. આથી જ્યારે આમાં અશુદ્ધ  
 જીવના વિભાવમાવેને લઈ કાર્મણર્થર્ગણ પરિણમન થાય છે ત્યારે એ મુખ્ય કુ ખાદિ  
 ક્ષણ તરફ પ્રવર્તક માનવામાં આવેલ છે સાંખ્ય સિદ્ધાંતમાં પ્રકૃતિમાં આ પ્રકાર  
 થી પ્રવર્તકતા માનવામાં આવી નથી; કેમ કે આમાં સ્વયં નિર્ગુણ  
 અકર્તા માનવામાં આવેલ છે પ્રકૃતિને આ રીતે વિભાવપરિણતિથી અધિષ્ઠિત  
 થઈ કમ કલ્પવાળી માનવામાં આવે તે પછી જોને જે “મૂલપ્રકૃતિરવિકૃતિ”  
 કારણરૂપજ માનવામાં આવેલ છે આ માન્યતા બરાબર થઈ શકે નહિ, કારણ કે આ  
 પ્રકારની માન્યતાથી જોનામાં વિકૃતિ આવવાથી કોઈ અપેક્ષાથી જોને પણ કાર્મણર્થ  
 માનવામાં આવશે. પણ જીજ્ઞાસા ધરતબારે આ વિષય ન્યાયઘન્ય-ધોમાં જોઈ લેવો જોઈએ.

मृत्पिण्डयोर्नियतः कार्यकारणभावः सिद्ध्यति । निरन्वयनाशाङ्गीकारे घटस्य कुत्र नाशः स्याद् येन नाशाश्रय उपादानं स्यादिति नियतकार्यकारणभावासिद्ध्या न समीचीनं तन्मतमिति—इत्यादियुक्तिभिः परवादं निरस्य मुनिना सर्वज्ञोपदेशे वर्तितव्यमिति हृदयम् ।

कथं प्रवादं जानीयादित्याह—‘सहे ’त्यादि—सहसम्मत्या—सहात्मना या संगता मतिः सा सहसम्मतिः परोपदेश—निरपेक्षा जातिस्मरणप्रतिभादिकरूपा मतिस्तया जानीयात् । यद्येवं नावगच्छेत् तदा परव्याकरणेन—परस्य=तीर्थकृदादेर्व्याकरणं पदार्थसार्थस्य यथार्थस्वरूपप्ररूपणं तत्परव्याकरणं तेन परव्याकरणेन आर्हतागमेन जानीयात्, तेनाप्यनधिगमे अन्येपामाचार्यादीनाम् अन्तिके=समीपे श्रुत्वा= तदुपदेशमाकर्ण्य वस्तुतत्त्वं जानीयात् ॥ मू० २ ॥

का परस्परमें—कार्य कारणभाव नियत सिद्ध होता है । परन्तु जब पदार्थका निरन्वय विनाश मान लिया जायगा तब घटका कहां पर नाश होगा । नाश निराश्रय होगा, उपादानके आश्रय नहीं । इस प्रकार उपादान और उपादेयभाव न बननेसे परस्परमें नियमित कार्यकारण भावकी सिद्धि नहीं हो सकती है । अतः यह मत भी ठीक नहीं है ।

कहनेका अभिप्राय केवल इतना ही है कि इत्यादि युक्तियोंसे पर-मतका निराकरण कर विद्वान् मुनिको सर्वज्ञ प्रभुके उपदेशमें ही सदा निरत—श्रद्धालु रहना चाहिये ।

“सहसंमत्या परव्याकरणेन अन्येषां वाऽन्तिके श्रुत्वा” इस प्रकार अपनी जातिस्मरण—प्रतिभादिकरूप बुद्धि या तीर्थङ्कर—प्रभुकथित आग-मसे मुनि इन परमतोंका सम्यक् ज्ञाता बने । यदि कदाचित् ऐसा

परस्पर कार्यकारण्णुथी भेज सिद्ध थाय छे, परतु जे पदार्थनो निरन्वय विनाश मानी देवामा आवे तो घडानो नाश क्या थाय ? आ रीते उपादान अने उपादेय भाव न बनवाथी परस्परमा नियमित कार्यकारण्णु भावनी सिद्धि नथी थर्छ शकती आथी आ मत पण्णु भराभर नथी

कडेवानु तात्पर्य मात्र अटलु न छे के अनेक युक्तिआथी थील मतनु निराकरण्णु करी विद्वान् मुनिअे सर्वज्ञ प्रभुना उपदेशमा न सदा श्रद्धालु रहेलु लेथअे

“सहसंमत्या परव्याकरणेन अन्येषां वाऽन्तिके श्रुत्वा” आ प्रकारे चोतानी जातिस्मरण—प्रतिभादिकरूप बुद्धिथी अने तीर्थङ्कर प्रभुअे कडेल आगमथी मुनि



यद् एकस्य समवायि [उपादान] कारण-निमित्तकारणयोरौके स्वाप्पदर्शनेन दृष्टान्तासम्भवात् प्रत्यक्षदृष्टस्य जगत सामान्येन शब्दप्रमाणेन वाचासम्भवाच्च न युक्तियुक्तं भवन्मतमिति ।

तथा सौगता - 'यत् सत् तत् क्षणिकं सर्वस्य च निरन्वय एव नाश इति कथयन्ति। यस्मादुपादानकारणात् बहुपादेयं जायते तस्योपादेयस्य त्रयैवोपादाने नाशो भवति, यथा-घट प्रत्युपादानकारणं मृत्पिण्डः, अतो घटस्य तत्रैव नाशो भवति, तेन घट-एक ही घट्ट निमित्त और उपादान कारण नहीं बन सकता है। हाँ-यदि कोई ऐसा दृष्टान्त मिलता कि जो निमित्त और उपादान कारण होता तो यह मान्यता ठीक मानी जा सकती, परन्तु ऐसा कोई दृष्टान्त ही नहीं दिखता। अतः यह एक कल्पना मात्र है, वास्तविक नहीं। दूसरे प्रत्यक्ष से स्पष्ट प्रतिभासित होनेवाले जगत्में सामान्य शब्द प्रमाण (आगम-प्रमाण) से वाचा भी कल्पित नहीं हो सकती है। इसलिये वेदान्तमत युक्तियुक्त नहीं माना जा सकता।

पौदसिद्धान्त भी युक्तियुक्त नहीं है, क्यों कि वे 'यत्सत् तत्सर्वं क्षणिकं' कहते हैं। अर्थात्-जो सत् (पदार्थ) है वे सब क्षणिक निरन्वय नाशशील हैं। परन्तु इस क्षणिकवादमें उपादान-उपादेय-भाव सिद्ध नहीं होनेसे कार्यकारण भावकी सिद्धि नहीं हो सकती है। जिस उपादान कारण से जो उपादेयरूप कार्य होता है उस कार्यका उसी उपादानरूप कारणमें नाश होता है। जैसे घटके प्रति उपादानकारण मृत्पिण्ड है और उस घटका उसीमें ही विनाश होता है। इस अपेक्षा घट और मृत्पिण्ड

द्वय निमित्त अने उपादान कारण बर्ध शकते नहीं। उक्त्य बाध जेवुं इत्यत आवात के ने निमित्त अने उपादान कारण होत ते आ मान्यता ठीक मानी अत परतु जेवुं बाध इत्यत देखातु तथा आधा जे कल्पना मात्र छ वास्तविक नहीं नीलु प्रत्यक्षही रूप देखातु आ जगत्तमा सामान्य शब्द प्रमाणही कल्पना पलु बर्ध शकती नम। आ कारणे वेदान्त मत मानवाद्येभ्य भन्यते। नहीं जो-सिद्धात पलु मानवा भेद्य नहीं हेम के त कसत् तत्सर्व क्षणिकं ने ने पदार्थ छ ते तथा क्षणिक निरन्वय नाशशील छ जेम हेतु छ परन्तु आ क्षणिकवादम उपादानउपादेयभाव सिद्ध नहि जायाथा। काय कारण भावनी सिद्धि बर्ध शकती नहीं। ने उपादानरूप कारणही ने उपादेयरूप काय भाव छ आ भावने जे उपादानरूप कारणम नाश वाय छ नेम प्रती उपादानकारण भावीना सिद्ध छ अने अघजना जेमा ए विनाश भाव छ आ सेत पठना अने भावीपिठनी

मृत्पिण्डयोर्नियतः कार्यकारणभावः सिद्ध्यति । निरन्वयनाशाङ्गीकारे घटस्य कुत्र नाशः स्याद् येन नाशाश्रय उपादानं स्यादिति नियतकार्यकारणभावासिद्ध्या न समीचीनं तन्मतमिति—इत्यादियुक्तिभिः परवादं निरस्य मुनिना सर्वज्ञोपदेशे वर्तितव्यमिति हृदयम् ।

कथं प्रवादं जानीयादित्याह—‘सहे’त्यादि—सहसम्मत्या—सहात्मना या संगता मतिः सा सहसम्मतिः परोपदेश—निरपेक्षा जातिस्मरणप्रतिभादिकरूपा मतिस्तया जानीयात् । यद्येवं नावगच्छेत् तदा परव्याकरणेन—परस्य=तीर्थकृदादेर्व्याकरणं पदार्थसार्थस्य यथार्थस्वरूपप्ररूपणं तत्परव्याकरणं तेन परव्याकरणेन आर्हतागमेन जानीयात्, तेनाप्यनधिगमे अन्येषामाचार्यादीनाम् अन्तिके=समीपे श्रुत्वा= तदुपदेशमाकर्ष्य वस्तुतत्त्वं जानीयात् ॥ मृ० २ ॥

का परस्परमें—कार्य कारणभाव नियत सिद्ध होना है । परन्तु जब पदार्थका निरन्वय विनाश मान लिया जायगा तब घटका कहाँ पर नाश होगा । नाश निराश्रय होगा, उपादानके आश्रय नहीं । इस प्रकार उपादान और उपादेयभाव न बननेसे परस्परमें नियमित कार्यकारण भावकी सिद्धि नहीं हो सकती है । अतः यह मत भी ठीक नहीं है ।

कहनेका अभिप्राय केवल इतना ही है कि इत्यादि युक्तियोंसे पर-मतका निराकरण कर विद्वान् मुनिको सर्वज्ञ प्रभुके उपदेशमें ही सदा निरत—श्रद्धालु रहना चाहिये ।

“सहसंमत्या परव्याकरणेन अन्येषां वाऽन्तिके श्रुत्वा” इस प्रकार अपनी जातिस्मरण—प्रतिभादिकरूप बुद्धि या तीर्थङ्कर—प्रभुकथित आग-मसे मुनि इन परमतोंका सम्यक् ज्ञाता बने । यदि कदाचित् ऐसा

परस्पर कार्यकारण्णुथी भेज सिद्ध थाय छे, पर तु जे पदार्थनेो निरन्वय विनाश मानी देवाभा आवे तो घडानो नाश क्या थाय ? आ रीते उपादान अने उपादेय लाव न बनवाथी परस्परमा नियमित कार्यकारण्णु लावनी सिद्धि नथी थर्क शकती आथी आ मत पणु भरापर नथी

कडेवानु तात्पर्य मात्र अेटलु न छे के अनेक युक्तिआथी भीन मततु निराकरण्णु करी विद्वान् मुनिअे सर्वज्ञ प्रभुना उपदेशमा न सदा श्रद्धालु रहेलु नेधअे

“सहसंमत्या परव्याकरणेन अन्येषां वाऽन्तिके श्रुत्वा” आ प्रकारे पोतानी जतिस्मरण्णु—प्रतिभादिकरूप बुद्धिथी अने तीर्थङ्कर प्रभुअे कडेल आगमथी मुनि

ज्ञात्वा किं कर्तव्यमिति वृत्तयति-निर्देश ' इत्यादि—

मूलम्—निर्देश नाइवद्वेज्जा मेहावी सुपडिलेहिया सव्वआ सव्वयाए सम्ममेव समभिजाणिया, इह आराम परिण्णाय अल्लीणयुत्ते परिव्वए, निष्ठियही वीरे आगमेण सया परकमे उजासि त्तिवेमि ॥ सू० ३ ॥

छाया—निर्देश नातिवर्तेत मयावी सुपस्युपस्य सर्वत सर्वात्मना सम्यमेव समभिजाय, इहाऽऽरामं परिहायाऽऽखीनगुप्तः परिव्रजेत्, निष्ठितार्यो वीर आगमन सदा पराक्रमया इति प्रवीमि ॥ सू० ३ ॥

टीका—' निर्देश 'मित्यादि—मेधावी=आचार्यमर्यादानुगमनशीला निर्देश=पीतरागोपदश सर्वात्मना=उत्सर्गापवादरूपेण, यदा—आम्यन्तरात्मरूपेण सर्वत=सर्वप्रकारेण द्रव्यश्रेष्ठकालमात्ररूपेणेत्यर्थः, सुपस्युपस्य=मिथ्याश्रुतिवादं मग्न-शक्तं च हेयोपादेयत्वेन सम्यक् समालोच्य सम्यगेव=सम्यक्कृतया यथावस्थितरूपेण स्वमतं परमतं च समभिजाय प्रमाणनयैर्ह्येत्या नातिवर्तेत—मग्नशक्ता नातिक्रमत्-नोच्छङ्खयेदित्यर्थः, उपसङ्गणात् परवादं च निराकुर्यादिति । अपि च इह=अत्र जिन-योग न मिले तो आचार्यादिक गुरुभक्ति निकट बस कर उनके उपदेश अधरणसे वास्तविक वस्तु—मत्त्वका ज्ञायक बने ।

वस्तु तत्त्व या परमवाद्को जान कर फिर क्या करना चाहिये? इस के समामानार्थ सूत्रकार कहते हैं "निर्देश" इत्यादि ।

जो मुनिजन बुद्धिशाली हैं, अर्थात् अपने धर्मगुरुओंकी मर्यादाके रक्षक हैं, उनके निर्दिष्ट मार्गानुसार अपनी प्रवृत्ति करते हैं, स्वमना-कल्पित प्रवृत्ति नहीं करते । वे पीतराग प्रभुके उपदेशका अनेक मार्गसे विचार कर कभी भी उससे विच्युत प्रवृत्ति, या उसका उल्लंघन नहीं करते। पीतराग प्रभुका उपदेश अनेक नयोंकी अपेक्षासे प्रवर्णित हुआ है ऐसा

आ परमताने अ पुरुं ज्ञात्वा अने परतु क्काम्य जेवो भोज न भजे तो आजाय अदि गुरुज्जोनी पासै रही जेमना उपदेश सबसुधी वास्तविक वस्तुत्वता व्युत्कार अने वस्तुत्व अने परमतने अजुी पछी शुं कश्चुं अछिअ ? जेना समाधानमा सूत्रमा कहे छे "निर्देश" इत्यादि !

जे मुनिजन बुद्धिशाली छे जेहे जेताना भम गुरुज्जोनी मर्यादाना रक्षक छे—जेमहे उपदेशके मात्र अनुसार जेतानी प्रवृत्ति करे छे स्वमन-कल्पित प्रवृत्ति कश्चा नथी ते पीतराग प्रभुना उपदेशने अनेक मार्गधी विचार करी करी पछु जेनाधी विरुद्ध प्रवृत्ति अथवा जेनु उत्सर्जन नथी कश्चा पीततत्र प्रभुने उपदेश सिद्ध छे जेवो विचार करी ते करी पछु जेना आगममा श-अ-

विचार कर वे भी उनके आगममें शंकाशील नहीं होते हैं—उसमें परस्पर-विरुद्धार्थप्ररूपकताकी शंका नहीं करते हैं। वे यह अच्छी तरहसे समझ लेते हैं कि भगवान् वीतराग प्रभुके वचन ही निर्दोष होनेसे उपादेय हैं और सदोष होनेसे मिथ्यादृष्टियोंके वचन हेय हैं। क्यों कि पदार्थोंका जैसा स्वरूप है वह वीतरागप्रभु प्रतिपादित आगमसे साक्षात् ज्ञात होता है; कारण कि उसमें ही पदार्थोंका यथार्थस्वरूप प्रतिपादित हुआ है अन्य मिथ्यादृष्टियोंके आगममें नहीं, कारण कि उसमें उनका यथावस्थित स्वरूप प्रतिपादित नहीं हुआ है, इनमें एकान्तवादकी ही प्ररूपणा है, जो प्रत्यक्ष और अनुमानसे बाधित है। पदार्थोंका स्वरूप अनेकान्तकी प्ररूपणा से ही वास्तविक ज्ञात होता है, और वही अनेकान्तता पदार्थोंमें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ज्ञात होती है। इस अनेकान्तताका परिज्ञान पदार्थों में प्रमाण और नयोंसे होता है। वस्तुके अंदर रहे हुए अनंत धर्मोंमें से किसी एक धर्मको मुख्यकर शेष धर्मोंकी अविबक्षासे उन्हें गौणकर वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन करना नय है। अनंतधर्मात्मक वस्तुका कथन प्रमाण है। इस प्रकार पदार्थोंमें अनेकान्तता ही सिद्ध होती है।

शङ्का—नयवाक्यसे जो पदार्थोंके स्वरूपका प्रतिपादन किया जाता है वह भी तो एकान्तवाक्य है; फिर इसमें प्रमाणरूपता कैसे मानी जा सकती है ?

शील अनन्ता नथी—એમા પરસ્પર વિશેધીપણાની શકા નથી કરતા એ સારી રીતે સમજે છે કે ભગવાન વીતરાગ પ્રભુના વચન નિર્દોષ તેમજ આચરવા-યોગ્ય હોવાથી મિથ્યાદૃષ્ટિઓના વચન નકામા છે, કેમ કે પદાર્થોનું જેવું સ્વરૂપ છે તે વીતરાગ પ્રભુએ સમજાવેલ આગમથી જાણી શકાય છે, કારણ કે એમા જ પદાર્થોનું યથાર્થ સ્વરૂપ સમજાવેલ છે ઊભા મિથ્યાદૃષ્ટિઓના આગમમા નહી કારણ કે એમા એનું સાચું સ્વરૂપ સિદ્ધ સ્વીકારાયું નથી એનામા એકાન્તવાદની જ પ્રરૂપણા છે જે પ્રત્યક્ષ અને અનુમાનથી બાધિત છે પદાર્થોનું સ્વરૂપ અનેકાન્તની પ્રરૂપણાથી જ વાસ્તવિક જાણી શકાય છે અને એ જ અનેકાન્તતા પદાર્થોમા પ્રત્યક્ષાદિ પ્રમાણોથી જ્ઞાત થાય છે આ અનેકાન્તતાનું પરિજ્ઞાન પદાર્થોમા પ્રમાણ અને નયોથી થાય છે વસ્તુની અંદર રહેલા અનંત ધર્મોમાથી કોઈ એક ધર્મને મુખ્ય ગણી ઊભા ધર્મોની અવિવક્ષા કરી એને ગૌણ સમજી વસ્તુસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવું નય છે અનંત ધર્માત્મક વસ્તુનું કથન પ્રમાણ છે આ પ્રકારે પદાર્થોમા અનેકાન્તતા જ સિદ્ધ થાય છે

શકા—નયવાક્યથી જે પદાર્થોના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવામા આવે છે આ પણ એકાન્તવાક્ય છે, પછી આને પ્રમાણરૂપતા કઈ રીતે માની શકાય ?

उत्तर—यह आशंका ठीक नहीं है, क्योंकि कि जहाँ पर विवक्षित धर्मकी ही प्रधानता की जावे और बाकी अन्य धर्मोंका तिरस्कार कर दिया जावे अथवा पर ही एकान्तता आती है। नयवाक्यमें सर्वथा एकान्त प्रतिपादकता नहीं है। यद्यपि नय अपने द्वारा ग्रहीत धर्मका ही प्रतिपादन करता है, परन्तु वह वस्तुगत अनेक धर्मोंका तिरस्कार नहीं करता है, किन्तु उनकी ओर वह गजनिमीलिका धारण कर लेता है। इस प्रकार नयवाक्यमें दुर्नयत्वरूप सर्वथा एकान्तप्रतिपादकता नहीं आती है।

शंका—इस प्रकारके कथनसे नयवाक्यमें जय प्रमाणता आती है तो उसे प्रमाणवाक्यसे भिन्न क्यों मानना चाहिये? उसका समावेश प्रमाणवाक्यमें क्यों नहीं कर लिया जावे?

उत्तर—शंका ठीक नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार समुद्रका एक प्पिन्दु असमुद्र एवं समुद्र नहीं हो सकता है; किन्तु समुद्रका एक देश कहा जाता है, उसी प्रकार नय वाक्य भी प्रमाणका एक देश माना गया है, वह न प्रमाण है और न अप्रमाण। इस प्रकार वह जीवादिक पदार्थों में या पीतरागप्रतिपादित आगममें उत्सर्ग और अपवाद मार्गसे प्रमाण नयोंके द्वारा यथार्थप्रतिपादकता जानकर उसे उपादेयकोटिमें

उत्तर—आ आशंका व्याजनी नहीं, केम के ल्या विवक्षित धर्मनी ए प्रधानता मानवामा आवे अने बाकीना जीव धर्मिना तिरस्कार करवामा आवे त्या ए एकान्तता आवे छे नयवाक्यमां ए पूज्य एकान्तप्रतिपादकता नहीं यद्यपि नय योत्पादकत ग्रहीत धर्मने ए प्रतिपादित करे छे, परंतु जे वस्तुगत अनेक धर्मिना तिरस्कार करतो नहीं परंतु जेनी तशे ते समभाव धारण करे छे आ रीते नयवाक्यमा दुर्नयता-सर्वथा-एकान्त-प्रतिपादकता आवती नहीं

शंका—आ प्रकारना कथनही नयवाक्यमा ल्यारे प्रमाणता आवे छे तो जेने प्रमाण वाक्यही भिन्न केम मानवुं जेछेके? जेने समावेश प्रमाणवाक्यमां केम नहीं करतो?

उत्तर—शंका व्यर्थवर नहीं; केम के ले रीते समुद्रनु जेक दीपु असमुद्र अने समुद्र वनी शकतुं नहीं, परंतु समुद्रने जेक देश ठेवाय छे जे ए रीते नयवाक्य पद्य प्रमाणने जेक देश मानवामां आवेछे छे जे प्रमाण पद्य नहीं तेम अप्रमाण पद्य नहीं। आ रीते एवादि पदार्थमा अने पीतराग प्रतिपादित आगममां उत्सर्ग अने अपवाद मार्गधी प्रमाण नये द्वारा यथाव-प्रतिपादकता ल्यारी तेने उपादेयकोटिमा अने भिन्नाहृष्टिजेना सिद्धतिने छे

शासने लोके आलीनगुप्तः—आलीनः—आ=सर्वतस्तपसि सयमे गुरूपदेशे परस-  
मयनिराकरणे च लीनः=तत्परः गुप्तः=कर्मवत् संयतेन्द्रियनोऽन्द्रियश्च सन् 'निष्ठि-  
तार्थी' निष्ठितः=सकलकर्मक्षयरूपत्वान्मोक्षः सौऽर्थः=प्रयोजनमस्यास्तीति  
स निष्ठितार्थी=मोक्षाभिलाषी वीरः=कर्मविदारणनिपुण 'आरामम्' आ=  
और मिध्यादृष्टियोंके सिद्धान्तको हेयकोटिमें स्थापित कर वीतराग के  
मार्गमें निःशंक बन आचार्यके निर्दिष्ट मार्गमें यथार्थ प्रवृत्तिशील होता है।

“सर्वतः सर्वात्मना” इन दो पदोंका यह भी अर्थ होता है कि  
आभ्यन्तर एवं बाह्यरूपसे तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको लेकर  
वह मेधावी मुनि वीतरागकथित उपदेशरूप आगमका विचार करनेवाला  
होता है। इसलिये जो वस्तु जिस द्रव्य क्षेत्रादिक की अपेक्षासे हेय होती  
है वही वस्तु अन्य द्रव्य क्षेत्रादिककी अपेक्षासे उपादेय भी हो जाती है।

इस प्रकार इस जिनशासनरूपी लोक, तप, संयम, गुरुके उपदेशके  
पालन करने और परसमयके निराकरण करनेमें सर्व प्रकारसे कटिबद्ध  
वह मुनि कच्छपकी तरह अपनी इन्द्रियों एवं नोऽन्द्रिय (मन)का  
संवरण करता हुआ समस्त कर्मोंका क्षयस्वरूप—मोक्ष—प्रयोजनवाला  
होता है। इस प्रयोजनका साधन जो संयम है उसमें फिर इसकी निर-  
वध प्रवृत्ति होती है, कारण कि मुक्तिका लाभ विना कर्मोंके क्षय हुए  
नहीं होता है। कर्मोंका क्षय भी विना संयमकी आराधना किये होता

कोटिमा गणी वीतरागना मार्गमा निशंक भनी आचार्य समजवे ते मार्गमां  
ते यथार्थ प्रवृत्तिशील भने छे

“सर्वत सर्वात्मना” आ भे पहोना भे पणु अर्थ थाय छे के आभ्यन्तर अने  
बाह्य रूपी तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावने लक्ष्य भे मेधावी मुनि वीतरागे कडेल  
उपदेशरूप आगमना विचार करवावाणो होय छे आ भाटे ने वस्तु ने द्रव्य—क्षेत्रा-  
दिकनी अपेक्षाथी होय होय छे आ व वस्तु भील द्रव्य—क्षेत्रादिकनी अपेक्षाथी  
उपादेय पणु भनी नय छे

आ प्रकारे आ जिनशासनरूपी लोक, तप, संयम, गुरुके उपदेशको पालन  
अने परसमयको निराकरण करवावा सर्व प्रकारथी कटिबद्ध भेवा मुनि कायभानी  
माझके पोतानी इन्द्रियो अने मनको संवरण करीने समस्त कर्मोंना क्षयस्वरूप—मोक्ष-  
प्रयोजनवाणो भने छे आ प्रयोजनको साधन ने संयम छे तेमा तेनी निरवध प्रवृत्ति  
भने छे, कारणके मुक्तिको लाभ विना कर्मोंके क्षय पणु संयमनी  
आराधना वगर थतो नथी संयमना लाभ थवाथी न आत्मा पोताना निज

સમન્તાત્ સમયત્યાત્માનં સ્વસ્વરૂપે ચ સ આરામમયમસ્તં પરિહાય=પરિહયા  
જ્ઞાત્વા આસેવનપરિહયાઽઽસેવ્ય ચ પરિવ્રજેત્=નિરવધાચરણે વિહરત્ । હે શ્લિષ્યાં તં  
સદા=સર્વસ્મિન્ કાલે આગમેન=વીતરાગોપદશેન આચાર્યોપદેશેન ચ પરાક્રમેયા=  
સંયમે પરાક્રમં ક્ષુર । 'ઈતિ' 'ઈત્યધિકારસ્માત્' 'ઘ્રષીમિ' ઈતિ પૂર્વવત્ ॥મૂં૩॥

કયં મુહુર્મુહુરુપદિશ્યત ઇત્યાહ—'ઉદ્' ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—ઉદ્ સોયા અહો સોયા, તિરિય સોયા વિચાહિયા ।  
પ્પ સોયા વિઅક્ષ્વાયા, જેહિ સંગંતિ પાસહ ॥ સૂં ૪ ॥

છાયા—ઊર્ધ્વં સ્નોતાંસિ અષઃ સ્નોતાંસિ, તિર્યક્ સ્નોતાંસિ ન્યાહતાનિ । પ્તાનિ  
સ્નોતાંસ્યપ્યાસ્પાતાનિ, યે સક્રમિતિ પશ્યત ॥ મૂં ૪ ॥

ટીકા—'ઊર્ધ્વં' મિત્યાદિ—ઊર્ધ્વમ્=ઊર્ધ્વલોકે સ્વર્ગાદૌ સ્નોતાંસિ=આસ્ર  
દ્વારાણિ મિષ્યાત્વાવિત્સ્પાદીનિ વર્તંત તત્રાપિ દેવસમ્બન્ધિ કામમોગસેવનાત્,  
નહીં હૈ । સયમકે લામ હોને પર હી આત્મા અપને નિજ સ્વસ્વરૂપમેં રમણ  
કરતા હૈ, સ્વસ્વરૂપમેં રમણતા હી તો સંયમ હૈ ।

इस प्रकारसे षड् ऋ परिज्ञासे जान कर और आसेवन परिज्ञासे  
उसका सेवन करता है, निरवध आचरण करनेमें प्रवृत्तिशील बन सदा  
उसी ओर मग्न रहता है । इस प्रकारके उपदेशसे सूत्रकार शिष्यजनको  
समाप्ताते हुए कहते हैं कि हे शिष्य ! तुम भी सदा—सर्वकाल वीतराग  
प्रभुके उपदेश या आचार्य महाराजके उपदेशसे सयम पालनेकी ओर  
पराक्रमशाली बनो । सूत्रस्य 'इति' शब्द अधिकारकी समाप्तिका सूचक  
है। 'घ्रषीमि'पदका व्याख्यान पहिले कई स्थानोंपर लिखा जा चुका है। सू० ३॥

પારંપાર સંયમમેં પ્રવૃત્તિ કરનેકા ઉપદેશ ક્યોં દિયા જાતા હૈ? હુસ  
કા સમાધાન કરને નિમિત્ત સૂત્રકાર કહ્તે હૈ—'ઉદ્' સોયા " ઇત્યાદિ ।

સ્વરૂપમાં રમણ કરે છે સ્વસ્વરૂપમાં રમણતા જો જ સયમ છે આ પ્રકારે તે જ  
પરિજ્ઞાથી બાળીને અને આસેવન પરિજ્ઞાથી તેનું સેવન કરે છે, અને નિરવધ  
આચરણ કરવામાં પ્રવૃત્તિશીલ બની સદા તે તરફ મગ્ન રહે છે આ પ્રકારના  
ઉપદેશથી સૂત્રકાર શિષ્યજનને સમજાવવા કહે છે કે હે શિષ્ય ! તમે પણ સદા  
સર્વકાળ વીતરાગ પ્રભુના ઉપદેશ અને આચાર્ય મહારાજના ઉપદેશથી સંયમ પાલનની  
તરફ પરાક્રમશાળી બનો સૂત્રસ્ય ઇતિ શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિને સૂચક છે. "ઘ્રષીમિ"  
આ પદનું વ્યાખ્યાન આગળ કેટલાક સ્થાનોમાં કહેવાઈ ગયાં છે ( સૂ. ૩ )

વારંવાર સયમમાં પ્રવૃત્તિ કરવાને ઉપદેશ કેમ આપવામાં આવે છે એનું  
સમાધાન કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર કહે છે 'ઉદ્ સોયા ઇત્યાદિ ।

अधः=अधोलोके स्रोतांसि=आस्रवद्वाराणि भवनपतिसुखासेवनात् , तिर्यग्लोके=मनुष्यलोके स्रोतांसि तिर्यङ्मनुष्यव्यन्तरविषयसुखसेवनात् व्याहृतानि कथितानि ।

उर्ध्व, अधः और तिर्यग् ( मध्य ) इन तीनों लोकोंमें कर्मोंके आने के अनेक द्वार-कारण शास्त्रोंमें प्रतिपादित किये गये हैं । सामान्यतया-मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद और योग ये कर्मबन्धके कारण होते हैं । प्रत्येक गतिमें अथवा इन तीन लोकमें ऐसा कोई सा भी स्थान नहीं है कि जहां पर जीव कर्मोंके बन्धसे रहित हो । बन्ध बिना आश्रवके नहीं होता है, अतः जो कारण बन्धके हैं वे ही आश्रवके समझना चाहिये । स्वर्ग आदि में इन कारणोंके अतिरिक्त भी कर्माश्रवके और भी कई कारण हैं । यद्यपि इन कारणकलापोंका समावेश पूर्वोक्त कारणकलापोंमें ही हो जाता है, फिर भी यहां पर जो देवगति संबंधी विषय सुखोंका सेवन उनके आश्रवका कारण बतलाया गया है वह शिष्यजनोंको विशेष रीतिसे समझानेके लिये ही कहा गया है । इसी प्रकार अधोलोक एवं तिर्यग्लोकमें भी यही बात समझना चाहिये । अधोलोक में नरकगतिमें नपुंसकलिङ्गका उदय होनेसे वहां पर जीवों-नारकियोंको वैषयिक सुखोंका आसेवनजन्य कर्मोंका आश्रव कैसे हो सकता है ? यह आशंका यद्यपि हो सकती है, तो भी इस आशंकाका समाधान यही है कि नपुंसक वेदके उदयमें वाद्यरूप में वैषयिक सुखों-रतिसम्बन्धी

उर्ध्व, अधः અને તિર્યગ્ આ ત્રણે લોકોમાં કર્મોને આપવાના અનેક દ્વાર-કારણ શાસ્ત્રોમાં જણાવેલ છે સામાન્ય રીતે-મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, કષાય, પ્રમાદ અને યોગ આ કર્મબંધના કારણ બને છે પ્રત્યેક ગતિમાં અથવા આ ત્રણે લોકમાં એવું કોઈ પણ સ્થાન નથી કે જ્યાં જીવ કર્મોના બંધથી રહિત હોય બંધ આશ્રવ વિના બનતો નથી, માટે જે કારણ બંધ માટે છે તે જ કારણ આશ્રવનું સમજવું સ્વર્ગ આદિમાં આ કારણોથી અતિરિક્ત પણ કર્મોશ્રવના બીજા પણ કેટલાક કારણો છે, આથી આ કારણ-કલાપોના સમાવેશ પૂર્વોક્ત કારણ-કલાપોમાં જ થઈ જાય છે, છતાં પણ અહીં જે દેવગતિસંબંધી વિષયસુખોના સેવન, એના આશ્રવનું કારણ બતાવેલ છે તે શિષ્યજનોને વિશેષરીતિથી સમજાવવા માટે જ કહેલ છે આ જ પ્રકારે અધોલોક અને તિર્યગ્લોકમાં પણ આ વાત સમજવી જોઈએ અધોલોકમાં નરકગતિમાં નપુસક લિંગનો ઉદય હોવાથી તે જ્યાંએ જીવો-નારકિયોના વૈષયિક સુખોનું આસેવનજન્ય કર્મોના આશ્રવ કઈ રીતે થઈ શકે ? આ આશંકાને કે યદ્યપિ શકે છે તો પણ આ આશંકાનું સમાધાન એ છે કે નપુસક વેદના ઉદયમાં વાદ્યરૂપમાં વૈષયિક સુખો-રતિ સંબંધી



યદા-પ્રજ્ઞાપકાપેક્ષયા ઊર્ધ્વ સ્ત્રોતાંસિ-ગિરિશિલ્વરમાગ્મારનિતમ્બપ્રપાતોદ્કા-  
 દીનિ, અપ્તોઽપિ-ગર્વનતીત્તન્કન્દરાદીનિ, તિર્યગપિ ઉચ્ચાનપરિપત્પ્રાસાદાદીનિ  
 સ્ત્રોતાંસિ જન્તૂનાં વિપયાપમોગાસ્પદાનિ વ્યાહતાનિ-ન્યામ્યાતાનિ । एतानि-  
 શ્લોકપ્રયવર્તીનિ કર્માંસ્રવદ્વારાપિ નદીસ્ત્રોતાંસીવ સ્ત્રોતાંસિ આસ્પાતાનિ-કથિતાનિ,  
 આનંદોંકા અનુભવ ભલે હી ન હો, પરન્તુ ઇમ વેદકે ઉદયમેં યહુત મયંકર  
 માનસિક કામપીઠા હોતી હૈ, ડસીસે જીષ કર્મોંકા આસ્રવ ક્રિયા કરતા  
 હૈ, તથા મિધ્યાત્વ આદિ કારણ તો ઘટાં સ્પષ્ટ હૈ હી ।

દૂસર-ઇસ અધોલોકમેં ભવનપતિયોંકા નિવાસસ્થાન હૈ, ઘહા વિપ-  
 યોંકા સેવન ભવનપતિ આદિ ક્રિયા કરતે હૈ । ઇસ અપેક્ષાસે અધોલોક  
 મી કર્માંસ્રવકે કારણસે રહિત નહીં હૈ । તિર્યગ્લોક-મધ્યલોકમેં મી યહી  
 અવસ્થા હૈ, યહા પર મી મનુષ્યગતિ સંબંધી, નિર્ધવગતિ સમ્બંધી ઓર  
 ઘ્યન્તરલેષ સમ્બંધી વિવય સુસ્વોંકા સેવન કર્મોંકા આસ્રવકા કારણ  
 સ્પષ્ટ રૂપ હૈ ।

અથવા પ્રજ્ઞાપકકી અપેક્ષાસે-ઉર્ધ્વસ્ત્રોત, ગિરિશિલ્વર આદિ સ્થિત  
 પ્રપાતજલ હૈ, અપાસ્ત્રોત-ગદ્દા, નદીતટ, કન્દરા આદિ હૈ, તિર્યગ્સ્ત્રોત-  
 ઉચ્ચાન પરિપત્ પ્રાસાદ આદિ હૈ । યે સય વૈપયિક સુસ્વોંકે સ્થાનમૂત હૈ,  
 જીષ જન સ્થાનોમેં વૈપયિક સુસ્વ સેવન કરતે હૈ તો જિસ પ્રકાર નદી  
 આન ઢોનેા અનુભવ ભલે ન હોય પરન્તુ આ વેદના ઉદયમા પૂલ જ ભવ કર માનસિક  
 કામપીઠ ધામ છે આધી છવ કર્મોનેા આસ્રવ કપો કરે છે તથા મિધ્યાત્વ  
 આદિ કારણ તેા ત્યા સ્પષ્ટ છે જ

જીલ્લુ આ અપેક્ષાકમા ભવનપતિયોંતુ નિવાસસ્થાન છે ત્યા વિવધોંતુ  
 સેવન ભવનપતિ આદિ કરે છે આ અપેક્ષાધી અધોલોક પણ કર્માંસ્રવના કારણધી  
 સ્થિત તથા તિર્યગ્લોક-મધ્યલોકમા પણ જોવી જ અવસ્થા છે ત્યા પણ મનુષ્ય  
 ગતિ સબ ધી તિર્યગ્ગતિ સબ ધી અને ઘ્યન્તરલેવ સબ ધી વિવધસુજોના સેવન  
 કર્મોના આધવતુ કારણ સ્પષ્ટ રૂપથી છે

અને પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી-ઉર્ધ્વસ્ત્રોત-ગિરિશિલ્વર આદિ સ્થિત પ્રપાતજલ  
 આદિ છે અથ તાત-આટો નદીતટ ક ઇસ આદિ છે અને તિર્યગ્સ્ત્રોત-  
 ઉચ્ચાન પરિપત્ પ્રાસાદ આદિ છે આ સપયા વૈપયિક સુજોના સ્થાન છે  
 છવ આ સ્થાનોમા વૈપયિક સુખ સેવન કરે છે ૧ પ્રકારે નદી આદિ જગ્યા

पापोपादानकारणैस्त्रिविधकर्मास्रवैस्तैर्यैः पूर्वोक्तैः सङ्गं=भूतानां समासक्तिं कर्मा-  
भिष्वङ्गं वा पश्यत=ययं प्रेक्षध्वम्, इति हेतोर्यस्मादभिष्वङ्गात् स्रोतांसि भवन्ति तस्मा-  
दागमोक्तसंयममार्गे सर्वतः=सर्वात्मना पराक्रमेथा इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ मू० ४ ॥

आदि जलाशयोमें जलके आनेके कारणभूत स्रोत हुआ करते हैं उसी प्रकार ये सब भी कर्मोंके आनेके स्रोत-द्वार हैं।

इन तीन प्रकारके द्वारोंसे कि जिनसे उन २ लोकोंमें रहे हुए जीवों को नवीन कर्मोंका प्रतिसमय आस्रव होता रहता है—इस जीवकी आसक्ति होती रहती है, अथवा इन तीन प्रकारके कर्मोंके आस्रवके कारणोंद्वारा आगत कर्मोंसे इस जीवका सम्बन्ध होता रहता है; इसलिये शिष्योंको समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जब यह बात स्पष्ट है तो हे शिष्य! तुम ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे तुम्हारा इन स्थानोंसे सम्पर्क न हो। इनसे सम्पर्क छुड़ानेका एक मात्र कारण आगममें प्रतिपादित संयममार्ग का आराधन ही है; इसलिये उस संयमकी आराधना करनेके लिये तुम सदा सर्वप्रकारसे कटिबद्ध रहो।

भावार्थ—“बारंवार संयममें प्रवृत्ति करानेका उपदेश क्यों दिया जाता है?” इस प्रकारके प्रश्नका समाधान इस सूत्रद्वारा किया गया है और वह संक्षिप्तमें यही बतलाया गया है कि संयम ही कर्मोंके आस्रव का निरोधक है, अतः उसमें ही प्रवृत्ति करनी चाहिये; इसीलिये ही

शथेमा पाणीने आववाना कारणभूत ञरणु थया करे छे आवी रीते अे सधणा पणु कर्मने आववाना द्वार छे

आवा त्रणु प्रकारना द्वारेथी के जेनाथी ते ते लोकामा रहेला लवने नवीन कर्मोना प्रतिसमय आस्रव थतो रहे छे—ते लवनी आसक्ति थती रहे छे, अथवा आ त्रणु प्रकारना कर्मोना आस्रवना कारणद्वारा आगत कर्मोथी आ लवने सधध थर्हो छे आ कारणु शिष्योने सभलवता सूत्रकार उडे छे के न्यारे आ वात स्पष्ट छे तो हे शिष्य! तमे जेवो प्रयत्न करे के जेथी तमारो आवा स्थानोमा सपर्क न थाय, आनाथी सपर्क छोडावानु अेक मात्र कारणु आगममा प्रतिपादित संयमनु आराधन ज छे आ माटे सयमनी आराधना करवा साइ तमे सदा सर्व प्रकारथी कटिबद्ध रहे

भावार्थ — ‘बारंवार संयममा प्रवृत्ति करवानो उपदेश केम आपवाना आवे छे’ आ प्रकारना प्रश्ननु समाधान आ सूत्रकारा करेद छे अने ते संक्षिप्तमा अे ज पताववामा आन्यु छे के संयम ज कर्मोना आस्रवने निरो-

अन्यमप्युपदशमाह—‘आवर्तुं’ इत्यादि—

मूलम्—आवर्तु तु पेहाए एत्थ विरमिज्ज वेयवी, विणइत्तु सोय निक्खम्म एसमह अकम्मा जाणइ पासइ पडिलेहाए नाव कखइ इह आगइ गइ परिघ्णाय अच्चेइ जाइमरणस्स वट्टमग्ग वक्खवायरए ॥ सू० ५ ॥

छाया—आवर्तु तु प्रेक्ष्याप्र विरमद्भेदधित् चिनेतुं स्रोतो निष्क्रम्य एष महान् भ्रमर्मा जानाति पश्यति मत्स्युपेक्ष्य नावकाहती वाऽऽगतिं गतिं परिघ्णाय अस्पतिं स्वातिमरणस्य वर्तमार्गं व्याख्यातरतः ॥ म० ५ ॥

टीका—‘आवर्तुं’ इत्यादि—अप्र=इह जिनशासन सोक वा, बेदधित्=धीतरागप्रणीताऽऽगमम्, आवर्तुं=मिथ्यास्वाधिरत्यादिरूपं भावावर्तुं, तु=कर्मण उन्मर्मे प्रवृत्ति करनेका चार चार उपदेश दिया जाता है। लोकमें ऐसा फोड़ सा भी स्थान नहीं है कि जहा रह कर जीव कर्मोंके आस्रबसे रहित हो सके। उर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक ये सब ही स्थान कर्मोंके आस्रबके कारणोंसे भरे पड़े हैं। अतः एक मंयमरूप ही मार्ग ऐसा है जो कर्मोंके आस्रबको रोकता है। इसलिये उन्मीमें प्रवृत्ति करनी चाहिये।

इसी विषय से लगती हुई और भी यान सूत्रकार कहते हैं—  
“आवर्तु” इत्यादि।

जो मनुष्य इस लोकमें अथवा इस पर्याय में धीतरागप्रणीत आगम का ज्ञान है उन्मका कर्तव्य है कि वह मिथ्यास्व अधिरति आदिरूप जो भाव आवर्तु हैं उनसे, तथा ‘तु’ इस शब्दसे गृहीत शब्दादिक विषय

धरुं इ भाटे तेभा ए प्रवृत्ति करवी नेधंजे आ भाटे ए जेवी प्रवृत्ति करवाने उपदेश बारबार आपवामा आवे छे लोकमा जेवु केरु पलु स्थान नथी के ज्यो स्त्रीने एव कर्मोना आस्रवधी शक्ति जनां शके उच्चलोक मध्यलोक जने अपोलोकमा सधण भ्यान कर्मोना आस्रवना ठारलुधी भरेला छे आधी जेक लुभभउप भाग जेवो छे ने कर्मोना आस्रवने शके छे ए भाटे जेभा प्रवृत्ति करवां नेधंजे.

आ विषयने लगना बीज जेकपाल पलु सूत्रकार कहे छे ‘आवर्तु’ इत्यादि ने मनुष्य आ लोकमा अथवा आ परीषमा वीतराज प्रणीत आस्रमने ज्ञान छे तेनु कर्तव्य छे के ते मिथ्यास्व अधिरति आदिरूप ने भाव आस्रव छे तनाधा तथा तु” आ शब्दधी गृहीत शब्दादिक विषयधी आवर्तोधी अथवा

शब्दादिविषयावर्तं कर्मबन्धावर्तं वा प्रेक्ष्य=पर्यालोच्य विरमेत्=आस्रवद्वारेभ्यो  
निवर्तेत, तेषां प्रतिरोधं कुर्यादित्यर्थः। किं तेन प्रतिरोधेनेत्याह—‘ विनेतु ’ मित्यादि।  
यः स्रोतः=कर्मणामास्रवद्वार विनेतुम्=अपनेतुं=दूरीकर्तुं निष्क्रम्य=प्रव्रज्य एषः=अय  
प्रत्यक्षभूतः, महान्=उदारचरितो महापुरुषः ‘ अकर्मा ’ न विद्यते कर्म घातिरूपं  
यस्य सोऽकर्मा क्षीणघातिकर्मा अत एव जानाति सामान्यरूपेण ततः पश्यति=

यरूपी आवर्त्तोसे, अथवा कर्मबन्धरूप आवर्त्तोसे विचारपूर्वक अवश्य २  
विरक्त बने । संसारमें मिथ्यात्व अविरति आदि ये सब कर्मों के आस्रव  
के कारण बतलाये गये हैं । इनके द्वारा ही जीव नवीन २ कर्मोंका  
आस्रव और बंध किया करता है । इन आस्रवों के कारणोंको रोकनेके  
लिये सबसे मुख्य कर्तव्य है कि वीतरागप्रणीत आगमका ज्ञाता बनें ।  
इस प्रकारके ज्ञातृत्वभावसे जीव यह भलीभांति समझ सकता है कि  
इस संसारमें कलानेका अथवा शब्दादिक विषयकषायोंमें फंसानेका प्रधान  
कारण मिथ्यात्व और अविरति परिणाम हैं । इस प्रकार जब वह इन  
आवर्त्तोंका प्रतिरोध करनेका दृढसंकल्पी हो जाता है तब वह नियमसे  
इन आवर्त्तोंकी निरोधिका जिनदीक्षाको अंगीकार कर अपने मार्गको  
प्रशस्त बनाता हुआ आगे २ के गुणस्थानों पर चढ़ कर उदारचरित  
महात्मा पुरुषोंकी श्रेणिमें परिगणित होने लगता है । एक समय ऐसा  
भी आता है कि वह परिणामोंकी अत्यन्त निर्मलताके प्रभावसे घातिया  
कर्मोंका विनाशक घन अनन्त दर्शन और अनन्त ज्ञानका धारक केवलि-

कर्मबंधरूपी आवर्त्तोधी विचारपूर्वक अवश्य अवश्य विरक्त बने संसारमा मिथ्यात्व  
अविरति आदि जे सधणा कर्मोना आश्रवना कारण अतावेले छे जेना द्वारा ज  
एव नवीन नवीन कर्मोना आश्रव अने अध कुर्या करे छे आ आस्रवोना  
कारणोने रोडवा भाटे पडेहुं जे कर्तव्य छे के वीतरागप्रणीत आगमोना जणु-  
कार अने आ प्रकारना ज्ञानना लावथी एव सारी पेटे जे समल शके छे  
के आ संसारमा लरभाववानु अने शब्दादिक विषय कषायोमा इसाववानु प्रधान  
कारण मिथ्यात्व अने अविरति परिणाम छे आ प्रकारे न्यारे जे आवा  
आवरणोना प्रतिरोध करवानो दृढसंकल्पी अने छे त्यारे ते नियमथी जे  
आवरणोना निरोधक एनदीक्षानो अंगीकार करी पोतानो मार्ग भोडणो अनादी  
आगण ते आगण वधवा शुश्रूषानो पर यही उदारचरित महात्मा पुङ्गवोनी  
श्रेणीमा परिगणित अने छे जेक समय जेवो पणु आवे छे के परिणामोनी  
अत्यन्त निर्मलताना प्रलावथी ते घातिया कर्मोना विनाशक अनी अत्यन्त ज्ञान

विशेषरूपेणावबुध्यते, सामान्यज्ञानपूर्वकमेव विशेषज्ञानं जायते, न हि सामान्यरूपमा-  
ज्ञातो घटो नीलादिघटस्वरूपं युक्तिसहस्रेणापि बोधयितुं शक्नोति । एतेन चोप-  
योगक्रमो दर्शितः । स एषोऽक्रमां किं विदध्यादित्याह—‘प्रत्युपेक्ष्ये’ स्यादि—स  
विदितपरमार्थं सम्यग् विचार्य नावकाङ्क्षति—धीतरागत्वात् किमपीच्छति ।

परमात्माके पदसे विभूयित हो जाता है । सूत्रस्थ—“ जानाति पश्यति ”  
ये दो क्रियापद इस बातकी सूचनापरक हैं कि परमात्मा पहिले, पदार्थोंका  
सामान्यरूपसे अवलोकन करते हैं पश्चात् उन्हीं पदार्थों को विशेषरूपसे  
जानते हैं । यह मानी हुई बात है कि सामान्यज्ञानपूर्वक ही विशेषज्ञान  
हुआ करता है । ऐसा नहीं है कि सामान्य ज्ञानके अभावमें विशेषज्ञान  
हो जाय । जब तक पदार्थोंका सामान्य ज्ञान नहीं होगा तब तक विशेष  
ज्ञान नहीं हो सकता, घट जब तक सामान्य रूपसे अज्ञात बना रहेगा  
तब तक उसका नीलादि घट इस प्रकारके विशेषरूपसे ज्ञान हो नहीं  
सकता । ऐसी कोई भी युक्ति नहीं है जो सामान्यरूपसे अज्ञात पदार्थका  
विशेषरूपसे भी ज्ञान हो जानेकी साधिका हो । इस कथनसे परमात्माके  
भी दर्शनउपयोग और ज्ञानउपयोग ये दोनों क्रमिक हैं यह बात प्रद-  
र्शित होती है । परमात्मा विदितपरमार्थ होने से तथा कृतकृत्य होनेसे  
निरपृष्ट प्रवृत्तिशाली रहते हैं । उनके किसी भी वस्तुकी चाहना नहीं होती ।  
आहना—इच्छा यह मोहका एक भेद है, मोहके सर्वथा अभाव हो जानेसे

अने अनन्त इशानना धारक केवही परमात्माना पश्यी विभूयित अनी अथ छे  
सूत्रस्थ ‘जानाति पश्यति’ आ वे क्रियापद आ बातनी सूचना करे छे  
के परमात्मा प्रथम पदार्थेनि सामान्य रूपधी अवलोकन करे छे पछं ते पदा-  
र्थेनि विशेष रूपधी अजे छे आ मानेसी बात छे के सामान्यज्ञानपूर्वक  
विशेषज्ञान यत्तु रहे छे अथ नधी के सामान्य ज्ञानना अभावमा विशेष ज्ञान  
प्राप्त थाय. न्यथ सुधी पदार्थेनु सामान्य ज्ञान यथे नदी त्वां सुधी विशेष  
ज्ञान यत्तु शकवानु नधी यत्तु अन्नां सुधी सामान्यरूपधी अनात अनी स्तरेषु  
त्वां सुधी नील आदि यत्तु आ प्रकारनु विशेष रूपनु ज्ञान यत्तु शकतुं नधी.  
अथे केषु पञ्च भुक्ति नधी ते सामान्यरूपधी अज्ञात पदार्थना विशेषरूपधी  
पञ्च ज्ञान यत्तु अथमा साधक अने आ कथनधी परमात्माना इशानने उपयोग  
अने ज्ञानने उपयोग आ अने क्रमिक छे आ वान प्रदर्शित थाय छे परमात्मा  
विदितपरमाथ यथायी तथा कृतकृत्य यथाधी निरपृष्ट—प्रवृत्तिशाली रहे छे अने  
कोई पञ्च वस्तुनी आदना यती नधी. आदना—उच्छा अथे आदने अथे भेद छे

अपि च स एव 'व्याख्यातरतः' वि=विविधप्रकारेण प्रधानपुरुषार्थत्वेनारब्ध-  
सूत्रार्थतदुभयत्वेन तप संयमाचरणेन च आख्यातः=कथितो व्याख्यातो मोक्षस्तत्र  
रतः=तदधिगमतत्परः, आत्यन्तिकैकान्तिकाव्यावाधिशिवसुखधायिकज्ञानदर्शनादि-  
युक्त इत्यर्थ, इह मनुष्यलोके स्थितः सन् जन्तूनाम् आगतिं चतुर्विधां गतिं पञ्च-  
विधां तत्प्रायोग्यकर्म वा परिज्ञाय-द्विविधपरिज्ञया ज्ञात्वा परिहृत्य च 'जातिमरणस्य'

इच्छाका भी वहां पर अभाव हो जाता है। अतः वीतराग होने से वे  
इच्छासे सर्वथा परे ही रहा करते हैं। ये व्याख्यातरत होते हैं। व्याख्यात  
शब्दका अर्थ मोक्ष है। क्यों कि वही प्रधान पुरुषार्थरूपसे कहा गया है।  
उसी मोक्ष पुरुषार्थको प्रतिपादन करने एवं उसकी प्राप्तिके निमित्त ही  
प्रभुने सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ इस रूपसे आगमकी प्ररूपणा की है, तथा  
इसीके निमित्त तप और संयमके आचरण करनेका उपदेश है। उसमें  
ये रत रहते हैं।

भावार्थ—कर्मोंके सर्वथा अभावसे होनेवाली, परमशुद्ध दशाका  
नाम ही मुक्ति है और यह अवस्था बाधारहितसुखविशिष्ट है, क्षायिक  
ज्ञान और क्षायिक दर्शनका सदा इसमें प्रकाश रहता है, ऐसी मुक्त  
अवस्थासे परमात्मा युक्त होते हैं। परमात्मदशा ही मुक्तिदशा है, उनसे  
भिन्न वह अवस्था नहीं है ये परमात्मा जीवन्मुक्त अवस्थामें संसारमें  
रहते हुए भी समस्त संसारी जीवोंकी चतुर्विध आगति और पांच प्रकारकी  
गति अथवा उसके उपार्जन योग्य कर्मोंको द्विविध परिज्ञासे जानकर और

मोक्षनेो सर्वथा अलाव थवाथी धृच्छानेो पशु त्या अलाव थर्ध नय छे, आथी  
वीतराग डोवाथी ते धृच्छाथी सर्वथा हरण रहा करे छे अे व्याख्यातरत (मोक्षगामी)  
अने छे. व्याख्यात शब्दनेो अर्थ मोक्ष छे, केम के अे प्रधान-पुरुषार्थ-रूपथी  
कडेवायेल छे अे मोक्ष पुरुषार्थने प्रतिपादन करवा अने तेनी प्राप्ति निमित्त  
प्रभुअे सूत्र, अर्थ अने सूत्रार्थ अे रूपथी आगमनी प्ररूपणा करेल छे. अने आने  
निमित्त तप अने संयमनु आचरण करवानेो उपदेश छे. आमा अे रत रहे छे

भावार्थ—कर्मोंना सर्वथा अलावथी थवावाणी परमशुद्ध दशातुं नाम  
मुक्ति छे, अने आ अवस्था बाधारहित-सुख-विशिष्ट छे, क्षायिक ज्ञान अने  
क्षायिक दर्शननेो सदा आमा प्रकाश रहे छे, परमात्मा आनी मुक्त अवस्थाथी मुक्त  
अने छे परमात्मदशा न मुक्तदशा छे, अेनाथी भिन्न अे अवस्था नथी. आ  
परमात्मा एवन्मुक्त अवस्थाआ संसारमा रहेवा छता पशु समस्त संसारी  
एवोनी चतुर्विध आगति अने पांच प्रकारनी गति अथवा अेना उपार्जनयोग्य

જાતિશ્રમ=જન્મ ચ મરણં ચ-જાતિમરણં તસ્ય, સર્વમાર્ગી ગત્યાગત્કિરૂપપરિશ્રમમમમાર્ગી  
વિકલ્પવસંસારપ્ટયિયોગાનિષ્ટસંયોગ-શારિદ્રિય-દૌર્માગ્ય-શારીર-માનસાધમેક-  
દુઃસ્વારમકં સંસારસ્રોતસ્તસ્મિદાને કર્મ વા અસ્પતિ=પ્રતિક્રામતિ સ્લક્ષ્યતીત્યર્થઃ,  
વાહ્મનમયોરવિષયો લોકાગ્ર શાશ્વત સિદ્ધો મશ્વતીતિ માય ॥ મૂ० ૫ ॥

તસ્ય સ્વરૂપ વર્ણયતિ-‘ સન્વ ’ ઇત્યાદિ—

અને છોડકર હસ સસારસ્રોતસે કિ જો જમ ઓર મરણકા સ્થાન હૈ, તપા  
જિસમેં ઇષ્ટયિયોગ ઓર અનિષ્ટ યોગ ઘના રહતા હૈ, દરિદ્રતાકા જહાં  
નિવાસ રહતા હૈ, દુર્માગ્ય પાપ જહા પર અપના પ્રભાવ જમાય હુય પઢા  
હૈ, શારીરિક ઇર્થ માનસિક આદિ યુ સ્ત્રોતી પરમ્પરા હસ જીવનકો જહાં  
પીસતી રહતી હૈ, હન સર્વ સે પરે હો જાતે હું। જય તક અઘાતિયા  
કર્મોકા ઉદય ઉનકે રહતા હૈ તય તક યદ્યપિ ઘે સંસારમેં રહતે  
હું; પરન્તુ ફિર મી ઘે ઉમ સસારકી પરપરાધર્મક કર્મોકે ઉપાર્જન  
સે રહિત હી રહતે હું। ઘાતિયા કર્મોકે સર્વધા પ્રક્ષય હો જાને સે ઘે ફિર  
સે સંસારકી પ્રાપ્તિ કરાને ઘાલે કર્મોકે ષકરમેં નહીં પઢતે હું। અઘા  
તિયા કર્મોકે ઘિનષ્ટ હોતે હી મુક્તિસ્થાનમેં જા વિરાજતે હું। ઘહ સ્થાન  
લોકકે અધ્રમાગમેં સ્થિત હૈ ઉસસે આગે ઘમોસ્કાય કા ઇમાવ હોને સે  
ઘે ઘહીપર ઠહર જાતે હું। હસી અઘસ્થાકા નામ સિદ્ધ વ્દ્યા હૈ। ઘહ સસારી  
જીવોકિ ઘષનકે અગોષ્ઠર ઓર મનસે મી ઘિચારમેં નહીં જા  
સકે ઘેસી હૈ ॥ સૂ० ૫ ॥

હસી અઘસ્થાકે સ્વરૂપકો મુદ્રકાર કરતે હું-“ સન્વે સરા ” ઇત્યાદિ।

કર્મોને વિવિધ પરિણામી બાલ્કી અને એને પ્રત્યાખ્યાન પરિણામી એવી આ સસાર  
સ્રોતથી કે જે જન્મ અને મરણનું સ્થાન છે, અને જેમા ઇષ્ટવિયોગ અને અનિષ્ટ  
સંયોગ થતો રહે છે, દરિદ્રતાને અથા નિવાસ રહે છે, દુર્માગ્ય પાપ અથા પોતાને  
પ્રભાવ જમાવી વેદા છે શારીરિક અને માનસિક આદિ દુઃખેભી પર પસ અથા  
અવનને પીસતી રહે છે આ સવ ઘાં ફર ઘઈ બાય છે અથા મુખી અઘાતિયા કર્મનો  
ઉદય એને રહે છે ત્યાં મુખી કલાત તે સસારમા રહે છતા પસ તે સસારના પર  
પરાધર્મક કર્મોના ઉપાજ નથી રહિત જ રહે છે ઘાતિયા કર્મોના સવ ઘાં સવ ઘઈ  
જવાથી એ ફરી સસારની પ્રાપ્તિ કરાવવાવાળા કર્મોના ઘક્ષરમા પડતા નથી.  
અઘાતિયા કર્મોને વિનષ્ટ ઘવાથી મુક્તિ સ્થાનમા જઈ વિશજમાન બને છે. આ  
સ્થાન ઘોહના અથા ભાગમા સ્થિત છે એથી આગળ ઘમોસ્કિયાને અઘાવ ઘોવાથી  
તે ત્યાં રામઈ બાય છે અથા અવસ્થાનુ નામ સિદ્ધવ્દ્યા છે આ સસારી અવેભા  
વજનથી અગોષ્ઠર અને મનથી પસ વિચારમા ન જાવી શકે એવી છે (સૂ० ૫)  
અથ અવસ્થાનુ સ્વરૂપને સૂતકાર કહે છે- સન્વે સરા ” ઇત્યાદિ।

मूलम्—सव्वे सरा नियट्ठन्ति, तक्का तत्थ न विज्जइ, मई तत्थ न गाहिया, ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयत्ते । सेनदीहे, न हस्से, न वट्ठे, न तंसे, न चउरंसे, न पडिमंडले, न किण्हे, न नीले, न लोहिए, न हालिहे, न सुक्खिहे, न सुरभिगंधे, न दुरभिगंधे, न तिच्चे, न कडुए, न कसाए, न अंबिले, न कक्खडे, न मउए, न गरुए, न लहुए, न सीए, न उण्हे, न निच्चे, न लुक्खे, न काऊ, न रुहे, न संगे, न इत्थी, न पुरिसे, न अन्नहा, परिच्चे, सच्चे, उवमा न विज्जए, अरुवी सत्ता । अपयस्स पयं नत्थि ॥ सू० ६ ॥

छाया—सर्वे स्वरा निवर्तन्ते, तर्को यत्र न विद्यते, मतिस्तत्र न ग्राहिका, ओज. अप्रतिष्ठानस्य खेदज्ञः॥ स न दीर्घो, न ऋस्वो, न वृत्तो, न त्र्यस्रो, न चतुस्स्रो, न परिमण्डलो, न कृष्णो, न नीलो, न लोहितो, न हारिद्रो, न शुक्लो, न सुरभिगन्धो, न दुरभिगन्धो, न तिक्तो, न कटुको, न कषायो, नाम्लो, न मधुरो, न कर्कशो, न मृदुः, न गुरुः, न लघुः, न शीतो, नोष्णो, न स्निग्धो, न रूक्षो, न कापोतः, न रूहो, न सद्गो, न स्त्री, न पुरुषो, नान्यथा, परिज्ञः, संज्ञः, उपमा न विद्यते, अरूपिणी सत्ता । अपदस्य पदं नास्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—‘सर्व’ इत्यादि—यत्र सिद्धावस्थायां सर्वे=निस्वशेषाः स्वराः=ध्वनयो निवर्तन्ते-प्रतिपाद्य-प्रतिपादकसम्बन्धा न घटन्ते, शब्दादिविषयाभिधेये सति वाच्य-वाचकभावसम्बन्धविषयस्यावश्यम्भावात् । न च तस्यामवस्थायां शब्दादयः प्रवृत्ति-निमित्ततामुपलभन्त इत्याशयः । न तत्र तर्कस्यावसरोऽपीत्याह—‘तर्क’ इत्यादि—

सिद्धदशाका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि इस सिद्ध दशामें सप्तस्त स्वर-ध्वनियां प्रतिपाद्यप्रतिपादकरूप संबंधसे पर रहती हैं । अर्थात्—इस सिद्ध अवस्थाका पूर्ण-स्वरूप-वर्णन किसी भी शब्दद्वारा नहीं हो सकता है । जो पदार्थ शब्दादिक का विषयभूत हुआ करता है वही पर वाच्यवाचकभाव संबंधकी घटना घटित होती है, सिद्धदशा जो शब्दके अगोचर है उसमें फिर वाच्यवाचकभाव संबंध घटित भी

सिद्धदशानु वर्णन करता सूत्रकार उछे छे के आ सिद्धदशायां सप्तस्त स्वरो-ध्वनीया प्रतिपाद्य-प्रतिपादकस्य संभ धर्मी हर उछे छे अर्थात् आ सिद्ध अवस्थाना पूर्ण स्वस्वपनु वर्णन कोषपणु शब्दोद्वारा थर्ध शक्तुं नथी जे पदार्थ शब्दादिकना विषयभूत थया करे छे त्या वाच्यवाचक-लाव-संभ धनी घटना घटित होय छे सिद्धदशा जे शब्दधी अगोचर छे जेभा पछी वाच्यवाचकलावसंभ ध घटित पणु केम थर्ध शके. घट अर्थभा घट शब्दनी प्रवृत्तिनिमित्त घटनस्य क्रिया छे जेटवे घट



अपि च तर्कः—ऊहापोह' पदार्थविशेषात्प्रसाय इत्यर्थः 'एव चेद् एवं भवेद्' इत्याकारक फलपनाविज्ञानो न विद्यते, शब्दादिविषयम्यावसर एव तर्कस्यावसरो भवति तदभाव कुतस्तर्कसम्भव, एवं चद् एव म्यात्स्युमयप्रापि अन्वयविषयस्यै कैसे हो सकता है। घट अर्थमें घट शब्दकी प्रवृत्तिका निमित्त घटनरूप क्रिया है, अतः घट शब्द घट अर्थका प्रतिपादक होनेसे उनमें परस्पर वाच्यवाचकसंबंध सुघटित हो जाता है। इस प्रकार इस वृत्तमें प्रवृत्ति के निमित्तभूत शब्दादिक उपलब्ध नहीं होते; कारण कि जो भी शब्द घटों पर प्रवृत्त होंगे वे उससे संपूर्ण धर्मका-स्वरूपका युगपत् प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं। ध्वनिर्या क्रमिक होती हैं, और क्रम २ से ही घट्टु के स्वरूपका प्रतिपादन करती हैं। जिस स्वरूपका प्रतिपादन उनके द्वारा होता है वही स्वरूप उमका नहीं है, वह तो उसका प्रतिपाद्य विषय एकदेश पड़ता है, उनमें स्वरूपमात्र तो वह घट्टु है नहीं, अतः अनंत-धर्मात्मक होनेसे उसका एकधर्ममुखेन सम्पूर्ण रूपसे कथन शब्दादि द्वारा हो नहीं सकता। प्रमाणसे हो जायेगा? तो इस प्रकारकी आशाका उत्तर यही है कि प्रमाण स्वानुभवगम्य है, वह ध्वननसे नहीं कहा जा सकता है, जो ध्वननसे कहा जाता है वह नयका विषय पड़ता है। इस अपेक्षासे यहाँ पर मित्त्वृत्ताको अध्याय कहा है। जैसे तो सिद्ध अवस्थाके स्वरूपका वर्णन शास्त्रकारोंने जितना भी हो सका है किया ही है; परन्तु यहाँ पर जो उसे अवकाश कहा है उसका भाव सिर्फ

शब्द पर अर्थने प्रतिपादक होवाची जेनामा परस्पर वाच्यवाचक संबंध सुघटित होने से आ प्रकारका इत्यामा प्रवृत्तिका निमित्तभूत शब्दादिक उपलब्ध नहीं बनता कारण है के पक्ष शब्द तथा प्रवृत्त होय ते जेना संपूर्ण धर्मना स्वरूपतु युगपत् (जेकीसाथै) प्रतिपादन करी शकता नहीं भवनीये कम बार साथ है अने कम कमधी वस्तुना स्वरूपतु प्रतिपादन करे है के स्वरूपतु प्रतिपादन जेना बात साथ है जे व आ स्वरूप जेनु नहीं होतुं, जे तो जेना प्रतिपाद्य विषय अकेदेश पडे है तावत्स्वरूप मात्र तो जे वस्तु नहीं, आधी अनंत धर्मरूपक होवाची जेनु संपूर्ण रूपकी कथन अके धर्मवडे शब्दादिद्वारा कह शकतुं नहीं. प्रमाणधी घट्टु कथे?—आ प्रकारकी आशाकाने उत्तर आ है के प्रमाणतु कथन स्वानुभवगम्य है जे वचनधी कहेनाई शकतुं नहीं के वचनधी कहे वच्य है ते नयरूप होने से आ अपेक्षाधी अदि सिद्धवस्थाने नवाच्य कहेल है जेम तो सिद्ध अवस्थाना स्वरूपतु वर्णन शास्त्रकारधी नेटहुं पक्ष अन्यु छ ते करेल है परतु जहाँ तेने नवाच्य

इतना ही है कि पदार्थका वास्तविक समस्त स्वरूप शब्दोंद्वारा प्रतिपादित हो ही नहीं सकता ! जितना स्वरूप केवलियोंने अपने केवलज्ञानसे पदार्थका जाना है उससे अनन्तवें भागकी उन्होंने अपनी ध्वनिद्वारा परीषदाके धीचमें प्ररूपणा की है, जितने अंशकी प्ररूपणा की है उससे अनन्तवें भागकी धारणा गणधरोंके ज्ञानमें हुई है । जितनी धारणा हुई है उससे भी अनन्तवें भागकी उन्होंने रचना की है । इस अपेक्षासे भी सिद्ध अवस्थाके समस्त स्वरूपका वर्णन शब्दोंद्वारा नहीं हो सकता ! इसीलिये उस सिद्ध दशामे तर्कको भी स्थान नहीं है । तर्क शब्दका अर्थ ऊहापोह है । ऊहापोह उसीमें होता है जो शब्दका विषय होता है । शब्दके अविषयभूतमें तर्क नहीं होता । इसी ख्यालसे टीकाकारका यह कथन कि “ पदार्थविशेषाध्यवसायः ” पदार्थविशेषका अध्यवसाय स्वरूप तर्क वहां नहीं होता सर्वथा सत्य है । यदि यह विषय ऐसा है तो ऐसा होगा ” इस प्रकारका कल्पनाविशेष वही पर होता है जो शब्दका विषयभूत होता है । यह “ एवं चेत् एवं भवेत् ” कल्पनाविशेष स्वयं शब्दमय है, और यही तर्कका आकार है, अतः इस प्रकार के तर्ककी प्रवृत्ति उस अवस्थामें नहीं होती, कारण कि “ एवं चेत् एवं स्यात् ” इन दोनों जगहों में शब्दविषय-पदार्थका ही अवलम्बन होता

कडेले छे येनो लाव इकत अेटलोअ छे डे पदार्थना वास्तविक समस्त स्वरूप शब्दोंद्वारा प्रतिपादित यधे न शके डेवलीअये पोताना डेवलज्ञानथी पदार्थनु वे स्वरूप नालेले छे, येना अनन्तमा लागनी अेमले पोताना दिव्यध्वनि द्वारा सभा वर्ये प्ररूपणा करी छे नेटला अ रानी प्ररूपणा करी छे येनाथी अनन्तमा लागनी धारणा गणधरोना ज्ञानमा यधे छे नेटली धारणा यधे छे येथी अतन्तमा लागनी अेमले रचना करी छे आ अपेक्षाथी पणु सिद्ध अवस्थानु समस्त रूपनु वर्णन शब्दोंद्वारा नथी यधे शकतु आ डारले ये सिद्धदशामा तर्कने स्थान नथी तर्क शब्दने अर्थ उहापोह थाय छे उहापोह अेमा डोय छे वे शब्दने विषय डोय छे शब्दना अविषय लूतमा तर्क नथी डेतो आ डारलेने टीकाकारनु अे कथन छे डे “ पदार्थविशेषाध्यवसायः ” पदार्थविशेषना अध्यवसाय स्वरूप तर्क त्या थतो नथी अे सर्वथा सत्य छे ‘ आ विषय अेवो छे तो अेम डोशे, आ प्रधारने कल्पनाविशेष अे स्थणे थाय छे वे शब्दने विषय लूत डोय छे आ “ एवं चेत् एवं भवेत् ” कल्पनाविशेष स्वयं शब्दमय छे अने अे न तर्कने आकार छे आथी आ प्रधारना तर्कनी प्रवृत्ति अे अवस्थामा नथी थती डारणु डे—“ एवं चेत् एवं स्यात् ” आ अने नयाअे शब्दविषय-

વાચનમ્બનાત્, મૂલે 'તદ્વા' ઇત્યપ્ર માકુતનાત્ સ્ત્રીત્વમ્ । તર્કામાયે હેતુમા-  
- 'મતિ' રિત્યાદિ-ત્ત્ર સિદ્ધાથસ્થાયાં 'મતિઃ' મનનં મતિઃ=મનોવ્યાપાર  
પદાર્થચિન્તનરૂપા, સા ચૌત્પત્તિક્યાદિમદાથત્વિધા; ન પ્રાહિકા=નાનુમાયયિત્રી,

હે । હમી વિષયકો વિગ્રોવ રીતિસે સ્પષ્ટ કરનેકે લિપે સૂત્રકાર-“મતિ  
સ્ત્ર ન પ્રાહિકા” કહતે હૈં । મતિ-મનનં મતિ-વિચાર કરનેકા નામ  
મતિ હૈ । યદ્ મતિરૂપ માનસિક વ્યાપાર કિ જિમમેં પદાર્થોકે ચિન્તનકે  
પ્રતિ માનસિક ધારા દૌઢતી રહતી હૈ તથા જિમકે ઔત્પત્તિકા આદિ  
૪ ચાર મેદ હૈં, ઉમ સિદ્ધ દશાકા અનુભવ કરનેવાલા નહીં હો સકતા ।  
ક્યોં કિ ઉસ દશામેં મંકલ્પવિકલ્પરૂપ કલ્પનામાત્રકે લિપે અઘસર  
હી નહીં હૈ । જો કર્મોસે યુક્ત-લિપ્ત હૈં, તેમી આત્માઓકો મુક્તિકા લાભ  
નહીં હોતા-હમ પાતકો ઘતાનેકે નિમિત્ત સૂત્રકાર “ઓજ અપ્રતિષ્ઠા-  
નસ્ય સ્લેદ્ધ” કહતે હૈં । જો સકલ કર્મોક મલસે રહિત હો જુકે હૈં  
થે હી આત્મા મોક્ષસ્તુત્ત્વકા અનુભવ કરનેવાલે હોતે હૈં, અર્થાત્ કર્મ  
મલીમમ આત્મા ઉમ મુગ્ધસે મદા ઘંચિત હી રહા કરતે હૈં । અપ્રતિ  
ષ્ઠાન શબ્દકા અર્થ મોક્ષ હૈ । ક્યોં કિ ઔદારિક આદિ શરીરોકા અથવા  
કર્મોકા મદ્દાથ હમ અઘમ્થામેં નહીં રહતા હૈ । હમ મોક્ષકા કિ જો  
અઘપાપાથસ્તુત્ત્વમ્બરૂપ હૈ કર્મોસે મલિન આત્મા અનુભવ મી

પદાર્થેન જ અવલમ્બન થાય છે આ વિષયને વિશેષ રીતથી સ્પષ્ટ કરવા માટે  
સૂત્રકાર- મતિસ્ત્ર ન પ્રાહિકા” કહે છે મતિઃ-મનનં મતિઃ-વિચાર કરવાનું  
નામ મતિ છે-આ મતિરૂપ માનસિક વ્યાપાર કે જેમાં પદાર્થોના ચિન્તનવન  
તરફ માનસિક ધારા દો વી રહે છે તથા જેના ઔત્પત્તિકી આદિ ચાર  
મેદ છે એ સિદ્ધદશાનો અનુભવ કરવાવાળી બની શકવી નથી, કેમ કે તેથી  
દશામા સંકલ્પવિકલ્પરૂપ કલ્પનામાત્રનો પણ અવસર નથી. જે કર્મોથી મુક્ત  
છે તેના આત્માઓને મુક્તિનો લાભ થતો નથી-આ પાત લવણવા નિમિત્ત  
સૂત્રકાર ઓજ ઇત્યાદિ! કહે છે જે સકલ કર્મોના મળથી સ્થિત બનેલ  
છે એવા આ માઓ મોક્ષ મુખનો અનુભવ કરનાર હોય છે અર્થાત્-કર્મના  
મળથી બધાએલ આત્માઓ એ મુખથી સદા વચ્ચિત જ સદા કરે છે અપ્રતિ  
ષ્ઠાન શબ્દનો અર્થ મોક્ષ છે કેમ કે ઔદારિક આદિ શરીરોના અને કર્મોના  
મદ્દાથ એ અવસ્થામાં રહેતો નથી. આ મોક્ષ કે જે અવ્યાભાષ-મુખ-સ્વરૂપ  
છે તેનો અનુભવ કરેથી મલિન આત્માઓ ઠઈ રીતે કરી શકે અવ્યાભાષ

तत्र संकल्प - विकल्प - कल्पनामात्रस्यानवसरात् । कर्मसमन्वितस्य मोक्षगमनं न भवतीति दर्शयति—‘ओज’ इति । ओजः=ओजोरूपः सकलकर्ममलरहितत्वेन ज्योतिःस्वरूपः, अपि च अप्रतिष्ठानस्य न विद्यते प्रतिष्ठानमौदारिकादिशरीरस्य कर्मणां वा अवस्थितिर्यत्र सोऽप्रतिष्ठानो मोक्षस्तस्य मोक्षसुखस्येत्यर्थः, खेदज्ञः=अनुभावुकः, तत्र विमलज्ञानमद्वावात् । अत्र खेदशब्देनाऽनुभवरूपोऽर्थो गृह्यते । किञ्च तदा स दीर्घो=लम्बो न, ह्रस्वो=वामनो न, वृत्तः=वर्तुल्यकारो न, त्र्यम्बः=त्रिकोणो न, चतुम्बः=चतुष्कोणो न, परिमण्डलः=संस्थानविशेषवान् न, उपलक्षणात् सकलसंस्थानवर्जितः; एतच्च परिमाणमवलम्ब्य प्रोक्तम्, अथ वर्णमाश्रित्य कथयति—‘न कृष्ण’ इत्यादि—कृष्णो न, नीलो न, लोहितः=रक्तो न, वारिद्रिः=पीतो न, शुक्लः=श्वेतो न; गन्धमाश्रित्योच्यते ‘न सुरभी’ त्यादि-

कैसे कर सकते हैं । अव्यावायु सुखरूप मोक्षका अनुभव विना निर्मल जानके नहीं हो सकता । संसारी आत्माओं—मलिन जीवोंके इस निर्मल बोधकी प्रकटता है ही नहीं । इसकी प्रकटता तो उन्हींके होती है जो कर्ममल—कलंकसे निर्मुक्त हो चुके हैं । खेदज्ञ—शब्द बटक खेदका अर्थ यहांपर प्रकरणसे अनुभव रूप ग्रहण किया गया है । उस मुक्ति अवस्थामें रहने वाला आत्मा न दीर्घ—विस्तृत होता है, न लम्बा होता है, न ह्रस्व—छोटा होता है, न गोल होता है, न त्रिकोण होता है—न चतुष्कोण होता है, न परिमण्डल—गोल आकारवाला होता है, उपलक्षणसे और भी जितने आकार होते हैं उन आकारवाला भी नहीं होता है । यह आकार विषयके अभावका कथन परिमाणको ले कर किया है । अथ वर्णको लेकर कथन करते हुए सूत्रकार कहते हैं—कि मुक्तिमें रहा हुआ आत्मा न काला होता है, न नीला होता है, न लाल होता है, न

शुष्कश्च मोक्षनो अनुभव निर्माण जान विना थोता नहीं संसारी आत्माओं—मलिन होनेके आ निर्माण मोक्षनी प्रकटता है नहि आनी प्रकटता तो अपने न थाय है ने कर्ममण्डल कथी निर्मुक्त थाय है भेदन शब्दमा स्थित भेद शब्दने अर्थ अहि प्रकटयुथी अनुभवश्च अडणु डरेल है अथी मुक्ति अवस्थामा रहेवावाणा आत्मा न दीर्घ—विस्तृत होय है, न लम्बा होय है, न नाना होय है, न गोल होय है, न त्रिकोण होय है, न चतुष्कोण होय है, न परिमण्डल अटले गोलआकारवाणा होय है, उपलक्षणयुथी नेटला पणु भीज आकार होय है ते आकारवाणा पणु नथी. आ आकार—विषयना अलावतु कथन परिष्कामने लड डरेल है, हुवे वणु आश्रये सूत्रकार डरे है, के मुक्तिमा रहेल आत्मा न काला होय है, न लाल होय है, न लाल होय है, न पीला होय है, अने न तो अद्रेड होय है, त्यां विशुद्ध आत्मा

सुरमिगन्धः=सुगन्धवान् न, दुरमिगन्धः=दुर्गन्धवान् न; रसमाभित्य कथ्यते 'न तिक्त' इत्यादि-तिक्तः=मरीचादिवत् न, कटुको निम्बादिषु न, कपायः=शीत त्रयादिषु न, आम्लः=अम्लिकावत् न, मधुरो न; स्पर्श निषेधयति-न फर्कत् इत्यादि-कर्कशः=कठिनो न, मृदुः=कोमलो न, लघुर्न गुरुर्न, शीतो न, उष्णो न, स्निग्धः=षिकणो न, रुक्षः=रसरहितोऽपि न, कापोतः=कापोतलेश्यायुक्तो न, मध्यग्रहणादाद्यन्तग्रहणम्, तेन सफलेश्वारहित इत्यर्थ, यद्वा-कायः=कायवान् न, न पीला होता है, और न सफेद ही होता है। यद्वा पर विशुद्ध आत्मा न अच्छी गंधवाला होता है, न दुर्गंधवाला होता है, न मिर्च आदिकी तरह तिक्त रसवाला होता है, निम्ब-नीम आदिकी तरह न कटुक रसवाला होता है, हरद आदिकी तरह न कपाय रसवाला होता है, इमली आदिकी तरह न आम्ल रसवाला होता है और न शबरकी तरह मीठे रसवाला ही होता है। इसी तरह घटां न कठोर स्पर्श होता है, न कोमल स्पर्श होता है, न लघु स्पर्श होता है, न भारी स्पर्श होता है, न शीत स्पर्श होता है, न उष्ण स्पर्श होता है, न स्निग्ध स्पर्श होता है, न षिकना स्पर्श होता है और न रुक्ष स्पर्श होता है। कापोतलेश्या भी यहां नहीं होती है। लेश्याओंमें कापोतलेश्या यह मध्यमें आई है, इस के ग्रहण से आदि और अन्तकी लेश्याओंका भी ग्रहण हो जाता है। इसलिये यह समझना चाहिये कि यहांपर छत्रों लेश्याओंका सङ्काय नहीं हो। यहां औदारिक आदि पांच शरीरोंमें से किसी भी शरीरका सङ्काय न

न सारी सुगन्धवाण होय छे, न दुर्गन्धवाण होय छे, भरथा छत्यादिनी भाक्ष न तीष्ण रसवाण होय छे, बीमअ वि नी भाक्ष न कठय रसवाण होय छे, करके छत्यादिनी भाक्ष न कपायरसवाण होय छे, आमली छत्यादिनी भाक्ष न पीटा रसवाण होय छे अने साकरनी भाक्ष न तो मीठा रसवाण होय छे अथ शीते त्या न कठोर स्पर्श होय छे न कोमल स्पर्श होय छे न लघु स्पर्श होय छे न भारी स्पर्श होय छे न शीतण स्पर्श होय छे, न उष्ण स्पर्श होय छे न स्निग्ध स्पर्श होय छे न षिकणो स्पर्श होय छे अने न तो लघु स्पर्श होय छे कापोतलेश्या पक्ष त्या नभी घटी. देश्याओना कापोतलेश्या मध्यमां आवेत्त होवाधी कोना सकलुधी आदि अने अन्तनी देश्याओनु पक्ष सकलु भाय छे जेथी जे समन्तु जेथीके छे जे स्थणे छत्रे देश्याओना सङ्काय नभी जे औदारिक आदि पाय शरीरमाधी कौथ पक्ष शरीरने सङ्काय न होवाधी तेजो अकाय अने छे कर्मक्षी जीवने सयथा प्रलय अथ

न रुहः, रोहति=पुनः-पुनः प्रादुर्भवतीति रुहः=उत्पत्तिमान् न, कर्मवीजाङ्कुरस्य सर्वथा दग्धत्वात्, अत एव न 'सद्गः'=सद्गोऽस्यास्तीति सद्गः=संयोगवान् न, सर्वसद्गरहित इत्यर्थः । न स्त्री, न पुरुषः, नान्यथा=स्त्रीपुरुषत्वाभावान्नपुंसकोऽपि नेत्यर्थः । निषेधवाक्यैरत्र वाङ्मनसयोरगोचरतया केनापि रूपेण वक्तुमशक्य इति प्रतिपादितम् ।

होने से वे अकाय होते हैं । कर्मरूपा वीजके सर्वथा प्रक्षय हो जानेसे वे फिर मुक्तिसे इस संसारमें पीछे लौट कर नहीं आते हैं । जब उन्हें पुनः संसार दशा ही नहीं होती है तो इससे यह भी स्पष्ट सिद्ध है कि वे किसी भी प्रकारके संयोगसे लिप्त भी नहीं होते हैं । उस अवस्थामें समस्त संयोगका उनके अभाव रहना है । उनके न स्त्रीलिङ्गका, न पुरुषलिङ्गका, और न स्त्री पुरुषके अभावस्वरूप नपुंसक लिङ्गका ही सद्भाव होता है, वे अलिङ्ग होते हैं । यहां पर रूपादिक पौद्गलिक धर्मोंके निषेधसे यह बात जानी जाती है कि वे किस रूपमें हैं यह हम छद्मस्थ न वचन से कह सकते हैं और न मनसे ही विचार सकते हैं । उनका स्वरूप छद्मस्थ जीवोंके मन और वचनके अगोचर है । जब यह बात है तो हम किसी भी स्वरूपसे उन्हें नहीं कह सकते हैं । वाणी और मन ये दोनों ही वस्तुएँ पौद्गलिक हैं, पौद्गलिकोंसे अपौद्गलिकका न पूर्णरूपसे वर्णन ही हो सकता है और न स्पष्टरूपसे विचार ही हो सकता है । शुद्ध स्वरूपको

जवाही ते भुक्तिथी आ ससारमा इरी पाछा आवता नथी न्यारे तेओने इरी ससारदशा नथी थती तो ओथी ओ स्पष्ट छे के ओओ डोछ पणु प्रकारना सयोगथी द्विस थता नथी ते अवस्थामा समस्त सयोगनो वियोग रहे छे. तेने न स्त्रीलिंगनो, न पुरुषलिंगनो अने न स्त्री पुरुषनाअलाव स्वइप नपुंसक लिंगनो सहलाव अने छे तेओ अलिंग होय छे आ स्थणे इपादिक पौद्गलिक धर्मोना निषेधथी ओ वात जणुय छे के तेओ कया इपमा छे ते, अमे छद्मस्थ छीओ माटे वचनथी न कही शकीओ अने न तो मनथी विचारी शकीओ. ओनां स्वइप छद्मस्थ लोवोना मन अने वचनथी अगोचर छे न्यारे आ वात छे तो अमे डोछ पणु स्वइपथी ओने ओणभी शकता नथी वाणी अने मन अने वस्तुओ पौद्गलिक छे, पौद्गलिकोथी अपौद्गलिकोतु पूर्ण इपथी वरुण थछ शकतुं नथी अने न तो स्पष्टइपथी विचार पणु थछ शके छे. शुद्ध स्वइपने जणुवा माटे शुद्ध अनुभव ज काम आपे छे ओटवे जेतु वाणीथी वरुण अने

किन्तु परिहृतः=सकलात्मप्रदेशी सकलवस्तुतत्त्वस्य ज्ञाता, एवं 'सङ्ग' सं-  
सम्यग् ज्ञानाति=पश्यतीति संज्ञः=अनन्तज्ञान-दर्शनादिसमन्वित इत्यर्थे, तत्त्वस्व-  
रूपमयाऽपि ज्ञातुमश्वनयमित्याह—'उपमे'त्यादि—उपमानम्=उपमा=सादृश्यं न तत्र

जाननेके लिये शुद्ध अनुभव ही काम देता है। अतः जिसका घाणीसे  
वर्णन और मनसे विश्वार तक भी नहीं हो सकता है उसका कथन भी  
कैसे किया जा सकता है यह स्वयं एक अनुभवगम्य बात है।

ये सिद्ध भगवान् केवलज्ञानके आधारक (ढक्कन) ज्ञानावरणीय  
कर्मके सर्वथा विनाश हो जानेसे विशुद्ध समस्त आत्मप्रदेशों के द्वारा  
सकल वस्तुतत्त्वके ज्ञाता हैं, इससे उनका ज्ञान अनन्त है यह बात स्पष्ट  
हो जाती है। क्यों कि अनन्त पदार्थोंको विषय करनेवाला ज्ञान अनन्त  
रूपेण विना नहीं रह सकता, तथा अनन्तज्ञानके रूपेण विना उन अनन्त  
पदार्थोंका इस्तामलकवत् साक्षात्कार भी नहीं हो सकता। ज्ञानके पहिछे  
दर्शन होता है, विना दर्शनके ज्ञानका सद्भाव नहीं माना गया है, इस  
लिये जब उनके ज्ञानमें अनन्तता है तो इससे यह भी युक्तियुक्त है कि  
उनका दर्शन भी अनन्त है। इसी बातका बोधन "संज्ञ" इस पदसे  
सूत्रकारने किया है।

शङ्क—जिस प्रकार सासारिक पदार्थोंका वर्णन किसी पदार्थकी  
उपमा देकर करनेमें आता है, उसी प्रकारसे सिद्धोंका वर्णन भी आप  
इमें उपमा दे कर समझा दीजिये ?

भनधी विचार पक्ष यतो नहीं जेनु कथन पक्ष केम करी शक्य, आ स्वयं जेके  
अनुभवगम्य बात छे।

आ सिद्ध भजवान् केवलज्ञानना ईकियुक्त सान्नापरस्थीय कर्मनि सदा विनाश  
व्याधी विशुद्ध समस्त आत्मप्रदेशी द्वारा सकल वस्तुतत्त्वना ज्ञाता छे, आधी तेनु  
ज्ञान अनन्त छे, आ बात स्पष्ट छे केमके अनन्त पदार्थनि विषय कस्वाभावा  
ज्ञान अनन्त वथा वजर रहैतु नहीं, अने अनन्त ज्ञान वथा विना जे अनन्त पदा-  
र्थनि इस्तामलकवत् साक्षात्कार पक्ष यथ शक्यो नहीं. ज्ञानना पहिछा दर्शन वथ  
छे दर्शन वजर ज्ञाननि सदृशव भानवाभां आवतो नहीं आ भाटे व्यापरे जेना  
ज्ञानभा अनन्तता छे तो आधी जे पक्ष युक्तियुक्त छे के तेनु दर्शन पक्ष अनन्त  
छे आ बातनु बोधन "संज्ञ" आ पदधी सूत्रकार करैल छे।

शङ्क.—जे प्रकार सासारिक पदार्थनि पक्ष न कोरि पदार्थनि उपमा आधीने  
कस्वाभां आवे छे, जेकर प्रकारधी सिद्धोनु पक्ष न पक्ष जेमाने उपमा आधी समझवो।

विद्यते। सिद्धस्वरूपं न केनाप्युपमातुं शक्यते । तस्य कीदृशी सत्तेत्याह—‘ अरूपिणी’—त्यादि—तस्य युक्तात्मनः सत्ता=सद्भावः सा अरूपिणी=केनापि रूपेण वक्तुम-

उत्तर—कहना तो ठीक है, परन्तु उनके आगे यदि हमें कोई उपमा दृष्टिपथ होती तो हम उसके द्वारा उनका वर्णन भी कर देते । परन्तु उनके आगे तो उपमा ही अस्त है, उनकी उपमा उनमें ही है । अतः “ उपमा तत्र न विद्यते ” किसी भी पदार्थकी उपमासे हम उनके स्वरूपका कथन नहीं कर सकते हैं । वे अनुपमेय हैं ।

शङ्का—उनकी सत्ता कैसी है—उनके अस्तित्वका किसी भी रूपसे वर्णन हो सकता है ?

उत्तर —“अरूपिणी सत्ता” उनकी सत्ता अरूपिणी है, अतः उनके अस्तित्वका वर्णन किसी भी रूपसे नहीं हो सकता है । किसी भी रूप से जिसका कथन न हो सके उसका नाम “अरूपिणी ” है । पहिले यह प्रकट ही किया जा चुका है कि सिद्धदशा रूप, रस, गंध और स्पर्शादिसे रहित है । तथा इस्व, दीर्घत्वादिक धर्म उसमें सम्भवित नहीं होते हैं । ये सब पुद्गलके धर्म हैं । पुद्गल ही मूर्त्तिक है, वाक्त्री द्रव्य अमूर्त्तिक हैं । आत्मा भी कर्मबन्धकी दशामें यद्यपि मूर्त्तिक माना गया है, परन्तु अपने निजस्वरूप अथवा सिद्ध अवस्थाकी अपेक्षा से वह अमूर्त्तिक ही

उत्तर —कहेतु तो ठीक छे, परतु ऐनी आगण कदाच अमने कोछ उपमा दृष्टिपथ थात तो अमे ऐतु वर्णन पणु करी हेत, पणु ऐनी आगण तो उपमानो न अलाव छे, ऐमनी उपमा ऐमनामा न छे ऐटवे “ उपमा तत्र न विद्यते ” कोछ पणु पदार्थनी उपमाथी अमे तेमना स्वरूपु कथन करी शकता नथी ऐ उपमाथी पर छे

शङ्का—ऐमनी सत्ता डेवी छे—ऐमना अस्तित्वतु कोछ रूपथी वर्णन थछ शक्रे छे ?

उत्तर—“ अरूपिणी सत्ता ” ऐमनी सत्ता अरूपी छे. ऐमना अस्तित्वतु वर्णन कोछ पणु रूपथी थछ शक्रे नहि कोछ पणु प्रकारे नेतु वर्णन न थछ शक्रे तेतु नाम “ अरूपिणी ” छे पडेल। ऐ कछु छे डे— सिद्ध दशा रूप, रस, गंध अने स्पर्शादिथी रहित छे तथा इस्व, दीर्घत्वादिक धर्म ऐमा सम्भवित थतो नथी आ अथा पुद्गलना धर्म छे. पुद्गल न मूर्त्तिक छे भीन द्रव्य अमूर्त्तिक छे आत्मा पणु कर्मण धनी दशामा मूर्त्तिक मानवामा आवे छे, परतु पोताना निजस्वरूप अथवा सिद्ध अवस्थानी अपेक्षाथी अमूर्त्तिक न छे ऐटवे अमूर्त्तिक आत्मतु इस्वत्व आदि



शक्या, तत्र दीर्घत्वादि सकलविपयाप्रतिपादनात्; अपि च—अपदस्य—न विद्यते पद स्थानमवस्थानविशेषो यस्य सोऽपदस्तस्य, पदं—पद्यते—पुच्यते यनार्थस्तत्पदं—वदाचक शब्द, तस्मात्ति। यः कश्चिदभिधातुं योग्यो भवति स सर्व एव शब्दादिविपयामिधानेन वक्तुं शक्यो, न चार्थं तथेति तात्पर्यम् ॥ सू० ६ ॥

है। अतः अमूर्त्तिक आत्माका ह्रस्वत्वादि रूप न होनेसे उनके द्वारा उस के अस्तित्वका वर्णन हो भी कैसे सकता है? अथवा “अस्पिणी” इस शब्दके द्वारा मुक्त आत्माकी सत्ता रूपरहित ही वर्णित हुई है, तो भी तद्विनाभावी रस, गंध और स्पर्शका भी रूपके निषेध से निषेध हुआ ही समझना चाहिये।

“अपदस्य पदं नास्ति” जिसका कोई पद—स्थान अथवा अवस्थान विशेष नहीं है वह अपद है। जिसके द्वारा अर्थका बोध होता है वह पद है। अपदका वाचक कोई पद—शब्द नहीं होता है। जो कहनेके योग्य होता है वही कहा जा सकता है। घटादिक पदार्थ घटादि शब्दद्वारा इस लिये प्रतिपादित होते हैं कि वे उन शब्दोंद्वारा कहे जाने योग्य होते हैं। वाच्यवाचकभावप्रतिपाद्यप्रतिपादक भावसंबंध अपने योग्य पदार्थोंमें ही हुआ करता है, अन्यत्र नहीं। सिद्धदशा अपद है; अतः इसका वर्णन करनेवाला कोई भी पद नहीं है। विशेष-यह मय कथन आत्माके शुद्ध स्वरूपकी दृष्टिसे निश्चयनयके अभिप्रायको लेकर ही किया गया समझना चाहिये। उनका वाचक कोई शब्द नहीं है इत्यादि कथन सर्वथा

रूप न होवाही जेनी भास्कृत जेना अस्तित्वनु वचन पद्य कर्षीते यद्यं शक्यं अथवा “अस्पिणी” आ शब्द द्वारा मुक्त आत्मान्नी सत्ता, इत्यदि कहे वाच्य भावी छे तो पद्य तेनी साथै छे स्वेनार रस, गंध जने स्पर्शने पद्य इत्यन्त निषेधधी निषेध यथे छे समज्जेवे जेछंजे.

अपदस्य पदं नास्ति जेनु कोर्ष पद—स्थान अथवा अवस्थान विशेष नहीं छे अपद छे जेना द्वारा अर्थने बोध थाय छे जे पद छे अपदने वाचक कोर्ष पद—शब्द नहीं छे कहेवा योज्य होय छे जे कहेवाय छे घटादिक पदार्थ घटादि शब्दधी आ भागे प्रतिपादित होय छे ते जे शब्दो द्वारा कहेवाने योज्य होय छे वाच्यवाचकभाव अथवा प्रतिपाद्यप्रतिपादक भाव संबध पोताना योज्य पदार्थीमा छे होय छे अन्वयमां नति. सिद्ध दशा अपद छे, आधी जेनु वचन इत्यन्त कोर्ष पद नथे. विशेष—आ अद्यु आत्माना विशुद्ध इपनी दृष्टिमी निश्चय नयने अभिप्राय वर्धने कहेवायु छे जेभ समज्जु जेछंजे जेने वाचक कोर्ष शब्द नहीं

तदेव प्रकटयन्नुपसंहरति—‘से न’ इत्यादि—

चद्वा—‘न दीर्घ’ इत्यादिना शब्दादिविशेषो निराकृतः पुनस्तत्सामान्य-  
निराकरणाय—‘से न’ इत्यादि।

मूलम्—से न सद्दे न रूवे न गंधे न रसे न फासे इच्छेव  
त्तिवेमि ॥ सू० ७ ॥

छाया—स न शब्दो न रूपं न गन्धो न रसो न स्पर्श इत्येवमिति ब्रवीमि ॥ मृ० ७ ॥

टीका—‘स न’ इत्यादि—स मुक्तात्मा न शब्दस्वरूपः, न रूपात्मकः, न

एकान्त रूपसे नहीं समझना चाहिये । अन्यथा वे सर्वथा अवक्तव्य होने  
से अवक्तव्य इस शब्दके द्वारा भी नहीं कहे जा सकेंगे, तथा रूप रस  
गन्धादिका निषेध भी वहां नहीं हो सकेगा । तथा इनके अभावात्मक-  
“रूपादि रहित है ” इत्याकारक-बोधके वे ग्राह्य भी नहीं होंगे । इस  
लिये यह सब कथन सिद्ध स्वरूपकी पूर्ण दशाका वाचक कोई शब्द  
नहीं है इनमें ही में चरितार्थ समझना चाहिये ॥ सू० ६ ॥

इसी पूर्वोक्त विषयको पुनः प्रकट करते हुए सूत्रकार उसका “से न”  
इत्यादि सूत्रद्वारा उपसंहार करते हैं, अथवा—“न दीर्घः” इत्यादि पदों  
द्वारा उस अवस्थामें दीर्घत्वादि-विशेष-धर्मवाचक विशेष शब्दोंकी  
विषयताका ही निषेध किया गया है, सामान्य रूपसे शब्दात्मकतादिका  
निषेध नहीं किया है; सो “से न” इत्यादि सूत्रद्वारा सामान्यरूपसे  
शब्दात्मकतादिका वहां निषेध करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

वह मुक्त आत्मा न शब्दस्वरूप है, न रूपस्वरूप है, न गंधस्वरूप

आ कथन कोष्ठ अेकान्त इपथी समञ्जु न लेध अे, अन्यथा अे सर्वथा अवक्तव्य  
होवाधी अवक्तव्य आ शब्दथी पणु कडी शकय नडि, तेम इप, रस, ग ध धत्यादिनो  
निषेध पणु त्या थध शके नडि तथा अेना अभावात्मक—“ इत्यादि रहित छे ” अेवा  
भोधथी पणु अे ग्राह्य नडि थाय आ माटे सिद्धस्वरूपनी पूर्णु दशाने वाचक कोध  
शब्द नथी—अेटलामा न आ अधा कथन चरितार्थ सार्थक समञ्जु लेधअे (सू० ६)

अे पूर्वोक्त विषयने पुन. प्रकट करता सूत्रकार अेना “ से न ” धत्यादि सूत्र  
द्वारा उपसंहार करे छे अथवा—“ न दीर्घः ” धत्यादि पदोधी अे अवस्थामा दीर्घ-  
त्वादि-विशेष-धर्मवाचक विशेषशब्दोनी विषयतानो न निषेध करवामा आव्यो छे  
सामान्यइपथी शब्दात्मकता आदिनो निषेध नथी कर्यो, माटे “से न” धत्यादि सूत्रथी  
सामान्य इपथी शब्दात्मकता आदिनो त्या निषेध करता सूत्रकार कडे छे—

अे मुक्त आत्मा न शब्दस्वरूप छे, न तो इपस्वरूप छे, न गंधस्वरूप

गंधात्मक , न रसस्वरूप , न स्पर्शस्वरूप , इत्यत्र पूर्वोक्तस्वरूपेण स न शब्दादि सामान्यरूपो नापि तद्विधेयम् , शब्दादिप्रवृत्तिनिमित्ताभावादेव केनापि प्रकारेण यत्तुं न शक्य इति भावः । 'इति प्रवीमि' स्वस्वार्थस्तु प्रथमा चयनोक्तरीत्याऽप्यगन्तव्य ॥ सु० ७ ॥

अध्ययनविषयोपगहारः—

अस्मिन्नप्ययन च भोगविषयासक्त्यै प्रजसो मुनि,  
 द्विमादिन्यत्रको निवृत्तविषयासक्तो मुनि सम्मत ।  
 निर्विभ्रोऽप्यपरिग्रहा मुनिरमात्रवाचिनो दुष्कृत-  
 मात्राया इदसन्निभाश्च परमस्यागम्य सवर्णित ॥ १ ॥

॥ इति श्री-विश्वविद्यालय-जगद्गुरु-ममिदवाचक-पद्मदत्तमापात्रविजयप्रति-  
 फलापात्रापर-प्रविशुद्ध्ययनार्थेऽग्रन्यनिर्मापक-यादिमानमर्दक-ग्राह-  
 उभयपति-शब्दापुरराजमदक-" जैननागानार्थ " -पद्मभूषित-  
 शब्दापुरराजगुरु-शालग्रामधारि-जैनानार्थ-जैनधर्मविचारर  
 पूज्य-भीष्मासीनाम्-प्रतिरिचितायाम् आचाराद्भूषण-  
 स्यात्-चारिन्नामगिरीकायां श्रीमारागर्ष्य पञ्चम-  
 मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

हे, न रसस्वरूप है आर न स्पर्शाग्यरूप है । इस प्रकार यह न शब्द सामान्यस्वरूप है आर न रूप, रस आर गंध आदि सामान्य स्वरूप है । जहां सामान्य धर्मका ही अभाव है वहां तद्विधेय इत्येव आदि विधेय-त्वा विषयवत्ता तथा नील शक्य आदि विधेयस्वत्वा वैसे आ शक्य ही अभाव नहीं आ शक्य । इसलिये सामान्य और विधेय रूपसे यह आदि की प्रवृत्ति निमित्ताभावादेव अभाव जानस ही यह भूतशब्दा विधी श्री प्रशास्त्र कायन यजनमें नहीं आती है । "इति प्रवीमि" इन पदवाक्य अथ शक्य अध्ययनम उक्त रीतिव अनुसार जान केना शाब्दियोगः ७।

१. न. २. ३. ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. १३. १४. १५. १६. १७. १८. १९. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०. ३१. ३२. ३३. ३४. ३५. ३६. ३७. ३८. ३९. ४०. ४१. ४२. ४३. ४४. ४५. ४६. ४७. ४८. ४९. ५०. ५१. ५२. ५३. ५४. ५५. ५६. ५७. ५८. ५९. ६०. ६१. ६२. ६३. ६४. ६५. ६६. ६७. ६८. ६९. ७०. ७१. ७२. ७३. ७४. ७५. ७६. ७७. ७८. ७९. ८०. ८१. ८२. ८३. ८४. ८५. ८६. ८७. ८८. ८९. ९०. ९१. ९२. ९३. ९४. ९५. ९६. ९७. ९८. ९९. १००.

इस अध्ययनका उपसंहार पद्यसे करते हैं—‘अस्मिन्नध्ययने’ इत्यादि।

(१) पहले उद्देशमें—प्राणियोंकी हिंसा करनेवाला, विषयोंके लिये सावध क्रियाओंमें प्रवृत्ति करनेवाला मुनि नहीं है। तथा विषयोंके लिये ही विचरण करनेवाला और उनमें लवलीन चित्त बना हुआ भी मुनि धर्मसे रहित है। (२) द्वितीय उद्देशमें—हिंसादि पापस्थानोंसे निवृत्त ही मुनि होता है। (३) तृतीय उद्देशमें—जो परिग्रहसे विरत है और काम-भोगोंसे रहित है वही विरक्त मुनि है। (४) चतुर्थ उद्देशमें—अगीतार्थ मुनिको एकाकी होकर विहार नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस प्रकारके विहारमें उसे अनेक विघ्नवाधाएँ आती हैं। (५) पंचम उद्देशमें—मुनिको ब्रह्मके समान होना चाहिये। मन, वचन और कायगुप्तिसे युक्त होना चाहिये। स्त्री आदिके संगसे रहित होना चाहिये। सम्यग्दर्शन और चारित्रके धारक होना चाहिये—संगयादिक दोषवर्जित होना चाहिये। (६) छठे उद्देशमें—उन्मार्गमें जानेका और राग एवं द्वेषका साधुको त्याग कर देना चाहिये।

यह आचाराङ्गसूत्रके लोकसार नामके पांचवें अध्ययनकी आचार-चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

आ अध्ययनना उपसंहार पद्यथी करवाया आवे छे “अस्मिन्नध्ययने” इत्यादि

(१) पहिला उद्देशमा—प्राणियोंकी हिंसा करवावाणा अने विषयाने भाटे सावध क्रियाओंमा प्रवृत्ति करवावाणाने मुनि न करवावाय तेमळ विषयाने भाटेळ विचरण करवावाणा अने अने लवलीन चित्त थयेला पणु मुनि धर्मथी रहित छे (२) भीळ उद्देशमा—हिंसादि पापस्थानांथी निवृत्त ळ मुनि होय छे (३) त्रीळ उद्देशमा—जे परिग्रहथी विरत छे अने कामलोगाथी रहित छे अने विरक्त मुनि छे (४) चौथा उद्देशमां—अगीतार्थ मुनिअे अकाकी थध विहार करवाे न लेधअे, केम के आ प्रकारना विहारथी अने अनेक विघ्नो आवे छे. (५) पाचमा उद्देशमा—मुनिअे ब्रह्म (सरोवर)नी समान थवु लेधअे. मन, वचन अने कायाथी विरक्त बनवु लेधअे. स्त्री आदिना संगथी दूर रहवुं लेधअे, सम्यग्दर्शन जान अने चारित्रना धारक बनवु लेधअे. सशय आदि दोषोथी रहित थवु लेधअे (६) छठ्ठा उद्देशमा—उन्मार्गमन, राग अने द्वेषना त्याग करी देवो लेधअे

आ आचारांगसूत्रना लोकसार नामना पांचमा अध्ययननी आचार-चिन्तामणि-टीकानो गुजराती अनुवाद सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

## ॥ अथ षष्ठाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः॥

उक्तं षष्ठाध्ययनं, तत्र लोकाक्षाररूपसंयमस्य मोक्षस्य च स्वरूपं निगदितं, तयोः प्राप्तिर्हि मातापित्रादिसंगपरित्यागेन कर्मधूनेन च विना न भवतीत्युभयं बोधयितुमिदं घृताख्यानमध्ययनं प्रोच्यते—

धूयते—अपनीयत इति घृतं—मातापित्रादिसंगः अष्टविधं कर्म च । तद् घृतं नार्हत्या प्रतिपाद्यते यत्राध्ययने तदपि घृतं निगद्यते ।

### छद्वा अध्ययनका प्रथम उद्देश ।

पाँचवां अध्ययन कहा जा चुका है । उसके अन्दर लोकमें सारभूत संयम और मोक्षका स्वरूप कहा गया है । संयम और मुक्तिकी प्राप्ति माता पिता आदि स्वजनोके साथ ममत्वका त्याग और कर्मोका विनाश किये विना नहीं होती है, इस कारण इन दोनों विषयोको समझानेके लिये इस घृताख्यान का प्रारंभ किया जाता है ।

मुमुक्षुजनों द्वारा जो दूर-परिवर्जित किया जाय वह घृत है । वह घृत माता पिता आदिका संग और अष्टविधकर्मस्वरूप है । क्यों कि मुमुक्षुओं द्वारा इनका ही परित्याग किया जाता है । इस अध्ययनमें इन दोनों विषयोको घृत्न-परित्यागके योग्य प्रतिपादित किया गया है । इसलिये इस अध्ययनका नाम भी “घृत” हो गया है ।

### छठा अध्ययनका प्रथम उद्देश

पाँचवां अध्ययन छडेवाँ अथो छे, जे अध्ययनमा लोकमा सारभूत संयम अने मोक्षनु स्वरूप छडेवांमा आवेस छे संयम अने मुक्तिनी प्राप्ति, माता पिता आदि स्वजनोना ममत्वनो त्याग, कर्मोना विनाश कर्ना वजर धरं शकतो नथी. आ कस्ये आ जन्ने विषयो समझववा भाटे आ घृताख्यान अध्ययननो प्रारंभ कस्वामा आवे छे

मुमुक्षुजनों द्वारा जे दूर-परिवर्जित कस्वामा आवे ते घृत छे. जे घृत माता पिता इत्यादिनो संग अने अष्टविधकर्मस्वरूप छे, केम के मुमुक्षुओ द्वारा जेनो परित्याग कस्वामा आवे छे आ अध्ययनमा आ जन्ने विषयोने घृत्न-परित्यागने योअ प्रतिपादित कस्वामा आवेस छे आ भाटे आ अध्ययननु नाम पख ‘घृत’ धरं गयु छे

ધૂતં દ્વિવિધં દ્રવ્યભાવભેદાત્ । તત્ર દ્રવ્યધૂતં વસ્ત્રપાત્રાદિ, ભાવધૂતમષ્ટવિધં કર્મ । ઉક્તશ્ચ—

“ જહ મલમલિણં વત્થં, સ્વારદવ્વેણ નિમ્મલં ભવઙ્ ।

તહ સંજમેણ તવસા, કમ્મમલં ભવઙ્ ભાવધુયં ” ॥ ૧ ॥

છાયા—યથા મલમલિણં વસ્ત્ર, ક્ષારદ્રવ્યેણ નિર્મલં ભવતિ ।

તથા સંજમેન તપસા, કર્મમલં ભવતિ ભાવધૂતમ્ ॥ ૧ ॥

અત્ર ભાવધૂનનાધિકારઃ । અસ્મિન્નધ્યયને પશ્ચોદ્દેશાઃ સન્તિ, તત્ર પ્રથમોદ્દેશે સ્વજનસંજ્ઞસ્ય, દ્વિતીયે કર્મણાં, તૃતીયે—ઉપકરણશરીરમમત્વસ્ય, ચતુર્થે ગૌરવત્રયસ્ય, પશ્ચમે ચોપસર્ગમાનાપમાનાનાં વિધૂનનં પ્રતિપાદયિષ્યતે । તત્ર સ્વજનસંજ્ઞપરિત્યાગ-

ધૂત, દ્રવ્ય ઓર ભાવકે ભેદસે દો પ્રકારકા હૈ । વસ્ત્ર ઓર પાત્રાદિક દ્રવ્ય ધૂત હૈ । અષ્ટવિધકર્મ ભાવ ધૂત હૈ । કહા મી હૈ—

‘ જહ મલમલિણં વત્થં ’ ઇત્યાદિ—

જૈસે મલસે મલિન હુઆ વસ્ત્ર, ક્ષાર દ્રવ્ય—સોડા સાતુન આદિસે સાફ કિયા જાતા હૈ ઉસી પ્રકાર ભાવસ્વરૂપ કર્મરૂપી મૈલ મી આત્માસે સંયમ ઓર તપદ્વારા ધોયા—સાફ કિયા જાતા હૈ ।

યહાં પર ભાવધૂતકા અધિકાર હૈ । ઇસકે ૫ ઉદ્દેશ હૈ—૧ પ્રથમ ઉદ્દેશ મૈ સ્વજનકે સંગકા, દ્વિતીય ઉદ્દેશમૈ કર્મોંકા, તૃતીય ઉદ્દેશમૈ ઉપકરણ ઓર શરીરકે મમત્વકા, ચતુર્થ ઉદ્દેશમૈ ત્રીન ગૌરવોંકા, ઓર પંચમ ઉદ્દેશમૈ ઉપસર્ગોં એવ માન ઓર અપમાનકા ધૂનન પ્રતિપાદિત કિયા હૈ । ઇનમૈ સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર સ્વજનોંકે સાથ સંગકે પરિત્યાગકા બોધક પ્રથમ

ધૂત દ્રવ્ય અને ભાવના લેદથી એ પ્રકારનુ છે. વસ્ત્ર અને પાત્રાદિક દ્રવ્ય-ધૂત છે, અષ્ટવિધ કર્મ ભાવધૂત છે કહું પણ છે—“ જહ મલમલિણં વત્થં ” ઇત્યાદિ.

જેમ મળથી ગદુ બનેલ વસ્ત્ર ક્ષારદ્રવ્ય—સોડા સાબુ વગેરેથી સાફ કરવામાં આવે છે એ જ રીતે ભાવસ્વરૂપ કર્મરૂપી મેલને પણ આત્માથી સંયમ અને તપ દ્વારા ધોવા—સાફ કરવામાં આવે છે

અહીં ભાવધૂતનો અધિકાર છે આના પાંચ ઉદ્દેશ છે પ્રથમ ઉદ્દેશમાં સ્વજનના સંગનુ, બીજા ઉદ્દેશમાં કર્મોંનુ, ત્રીજા ઉદ્દેશમાં ઉપકરણ અને શરીરના મમત્વનુ, ચોથા ઉદ્દેશમાં ત્રણ ગૌરવનુ, અને પાંચમા ઉદ્દેશમાં ઉપસર્ગોં અને માન તથા અપમાનનુ ધૂનન પ્રતિપાદન કરેલ છે. આમાં સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર સ્વજનોના સંગનો પરિત્યાગ કરવો જોઈએ આ સમજાવવા માટે પ્રથમ ઉદ્દેશનો પ્રારંભ કરે છે. આમાં સહુ પ્રથમ સૂત્રકાર એ બતાવે છે કે જે પદાર્થ જે સ્વરૂપથી અવસ્થિત

बोधकं प्रथमोद्देशं प्रारभ्यते । तत्रादौ यथाऽवस्थितसकलपदार्थतत्त्वज्ञानं नरा एषानुपमं धर्ममुपदेष्टुमर्हन्तीति बोधयितुमाह—‘ओषुज्जमाणे’ इत्यादि ।

मूलम्—ओषुज्जमाणे इह माणवेषु अक्खाति से णरो जस्सि माओ जातीओ सव्वओ सुपडिलेहियाओ भवति, अक्खाह से णाणमणेलिस ॥ सू० १ ॥

आया—अबपुण्यमानः इह मानवेषु आस्पाति स नरः । यस्येमा आतयः सर्वतः सुप्रतिष्ठेस्तिवा भवन्ति, आस्पाति स ज्ञानमनीदृश्यम् ॥ सू० १ ॥

टीका—इह=अस्मिन् लोके मानवेषु=मनुष्येषु य अबपुण्यमानः=निरावरण ज्ञानसन्नावादात्मनः संसारस्य च यपार्यस्वरूपं सम्यग्ज्ञानं अस्ति, स नरः=अघातिकर्मवत्पुण्यसद्भावाद् मनुष्यदेहावस्थितः सन् अनीदृश्यम्=अनुपमम्-प्रशस्त्य-तमं-सम्यगिति यावत्, ज्ञानम्=भुतचारिप्रधर्मम्, अत्र ज्ञानमित्यनेन ज्ञानं ज्ञान-कार्यं च उपलक्ष्यते; आस्पाति=मनुष्येभ्यो क्वीत्यर्थः। तीर्थङ्करा एव सर्वज्ञाः भवन्ति, अतस्तदुक्तः भुतचारिप्रधर्म एव सम्यगिति भावः । यत्तु कुख्यादयोऽपि

उद्देशका प्रारंभ करते हैं । उनमें सबसे पहिले सूत्रकार यह बतलाते हैं कि जो पदार्थ जिस स्वरूपसे अवस्थित हैं उन सकल पदार्थों को उसी स्वरूपसे जाननेवाले मनुष्य ही अनुपम धर्मके कथन करनेके योग्य हो सकते हैं । इसी बातको समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“ओषुज्जमाणे” इत्यादि ।

इस चराचर संसारमें जिन मनुष्योंको निरावरणज्ञानकी प्राप्ति हो चुकी है और इसीसे जो आत्मा एवं संसारके वास्तविक स्वरूपके ज्ञाता हुए हैं, वे मनुष्य अघातिया कर्मोंके मन्त्रावसे मनुष्य शरीरमें स्थित हो कर ही सम्यक् ज्ञान और उपलक्षणसे उनके कार्यस्वरूप अनुपम सच्चे भुतचारिप्रधर्मके उपदेष्टा अन्य संसारी जीवोंके लिये होते हैं ।

उ ते सकल पदार्थानि ते स्वरूपधीं ब्रह्मवाणां मनुष्यं च अनुपमं धर्मं नु-  
कथनं करन्वा योश्च एनी शकं ते आ वात समभाववा भाटे सूत्रकार कहे थे—  
“ओषुज्जमाणे” इत्यादि।

आ चराचर संसारमें जे मनुष्याने निरावरण ज्ञानकी प्राप्ति कर्ष चुकी  
उ अने जेनाधी जे आत्मा तथा संसारना वास्तविक स्वरूपना ब्रह्मकार जनेक  
उ ते मनुष्य अघातिया कर्मोंना सूत्रकारधी मनुष्यशरीरमा स्थित भवा छत्ता  
सम्यक्ज्ञान अने उपलक्षणधी जेना कार्यस्वरूप अनुपम-आत्मा भुतचारिप्रधर्म  
धर्मोंना उपदेशक अन्य संसारी जेना भाटे वाच्य थे तीर्थङ्करना सिवाय धर्मोंना

धर्मं वदन्तीति शाक्याः, यच्चवैशेषिका उलूकभावेन पदार्थानामाविर्भावानं मन्यन्ते, तन्न समीचीनम्, धर्मनिरूपणं मनुष्यमन्तरेण न संभवति, सोऽपि यदि घातिकर्म-क्षये सति निरावरणज्ञानाऽऽविर्भावेन सर्वज्ञतामुपलभेत । एवंभूतः सर्वज्ञः स्वयं कृतार्थोऽपि प्राणिनां हिताय द्वादशविधपर्पदि धर्मं निरूपयतीत्युपपद्यते । कथं नु नाम तीर्थङ्करके सिवाय धर्मका उपदेश अन्य छद्मस्थजन नहीं कर सकते हैं क्यों कि वे आत्मा और संसारके स्वरूपके वास्तविक ज्ञाना नहीं होते हैं।

भावार्थ—तीर्थङ्कर ही धर्मोपदेशक होते हैं, क्यों कि वे सर्वज्ञ हैं। अतः तीर्थङ्करप्रणीत श्रुतचारित्ररूप धर्म ही सच्चा है; अन्य छद्मस्थजन प्रणीत नहीं ! शाक्य लोग जो यह कहते हैं कि कुड्यादिक धर्मका निरूपण करते हैं। तथा अज्ञानी वैशेषिक जो यह कहते हैं कि पदार्थोंका आविर्भावन उलूकभावसे ही होता है, सो उनकी यह मान्यता ठीक नहीं है; क्यों कि धर्मका निरूपण उस मनुष्यके विना संभवित नहीं होता है कि जिसने घातिया कर्मोंके अभावसे केवलज्ञानकी प्राप्ति से सर्वज्ञता प्राप्त न कर ली हो। घातिया कर्मोंके विनाशसे केवलज्ञान की उद्भूति होती है और इसीकी उपलब्धिका नाम सर्वज्ञता है। जो सर्वज्ञ होते हैं वे कृतार्थ होते हैं, उनकी प्रत्येक इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं, संसारमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं होता है जिसकी उन्हें चाहना हो। कृतकृत्य होने पर भी वे भव्य जीवोंके पुण्यके उदय एवं योगोंके सद्भाव

उपदेश भीज छद्मस्थजन करी शकता नहीं, केम के अये आत्मा तथा संसारना स्वरूपना वास्तविक ज्ञानकार नहीं होता।

भावार्थ—तीर्थंकर न धर्मोपदेशक होय छे, केम के अये सर्वज्ञ छे अटले तीर्थंकर प्रणीत श्रुत-चारित्ररूप धर्म न साये छे, भीज छद्मस्थजन प्रणीत नडि। शाक्यलोकां के अये कडे छे के कुड्यादिक धर्मनु निरूपणु करे छे तथा अज्ञानी वैशेषिक के अये कडे छे के पदार्थाना आविर्भावन उलूकभावथी न थाय छे अयेमनी आ मान्यता अरोअर नहीं, केम के धर्मनु निरूपणु अयेवा मनुष्यना वगर संभवित अनंतुं नहीं के अये घातिया कर्मोना अभावथी केवलज्ञाननी प्राप्तिथी सर्वज्ञता प्राप्त करी न होय घातिया कर्मोना विनाशथी केवलज्ञाननी उद्भूति थाय छे अने अनी उपलब्धिनुं नाम सर्वज्ञता छे के सर्वज्ञ अने छे ते कृतार्थ होय छे अयेमनी प्रत्येक इच्छायां नष्ट थछ गछ होय छे संसारना कोछ पणु अयेवा पदार्थ नहीं होपातो अनी अयेमने आडना होय कृतकृत्य होवा छता पणु तेओ लव्य अवेने पुण्यना उदय अने योगोना सद्भावथी



વહસ્વરૂપઃ કુહ્યાદિઃ જ્ઞાનાવરખીયાઘટવિકર્મપાશબદસ્તિર્યક્ પ્રાણી વ સર્વજ્ઞીત  
રાગસમકક્ષતા પ્રાપ્તમર્હતિ, યોગ્યધર્મનિરૂપણં કર્તુમમથતિ ? ।

નનુ કિં તીર્થક્ષર એવ ધર્મમારૂપાતિ ? કિમુતાન્યોઽપિ ? ઇતિ શિષ્યચિન્તાસા  
યામાદ—'યસ્યેમા' ઇત્યાદિ । યસ્ય=કેવલિનિ' ધ્રુતકેવલિનિશ્ચરમા' પ્રત્યક્ષમૂતા  
જાતય એકેન્દ્રિયાવિજ્ઞાતય સર્વતઃ=સર્વપ્રકારેઃ સૂક્ષ્મવાદરપર્યાપ્તાપર્યાપ્તરૂપેઃ સુપ  
તિલેખિતાઃ=અજ્ઞાનસંશયવિપર્યાસનિરાકરણેન પર્યર્થતો જ્ઞાતા મવન્તિ, સ નર

સે સમઘસરણ મેં પ્રાણિયોકો હિતાવહ ઉપદેશ વેતે હે—ધર્મકી પ્રરૂપણા  
કરતે હે । જય ધર્મકી પ્રરૂપણા કરના સર્વજ્ઞકે આધીન હૈ તય યદ કૌન  
સચેતન પ્રાણી માન સકતા હૈ કિ જદ્ સ્વભાવ-અચેતન કુહ્યાદિક  
(નિસ્તિ આદિ) તથા ઘટવિષય કર્મરૂપી પાશસે જક્ષ્મા છુઆ તિર્યક્  
પ્રાણી સર્વજ્ઞકી સમકક્ષતાકો પાનેકે લાયક હો સકતા હૈ ? અર્થાત્-  
ઉસસે યોગ્ય ધર્મકી પ્રરૂપણા હો સકતી હૈ ? યા વહ યોગ્ય ધર્મકી પ્રરૂપણા  
કરનેકે લિપે શક્તિશાલી હો સકતા હૈ ? કદાપિ નહીં ।

તીર્થક્ષર પ્રમુ હી ધર્મકી વેશના વેતે હે યા ઝૌર મી કોઈ વેતા હૈ ?  
ઇસ પ્રકાર શિષ્યકી શક્તકે નિવારણાર્ય "યસ્યેમાઃ" ઇત્યાદિ સૂત્રાંશકી  
પ્રરૂપણા કરતે હુપ સૂત્રકાર કહતે હે કિ કેવલી ઝૌર ધ્રુતકેવલી મી  
ધર્મકી પ્રરૂપણા કરતે હે । ક્યૌં કિ ઉનકે નિર્દોષ-સશય, વિપર્યય ઝૌર  
અનપ્યવસાપરહિત જ્ઞાનસે વે પ્રત્યક્ષમૂત એકેન્દ્રિયાદિક જાતિયાં સૂક્ષ્મ,  
વાદર, પર્યાપ્ત ઝૌર અપર્યાપ્તરૂપસે મલીખાંતિ જાને હુપ હોતે હે ।

સમવસરુખા પ્રાણીએને હિતાવહ ઉપદેશ જાપે છે-ધર્મની પ્રરૂપણા કરે છે.  
જ્યારે ધર્મની પ્રરૂપણા કરવી સવ જને આધીન છે ત્યારે જ્યેવો કયો સચેતન  
પ્રાણી માની શકે છે કે જહસ્વભાવ અચેતન કુહ્યાદિક (બીજા આદિ) તથા  
અવિષયકમરૂપી પાશથી જહલાયેલા તિષય પ્રાણી સવ જની સમકક્ષતાને મેળ  
વવા લાયક બની શકે છે ? અર્થાત્-જ્યેનાથી એવ ધર્મની પ્રરૂપણા યદ શકે છે ?  
અથવા તે એવ ધર્મની પ્રરૂપણા કરવા માટે શક્તિશાળી બની શકે છે ?  
કદાપિ નહિ (કોઈ કાલે નહિ)

તીર્થક્ષર પ્રમુ જ ધર્મની વેશના જાપે છે-અથવા બીજા પવુ કાઈ જાપે  
છે ? જા પ્રકારની શિષ્યની શક્તા નિવારણાર્ય "યસ્યેમા" ઇત્યાદિ સૂત્રાંશની  
પ્રરૂપણા કરવા સૂત્રકાર કહે છે કે કેવલી અને ધ્રુતકેવલી પવુ ધર્મની પ્રરૂપણા  
કરે છે, કેમ કે નિર્દોષ-સશય, વિપર્યય અને અનપ્યવસાય શક્તિ જ્ઞાનથી એ  
પ્રત્યક્ષમૂત એકેન્દ્રિયાદિક બતીએને સૂક્ષ્મ વાદર, પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તરૂપથી  
જ્ઞાતી રીતે જાણવા હોય છે.

केवली श्रुतकेवली च अनीदृशम्=अनुपमं-सम्यक् प्रशस्तं, ज्ञानं=श्रुतचारित्र्यम् आख्याति । तीर्थङ्करादन्यश्चतुर्दशपूर्वधरोऽपि सर्वोत्तमं धर्ममुपदिशतीत्यर्थः । सू० १ ॥

स तीर्थङ्करः कथंभूतान् मनुष्यानुपदिशतीति जिज्ञासायामाह-‘से किट्टइ’ इत्यादि ।

मूलम्—से किट्टइ तेसिं समुट्टियाणं निक्खित्तदंडाणं समाहियाणं पन्नाणमंताणं इह मुत्तिमग्गं, एवमवि एगे महावीरा विप्परिक्कमंति, पासह एगे विसायमाणे अणत्तपन्ने ॥ सू० २ ॥

छाया—स कीर्तयति तेषां समुत्थितानां निक्षिप्तदण्डानां समाहितानां प्रज्ञानवताम् इह मुक्तिमार्गम्, एवमपि एके महावीरा विपराक्रमन्ते, पश्यत एकान् विषीदतः अन्यत्रप्रज्ञान् ॥ सू० २ ॥

टीका—स तीर्थङ्करगणधरादिः, इह=अस्मिन् मनुष्यलोके समुत्थितानां-धर्माचरणार्थमुद्यतानां, निक्षिप्तदण्डानां=प्राणिर्हिसानिवृत्तानां, समाहितानाम्=अनन्य-

भावार्थ—यह पहिले जो कहा है कि तीर्थङ्कर प्रभु धर्मका उपदेश देते हैं? या कोई अन्य भी?; सो इस शिष्यकी आशङ्काका यह उत्तर है। इसमें यह बतलाया गया है कि तीर्थङ्करके अतिरिक्त केवली और श्रुतकेवली—चतुर्दश पूर्वधर भी सर्वोत्तम इस श्रुतचारित्र्यरूप धर्मका भव्य जीवोंको उपदेश देते हैं ॥ सू० १ ॥

वे तीर्थङ्कर किस प्रकारके मनुष्योंको धर्मका उपदेश देते हैं—इस प्रकारकी जिज्ञासाके होने पर सूत्रकार कहते हैं—“से किट्टइ” इत्यादि।

वे तीर्थङ्कर भगवान् अथवा गणधरादि इस मनुष्य लोकमें ऐसे जीवोंको सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्यरूप मुक्तिके मार्ग (धर्म)का उपदेश देते हैं जो धर्मके आचरण करनेके लिये उद्यत हैं,

भावार्थ—आ पडेला ने कहु छे के तीर्थंकर प्रभु धर्मनो उपदेश आपे छे? अथवा बीज पणु?, आ पूर्वोक्त शिष्यनी आश कानो आ उत्तर छे, आमा जे भतावायु छे के तीर्थंकर सिवाय डेवली अने श्रुतकेवली—चतुर्दशपूर्वधर पणु स पूर्ण रीते श्रुतचारित्र्य धर्मनो लव्य लवोने उपदेश आपे छे

जे—तीर्थंकर मनुष्योने क्या प्रकारना धर्मनो उपदेश आपे छे, आ प्रका रनी लज्ञासा होवाथी सूत्रकार कहे छे—“से किट्टइ” इत्यादि

जे तीर्थंकर भगवान् अथवा गणधरादिक देव आ मनुष्य लोकमा जेवा लवोने सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान अने सम्यक् चारित्र्य मुक्तिमार्ग (धर्म) नो उपदेश आपे छे जे धर्मनु आचरण करवा मात्रे बिब्य

મનસાં પ્રજ્ઞાનવતાં=હેયોપાદેયબુદ્ધિમતાં મનુષ્યાણાં મુક્તિમાર્ગે=સમ્યક્વર્ણનજ્ઞાનવા  
 રિપ્રરૂપ કીર્તયતિ=કથયતિ । एवं મગધતા ગમ્ધરાદિના વા મોક્ષમાર્ગે પ્રતિષેધિતે  
 સતિ એકે કેચિદ્ મહાવીરાઃ કર્મરિપૂન્ વિનાશયિતુ સયમરણાક્રમે વિપરાક્રમન્તે=  
 વિશેષેનાસ્મન શક્તિ પ્રકટીકૃન્વન્તિ । एकान्=કાંચિત્ મોહવિવશાન્ કાતરણ  
 અન્યપ્રમદાન્=મગધદેશનેતરવિષયસરુન્નોપયોગાન્ અતપ્સ-ચિપીદત્=મિયવિયોગા-  
 પ્રિયસંયોગેષ્વિતાનવાસ્તિમશ્વતિમિ પીરૂપમાનાન્ પશ્યત, યદ્વા-‘અણત્તપન્ને’ ઇત્યસ્ય  
 -‘અનાત્મપ્રજ્ઞાન્’ ઇતિચ્છાયા । આત્મને દિતા મદ્વા-આત્મપ્રજ્ઞા અચિદમાનાઽઽસ્મ-  
 પ્રજ્ઞા ચપાં તે અનાત્મપ્રજ્ઞા, તાન્ વિપીદત્ =સંયમારાધને ક્લયીમવત્-સયમં  
 પ્રાણિયોંકી ઠિંસાકા ઝિન્હોંને પરિત્યાગ કર દિયા હૈ, અપને ધર્મકર્મકે  
 ધાષરણમેં હી ઝિનકા મન તહ્લીન રહતા હૈ, ઓર જો હેય ઓર ઉપા-  
 દેયકી બુદ્ધિસે સમન્વિત હૈ । इस प्रकार भगवान् वा गणधरादिकोंके  
 द्वारा मुक्तिका मार्ग समझाये जाने पर भी कोई एक मनुष्य कर्मरूपी  
 शत्रुओंको परास्त करनेके लिये संयमरूपी युद्धांगणमें विशेषरूपसे अपनी  
 शक्ति प्रगट करने हूँ, कोई एक मोहसे कातर पने हुए अन्यत्र-स्त्री पुत्र  
 आदि सासारिक पर पदार्थोंमें-जो भगवान्की देशनासे पाद्य-मिष्ट  
 विषय हूँ उनमें-कैसे रहते हूँ और निरन्तर इष्ट-प्रिय-विशेष और  
 अनिष्ट-संयोग तथा अभिलषितकी अप्राप्ति आदिसे पीड़ित होते देखे  
 जाते हूँ । “ अणत्तपन्ने ” इसकी संस्कृत छाया “ अनात्मप्रज्ञान् ” भी  
 है । इसका अर्थ होता है, कि जो आत्मप्रज्ञावाले नहीं हैं-अर्थात्  
 आत्माकी हितकारक बुद्धिसे जो शून्य हैं, अतपस संयमके पालनके लिये

ઓની હિંસાને નેમણે પરિત્યાગ કરેલ છે, પોતાના ધર્મકર્મના આચરણમાં  
 જેનું મન તસ્લીન રહે છે, અને જે હેય અને ઉપારેવની બુદ્ધિથી સમન્વિત (મુક્ત)  
 છે આ પ્રકારે મગધના અથવા ગમ્ધરાદિકોદ્વારા મુક્તિને માર્ગ સમજાવવામાં  
 આવ્યા છતાં પણ કોઈ એક મનુષ્ય કર્મરૂપી શત્રુઓને પરાસ્ત કરવામાં સયમરૂપી  
 યુદ્ધશૂનિમાં વિશેષરૂપથી પોતાની શક્તિ પ્રગટ કરે છે કોઈ એક મોહવશમાં  
 બધાઈને સ્ત્રી પુત્ર આદિ સાંસારિક પદાર્થો કે જે ભગવાનની દેશનાથી  
 બાહ્ય-મિષ્ટ વિષય છે એમાં ફસાઈ રહે છે અને નિરન્તર ઇષ્ટ-પ્રિય-વિશેષ  
 તથા અનિષ્ટ સંયોગ અને અભિલષિત અપ્રાપ્તિરૂપ પીડાઓથી પીડિત થતા રેખાય  
 છે ‘અણત્તપન્ન ઓની સંસ્કૃત છાયા ‘અનાત્મપ્રજ્ઞાન્ પણ છે અને અર્થ  
 એ થાય છે કે ? આત્મપ્રજ્ઞાવાળા નથી, અર્થાત્ આત્માની હિતકારક બુદ્ધિથી  
 જે શૂન્ય છે, અતપસ સયમના પાળવામાં જે શિથિલ છે-એ તરફ જેની પ્રવૃત્તિ

पालयितुमप्रवृत्तान् पश्यत=अवलोकयतेत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

किञ्च—‘ से वेमि ’ इत्यादि ।

मूलम्—से वेमि, से जहानामए कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते पच्छन्नपलासे उम्मग्गं से नो लहइ ॥ सू० ३ ॥

छाया—स ब्रवीमि, तद्यथानामकः कूर्मो हृदे विनिविष्टचित्तः पलाशप्रच्छन्नः उन्मार्गं स न लभते ॥ सू० ३ ॥

टीका—सः=भगवन्मुखादवगततत्त्वः अहं ब्रवीमि=अनात्मप्रज्ञस्य दृष्टान्तं कथयामि । तद्यथा नामकः—कश्चित् कूर्मः=कच्छपः, हृदे=जलाशये विनिविष्टचित्तः=समासक्तमनाः, अपि च पलाशप्रच्छन्नः=जलशैवालमलिनीपत्रैराच्छादितः । मूत्रे तु प्राकृतत्वात् प्रच्छन्नशब्दस्य व्यत्ययेन पूर्वनिपातः । उन्मार्गम्—ऊर्ध्वमार्गं—जलाद्-वहिर्देशं न लभते, तथा सः=अनात्मप्रज्ञः उन्मार्गम्=ऊर्ध्वमार्गं—मोक्षमार्गं न लभत इत्यर्थः । यथा जलाशयसमासक्तत्वाज्जलशैवालकमलिनीपत्राच्छादितत्वाच्च कच्छपो हृद एव तिष्ठति न जलाद्बहिर्देशं प्राप्नोति, तथाऽनात्मप्रज्ञः संसारमहाहृदे

जो शिथिल है—उस तरफ जिनकी प्रवृत्ति नहीं है, ऐसे देखे जाते हैं ॥ सू० २ ॥

तथा—“ से वेमि ” इत्यादि ।

सूत्रकार कहते हैं कि मैं अनात्मप्रज्ञका दृष्टान्त कहता हूँ । जिस प्रकार महाहृद ( ब्रह्म ) आदि जलाशयमें रहता हुआ कच्छप उसमें रहे हुए जल शैवाल और कमलपत्रोंसे ढका रहने पर जलसे बाहर होकर-तट नहीं पाता है, उसी प्रकार जो अनात्मप्रज्ञ है वह भी जब तक संसार से बाहर नहीं होता तब तक मुक्तिके मार्गको प्राप्त नहीं करता है ।

भावार्थ—जैसे जलाशयमें रहा हुआ कच्छप कि जिसकी भावना उससे बाहर निकलनेकी नहीं है, प्रत्युत उसीमें रहनेके लिये जिसका

नथी, એવા દેખાય છે ( सू० २ )

तथा—“ से वेमि ” इत्यादि ।

सूत्रकार कहे છે કે હું અનાત્મપ્રજ્ઞનું દષ્ટાંત કહું છું જે રીતે મહાહૃદ ( બ્રહ્મ ) આદિ જળાશયમાં રહેનાર કાચબો તેમા રહેલા જળ, સેવાળ અને કમળપત્રોથી ઢાકેલ રહેવાથી બહાર નીકળી કિનારો મેળવી શકતો નથી એ જ પ્રકારે જે અનાત્મપ્રજ્ઞ છે એ પણ બધા સુધી સંસારથી બહાર નથી થતો ત્યાં સુધી મુક્તિના માર્ગને મેળવી શકતો નથી

ભાવાર્થ—જેવી રીતે જળાશયમાં રહેલો કાચબો કે જેની ભાવના બહાર નીકળવાની નથી પણ તેમા રહેવાને માટે જેનું મન આસક્ત છે અને તેમા

विषयनिविष्टचित्तत्वात् कर्मपटलाच्छादितत्वाच्च तत्रैव निमज्जन् अवतिष्ठते, न तु मोक्षमार्गं प्राप्नोतीति भावः ।

यद्वा—उन्मागम्—कर्णमाग विवररूपं न समते । अयं भावः—कश्चिन्महाप्रदः शैवालच्छादितो विविधबलधराभय आसीत् । तत्रैकदा तच्छटस्यजम्बूवृक्षस्य सुपर्वं फलमेकं शैवालोपरि निपपात, येन शैवालमध्ये कच्छपग्रीवामाप्रप्रमाण विवरं समा-  
प्तम् । अथ निजयूयपरिभ्रष्टः कश्चित् कच्छपो भ्राम्यन् शैवालमध्यगते विवरे स्व

चित्त आसक्त है और जो उसमें रहनेसे ही जल, शैवाल, कमलिनीके पत्रोंसे लिपटा रहता है, कभी भी वह द्रव (द्रव)से बाहर नहीं होता, प्रत्युत उसीमें मग्न रहता है, उसी प्रकार जो अनात्मप्रज्ञ हैं वे संसार रूपी महाप्रदमें विषयोंमें आसक्त तथा कर्मपटलसे आवृत होनेके कारण डूबते उतराते रहते हैं और सृष्टिके मार्गसे सदा धंषित बने रहते हैं ।

अथवा—उन्मार्गं शब्दका अर्थ विवर ( छिद्र ) रूप कर्णमार्ग है । महाप्रदके कच्छपकी, तरह अनात्मप्रज्ञ जीव इस मागको नहीं पाते हैं । जैसे कोई एक महाप्रद था । उसमें बहुत ज्यादा शैवाल—काई छाई हुई थी । उसमें अनेक जलजन्तु रहते थे । उसके तट पर एक जामुनका वृक्ष भी था, जो पके हुए फलोंसे छ्वालव भरा हुआ था । उसमेंसे एक जामुन टूट कर उस महाप्रदकी शैवाल पर जा गिरा । उसके गिरनेसे उस शैवालपटलमें कच्छपकी गरदन प्रमाण जितना एक छिद्र हो गया । इसके कुछ समय बाद अपने समुदाय—साधियोंसे वियुक्त हुआ कोई

रहेवाधी ने जग, सेवाग, कर्मणपत्रोधी लपटाई रहे थे, कचारय ते जगाराधी लदार नहीं नीकणता, पक्ष तेभांज भज रहे थे जे व रीते जे अनात्मप्रज्ञ थे, ते ससापत्रधी महाप्रदमां विषयोमां आसक्त तथा कर्मधी यशसेल डोवाने कश्ये दुपतो—अवशातो रहे थे अने सुकितना मार्गधी सहा वचित बने थे

अथवा—उन्मार्गं शब्दको अर्थ विवर ( छिद्र ) रूप कर्णमार्ग है । महा-  
प्रदना अत्यन्तानी माइक अनात्मप्रज्ञ लव जे मार्गने भिगवी शकता नहीं जेभ  
होई जेक मैदु जगाराधी हतु जेभां प्रयो व सेवाग—कीवड अमेक हतो जेभां  
अनेक जग—व तुषो रहेवां हतां जेना किनारे जेक जालुनु लड हतु ने  
पाडेवा इयोधी लक्षु पक्षु हतु तेभांही जेक जालु जगाराधी सेवाग उपर  
जई पक्षु जेना पक्षवाधी अमेक सेवागभां कायबानी शक जावी शके जेनु  
छिद्र पक्षु जाना मोक्ष समय जाइ पिताना साथी समुदायधी छुटो पडेक  
जेक कायबो त्यां जावी रहेवांथो, तेखे ते सेवागना छिद्रनी लडर पेतानी जेक

कीयग्रीवां प्रवेश्योर्ध्वप्रदेशे चक्षुःप्रचारं चक्रे । ततोऽसौ शरच्चन्द्रिकया शुक्लीकृते  
 बहुतरतारकासमलंकृते गगनतले विद्योतमानं पूर्णचन्द्रमलोकयत् । तदवलोक-  
 नेन चातीव प्रमुदितस्य तस्य मनसि विचारः समुदपद्यत, यदि मदीयवान्धवा एतत्  
 स्वर्गसदृशमदृष्टपूर्वं पश्यन्ति ततः शोभनं भवेदित्येतदवधार्य बन्धूनामन्वेषणार्थमितथे-  
 तश्च वभ्राम । संप्राप्य च निजान् परिवारान् पुनरपि तद् विवरं मार्गयितुं सर्वतः  
 पर्यटति स्म । जलाशयस्य तस्य विस्तीर्णतया तदुदकप्राचुर्याच्च पुनरसौ तद् विवरं  
 न लेभे । तद्वत् संसारहृदे जीवकच्छपः कर्मशैवालविवरादिह मनुष्यार्थक्षेत्रसुकु-

एक कछुवा घूमता २ वहां पर आ निकला। उसने उस शैवालके विवरमें  
 अपनी ग्रीवाको निकाल कर ऊपरको देखना प्रारंभ किया तो क्या  
 देखता है कि शरदकालीन चन्द्रिका-ज्योत्स्नासे शुभ्र एवं अनेक तारोंसे  
 प्रकाशित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमण्डल चमक रहा है । उसे देखकर वह  
 चित्तमें अत्यन्त प्रसन्न हुआ और विचारने लगा-कि अहा! यह कितना  
 सुरम्य दृश्य है । यदि मेरे समस्त बन्धुजन इस अदृष्ट पूर्व स्वर्ग जैसे  
 सुन्दर प्रदेशको देखे तो बहुत अच्छा हो । ऐसा निश्चय कर वह अपने  
 बन्धुओंकी खोजमें वहांसे निकला और इधर उधर घूम २ कर उनकी  
 तपास करने लगा । जब वे सब उसे मिल गये तो वह उन्हें साथ ले  
 कर उस विवरकी ओर चला, परन्तु वह जलाशय अधिक विस्तृत  
 और अधिक पानीसे पूर्ण भरा हुआ था, इसलिये उसे वह विवर फिर  
 न मिल सका । इसी प्रकार यह अनात्मप्रज्ञ जीवरूपी कछुआ भी इस  
 संसाररूप हृदमें पडा हुआ है और कर्मरूपी शैवालके विवरसे

काठी उपर लेवा माड्यु. तो शुभ्रये छे के शरदःकृतुनो चन्द्रनी ज्योत्स्नाथी  
 शुभ्र अने अनेक ताराओथी प्रकाशित आकाश के लेभा पूर्ण चन्द्रमंडल चमकी  
 रह्यु छे ते लेठ मनमा अत्यंत पुरी उपलु अने विचारवा लाग्ये के अडा ।  
 केटलु सुरम्य दृश्य छे ले भारा समस्त बंधुजन आ अदृष्टपूर्व स्वर्ग लेवा  
 सुंदर प्रदेशने लुये तो धल्लु साइं थाय जेवा निश्चय करी ते पोताना समु-  
 दायनी शोधमा नीकल्यो अने आडो अपणो इरी जेनी तपास करवा माड्यो.  
 न्यारे अधा तेने मणी गया त्यारे ते जे अधाने साथमा लठ छिद्रनी  
 तरक आल्यो, परंतु जलाशय पूब भोटु छंतु अने जगथी पूरेपूरे लरेल छंतु  
 आथी जेने जे छिद्र इरी मणी शक्यु नई। आ ज रीते अनात्मप्रज्ञ लवइपी  
 कायणो पणु संसारइपी हृदमा पडेल छे. अने कर्मइपी सेवाणना विवरथी

लोत्पत्तिसम्यक्त्वपर्यन्तरूपं व्योमत्तलं प्राप्य माह्वशात् स्वजनचिन्तया भोगचिन्तया वा तत् परावृत्तं सन् पुनः ससारमहाद्द एव पर्यटति न तु मोक्षमार्गं छन्दते । तस्माद् भवन्तसहस्रदुर्लभं कर्मविचरभूतं सम्यक्त्वं लब्ध्वा नैव तत्र प्रमादः कार्य इति ॥ सू० ३ ॥

अनात्मप्रज्ञानामन्यमपि दृष्टान्तमाह—‘भजगा’ इत्यादि ।

मूळम्—भजगा इव सनिवेस णो चयति, एव एगे अपेग  
रूवेहिं कुलेहिं जाया, रूवेहिं सत्ता कल्लण थणति, णिदाणतो  
ते ण लभसि मोक्ख ॥ सू० ४ ॥

छाया—मज्झका इव सभिवेसं नो त्यजन्ति, एवमकण्ठनेकरूपपु जाताः, रूपेण सक्ताः कर्णं स्तनन्ति, निदानवस्ते न समत मोक्षम् ॥ सू० ४ ॥

मनुष्यपर्याय, आर्यक्षेत्र, सुकुलमें जन्म और सम्यक्त्वका लाभरूप व्योमतल ( आकाश ) की प्राप्ति कर मोक्षके घशसे अपने सगे सम्बन्धियों की एवं भोगोंकी चिन्तामें फँस कर उन सब प्राप्त हुए शुभ अवसरोंको व्यर्थ गया देता है, और संसाररूपी महाद्दमें ही परिभ्रमण करता रहता है । वहाँसे वह अपने उद्धारके मार्गकी ओर नहीं बढ़ता है—मोक्षके मार्गको नहीं पाना है । इसलिये सूत्रकार शिक्षा देते हैं कि—हे शिष्यजन ! सम्यक्त्वको कि जिसकी प्राप्ति इस जीवको हजारों भवोंमें भी दुर्लभ है और जो कर्मोंका विचरभूत है, उसे प्राप्त कर फिर उसकी रक्षा करने में प्रमाद करना उचित नहीं है ॥ सू० ३ ॥

अनात्मप्रज्ञाके ऊपर और भी दृष्टान्त सूत्रकार प्रकट करते हैं—  
‘भजगा इव’ इत्यादि—

मनुष्यपर्याय, आर्यक्षेत्र सुकुलमा जन्म अने सम्बन्धित्वना लाभरूप व्योमतल ( आकाश ) की प्राप्ति करी मोक्षना वश यथं पीताना सगा—सम्बन्धीयोंनी अने श्रेणियोंनी चिन्तामा र्ध अने प्राप्त यथेहा वथा सुखवसरने व्यर्थ शुभापी दे छे अने संसाररूपी महाद्दममा व परिभ्रमण करता रहे छे ज्येभांभी जे पीताना उद्धारना मात्रनी तरु वधी शकते नथी, मोक्षना मार्गने भ्रमणी शकते नथी भाए सूत्रकार शि ॥ ३ छे के छे शिष्यजन ! सम्यक्त्व के लेनी प्राप्ति वलथे अवभा पण आ एवने दुर्लभ छे अने जे कभना विवस्नुत छे, जेने प्राप्त करी लेनी वशा करवाभा प्रमाद करवे उचित नथी । ( सू० ३ )

अनात्मप्रज्ञा अजे पीणु दृष्टान्तसूत्रकार प्रकट करे छे— मज्झका इव इत्यादि

टीका=इच्च=यथा भक्षकाः=वृक्षाः सन्निवेशं=स्वकीयं स्थानं न त्यजन्ति=कर्म-  
परतन्त्रतया स्थावरत्वमासाद्य नापसरन्ति। एवम्=अनेन प्रकारेण एके=अनात्मप्रज्ञाः,  
अनेकरूपेषु=उच्चावचेषु कुलेषु=उग्रभोगादिषु श्वपाकादिषु च जाताः, रूपेषु=रूपादि-  
विषयेषु सक्ताः=गृद्धिमापन्नाः करुणं=सदुःखं स्तनन्ति=विलपन्ति, तथाहि-  
“ किमिदमचिन्तितमसदृशमनिष्टमतिकष्टमनुपमं दुःखम् । सहसैत्रोपनतं मे, नैरयि-  
कस्येव सचस्य ” ॥ १ ॥ इति ।

जैसे वृक्ष स्थावरनामकर्मके उदयकी परतन्त्रतासे स्थावरपर्यायकी प्राप्तिसे अपने स्थानको नहीं छोड़ते हैं इसी प्रकार जो अनात्मप्रज्ञ जीव हैं वे भी उग्रभोगादि उच्च एवं चण्डाल आदि नीच कुलोंमें उत्पन्न होकर रूपादिक पंच इन्द्रियोंके विषयोंमें अत्यन्त गृद्ध हो बुरी तरह चिल्लाते हैं—कहते हैं कि जिस प्रकार नारकी अचिन्तित असदृश अनुपम अनिष्ट और अतिकष्टप्रद दुःखोंको सहसा भोगते रहते हैं उसी प्रकार मेरी भी यही हालत है । इस प्रकारके ये दुःख मेरे ऊपर कहांसे आ कर दूट पड़े ।

दुःखोंको भोगते हुए भी वे अनात्मप्रज्ञ जीव इनके मूलकारण कर्मोंसे वियुक्त नहीं होते हैं। यदि ऐसा ही होता कि जिन कर्मोंके उदय में जिनका फल भोग लिया जाय ऐसे कर्म यदि नष्ट हो जाते या उनसे उनका छुटकारा हो जाता तो यह बात मानी जा सकती थी कि उन

जैसे वृक्ष स्थावरनामकर्मना उदयनी परतन्त्रताथी स्थावरपर्याय के जेमा जेक स्थणथी जीव स्थणमा अवर अवरनी क्रिया थती नथी अथवा ते पोते न्या छे ते स्थणथी इरवामां पोतानु स्थान छोडी शकतु नथी. आ प्रकारे जे अनात्मप्रज्ञ एव छे जे पणु उग्रभोगादि उया अने चण्डाल आदि नीच कुणोमा उत्पन्न थईने इपादिष्ठ पाय इन्द्रियोना विषयोमा अत्यत सुगंध जनी पशय रीते दुपतो रहे छे. कडे छे के जे प्रकारे नारकी अचिन्तित असदृश अनुपम अनिष्ट अतिकष्टप्रद दुःखोने लोगव्या करे छे. जे अ रीते मारी पणु जे अ हालत छे, आ प्रकारना जे दुःख मारा उपर कथानी आवीतुटी पख्यां

दुःखोने लोगवता पणु जे अनात्मप्रज्ञ एव जेना भूणकारणु कर्मोथी छुटतो नथी कदाय जेवु छोट के जे कर्मोना उदयमां जेनु इण लोगवी लेवामा आवे जेवा कर्म कदाय नाश पावे अथवा जेनाथी तेना छुटकारे थई नय तो जे बात मानी शकत के जे कर्मोथी तेनी मुक्ति थई थकी. परंतु जेवु



किन्तु ते=अनात्मप्रज्ञा' निदानतः=दुःखस्य मूलकारणतः-कर्मत इत्यर्थाः,  
 मोक्षम्=वियोगं न लभते, तपःसंयमानासेष्वनेन कर्मसंभाषणं न प्राप्नुवन्तीत्यर्थः।  
 अयं भावः-यथा वृक्षा शीतघातातपच्छेदनमदनशास्त्राकर्षणमोटनमञ्जनादि  
 नानाविधोपद्रवाम् सहमाना अपि स्थावरनामकर्मोदयात्स्वस्थानतो विद्युक्ता न  
 न भवन्ति, तथा-अनात्मप्रज्ञास्तनयवनिवाभिस्तिरस्कृता अपि विविधाभिध्याधिप  
 रिप्स्ता अपि, राजपुरुषतस्करादिभिः सर्वस्वापहरणपुरस्सरं छण्डिता अपि,  
 मातापितृपुत्रकन्यादिभिर्विद्युक्ता अपि, 'मधुविन्दु' न्यायेनाल्पसुखदुरन्तदुःखपरि  
 पूरितगृहस्यभावमपरित्यजन्तः सकल्पं विलपन्ति, किन्तु सकल्पदुःखानुपपन्ननिब  
 न्धनकर्मबन्धतो विद्युक्ता नैव भवन्तीति ॥ सू० ४ ॥

कर्मोंसे उसकी मुक्ति हो चुकी, परन्तु ऐसा तो होता नहीं है; क्यों कि  
 फल भोगनेसे कर्मोंका सर्षथा घिनाश नहीं होता है, प्रत्युत तप और संयम  
 की आराधनासे ही जीव कर्मोंसे छुटकारा-मुक्ति पाता है। अनात्मप्रज्ञ  
 मुक्तिके कारणोंसे परे रहते हैं। मोक्षके साधनोंका सेवन-आचरण नहीं  
 करते, अतः कर्मबन्धसे रहित भी नहीं हो सकते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार वृक्ष, शीत, वायु, भूष, छेदन, मेदन, शास्त्रा  
 का खेचना, उसका मोड़ना और काटना आदि अनेक प्रकारके उपद्रवों  
 को सहते रहते हैं, तो भी स्थावरनामकर्मके उद्वयसे वे अपने गृहीत स्थान  
 से जुदा नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार अनात्मप्रज्ञ जीव भी पुत्र-स्त्री  
 आदिकोंसे तिरस्कृत होते हुए भी अनेक प्रकारकी आभिध्यायियोंको  
 झेलते हुए भी राजपुरुष एवं चौर आदिके द्वारा सर्वस्वहरणपूर्वक छूटे  
 गये होने पर भी, और तो क्या; माता, पिता, पुत्र और स्त्री आदिकोंसे

तो जनतु नहीं, इम के हृज भोजववाधी कर्मोनि सुवधा सिनाश घतो नहीं,  
 तप अने संयमनी आसधनाधी व एव कर्मोधी मुक्ति भोगवे छ अनात्मप्रज्ञ  
 मुक्तिना कारणधी इर रहे छ मोक्षना साधनोनु सेवन-आचरण करवा नहीं  
 भाटे कर्मोधी रहित पवु घवा नहीं।

भावार्थ—ये प्रकार वृक्ष शीत, वायु, भूष, छेदन, मेदन, शास्त्रोने जेवतु  
 के तेने तोड़धी, भरठवी आदि प्रकारना उपद्रवोने सध्या करे छ, तो पवु स्थावर  
 नामकर्मना वृद्धधी पीताना स्थान उपरधी ढगी शकतु नहीं। आ व शीते  
 अनात्मप्रज्ञ एव पवु पुत्र-स्त्री धियादिधी तिरस्कृत घतो होना छवा, अनेक  
 प्रकारनी आभि-ध्यायिओमां पीयातो, राजपुत्र अने चौर वजेरधी संवस्व  
 गुणध कवा छवा पवु, माता, पिता, पुत्र अने स्त्री धियादिधी अत्रव

अनात्मप्रज्ञानां तेषु तेषु कुलेषु जन्म कस्मै प्रयोजनाय भवती ? ति जिज्ञासायामाह—‘अहे’त्यादि ।

मूलम्—अह पास तेहिं कुलेहिं आयत्ताए जाया ॥सू०५॥

छाया—अथ पश्य तेषु कुलेषु आत्मत्वाय जाताः ॥ सू० ५ ॥

टीका—अथ हे शिष्य ! त्व पश्य, अनात्मप्रज्ञास्तेषु=उच्चावचेषु कुलेषु आत्मत्वाय=आत्मकृतकर्मविपाकानुभवाय जाताः=जन्म प्राप्ताः नानाविधदुर्दशापन्ना भवन्ति, अतः श्रुतचारित्रधर्मारधनमेव श्रेयस्करमिति ॥ सू०५ ॥

वियुक्त होते हुए भी, मधुविन्दुकी प्राप्ति करनेके लिये लोलुपी बने हुए मनुष्यकी तरह, अल्प सुख और दुरन्त दुःखोंसे परिपूर्ण गृहस्थभावको नहीं छोड़ते हैं और दुःखोंसे दुःखित होते रहते हैं, तो भी समस्त दुःखोंकी परम्पराका प्रधान कारण जो कर्मबन्ध है उससे वियुक्त नहीं होते हैं ॥ सू० ४ ॥

अनात्मप्रज्ञोंका उन २ कुलोंमें जन्म किस प्रयोजनके लिये होता है इस प्रकारकी जिज्ञासामें सूत्रकार कहते हैं—“अह पास” इत्यादि ।

सूत्रकार पूर्वोक्त जिज्ञासाका समाधान करने निमित्त शिष्यजनसे कहते हैं कि हे शिष्य ! अनात्मप्रज्ञोंका जो उच्च नीच कुलोंमें जन्म होता है वह उनके द्वारा पूर्वमें किये गये कर्मोंके विपाकके अनुभव करने के लिये होता है । कर्मोंके वे कठिनतर विपाकोंको भोगते हुए अनेक प्रकारकी दुर्दशाओंसे गृहीत होते रहते हैं । इसलिये इन दुःखोंसे छुटकारा पानेका इलाज एक यही है कि श्रुतचारित्ररूप धर्मका आराधन

पडी जवा छता पणु, मधुभिन्दुनी प्राप्ति करवा लोलुप्त भनेला मनुष्यनी माइके, अल्प सुख अने अगणित दुःखोथी परिपूर्ण गृहस्थभावने छोडतो नथी अने दुःखोथी दुःखित थतो रहे छे, तो पणु समस्त दुःखोनी परम्परानु कारणे के कर्मबन्ध छे अनाथी छूटे थछ शकतो नथी, ( सू० ४ )

अनात्मप्रज्ञोने ते ते कुलोमा जन्म ज्या प्रयोजनथी थाय छे ? आ प्रकारनी अज्ञासामा सूत्रकार कडे छे “अह पास” इत्यादि ।

सूत्रकार पूर्वोक्त अज्ञासानु समाधान करवा निमित्ते शिष्यजनथी कडे छे के छे शिष्य । अनात्मप्रज्ञोने के उच्च नीच कुलोमा जन्म थाय छे ते अना द्वारा पूर्वना करेला कर्मोना विपाकना अनुभव करवा माटे थाय छे कर्मोना अे कठिनतर विपाकोने लोगवता अे अनेक प्रकारनी दुर्दशाअेथी घेराए नय छे आ माटे अे दुःखोथी छुटकारा मेणववानो धिलाअे अेक आअे छे के

स्वकृतकर्मोदयात् विविधरोगादिकं प्राप्नुवन्तीत्याह—'गंडी' इत्यादि।

मूष्म-गंडी अहवा कुट्टा, रायसी अवमारिय।

काणिय झिमिय चेव, कुणिय खुजिय तथा ॥ १ ॥

उदरिं च पास मूष च, सूणिय च गिलासिणिं।

वेवय पीठसर्पिं च, सिलिवय मद्दुमेहणिं ॥ २ ॥

सोलस एए रोगा, अक्खाया अणुपुव्वसो।

अह ण फुसति आयका, फासा य असमजसा ॥ ३ ॥

मरण तेसिं सपेहाए, उववायं चवण च नच्चा।

परिपाग च सपेहाए, त सुणेहजहा तथा ॥ ४ ॥ सू० ६ ॥

छाया-गण्डी अयवा कुट्टी, राजांसी अपस्मारिकः।

काष्पस्वं झिमियं चैव, कुणित्वं कुग्गत्थ तथा ॥ १ ॥

उदारिणं च पश्य मूष्कं च, शूनिकं च ग्रासिनम्।

वेपकं पीठसर्पिणं च, श्मीपदिनं मधुमदिनम् ॥ २ ॥

पोढरैते रोगा आख्याता अनुपूर्वतः।

अथ तं स्पृशन्ति आवद्धा, स्पशंभासमजसाः ॥ ३ ॥

मरणं तेषां संश्लेष्य, उपपातं प्यवनं च ज्ञात्वा।

परिपाकं च सप्रेक्ष्य, तच्छणुत यथा तथा ॥ ४ ॥ सू० ६ ॥

टीका-सकलदुःखनिदानस्य कर्मणः सम्राधे कर्मणो वैशिष्ट्यादनेकरूपा भा

किया जाय; कारण कि जगतमें जीयोंका कल्याण करनेवाली यही

एक यस्तु है ॥ सू० ६ ॥

अपने किये हुए कर्मोंके उदयसे जीय अनेक प्रकारके रोगादिकोंको भोगते हैं, इसे प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“गण्डी” इत्यादि।

कर्म मफल दुःखके कारण हैं। इसीलिये उनके विषिय उदयमें जीय अनेक प्रकारकी अयस्याओंका अनुभव करते हैं। इसी विषयको

मुत्थारित्रूप धमनु आराधन इरे; कारण के जगतमा एवेणु इत्याणु इत्याणु आ आरेणु वस्तु छे (सू० ६)

पोताना इरेवा धर्माना उदयधी एव अनेक प्रकारना राजादिकने लाभये छे अने प्रभु इत्या भागे सूत्रकार इरे छे 'गंडी' इत्यादि।

इम भाग इत्याणु कारण छे आ भागे जेना विविध उदयमा एव अने प्रभारती आरथाओंको अनुभव इरे छे आ विषयने पूयोप गथाओंमा सूत्र

स्था अनुभवन्ति प्राणिनः । तद् यथा—कर्मविपाकोदयात् कश्चिद् गण्डी=गण्डमालारोगयुक्तः, अथवा—कश्चित् कुष्ठी=कुष्ठरोगी, तथा—कश्चित्—राजांसी=राजयक्ष्मवान्=क्षयरोगाक्रान्तः, तथा कश्चित् अपस्मारिकः=अपस्माररोगयुक्तः—मृगीरोगी, तथा कस्यचित्—काणत्वम्=अक्षिरोगः, तथा—कस्यचित् झिम्मियं=जड़ता, तथा कस्यचित् कुणित्वं=गर्भाधानदोषात् एकचरणे ह्रस्वता एकपाणौ न्यूनता वा—हीनाङ्गत्वम्, तथा कस्यचित् कुब्जत्वं=मातापितृगोणितशुक्रदोषेण गर्भस्थावस्थाया-मुत्पद्यमानः कुब्जरोगः । तथा—हे शिष्य ! त्वं कंचित्—उदरिणं=उदररोगिणं पश्य । तथा—कंचिन्मूकम्=अव्यक्तवाचं पश्य, तथा—कंचित्—शूनिकं=शोफरोगयुक्तं पश्य, तथा—ग्रासिनं=भस्मकरोगिणं पश्य । तथा—वेपकं=कम्परोगयुक्तं पश्य । तथा—पीठसर्पिणं=पीठसर्परोगिणं—हस्तगृहीतकाष्ठेन संसरणशीलं पद्मगुविशेषं पश्य । तथा—श्लीपदिनं=हस्तिपदरोगयुक्तं पश्य, तथा—मधुमेहिनं=मधुमेहरोगयुक्तं पश्य ।

इन पूर्वोक्त गाथाओंमें सूत्रकारने प्रकट किया है । वे कहते हैं—कोई जाव कर्म के विपाकसे १ गण्डमाला रोगसे पीडित रहता है, कोई २ कुष्ठी होता है, कोई ३ राजयक्ष्मासे—क्षयरोगसे दुःखी होता है, कोई ४ अपस्मार—मृगीरोगसे अक्रान्त रहता है, कोई ५ काणा होता है, किसीमें ६ जड़ता होती है । किसीके ७ कुणित्वा—हीनाङ्गता होती है—गर्भाधानके दोषसे एक पैरमें या एक हाथमें न्यूनताका नाम हीनाङ्गता है । कोई ८ कुवडा होता है । माता पिताके गोणित शुक्र दोषसे गर्भकी अवस्थामें यह रोग उत्पन्न होता है । कोई पेटके ९ रोगी है, कोई १० गुंघे है, किसीके ११ सूजनरोग है, किसीको भस्मक १२ व्याधि है, किसीको १३ कंपरोग है, कोईके १४ पीठसर्पका रोग है, इस रोगके रोगी काष्ठकी चिरैया बनवा कर उनके सहारे से चला करते हैं, ये एक तरहके पंगु कहलाते हैं । किसीके १५ श्लीपद रोग होता है । इस रोगमें रोगीका पैर हाथीके पैर जैसा स्थूल हो

कारे प्रगट करेला छे कोध एव कर्मना विपाकथी गण्डमाला रोगथी पीडित रहे छे । कोध कोठना लोग भने छे, कोध राजयक्ष्मा—क्षयरोगथी दुःखी थाय छे कोध अपस्मार—मृगी रोगथी आकट करे छे, कोध काणा भने छे, कोधमां जड़ता होय छे, कोधना अग उपागोमा आमी होय छे, कोध कुण्ड होय छे, कोध पेटना रोगी होय छे, कोध मुग्घ होय छे, कोधने शोक् ( सोलना ) रोग होय छे, कोधने लस्मक व्याधि होय छे, कोधने कम्परोग होय छे, कोधने पीठसर्पना रोग होय छे, ७ रोगना रोगी लाकडानी घोडीना आधारे यावे छे, ७ अक प्रकारना पागणा डडेवाय छे, कोधने हाथीपगानो रोग थाय छे, कोधने मधु-

एते पौष्टस्य रोगाः अनुपूर्वस्यः=अनुक्रमेण आस्पाता =कथिताः । अय=अनन्तरम्  
 आवृत्ताः=शीघ्रं जीवितहारिण शुभादयो व्यापिषिषेपाः, स्थौल्य गाढप्रहारादि  
 जनिताः दुःखविषेपाः असमञ्जसाः=क्रम-योग्य-निमित्ता-निमित्तोत्पन्नाः स्पृष्ट-

जाता है, किसीके १६ मधुमेह हो जाता है, इस रोगके रोगीकी पेशाब  
 राहद जैसे रंगकी होती है और उसमें कीड़ियां लगने लगती है। ये १६  
 रोग जो यहां यथाक्रमसे बतलाये गये हैं, ये सब अशुभ कर्मोंके उदयके  
 फल विशेष हैं। कर्मोंके उदयमें जीवोंकी और भी क्या २ अवस्थाएँ  
 होती हैं इन्हें “अथ ते स्पृशति” इत्यादि श्लोकसे प्रकट करते हैं। कोई  
 ९ ऐसे भी रोग होते हैं कि जिनमें जीवमका शीघ्र ही अन्त हो जाता  
 है; जैसे उदरशूल वगैरह। गाढ प्रहार आदिसे उत्पन्न हुए दुःखोंका नाम  
 स्पृष्टां है। जिन रोगोंमें निमित्त चाहे क्रमसे मिलें चाहे अक्रम-एकसाथ  
 मिलें, अथवा क्रम और अक्रमसे वे न भी मिलें; ऐसे क्रमिक और अक्र-  
 मिक निमित्त और अनिमित्तोंसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनका नाम  
 असमंजस है। ये भी अशुभोदयसे ही जीवोंके होते हैं।

शङ्क—अशुभोदय ही उन रोगोंकी उत्पत्तिका निमित्त है, फिर  
 अनिमित्तसे भी असमंजस रोगोंकी उत्पत्तिका कथन आपका प्राय  
 कैसे माना जा सकता है ?

उत्तर—यहां पाँच कारणोंकी उपस्थिति और अनुपस्थितिकी अपेक्षा

પ્રમેહ થઈ બધ છે, આ સેળ શેઝ ને યથાક્રમથી જાહી બતાવ્યા છે આ બધા  
 અશુભ કર્મોના ઉદયના રૂણ છે કર્મોના ઉદયમાં જીવોની બીજી પણ શું શું  
 અવસ્થાઓ બને છે એને “અથ તે સ્પૃશતિ” ઇત્યાદિ શ્લોકથી પ્રકટ કરે છે

કોઈ કોઈ બેવે શેઝ હીમ છે કે જેનાથી જીવનનો તરત જ અન્ત આવી  
 બધ છે જેમકે ઉદરશૂળ વગેરે. ગાઢ પ્રહાર આદિથી ઉત્પન્ન થયેલ દુઃખોના  
 નામ સ્પૃષ્ટાં છે જે શેવોમાં નિમિત્ત બાદે ક્રમથી મળે અથવા અક્રમથી. જે  
 ન પણ મળે એના ક્રમિક અને અક્રમિક નિમિત્ત અને અનિમિત્તથી જે રોગ  
 ઉત્પન્ન થાય છે તેનું નામ અસમજસ છે આ પણ અશુભ ઉદયથી જ  
 જીવોને થાય છે

શ.ક.—અશુભોદય જ તે શેવોની ઉત્પત્તિ નિમિત્ત છે. પછી અનિમિત્તથી  
 પણ અસમજસ શેવોની ઉત્પત્તિ આપણ કથન બાદ કેમ માનવામાં આવે ?

ઉત્તર—અહીં બાહ્ય કારણોની ઉપસ્થિતિ અને અનુપસ્થિતિની અપેક્ષાથી

ન્તિ, તેપાં=ગૃહાઽઽસક્તમનસામસમઙ્ગસરોગૈઃ કલેશિતાનાં મરણં સંપ્રેક્ષ્ય=પર્યાલોચ્ય  
 ઉપપાતં ચ્યવનં ચ દેવાનાં જ્ઞાત્વા, તથા પરિપાકં=મિથ્યાત્વાવિરત્યાદિજનિતાનામ-  
 વાધોત્તરકાલમુદયાવલિકાપ્રવિષ્ટાનાં કર્મણાં શારીરમાનસદુઃસ્વરૂપં ફલં સંપ્રેક્ષ્ય=  
 વિચાર્ય સકલદુઃસ્વમૂલં કર્મ સમુચ્છેતું તપઃ સંયમે પ્રયતિતત્તવ્યમિત્યર્થઃ । મોઃશિષ્યાઃ!  
 તત્=કર્મણાં ફલં યથા ભવતિ તથા મયા વક્ષ્યમાણં શ્રુણુત ॥ સૂ. ૬ ॥

સંસારિણો વિવિધં કર્મવિપાકમનુભવન્તીતિ દર્શયિતુમાહ-‘સંતિ પાળા’ ઇત્યાદિ।

સે હી નિમિત્તકા કથન સમઙ્ગના ચાહિયે । કર્મોંકા ઉદય આમ્યન્તર  
 નિમિત્ત હૈ ઓર યહ નિમિત્ત તો પ્રત્યેક રોગોંમેં સાધારણ કારણ પડના  
 હી હૈ । ઊન અસમંજસ રોગોંસે ગૃહસ્થાશ્રમમેં મગ્ન હુએ જીવોં-ગૃહસ્થોંકા  
 મરણ દેખ કર તથા દેવોંકા મી ઉપપાત-જન્મ ઓર ચ્યવન-મરણ જાન  
 કર, એવં મિથ્યાત્વ, અવિરતિ આદિ કારણકલાપસે ઉત્પન્ન-બન્ધદશાકો  
 પ્રાપ્ત ઓર અવાધા કાલકો છોડકર ઉદયાવલિમેં પ્રવિષ્ટ એસે કર્મોંકા  
 શારીરિક એવં માનસિક દુઃસ્વરૂપ ફલ અચ્છી તરહ વિચાર કર સકલ  
 દુઃસ્વોંકે મૂલ કારણ ઇન કર્મોંકો નાશ કરનેકે લિયે તપ ઓર સંયમમેં  
 પ્રયત્ન કરના ચાહિયે । શિષ્યોંકો સંવોધન કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈં  
 કિ હે શિષ્યજન ! ઇન કર્મોંકા ફલ જિસ પ્રકાર હોતા હૈં ઊસ પ્રકાર મેં  
 ઓર કહતા હૂં, સો તુમ સુનો ॥ સૂ. ૬ ॥

સંસારી જન કર્મોંકે વિપાકકો ભોગતે હૈં-હસી વાતકો સમઙ્ગાનેકે  
 લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં-“ સંતિ પાળા ” ઇત્યાદિ ।

જ નિમિત્ત અને અનિમિત્તનુ કથન સમજવુ ભેદએ કર્મોંના ઉદય આભ્ય તર  
 નિમિત્ત છે, તે નિમિત્ત તો પ્રત્યેક રોગોમા સાધારણ કારણ છેજ. આવા અસમજસ  
 રોગોથી ગૃહસ્થાશ્રમમા મગ્ન રહેલા જીવો-ગૃહસ્થોનુ મરણ દેખી તથા દેવોના પશુ  
 ઉપપાત-જન્મ અને ચ્યવન-મરણ બાણી, મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિ કારણ કલાપથી  
 ઉત્પન્ન બધદશાને પ્રાપ્ત અને અવાધાકાળને છોડીને ઉદ્યાવલીમા પ્રવિષ્ટ એવા  
 કર્મોના, શારીરિક અને માનસિક દુઃખરૂપ ઇજા સારી રીતે વિચાર કરી, સકળ  
 કામોના મૂળ કારણ આ કર્મોને નાશ કરવા માટે, તપ અને સયમમા પ્રયત્ન  
 કરવો ભેદએ. શિષ્યોને સંવોધન કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્યજન ! આ  
 કર્મોના ઇજા જે પ્રકારથી થાય છે એ પ્રકાર ફરીથી વધુ તમોને કહું છું, તે  
 તમે સાલજો ( સૂ. ૬ )

સંસારી જન કર્મોના વિપાકને ભોગવે છે આ વાત સમજવવા સૂત્રકાર  
 કહે છે “ સંતિ પાળા ” ઇત્યાદિ—



किञ्च—‘सन्ति पाणा’ इत्यादि ।

मूलम्—सन्ति पाणा वासगा, रसगा, उदए, उदयचरा, आ-  
गासगामिणो पाणा पाणे किलेसन्ति ॥ सू० ८ ॥

छाया-सन्ति प्राणा वासकाः, रसगाः, उदके, उदकचराः, आकाशगामिनः  
प्राणाः प्राणिनः क्लेशयन्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—वासकाः=शब्दकरणसमर्था द्वीन्द्रियादयः तथा रसगाः=तित्तकटुकादि-  
रसवेदकाः सञ्ज्ञिन इत्यर्थः, तथा-उदके=अप्काये स्थिता अप्कायिका इत्यर्थः, तथा  
-उदकचराः=जलचरा मत्स्यकच्छपादयः, अत्र स्थलचराः सर्पादयः पक्षिणश्चापि  
केचन जलाश्रितत्वाज्जलचरा उच्यन्ते । तथा-आकाशगामिनः=पक्षिणश्च, इत्येते  
प्राणाः=प्राणिनः सन्ति । ते सर्वेऽपि प्राणाः=प्राणिनः, प्राणान्=अपरान् जीवान्  
क्लेशयन्ति-आहाराद्यर्थं द्वेषावेशाद्वा पीडयन्ति ॥ सू० ८ ॥

रसना-इन्द्रियके सद्भावसे शब्द करनेमें समर्थ ऐसे द्वीन्द्रियादिक  
जीव, तथा तित्त-कटुकादिक रसोंका अनुभवन करनेवाले संज्ञी जीव,  
पानी आदि कायमें स्थित अप्कायिक जीव-मछली कछुवा आदि जल-  
चर जीव, सर्प पक्षी वगैरह स्थलचर जीव और आकाशमें उड़नेवाले  
पक्षी आदि नभचर जीव ये सब प्राणी आहारादिकके निमित्त, दूसरे  
जीवोंको क्लेशित करते हैं तथा द्वेषके आवेशसे उन्हें पीडा भी  
पहुंचाते हैं ।

भावाथ—द्वीन्द्रियसे लेकर संज्ञी असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त समस्त  
जलचरादिक जीव परस्परमें एक दूसरेको आहारादिकके निमित्तसे

पीतानी क्लृपना नहीं, परंतु आ सर्वज्ञाना वयन छे, ज्येत्तुं समलु मारा वयनो  
पर तमे विधास राषो ( सू० ७ )

रसना इन्द्रियना सद्भावथी शब्द करवाभां समर्थ ज्येवा द्वीन्द्रियादिक  
लुव तथा तित्त कटुक आदि रसोना अनुभव करवावाणा संज्ञी लुव, पाणीमा  
रडेनारा अप्कायिक लुव-माछला, कायभा वगेरे जलचर लुव, सर्प पक्षी  
वगेरे स्थलचर लुव अने आकाशमा उडनारा पक्षी आदि नभचर लुव आ  
अथा प्राणी आहारादिकना निमित्तथी पीण लुवोने क्लेशित करे छे तथा द्वेषना  
आवेशथी ज्येभने पीडा पथु पडोचाडे छे.

भावार्थ—द्वीन्द्रियथी लगावी संज्ञी असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यंत समस्त  
जलचरादिक लुव परस्परमा ज्येक पीणने आहारादिकना निमित्तथी अथवा द्वेषादिकना



पुनरपि ससारिणां दशां दर्शयितुमाह—‘पास लोए’ इत्यादि ।

मूखम्—पास लोए महवमये, बहुदुःखा हु जतवो ॥सू०९॥

छाया—पश्य लोके महद्वयं, बहुदुःखा हु जन्तव ॥ सू० ९ ॥

टोका—हे शिष्य ! लोके=धनुर्दशरज्ज्वात्मके जगति महद्वयं=ज्ञानावरणीयादि कर्मोदयवशात् प्राणिनामनादिकालतो विविध दुरन्तं मयं पश्य । हु=यत बन्तवः प्राणिनः, बहुदुःखाः=कर्मोदयवशात् विविधानन्तदुःखाः सन्ति ॥ सू०९ ॥

अथवा ब्रह्मादिकके आवेशसे पीडित किया करते हैं । कोई ९ पक्षी भी जो जलके ही आश्रित रहते हैं जलपर माने गये हैं ॥ सू०८॥

पुनरपि संसारी जीवोंकी दशाको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“पास लोए’ इत्यादि ।

शिष्यको संयोजन करते हुए सूत्रकार कह रहे हैं कि हे शिष्य ! तुम देखो, इस ससारमें जीवोंको थोड़ी सी भी शांति नहीं है । उनके पीछे अनेक प्रकारके भय लगे हुए हैं । अनेक शारीरिक एवं मानसिक कष्टोंसे वे रातदिन व्यथित हो रहे हैं ।

यह लोक १४ राजू प्रमाण है । इसमें जितने भी जीव हैं वे अनादि कालसे ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंके उदयके वशमें पडे हुए हैं । इस कारण वे भयसहित हैं । क्योंकि परतन्त्रतामें स्वतन्त्रताका अभाव होने से सदा भय ही भय बना रहता है । कभी ये नरकनिगोदादिककी कथाओं को सुन कर उससे भयभीत होते हैं, कभी तिर्यग्गतिके दुःखोंसे, तो

आवेशयी पीडित कर्मा करे छे काळ काळ पक्षी पक्षु के जगतां न आश्रित छे जेने जगवर मानवाम आवेश छे ( सू० ८ )

ससारी लोवानी इशाने प्रकट करवा गाटे करीबी सूत्रकार कहे छे—  
“पास लोए” इत्यादि—

शिष्यने संयोजन करवा सूत्रकार कहे छे हे हे शिष्य ! तुम्ये, आ ससा रमा लोवोने थोड़ी पक्षु शांति नहीं, जेनी पाछण अनेक प्रकारना लय लाग्वा रहे छे शारीरिक जेने मानसिक कष्टोधी जे सतदिवस आकण्ठाया रहे छे

आ लोक १४ राजूप्रमाण छे जामां नेटवा पक्षु लप छे जे अनादि काणधी ज्ञानावरणीय आदिकर्मोना उदयना वशमां पड्या छे आ काल्पे जे लयमां छे काल्प के परतन्त्रतामां स्वतन्त्रताना अभाव होवानी सदा काण लयल लय जन्थे रहे छे कथारेक जे नरकनिगोदादिकनी कथाज्ये सांलग्गी जेनाधी लपणीत जने छे, कथारेक तिर्यग् जतिनां दुःखोधी, ते कथारेक अनुभवतिनां दुःखोधी

संसारिणां कथमीदृशी दशा भवतीति जिज्ञासायामाह-‘सत्ता कामेहिं’ इत्यादि ।

मूलम्—सत्ता कामेहिं माणवा अबलेण वहं गच्छन्ति सररीरेण पभंगुरेणं ॥ सू० १० ॥

छाया—सत्ताः कामेषु मानवाः अवलाय वधं गच्छन्ति शरीराय प्रभङ्गुराय । १० ।

टीका—मानवाः=मनुष्याः कामेषु=विषयभोगेषु सत्ताः=अनुरक्ताः सन्ति, अतः प्रभङ्गुराय=क्षणभङ्गुराय क्षणक्षणपरिणामितया स्वत एव प्रतिक्षणविनाशिने अवलाय=निःसाराय शरीराय=औदारिकशरीराय—शरीरपुष्ट्यर्थमिति भावः । वन्धं=

कभी मनुष्यगतिके दुःखोंसे । इन कर्मोंके सदासे आधीन रहनेवाले मेरी क्या दशा होगी ? ऐसा चिन्तारूप महाभय प्रत्येक सचेतन प्राणीके हृदयमें बना ही रहता है ; अतः अनेक प्रकारके दुरन्त भयोंसे घिरे हुए ये अनन्त संसारी जीव हैं, और इसी कर्मोदयके वशसे ये विचारे रात-दिन अनन्त कष्टोंका भी सामना करते रहते हैं ॥ सू० ९ ॥

संसारी जीवोंकी ऐसी दशा क्यों होती है ? इस प्रकारकी जिज्ञासाके समाधाननिमित्त सूत्रकार कहते हैं—“सत्ता कामेहिं” इत्यादि ।

अवतरणरूप शङ्काका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि कामभोगोंमें मग्न होनेसे मनुष्यको थोड़ा भी अवकाश प्राप्त नहीं है, अतः उन कामभोगोंका साधनभूत इस औदारिक शरीरकी पुष्टिके निमित्त वे अनुचित उपायोंका भी आचरण करते रहते हैं । नरकनिगोदादिकके अनन्त दुःखोंकी कारणभूत अन्य प्राणियोंकी हिंसा करते हुए भी ये अचकाते नहीं हैं । इन्हें स्वप्नमें भी यह विचार नहीं आता कि जब

आवा कर्मोनि सदा अधीन रहेनार मारी शु दशा थरी? अवे। चिन्तारूपी महा-लय प्रत्येक सचेतन प्राणीना हृदयमा अन्यो रहे छे आवा अनेक प्रकारना निकट लयेथी घेरयेल अनन्त ससारी एव छे कर्मोदयना वशथी आ भियारा रात दिन अनन्त कष्टोना सामना करता रहे छे (सू० ९)

ससारी एवेनी आवी दशा डेम थाय छे, आ प्रकारनी एसासाना समाधाननिमित्त सूत्रकार कहे छे “सत्ता कामेहिं” इत्यादि—

अवतरणरूप शङ्कातु समाधान करता सूत्रकार कहे छे के कामभोगोमा मग्न होवाथी मनुष्यने थोडा पणु अवकाश मणतो नथी कामभोगोना साधनभूत आ औदारिक शरीरनी पुष्टिना कारणे अे अनुचित उपायेतु पणु आचरण करता रहे छे नरकनिगोदादिकनी अनन्त दुःखोना कारणभूत अन्य प्राणीओनी हिंसा करवाभा पणु अे अचकाता नथी. अेभने स्वप्नमा

नरकनिगोदाघनन्तदुःस्वहेतुभूतां प्राणिहिंसां तज्जनितकर्मषर्षं च गच्छन्ति—प्राणु  
 वन्ति—कुर्यन्तीत्यर्थः । सूत्रे चतुर्थ्यर्थे तृतीयाऽऽर्पत्वात् ॥ सू० १० ॥

किञ्च—'अष्टे' इत्यादि ।

मूलम्—अष्टे से बहुतवु खे, इति बाले पकुञ्चति ।

एते रोगे बहू णष्ट्वा, आउरा परितापय ॥ सू० ११ ॥

छाया—आर्तः स बहुदुःख, इति बालः प्रकुरुते ।

एतान् रोगान् बहून् ज्ञात्वा आतुराः परितापयन्ति ॥ सू० ११ ॥

टीका—आर्तः=आर्तरौद्रघ्यानवर्षी, अत एव बहुदुःखः=शारीरमानसविषिष  
 दुःखाकान्त स बालः=अज्ञानी—कर्तव्याकर्तव्यमूढः इति=एतादृशं कर्म इति=एवम्  
 उक्तविषं प्राणिवधं वा प्रकुरुते । एतान्=उत्तरूपान् बहून्=बहुविधान् पोषणप्रकारान्  
 रोगान्=ज्ञात्वा प्राप्य आतुराः=रोगपीडिता परितापयन्ति=व्याधिप्रशमनार्थं शरीर  
 पुष्ट्यर्थं च एकेन्द्रियादिप्राणिगणसुपमर्दयन्ति ॥ सू० ११ ॥

सांसारिक प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील हैं तो यह मेरा शरीर भी उसी  
 प्रकारका होनेसे क्षण २ में स्वतः गल रहा है । यह स्वयं तो निःसार है,  
 पर इससे सार प्राप्त किया जा सकता है ॥ सू० १० ॥

शारीरिक एवं मानसिक अनेक रोगोंसे आक्रान्त वह अज्ञानी प्राणी  
 कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानसे विमूढ हुआ आर्त और रौद्रघ्यानके बशवर्ती  
 पन प्राणिहिंसा जैसे अनर्थोंके करनेमें कुछ भी आगे पीछे का विचार  
 नहीं करता । कण्ठमाल, कुष्ठ आदि १६ प्रकारके रोगोंसे जय ऐसे प्राणी  
 अत्यन्त पीडित होते हैं तब वे अपनी उस २ व्याधिके प्रशमनार्थ अथवा  
 शरीरकी पुष्ट्यर्थ एकेन्द्रियादि प्राणियोंकी हिंसा करने लग जाते हैं ।

पण्डितों के विचार नहीं आये तो के आरे स सारी प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील  
 है तो भाई आ शरीर पण्डितों के प्रकृत होना ही सब सब भाँ प्येते मणी रह  
 है आ प्येते तो निःसार है छत्रों के नाथी पण्डित आर प्रभु करी शक्य है (सू० १०)

शारीरिक अने मानसिक अनेक रोगोंकी अकृताते के अशुभनी प्राणी  
 कर्तव्याकर्तव्यना ज्ञानकी विमूढ अनी अत अने रौद्र घ्यानने बशवर्ती अनी  
 प्राणिहिंसा जेवा अनर्थों करवाभा कर्म पण्डित आगण-पाठगणे विचार करते  
 नहीं । कण्ठमाल, कुष्ठ, एत्यादि १६ प्रकारना रोगोंकी अकारे के अत्यन्त पीडित  
 अने है त्वारे के पीतानी के व्याधिना प्रशमन भाए अथवा शरीरकी  
 पुष्टि अर्थे एकेन्द्रियादि प्राणीके ही हिंसा करवा लाभी अथ है

ભાવાર્થ—શરીરમેં જવ કોઈ વિશેષ વ્યાધિ હો જાતી હૈ, ઓર ઉપાય કરતે હુએ મી જવ ઉસકી શાંતિ નહીં હોતી હૈ તો રોગીકે ચિત્તમેં અનેકોં પ્રકારકે સંકલ્પ-વિકલ્પ ઉઠને લગતે હૈં । ઇન સંકલ્પવિકલ્પોંકે મધ્યમેં પડા હુઆ વહ રોગી કમી અપને અપાય કી ચિન્તાસે ગ્રસિત હોતા હૈ, કમી ઇન ઇષ્ટ પદાર્થોંકો વિયોગ મુઝસે હો જાયેગા ઇસ પ્રકાર કી ડુર્ભાવનાસે વ્યાકુલ હોતા હૈ, હાય! અવ કયા કરું? કહાં જાઝું? યે હુ:ખ અવ નહીં સહે જાતે, મર જાઝું તો વહુત અચ્છા-હત્યાદિ રૂપસે વોલતા હુવા આર્તરોદ્ર ધ્યાનકો ધ્યાતા હૈ । ઇસ સ્થિતિમેં પડે હુએ ઉસ જીવકો જો મી કોઈ ઉપાય વતલાતા હૈ વહ ઉન ઉપાયોંકો મી કરનેકે લિયે કટિવદ્ધ હો જાતા હૈ । દેહસે જીવકા અત્યન્ત મમત્વ હોનેસે દેહ કી પીડાસે યહ રોગોંકો મિટાનેકે લિયે અનેકાનેક હિંસાજન્ય કાર્ય કરતા હૈ । કર્તવ્ય કયા હૈ, અકર્તવ્ય કયા હૈ ઇસ પ્રકારકી નિર્ણય વુદ્ધિ ગુમા વૈઠતા હૈ । ઇસ હાલતમેં યદિ કોઈ ઉસસે યહ કહ દેતા હૈ કિ અમુક પશુકી વલિ દેનેસે યહ રોગ શાંત હો જાતા હૈ તો વહ ઉસ જીવકી મી હિંસા કરનેસે નહીં ચૂકતા હૈ । શરીરકી પુષ્ટિકે નિમિત્ત મી ઇસી પ્રકારસે અજ્ઞાની મનુષ્ય અન્ય જીવોંકી હિંસા કરનેમેં ઘૃણા નહીં કરતા ॥સૂ૦૧૧॥

ભાવાર્થ—શરીરમા ન્યારે કોઈ વિશેષ વ્યાધિ થઈ જાય છે અને ઉપાય કરવા છતાં પણ ન્યારે એની શાંતિ થતી નથી ત્યારે રોગીના ચિત્તમા અનેક પ્રકારના સંકલ્પ-વિકલ્પ ઉઠવા લાગે છે. આ સંકલ્પ-વિકલ્પોના કુડાળામા પડેલા એ રોગી ક્યારેક પોતાના અપાયની ચિન્તાથી ઘેરાઈ જાય છે, ક્યારેક આ બધાને છોડીને મારે જવું પડશે-આ પ્રકારની ડુર્ભાવનાથી વ્યાકુળ બને છે. હાય! હવે શું કરું? કયા જાઉં? આ હુ ખ હવે સહેવાતું નથી મરી જાઉ તો ઘણું સારું આ રીતે બોલતાં આર્ત રોદ્ર ધ્યાનમા પડી જાય છે આ સ્થિતિમા પડેલા એ જીવને જો કોઈ પણ ઉપાય બતાવવામા આવે તો તે એ ઉપાયોના કરવામા કટિબદ્ધ બને છે દેહથી જીવતું અત્યંત મમત્વ હોવાથી દેહની પીડાથી એ રોગીને મટાડવા અનેકાનેક હિંસાજન્ય કાર્ય કરે છે કર્તવ્ય શું છે? અને અકર્તવ્ય શું? એનો નિર્ણય કરવાની વિવેકબુદ્ધિ ગુમાવી એસે છે આ હાલતમા કોઈ એને એવું કહે કે અમુક પશુનું બલિદાન દેવાથી આ રોગ મટી જાય તો તે એ જીવની પણ હિંસા કરવાનું ચુકતો નથી શરીરની પુષ્ટિને કારણે અજ્ઞાની જીવ આ પ્રકારે અન્ય જીવોની હિંસા કરવામા ઘૃણા કરતા નથી (સૂ૦૧૧)

आचार्यः शिष्यमुपदिशति—' नालं ' इत्यादि ।

मूत्रम्—नाल पास अल तषेएहिं, एय पास मुणी ।

मह्वमय नाइवाइज कचण ॥ सू० १२ ॥

छाया—नालं पश्य, अलं तष एतैः । पतस्पश्य मुने ! महद्वयं नातिपत-  
येत्कञ्चन ॥ १२ ॥

टीका—हे मुने !, पश्य=विमलघियाऽवलोकय यथा नाल=कर्मोदयत्रनित-  
रोगान् निर्बर्धयितुं चिकित्साविधयो न समर्था सन्ति, तस्मात् तव=हेयोपादेय-  
विषेकषत एभिः=कर्मष षकारणैश्चिकित्साविधिभिः अलं=पर्याप्तम् । किञ्च-एतत्=

“ नालं ” इत्यादि सूत्रद्वारा आचार्य महाराज शिष्यको उपदेश  
देते हुए कहते हैं—

मुनिको लक्ष्यकर सूत्रकार कहते हैं कि हे मुने ! निर्मल बुद्धिसे तुम  
इस पातका विचार अवश्य २ करो कि जो भी रोग होते हैं वे सब इस  
जीवके अष्टम कर्मोदयसे होते हैं, उन्हें दूर करनेकी सामर्थ्य किसीमें  
नहीं है, जब तक अष्टमका उदय बना रहेगा तब तक चिकित्सा होने  
पर भी उनकी शांति नहीं होगी, इसलिये कर्मोदयसे उत्पन्न हुए इन  
वेदाभिल रोगोंको हटानेके लिये कोई भी चिकित्साविधि ममर्य नहीं  
है। जब यह पात सिद्धान्तसिद्ध है, तो फिर चिकित्सानिमित्त  
अन्य प्राणियोंकी हिंसा करने जैसी चिकित्साविधि, जो केवल कर्म  
पक्षका ही कारण है, क्यों किया जाय ! तथा अन्य प्राणियोंकी की गई  
हिंसा स्वप्नमें भी शांति नहीं दे सकती है; किन्तु यह महाभयप्रद ही  
होती है। कारण कि इस कर्मके कर्ता जीवको यह कर्म जन्म और

“नाल” इत्यादि सूत्रद्वारा आचार्य महाराज शिष्यने उपदेश आपत्तां कहे छे-

मुनिनी आये लक्ष राभी सूत्रकार कहे छे कहे मुनि ! निर्मल बुद्धि  
तमे आ बातने अवश्य विचार करे छे के पक्ष रोग घाय छे के लक्ष लपना  
अष्टमकर्मोदयभी ल घाय छे, जेने दूर करवानु सामर्थ्य कहेनामां नथी, लक्ष  
सुभी अष्टमने लक्ष रहे छे त्यां सुभी आस्वार छत्ता पक्ष जेने शांति यती  
नथी जेटवे कर्मोदयभी उदयत यथे ल आ देहाभिल रोगेने दूर करवामां  
कहे पक्ष चिकित्साविधि समर्थ बनती नथी, लक्षरे आ बात सिद्धांतभी कहे  
साधीत यथे ल छे तो पक्ष चिकित्सानिमित्त जीव प्राणीजोनी हिंसा करवामा  
आवे तो ते कर्मोदय ल कारण छे आ शीते करवामां आवती प्राणुदिसा  
स्वप्नमा पक्ष शांति देवा देती नथी, अने ते महाभयप्रद पक्ष अने छे कारण

प्राण्युपमर्दनं महद्द्रव्य-जन्ममरणादिमहाभयहेतुत्वात् । अतः कञ्चन=रुमप्येकेन्द्रि-  
यादिकं प्राणिनं नातिपातयेत्=न प्राणेभ्यो व्यपरोपयेत् । एकस्मिन्नपि प्राणिनि  
हन्यमाने ज्ञानावरणीयादिकं कर्म बध्यते, तच्चानन्तसंसाराय सम्पद्यते । तस्मा-  
त्प्राण्युपमर्दनं महाभयम् ॥ १२ ॥

मरणादिरूप महाभयके देनेमें कारणरूप होता है । अथवा कारणमें कार्यके  
उपचारसे महाभयका कारण होनेसे यह हिंसाकर्म स्वयं महाभयरूप है ।  
इसलिये आत्महितैषीका कर्तव्य है कि वह किसी भी एकेन्द्रिय जीव  
तककी भी हिंसा न करे—उन्हे अपने प्यारे प्राणोंसे वियुक्त न करे । क्यों  
कि एक भी प्राणीका क्रिया गया उपमर्दन कर्त्ताको ज्ञानावरणीयादिक  
आठ कर्मोंका बन्ध करानेवाला होता है । कर्मबंधसे जीव अनंत संसारी  
बनता है । इसलिये यह कर्म महाभयस्वरूप है ।

भावार्थ—अशुभोदयसे जीवोंको व्याधियां होती हैं । जीवहिंसायुक्त  
चिकित्साविधिसे भी उन व्याधियोंका विनाश नहीं होता है ।  
अशुभोदयकी ज्ञातिसे व्याधियोंका विनाश स्वयमेव हो जाता है ।  
चिकित्सा जडमूलसे रोगका नाश नहीं करती है, किंतु उस रोगको दवा  
देती है यह बात आजकलके विद्वान् भी स्वीकार करने लगे हैं । फिर  
हिंसामय चिकित्सासे व्याधियोंका विनाश मानना बालुका-रेतसे तेल  
निकालनेकी बात मानने जैसी है । इस विधिसे जीव नवीन कर्मोंका  
बन्ध करता है ओर रातदिन नीरोग अवस्था प्राप्तिके स्थानमें भयंकर

के आ कर्मना करनार एव जन्म अने मरणरूप महाभयने लोपनार अने  
छे आत्महितैषीयु अने कर्तव्य छे के ते कोष पण्य अकेन्द्रिय एवनी पण्य हिंसा  
न करे—अने पोताना प्र एधी वियुक्त न करे, केम के अके पण्य प्राणीनु करवामा  
आवेद उपमर्दन, करनारने ज्ञानावरणीय आदि कर्मने अ ध करनार अने छे, कर्म-  
अ धथी एव अनंत संसारी अने छे आ माटे आ हिंसाकर्म महाभयस्वरूप छे.

भावार्थ—अशुभना उदयथी एवने व्याधियो लागु पडे छे चिकित्सा-  
विधि के नेमा अन्य एवनेनु उपमर्दन करवामा आवे छता आवी चिकित्सा  
रोगनो नाश करी शकती नथी अशुभोदयनी शातिथी व्याधियोनो विनाश आप-  
भेजे थर्ष जय छे रोगना शमन माटे दवानी उपयोगिता स्वीकारार्थ छे, एव-  
हिंसा नर्डी हिंसावाणी चिकित्साथी व्याधियोनो विनाश मानवो अने रैतीमाथी  
तेल काढवा नेवी बात छे आ विधिथी एव नवीन कर्मोना अ ध आधे छे अने  
निरोगी अवस्था प्राप्त करवाने अद्वये लय कर अथाका केनेने केनेने अने

मूत्रम्-आयाण भो! सस्सूस भो! धूयवाय पवेयइस्सामि,  
इह खलु अत्तत्ताए तेहिं तेहिं कुलेहिं अभिसेएण अभिसमूया  
अभिसजाया अभिनिव्वुद्धा अभिसवुद्धा अभिसवुद्धा अभिणि  
क्खता अणुपुव्वेण महामुणी ॥ सू० १३ ॥

छाया—आमानीहि मो ! शूसूपस्व मो ! घृतवाद् प्रवेदयिष्यामि, इह खलु  
आत्मतया तेषु तेषु कुलेषु अभियेकेण अभिसंभूताः, अभिसंभूताः, अभिनिवृत्ताः,  
अभिसंबुद्धाः, अभिसंबुद्धाः अभिनिष्क्रान्ताः, अनुपूर्वेण महामुनयः ॥ १३ ॥

टीका—भोः शिष्य ! यद्दहं घृतवाद्=घृतम्=अष्टविधकर्मघृन्नं तस्य वादो घृत-  
वाद्दत्तं प्रवेदयिष्यामि तद् आमानीहि=अन्नधारय, तथा मोः ! शूसूपस्व=भोतुमि  
च्छं कुरु। 'भोः' इत्यस्य पुनरुच्चारणं ब्रह्मणार्थस्य दुरधिगमत्वेन शिष्याऽन्न-  
पानार्थं, तथा च—'साधधानेन भयता भाव्यम्' इत्यभिप्रायोऽवगम्यते ।

असाध्य रोगोंका आचार बन जाता है। इसलिये जो व्याधियोंके आचार  
बनना नहीं चाहते हैं वे तप और संयमद्वारा इनके मूल कारणोंका  
विनाश करनेके लिये अग्रेसर बनें। किसी जीवकी देवी देवताको पति  
देनेसे या किसीके मांस आदिके खानेसे व्याधियोंकी क्षीणता होगी इस  
अध्यायद्वारा पापका परित्याग करें ॥ सू० १२ ॥

(ब्रह्मण्यमाण घृतवादको हृदयमें धारण-श्रवण आदि करनेके निमित्त  
शिष्यको प्रेरित करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“आयाण भो”। इत्यादि ।

हे शिष्य ! मैं जिस अष्टविधकर्मोंक नाशके वाद-कथनको कहूँगा  
तुम उसे हृदयमें धारण करो। यदि धारण न हो सके तो उसे सदा  
सुननेकी इच्छा करते रहो। सूत्रमें दो बार जो “भो भो” शब्दका  
प्रयोग हुआ है, उससे सूत्रकारका यह अभिप्राय मालूम होता है कि

हे भो भो ने व्याध भयकर शोभी लयवा तप बने सकनना पडे वने  
हे बने केड रवी देवताने केड लवनु लखिदान देवार्थ पाप अमने हे  
आने लव असाध्य व्याधिधी लये हे (सू० १२)

पश्चभाष्य घृतवाद्ने हृदयमा धारण श्रवण आदि करवा भटे शिष्यने प्रेरित  
करवा सूत्रकार कहे हे “आयाण भो” इत्यादि ।

हे शिष्य ! तू ने व्याध प्रकारका क्रमोना नाश पाडीनी बात तमिने कहु  
तु तमि बने हृदयमा धारण करे ने धारण न कर शके तो बने सभन  
पाडी श्रवण क्रमिथा करवा रडे। सूत्रमा ने वपत ने “भो भो” शब्दने।  
प्रयोग थये हे, व्याधी सूत्रकारने बने अभिप्राय थाय हे हे ने विषय आनन

प्रतिज्ञातमर्थमाह—‘इह खलु’ इत्यादि । इह=अस्मिन् मनुष्यलोके प्राणिनः आत्मतया  
=अनादिकालतो जीवकर्मणोः सम्बन्धादात्मकृतकर्मपरिणत्या तेषु तेषु=विविधेषु  
स्वस्वकर्मोदयप्रापितेषु उग्रभोगादिपुत्रमेषु श्वपाकादिषु नीचेषु च कुलेषु अभिपेकेण  
=शुक्रशोणितसंयोगादिक्रमेण अभिसंभूताः=जननीगर्भे, कललावस्थां प्राप्ताः, अभिस-

जो विषय आगे कहा जानेवाला है वह बड़ी मुश्किलसे समझनेमें आवे  
ऐसा है; इसलिये शिष्योंके चित्तको उस विषयकी ओर सावधान करते  
हुए वे शिष्यजनोंसे कहते हैं कि हे शिष्यों! तुम सावधानचित्त हो  
कर ही इस विषयको सुनना; अन्यथा—व्यग्रचित्त होओगे तो कुछ भी  
समझमें नहीं आवेगा । यहांसे वही प्रस्तुत विषय कहा जाता है—

(इस मनुष्यलोकमें समस्त प्राणी कर्मोंके सम्बन्धसे परतन्त्र हो रहे  
हैं । यह जीव और कर्मोंका सम्बन्ध आजका नहीं है किन्तु अनादिकाल  
का है । इस सम्बन्धके कारण ही जीव कर्मोंके विपाकोदयसे उन २  
गतियोंकी प्राप्तिके कारणभूत कर्मोंके उदय आने पर उग्रभोगादि विशिष्ट  
उत्तम कुलोंमें एवं चण्डाल आदि नीच कुलोंमें मातापिताके शोणित-  
शुक्र आदिके संयोगक्रमसे उत्पन्न होते हैं॥ संक्षेपसे उत्पत्तिका क्रम इस  
प्रकार है—सर्वप्रथम जीव माताके गर्भमें “कलल” अवस्थामें रहता  
है । इसके बाद क्रमसे अनेक अवस्थाओंको धारण कर फिर वह पेशी-  
अवस्थासम्पन्न होता है । अंग—उपांगोंकी तथा स्नायु एवं शिरके वालोंकी

कडेवामा आवनार छे ते पूष सुशेदीथी सभजवामा आवे तेवे छे आ भाटे  
शिष्येना चित्तने अे विषय तरङ्ग सावधान करता सूत्रकार शिष्यजनोने कडे छे  
के डे शिष्ये ! तमे सावधानचित्तथी आ विषयने साक्षणने ने व्यग्रचित्त  
अनशे तो आगण कांछि पणु सभजवामा नडि आवे अडिथी अे विषय कडेवो  
शङ्क थाय छे

आ मनुष्यलोकमा षष्ठा प्राणी कर्मना सभंधथी परतत्र थछ रह्यां छे.  
आ एव अने कर्मना सभंध आनो नथी, परतु अनादि कालने छे आ सभ-  
धना कारणथी एव कर्मना विपाकना उदयथी अे अे गतियोनी प्राप्तिना कारण-  
भूत कर्मना उदय आववाथी उग्र भोग आदि विशिष्ट उत्तम कुलोमा अथवा  
यंडाल विगेरे नीच कुलोमा माता पिताना शोणितशुक्र वगेरेना संयोगकर्मथी  
उत्पन्न थाय छे. दुकमा उत्पत्तिना कर्म आ प्रकारना छे सर्वप्रथम एव  
माताना गर्भमा “कलल” अवस्थामा रहे छे, अे पछी कर्मथी अनेक अवस्थाओ  
धारण करी करी ते पेशी अवस्था प्राप्त करे छे. अंग उपांगो तथा स्नायु



જાતાઃ=કલ્પાનન્તર યાવત્પેશ્યવત્સ્યાં પ્રાપ્તા , અમિનિર્જતા=તત્ સાક્ષોપાક્ત્સ્નાયુ-  
 શિરોરોમાદીનાં ક્રમણામિનિર્વૃત્તેનેન ગર્મપૂર્ણાવત્સ્યાં પ્રાપ્તા , તત્તો ગર્માભિઃસુતાઃસ્ત્વ  
 અમિસંબુદ્ધાઃ=શૈશ્યાદિક્રમેણ વૃદ્ધિમાપ્ય ધર્મબ્રજણયોગ્યાવત્સ્યાં સમાપન્ના , તત્  
 અમિસંબુદ્ધાઃ=ધર્મકથાદિકં નિમિત્તમાસાધોપલબ્ધપુણ્યપાપસ્વરૂપાદિતયા યોધિષીર્જ  
 પ્રાપ્તા , તત્ અમિનિષ્ક્રાન્તાઃ=શૂદ્ધસ્યમાભાષિર્ગતા-પ્રવ્રજ્યાં પ્રાપ્તા इत्यर्थ , અતુ-  
 પૂર્વેણ=અનુક્રમેણ આચારાદિકાદિદ્વાદશાક્રમણિપિટકામ્યાસ્ત્વદર્યમાવનોપદ્ધિતચરણ  
 કરણપરિણામતયોપાધ્યાયગીતાર્ય-પરિહારવિશુદ્ધિકૈકાકિવિહારિ-પ્રતિમાપારિ-  
 જિનકસ્ત્રિકાવત્સ્યાપર્યવસાનક્રમણ મહામુનયો મહન્તિ ॥ ૬૦ ૧૩ ॥

ક્રમ ૨ સે જય પૂર્ણ રચના હો જાતી હૈ, તય ગર્મકી ઘહ પૂર્ણ અવસ્થા  
 કહલાતી હૈ। હસ પૂર્ણ અવસ્થા કે વ્યતીત હોતે હી જીવ ઘહાંસે ઘાહર  
 નિકલતા હૈ। શૈશ્ય-બાલપન આદિકે ક્રમસે જય ઘસકી વૃદ્ધિ હોને  
 સગતી હૈ તો ઇક સમય ઇસા ખી આ જાતા હૈ કિ જય ઘહ ઘર્મબ્રજણ  
 કે યોગ્ય અવસ્થાકો પ્રાપ્ત હોતા હૈ। ઘર્મકથાકે સુનનેસે પુણ્ય ઓર પાપકે  
 સ્વરૂપસે ઘહ મલીમાંસિ પરિશિત હો જાતા હૈ ઓર યોધિષીજકો પાતા  
 હૈ। યોધિષીજકી પ્રાપ્તિ હોનેસે ઘહ શૂદ્ધસ્યમાવસે નિર્ગત હો જાતા  
 હૈ-ઐનેશ્વરી વીક્ષાકો અંગીકાર કરતા હૈ, ક્રમ ૨ સે આચારાંગ આદિ  
 દ્વાદશાંગ ગણિપિટકકા અભ્યાસ કરતા હૈ, અથવા ડનકે અભ્યાસ કરને  
 કી માવના રહતા હૈ। હસ માવનાસે ઘહ અપને કરગસસરી ઓર અર  
 ણસસરીકે પરિણામોંકી વૃદ્ધિ કરતા રહતા હૈ। હસસે ક્રમશઃ ઉપાધ્યાય,  
 ગીતાર્ય, પરિહારવિશુદ્ધિક, ઇકાકીવિહારી, પ્રતિમાચારી ઓર જિનકસ્ત્રી

અને માધના વાગની ક્રમે ક્રમે ન્યારે પૂર્ણ રચના ઘર્મ અથ છે ત્યારે ડભની  
 પૂર્ણ અવસ્થા ધર્મ ઇવ ત્યાંથી બહાર નીકળે છે શૈશ્ય-બાલપણ ઇત્યાદિ  
 ક્રમથી ન્યારે ડબની વૃદ્ધિ ઘવા ઇએ છે, આમા ડેક અમમ ડેવે પણ આપી  
 અથ છે કે ન્યારે તે ધર્મબ્રવણને યોગ્ય અવસ્થાને પ્રાપ્ત ઘાય છે ધર્મકથા  
 આભગવાથી ઘનાર પુરમ અને ઘાપના સ્વરૂપથી ડે સારી રીતે પરિશિત ઘર્મ અથ  
 છે અને ડેધિષીજને પામે છે ડેધિષીજની પ્રાપ્તિ ઘવાથી ડે શૂદ્ધસ્વભા  
 વથી નિર્ગત બની અથ છે ઐનેશ્વરી વીક્ષાને અંગીકાર કરે છે ક્રમે ક્રમે  
 અભ્યાસગ ઇત્યાદિ દ્વાદશાંગ ગણિપિટકને અભ્યાસ કરે છે, અથવા ડેવે અભ્યાસ  
 કરવાની માવના રાખે છે આ માવનાથી ડે પાતાના કરણસસરી અને અરણ  
 સસરીના પરિણામોની વૃદ્ધિ કરતે રહે છે અને આખગ વધતાં ઉપાધ્યાય,

મૂલમ—તં પરિક્રમંતં પરિદેવમાણા મા ણે ચયહિ ઇય તે વયંતિ । છંદોવળીયા અજ્ઞોવવન્ના અક્રંદકારી જળગા રુવંતિ । અ તારિસે મુળી નો ઓહં તરણ, જળગા જેણવિપ્પજઢા । સૂ૦૧૪ ।

છાયા—તં પરાક્રમન્તં પરિદેવમાનાઃ ‘ મા અસ્માન્ ત્યજ ’ ઇતિ તે વદન્તિ । છન્દોપનીતા અધ્યુપપન્ના આક્રન્દકારિણો જનકા રુદન્તિ । અ તાદૃશો મુનિર્નો ઓઘં તરતિ જનકા યેન વિપ્રત્યક્તાઃ ॥ સૂ૦૧૪ ॥

સાધુ પર્યન્તકી અવસ્થાઓંકા ધારક બનતા હુઆ મહામુનિ હો જાતા હૈ ।

ભાવાર્થ—કષાય સહિત હોનેસે જીવ કર્મોંકે યોગ્ય પુદ્ગલ પરમાણુઓં કા જો ગ્રહણ કરતા હૈ ઇસીકા નામ બન્ધ હૈ । ઇસ બન્ધદશાસે સમસ્ત સસારી જીવ પરતન્ત્ર હો રહે હૈં ઓર તત્તદ્ગતિપ્રાપક કર્મોદયસે વે ઉચ્ચ-નીચાદિ કુલોંમેં માતા પિતાકે રજ ઓર વીર્યકે સમ્બન્ધસે ગર્ભાવસ્થા-સમ્પન્ન બન કર ક્રમ ૨ સે અપને ૨ સમયાનુસાર ઉત્પન્ન હોતે રહતે હૈં । શૈશવાદિ અવસ્થા વાદ ધર્મશ્રવણ યોગ્ય અવસ્થાવાલે જબ વે હોતે હૈં તવ ધર્મકથાકે શ્રવણસે પુણ્યપાપકે સ્વરૂપકે જ્ઞાતા હોકર વોધિવીજકી પ્રાપ્તિસે ગૃહીત ધર્મકી સફલતા નિમિત્ત જૈનેશ્વરી દીક્ષા ધારણ કર આચારાંગ આદિ સૂત્રોંકા અભ્યાસ કરતે હુણ અપને ચારિત્રકી ઉજ્જ્વલતા કી વૃદ્ધિ કરનેમેં સાવધાન રહતે હૈં । જિનકલ્પી સાધુકી અવસ્થાપર્યન્ત મધ્યકી જિતની મી સાધુઓંકી અવસ્થાઈ હૈં ડન સબકા આરાધન કરતે હુણ વે મહામુનિયોંકી કોટિમેં આ વિરાજતે હૈં ॥ સૂ૦૧૩ ॥

ગીતાર્થ, પરિહારવિશુદ્ધિક, એકાકીવિહારી, પ્રતિમાધારી અને છનકલ્પી સાધુ સુધીની અવસ્થાનો ધારક બની મહામુનિ થઈ જાય છે

ભાવાર્થ—કષાયસહિત હોવાથી છવ કર્મોંને યોગ્ય પુદ્ગલ પરમાણુઓંનુ અહુણ કરે છે આનુ નામ બધ છે આ બધદશાથી સમસ્ત સસારી છવ પર-તન્ત્ર થઈ રહ્યા છે અને તે તે ગતિને આપનાર કર્મોદયથી તે ઉચ્ચ નીચ આદિ કુળોંમા માતા પિતાના રજ અને વીર્યના સબધથી ગર્ભાવસ્થાસ પન્ન બની, કર્મે કર્મે પોતપોતાના સમયાનુસાર જન્મ લે છે બાલ્યઆદિ અવસ્થા બાદ ધર્મશ્રવણુ યોગ્ય અવસ્થાવાળો ન્યારે તે થાય છે ત્યારે ધર્મકથાના શ્રવણથી પુણ્ય પાપના સ્વરૂ-પનો બાણકાર બની બોધિબીજની પ્રાપ્તિથી શ્રીત ધર્મની સફળતારૂપ જૈનેશ્વરી દીક્ષા ધારણ કરી આચારાંગ આદિ સૂત્રોંને અભ્યાસ કરતા પોતાના ચારિત્રની ઉજ્જ્વલતાની વૃદ્ધિ કરવામા સાવધાન રહે છે. છનકલ્પી સાધુની અવસ્થા પર્યન્ત વચ્ચેની જેટલી પણ સાધુઓંની અવસ્થાઓં છે એ સહુનુ આરાધન કરતા કરતા તે મહામુનિઓંની કક્ષાએ પહોંચે છે (સૂ૦૧૩)

ટીકા=તમ્=અમિસંપુદ્ધં ગૃહવાસચિત્ત્વં, પરાક્રમમાર્ગ=મહામુનિનિપેદિતં પ  
 ન્યાનમારોહન્તં, તે=માતાપિતૃતનયમાર્યાદયઃ વદન્તિ-‘અસ્માન્ મા સ્વજ’ इति  
 કિન્ન-છન્દોપનીતાઃ સ્વદમિપ્રાયાનુષર્તિનાઃ, અધ્યુપપન્નાઃ=ત્વદનુગામિનાઃ વયં સ્માઃ,  
 તસ્માદેવમૂતાનસ્માન્ પરિસ્પૃશ્ય કિં વ્રજસિ ?, इत्येवमाक्रन्दकारिणः=સજ્જોક  
 વિલાપન્તાઃ જનકા માતાપિત્રાદયો વ્યન્તિ ।

કિં ચૈવં તે વદન્તિ-અ સાદૃશ્યો મુનિરિત્યાદિ ।

येन पापमिदं वदितेन मुग्धेन जनकाः=मातापित्रादयः विप्रत्यक्ताः=सर्वथा  
 પરિસ્પૃશ્યા તાદૃશ્ય અ=ન મુનિર્મથવિ । અપ્ર-‘અ’ इति स्वरप्रतिरूपकमभ्यर्थं  
 નિપેષાર્થે વર્તેતે । નો=ન ચ ઓષં=સંસારસાગરપ્રવાહં તરતિ ॥ ૬૦ ૧૪ ॥

जिसने संसार, शरीर, और भोगोंका वास्तविक स्वरूप जानकर  
 ગૃહવાસસે ચિરક્ષિ ધારણ કી હૈ, और जो महामुनियोंद्वारा सेवित मार्गका  
 અષલમ્બન કરનેકે લિયે ડખત હો રહા હૈ એસે મુમુક્ષુજનકો દેસ્વકર ઉસકે  
 માતા પિતા, पुत्र स्त्री वगैरह स्वजन उससे कहते हैं कि “मा अस्मान्-  
 સ્વજ” तुम हमें मत छोड़ो; कारण कि हम सब तुम्हारी इच्छानुसार  
 પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે एवं तुम्हारे पीछे २ चलनेवाले हैं, तो फिर इस प्रकार  
 સે વર્તન કરનેવાલે હમ સવકો છોડકર તુમ ક્યોં જા રહે હો? इस प्रकार  
 સજ્જોક વિલાપ કરતે હુપ માતા પિતા આદિ સમ્પચ્ચિજન રોતે હૈ और  
 કહતે હૈ कि यह वास्तविक मुनि नहीं है, पापपिंडियों से ठगाये गये इस  
 મોલેમાલેને અપને માતાપિતાદિકકો સર્વથા વ્યર્થ હી છોડ દિયે હૈ,  
 तथा यह संसाररूपी समुद्रके प्रवाहको भी नहीं तैर सकता है ॥ ६०-१४ ॥

એણે સંસાર, શરીર અને ભોગોના વાસ્તવિક સ્વરૂપ જાણી ઇષ્ટ ગૃહવાસથી  
 વિરક્તિ ધારણ કરી છે અને જે મહામુનિઓદ્વારા સેવિત માર્ગનું અવલંબન  
 કરવામાં ઉચ્ચમથીલ રહે છે એવા મોક્ષાભિલાષી જનને ભેષ બેના માતા પિતા,  
 પુત્ર સ્ત્રી વગેરે સ્વજન બેને કહે છે કે “મા અસ્માન્ સ્વજ” તમે અમોને છેડો  
 નહીં કારણ કે અમે બધા તમારી ઇચ્છા અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાના અને તમારી  
 પાછળ પાછળ ચાલવાવાળા છીએ. છતાં પણ તમે અમો બધાને છેડી કેમ વર્ષ  
 રહ્યા છો ? આ પ્રકારનો શોક વિલાપ કરતા માતા પિતા ઇત્યાદિ સબથીજનો  
 રૂબે છે અને કહે છે કે જે વાસ્તવિક મુનિ નથી, પાપહીઓથી ઉત્પન્ન  
 આ ભોળાજાળાએ પોતાના માતા પિતા વગેરેને સમજ્યા વગર સર્વથા છેડી  
 દીધા છે, અને આ સંસારરૂપી સમુદ્રના પ્રવાહને પણ તરી શકતો નથી. (૬૦-૧૪)

अभिसम्बुद्धस्य कर्तव्यमाह—‘सरणं’ इत्यादि ।

मूलम्—सरणं तत्थ नो समेइ, कंहं नु नाम से तत्थ रमइ ?  
एयं नाणं सया समणुवासिज्जासि—त्तिवेमि ॥ सू० १५ ॥

छाया—शरणं तत्र नो समेति, कथं नु नाम स तत्र रमते ? एतद् ज्ञानं सदा  
समनुवासयेः, इति ब्रवीमि ॥ सू० १५ ॥

टीका—तत्र=तस्मिन्नवसरे दीक्षाग्रहणकाले सः=अभिसम्बुद्धः प्रव्रज्यां ग्रहीतु-  
कामो वैराग्यवान् विलपन्तमपि मातापित्रादिकं शरणं नो समेति=नोपगच्छति ।  
संसारस्वरूपसमधिगमसञ्जाततीव्रतरवैराग्यभावनाभावितात्मतया मातापित्रादि-  
कृताऽऽक्रन्दनमवगणय्य संयममार्गमारोहं प्रवृत्तो भवतीति भावः । एतदेव स्पष्ट-

गृहवाससे विमुख जनके कर्तव्योंको सूत्रकार कहते हैं—“सरणं”  
इत्यादि ।

इस सूत्रमें सूत्रकार यह कह रहे हैं कि जब मनुष्य मुनिदीक्षा  
धारण करनेके सन्मुख होता है, वैराग्यसे उसका हृदय भरा हुआ होता  
है तब उस समय वह पूर्वोक्तरूपसे विलाप करते हुए माता पिता आदि  
की बातों में जरा भी नहीं ललचाता; कारण कि उसे यह बात भली-  
भांति ज्ञात हो चुकी है कि मुझे मृत्युसे छुड़ानेमें ये समर्थ नहीं हो सकते  
हैं; क्यों कि ये स्वयं ही उसके आधीन बने हुए हैं। कर्मोंके फलको  
भोगते समय कौन ऐसा संसारमें है जो मुझे सहारा दे सके ?  
यहां धर्मके सिवाय मेरा रक्षक कोई नहीं है। संसारी स्वयं  
अपने २ कर्मोंके उदयसे त्रस्त हो रहे हैं, इनमें कौन किसका रक्षक  
हो सकता है। सबको अपने कर्म भोगने पड़ते हैं। यदि कोई निष्कारण

गृहवासथी विमुग्ध जननारना कर्तव्येने सूत्रकार कहे छे “सरणं” इत्यादि  
आ सूत्रमा सूत्रकार अे कहे छे के ज्यारे मनुष्य मुनिदीक्षा धारण  
करवा योग्य अने छे, वैराग्यथी अेनुं हृदय लराअेलु डोय छे, त्यारे अे समथ  
ते पूर्वोक्तरूपथी विलाप करता माता पिता वगेरेनी वातोमा जग पणु लल-  
यातो नथी, कारणु के अे वात सारी रीते अे नणुी शुकथे डोय छे के अने  
मृत्युना मुग्धमाथी छोडाववामा आ अथा असमर्थ छे, केम के तेअे पोते ज  
अेने आधीन अनेल छे कर्मना इणने लोगवती वणते संसारमा अेलु डोणु  
छे के अने आधाररूप अने धर्मना सिवाय माइ डोअ रक्षक नथी  
संसारी पोते ज पोतपोताना कर्मना उदयथी हु भी थर्थ रह्या छे  
आमा डोणु डोनु रक्षक अनी शके ? अधाने पोताना कर्मना इण लोगववा

यति- 'कथं नु नाम' इत्यादि । स=तीव्रवैराग्यवान् तत्र=तस्मिन् गृह्णासे नरकरूपे मोक्षद्वारगलाभूते कथं नु नाम रमते=अनुरागं कुर्यात् ? किन्तु नैव स तथासक्तो भवितुमर्हति। यतः कारागारवासरूपोऽयं गृह्णासो न कस्याप्यभिसंयुद्धस्य प्रियं

पंधु है-रक्षक है-तो वह एक आराधित घर्म ही है; अतः उसका ही सहारा लेना मुझे उत्तम है । इस प्रकार संसारके स्वरूपके विचारसे उसके हृदयमें तीव्रतर वैराग्यभावकी जागृति होती है । इसका ही यह परिणाम होता है कि जो वह स्वार्थवश रोते बिछाते हुए भी अपने माता पिताकी तरफ थोड़ीसी भी ममत्वदृष्टिसे नहीं निहारता है और सहसा उनसे विरक्त बन संयम मार्गपर आसक्त होनेके लिये कटिपट्ट हो जाता है । इसी बातको "कथं नु नाम तत्र रमते" इस पंक्तिमें खुलासा किया है। ठीक ही है; अरे ! जिसकी आत्मामें तीव्रतर वैराग्यका वास हो चुका है, जो इस संसारको अशरण और असार समझ चुका है, मला ! वह संसारके पथिकोंको शरण और साररूप मान भी कैसे सकता है । उसे तो गृह्णास नरकतुल्य और मोक्षद्वारका अर्गलास्वरूप ही प्रतिभासित होता है । यही कारण है जो वह उसमें आसक्त नहीं होता ।

भाषार्थ—कोई भी प्रतिषुद्ध-समझदार मनुष्य जैसे कारागारमें रहना पसंद नहीं करता है, ठीक इसी प्रकारसे जो संसार, शरीर और

घटे छे आमां डोर्ध निष्कारणु ज-नु होय-रक्षक होय तो ते जेह आराधित धर्म  
 व छे आधी जेने व आश्रय देवे भास भाटे उत्तम छे आ प्रकृति सखा  
 रना स्वर्णना विचारधी जेना दुइयमां वैराग्यभावनी तीव्रतर अमति आव छे  
 जेना परिष्ठाभरूप शैर्ता बिस्वातां पीतानां माता पितृा वनेरेनी स्वार्थवशता  
 तश्च जे अन्तःसरणी पशु मभ्रत्वदृष्टिधी जेतो नथी, जने जेनाधी तदन विरक्त  
 जनी संयम भाव उपर आइह बवा जे मङ्गम जनी आव छे आ वातने  
 "कथं नु नाम तत्र रमते" आ पंक्तिमां खुलासा करैल छे ठीक छे अरे ।  
 जेना आत्मामें वैराग्यने तीव्रतर वास बधं चुक्यो छे आ संसारने जे असा  
 रणु जने असार समझ सुकेल छे जेवो विरक्त बन स्वजनाना स्वार्थवश आकेइने  
 कर्म वश जनी शके ? जेने तो गृह्णास नरकतुल्य जने मोक्षद्वारमां आधकत्व  
 व्युत्पत्तु होय छे आधी ते जेनामा आसक्त नथी जनते।

भाषार्थ—कोई पशु प्रतिषुद्ध-समझ मनुष्य जेम जेह आमांमां  
 रहेवातु पसंद करेता नथी, आ व सीते जे संसार, शरीर जने बोजेना साया  
 स्वर्णने आवी जयेल छे जेने अदृश्यवास प्रिय लागते नथी

स्यादिति भावः । उपसंहरन्नाह—‘एतद्ज्ञान’—मित्यादि । एतत्=अष्टविधकर्मधूनन-  
त्रिषयकधृतवादोक्तं ज्ञानं=जीवकर्मणोरनादिसम्बन्धात्स्वकृतकर्मपरिणत्या पृथिव्या-  
दिपद्मजीवनिर्वायेषु पुनः पुनरन्तानन्तजन्ममरणदुःखौघमनुभूय प्रबलपुण्योदयेन  
मनुष्यभवार्यक्षेत्रसुकुलजन्मादिक्रमुपलभ्य धर्मश्रवणयोग्यावस्थायां वर्तमानः कथञ्चिद्  
धर्मकथादिकं निमित्तमासाद्याभिगतजीवाजीवस्वरूप उपलब्धपुण्यपापः आस्रवसंघ-  
भोगोंके वास्नाविक स्वरूपके ज्ञाता है उन्हें गृहस्थवास भी प्रिय  
नहीं होता है ।

“एतद्ज्ञानं सदा समनुवासयेः—इति ब्रवीमि” ।—

इस प्रकरणका उपसंहार करते हुए सूत्रकार शिष्यसे कहते हैं कि  
इस धृतवादमें अष्टविध कर्मोंके विनाश करनेका जो विषय आया है  
और साथमें जो यह बतलाया गया है कि जीव और कर्मोंका संबंध  
अनादिकालका है, तथा तत्तद्गतिप्रापक कृतकर्मके उदयसे जीव पृथिवीका-  
यिक आदि पर्यायोंमें उत्पन्न होता है, एवं वहां बारंबार अनन्तानंत जन्म-  
मरणके दुःखोंके भारको वहन करता हुआ वह कोई प्रबल पुण्यके उदय  
से मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, सुकुलमें जन्म आदि सामग्रीकी प्राप्तिसे धर्मके  
श्रवण करनेयोग्य अवस्थासम्पन्न बन, कथञ्चित् धर्मकथा आदिके निमित्त  
को पाकर, जीव और अजीवादि पदार्थोंके स्वरूपका ज्ञाता बन, पुण्य और  
पापके यथार्थस्वरूपसे परिचित हो, आस्रव, बंध, संवर और निर्जराके  
कारणोंमें कुशलमति होता हुआ मोक्षमार्ग पर आरूढ हो कर क्रमसे महा  
मुनि होता है, इस प्रकार यह सब विषय प्रतिपादित हुआ है; सो हे शिष्य !

“एतद्ज्ञानं सदा समनुवासये—इति ब्रवीमि ।”

आ प्रकरणेनो उपसंहारं कृत्वा सूत्रकार शिष्येने कहे छे के आ धृतवादमां  
आष्टविध कर्मोने विनाश करवाने के विषय आवेल छे अने साथे के अम  
भताववामा आव्यु छे के एव अने कर्मोने सभध अनादिकालने छे अने  
ते ते गतिआपवावाणा करेल कर्मना उदयथी एव पृथिवीकायिक आदि पर्यायोभा  
उत्पन्न थाय छे, अने त्या बारवार अन तानंत जन्ममरणना दुःखोने लार  
संकेन कृत्वा केछि प्रभण पुण्यना उदयथी मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, सुकुलमा जन्म  
आदि सामग्रीनी प्राप्तिथी धर्मने श्रवण करवा योग्य अवस्थासंपन्न अनी,  
कथञ्चित् धर्मकथा आदिना निमित्तने पाभीने, एव अने अल्लादि पदार्थना  
स्वइपने ज्ञाता अनी, पुण्य अने पापने यथार्थ स्वरूपथी परिचित अनी, आस्रव,  
बंध, संवर अ निर्जरा कालोभा कुशल अनीने, मोक्षमार्गमा आरूढ थईने,

रनिर्भरायन्याधिकरणकुशल सन् मोक्षमार्गास्तः क्रमेण महासुनिर्मषवीत्येत्सु  
सम्यग्बोधो सदा=निरन्तर समनुवासये=स्वात्मनि त्वं सम्यग्नुमावयेः । इति  
ब्रवीमि । व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० १५ ॥

॥ इति पठ्ठाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः समाप्त ॥ ६-१ ॥

सुम इस विषयको भलीभांति अपने हृदयमें चिन्तन करते रहो ।  
“इति ब्रवीमि” इन पदोंका व्याख्यान पूर्वमें कहा ही जा चुका है ।

भाषार्थ—तीव्रवैराग्यसम्पन्न आत्मा अपने संबंधीजनद्वारा प्रदर्शित  
क्रिये गये भ्रमताभरे अनुनयविनयको लक्ष्यमें न देख कर अपने हृदय  
वसित कार्यकी पूर्ति करनेमें ही तल्लीनमति होता है । संसारके कोई भी  
पदार्थ उसे फिर लुभा नहीं सकते । घर उसे लुभा नहीं सकता,  
घर तो उसे कारागार जैसा मालूम होने लगता है । समस्त सम्बन्धीजन  
स्वार्थी एवं अशरण उसे प्रतिभासित होने लगते हैं । एक आराधित  
धर्मको ही वह अपना रक्षक और सहायी मानता है । इसीकी आराधना  
में वह सब कुछ अपना विसर्जित कर देता है । साधारण मुनि अवस्था  
से छे कर जिनकम्पी साधु अवस्थातक की क्रियाओंकी आराधना करता  
सुना यह भाग्यशाली महासुनि की कोटिमें आ जाता है ॥ सू० १५ ॥

॥ छट्ठा अध्ययनका पहला उद्देश समाप्त ॥ ६-१ ॥

इमे इमे महासुनि जने छे आ प्रकार आ अधो विषय प्रतिपादित कथे छे;  
भाटे छे शिष्य । तमे आ विषयनु सारी रीते पोताना लुभमां चिन्तन कस्ता  
रहा “इति ब्रवीमि” आ पदोनु व्याख्यान पूर्वमां ( अगाँ ) कडेवाँ जमु छे  
भाषार्थ—तीव्र-वैराग्य-संपन्न आत्मा पोताना सबधी जनद्वारा कडेवां  
आवेला भ्रमताभर्वा-अनुनय विनयने लक्षमा न देता पोताना हृदय  
वसित कार्यकी पूर्ति कस्तामां न तल्लीन जने छे संसारना कौं पणु पदार्थ जेने पडी  
बोलावी तेना लक्ष्मी इर करी शकते नथी घर जेने बोलावी नथी शकतुं  
घर तो जेने लक्षमाना जेपुं वाजे छे सध्या सबधी जन स्वार्थी जने  
अशरण छे तेवो तेने भास कय छे जेक आराधित धर्मने न ते पोताना  
रक्षक जने नक्षयक माने छे जेनी आराधनामा ते पोताना जपुं-भोध्यवर करी  
रे छे साधारण मुनि अवस्थाधी मांटी लनकधी साधु अवस्था सुधीनी कथा  
जेनी आराधना कस्ता ते भाग्यशाली महासुनिनी कोटीमा लक्ष्मी छे (सू० १५)

छट्ठा अध्ययनने पहिलो उद्देश समाप्त ॥ ६-१ ॥

## । अथ षष्ठाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

इहानन्तरोद्देशके मातापित्रादिस्वजनसङ्गविधूननं निगदितं, तच्च कर्मविधूननं विना न सफलं स्यात्, अतस्तदर्थं द्वितीयोद्देशकं कथयति । तत्रादौ ये गृहीतचारित्र्याः पश्चात् प्रवलमोहोदयात् आचार परित्यजन्ति तेषां संसारपरिभ्रमणाद् विश्रामो न भवतीति तान् बोधयितुमाह—आउर' इत्यादि ।

मूलम्—आउरं लोगमायाए चइत्ता पुव्वसंजोगं हिच्चा उवसमं वसित्तावंभचेरंसि, वसु अणुवसु वा जाणित्तु धम्मं जहा तथा, अहेगे तमचाइ कुसीला, वत्थं पडिग्गहं कंचलं पायपुंछणं विउसिज्ज, अणुपुव्वेण अणहियासमाणा परीसहे दुरहियासए।

### ॥ छट्ठा अध्ययनका दूसरा उद्देश ॥

इस अध्ययनके प्रथम उद्देशमें माता, पिता आदि स्वजनोके संबंध का परित्याग प्रकट किया गया है । परन्तु यह परित्याग कर्मोके विनाश के विना सफल नहीं हो सकता है । इसलिये उन कर्मोके विनाशके निमित्त इस द्वितीय उद्देशका कथन सूत्रकार प्रारम्भ करते हैं । उसमें सर्वप्रथम वे इस बातका निरूपण करते हैं कि जिसने चारित्रकी प्राप्ति तो कर ली है, परन्तु प्रवल चारित्रमोहनीयके उदयसे उस गृहीत चारित्रका परित्याग भी कर दिया है, तो इससे उसका संसारके परिभ्रमणसे विश्राम हो जाता होगा, सो यह बात नहीं है; इसी विषयको उसे समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“आउर” इत्यादि ।

### छठा अध्ययनको पीछे उद्देश.

आ अध्ययनना प्रथम उद्देशमा माता-पिता वगैरे स्वजनोना साथेना सणधने परित्याग प्रकट करयेल छे परतु ये परित्याग कर्मोना विनाश वगर सङ्ग धनी शकते नथी आ माटे कर्मोना विनाशने माटे आ पीछे उद्देशना कथनने सूत्रकार प्रारंभ करे छे अमा सङ्ग प्रथम ते अ वातनु निरूपण करे छे के केके चारित्रनी प्राप्ति तो करी लीधी छे, परतु प्रवल चारित्रमोहनीयना उदयथी अ गृहीत चारित्रने परित्याग पणु करी दीधी छे, तो आथी अना संसारना परिभ्रमणने विश्राम भणी नय छे, आ वात नथी! आ विषयने समजववा माटे सूत्रकार कहे छे “आउर” इत्यादि.



कामे ममायमाणस्त इयार्णि वा मुहुत्तेण वा अपरिमाणाद्यभेया  
एवसे अतरायर्हि कामेर्हि आकेवलिर्हि अवतिष्ठा चेए॥सू०१॥

छाया—मातुरं लोकमादाय त्यक्त्वा पूर्वसंयोगं हित्वा उपशमं उपित्वा ब्रह्म-  
चर्ये, वसत्र अनुवसवो वा ज्ञात्वा धर्मं यथा तथा, अपैके तम् अश्वनुवन्ति कुशीलाः,  
वर्षं पतद्ग्रहं कम्बलं पादमोच्छ्रन् व्युत्सृज्य अनुपूर्वेण अनधिसहमानाः परीपहान्  
दुरधिसहान् कामान् ममायमानस्य इदानीं मुहुत्तेन वा अपरिमाणाद्य भेदः । एवं  
स आन्तरायिकैः कामैः आकेवलिकैः भवतीणां वैते ॥ १ ॥

टीका—लोक=पृथ्वीवनिर्णयम्, आतुर=कठेशितम्, आदाय=मुद्रया दृ-  
ष्ट्वा अवभृष्येतिपावत्, तथा—पूर्वसंयोगे=मातापितृपुत्रकलत्रादिसम्बन्धं त्यक्त्वा,  
तथा—उपशमं=विरतिं, हित्वा=प्राप्य, तथा ब्रह्मचर्ये उपित्वा=स्थित्वाऽपि वसवः=  
सावध, अनुवसवः=पृष्ठधा प्रतिमाया आरभ्य यावदेकादशप्रतिमाभारिभ आब-  
का वा यथा तथाऽवस्थितं धर्मं=भुतचारिभ्रास्यं ज्ञात्वाऽपि, अयं=अनन्तरम्, एकं=  
केचित् मोहोदयात् कुशीलाः सावधानुष्ठानमवृत्ताः सन्तः, त=धर्मं पालयितुं अ-  
न श्वनुवन्ति, अतस्त दुरधिसहान् अनधिसहमानाः वर्षं पतद्ग्रहं=पात्र कम्बलं पाद-

पृथ्वीवनिर्णयस्वरूप इस लोकको क्लेशित अपनी बुद्धिसे जान  
कर, तथा माता, पिता, पुत्र, कलत्र आदि रूप पूर्वसंयोगका परित्याग  
कर, उपशमरूप विरतिको प्राप्त कर, और ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर साधु  
जन, अथवा आबककी छद्मी प्रतिमासे छे कर ११ वीं प्रतिमा तकका आचार  
पालन करनेवाले गृहस्थजन, जिस स्वरूपसे भुतचारिभ्ररूप धर्मकी स्थिति  
है उस रूपसे उसे जान कर भी मोहके उदयसे बादमें कई एक कुशील-  
सावध अनुष्ठानमें प्रवृत्ति करनेवाले हो जाते हैं, और उस भुतचारिभ्ररूप  
धर्मके पालन करनेमें सर्वथा अक्षम बन उससे भ्रष्ट हो जाते हैं । परि

पृथ्वीवनिर्णयस्वरूप आ लोकने पितानी बुद्धिधी क्लेशित लक्ष्मी, माता,  
पिता, पुत्र अने कुटुंबीजनोना पूर्वसंयोगने परित्याग करी, उपशमरूप विर-  
तिने प्राप्त करी, ब्रह्मचर्यव्रतनु पालन करवा उपरांत साधुजन अथवा आबकनी  
छद्मी प्रतिमाधी वर्ष ११वीं प्रतिमा सुधीनु आचार पालन करवावणा गृहस्थ  
जन ने स्वरूपनी भुतचारिभ्ररूप धर्मनी स्थिति छे जे रूपधी जेने लक्ष्मीने पद,  
श्राद्धना उदयधी क्लेशके सत्ववानुष्ठानभं प्रवृत्ति करवावणा लनी लक्ष छे अने  
भुतचारिभ्ररूप धमनु पालन करवाभा उपवा अक्षम यथं ब्रह्म यथं लक्ष  
छे परिष्करोना सहेवाभा अक्षमय लनीने वस, पात्र, कम्बल अने पादप्रोष्ठन



रात्पृथग्भूतरय सस्य पश्चात्कृतस्य—'पञ्चाकडा' इति प्रसिद्धस्य अपरिमित्वाय  
 =अपरिमितकालं यावत् भेदः=मनुष्यशरीरस्यान्तरं व्यपधानं भवति, धर्मात्परिधाय  
 मृतस्य नरकनिगोदाद्यन्तद्दुःखमनुभवतोऽनन्तकालेनापि पुनर्मनुष्यशरीरं दुर्लभं  
 भवति, कथं पुनस्तथायस्येप्रसृष्टकृत्त मपोपिषीजादिसामग्र्याः संभवः ? इति भाषा।

एतदेवोपसंहरन्नाह—'एष' मित्यादि । एषम्=अनया रीत्या सः=मोगार्थी  
 पश्चात्कृतः एते=उदितरे ये भोगामिलापिणो वर्तन्ते एतेऽपि च, आन्तरायिकैः=

समयमें इस क्षणभंगुर शरीरसे जब वियोग होता है, तो फिर पीछे  
 उसके लिये इस दुर्लभ मनुष्य जन्मकी प्राप्ति होनेमें समयका कोई प्रमाण  
 निश्चित नहीं है। छोड़ी हुई उस पर्यायकी पुनरपि प्राप्ति होनेके लिये  
 घिरइकाल अपरिमित है—फिरसे मनुष्यपर्याय प्राप्त होनेके लिये भवोंकी  
 कोई गणना नहीं है—उसकी पुनः प्राप्तिके लिये अपरिमित अन्तर-व्यपधान  
 पड़ जाता है। गृहीतपारिधर्मसे भ्रष्ट बनकर मरे हुए उस अधम मनुष्यकी  
 उत्पत्ति नरकनिगोदादिकोंमें होती है और वह वहाँकी अपार-अनंत  
 दुःखराशिका अनुभव करता रहता है। अनन्तकाल तक भी उसके  
 लिये मनुष्यत्वकी पुनः प्राप्ति होना दुर्लभ हो जाती है। जब यह बात  
 है तो फिर यह तो सिद्ध ही है कि उसके लिये व्यापक्षेत्र, सुकुलमें जन्म,  
 बोधिषीजका लाभ इत्यादि समस्त सामग्रियोंकी प्राप्तिकी संभवता कैसे  
 हो सकती है!

इसीका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—इस रीतिसे यह  
 भोगार्थी तथा इससे अतिरिक्त और भी जो भोगामिलापी हैं वे सब,

समयमा एष कृष्ण गुर शरीरधी न्यारे विवेक यावत् त्वार पथी जेना भाटे  
 एष दुर्लभ मनुष्य जन्मनी प्राप्ति होवायां समयतु कौठ प्रभाष निश्चित नथी  
 छोडेव जे पर्यायनी शरीरधी प्राप्ति यावत् भाटे विरुद्धाण अपरिमित छे—शरीरधी  
 मनुष्यपर्याय प्राप्त कस्वा भाटे कसेनी कौठ गणना नथी—जेनी शरी प्राप्ति  
 भाटे अपरिमित अन्तर (व्यपधान) यध्दय छे गृहीत पारिधर्मधी भ्रष्ट जनी  
 भस्नाए जे अधम मनुष्यनी उत्पत्ति नरकनिगोदादिभा यावत् छे जने जे त्थानी  
 अपार-अनन्त दुःखराशिनो अनुभव कस्ते रहे छे. अनन्तकाल सुधी पथु जेने  
 भाटे मनुष्यत्वनी प्राप्ति दुर्लभ जनी जय छे न्यारे एष बात छे तो पथी  
 जे तो सिद्ध छे छे तेने भाटे पार्थक्षेत्र सुकुलमा जन्म, बोधिषीजने लाभ  
 इत्यादि समस्त सामग्रियोंनी प्राप्तिनी संभवता पथु केम यध्द शके ? कौठ  
 कजे यध्द शके नकि. जेनो उपसंहार करता सूत्रकार कहे छे छे एष रीतधी  
 ते भोगार्थी तथा ज्ञानधी अतिरिक्त जेव पथु जे भोगामिलापी छे

अन्तरायबहुलत्वादुःखमयैः आकेवलिकैः, केवलम्=अखण्डं सम्पूर्णमिति यावत्, न केवलमकेवलं तत्र भवा आकेवलिकाः=असंपूर्णास्तैः=भोगेच्छां पूरयितुमक्षमैःकामैः =शब्दादिविषयैः अतृप्ताः सन्तः मनुष्यशरीरव्यवधानं प्राप्नुवन्ति ॥ मू० १ ॥

अन्तरायबहुल होनेसे दुःखमय एवं असंपूर्ण इन शब्दादिविषयरूप कामोंसे अतृप्त होते हुए मनुष्य शरीरकी पुनः प्राप्तिके कालको व्यवधान (अन्तर) सहित कर देते हैं, आकेवलिक शब्दका अर्थ असंपूर्ण है और वह इस प्रकारसे कि अखंड-संपूर्णका नाम केवल है, जो केवल नहीं वह अकेवल है। उसमें जो हो वह आकेवलिक है। कामोंको असंपूर्ण इसलिये बतलाया गया है कि वे भोगोंकी इच्छाकी पूर्ति करनेमें असमर्थ हैं। ज्यों ज्यों इनका लाभ होता है त्यों त्यों जीवकी इच्छाएँ इन्हें अधिकाधिकरूपसे भोगनेके लिये बढ़ती जाती हैं।

भावार्थ—जो मनुष्य इस षड्जीवनिकायरूप लोकाको क्लेशित समझकर उसका परित्याग कर देते हैं, तथा मातापिता आदि संबंधीजनों से भी विमुख बन कर चारित्रधर्मकी आराधना करनेमें लवलीन हो जाते हैं—चारित्रके पालनसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी ब्रह्मचर्य आदिक पालने जैसी अन्य क्रियाएँ हैं उन सबका भी वे अच्छी तरहसे पालन करते हैं, परन्तु फिर भी मोहकी प्रवलतासे वे उस गृहीत चारित्र से भ्रष्ट बनकर मिथ्यात्वी तक हो जाते हैं और मुनिचिन्होंका सर्वथा

ये अधा अन्तरायबहुल होवाथी दुःखमय अने असंपूर्ण आ शब्दादि विषयरूप कामोथी अतृप्त थता थतां मनुष्य शरीरनी पुन प्राप्तिना कालने व्यवधान (अन्तर) सहित करी दे छे आकेवलिक शब्दने अर्थ असंपूर्ण छे, अने ते आ प्रकारे के अखंड संपूर्णतु नाम केवल छे, ने केवल नहीं ये अकेवल छे. येमां ने होय ते आकेवलिक छे कामोने असंपूर्ण ये माटे गतावेद छे के ते लोगोनी धर्मज्ञानी तृप्ति करवामा असमर्थ छे नेम नेम लोगोने लाभ थाय छे तेमतेम लवनी धर्मज्ञो अने अधिकाधिक रूपथी लोगववा माटे वधती नय छे.

भावार्थ—ये मनुष्य षड्जीवनिकायरूप लोकने क्लेशरूप समझने तेने परित्याग करी दे छे तथा माता पिता अने पोताना संबंधीजनोंथी पणु विमुख अपनी चारित्रधर्मनी आराधना करवामा तदलीन थर्थ नय छे चारित्रना पालनथी समथ शष्वावाणी नेटली पणु ब्रह्मचर्य आदि पाणवा नेवी अन्य क्रियाओ छे ये अधानु पणु ते सारी रीते पालन करे छे छतां पणु मोहनी प्रवणताथी ये अदृष्ट करेला चारित्रथी भ्रष्ट अपनी मिथ्यात्वी अपनी नय छे, अने मुनिचिन्होने सर्वथा परित्याग करी विषयलोगोनी आहनामां

યસ્તુ આસન્મોક્ષતયા વર્ષંચિત્ ક્રુતચિત્ ચારિત્ર માપ્ય લઘુકર્મતયા પ્રવર્ષમાન-  
;પરિણામો મવતિ, સ સિદ્ધિપદં પ્રાપ્નોતીતિ ચોધયિતુમાઃ—‘અહેગે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્ય—અહેગે ધમ્મમાયાય આયાણપ્પભિઙ્ગ સુપણિહિય ચરે  
અપ્પલીયમાણે દહેસવ્વ ગિદ્ધિ પરિણાય, પસ પણપ મહામુણીસૂં ૨ ।

છાયા—અષ્ટકો ધર્મમાદાય આદાનમ્મૃતિ મુપ્પચિરિત્તચરેત્ અપ્પલીયમાન રહઃ  
સર્વા શુદ્ધિ પરિણાય, પપ પ્રણતો મહામુનિ ॥ સૂં ૨ ॥

ટીકા—અય=અનન્તરમ્, एक=કષિદાસ્માર્ષી ધર્મ=શ્રુતચારિત્રાત્પમ્,  
પરિત્યાગ કર, વિષયમોગોકી આહનાર્મૈ ફેસ, ડનકા સેવન કરતે હુપ  
અપને અતિદુર્લભ મનુષ્યજન્મકો વ્યર્થ નષ્ટ કર, નરકનિગોદાદિક  
ગતિયોકિ અનંત કષ્ટોકો મોગતે રહતે હૈ । ડેસે જીવોકો ફિરસે માનવ  
જન્મ કવ કેસે પ્રાસ હોગા ॥ સૂં ૧ ॥

આસન્મમ્મ્ય હોનેસે મોક્ષકી પ્રાપ્તિ જિન્હે નિકટ સમયમે હોનેવાલી  
હૈ વે કિસી મી તરહસે કહીસે મી ચારિત્રધર્મકી પ્રાપ્તિ કર લઘુકર્મવાલે  
હોનેકી ઘજહસે ચારિત્રધર્મકી પાલનાર્મે વર્ષિતપરિણામવાલે હોતે હૈ  
ઔર સિદ્ધિપદકો પ્રાસ કર હેતે હૈ—હસ વાતકો સમજાનેકે લિપે સૂત્રકાર  
કહતે હૈ “અહેગે” ઇત્યાદિ ।

‘અય’ શબ્દકા અર્થ અનન્તર હૈ । જિસકા તાત્પર્ય હૈ કિ જો ચારિત્ર  
ધર્મકો પ્રાસ કર કિસી કારણવશ ડસકા પરિત્યાગ કર વેતે હૈ ડનકી  
વયા દુર્વશા હોતી હૈ સો તો પ્રકટ કર વી ગઈ હૈ । અય જો ચારિત્રકો  
ઘાવડજીવન પાલસે હૈ ડનકે વિષયમે ઘઈ કહા જાતા હૈ—

કચી તેનુ સેવન કરે છે અને પોતાના અતિદુર્લભ એવા મનુષ્ય જ મને વ્યર્થ  
નષ્ટ કરી નરકનિગોદાદિક અતિએના અનંત કષ્ટોને ભોગવતો રહે છે એવા છવોને  
કરીથી માનવ જ મ ક્યારે કેમ પ્રાસ થશે (સૂં ૧)

આસન્મમ્મ્ય કોવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ હોને નિકટ સમયમાં થવાવાળી છે,  
એ કોઈ પણ શીતથી કષ્ટાચથી પણ ચારિત્રધર્મની પ્રાપ્તિ કરી લઘુકર્મવાળા હોવાને  
કારણે ચારિત્રધર્મને પાળવામાં વર્ષિતપરિણામવાળા હોય છે અને સિદ્ધિપદને  
પ્રાપ્ત કરી લે છે આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે ‘અહેગે’ ઇત્યાદિ ।

અય શબ્દનો અર્થ અનન્તર છે તેનુ તાત્પર્ય એ છે કે જે ચારિત્ર  
ધર્મને પ્રાપ્ત કરી કોઈ કારણવશ તેના પરિત્યાગ કરી દે છે એની શું દુઃશ  
થાય છૌ, એ તો પ્રગટ કરી દેવામા આવી છે હવે જે ચારિત્રને માવજીવન  
પાળે છે તેના વિષયમા અર્થિ કહેવામાં આવે છે

आदाय=गृहीत्वा, आदानप्रभृति=श्रुतचारित्रधर्मग्रहणकालादारभ्य, सुप्रणिहितः=सावधानः परीषहसहनशीलः अप्रलीयमानः=कामभोगेषु न प्रलीयमानः-अनासक्तः, अतएव-दृढः=गृहीततपःसंयमानुष्ठानप्रतिज्ञायामविचलितचित्तः सर्वा गृद्धि=विषयभोगेच्छां परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञयाऽनन्तदुःखकारणत्वेन विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया तां दूरत एव परिहृत्य चरेत्=भगवदुपदिष्टं धर्म समाचरेदित्यर्थः । एषः=चारित्रमादाय सर्वगृद्धिभावपरित्यागी महामुनिः=महापुरुष एव प्रणतः=कर्मधूनने सम्यक् प्रवृत्तो भवति, न तु तदन्यः कातर इति ॥ सू० २ ॥

अपरं च—‘ अहअच्च ’ इत्यादि ।

जो कोई आत्मार्थी श्रुतचारित्ररूप धर्मको प्राप्त कर उसकी प्राप्तिके समयसे लेकर जीवनपर्यन्त परीषह और उपसर्गोंके सहन करने में सावधान रहते हैं—परीषह उपसर्ग आने पर चारित्रसे विचलितचित्त नहीं होते हैं, तथा कामभोगोंमें जो सदा वाञ्छारहित होते हैं, एवं जो दृढ-गृहीत तप और संयमके अनुष्ठान करनेकी प्रतिज्ञामें अविचलितचित्त होते हैं, ऐसे बंदनीय मुनि समस्त विषयभोगोंकी इच्छाओंको अनन्त दुःखोंका कारणरूप ज्ञपरिज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञासे उनका दूर ही से परित्याग कर, वीतरागकथित निर्मल चारित्रकी आराधना करते हैं । चारित्रको प्राप्त कर समस्त विषयोंमें गृद्धिभावके परित्यागी वे ही महामुनि हैं, और वे ही कर्मोंकी रज हटाने—उडानेमें अच्छी तरह प्रवृत्त होते हैं, इनके सिवाय अन्य-दूसरे कायर नहीं ! ॥ सू० २ ॥

तथा ‘ अहअच्च ’ इत्यादि—

जे केई आत्मार्थी श्रुतचारित्ररूप धर्मने प्राप्त करी तेनी प्राप्तिना समयथी भाडीने जवनपर्यन्त परिषह अने उपसर्ग सहन करवामां सावधान रहें छे परिषह उपसर्ग आववाथी चारित्रथी विचलितचित्त नथी थता, तथा कामभोगोथी जे सदा वाछा-रहित अने छे जेवा जे दृढतापूर्वक अहृषु करेव तप अने संयमनु अनुष्ठान करवानी प्रतिज्ञामा अविचलितचित्त होवाथी जेवा बंदनीय मुनि अने जे समस्त विषयभोगोने तथा इच्छाज्योने अनन्त दुःखोना कारणरूप ज्ञपरिज्ञाथी ज्ञानी अने अने प्रत्याख्यान परिज्ञाथी तेना छेथी जे परित्याग करी वीतरागकथित निर्मल चारित्रनी आराधना करे छे चारित्र प्राप्त करी समस्त विषयोमा गृद्धिभावनो परित्यागी जे छे, जे जे मुनि छे अने जे जे कर्मोनी रज हर करवामा-उडाडवामां सारी रीते प्रवृत्त होथे छे जेना सिवाय अन्य-भीज कायर नहि (सू० २)

तथा “ अहअच्च ” इत्यादि ।

મૂલ્મ્—અહમ્ સવ્વઓ સગ ણ મહ અસ્થિત્તિ હ્ય યગો  
અહં, અસ્તિ જયમાણે હસ્થ વિરપ્ અણગારે, સવ્વઓ મુદ્દે રીયતે,  
જે અચેલે પરિવુસિપ્ સંચિક્સવ્વહ્ ઓમોયરિયાપ્ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—અતિગત્ય સર્વતઃ સદ્ધં ન મમ અસ્તિ, इति एकोऽहमस्मिन् यतमानः  
अत्र विरतः अनगारः, सर्वतो मुण्डः रीयमाण, यः अचेलः पर्युपित' संतिष्ठते  
अमोदरिकायाम् ॥ सू० ३ ॥

ટીકા—મમ નાસ્તિ કિંચિત્, इति=अतः अहमेक एवास्मीति मायनामान्ति  
सर्वतः=सर्वथा सद्दं=मातापित्रादिसम्बन्धम् अतिगत्य=अतिक्रम्य अस्मिन् भाषारे  
यतमान -यतनां कुर्वन्, अत्र=विषयभोगे विरतः-सर्वथा निवृत्तः, अतएव अनगारः=  
श्रवितः, सर्वतोमुण्डः=द्रव्यत' केषुलुब्धनेन भाषतो रागद्वेषराहित्येन मुण्ड',  
रीयमाण -सपमानुष्ठाने विहरन् यः अचेलः=अल्पचेलः-जिनकरिपको वा, पर्युपितः  
=पर्युपिताहारी, अमोदरिकायां=नूनोदरतायां संतिष्ठते=वर्तत, तदपि पर्युपिताह  
ने नोदरपूरणेन कित्त्वमोदरिकायेति भावः। स महामुनिरिति पूर्वेषु सम्बन्धः ॥ सू० ३ ॥

“एगोहं” में एक हूं, मेरा संसारमें कोई नहीं है, मैं अकिञ्चन हूँ-  
इस प्रकारकी भावनासे जिसका मन बशमें किया हुआ है, और इसी  
भावनासे ओतप्रोत बन जो मातापिता-आदिके सम्बन्धसे रहित बना  
हुआ है, ऐसा वह महामुनि अपने गृहीतचारित्र्यकी आराधनामें समझल  
रखता हुआ, विषयभोगोंसे सर्वथा विरक्त होता है। मुनिदीक्षासे सुशो  
भित वह मुनिरत्न सर्व प्रकारसे मुण्ड-द्रव्यसे केशोंके लुब्धन करनेसे  
एवं भावसे राग-द्वेषसे रहित होनेसे-होता है। संयमके अनुष्ठानमें  
विचरण करता हुआ वह अचेल-अल्पचेलबाला होता है, अथवा जिन  
कल्पी बनता है। पर्युपित (ठण्डा-घासी) आहार भी अल्प आहारमें

“एगोहं” हूँ એક હું, માઈ સંસારમાં કોઈ નથી હું અકિચન છ  
આ પ્રકારની ભાવનાથી જેણે પોતાનું મન વશ કરેલ છે, અને જેવી ભાવ  
નાથી ઓતપ્રોત બની જે માતા, પિતા આદિના સંબંધથી રહિત બનેલ છે, એવા  
જે મહામુનિ પોતે શુદ્ધ કરેલ આસ્ત્રિની આરાધનામાં સંભાળ રાખતાં વિષય  
બોધથી સવધા વિરક્ત બને છે મુનિદીક્ષાથી મુશોભિત જે મુનિરત્ન સર્વ  
પ્રકારથી મુણ્ડ દ્રવ્યથી કેશલોચન કરવાથી (વાગનુ ખેલવાથી) અને ભાવથી  
રાગ-દ્વેષથી રહિત થવાથી બને છે સમમતા અનુષ્ઠાનમાં વિચરણ કરનાર જે  
અચેલ-અલ્પ ચલનાર બને છે અથવા ઇનકરથી ભાષ છે પર્યુપિત (ઠંડા

अवमोदरिकायां वर्तमानस्य परीषहसहनमाह—‘से आकुट्टे’ इत्यादि।

मूलम्—से आकुट्टे वा हए वा लुंचिए वा पलियं पकत्थ अदुवा पकत्थ अतहेहिं सदफासेहिं, इय संखाए एगयरे अन्नयरे अभिन्नाय तित्तिक्खमाणे परिठवए । जे य हिरीजे य अहिरीमाणा ॥ सू० ४ ॥

छाया—स आकुट्टो वा हतो वा लुञ्चितो वा पलितं प्रकथ्य अथवा प्रकथ्य अतथ्यैः शब्दस्पर्शैः, इति संख्याय एकतरान् अन्यतरान् अभिज्ञाय तित्तिक्षमाणः परिव्रजेत् । ये च हीरूपाः ये च अहीमनसः ॥ सू० ४ ॥

टीका—सः=अवमोदरिकः यदा केनचिद्धर्मानभिज्ञेन पलितं=पूर्वकृतं जुगुप्सितं कर्म प्रकथ्य=‘भो प्रव्रजित ! पूर्वं काष्ठहारादिकर्म कृत्वा प्रव्रजितवेषः किमिदानीं मामुपदेष्टुं प्रवृत्तः’ इत्यादिवाक्यैर्विनिन्द्य, अथवा अतथ्यैः=अशोभनैः असंगतैः=अनुचितैः शब्दस्पर्शैः=‘त्वं चौरः पारदारिकः’ इत्यादिशब्दैः, तथा

ही मानना चाहिये । अर्थात् पर्युषित आहार भी ऊनोदररूपसे ही लेता है, भरपेट नहीं ॥ सू० ३ ॥

अल्प-आहारी-अवस्थामें भी परीषह और उपसर्गों को उसे सहन करना चाहिये, इसे सूत्रकार कहते हैं—“से आकुट्टे इत्यादि ।

वह अवमोदरिकाव्रती साधु यदि किसी धर्मानभिज्ञ व्यक्तिके द्वारा इस प्रकारसे कहा जाय कि हे प्रव्रजित ! तुम तो पहिले लकड़ियां बेचा करते थे, अब कबसे साधु बन गये हो ? साधुका वेष पहिन कर क्या इस समय हमें उपदेश दे रहे हो ? हम तुम्हारे जैसे हीनकुलका उपदेश नहीं सुनना चाहते ! अथवा इस प्रकारके अनुचित वाक्योंसे यदि कोई उसकी निंदा करे कि तुम तो परदारलंपट हो, चोर हो; या

वासी ) आहार ले छे, अथवा उनोदर-अल्प-आहारी थाय छे पर्युषित आहारने पणु अल्प आहार न मानवो नेधंये, अर्थात् आहार पणु उनोदररूपथी न ले छे, पेट भरिने नहीं (सू० ३)

अल्प-आहारी अवस्थामां पणु परिषड् अने उपसर्गो अणु सडन करवा नेधंये आने सूत्रकार कडे छे “से आकुट्टे” इत्यादि !

अे अवमोदरिकाव्रती साधुने कही कोध धर्मानभिज्ञ व्यक्तितनी मारइत आ प्रकारथी कडेवाय डे डे प्रव्रजित ! तमे तो पडेवां लाकडा वेयता डता, क्यारथी साधु अनि गया छे ? साधुने वेश पडेरी शु आ समय अमने उपदेश आपी रहा छे ? अमे तमारा नेवा डलडा कुणना माणुसने उपदेश सांलगवा नथी धंछता ” अथवा आ प्रकारनां अनुचित वाक्योथी कोध अेमनी निंदा करे डे तमे तो अलिचारी छे, चोर छे, अथवा कोध “अेने डथ कापे, पग कापे,



મૂલ્મ્—અહ્યઞ્ચ સવ્વઓ સગ ણ મહ અત્થિત્તિ હ્ય ય્ગો  
અહ, અસ્સિ જયમાણે इत्य विरए अणगारे, सव्वओ मुंढे रीयते,  
जे अचेले परिवुसिए संचिक्खइ ओमोयरियाए ॥ सू० ३ ॥

છાયા—અતિગત્ય સર્વતઃ સર્જં ન મમ અસ્તિ, इति एकोऽमस्मिन् यतमानः  
अत्र विरतः अनगारः, सर्वतो मुण्डः रीयमाण, यः अचेल पर्युपितः संतिष्ठते  
अनमोदरिकायाम् ॥ सू० ૩ ॥

ટીકા—મમ નાસ્તિ ક્વિચિત્, इति=अतः अहमेक एवास्मीति भावनामापित  
सर्वतः=सर्वथा सर्जं=मातापित्रादिसम्बन्धम् अतिगत्य=अतिक्रम्य अस्मिन् आचारे  
यतमान -यतनां कृत्वा, अत्र=विषयभोगे विरतः=सर्वथा निवृत्तः, अतएव अनगारः=  
प्रजितः, सर्वतोमुण्ड=द्रव्यतः केशलघ्नेन माफतो रागद्वेषराहित्येन मुण्डः,  
रीयमाणः=सयमानुष्ठाने विहरन् यः अचेल=अल्पवेसः=जिनकल्पिको वा, पर्युपितः  
=पर्युपिताहारी, अनमोदरिकायां=न्यूनोदरतायां संतिष्ठते=वर्तते, तदपि पर्युपिताश्च  
मं नोदरपूरणेन किंत्वत्रमोदरिकायेति भावः। स महामुनिरिति पूर्वेण सम्बन्धः ॥सू० ३॥

“एगोहं” मैं एक हूँ, मेरा ससारमें कोई नहीं है, मैं अकिञ्चन हूँ—  
इस प्रकारकी भावनासे जिसका मन ब्रह्ममें किया हुआ है, और इसी  
भावनासे ओतप्रोत बन जो मातापिता—आदिके सम्बन्धसे रहित बना  
हुआ है, ऐसा वह महामुनि अपने एहीतत्त्वारिचकी आराधनामें सम्हाल  
रखता हुआ, विषयभोगोंसे सर्वथा विरक्त होता है। मुनिदीक्षासे सुशो  
भित वह मुनिरत्न सर्व प्रकारसे मुण्ड—द्रव्यसे केशोंके लुञ्चन करनेसे  
एवं भावसे राग—द्वेषसे रहित होनेसे—होता है। संयमके अनुष्ठानमें  
बिचरण करता हुआ वह अचेल—अल्पवस्त्रधाला होता है, अथवा जिन  
कल्पी बनता है। पर्युपित (ठण्डा—धासी) आहार भी अस्य आहारमें

“एगोहं” હું એક છું, મારું સસારમાં કોઈ નથી હું અકિચ્ચન છું  
આ પ્રકારની ભાવનાથી જેણે પોતાનું મન બ્રહ્મ કરેલ છે, અને એવી ભાવ  
નાથી ઓતપ્રોત બની જે માતા, પિતા આદિના સબંધથી રહિત બનેલ છે, એવા  
એ મહામુનિ પોતે અલ્પ વસ્ત્ર ધારિત્રીની આસપાસમાં સબાળ સખતાં વિષય  
બોજાથી સવયા વિરક્ત બને છે. મુનિદીક્ષાથી મુશોભિત એ મુનિરત્ન સર્વ  
પ્રકારથી મુપ્ક, દ્રવ્યથી કેશલોચન કરવાથી (વાગનું જે સવાથી) અને ભાવથી  
રાગ—દ્વેષથી રહિત સવાથી બને છે. સયમના અનુષ્ઠાનમાં વિચરણ કરનાર એ  
અચેલ—અલ્પ વસ્ત્રધારી બને છે, અથવા ઇનકર્ષી થાય છે. પર્યુપિત (ઠંડા

अवमोदरिकायां वर्तमानस्य परीषहसहनमाह—‘ से आकुट्टे ’ इत्यादि।

मूलम्—सेआकुट्टे वा हए वा लुञ्चिए वा पलियं पकत्थ अदुवा पकत्थ अतहेहिं सहफासेहिं, इय संखाए एगयरे अन्नयरे अभिन्नाय तित्तिक्खमाणे परिठ्वए । जे य हिरीजे य अहिरीमाणा ॥सू०४॥

छाया—स आकुट्टो वा हतो वा लुञ्चितो वा पलितं प्रकथ्य अथवा प्रकथ्य अतथ्यैः शब्दस्पर्शैः, इति संख्याय एकतरान् अन्यतरान् अभिज्ञाय तित्तिक्षमाणः परिव्रजेत् । ये च हीरूपाः ये च अहीमनसः ॥ सू० ४ ॥

टीका—सः=अवमोदरिकः यदा केनचिद्गर्मानभिज्ञेन पलितं=पूर्वकृतं जुगुप्सितं कर्म प्रकथ्य=‘ भो प्रव्रजित ! पूर्वं काण्ठहारादिकर्म कृत्वा प्रव्रजितवेषः किमिदानीं माण्डपदेष्टुं प्रवृत्तः ’ इत्यादिवाक्यैर्विनिन्द्य, अथवा अतथ्यैः=अशोभनैः असंगतैः=अनुचितैः शब्दस्पर्शैः=‘ त्वं चौरः पारदारिकः ’ इत्यादिशब्दैः, तथा

ही मानना चाहिये । अर्थात् पर्युषित आहार भी उनोदररूपसे ही लेता है, भरपेट नहीं ॥ सू० ३ ॥

अल्प-आहारी-अवस्थामें भी परीषह और उपसर्गों को उसे सहन करना चाहिये, इसे सूत्रकार कहते हैं—“ से आकुट्टे इत्यादि ।

वह अवमोदरिकाव्रती साधु यदि किसी धर्मानभिज्ञ व्यक्तिके द्वारा इस प्रकारसे कहा जाय कि हे प्रव्रजित ! तुम तो पहिले लकडियां बेचा करते थे, अब कबसे साधु बन गये हो ? साधुका वेष पहिन कर क्या इस समय हमें उपदेश दे रहे हो ? हम तुम्हारे जैसे हीनकुलका उपदेश नहीं सुनना चाहते ! अथवा इस प्रकारके अनुचित वाक्योंसे यदि कोई उसकी निंदा करे कि तुम तो परदारलंपट हो, चोर हो; या

वासी ) आहार दे छे, अथवा उनोदर-अल्प-आहारी थाय छे पर्युषित आहारने पणु अल्प आहार न मानवो जेधंअे, अर्थात् आहार पणु उनोदरउपथी न दे छे, येट भरीने नहीं ( सू० ३ )

अल्प-आहारी अवस्थामां पणु परिषड् अने उपसर्गो अणु सहन करवा जेधंअे आने सूत्रकार कहे छे “ से आकुट्टे ” इत्यादि !

अे अवमोदरिकाव्रती साधुने कही केधं धर्मानभिज्ञ व्यक्तितनी भारत आ प्रकारथी कडेवाय के छे प्रव्रजित ! तमे तो पडेवां लाकडां बेचता डता, क्यारथी साधु भनी गया छे ? साधुनेा वेश पहरी शु आ समय अमने उपदेश आपी रखा छे ? अमे तमारा नेवा डलका कुणना भाणुसनेा उपदेश सांलणवा नथी धर्यता ” अथवा आ प्रकारनां अनुचित वाक्योथी केधं अेमनी निंदा करे के तमे तो व्यलिचारी छे, चोर छे, अथवा केधं “ अेनो डाय कापे, पग कापे,

एते=परीपहसिष्यवः नन्ना=माषकना-अकिंचनाः निर्ग्रन्थाः उक्ता=तीर्थङ्करैः  
कथिता ॥ सू० ६ ॥

मूलम्-आणाय मामग धम्म, एस उत्तरवाय इह माणवाण  
वियाहिय ॥ सू० ७ ॥

छाया-आज्ञया मामकं धर्मम्, एष उत्तरवादः इह मानवेभ्यो व्याख्यातः । अ  
टीका—‘आणाय’ इत्यादि । आज्ञया=ममोपदेशेन मामक=मदीयं मयाऽङ्गी  
कृत धर्म सम्यगनुपासयेत् इत्येषमुक्तं मगवता । एष उत्तरवादः=उत्कृष्टोपदेशः  
इह=मनुष्यलोके मानवेभ्यो व्याख्यातः, इह मनुष्यायमेतद्वचनमुक्तं तेषामेव  
सम्पूर्णधर्मांशपनयोग्यतासम्भवात् ॥ सू० ७ ॥

आते हैं वे ये परीपहोंको सहन करनेके स्वभाववाले भावनग्न-अकिंचन  
निर्ग्रन्थ साधु तीर्थङ्करों द्वारा कहे गये हैं ।

भाषार्थ—परीपहोंके जीतनेमें जो अपनी शक्तिका पराक्रम प्रकट  
करते हैं और उनसे अनुग्रहण घन कर जो “कार्य वा साधयामि  
शरीर वा पातयामि”—अपने गृहीत मुनिवतरूप कार्यकी सफलतायें सर्व  
प्रकारके सुखों को सर्वथा त्याग चुके हैं और अपनी प्रतिज्ञाके नियोंद्वारा  
परीपहोंसे अडोल घन कर उनका सामना करते हैं—कभी भी घर नहीं  
आते हैं, वे ही सन्धे भाषसाधु हैं; ऐसा तीर्थङ्करोंका आदेश है ॥ सू० ६ ॥

मनुष्यों में ही संपूर्ण भ्रतचारित्ररूप धर्मके आराधन करनेकी योग्यता  
का समाप है, इसलिये मैंने उनके लिये ही यह वचन कहा है कि वे मेरे  
कहनेसे मेरे द्वारा अङ्गीकृत धर्मका अच्छी तरह पालन करें; क्यों कि

दोषान्तरांशके वे घर पाछा नहीं करते, ते को परिषदोंने सत्तन करवाना स्वभाव  
वाणा भावनग्न-अकिंचन निर्ग्रंथ साधु तीर्थङ्करोंकी कहेवाया है

भाषार्थ—परिषदोंने उत्तवाभा के पीतानी शक्तिनु पराक्रम प्रकट करे  
उं भने वेदी अनुग्रहण लनी के “कार्य वा साधयामि शरीरं वा पातयामि”—

भेते धारण करेला मुनिवतरूप कार्यनी सङ्गता भाटे अथ प्रभास्य मुषोनो के  
अथ वा त्याग करी चुका है भने पीतानी प्रतिज्ञा पूज करवा परिषदीकी आदेश  
लनी तेना के सामने करे है—कही पूज पर तरहे नजर सरभीके करता

नहीं, वेण साधा-आवसाय है-वेवा तीर्थङ्करोंने आदेश है (सू० ६)  
भावशेषा व स पूज मुन्यारित्ररूप धर्मनु आराधन करवाना योग्यताने  
ने भा भाटे मैंने भाटे व आ वचन कहेव है के तेणे भास कहे

मूलम्—इत्थोवरणं तंज्ञोसमाणे आयाणिज्जं परिन्नाय परिया-  
एण विंगिचइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—अत्रोपरतः तद् द्रोषयन् आदानीयं परिज्ञाय पर्यायेण विवेचयति ॥८॥

टीका—‘ इत्थोवरणं ’ इत्यादि । अत्र=अस्मिन् कर्मधूननोपाये संयमे, उप-  
रतः=उप=सामीप्येन रतः संलग्नः सन्, तद्=अष्टविधं कर्म द्रोषयन्=क्षययन्  
धर्मं चरेदित्यर्थः । अतः आदानीयं=कर्म परिज्ञाय मूलोत्तरप्रकृतिभेदेन ज्ञात्वा पर्या-  
येण=श्रमणधर्मार्राधनेन विवेचयति=पृथक् करोति—क्षययतीत्यर्थः ॥ सू०८ ॥

सकलकर्मधूननक्षमं यद्वाहं तपस्तदधिकृत्याह—‘ इह एगोसिं ’ इत्यादि ।

यह उत्कृष्ट धर्मका उपदेश मनुष्योंके लिये ही कहा गया है ।

भावार्थ—यह उत्कृष्ट धर्मका उपदेश मनुष्योंके लिये ही है ऐसा  
जो कहा जाता है, उसका कारण मनुष्योंमें ही सम्पूर्ण रूपसे धर्मार्राधन  
करनेकी योग्यता रही हुई है, अन्योमें नहीं ! अतः उन्हींके निमित्त  
धर्मका उपदेश है, अन्य प्राणी भी इससे आत्महित कर सकते हैं ॥सू०७॥

कर्मके विनाश करनेमें उपायस्वरूप इस संयममें लवलीन हुआ  
मुनि अष्टविध कर्मका विनाश करता हुआ धर्मकी आराधना करे; क्यों  
कि मूल और उत्तर प्रकृतिके भेदसे कर्मका परिज्ञान कर श्रमणधर्मकी  
आराधना करनेसे मनुष्य उन कर्मोंका क्षय करता है ॥सू०८॥

समस्त कर्मोंके विनाश करनेमें समर्थ जो बाह्य तप है उसकी  
अपेक्षासे सूत्रकार कहते हैं—“इह एगोसिं” इत्यादि ।

वाथी मारा डारा अगीकृत धर्मनु सारी रीते पालन करे, डेमडे आ उत्कृष्ट—धर्मने  
उपदेश मनुष्योने माटे न छे.

भावार्थ—‘ आ उत्कृष्ट धर्मने उपदेश मनुष्यो माटे न छे ’ એમ જે  
કહેવામા આવે છે એનું કારણ મનુષ્યોમા ન સર્વો્ષ્ણ રૂપથી ધર્મારાધન કરવાની  
યોગ્યતા રહેલી છે, અન્યમા નહીં આથી એમના નિમિત્ત ધર્મને ઉપદેશ છે, અન્ય  
પ્રાણી પણ આનાથી આત્મહિત કરી શકે છે. ( સૂ ૭ )

કર્મને વિનાશ કરવાના ઉપાયસ્વરૂપ એ સંયમમા લવલીન બનેલા મુનિ,  
અષ્ટવિધ કર્મને વિનાશ કરતા, ધર્મની આરાધના કરે કેમ કે મૂલ અને ઉત્તર  
પ્રકૃતિના ભેદથી કર્મનું પરિજ્ઞાન કરી શ્રમણધર્મની આરાધના કરવાથી મનુષ્ય  
એના કર્મોનો ક્ષય કરે છે ( સૂ ૮ )

સમસ્ત કર્મોનો વિનાશ કરવામા સમર્થ જે બાહ્યતપ છે એની અપેક્ષાથી  
સૂત્રકાર કહે છે “ ઇહ એગોસિં ” ઇત્યાદિ

करचरणच्छेदन-मेदन-मोटनादिरूपै स्पष्टैश्च प्रकटय=कट्यर्थाकृतस्य आकृष्ट=भासिष्वा  
 वा=अथवा इतः=यष्टिप्लुष्टधाविभिस्ताडित' दृष्टितो वा=केन्द्रार्कपणेन नस्तावासेन च  
 व्याकुलीकृतः सन् इति='मम पूर्वकृतकर्मफलमेतत्' इत्यर्थं सम्प्राय=पर्याप्तोऽन्य  
 एकतरान्=उक्तरूपान् प्रतिकूलपरीपहान् अथवा अन्यतरान्=तस्मिन्माननुकूल परिप  
 हान्=सत्कारपुरस्कारादिरूपानपि अभिज्ञाय=मोक्षमार्गप्रतिबन्धका एते इति विषयै  
 तिविस्तमाप्त्=उभयानपि परीपहान् समभावेन सहमान' परिज्जेत=चिहरेत् ।  
 प्रकारान्तरेणापि परीपहद्वैविध्यं दर्शयति-'ये चे 'त्यादि । य च परीपहा' शी-  
 रूपाः=लज्जारूपाः-अवलरूपा यावनादिरूपा वा, तथा ये च अहीमनस=अप्यज्ञा

कोई " उसका हाथ काटे, पैर छेदे, गर्दन पकड़ कर मरोड़ देवे "-इस प्रकारसे उसे दुःखित करे, लकड़ी, मूठ आदिसे कोई यदि उसे ताड़ित करे, बालोंको पकड़ कर यदि कोई उसे घसीटे, अथवा लोंचि, तो भी उस साधुको यही बिचारना चाहिये कि "मम पूर्वकृत कर्मफलमेतत्" ये सब उपसर्ग मेरे पूर्वकृत कर्मोंके ही फल है । इनमें इनका कुछ भी अपराध नहीं । इस प्रकारसे जब उसके ऊपर ये पूर्वोक्त धार्ते प्रतिकूल परीपहके रूपमें आती है, अथवा सत्कार, पुरस्कार आदि अनुकूल परीपहरूपमें आती हैं तो उस समय उसे यही बिचारकर कि ये मम "मोक्ष मार्गकी प्रतिबन्धिका हैं" उन्हें खुशीसे सहना चाहिये । चाहे अनुकूल परीपह हों, चाहे प्रतिकूल परीपह हों, चाहे कोई उपसर्ग करे, अथवा सत्कार करे, सब अवस्थाओंमें मुनियों को समभाव रखना चाहिये । इसी प्रकार जो अचेलरूप-(अल्प वस्त्र-सामान्य वस्त्र)-अथवा याचनादि,

गहन पकड़ी भरती नाजे" आ प्रकार जेने दुःखित करे, हाथी के हाथभी मार मारे, बाग पकड़ीने काँठ बसरे, अथवा बौद्धि, तो पक्ष साधुजे विचारयुं जेधजे के "मम पूर्वकृतकर्मफलमे सत्"—आ उपसर्ग मारा पूर्वकृत कर्मोना हल स्वल्प छे आमां तेना काँठ अपराध नहीं आ रीते मारे जेना उपर जे पूर्वोक्त वातो प्रतिकूल परिबन्धना रूपमां आवे छे अथवा सत्कार, पुरस्कार आदि अनुकूल परिबन्धरूपमां आवे छे तो जे समय जेहे जे विचार करीने के ज्ञ लभी वातो 'मोक्षमार्गनी प्रतिबन्धिका छे' तेने खुशीभी सही हेवुं जेधजे. जेहे अनुकूल परिबन्ध होय आडे प्रतिकूल परिबन्ध होय, आडे काँठ उपसर्ग करे के सत्कार करे लभी अवस्थाजोमां मुनियोजे समभाव सजवे जेधजे आ रीते जे अचेष्टरूप (अल्प वस्त्र-सामान्य वस्त्र) अथवा याचनादिहप परिबन्ध जे लज्जारूप छे अने शीत, उष्ण आदि अवस्थाहप छे आ जेने

रूपाः=शीतोष्णादयस्तान् द्विविधानपि परीषहान् समभावेन तितिक्षमाणः परित्रि-  
जेदिति सम्बन्धः ॥ सू० ४ ॥

मूलम्—चिञ्चा सठ्वं विसुत्तियं फासे समियदंसणे ॥सू० ५ ॥

छाया—त्यक्त्वा सर्वा विस्रोतसिकां स्पृशेत् समितदर्शनः ॥ सू० ५ ॥

टीका—किञ्च—‘ चिञ्चा ’ इत्यादि । समितदर्शनः=सम्यग् इतं-गतं प्राप्तं  
दर्शनं यस्य स समितदर्शनः—सम्यग्दृष्टिरित्यर्थः । सर्वा विस्रोतसिकां=परीषह-  
प्रयुक्तं दुश्चिन्तनं त्यक्त्वा स्पृशेत्=सर्वान् परीषहान् अधिसहेत् ॥ सू० ५ ॥

मूलम्—एए भो ! णगिणा वुत्ता जे लोगंसि अणागमण-  
धम्मिणो ॥ सू० ६ ॥

छाया—एते भो ! नग्ना उक्ता ये लोकेऽनागमनधर्मिणः ॥ सू० ६ ॥

टीका—‘ एए भो ’ इत्यादि । भोः शिष्याः ! ये अनागमनधर्मिणः=अप्र-  
त्यागमनशीला.—आहतप्रतिज्ञाभारधारणशीलत्वात् पुनर्गृहं प्रत्यागन्तुं नेच्छन्तीत्यर्थः,

रूप परीषहें लज्जारूप हैं और जो शीत उष्ण आदि अलज्जारूप हैं, इन  
दोनों परीषहों को भी उसे समभावसे युक्त होकर ही सहन करना चाहिये,  
तभी कर्मोंका नाश होगा ॥ सू० ४॥

—अच्छी तरह अथवा अच्छा प्राप्त है दर्शन जिसे उसका  
नाम समितदर्शन—सम्यग्दृष्टि है । वह परीषहप्रयुक्त दुश्चिन्तनका त्याग  
कर समस्त परीषहोंको सहे । परीषहोंको सहते समय कभी भी आर्त्त  
रौद्ररूप परिणाम नहीं करना चाहिये, शांति और समतासे उन्हें  
सहना चाहिये ॥ सू० ५ ॥

शिष्योंको सम्बोधित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो !  
जो अनागमनधर्मी हैं—गृहीतमुनिव्रतधारणरूप प्रतिज्ञाके भारको  
बहन करनेके स्वभाववाले होनेकी वजहसे जो पीछे लौट कर घर नहीं

परिषडोने पणु समभावथी युक्त थधं ओणु सडन करवा नेधंओ त्यारे न कर्मेनि।  
नाश थशे. (सू०४)

सारी रीते प्राप्त छे दर्शन नेने तेनु नाम समितदर्शन ओटवे सम्यग्दृष्टि  
छे ते परिषडप्रयुक्त भारण चिन्तनने त्याग करी सधणा परिषडोने सडे. ते  
परिषडोने सडन करती समय कही पणु तेने आर्त्त रौद्ररूप परिणाम नडि  
करनु नेधंओ, शांति अने समताथी तेने सडपु नेधंओ (सू०५)

शिष्योने स बोधन करता सूत्रकार कडे छे के डे शिष्यो । ने अनागमन-  
धर्मी छे—धारणु करेव मुनिव्रतरूप प्रतिज्ञाना भारने वहन करवाने स्वभाववाणा

एते=परीपहसहिष्णव नम्रा=माषनगना-अकिंचनाः निर्ग्रन्थाः उक्ता=तीर्थङ्करैः  
कथिता ॥ सू० ६ ॥

मूलम्-आणाए मामग धम्म, एस उत्तरवाए इह माणवाणं  
विद्याहिण ॥ सू० ७ ॥

छाया-आज्ञया मामकं धर्मम्, एष उत्तरवादः इह मानवेभ्यो व्याख्यातः । अ  
टीका-‘आणाए’ इत्यादि । आज्ञया=ममोपदेशेन मामकं=मदीयं मयाऽङ्गी  
कृत धर्म सम्यगनुपालयेत् इत्येवमुक्तं मगधता । एष उत्तरवादः=उक्तश्लोपदेश  
इह=मनुष्यश्लोके मानवेभ्यो व्याख्यातः, इह मनुष्यावमेतद्वचनमुक्तं तेषामेव  
सम्पूर्णधर्मारामनयोग्यतासम्भावात् ॥ सू० ७ ॥

आते हैं वे ये परीपहोंको सहन करनेके स्वभाववाले भाषनगन-अकिंचन  
निर्ग्रन्थ साधु तीर्थङ्करों द्वारा कहे गये हैं ।

भाषार्थ-परीपहोंके जीतनेमें जो अपनी शक्तिका पराक्रम प्रकट  
करते हैं और उनसे अनुद्विग्न बन कर जो “कार्य वा साधयामि  
शरीर वा पातयामि”-अपने गृहीत मुनिमतस्य कार्यकी सफलतायें सर्व  
प्रकारके सुखों को सर्वथा त्याग चुके हैं और अपनी प्रतिज्ञाके निर्घोहार्य  
परीपहोंसे अबोल बन कर उनका सामना करते हैं-कमी भी घर नहीं  
आते हैं, वे ही सच्चे भावसाधु हैं; ऐसा तीर्थङ्करोंका आदेश है ॥ सू० ६ ॥

मनुष्यों में ही संपूर्ण भूतचारित्र्यस्य धर्मके आराधन करनेकी योग्यता  
का समावेश है, इसलिये मैंने उनके लिये ही यह वचन कहा है कि वे मेरे  
कहनेसे मेरे द्वारा अङ्गीकृत धर्मका अच्छी तरह पालन करें; क्यों कि

दोषान्तर कारणों से ये पर पाछ नहीं करते वे जो पस्विदोने सहन करवाना स्वभाव  
वाण्य भाषनगन-अकिंचन निर्ग्रन्थ साधु तीर्थङ्करोंकी कहेवाया है

भाषार्थ-अकिंचनोने उत्तरवातां से पारतन्त्री शक्तिपु ५५६५ प्रकट करे  
छे अने अंधी अनुद्विग्न अनी से “कार्य वा साधयामि शरीर वा पातयामि”-  
पोते धारण करेवा मुनिमतस्य कार्यनी अक्षयता भाटे अत्र प्रकाशना सुभोनोंके  
अथवा त्याग करी चुक्या छे अने पारतन्त्री प्रतिज्ञा पूर्व कस्य पस्विदोषी अटोल  
अनी तेना से आभना करे छे-कही पण पर तरह नजर सरधीअे करता  
नधी अेव आत्मा-भावसाधु छे-अेवा तीर्थङ्करोंने आदेश छे (सू० ६)

भाष्यसोभां ए स पूज्य भूतचारित्र्यस्य धर्मस्य आराधनं कर्तव्यं योऽन्यतान्ते  
सहसाव छे अा भाटे से अेभने भाटे ए अा वचन कहेव छे के तेअे भास कहे

મૂલમ્—ઈત્યોવરણ તં જ્ઞોસમાણે આયાણિજ્જં પરિજ્ઞાય પરિયા-  
ણ વિંગિચઈ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

છાયા—અત્રોપરતઃ તદ્ જ્ઞોષયન્ આદાનીયં પરિજ્ઞાય પર્યાયેણ વિવેચયતિ ॥૮॥

ટીકા—‘ ઈત્યોવરણ ’ ઇત્યાદિ । અત્ર=અસ્મિન્ કર્મધૂનનોપાયે સંયમે, ઉપ-  
રતઃ=ઉપ=સામીપ્યેન રતઃ સંલગ્નઃ સન્, તદ્=અષ્ટવિધં કર્મ જ્ઞોષયન્=ક્ષપયન્  
ધર્મ ચરેદિત્યર્થઃ । અતઃ આદાનીયં=કર્મ પરિજ્ઞાય મૂલોત્તરમ્કૃતિભેદેન જ્ઞાત્વા પર્યા-  
યેણ=શ્રમણધર્મારાધનેન વિવેચયતિ=પૃથક્ કરોતિ—ક્ષપયતીત્યર્થઃ ॥ સૂ૦૮ ॥

સકલકર્મધૂનનક્ષમં યદ્વાહ્યં તપસ્તદધિકૃત્યાહ—‘ ઇહ ઇગોસિ ’ ઇત્યાદિ ।

યહ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મકા ઉપદેશ મનુષ્યોંકે લિયે હી કહા ગયા હૈ ।

ભાવાર્થ—યહ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મકા ઉપદેશ મનુષ્યોંકે લિયે હી હૈ એસા  
જો કહા જાતા હૈ, ઉસકા કારણ મનુષ્યોંમેં હી સમ્પૂર્ણ રૂપસે ધર્મારાધન  
કરનેકી યોગ્યતા રહી હુઈ હૈ, અન્યોંમેં નહીં ! અતઃ ઉન્હીંકે નિમિત્ત  
ધર્મકા ઉપદેશ હૈ, અન્ય પ્રાણી ભી ઇસસે આત્મહિત કર સકાતે હૈ ॥સૂ૦૭॥

કર્મકે વિનાશ કરનેમેં ઉપાયસ્વરૂપ ઇસ સંયમમેં લલલીન હુઆ  
મુનિ અષ્ટવિધ કર્મકા વિનાશ કરતા હુઆ ધર્મકી આરાધના કરે; ક્યોં  
કિ મૂલ ઓર ઉત્તર પ્રકૃતિકે ભેદસે કર્મકા પરિજ્ઞાન કર શ્રમણધર્મકી  
આરાધના કરનેસે મનુષ્ય ઉન કર્મોંકા ક્ષય કરતા હૈ ॥સૂ૦૮॥

સમસ્ત કર્મોંકે વિનાશ કરનેમેં સમર્થ જો બાહ્ય તપ હૈ ઉસકી  
અપેક્ષાસે સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ ઇહ ઇગોસિ ” ઇત્યાદિ ।

વાથી મારા દ્વારા અગીકૃત ધર્મનું સારી રીતે પાલન કરે, કેમકે આ ઉત્કૃષ્ટ—ધર્મનો  
ઉપદેશ મનુષ્યોને માટે જ છે.

ભાવાર્થ—‘ આ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મનો ઉપદેશ મનુષ્યો માટે જ છે ’ એમ જે  
કહેવામા આવે છે એનું કારણ મનુષ્યોમા જ સંપૂર્ણ રૂપથી ધર્મારાધન કરવાની  
યોગ્યતા રહેલી છે, અન્યમા નહીં આથી એમના નિમિત્ત ધર્મનો ઉપદેશ છે, અન્ય  
પ્રાણી પણ આનાથી આત્મહિત કરી શકે છે ( સૂ૦ ૭ )

કર્મનો વિનાશ કરવાના ઉપાયસ્વરૂપ એ સયમમા લલલીન બનેલા મુનિ,  
અષ્ટવિધ કર્મોનો વિનાશ કરતા, ધર્મની આરાધના કરે કેમ કે મૂલ અને ઉત્તર  
પ્રકૃતિના ભેદથી કર્મનું પરિજ્ઞાન કરી શ્રમણધર્મની આરાધના કરવાથી મનુષ્ય  
એના કર્મોનો ક્ષય કરે છે ( સૂ૦ ૮ )

સમસ્ત કર્મોનો વિનાશ કરવામા સમર્થ જે બાહ્યતપ છે એની અપેક્ષાથી  
સૂત્રકાર કહે છે “ ઇહ ઇગોસિ ” ઇત્યાદિ



मूलम्—इह एगोसि एगचरिया होइ, तत्थियरा इयरोहिं कुलेहिं सुद्धेसणाए सव्वेसणाए से मेहावी परिव्वए। सुब्बि अदुवा दुब्बि अदुवा तत्थ भेरवा पाणा पाणे किलेसति, ते फासे पुट्ठो धीरे अहियासिज्जासि चिवेमि ॥ सू० ९ ॥

छाया—इह एकेपामेकषयां भवति, तत्रेतरादितरेषु कुलेषु शुद्धैपण्या सर्वैपण्या स मेघावी परिव्रजेत् । सुरभि अयवा दुरभि अयवा तत्र भेरवाः प्राणाः प्राणान् क्लेशयन्ति, तान् स्वर्णान् स्पृष्टो पीरः अधिसहस्र इति भवामि ॥ सू० ९ ॥

टीका—इह=अस्मिन् जिनज्ञासने, एकेपां=केपांचित् श्रियिलीकृतकर्मबन्धानां एकषयां=एकाकिविहरणप्रतिमा भवति । तत्र चानेकरूपा अभिप्रहविशेषाः भवन्ति, अतः प्राश्रुतिकादोषमक्लिष्ट्याह—उत्रेत्यादि । तत्र तस्मिन् एकाकिविहारे स=कर्मधूननार्थमुद्यतः, मेघावी=साधुमर्यादाव्यवस्थितः, इतरादितरेषु=अज्ञातेषु अन्तमा तपु या क्लेषेपु शुद्धैपण्या—शुद्धादिदशैपणादोपरिहितेनासनादिना सर्वैपण्या=आहारापुद्गमोत्पादन्यासैपणारूपा या सर्वैपण्या तथा, परिशुद्धेन विधिना कर्म धूननोपाये संपमे परिव्रजेत्=विहरेत्, तथा सुरभि=सिंहकेसरमादकादिक दुरभि=

जिनके कर्मोका पच शिथिल हो गया है ऐसे मुनिराजोंकी एकषयां होती है, इस षयांमें उनके अनेक प्रकारके अभिप्रहविशेष होते हैं । प्राश्रुतिका दोषको छेकर सुप्रकार कहते हैं कि उस एकाकिविहारमें कर्मोके विनाश करनेमें उद्यत एवं साधुमर्यादामें व्यवस्थित वह मेघावी मुनि अज्ञात अथवा अन्तप्रान्त कुलोमें शुद्ध-एपणा-शुद्धादिक दश एपणा के दोषोंसे रहित आहारादिकसे और सर्वैपण्या-आहारादिकके उद्गम, उत्पादन एवं प्राप्त एपणासे परिशुद्ध विधिसे कर्मोके विनाशक संपम में लक्ष्मीन रहता हुआ विहार करे, और सुरभि-सिंहकेसरमोदक वगैरह, और दुरभि-बल्लषणा आदिसे निष्पन्न पर्युषित अस्त्र-

जेमना कमनो पच शिथिल भवति अथैत ए जेवा मुनिराजोनी जेकषयां भवति ए आ षयांमा जेमने अनेक प्रकारने अभिप्रहविशेष भवति ए प्राश्रुतिका दोष एतन्ने क्लेशे ए क्लेशाकिविहारमा जेमने विनाश करवायां उत्पर, अने साधुमर्यादां व्यवस्थित जे मेघावी मुनि, अज्ञात अथवा अन्तप्रान्त कुलोमां शुद्ध एपण्या—शुद्धादिक दश एपण्यानां दोषोक्लेश आहारादिकेभी अने सर्व एपण्या—आहारादिकेने उद्गम उत्पादन अने प्राप्त—एपण्याभी परिशुद्ध विधिभी जेमने विनाश करवाए संपममां लक्ष्मीन रही विहार करे, अने सुरभि—सिंहकेसरमोदक वगैरह अथवा दुरभि—बल्लषणा वगैरेशी निष्पन्न पर्युषित आटी अथ

वल्लचणकादिनिष्पन्नं पर्युषितमन्नमम्लतक्रादिमिश्रितं वा प्राप्य परिव्रजेत्=रागद्वेष-  
रहितो विहरेत् । शास्त्रविधिमनतिक्रम्य यथाख्यं प्रशस्ताप्रशस्तगन्धयुक्तमाहारादि-  
कमङ्गारधूमादिमण्डलदोषपरिवर्जनपूर्वकं भुञ्जीतेति भावः, तथा चोक्तम्—

“पडिग्गहं संलिहत्ताणं लेवमायाइ संजए ।

सुगंधं वा दुगंधं वा, सव्वं भुंजे न छड्डए ॥ १ ॥ (दश वै० अ० ५ उ० २)

अथवा—भोः शिष्य ! एकाकिविहारे श्मशानादौ भैरवाः=भयंकरा. प्राणाः  
पिशाचादयः प्राणान्=अन्यान् प्राणिनः, यद्वा प्राणान्=तव प्राणान् क्लेशयन्ति—उप-

तक्र (खाटी छाछ) आदिसे मिश्रित अन्नको राग-द्वेष रहित भोगे ।  
शास्त्रोक्त विधिके अनुसार जो भी निर्दोष आहार उसे प्राप्त हो- चाहे  
वह प्रशस्तगन्धयुक्त हो, चाहे अप्रशस्त गन्धवाला हो, उस आहारको  
वह अङ्गार धूमादिमण्डल दोषसे परिवर्जित भोगे । कहा भी है—

“पडिग्गहं संलिहत्ताणं, लेवमायाइ संजए ।

सुगंधं वा दुगंधं वा, सव्वं भुंजे न छड्डए ॥” (दश. अ. ५ उ. २ गा. १)

अथवा—एकाकीविहार करनेवाले शिष्यको शिक्षा देते हुए सूत्रकार  
कहते हैं कि हे शिष्य ! जब तुम एकाकिविहारमें हो, और कदाचित्  
श्मशान आदिमें ध्याननिमित्त रहना पड़े, तो उस दशामें यदि वहां  
रहनेवाले भयङ्कर पिशाचादिक प्राणी कि जिनका स्वभाव ही दूसरे प्राणियों  
को कष्ट पहुंचानेका होता है तुम्हें भी क्लेशित करें—कष्ट-उपसर्ग  
पहुंचावें तो तुम उन कष्टोंसे घबराना नहीं, प्रत्युत धीरवीरकी तरह

आदिथी मिश्रित अन्नने, राग-द्वेष रहित भोगवे शास्त्रोक्तविधि अनुसार जे  
पणु निर्दोष आहार तेने प्राप्त थाय, आडे ते प्रशस्त गंधवाणा होय, आडे अप्र-  
शस्त गंधवाणा होय, ते आहारने ते अगार धूमादिमण्डल दोषोथी रहित  
भोगवे कहु पणु छे—

“पडिग्गहं संलिहत्ताणं, लेवमायाइ संजए ।

सुगंधं वा दुगंधं वा, सव्वं भुंजे न छड्डए ॥” (दशवै० अ० ५ उ० २ गा० १)

अथवा—ऐकाकि विहार करवावाणा शिष्यने समनवता सूत्रकार कडे छे डे  
डे शिष्य ! न्यारे तमे ऐकाकीविहारमा हो, अने कदाचित् श्मशान आदिमा  
ध्यान निमित्त गड्डेनुं पडे तो तेवी दशामा कदाय ते जग्ग्याये रहेवावाणा भय-  
कर पिशाच आदि प्राणी डे जेना स्वभाव पीण प्राणीओने कष्ट पहुंचायाड-  
वाने छे, तमने पणु क्लेश आपे—उपसर्ग पहुंचायाडे तो तमे तेवा कष्टोथी

सापयन्ति । त्वं तु तैः क्लेशैः स्पृष्टः, पीरः—अधोम्यः सत् तान् स्पर्शान्—दुःखविशेषान् भविसहस्र—इति व्रवीमि, अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ ६० ९ ॥

॥ पष्ठाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ६-२ ॥

उन कष्टोंको अक्षुब्धचित्त धन शांतिभावसे सहन करना । “इति व्रवीमि” इन पदोंकी पहिले जैसी ही व्याख्या समझ लेनी चाहिये।

भावार्थ—एकाकिविहार करनेवाले साधु के ही हो सकते हैं जो जितेन्द्रिय होते हैं और उपसर्ग एवं परीपहोंसे जो कमी भी बिचलित चित्त नहीं होते हैं । इनके अनेक प्रकारके नियम होते हैं । ये ऐसी कोई भी प्रवृत्ति नहीं करते कि जिससे साधुमर्यादाका भङ्ग हो । आहार के लिये जब ये निकलते हैं तब चाहे अन्तप्रान्त हो, कैसा भी क्यों न हो, जहां भी इन्हें शास्त्रादिक दश एषणाके दोषोंसे रहित आहार मिल जायगा अथवा सर्वेषणासे जो परिशुद्ध होगा, कल्प समझ कर ये उसे ले लेंगे । वह चाहे सिंहकेशरमोदकादिक हो चाहे, बहुवर्णकादिक से बना और अम्लतकादिकसे मिश्रित हो, उसमें इन्हें कोई भी जलका पक्षपात नहीं होता है । आहारके विषयमें इनकी यही शुद्धरति रहती है कि कुछ भी मिलेपर उसे शास्त्रविधिके अनुसार ही ग्रहण करेंगे

असत्त्वा नहीं, पक्ष पीर वीरुनी शीते तेवा कष्टोने क्षोभविना शांतिभावधी सहन करे. “इति व्रवीमि” आ पदोनी पठेखानी भाइकळ व्याख्या समज्नी जेईजे.

भावार्थ—एकाकीविहार करवावाणा साधु के लक्ष्य हो के जितेन्द्रिय होय के, उपसर्ग अने परिपहोधी के कष्टि पक्षु विचलितचित्त यदा नहीं जेमना अनेक प्रकारना नियमो होय के, तेज्यो ज्योई कष्ट पक्षु प्रवृत्ति नहीं करता के जेनाधी साधुमर्यादानो भंग यथा आकारने भाटे न्यारे ते नीकले के तयारे लसे अन्तप्रान्त होय, जमे तेषु कर्म न होय, ज्यां पक्षु तेने शका द्विक जेपखाना दोषोधी रहित आकार मणी अव्य अथवा सवैपखुधी के परिशुद्ध होय तेने कल्प समज्ने ते कष्ट ले. जे लसे सिंहकेशरमोदकादिक होय चाहे अक्षुब्धकादिकधी अनेक अने जाती छया आदिमी मिश्रित होय तेमा तेने कष्ट पक्षु वतनेो पक्षपात जतो नहीं, आकारना विषयमां तेनी अथवा शुद्ध नजर रहे के कष्ट पक्षु भये, पक्षु तेने शास्त्रविधि अनुसार के कष्टु भीय.

शिष्योंको सम्बोधन करते हुए सूत्रकार अन्तमें कहते हैं कि इस एकाकिविहारमें साधुको अनेक प्रकारकी आपत्तिविपत्तियोंका सामना करना पड़ता है । कभी २ तो यहां तक भी मौका आ जाता है कि श्मशान आदिमें पहुंचने पर साधुके उपर भयंकर पिशाचादि प्राणियों का उपसर्ग होता है; परन्तु वह धीरवीर साधु उनसे कभी भी घबराता नहीं है और सहर्ष उन परीपह-उपसर्गोंको जीतकर अपने संयमकी रक्षा करता है ॥सू०९॥

छट्ठा अध्ययनका दूसरा उद्देश समाप्त ॥ ६-२ ॥

शिष्योने सम्बोधन करता सूत्रकार कहे छे के आ ऐकाकीविहारमा साधुने अनेक प्रकारनी आपत्ति-विपत्तिनो सामनो करवो पडे छे क्यारेक क्यारेक तो ऐवो पणु प्रसग आवे छे के श्मशान आदिमा पहुँचता साधुना उपरलय कर पिशाचादि प्राणीओना उपसर्ग थाय छे, परन्तु ते धीरवीर साधु ऐनार्थी कौछि वषत गलराता नथी, अने सहर्ष ऐवा परिषड उपसर्गने छुतीने पोताना सयमनी रक्षा करे छे

छट्ठा अध्ययननो भीजे उद्देश समाप्त ॥ ६-२ ॥



चापयन्ति । त्वं तु तैः क्लेशैः स्पृष्टः, धीरः—अशोभ्यः सन् तान् स्पर्शान्—दुःखनि-  
शेषान् अभिसहस्व—इति प्रवीमि, अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ ६० ९ ॥

॥ यष्टाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ६-९ ॥

उन कष्टोंको अशुभचिन्तित वन शांतिभावसे सहन करना । “इति प्रवीमि” इन पदोंकी पहिले जैसी ही व्याख्या समझ लेनी चाहिये।

भाषार्थ—एकाकिषिहार करनेवाले साधु वे ही हो सकते हैं जो जितेन्द्रिय होते हैं और उपसर्ग एवं परीपहोंसे जो कमी भी विचलित चित्त नहीं होते हैं । इनके अनेक प्रकारके नियम होते हैं । ये ऐसी कोई भी प्रवृत्ति नहीं करते कि जिससे साधुमर्यादाका भङ्ग हो । आहार के लिये जब ये निकलते हैं तब चाहे अन्तप्रान्त हो, कैसा भी क्यों न हो, जहाँ भी इन्हें शाकादिक वृक्ष पपणाके दोषोंसे रहित आहार मिल जायगा अथवा सर्वेषणासे जो परिशुद्ध होगा, कल्प समझ कर ये वसे ले लेंगे । वह चाहे सिंहकेशरमोदकादिक हो चाहे, बल्लुचणकादिक से बना और अम्लतकादिकसे मिश्रित हो, उसमें इन्हें कोई भी जातका पक्षपात नहीं होता है । आहारके विषयमें इनकी यही शुद्धदृष्टि रहती है कि कुछ भी मिलेपर उसे शास्त्रविधिके अनुसार ही ग्रहण करें।

गलराता नहीं, पक्षु धीर वीरनी सीते तेवा कष्टोने क्षोभविना शांतिभावभी सहन करे। “इति प्रवीमि” आ पदोंनी पहिलानी भाङ्ग व्याख्या समझनी लेईजे।

भाषार्थ—एकाकिषिहार कस्यावाणा साधु को ही होय छे जे जितेन्द्रिय होय छे, उपसर्ग अने परिपहोभी जे कष्टि पक्षु विचलितचित्त भवा नथी जेभना अनेक प्रकारना नियमो होय छे, तेज्जे जेवी कष्ट पक्षु प्रवृत्ति नथी करता छे जेनाथी साधुमर्यादाने भंग याय आहारने भटे न्यारे ते नीकवे छे त्यारे लखे अन्तप्रान्त होय, जमे तेवुं केम न होय, अथा पक्षु तेने शकादिक जेपणाना दोषोधी रहित आहार भणी जब अथवा सर्वेषणाभी जे परिशुद्ध होय तेने कल्प समझने ते लछ वे। जे लखे सिंहकेशरमोदकादिक होय चाहे अम्लतकादिकसे अनेक अने जानी छाश आदिभी मिश्रित होय तेमा तेने कष्ट पक्षु जातनो पक्षपात भयो नथी, आहारना विषयमां तेनी जेवनी शुद्ध नजर रहे छे के कष्ट पक्षु भजे, पक्षु तेने शास्त्रविधि अनुसार जे ग्रहण करीय।



। अथ पष्ठाध्ययनेस्य तृतीय उद्देश ।

इहानन्तरद्वितीयोद्देशक कर्मधूनन सोपायं प्रदर्शितम् । तच्चोपकरणशरीरम  
मत्स्विधूननं विना न समवतीत्यतस्तद्विषयोषयितुं तृतीयमुद्देशकं कथयति, तत्रार्थो  
मुनिमर्यादामाह—‘ एयं खु ’ इत्यादि ।

मूलम्—एयं खु मुणी आयाण सया सुअक्खायधम्मो विहूयकप्पे  
णिज्झोसइत्ता ॥ सू० १ ॥

छाया—एतत्तल्ल मुनिरादानं सदा स्वास्यातधर्मं विपृतकल्पः  
निर्गोप्य ॥ सू० १ ॥

टीका—सदा=सर्वदा स्वास्यातधर्मं=सु=मुष्टु=सम्पत्प्रकारेण आस्यात=  
भगवता प्रकृतः भगवत्स्यागरूपो धर्म एव धर्म यस्य स स्वास्यातधर्मः, तथा-

छहा अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

इस अध्ययनके द्वितीय उद्देशमें कर्मोंका क्षय उपायसहित प्रदर्शित  
किया जा चुका है । कर्मोंका क्षय भी जब तक उपकरण और शरीरमें  
भगवत्का अभाव नहीं होगा तब तक नहीं हो सकता है, इसलिये उसे  
समझानेके लिये इस तृतीय उद्देशका सूत्रकार कथन करते हैं । उसमें  
सर्वप्रथम वे मुनिकी मर्यादा कहते हैं—‘ एयं खु ’ इत्यादि ।

सर्वदा जिसके हृदयमें भगवत्प्रकृत भगवत्स्यागरूप धर्म विद्य  
मान है, जो यह समझता है कि भगवत्स्याग ही सच्चा धर्म है, अर्थात्-  
जिनप्रवचनमें कथित प्रतिज्ञाके भारको बहन करनेमें जो शक्तिसम्पन्न

छट्टा अध्ययनना त्रीजे उद्देश

॥ अध्ययनना त्रीजे उद्देशमा कर्मोना क्षय उपायसहित प्रदर्शित करवाना  
आवेक छे कर्मोना क्षय पखु ॥ सुधी उपकरणे जने शरीरमा भगवत्को  
अभाव नहिं बाध तया सुधी बधिं शकतो नही ॥ अभाटे जे समव्यवना ॥  
त्रीजे उद्देश सूत्रकार कहे छे जेभा सर्वप्रथम जे मुनिनी मर्यादा कहे छे  
“ एयं खु ” इत्यादि ।

सदाव जेना हृदयमा भगवत्प्रकृत भगवत्स्यागरूप धर्म विद्यमान छे  
वे जे समझे छे के भगवत्स्याग ही सच्चा धर्म छे, अर्थात्-जिनप्रवचनमा कहेक  
प्रतिज्ञाका भारने बहन करवावा जे शक्तिसम्पन्न छे, तथा विपृतकल्प-सारी

विधूतकल्पः—विधूतः=सम्यक् स्पृष्टः कल्पः=आचारो येन स विधूतकल्पः=ज्ञाना-  
 चारादिपरिपालको मुनिः एतत्=पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं वा आदानं=कर्मोपादानं  
 धर्मोपकरणतिरिक्तं वस्त्रादिकं निर्वोष्य=वर्जयित्वा—अस्वीकृत्येत्यर्थः,  
 विहरति ॥ सू० १ ॥

किञ्च—‘जे अचेले’ इत्यादि ।

मूलम्—जे अचेले परिवुसिए, तस्स णं भिक्खुस्स नो एवं  
 भवइ—परिजुण्णे मे वत्थे, वत्थं जाइस्सामि, सुत्तं जाइस्सामि,  
 सूइं जाइस्सामि, संधिस्सामि, सीविस्सामि, उक्कसिस्सामि,  
 वुक्कसिस्सामि, परिहिस्सामि, पाउणिस्सामि ॥ सू० २ ॥

छाया—योऽचेलः पर्युषितस्तस्य खलु भिक्षोर्नो एवं भवति—परिजीर्णं मे  
 वत्तं, वत्तं याचिष्ये, सूत्रं याचिष्ये, सूचीं याचिष्ये, संधास्यामि, सेविष्यामि,  
 उत्कर्षयिष्यामि, व्युत्कर्षयिष्यामि, परिधाष्यामि, प्रावरिष्यामि ॥ सू० २ ॥

है, तथा विधूतकल्प—अच्छी तरहसे जिसने कल्पका स्पर्श किया है—  
 ज्ञानाचार आदि आचारका जो पालक है, ऐसा मुनि पूर्वोक्त तथा आगे  
 कहे जानेवाले धर्मोपकरणके सिवाय अन्य वस्त्रादिकका त्याग कर मुनि-  
 धर्ममें विचरण करता है ।

भावार्थ—जो यह समझता है कि ममत्वत्यागरूप धर्म ही कि जिस  
 की प्ररूपणा और पालना तीर्थङ्करादि देवोंने की है यही धर्म है, तथा जो  
 ज्ञानाचारादिकका भलीभांति पालन करनेमें सावधान रहता है और  
 धर्मोपकरणके सिवाय अन्य वस्त्रादिक परिग्रहरूप होनेसे कर्मोंके  
 उपार्जन करानेवाले हैं, ऐसा विचार कर जो उनका त्याग करता है, वही  
 सच्चा मुनि है ॥ सू० १ ॥

रीते जेहे कल्पनेो स्पर्श करैल छे, ज्ञान—आदि आचारना जे पालक छे, जेवा  
 मुनि पूर्वोक्त तथा डवे पछी कडेवाभा आवनार धर्मोपकरणना सिवाय अन्य  
 वस्त्रादिकनेो त्याग करी मुनिधर्मभा विचरणु करता डोय छे

भावार्थ—जे जे समजे छे के ममत्वत्यागइप धर्म जे के जेनी प्र-  
 पणुा अने पालना तीर्थंकरादिक देवेजे करी छे, जे जे धर्म छे तथा जे  
 ज्ञानाचारादिकनु सारी रीते पालन करवाभा सावधान रहे छे, ते जे समजने के धर्मो-  
 पकरणना सिवाय अन्य वस्त्रादिक परिग्रहइप डोवाधी कर्मोनु उपार्जन करवावाणा  
 छे जेवा विचार करी जे तेना त्याग करे छे, जे जे साया मुनि छे ( सू० १ )



। अथ षष्ठाध्ययनेस्य तृतीय उद्देश ।

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके कर्मपूजन सोपायं प्रदर्शितम् । तच्छोपकरणशरीरम-  
मत्त्वविधूयनं विना न संभवतीत्यतस्तद्विधोषयितुं तृतीयोद्देशके कथयति, तत्रादौ  
मुनिमर्यादामाह—‘ एयं खु ’ इत्यादि ।

मूलम्—एयं खु मुणी आयाण सया सुअक्खायधम्मो विहूयकप्पे  
णिज्झोसइत्ता ॥ सू० १ ॥

छाया—एतत्सङ्घ मुनिरादानं सदा स्वास्यातधर्मः विधूयकस्या  
निर्ज्ञोष्य ॥ सू० १ ॥

टीका—सदा—सर्वदा स्वास्यातधर्मः—सु=सुष्ठु—सम्यक्प्रकारेण आस्यातः=  
भगवता प्ररूपितः ममत्वत्यागरूपो धर्म एव धर्मः यस्य स स्वास्यातधर्मः, तदा—

छटा अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

इस अध्ययनके द्वितीय उद्देशमें कर्मोंका क्षय उपायसहित प्रदर्शित  
किया जा चुका है । कर्मोंका क्षय भी जब तक उपकरण और शरीरमें  
ममत्वका अभाव नहीं होगा तब तक नहीं हो सकता है, इसलिये उसे  
समझानेके लिये इस तृतीय उद्देशका सूत्रकार कथन करते हैं । उसमें  
सर्वप्रथम वे मुनिकी मर्यादा कहते हैं—‘ एयं खु ’ इत्यादि ।

सर्वदा जिसके हृदयमें भगवत्प्ररूपित ममत्वत्यागरूप धर्म विद्य-  
मान है, जो यह समझता है कि ममत्वत्याग ही सच्चा धर्म है, अर्थात्-  
जिनप्रवचनमें कथित प्रतिज्ञाके भारको वहन करनेमें जो शक्तिसम्पन्न

छट्टा अध्ययनना त्रीजे उद्देश

आ अध्ययना नीला उद्देशमा कर्मोना क्षय उपायसहित प्रदर्शित करवाभा  
आवेले छे कर्मोना क्षय पवु न्यां मुधी उपकरणे अने शरीरमा ममत्वने  
अभाव नहि जाय त्यां मुधी यत् शकते नथी. आ मां के समभावना आ  
त्रीजे उद्देश सूत्रकार कहे छे जेमां सर्वप्रथम जे मुनिनी मर्यादा कहे छे  
“ एयं खु ” इत्यादि.

सहाय जेना हृदयमा भगवत्प्ररूपित ममत्वत्यागरूप धर्म विद्यमान छे  
जे जे समझे छे के ममत्वत्याग आखी धर्म छे अर्थात्-जिनप्रवचनमां कहेल  
प्रतिज्ञाया आरने वहन करवाभा जे शक्तिसम्पन्न छे, तथा विधूयकप-सारी

इत्यर्थः । सूत्रं=तन्तुं याचिष्ये, सूचीं याचिष्ये, संधास्यामि=सूत्रसूच्यौ लब्ध्वा जीर्ण-  
वस्त्रस्य रन्ध्रं संधास्यामीत्यर्थः । तथा स्फाटितं सेविष्यामि । तथा-उत्कर्षयिष्यामि  
=अपरवस्त्रखण्डं योजयित्वा वर्धयिष्यामि, लघुवस्त्रं विशालं करिष्यामीत्यर्थः । तथा  
व्युत्कर्षयिष्यामि=स्फाटितभागं त्रोटयित्वाऽपनेष्यामि तथा परिधास्यामि-एवं कृते  
सति पश्चादिदं जीर्णवस्त्रं परिधानवस्त्रं करिष्यामि । तथा-प्रावरिष्यामि=प्रावरणं  
'चादर' इति भाषाप्रसिद्धं करिष्यामि ।

शरीरका शीतसे ब्राण (रक्षा) होना असंभव है । इसलिये नवीन वस्त्र  
मिल जाय तो ठीक ! जब तक वह नहीं मिलता है-तब तक जैसे बने  
इस फटे पुराने वस्त्रसे ही काम निकाल लूंगा; परन्तु ऐसे तो ये काममें  
आवेगा नहीं; अतः यदि कहींसे सुई और डोरा मिल जाय तो उससे  
इसे सी लूंगा, जहां २ यह फट चुका है-जोड़ लूंगा, इसमें जितने छेद हो  
चुके हैं उन्हें भर लूंगा, नहीं तो कौन इतना परिश्रम करे, जो भाग  
विलकुल फट चुका है उसे इससे निकाल दूंगा और दूसरा टुकड़ा जोड़  
लूंगा, इससे यह फटा पुराना टुकड़ा पहिलेकी अपेक्षा कुछ बड़ा भी  
हो जायगा । इससे मेरे दोनों काम निकल जायेंगे, पहिरने टाइममें पहिर  
लिया करूंगा और ओढनेके समयमें ओढ भी लिया करूंगा, अर्थात्  
इसकी चादर बना लूंगा । इस प्रकारके संकल्प विकल्परूप आर्त्तध्यानसे  
मुनिके शुभ अध्यवसाय नहीं होता है । शुभ अध्यवसाय उत्पन्न हुए  
बिना परंपरारूपसे कर्मोंका क्षय भी नहीं हो सकता, अतः कर्मोंके क्षय  
के लिये उद्यत हुए मुनिको आर्त्तध्यानका सर्वथा परित्याग कर देना

मणी नय तो डीक परन्तु न्या सुधी ये न मणे त्या सुधी गमे तेम आ  
शटेला नुना वस्त्रथी न यदावी लक्षश, परन्तु शटेला डावतमा तो ये काममा  
आवी शके तेम नथी, आधी ने कयायथी सेय होरा मणी नय तो येनाथी  
येने सीवी लड, न्या न्या ये शटयु छे त्यां नेडी लड, अने न्या छिद्र  
पड्या छे येने लरी लड नडि तो केणु आटलो परिश्रम करे ने लाग भील-  
कुल शटी गयेल छे येने काढी नाथी भीने टुकडो नेडी लक्षश आधी ये  
शटेला नुना टुकडो पडेला करता मोटो थशे अने येथी मारा यन्ने काम थर्ष नशे  
पडेरेवाना टाळमे पडेरी लक्षश अने ओढवाना समये ओढी पणु लक्षश आ  
प्रकारना स कल्प-विकल्परूप आर्त्तध्यानथी मुनिने शुभ अध्यवसाय थतो नथी, शुभ  
अध्यवसाय उत्पन्न थया बिना परंपराइपना कर्मोंना क्षय पणु थर्ष शकतो नथी  
आधी कर्मोंना क्षयने माटे उद्यत यनेल मुनिने आर्त्तध्यानना सर्वथा त्याग

ટીકા—યઃ સાધુ, અચેલઃ=અલ્પવક્ત્રઃ, અબાલપાર્યે નમ્, યયાડ્યમહા ઇત્યપ્  
 સ્વસ્વજ્ઞાનવાનિત્યપ્યો મવતિ; તથા—પર્યુપિત=સંયમે કર્મપૂનનોપાયે સ્થવસ્થિતઃ, તસ્ય  
 મિશ્નો' ઇયં=લક્ષ્યમાણં ન મવતિ=ન કલ્પતે, યયા પરિમીર્ષા મે વક્ત્રમ્, इदं મમ  
 શરીરભ્રાણાય ન મચિપ્પતીતિ વક્ત્રં યાચિપ્પ ઇતિ, પૂર્વવૃદ્ધીતવક્ત્રસ્ય બીર્ષતયા  
 સ્ફાટિતતયા ચ શીતપીઢિતસ્ય મમાનેન શરીરભ્રાણાસંમવાત્ નવીનં વક્ત્રં યાચિપ્પ

તથા—'જે અચેલે' ઇત્યાદિ ।

'અચેલે'—યહાપર અલ્પ-અર્થઘાષક નમ્કા પ્રયોગ હુઆ હૈ; જૈસે 'અજ્ઞ'  
 હસમેં હોતા હૈ । યહ અજ્ઞ શબ્દકા જિસ પ્રકાર સર્વથા જ્ઞાનકા અભાવ પ્રતિ  
 પાદિત નહીં કરતા હૈ; કિન્તુ જ્ઞાનમેં અલ્પતા પ્રદર્શિત કરતા હૈ, ઠીક ઈસી  
 પ્રકારસે 'અચેલ' યહ શબ્દ મી વક્ત્રકે સર્વથા અભાવકા પ્રવર્ણન નહીં કરતા  
 કિન્તુ ઇસમેં અલ્પતા હી પતલાતા હૈ । પેસે—જો અચેલ—અલ્પ વક્ત્રવાલા  
 હૈ, તથા કર્મોંકે વિનાશક ઉપાયમેં જિસકી સ્થિતિ હૈ, ઇસ સાધુકે ચિત્ત  
 મેં યહ કલ્પના નહીં ઇઠતી હૈ અર્થાત્ ઇસે ઇસ પ્રકારકી કલ્પના કરના  
 ઇચિત નહીં હૈ કિ મેરા યહ વક્ત્ર જીર્ણ પુરાના હો ગયા હૈ અબ ઇસસે  
 મેરે શરીરકી રક્ષા નહીં હો સકેગી; અતઃ કોઈ વૃસરા વક્ત્ર કહીં કિસી  
 સે ચલકર યાચ લૂંગા । મતલબ યહ કિ મેરા પહિલેકા જો યહ વક્ત્ર હૈ  
 વહ ઇસ સમય જીર્ણ ઓર ફટા હુચા હોનેસે શીતપીઢિત મેરે શરીરકી  
 રક્ષા કરનેમેં સર્વથા અસમર્થ હૈ અતઃ નવીન વક્ત્રકે વિના મિલે મેરે

તથા 'જે અચેલે' ઇત્યાદિ ।

અચેલે—અહીં અલ્પ અર્થ વાચક નમ્નો પ્રયોગ થયો છે—એમ

“અજ્ઞ” આમાં થાય છે. આ અજ્ઞ શબ્દ જે પ્રકારે સવ આ જ્ઞાનનો અભાવ પ્રતિપા  
 દિત નથી કરતો, પરન્તુ જ્ઞાનમાં અલ્પતા પ્રદર્શિત કરે છે, ઠીક જે પ્રકારથી  
 ‘અચેલ’ આ શબ્દ પણ વક્ત્રના સર્વથા અભાવનું પ્રદર્શન નથી કરતો, પરન્તુ  
 એમાં અલ્પતા જ પતાવે છે. એવા જે અચેલ—અલ્પવક્ત્રવાળા છે તથા  
 કર્મોના વિનાશક ઉપાયમાં જેની સ્થિતિ છે, એવા સાધુના ચિત્તમાં જે કલ્પના  
 નથી ઇઠતી, અર્થાત્ એણે જે પ્રકારની કલ્પના કરવી ઇચિત નથી કે માઈ આ  
 વક્ત્ર ઇચ્છુ—જુનુ યઈ જનુ છે હવે આનાથી મારા શરીરની રક્ષા થઈ શકવાની  
 નથી બીજુ કોઈ વક્ત્ર કોઈ જગ્યાએ કોઈની પાસેથી માગી લઈશ. મતલબ—  
 મારી પાસે પહેલાનું જે આ વક્ત્ર છે તે આ સમયે ઇચ્છુ થવાથી ફાટી અચેલ  
 છે અને કંઠીમાં મારા શરીરની રક્ષા કરવામાં તદન અસમર્થ છે આથી નવીન  
 વક્ત્ર બજર મારા શરીરનું કંઠીથી રક્ષણ થવું અસભવ છે આ મારે નવું વક્ત્ર

इत्यर्थः । सूत्रं=तन्तुं याचिष्ये, सूचीं याचिष्ये, संधास्यामि=सूत्रसूच्यौ लब्ध्वा जीर्ण-  
वस्त्रस्य रन्ध्रं संधास्यामीत्यर्थः । तथा स्फाटितं सेविष्यामि । तथा-उत्कर्षयिष्यामि  
=अपरवस्त्रखण्ड योजयित्वा वर्धयिष्यामि, लघुवस्त्रं विशालं करिष्यामीत्यर्थः । तथा  
व्युत्कर्षयिष्यामि=स्फाटितभागं त्रोटयित्वाऽपनेष्यामि तथा परिधास्यामि-एवं कृते  
सति पश्चादिदं जीर्णवस्त्रं परिधानवस्त्रं करिष्यामि । तथा-प्रावरिष्यामि=प्रावरणं  
'चादर' इति भाषाप्रसिद्धं करिष्यामि ।

शरीरका शीतसे त्राण (रक्षा) होना असंभव है । इसलिये नवीन वस्त्र  
मिल जाय तो ठीक ! जब तक वह नहीं मिलता है-तब तक जैसे बने  
इस फटे पुराने वस्त्रसे ही काम निकाल लूंगा; परन्तु ऐसे तो ये काममें  
आवेगा नहीं; अतः यदि कहींसे सुई और डोरा मिल जाय तो उससे  
इसे सी लूंगा, जहां २ यह फट चुका है-जोड़ लूंगा, इसमें जितने छेद हो  
चुके हैं उन्हें भर लूंगा, नहीं तो कौन इतना परिश्रम करे, जो भाग  
बिलकुल फट चुका है उसे इससे निकाल दूंगा और दूसरा टुकड़ा जोड़  
लूंगा, इससे यह फटा पुराना टुकड़ा पहिलेकी अपेक्षा कुछ बड़ा भी  
हो जायगा। इससे मेरे दोनों काम निकल जायेंगे, पहिरने टाइममें पहिर  
लिया करूंगा और ओढ़नेके समयमें ओढ़ भी लिया करूंगा, अर्थात्  
इसकी चादर बना लूंगा । इस प्रकारके संकल्प विकल्परूप आर्त्तध्यानसे  
मुनिके शुभ अध्यवसाय नहीं होता है । शुभ अध्यवसाय उत्पन्न हुए  
विना परंपरारूपसे कर्मोंका क्षय भी नहीं हो सकता, अतः कर्मोंके क्षय  
के लिये उद्यत हुए मुनिको आर्त्तध्यानका सर्वथा परित्याग कर देना

मणी नय तो डीक परन्तु न्या सुधी अ न मणे त्या सुधी गमे तेम आ  
शेटेला नुना पस्त्रथी न यलावी लक्षश, परन्तु शेटेल डालतमां तो अे काममा  
आवी शके तेम नथी, आथी ने कयायथी सोय होरा मणी नय तो अेनाथी  
अेने सीवी लड, न्यां न्या अे शटयु छे त्यां नेडी लड, अने न्या छिद्र  
पड्या छे अेने लरी लड नडि तो डोणु आटलो परिश्रम करे ने लाग भील-  
डुल शटी गयेल छे अेने काढी नाभी भीने टुकडो नेडी दधश आथी अे  
शेटेल नुनो टुकडो पडेला करता मोटो थशे अने अेथी मारा अन्ने काम थर्ष नशे  
पडेखाना टार्थमे पडेरी लक्षश अने ओठवाना समये ओढी पणु लक्षश आ  
प्रकारना स कटप-विकटपइप आर्त्तध्यानथी मुनिने शुभ अध्यवसाय थतो नथी, शुभ  
अध्यवसाय उत्पन्न थया विना पर पराइपना कर्मोना क्षय पणु थर्ष शकतो नथी.  
आथी कर्मोना क्षयने माटे उद्यत अनेल मुनिअे आर्त्तध्याननो सर्वथा त्याग  
३८

एकरूपार्थध्यानेन द्युमाध्यवसाया नोत्पद्यते, तस्मात् कर्मधूननार्थमुद्यतेन मुनिनाऽऽर्त्तध्यानं परिवर्तनीयम्, अक्सरं यद् भवेत्तद् भविष्यतीति चिन्तयेदिति भावः ॥ सू० २ ॥

तस्याऽपेक्षस्य साधोर्भीषवस्त्रविषयकमार्तध्यानं यदि नापि भवेत्, किन्तु चाहिये और ऐसा विचार करना चाहिये कि जिस समय जो होनेवाला होगा सो होगा।

भावार्थ—चाहे अस्ययस्त्रवाले हों, चाहे षट् षट्त्रवाले हों; जो पर पदार्थों में मोही हैं, उनके ही ये पूर्वोक्त रूपसे कल्पनाएँ उठा करती हैं। यदि मुनिके भी ये इसी तरहसे उठती हैं तो वह सच्चा मुनि नहीं है। मुनिके इस प्रकारकी कल्पनाओंका जागरण आर्त्तध्यानका कारण माना गया है, जो द्युम परिणामोंकी प्राप्तिमें प्रतिबन्धक होता है। अतः मुनि योंको तो इस प्रकारकी कल्पना उठनी ही नहीं चाहिये—उन्हें तो यही विचार चाहिये कि जो जिस समयमें होना है वही होगा, मुझे इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, चिन्तासे कर्मोंका ही बन्ध होगा, न कि उनका धूनन। तात्पर्य यह है कि षट् पुराना हो जाय तो उसकी चिन्ता न करें, और कय सीजंगा इस प्रकार आर्त्तध्यान न करें ॥ सू० २ ॥

भले ही उस अक्षेल साधुके लिये फटे-पुराने-बस्त्र विषयक आर्त्त धरवो लेधजे अने अवेवो निवार धरवो लेधजे के के समये धवानु छे ते धर्धने न रहेये।

भावार्थ—यदि अक्षयवस्त्रवाणा होय, यदि षट् षट्त्रवाणा होय, के पर पदार्थोंमा मोही छे अने न के पूर्वोक्तार्थकी कल्पनाओ उठ्या करे छे मुनिना मनमां पज्जे के आधी कल्पना उठे तो के साथो मुनि नहीं। मुनिमां पज्जे प्रभा र्त्तकी कल्पनाओ लज्जे के आतध्यानना आरक्षरूप मानवार्त्त आवेव छे के शुभ परिणामोनी प्राप्तिमा आधरूप अने छे आधी मुनिओमां तो आ प्रक्षरणी कल्पनाओ उठवी न लेधजे अवेवो तो अवेवो न निवार सभयो लेधजे के के समये के अनवानु छे ते अनवानु न छे भारे अने चिन्ता था भाटे कर्त्तवी लेधजे चिन्ताधी तो कर्त्तवी न भ धाय छे, अने नारा नदि। तात्पर्य के छे के वस्त्र जेवो लुप्त धर्ध जय अने चिन्ता न करे अने कथाए सीवीशु प्प प्रकारधी आर्त्तध्यान न करे (सू० २)

के अक्षय साधुने भाटे कटेव लुप्त वस्त्रो विरे जेवो आतध्यान न होय

वक्ष्यमाणपरीषहणामवश्यं सम्भव इति तत्र तस्य यत् कर्तव्यं तदाह—‘अदुवा तत्थ’ इत्यादि ।

मूलम्—अदुवा तत्थ परक्रमंतं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति, सीयफासा फुसंति, तेउफासा फुसंति, दंसमसगफासा फुसंति । एगयरे अन्नयरे विरूवरूवे फासे अहियासेति अचेले लाघवं आगममाणे, तवे से अभिसमण्णागए भवइ॥सू० ३॥

छाया—अथवा तत्र पराक्रममाणं भूयोऽचेलं तृणस्पर्शाः स्पृशन्ति, शीतस्पर्शाः स्पृशन्ति, तेजःस्पर्शाः स्पृशन्ति, दंशमशकस्पर्शाः स्पृशन्ति । एकतरान् अन्यतरान् विरूपरूपान् स्पर्शान् अध्यास्ते अचेलो लाघवम् आगमयन्, तपस्तस्य अभिसमन्वागतं भवति ॥ सू० ३ ॥

टीका—अथवा तत्र—अल्पवस्त्रावस्थायां पराक्रममाणं=कर्मधूननोपाये संयमे समुद्यु-  
ज्ज्ञानं अचेलम्=अल्पवस्त्रं साधुं क्वचिद् ग्रामादीं त्वक्त्राणवस्त्राभावात् तृणशायिनं,  
ध्यान न हो तो भी ये वक्ष्यमाण परीषह तो अवश्य हो सकते हैं । उनके होनेपर जो उनका कर्तव्य है, उसे सूत्रकार कहते हैं—“अदुवा तत्थ” इत्यादि।

अथवा—अल्प वस्त्र धारण करनेकी अवस्थामें अच्छी तरहसे उद्युक्त अर्थात् संयमकी रक्षा अधिक वस्त्रोंके धारण करनेसे नहीं हो सकती है और जहां संयमकी रक्षा ही नहीं है वहां कर्मोंका क्षय भी नहीं हो सकता है—इस भावनासे प्रेरित वह साधु कर्मविनाशक संयममें सदा उद्योगशाली बना रहता है और इसीलिये वह अल्प वस्त्र—थोड़े वस्त्रोंसे अपना काम चलाता है, तो भी ऐसे साधुको किसी ग्रामादिकमें शारीरिक रक्षाके योग्य वस्त्रोंका अभाव होनेसे कदाचित् घासपर भी शयन करना पड़ता है, इस अवस्थामें कठोर तृणस्पर्शोंसे उत्पन्न दुःखविशेषों

तो पशु अे वक्ष्यमाणु परिषड तो अवश्य थाय छे, ते थता तेनु अे कर्तव्य छे तेने सूत्रकार कडे छे “अदुवा तत्थ” इत्यादि

अथवा अल्प वस्त्र धारणु करवानी अवस्थाभां सारी रीते उद्युक्त अेटले सयमनी रक्षा वधु वस्त्रो धारणु करवार्थी थर्ध शकती नथी, अने न्या सयमनी रक्षा न नथी त्या कर्मने क्षय पशु थर्ध शकतो नथी, आ लावनाथी प्रेरित ते साधु कर्मविनाशक सयममा सदा उद्योगशाली भनी रहे छे, अने अे माटे ते अल्प वस्त्र—थोडा वस्त्रोथी पोतानु काम चलावे छे, तो पशु अेवा साधुने कोर्ध गामडाभां शारीरिक रक्षा—योग्य वस्त्रोने अलाव डोवार्थी कोर्ध वपते घास उपर

तृणस्पर्शाः=परुपतृणस्पर्शजनितदुःखविशेषाः कदाचित् स्पृशन्ति=पीडयन्ति, तथा शीतस्पर्शाः=शीतपरीपहाः स्पृशन्ति । तथा-तेजःस्पर्शाः=उष्णपरिपहाः स्पृशन्ति, तथा दशमशकादयः, तथा ये अन्यतरे=उभयविधा अनुकूलप्रतिकूलरूपाः=शीतोष्णोष्णः यथा य शीतस्पर्शाः हेम-ते प्रतिकूलास्त एव प्रीष्मेऽनुकूला, तथा य उष्णस्पर्शाः प्रीष्मे प्रतिकूलास्त एव हेम-तेऽनुकूला इत्येवमनुकूलप्रतिकूलरूपाः शीतस्पर्शा उष्णस्पर्शाश्च भवन्ति, अतएव विरूपरूपाः=अनेकरूपा स्पर्शाः-परिपहरूपास्तृणादि स्पर्शाः प्रादुर्भवन्ति, तान् अञ्जेलः=अटपवह्नः साधुः अधिसहते । स किमुदिश्य परिपहान् अधिसहते इति जिज्ञासायामाह-त्वायत्रमागमयभिति । भाष्यम्=द्रव्यतो

का उसे सामना करना पड़ता है-उन धुःखोंको सहता है । शीतस्पर्श परीपह भी वह सहता है । हाँस मच्छर आदि अन्य वेदनाओंको भी सहन करता है । इन परीपहोंमें कोई २ परीपह प्रतिकूल ही हैं, तथा कोई अनुकूलप्रतिकूल उभयरूप हैं । जैसे-दशमशकादिक प्रतिकूल ही हैं । तथा शीत उष्ण बगैरह अनुकूल प्रतिकूल दोनों रूप हैं । जो शीतस्पर्श हेमन्त ऋतुमें प्रतिकूल मालूम देते हैं वे ही प्रीष्मऋतुमें अनुकूल लगने लगते हैं । इसी प्रकार जो उष्ण स्पर्श प्रीष्ममें प्रतिकूल लगते हैं वे ही हेमन्तमें अनुकूल जन्तते हैं । इसी अपेक्षा पे शीत-उष्ण स्पर्श विरूप रूप-अनेक रूप यथाये गये हैं । इन अनेकरूप स्पर्शोंको और परीपहरूप तृणादिस्पर्शोंको वह अञ्जेल साधु सहन करता है । किस विचारसे वह इन परीपहोंको सहता है ? इस प्रकारकी जिज्ञासा होने पर सूत्रकार

पञ्च धुर्वु पठे छे । आ स्थितिमां हठेर भासना स्पर्शंभी उत्पन्न इ ज्ञाने तेने आमनेा करवे पठे छे-जे भावा हाजिने सहे छे शीतस्पर्श परीपह पञ्च सहे छे जस मच्छर आदिबन्ध वेदनाज्जाने पञ्च सहन करे छे । आ परीपहोमां केरु केरु परीपह प्रतिकूल न होव छे, जने केरु केरु अनुकूल प्रतिकूल उभयरूप होय छे जेम इय मशकादि परीपह प्रतिकूल न छे जने शीत उष्ण आदि परीपह अनुकूल प्रतिकूल उभयरूप छे जे शीतस्पर्श हेमन्तऋतुमा प्रतिकूल मालूम पठे छे ते न प्रीष्म ऋतुमा अनुकूल आवे छे जे न शीत उष्ण स्पर्श प्रीष्मऋतुमा प्रतिकूल आवे छे ते न हेमन्तमा अनुकूल आवे छे । आ अपेक्षाभी शीत-उष्ण स्पर्श विरूपरूप-अनेकरूप जताववामा आवेस छे । आ अनेकरूप स्पर्शोंने जने परिपहरूप तृणादिस्पर्शोंने जे अञ्जेल साधु सहन करे छे तथा विचारभी जे भावा इःषी सहे छे ? आ प्रकारनी लक्षण्य दोषाभी सूत्रकार कहे छे के- त्वायत्रमागमयभिति-जे साधु बन्धितोना वाधव-असेप

भावतश्चा तत्र द्रव्यतो-धर्मोपकरणवस्त्रादिलाघवं, भावतस्तु-ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्म-  
लाघवम्, आगमयन्=नयन्, यद्वा-अवगमयन्-मोक्षार्थिनो मम वस्त्रादिलाघवं  
कर्मलाघवं चावश्यं करणीयमित्येवं चिन्तयन्-इति यावत्; परिपहाणां सहनमेव  
मम कर्मधूननोपाय इति कृत्वा तान् सर्वान् परीपहान् अधिसहत इति भावः ।

तस्य=उपकरणलाघवेन कर्मलाघवं कर्मलाघवेन चोपकरणलाघवं विदित्वा  
तृणादिस्पर्शान् अधिसहमानस्य तपः=कायक्लेशरूपतया वाह्यं तपः, अभि-  
समन्वागतं=मोक्षाभिमुख्येन सम्यगाचरितं भवति ॥ सू० ३ ॥

कहते है कि "लाघवं आगमयन्" वह साधु वस्त्रादिकोंका लाघव-  
संक्षेप करानेका अभिलाषी है-अर्थात् द्रव्य और भावके भेदसे लाघव  
दो प्रकारका है-धर्मके उपकरणभूत वस्त्रादिकोंकी लघुता-अल्पता द्रव्य  
लाघव है और ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्मोंकी लघुता भावलाघव है ।  
इन दोनोंको वह मुनि लाघव ( हलकापन ) की ओर ले जा रहा है ।  
" आगमयन् "की जगह "अवगमयन्" यह भी पाठान्तर है, इससे यह  
भाव निकलता है कि उसका सदा यही विचार रहता है कि मैं मोक्षका  
अभिलाषी हूं, मेरे पास सदा वस्त्रोंकी अल्पता ही होनी चाहिये और  
मुझे कर्मोंका लाघव अवश्य करना चाहिये इसी विचारसे वह परीषहोंको  
सहता है, क्योंकि इनका सहना ही मेरे पास कर्मोंके क्षय करनेका उपाय है।

साधुके उपकरण के लाघवसे कर्मोंका लाघव और कर्मोंके लाघव  
से उपकरणका लाघव जानकर, तृणादि स्पर्शजन्य कष्टोंको सहन करने-  
वाले उस साधुका तृणादि स्पर्शजन्यकष्ट तप-कायक्लेश नामक वाह्यतप  
है और वह उसको निर्जरा समझकर अच्छी तरहसे सहन करता है। सू० ३।

करवाने। अभिलाषी छे-अर्थात् द्रव्य अने भाव ना लेइथी लाघव छे  
प्रकारे छे-धर्मना उपकरणभूत वस्त्र आदिनी लघुता द्रव्य लाघव छे अने ज्ञाना-  
वरणीयादि आठ कर्मोंनी लघुता भावलाघव छे, आ अनेने अे लाघवनी तरङ्ग  
लक्ष नय छे " आगमयन् "ने स्थाने "अवगमयन्" आ पणु पाठान्तर छे, आथी  
अे भाव निकले छे के अने सदा अे विचार रहे छे के हु मोक्षने अभिलाषी छु,  
भारी पासे वस्त्रोंनी सदा अल्पता न रहेवी लेई अे, अने भारे कर्मोंतु लाघव  
अवश्य करवु लेई अे केम के हु जाने सडेवाथी आठ कर्मोंना क्षय थाय छे

उपकरणना लाघवथी कर्मोंतु लाघव अने कर्मोंना लाघवथी उपकरणतु लाघव  
जणु तृणादिस्पर्शजन्य कष्टोंने सहनार ते साधुतु तृणादिस्पर्शजन्य कष्ट तप-कायक्लेश  
नामक वाह्यतप छे अने अे तेने निर्जरा समझ आडी नीने ... .. (०३)



एतच्च न मया स्वपुत्राया परिक्ल्प्य कथ्यते; किंतु मगधदुक्कानुसारेणेत्याह—'जहेयं' इत्यादि ।

मूलम्—जहेय भगवया पवेह्य तमेव अभिसमिच्चा सव्व ओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिज्जा, एव तेसिं महावीराण चिरराय पुठ्वाइ वासाणि रीयमाणाण दवियाण पास अहिया सिय ॥ सू० ४ ॥

छाया—यथैतद् मगधता प्रवेदित तदेवामिसमेत्य सर्वत सर्वात्मतया सम्पत्त्वमव सममिजानीयात् । एव तेषां महावीराणां चिररात्रं पूर्वाणि वर्षाणि रीयमाणानां द्रविकान् पश्य मध्यासितम् ॥ सू० ४ ॥

टीका—एतद्=उक्तं वक्ष्यमाणं च यथा=येन प्रकारेण भगवता प्रवेदितं=प्रकरणेण बोधितम्, अत तदेव उपकरणादिलाघषम्, सर्वत =द्रव्यक्षेत्रकालमावत', तत्र द्रव्यत'—आहारोपकरणादौ, क्षेत्रत—सर्वत्र ग्रामादौ, कालत—अहर्निशम् दुर्मिसाकादौ वा,

यह मैं अपनी बुद्धिकी कल्पनासे नहीं कहता हूँ, किन्तु भगवान् के कहे अनुसार ही कहता हूँ; इस पातको प्रकट करनेके लिये श्रीसुधर्मास्वामी श्रीजम्बूस्वामीसे कहते हैं—“जहेय” इत्यादि ।

भगवान् ने यह पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण उपकरणादिलाघषरूप विषय जिस प्रकारसे कहा है—समज्ञाया है, वही द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे जानकर, मुनि उसमें वृत्तावधान पन, शुभ अध्वयसायरूप सम्पत्त्वका ही मोक्षकी सन्तुल्यतासे चिन्तयन करे। आहार एवं उपकरणादि कौमिं जो लाघष किया जाता है वह द्रव्यकी अपेक्षा लाघष है । म इतन ही ग्रामोंमें विहार करूँगा, इतनेमें नहीं—इस प्रकार जो ग्रामादिकोंमें

आहुं भारी बुद्धिना कल्पनाधी नहीं कहते; परंतु भगवान् के कहे अनुसार ही कहुं हूँ आवाने प्रकट करवा भाई श्रीसुधर्मास्वामी श्रीजम्बूस्वामीसे कहे हैं—'जहेय' इत्यादि ।

भगवाने आ पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण उपकरणादिलाघषरूप विषय के प्रकारे कहेले हैं—समज्ञाया है, तेने द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावधी कारणे मुनि तेभा क्षेत्रांत अनी शुभ अध्वयसायरूप सम्पत्त्वतनेन ही मोक्षनी स सुफल भाटे चिंतयन करे आहार अने वस्तु आदिमां ७ लाघष करवाभा आवे है ते द्रव्यनी अपेक्षा लाघष है न क्षेत्रांत न आदिमां विहार करीय, क्षेत्रां नदि—आ प्रकारे के आदिमां लाघष करवाभा आवे है ते सुफल

भावतो मायाराहित्येन अभिसमेत्य=ज्ञात्वा सर्वात्मतया=अनन्यमनसा सम्यक्त्वमेव  
 =शुभाध्यवसायमेव समभिजानीयात्=सम्यग्भूमोक्षाभिसुख्येन जानीयात्, चिन्तयेदि-  
 त्यर्थः। अयं भावः—जिनकल्पक एकवस्त्रधारिणं स्थविरकल्पकं न हीलयेत्।  
 एवमेकवस्त्रधारको द्विवस्त्रधारकम्, द्विवस्त्रस्त्रिवस्त्रधारकम्। तथा चातुर्मासिकक्षप-  
 कस्त्रिमासक्षपकम्, त्रिमासिको द्विमासिकम्, द्विमासिक एकमासिकम्, एकमा-  
 सिकोऽर्धमासिकम्, अर्धमासिकक्षपक एकान्तरक्षपकम्, एकान्तरक्षपक  
 एकभक्तभोजिनं न हीलयेत्, यथा अयं न मादृशः, किन्तु दुष्करतपःसंयमाराधनकातरः  
 इत्यादिरूपं दुष्प्रणिधानं न कुर्यात्। किमधिकेन? जिनकल्पकः प्रतिमाप्रतिपन्नो वा

लाघव क्रिया जाता है वह क्षेत्रकी अपेक्षा लाघव है। इस ग्राममें मैं एक  
 रात दिन रहूंगा, अथवा दुर्भिक्षकालादिकमें रहूंगा, सब समयमें नहीं,  
 यह कालकी अपेक्षा लाघव है। मायाचाररहित होना यह भावकी  
 अपेक्षा लाघव है। तात्पर्य इसका यह है—जिनकल्पी साधु, एक वस्त्र  
 धारण करनेवालेका, एक वस्त्रधारी द्विवस्त्रधारणकरनेवालेका, द्वि-  
 वस्त्रधारी तीनवस्त्रधारणकरनेवालेका, तथा चातुर्मासिकक्षपक, त्रिमा-  
 सिक क्षपकका, त्रिमासिक क्षपक द्विमासिक क्षपकका, द्विमासिकक्षपक  
 एकमासिक क्षपकका, एकमासिक क्षपक अर्धमासिक क्षपकका, अर्धमा-  
 सिकक्षपक एकान्तर क्षपकका, और एकान्तरक्षपक एकभक्तभोजीका,  
 कभी भी तिरस्कार न करे। यह मेरा जैसा नहीं है; किन्तु दुष्कर तप  
 और संयमकी आराधना करनेमें कायर है—इत्यादि—रूपसे उनकी अव-  
 लेहना न करे, और न अनादरकी दृष्टिसे देखे। इस विषयमें ज्यादा

अपेक्षा लाघव छे आ गाममा हुं ऐक रात द्विस रडीश अथवा  
 दुर्भिक्ष कालादिकमा रडीश, अथा समय सुधी नडि आ काणनी अपेक्षा लाघव  
 छे मायाथी रडित रडेवु ऐ लावनी अपेक्षा लाघव छे तात्पर्य ऐतु ऐ छे  
 के अनकल्पी साधु ऐक वस्त्र धारणु करवावाणानु अने ऐक वस्त्रधारी जे वस्त्र  
 धारणु करवावाणानु, जे वस्त्रधारी त्रणु वस्त्र धारणु करवावाणानु तथा चातुर्मासिक  
 क्षपक त्रैमासिक क्षपकतु, त्रैमासिक क्षपक जे मासिक क्षपकतु, जे मासिक क्षपक  
 ऐक मासिक क्षपकतु, ऐक मासिक क्षपक अर्धमासिक क्षपकतु, अर्धमासिक  
 क्षपक ऐकान्तर क्षपकतु अने ऐकान्तर क्षपक ऐकभक्तभोजीको कदि पणु  
 तिरस्कार न करे—ऐे मारावेवा नथी, परतु दुष्कर तप अने संयमनी आराधना  
 करवावा कायर छे—इत्यादि रूपथी ऐनी अवलेहना न करे, अने न तो अनादरनी  
 दृष्टिथी नुअे आ विषयमा वधु शु कडेवुं अनकल्पी साधुअे अने पडिमाधारी

कदाचित् स्वकल्पेन पढपि मासान् मिसां न लभते चेत्तयाऽप्यसौ सममावमान्म्य  
 विमाधयति-सर्वे चैते स्वस्वकर्मक्षपणायं यथाविधिमहृताः पृतिसहननवसस्यामा-  
 विकारणवशाद् विसदृशकल्पा जिनाज्ञायामेष वर्धन्त इति। एतच्च बाहुभ्यां समुद्र  
 तरणवदसम्मम नास्ति, चिरमन्यैर्षुमिस्तीर्थहरगणधरै समारापितत्वादिति दर्शयि-  
 त्नुमाह-‘एयम्’ इत्यादि। एवम्=उक्तविधिना तेषाम्=अथलेखया वृणस्पशांदि  
 कर्मविसहमानानां महावीराणां=कर्मचिदारणशूराणां चिररात्रं=प्रभूतकालं यावज्जीव-  
 मित्यर्थ, तद्वच स्पष्टीकरोति-पूर्वाणि वर्षाणि च रीयमाणानां=संयममार्गं गच्छां,

क्या कहा जाय? जिनकरूपी हो, अथवा पविमाधारी हो, कदाचित् वह  
 यदि अपने कल्पसे छह मास तक भी मिश्रा नहीं पाता है तो भी समता-  
 माधका अवलम्बन कर विचारता है कि ये समस्त मुनिजन शास्त्रविधि के  
 अनुसार अपने २ कर्मोंके क्षपण करनेके लिये प्रवृत्त हैं, धैर्य, संहनन,  
 पलकी स्थिरता आदि कारणके वशसे विसदृश कल्पवाछे होते हुए भी  
 जिन भगवान्की आज्ञामें ही प्रवृत्ति कर रहे हैं। यह बात हाथोंसे समुद्र  
 को पार करने जैसी असंभव नहीं है। क्यों कि यह सम्पत्स्वरूप माग  
 चिरकाल तक अनेक तीर्थहरों एयं गणधरोंने पाला है। इसी बातको  
 दिखलानेके लिये सूत्रकारने ‘एयं तेषां महावीराणां चिररात्रं पूर्वाणि  
 वर्षाणि रीयमाणानां द्रविकाणां पश्य अभ्यासितम्’ इस सूत्रांशको  
 कहा है। इसमें वे यह बतलाते हैं कि तीर्थहरादिकोंने भी उक्त विधिके  
 अनुसार ही अथेल अवस्थामें रहते हुए तृणस्पशांदि परीपहोंको महन  
 किया है, और इसीसे वे कर्मरूपी प्राणुओंके क्षय करनेमें शूरवीर बने हैं,  
 तथा उनके जीवनका पूर्व और वर्षरूप समय संयममार्गकी आराधना

साधुओंके कथ्य भोताना कल्पधी छ भक्तिना सुधी शिक्षा न भोजवे तो पञ्चसमताभाव  
 अवलम्बन करी विचारै छे के आ जथा मुनिजन शास्त्रविधिना अनुसार पौतपौताना  
 कर्मोना क्षपण करवा माटे प्रवृत्त छे धैर्य संहनन, जगनी स्थिरता आदि कारणना  
 वशशी विविन्न कल्पवाणा दीवा छत्ता एन जगवाननी आशाभां व प्रवृत्ति करे छे  
 आ बात दासधी समुद्रने पार करवा जेवी असंभव नहीं, केम के सम्भ्रहृत्वक्ष  
 माग चिरकाल सुधी अनेक तीर्थक्षर अने गणधरोंके पाणेल छे आ बातने प्रदर्शित  
 करवा माटे सूत्रकार “एयं तेषां महावीराणां इत्यादि सूत्रांशने कहेल छे आभां तेजो  
 के अतावे छे के तीर्थक्षर आदिजे पञ्च उक्तविधि अनुसार व अवलम्ब अवस्थाभां  
 रहैता तृणस्पशांदि परिकरने संहन करेल छे अने जेभी तेजो कर्मक्षपी  
 शत्रुओंको क्षय करवाभां शूरवीर जन्मा छे तथा जेभनां एवनना पूर्व अने वर्षक्ष  
 समथ संयममागनी आराधना करवाभा व व्यतीत घयेल छे अदि पूर्वनु प्रभाव

તત્ર પૂર્વ વર્ષાણાં સપ્તતિઃ કોટિલક્ષાઃ षટ્પञ्ચાશચ્ચ કોટિસહસ્રાણિ, તત્ર ઋષભદેવાદારમ્ય શીતલનાથં દશમતીર્થઙ્કરં યાવત્ પૂર્વસંખ્યાયાઃ સદ્ભાવાત્ પૂર્વાણીત્યુક્તં, તતઃ શ્રેયાંસાદારમ્ય વર્ષસંખ્યાપ્રવૃત્તેર્વર્ષાણીત્યુક્તમિતિ । તથા દ્રવિકાણામ્=આત્માર્થિનામ્ અધ્યાસિતમ્=અધિસોઢમેતદ્-ઇતિ હે શિષ્ય ! પશ્ય=અવધારય । વહુભિર્મહાપુરુષૈઃ પૂર્વે દ્વાવિંશતિપરીષહસહનં કૃતં, તસ્માન્મોક્ષાર્થિભિસ્તૃણસ્પર્શાદયઃ પરીષહાઃ સમ્યક્ સોઢવ્યા ઇતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

કરનેમેં હી વ્યતીત હુઆ હૈ । યહાં પર પૂર્વકા પ્રમાણ ટીકાકાર ઇસ પ્રકારસે વતલાતે હૈ—૮૪૦૦૦૦૦ લાખ વર્ષકા એક પૂર્વાઙ્ગ હોતા હૈ ઓર ૮૪૦૦૦૦૦ લાખ પૂર્વાઙ્ગકા એક પૂર્વ હોતા હૈ । એક પૂર્વમેં ૭૦ લાખ કરોડ ઓર ૫૬ હજાર કરોડ વર્ષ હોતે હૈ । ઋષભદેવસે લેકર શીતલનાથ જો દશવેં તીર્થઙ્કર હૈં ડન તક સંયમકા કાલ તો પૂર્વ તકકા રહા હૈ । ડસકે વાદકે તીર્થઙ્કર શ્રેયાંસનાથસે લેકર મહાવીર પર્યન્ત તીર્થઙ્કરોંકા સંયમ સમય પૂર્વકે પ્રમાણમેં ન રહ કર વર્ષોંકે પ્રમાણમેં આ જાતા હૈ; ઇસલિયે “વર્ષાણિ” એસા સૂત્રકારને કહા હૈ । દ્રવિક-આત્માર્થિયોંકા જીવનકાલ હી ઇસી પ્રકારસે સંયમમાર્ગમેં વ્યતીત હુઆ હૈ, હે શિષ્ય ! તુમ અપને ચિત્તમેં એસી શ્રદ્ધા રલો । ભાવાર્થ—પૂર્વમેં અનેક મહાપુરુષોંને ૨૨ પરીષહોંકો સહન કિયા હૈ; અતઃ મોક્ષાભિલાષી તૃણસ્પર્શાદિક પરીષહોંકો અચ્છી તરહસે સહન કરે ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ટીકાકાર આ પ્રકારે બતાવે છે—૮૪ લાખ વર્ષતુ એક પૂર્વાઙ્ગ થાય છે, અને ૮૪ લાખ પૂર્વાઙ્ગતુ એક પૂર્વ થાય છે, એક પૂર્વમા સીત્તર લાખ કરોડ અને છપ્પન હબર કરોડ ( ૭૦૫૬૦૦૦૦૦૦૦૦૦૦ ) વર્ષ હોય છે ઋષભદેવથી લઈ શીતલનાથ જે દસમા તીર્થકર છે એમના સુધી સંયમનો કાળ તો પૂર્વ તકનો રહ્યો છે એમના પછી તીર્થકર શ્રેયાંસનાથથી લઈને મહાવીર પર્યન્ત તીર્થકરોને સયમસમય પૂર્વના પ્રમાણમાં ન રહેતા વર્ષોના પ્રમાણમા આવી ગયેલ છે. આ માટે “વર્ષાણિ” એલુ સૂત્રકારે કહેલ છે. દ્રવિક-આત્માર્થીઓનો જીવનકાળ પણ આ પ્રકારના સયમમાર્ગમા વ્યતીત થયેલ છે, હે શિષ્ય ! તમે તમારા ચિત્તમા એવી શ્રદ્ધા રાખો

ભાવાર્થ—પૂર્વમા અનેક મહાપુરુષોએ ૨૨ પરિષદોને સહન કર્યા છે આ માટે જે મોક્ષના અભિલાષી છે એનુ કર્તવ્ય છે કે તેઓ તૃણસ્પર્શાદિક પરિષદોને સારી રીતે સહન કરે (સૂ૦ ૪)

परीपक्षोपसर्गसहनशीलानां यद्भवति, तदाह—‘आगयपक्षाणाणं’ इत्यादि।

मूलम्—आगयपक्षाणाणं किंसा वाहा भवति, पयण्ण मस सोणिण् । विस्सेणिं कट्टु परिण्णाए, एस तिस्से मुत्ते विरए वियाहिण् तिधेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—आगतप्रज्ञानानां कृशा बाहवो भवन्ति, पतनुकं मांसशोगितम् । विधेणिं कृत्वा परिहया, पप तीर्णं मुक्ता वित्तं व्याग्यात्—इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

टीका—आगतप्रज्ञानानां=सम्बन्धसम्यग्ज्ञानानां बाहवः=भुजाः कृशा भवन्ति, तपसा परीपक्षाधिसहनेन च शास्त्राणि कृशस्वमापद्यन्त इत्यर्थः । यदा—‘वाधा’ इतिच्छाया, तत्र वाधाः=परीपक्षजनिता पीडाः कृशा भवन्ति=प्रतनुस्वमापद्यते । कर्मसंपन्नार्थं प्रयत्नमाना साधवः “ममैवे शरीरमाप्रपीडाकरा परीपक्षोपसर्गा सहायका एवे”ति मन्यमाना शरीरपीडां न पश्यन्तीति भावः । अतः मांसशोगित

परीपक्ष और उपसर्गोंको सहन करनेका जिनका स्वभाव है ऐसे महासुनियों को जो लाम होता है उसे सूत्रकार कहते हैं “आगय पक्षाणाण” इत्यादि ।

जिन्हें सम्बन्धज्ञानकी प्राप्ति हो चुकी है ऐसे महासुनियोंकी भुजाएँ कृशा हो जाती हैं, अर्थात्—तप और परीपक्षोंके सहनेसे उनके शरीर कृशा जाते हैं । “वाहा” शब्दकी छाया “वाधा” भी है—जिसका अर्थ है कि सम्बन्धज्ञानी सुनियोंकी परीपक्षजन्य वाधाएँ कृशा हो जाती हैं—अत्यंत अल्प रह जाती हैं ।

भाषार्य—कर्मोंको नाश करनेके लिये प्रयत्नशील साधु परीपक्षादिकोंके आने पर यह विचार करते हैं कि ये परीपक्ष और उपसर्ग मेरे शरीरमात्रको ही पीडा देनेवाले हैं, संयमका कुछ भी ये पिगाड़ नहीं कर सकते हैं, प्रत्युत उसमें सहायक ही हैं । इस प्रकार मानकर ये महा-

या परिषदं चने उपसर्गो सहन करवाने केमेने स्वभाव छे जेवा महासुनियेने ने छाल धार छे जेने सूत्रकार कहे छे “आगयपक्षाणाण” इत्यादि जेने सम्बन्धज्ञानकी प्राप्ति यथं मुधी छे जेवा महासुनियेनी भुजायो कृशा यथं लय छे, अर्थात्—तप चने परिषद सहन करवाबी जेभनु शरीर कृशा यथं लय छे वाहा” शब्दनी छाया “वाधा” यत्तु छे जेमेने लय जे छे के सम्बन्धज्ञानी सुनियेनी परिषदजन्य वाधाको कृशा यथं लय छे—अत्यंत अल्प यथं लय छे वाधार्थ—कर्मिना नाश करवा माटे प्रयत्नशील साधु परिषद बनेरेना आपवाधी जे विचार करे छे के जे परिषद चने उपसर्ग माया शरीर मात्रने के पीडा आपनाय छे अथवा जे आपयवु अत्राट करी सकनार नथी; परतु जेभं

=परीपहादिसहनशीलानां शरीरस्थं मांसरुधिरं प्रतनुकं=शुष्कं सत् स्वल्पतरं भवति ।  
रूक्षाहारत्वादल्पाहारत्वात् परीपहादिसहनाच्च अल्पवस्त्रतया तृणस्पर्शगीतस्पर्शा-  
दिभिः शरीरस्य रसशोषणाच्च मोक्षार्थिनां मांसशोणितं शुष्कं भवतीति भावः ।

तथा-परिज्ञया=समभावनया जिनकल्पिकः स्थविरकल्पिको वा विकृष्टाविकृ-  
ष्टतपश्चरणशीलः प्रत्यहंभोजी वा सर्वेऽप्येते भगवदाज्ञावर्तिन एव-इत्येवंरूपया  
विश्रेणि कृत्वा=रागद्वेषकपायसंततिरूपां संसारावतारणिकां संसारश्रेणिं समत्वभाव-  
नया क्षान्त्यादिभिश्च त्रोटितां कृत्वा वर्तत इत्यर्थः । एषः=उक्तलक्षणः साधुः,

मुनि होती हुई शारीरिक पीड़ाकी तरफ लक्ष्य नहीं देते हैं । परीपह आदि  
को शांतिभावसे सहनेवाले साधुओंके शरीरका मांस और रुधिर  
शुष्क हो जाता है-वे शरीरसे दुबले पतले हो जाते हैं-रुधिर और मांस  
उनके शरीरमें बहुत कम रह जाता है । कारण कि अन्तप्रान्त और अल्प  
आहारसे, परीषह आदिके सहनेसे और थोड़े वस्त्र रखनेके कारणसे  
तृणस्पर्शादिकोंके द्वारा होनेवाली अनेक परीषहोंसे उनके शरीरका  
मांस और शोणित सूख जाता है ।

समभावनासे युक्त जिनकल्पी हो या स्थविरकल्पी हो, विकृष्ट  
( कठिन ) तप तपनेवाला हो, या अविकृष्ट ( साधारण ) तप तपनेवाला  
हो, या प्रतिदिन आहार करनेवाला हो, ये सब भगवानकी आज्ञानुसार  
ही चलनेवाले हैं । इस रूपसे जो राग, द्वेष और कषायकी परंपरारूप  
संसारश्रेणी को समभावसे एवं क्षान्त्यादि धर्मके आराधनसे तोड़ देते

ये सहायक न छे आ प्रकारे भानी ये महामुनि पोताने थती शारीरिक  
पीडानी तरङ्ग लक्ष आपता नथी, परिषह आदिने शान्तिपूर्वक सहन करवावाणा  
साधुओंना शरीरतु मांस अने दोही सूकाँ नय छे अने शरीरथी तेओ दुभणा  
पातणा अनी नय छे दोही अने मांस ओमना शरीरमा नाममात्रनां रहे छे,  
कारणु के अन्तप्रान्त अने अल्प आहारथी, परिषह आदिना सहेवाथी अने थोडा  
पत्र राभवाना कारणुथी, तृणस्पर्शादिकद्वारा अनता अनेक परिषहोथी तेना  
शरीरतु मांस अने दोही सूकाँ नय छे

समभावनाथी युक्त अनकल्पी होय अथवा तो स्थविरकल्पी होय, विकृष्ट-  
कठिन तप तपवावाणा होय, अथवा-अविकृष्ट-साधारण तप तपवावाणा होय,  
अथवा प्रतिदिन आहार करवावाणा होय, केँ पणु साधु होय ये  
पथा लगनाननी आज्ञा अनुसार न आलवावाणा छे अने आ इपथी ने  
राग, द्वेष अने कषायनी पर पशइय स सारश्रेणीने समभावथी ओटले क्षान्त्यादि

તીર્ણઃ=મનામ્બેઃ પારંગતઃ, મુક્તઃ=સર્વસંગરહિતઃ, ચિરતઃ=સર્વસાબઘ્યાપારરહિતઃ  
 ઘ્યાસ્વાતઃ=તીર્થકુરૈઃ કથિતઃ । इति प्रवीमि, मग्नता यद्योपदिष्टं तथेदं  
 कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ५ ॥

સંસારભ્રેણિ સંપ્રોટય ચર્તમાનમરતિરમિમચતીત્યાહ—‘ચિરય’ ઇત્યાદિ ।

મુખ્ય—ચિરય મિક્ષુ રીયંત ચિરરાઓસિય અરહં તત્ય કિં  
 વિધારય? ॥ સૂ० ૬ ॥

છાયા—ચિરતં મિશ્નું રીયમાણં ચિરરાઓપિતમ્ અરતિસ્તપ્ર કિં વિધારયેત્ ॥મૂ० ૬॥

ટીકા—ચિરતમ્=અસંયમતો નિવૃત્તે રીયમાણમ્=ઉત્તરોત્તરપ્રવર્ધમાનમ્  
 મ્યપસાયેષુ પ્રવર્તમાનં ચિરરાઓપિતં=પ્રમૂતકાલં સયમાવસિયત મિશ્નું=નિરવધમિ  
 ત્તામીકિનં મુનિમ્ અરતિઃ=સંયમોદ્વેગઃ તપ્ર=સયમે કિં વિધારયેત્=કિં પ્રતિસ્વભ્યેત્ ॥

હૈ, બહી પૂર્વોક્તલક્ષણસંપન્ન સાધુ સસારસમુદ્રસે પાર હો જાતે હૈ ઓર  
 સર્વસંગસે રહિત હો સર્વસાબઘ્યાપારરહિત હો જાતે હૈ—એસા તીર્થકુર  
 પ્રમુકા કહના હૈ “इति प्रवीमि” यह कथन मेरा नहीं है, किन्तु प्रमुक  
 है। हे जम्भू ! उन्होंने जैसा कहा है वैसा ही मैं कहता हू ॥ सू० ५ ॥

સંસારપરમ્પરાકો વચ્ચેદ કરકે રહે હુપ સાધુકો અરતિમાય કદા-  
 પિત્ પરાસ્ત કર સક્ષ્યા હૈ ! હસે પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે  
 હૈ “ચિરય” ઇત્યાદિ—

અસંયમ માયસે દૂર રહનેવાલે, ઓર ઉત્તરોત્તર વહતે હુપ શુભ  
 અધ્યવસાયોર્મે પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે, તથા બહુત કાલ તક સંયમકી આરા-  
 ધના કરતે ૨ વર્સીમેં અપને જીવનકે સમયકો વ્યતીત કરનેવાલે એસે  
 નિરવધ મિક્ષાજીવી મુનિકો સંયમમેં ઉદ્વેગરૂપ અરતિમાય ઉસસે સ્વ

ધર્મના આરાધનથી તોડી દે છે; જોવા પૂર્વોક્તલક્ષણસંપન્ન સાધુ સસારસમુદ્રથી  
 પાર થઈ જાય છે, અને સર્વસંગથી રહિત બની સર્વસાબઘ્યાપારરહિત બની  
 જાય છે; જોઈું તીર્થકુર પ્રમુક કહેવું છે “इति प्रवीमि”—આ કથન મારું નથી,  
 પરંતુ પ્રમુકું છે હે જમ્બૂ ! જેમણે જેમ કહ્યું છે તેવી જ રીતે તું કહું છું (સૂ० ૫)  
 સસારપરપત્તને ઉચ્છેદ કરીને સ્થેલા સાધુઓને અરતિમાય કદાચ પરાસ્ત  
 કરી શકે છે ! અને પ્રકટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “ચિરય” ઇત્યાદિ

અસંયમભાવથી દૂર સ્થેવાયાળા અને ઉત્તરોત્તર વધતા જતા શુભ અધ્ય  
 વસાયોર્મા પ્રવૃત્તિ કરવાયાળા તથા ધણા કાળ મુધી સંયમની આરાધના કરતાં  
 કરતાં જોમા જ પોતાના જીવનને સમય અવધીત કરવાયાળા જોવા નિરવધ  
 મિક્ષાજીવી મુનિને સંયમમા ઉદ્વેગરૂપ અરતિમાય અટકાવી શકે પડશે ?

अत्र किं शब्दः प्रश्ने; तथाभूतमपि मोक्षमार्गारूढं किमरतिर्विषयस्थानं नीत्वा स्व-  
लयेत्?, स्वलयेदित्युच्यते। इन्द्रियाणि दुर्वाराणि अविनयवन्ति च, मोहशक्तिश्चा-  
चिन्त्या, तथा—कर्मपरिणतिरपि विचित्रा, तर्हि किं न कुर्यात्?, अपि तु सर्वं  
कुर्यादिति भावः।

यद्वा—किं शब्दोऽत्र क्षेपार्थे। अरतिस्तथाभूतं मोक्षमार्गावस्थितं विधारयेत्=  
प्रतिस्वलयेत् किम्?, नैव विधारयेदित्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

किञ्च—‘संधेमाणे’ इत्यादि।

मूलम्—संधेमाणे समुष्टिषु, जहा से दीवे असंदीणे। सू० ७।

छाया—संदधानः समुत्थितः; यथा स द्वीपः असंदीनः ॥ सू० ७ ॥

लित कर सकता है क्या? यहां “किं” यह शब्द प्रश्नवाचक है।

उत्तर—हां! ऐसे भी उस मोक्षमार्ग में आरूढ हुए मुनिको अरति-  
भाव विषयोंकी ओर ले जाकर स्वलित कर सकता है। क्यों कि  
इन्द्रियां दुर्निवार हैं, मोहकी शक्ति अचिन्त्य है तथा कर्मकी परिणति भी  
विचित्र है। इनकी प्रबलता क्या नहीं कर सकती? सब कुछ कर  
सकती है।

अथवा—“किं” शब्द यहां क्षेप अर्थमें है; इसका मतलब है कि  
यदि कोई हमसे यह पूछे कि क्या ऐसे मोक्षमार्गमें स्थित साधुको  
भी अरतिभाव संयममार्गसे च्युत कर सकता है? तो हम यह उत्तर देगे  
कि नहीं कर सकता है ॥ सू० ६ ॥

तथा—“संधेमाणे” इत्यादि—

अर्हि “किं” आ शब्द प्रश्नवाचक छे

उत्तर—हां, जेवा मोक्षमार्गमा आरूढ थयेला मुनिने पण अरतिभाव  
विषयेनी तरङ्ग लक्ष्ण स्खलित करी शके छे, केम के इन्द्रियेनी अनेकविध  
मोहवाणी शक्ति अचिन्त्य छे तथा कर्मनी परिणति पण विचित्र छे. जेनी  
प्रबलता शु नथी करी शकती? अणु करी शके छे.

अथवा—“किं” शब्द अर्हि क्षेप अर्थमा छे. आनेो मतलब जे छे के  
कदाचि कोस पूछे के शु आवा मोक्षमार्गमा स्थित साधुने पण अर-  
तिभाव संयम मार्गधी च्युत करी शके छे? तो जेनेो आ उत्तर छे के करी  
शकतो नथी (सू० ६)

“संधेमाणे” इत्यादि—



शीर्षं=मवाग्धेः पारंगता, मुक्तं=सर्वसंगरहितः, विरतः=सर्वसाधव्यापाररहित-  
व्यास्यातः=तीर्थङ्करैः कथित । इति प्रवीमि, भगवता ययोपदिष्टं त्वेदं  
कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ५ ॥

संसारश्रेणिं सप्तोदय षष्ठमानमरतिरभिमवतीत्याह—'विरय' इत्यादि ।

मूळम्—विरय भिक्षु रीयंत चिरराओसिय अरई तत्थ किं  
विधारण? ॥ सू० ६ ॥

छाया—विरतं भिक्षुं रीयमानं चिरराओपित्तम् अरतिस्तत्र किं विधारयेत् ॥ सू० ६ ॥

टीका—विरतम्=असंयमतो निवृत्तं रीयमाणम्=उत्तरोत्तरप्रवर्धमानानुमा-  
प्यवसायपु प्रवर्तमानं चिरराओपित्तं=प्रभूतकालं सयमावस्थितं भिक्षुं=निरवधिभि-  
क्षानीविनं मुनिम् अरति =संयमोद्वेगः तत्र=सयमे किं विधारयेत्=किं प्रतिस्वसयेदी

है, षष्ठी पूर्वोक्तलक्षणसंपन्न साधु संसारसमुद्रसे पार हो जाते हैं और  
सर्वसंगसे रहित हो सर्वसाधव्यापाररहित हो जाते हैं—ऐसा तीर्थङ्कर  
प्रभुका कहना है। "इति प्रवीमि" यह कथन मेरा नहीं है, किन्तु प्रभुका  
है। हे जम्भू! उन्होंने जैसा कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ ॥ सू० ५ ॥

संसारपरम्पराको उच्छेद करके रहे हुए साधुको अरतिभाव कदा-  
चित् परास्त कर सकता है! इसे प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते  
हैं "विरयं" इत्यादि—

असयम भावसे दूर रहनेवाले, और उत्तरोत्तर षष्ठे हुए शुभ  
अध्यवसायोर्मि प्रवृत्ति करनेवाले, तथा बहुत काल तक संयमकी आरा-  
धना करते २ उसीमें अपने जीवनके समयको व्यतीत करनेवाले ऐसे  
निरवधि भिक्षाजीवी मुनिको संयममें उद्वेगरूप अरतिभाव उससे स्व

धर्मना आराधनशी तोड़ी है; जेवा पूर्वाकृतवृत्तसपन्न साधु संसारसमुद्रशी  
पार यथं ज्ञायते, आने सुखसुखशी रहित अनी सर्वसाधव्यापाररहित अनी  
ज्ज्ञायते, जेवुं तीर्थङ्कर प्रभुनु कहेवुं ते "इति प्रवीमि" आ कथन भाई नथी,  
परन्तु प्रभुनु ते हे जम्भू! जेभले जेभ कहुं तेनी अरीते हुं कहुं हुं (सू० ५)  
संसारपरपराणे उच्छेद करीने रहेवा साधुजोने अरतिभाव कथ्य परास्त  
करी शके छे। आने प्रगट करवा भाटे सूत्रअर कहे छे "विरयं" इत्यादि

असयमभावशी दूर रहेवाबाण आने उत्तरोत्तर वधता जता शुभ अर्थ  
वसाधोभां प्रवृत्ति करवावाण तथा भण्डा ठाण सुधी सधमनी आराधना करवा  
कर्ता जेभां अ पीताना लवनने सभय व्यतीत करवावाण जेवा निरवधि  
भिक्षालनी मुनिने सधममा उद्वेगरूप अरतिभाव अटकावी शके परेके?

अत्र किं शब्दः प्रश्ने; तथाभूतमपि मोक्षमार्गारूढं किमरतिर्विषयस्थानं नीत्वा स्व-  
लयेत्?, स्वलयेदित्युच्यते। इन्द्रियाणि दुर्वाराणि अविनयवन्ति च, मोहशक्तिश्चा-  
चिन्त्या, तथा—कर्मपरिणतिरपि विचित्रा, तर्हि किं न कुर्यात्?, अपि तु सर्वं  
कुर्यादिति भावः।

यद्वा—किं शब्दोऽत्र क्षेपार्थे। अरतिस्तथाभूतं मोक्षमार्गावस्थितं विधारयेत्=  
प्रतिस्वलयेत् किम्?, नैव विधारयेदित्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

किञ्च—‘संधेमाणे’ इत्यादि।

मूलम्—संधेमाणे समुद्रिण, जहा से दीवे असंदीणे। सू० ७।

छाया—संदधानः समुत्थितः; यथा स द्वीपः असंदीनः ॥ सू० ७ ॥

लित कर सकता है क्या? यहां “किं” यह शब्द प्रश्नवाचक है।

उत्तर—हां! ऐसे भी उस मोक्षमार्ग में आरूढ हुए मुनिको अरति-  
भाव विषयोंकी ओर ले जाकर स्खलित कर सकता है। क्यों कि  
इन्द्रियां दुर्निवार हैं, मोहकी शक्ति अचिन्त्य है तथा कर्मकी परिणति भी  
विचित्र है। इनकी प्रबलता क्या नहीं कर सकती? सब कुछ कर  
सकती है।

अथवा—“किं” शब्द यहां क्षेप अर्थमें है; इसका मतलब है कि  
यदि कोई हमसे यह पूछे कि क्या ऐसे मोक्षमार्गमें स्थित साधुको  
भी अरतिभाव संयममार्गसे च्युत कर सकता है? तो हम यह उत्तर देगे  
कि नहीं कर सकता है ॥ सू० ६ ॥

तथा—“संधेमाणे” इत्यादि—

अर्हि “किं” आ शब्द प्रश्नवाचक छे.

उत्तर—हां, जेवा मोक्षमार्गमा आरूढ थयेदा मुनिने पण अरतिलाव  
विषयेनी तरङ्ग लक्ष्णं स्खलित करी शके छे, केम के ईन्द्रियोनी अनेकविध  
मोहवाणी शक्ति अचिन्त्य छे तथा कर्मनी परिणति पण विचित्र छे. जेनी  
प्रबलता शु नथी करी शकती? अणु करी शके छे.

अथवा—“किं” शब्द अर्हि क्षेप अर्थमा छे. आनेा मतलब जे छे के  
कदाचि केम पूछे के शु आवा मोक्षमार्गमा स्थित साधुने पण अर-  
तिलाव संयम मार्गथी च्युत करी शके छे? तो जेनेा आ उत्तर छे के करी  
शकतो नथी. (सू० ६)

“संधेमाणे” इत्यादि—

ટીકા—યતઃ સ સદધાન = ઉચ્ચરોચ્ચરમધિકાધિકમશ્વસ્તપરિણામધારાં ગુણ  
 સ્થાનકં ધા આરોહન્ સમુસ્થિતઃ = સમ્યગુસ્થિતઃ યથાઽઽન્યાતચારિત્રામિમ્યુત્સઃ ઉચ્ચરોચ્ચર  
 -મશ્વસ્તમાવસમાન્દો વર્તતે । તમરતિઃ કય મ્વલેયિદિતિ માવઃ । યથા દ્વીપઃ =  
 દ્વિર્ગતા આપોઽસ્મિન્નિતિ દ્વીપ -ઉભયતઃ પાનીયં યત્ર ઠિષ્ઠતિ સા સ્થલભૂમિર્દ્વીપઃ,  
 અસંદીનઃ = જલોપપ્લાવનાદુપસર્ગરહિતો ભવતિ, તથા સ = પૂર્વોક્તલક્ષણો મુનિરપિ  
 પરિપદ્માપસર્ગમતિવાધિતા ન ભક્ષતીસ્પર્યઃ । યદ્વા - અસંદીના દ્વીપો યથા યાત્રિમિરા  
 શ્વસનીયો ભવતિ, તથા સ તથાત્રિમિ' સાધુરિતિ । સમુદ્રાદિકમુચરીતુમિન્નન્વોઽસ  
 વીનં દ્વીપમાશ્વસન્તિ - વિશ્વસન્તિ, તથૈવ સંસારસાગરં સમુપ્ચિત્તીર્પવોઽન્ય પ્રાપ્તિનઃ તં  
 સાધું વિશ્વસન્તીસ્પર્યં ॥ સૂ૦ ૭ ॥

જિસકી પ્રદાસ્ત પરિણામધારા ઉચ્ચરોચ્ચર અધિકાધિકરૂપમે  
 વૃદ્ધિગત હો રહી હૈ, અથવા જો આગે ૨ કે ગુણસ્થાનો પર ચઢતા જા  
 રહ્યા હૈ, ઓર ઈસીસે જો યથાસ્થ્યાત ચારિત્રકે સન્મુત્થ જા રહ્યા હૈ, એસે  
 મહામુનિકો અરતિભાવ કૈસે અપને સ્થાનસે સ્વલિત કર સકયા હૈ ?  
 અર્થાત્ નહીં કર સકયા હૈ, વોનો ઓર જિસકે જલ હોતા હૈ ઉસકા નામ  
 દ્વીપ હૈ । વહ દ્વીપ-સ્થલભૂમિ જિસ પ્રકાર જલમગન હોને આદિકે ઉપ  
 વ્રથસે સુરક્ષિત રહતા હૈ ઈસી પ્રકાર એસા મુનિ ધી પરીપદ્મ ઓર ઉપસર્ગ  
 સે વાધિત નહીં હોતા હૈ ।

અથવા—જિસ પ્રકાર અસંદીન ( ઉપસર્ગરહિત ) દ્વીપ યાત્રિયોકે  
 લિયે આશ્વાસનકા સ્થાન હોતા હૈ ઈસી પ્રકાર ધે મહામુનિ ધી મર્વ્યોકે  
 લિયે આશ્વાસન ( આધાર ) રૂપ હૈ । મમુદ્રાદિકકો પાર કરનેકી માવના  
 ઘાલે મનુષ્ય અસંદીન દ્વીપમે વિશ્વાસ રખતે હૈ, ઈસી પ્રકાર સંસારરૂપી

નેની પ્રદાસ્ત પરિણામધારા ઉચ્ચરોચ્ચર અધિકાધિકરૂપમા વૃદ્ધિમત મર્વ  
 રૂપી છે જમવા કે શુભસ્થાને પર જામળ આગળ ચઢતા જતા હોમ છે અને  
 આથી કે યથાસ્થ્યાત ચારિત્રની સ મુખ જઈ રહેલ છે એવા મહામુનિને અરતિભાવ  
 ક્યાંકી પાતાના સ્થાનથી સ્ખલિત કરી શકે ? અર્થાત્ કરી શકતો નથી. અને વાજુ  
 નેને જળ છે એવું નામ દ્વીપ છે એ દ્વીપ-સ્થલભૂમિ કે રીતે પૂર આદિના ઉપદ્રવથી  
 સુરક્ષિત રહે છે એ રીતે એવા મુનિ પણ પાસપદ અને ઉપસર્ગથી વાધિત હોવા નથી.  
 જેમકે ઉપસર્ગ રહિત દ્વીપ યાત્રિયોને માટે આશ્વાસનનું સ્થાન હોય છે, તેવી જ  
 રીતે મહામુનિ પણ જાન જીવોને માટે આધારરૂપ છે સમુદ્રાદિકને પાર કરવાની  
 ભાવનાવાળા મનુષ્ય ઉપસર્ગરહિત દ્વીપમા વિશ્વાસ રાખે છે, એવી રીતે સસારરૂપી  
 સમુદ્રથી પાર વવાની ભાવનાવાળા જમ્ય પણ એવા મુનિને વિશ્વાસ કરે છે.

मूलम्—एवं से धम्ममे आरियपदेसिए ॥ सू० ८ ॥

छाया—एवं स धर्मः आर्यप्रदेशितः ॥ सू० ८ ॥

टीका—स प्रागुक्तः आर्यप्रदेशितः=तीर्थङ्करभाषितः धर्मः एवम्=दृश्यो द्वीप-  
तुल्योऽस्तीत्यर्थः । भगवद्भाषितो धर्मः खलु जलेनासंदीनद्वीपवत् अरत्या कुत-  
केण च कदाचिदपि न बाध्यत इति भावः ॥ सू० ८ ॥

ननु तथाविधा भगवद्भाषितधर्मस्य समाराधकाः कथंभूता भवन्तीति शिष्य-  
जिज्ञासायामाह—‘ते अणवकंखमाणा’ इत्यादि ।

समुद्रसे पार होनेकी भावनावाले भव्य भी उन मुनिका विश्वास करते हैं ।

भावार्थ—यथाख्यात चारित्रकी ओर ले जानेवाली प्रशस्त परिणाम-  
धारा जिसके उत्तरोत्तर अधिकाधिक रूपमें बढ रही है ऐसे मुनिके लिये  
एकतो परीपह उपसर्गादिक आते नहीं हैं, यदि कदाचित् आ भी जाते हैं  
तो वे मुनि उनसे जलके प्लाव (उपद्रव)से असंदीन द्वीपकी तरह सदा  
सुरक्षित रहते हैं और अन्य प्राणियोंके लिये आधारभूत होते हैं ॥सू०७॥

जिस प्रकार पूर्वाक्त स्वरूपवाला साधु अरति आदि बाधाओंसे  
बाधित नहीं होते उसी प्रकार जिनेन्द्रप्रतिपादित वह धर्म भी अरति  
या कुतकोंसे कभी भी बाधित या खण्डित नहीं होता है । यह धर्म भी  
असंदीन द्वीपकी तरह ही है । वह जिस प्रकार जलप्लावसे निर्बाध रहता  
है—उसी प्रकार धर्म भी कुतकोंसे या अरति आदि दुर्भावोंसे अबाध्य  
रहता है ॥सू०८॥

भगवत्कथित धर्मके समाराधक जीव कैसे होते हैं? इस प्रकार  
शिष्यकी जिज्ञासाका “ते अणवकंखमाणा” इत्यादि सूत्रसे सूत्रकार

भावार्थ—यथाख्यात चारित्रकी तरह दोरवावाणी प्रशस्त परिणामधारा लेने  
उत्तरोत्तर अधिष्ठ—अधिष्ठ—इपमा वधी रही छे, जेवा मुनिने माटे जे के परिषद उप-  
सर्गादिक आवता नथी, अने कदाच आवी नय तो पणु जे मुनि जेनाथी नणना  
उपद्रवथी सुरक्षित द्वीपनी भाइके, सदा सुरक्षित रहे छे, अने अन्य प्राणिजो  
माटे आधारभूत रहे छे ( सू०७ )

जे प्रकारे पूर्वोक्तस्वरूपवाणा साधु अरति आदि बाधाओंथी बाधित  
नथी थता, जेन प्रकारे जेनेन्द्रप्रतिपादित धर्म पणु अरति अने कुतकोंथी कही  
पणु बाधित अने षडित थतो नथी आ धर्म पणु सुरक्षित द्वीपनी भाइके छे.  
जे जेम नणना उपद्रवथी सुरक्षित रहे छे ते प्रकारे धर्म पणु कुतकोंथी अने  
अरति आदि दुर्भावोंथी सुरक्षित रहे छे (सू०८)

भगवत्कथित धर्मना आराधक जेव केवो होय छे? आ प्रकारनी शिष्यनी

मूत्रम्—ते अणवकस्वमाणा पाणे अणुवायमाणा दइया  
मेवाविणो पडिया ॥ सू० ९ ॥

छाया—ते अनवकाहन्तः प्राणान् अनतिपातयन्तः दयिताः मधाविनः  
पण्डिताः ॥ सू० ९ ॥

टीका—यत्रते मूनयः अनवकाहन्ताः=विषयभोगाननभिसाध्यन्तः तथा-  
प्राणान्=प्राणिनः, अनतिपातयन्तः=अहिंसन्तः, इव शेषमहाव्रतानामुपलक्षणम्—तेन  
शेषाण्यपि महाव्रतानि पारयन्त इत्यर्थः, तथा-दयिताः=सकलपाणिनां शुभचिन्त  
कृत्वात् सर्वलोकाभिया इत्यर्थः, तथा-मधाविनः—साधुमर्यादाव्यवस्थिताः, पण्डिताः=  
सर्वसाधव्यापारपरिहारेण हेयोपादेयज्ञानवन्तो भवन्तीत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

य ह्य हेयोपादेयज्ञानामावाङ्मगधर्मे समुत्थिता न सन्ति, ताम् प्रति यदाषा-  
र्यादीनां कर्त्तव्यं तदाह—'एषं तेसि' इत्यादि ।

समाधान करते हैं—

भगवत्प्रतिपादित धर्मके समाराधक जीव विषयभोगोंकी बाधासे  
रहित होते हैं, प्राणियोंकी हिंसा नहीं करते हैं । उपलक्षणसे अवशिष्ट  
महाव्रतोंके धारक होते हैं । समस्त जगतके कल्याणके अभिलाषी होने  
से वे जगत्प्रिय होते हैं । साधुमर्यादामें रहते हैं और समस्त साधव  
व्यापारोंके त्यागी होनेसे हेय और उपादेयके विवेकसे धारित अत-  
रणवासे होते हैं ॥सू०९॥

जो हेय और उपादेयके विवेकके अभावसे भगवत्प्रतिपादित धर्म  
में समुत्थित नहीं है—उसमें अनुत्साही है, उनके प्रति आचार्योंका क्या  
कर्त्तव्य होना चाहिये ? इस बातको सूत्रकार "एषं तेसि" इत्यादि सूत्र  
द्वारा प्रकट करते हैं—

समाधान "हे अणवकस्वमाणा" इत्यादि सूत्रकी सूत्रकार समाधान करे है

अत्रयत्—प्रतिपादित धर्मना आराधक एव नियोजनीयं वांछनीयं स्थित  
कीय है प्राणियोंकी हिंसा करता नहीं उपलक्षणकी अनशिष्ट महाव्रतोंके  
धारक होय है समस्त जगतना कल्याणना अभिलाषी होवाची ये जगत्प्रिय  
होय है साधुमर्यादामें रहे है अने समस्त साधव व्यापारोंना त्यागी होवाची  
है अने उपादेयना विवेककी अन्तःकरणवाणा होय है (सू०९)

ये हेय अने उपादेयना विवेकना अभावकी अत्रयत्—प्रतिपादित धर्मना  
स्थिर नहीं—उत्साही नहीं, अनेना तरक आचार्योंनुं शु कर्त्तव्य है ? ये वादने  
सूत्रकार "एषं तेसि" इत्यादि सूत्रद्वारा प्रकट करे है

मूलम्—एवं तेसिं भगवओ अणुट्टाणे जहा से दियपोए। एवं ते सिस्सा दिया य राओ य अणुपुठ्वेण वाइयत्तिवेमि॥सू०१०॥

छाया—एवं तेषां भगवतोऽनुत्थाने यथा स द्विजपोतः । एवं ते शिष्या दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण वाचिताः, इति ब्रवीमि ॥ सू० १० ॥

टीका—भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनो धर्मं एवं=पूर्वोक्तरीत्या तेषां=तथाभूत-ज्ञानाभावेन भगवद्धर्मसमाराधनानुत्साहवतां शिष्याणाम् अनुत्थाने=उत्तरोत्तरमधि-काधिकप्रशस्तपरिणामधारानारोहणे सति आचार्यादिभिः सदुपदेशदानेन बुद्धिवैश-द्य विधेयमित्यर्थः । अत्र दृष्टान्तमाह—‘ यथा सः ’ इत्यादि,

यथा सः=प्रसिद्धः द्विजपोतः=पक्षिशावकः मातापितृभ्यामनुपाल्यते, एवं ते शिष्या आचार्येण दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण=क्रमेण वाचिताः=सामायिकादी-न्येकादशाङ्गानि च पाठिताः सकलपरीपहोपसर्गसहिष्णवः संसारसागरोत्तरणसम-र्थाश्च भवन्तीत्यर्थः । इति ब्रवीमि । अस्य व्याख्या प्राग्वत् ॥ सू० १० ॥

॥ षष्ठाध्ययनस्य तृतीयोद्देशः समाप्तः ॥ ६-३ ॥

भगवान् श्री वर्धमानस्वामीके धर्ममें इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे यदि शिष्यजन हेयोपादेय ज्ञानसे विकल होनेके कारण, भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्मकी आराधना करनेमें अनुत्साही हों तो, आचार्योंका कर्तव्य है कि वे उन्हें सदुपदेश प्रदान करें, जिससे उनकी बुद्धिमें विश-दता आवे । दृष्टान्त—जैसे पक्षियुगल अपने बच्चोंको पालता है, उन्हें चलना—फिरना सिखलाता है उसी प्रकार वे शिष्य भी आचार्यद्वारा रात दिन क्रम २ से सामायिक आदिके तथा ग्यारह अंगोंके पाठी बनाये जाते हैं, ताकि वे सकल परीपह और उपसर्गोंको जीतनेमें सहजशील बन संसारसागरसे पार होनेमें शक्तिसम्पन्न बन सकें । “इति ब्रवीमि ” इन पदोंकी व्याख्या पहिले जैसी जाननी चाहिये ।

भगवान् श्री वर्धमान स्वामीना धर्ममा आ प्रकारे पूर्वोक्त रीतथी कदाय शिष्यजन-डेय उपादेयना जानथी विकल होवाना कारणे भगवान्द्वारा उपदिष्ट-उपदेशेन धर्मनी आराधना करवामा अनुत्साही होय तो आचार्यनु कर्तव्य छे के तेओ तेने सद् उपदेश प्रदान करे जेनाथी तेनी बुद्धिमा विश-दता आवे. दृष्टान्त-जेम ओके पक्षीजेटु पोताना अर्थाने पोषे छे, तेने आलता इस्तां शीष्यवाडे छे, जेथी न रीते ते शिष्य पणु आचार्यद्वारा रातदिवस कंम कंमथी सामायिक आदिना अने अग्यार ११ अ गोना पाठी बनाववामा आवे छे. जेथी ते सकल परिपह अने उपसर्गो छतवामा सहजशील भनी संसारसागरथी पार थवामा शक्तिसंपन्न भनी शके “इति ब्रवीमि” आ पढेनी व्याख्या पढेला जेथी नणुवी

मूत्रम्—ते अणवकस्वभाणा पाणे अणव्वापमाणा दृश्या  
मेहाविणो पडिया ॥ सू० ९ ॥

छाया—ते अनवकाहन्तः प्राणान् अनतिपातयन्तः दयिताः मेधाविनः  
पण्डिताः ॥ सू० ९ ॥

टीका—यत्तस्ते मूनयः अनवकाहन्तः=विषयमोगाननमिवाच्छन्तः तथा—  
प्राणान्=प्राणिनः, अनतिपातयन्तः=अहिंसन्तः, इदं शेषमहाप्रतानामुपलक्षणम्—तेन  
शेषाण्यपि महाप्रतानि धारयन्त इत्यर्थः, तथा—दयिताः=सकलप्राणिनां शुभचिन्त-  
कत्वात् सर्वलोकमिया इत्यर्थः, तथा—मेधाविनः—साधुमर्यादाभ्यवस्थिताः, पण्डिताः=  
सर्वसाधयव्यापारपरिहारेण हेयोपादेयज्ञानयन्तो भवन्तीत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

ये तु हेयोपादेयज्ञानामावाङ्गवद्भर्मे समुत्थिता न सन्ति, तान् प्रति यदावा-  
यादीनां कर्त्तव्यं तदाह—‘एवं तेसि’ इत्यादि ।

समाधान करते हैं—

भगवत्प्रतिपादित धर्मके समाराधक जीव विषयमोगोंकी घाञ्छासे  
रहित होते हैं, प्राणियोंकी हिंसा नहीं करते हैं । उपलक्षणसे अयश्शिष्ट  
महाप्रतों के धारक होते हैं । समस्त जगतके कन्याणके अभिलाषी होने  
से वे जगत्प्रिय होते हैं । साधुमर्यादामें रहते हैं और समस्त सावध  
व्यापारोंके त्यागी होनेसे हेय और उपादेयके विवेकसे वासित अन्तःक-  
रणवाले होते हैं ॥ सू० ९ ॥

जो हेय और उपादेयके विवेकके अभावसे भगवत्प्रतिपादित धर्म  
में समुत्थित नहीं है—उसमें अनुत्साही है, उनके प्रति आचार्योंका क्या  
कर्त्तव्य होना चाहिये ? इस बातको सूत्रकार “एवं तेसि” इत्यादि सूत्र  
द्वारा प्रकट करते हैं—

एसासात् ‘ते अणवकस्वभाणा’ इत्यादि सूत्रधी सूत्रकार समाधान करे थे

अनवत्-प्रतिपादित धर्मना आराधक एव विषयमोगेनी चञ्चलधी रहित  
होय थे प्राणियोंकी हिंसा करता नहीं, उपलक्षणधी अनशिष्ट महाप्रताने  
धारक होय थे समस्त जगतना कन्याणना अभिलाषी होयधी के अन्तःप्रिय  
होय थे साधुमर्यादामें रहे थे अने समस्त सावध व्यापाराना त्यागी होयधी  
होय अने उपादेयना विवेकधी भरपूर जन्तु-उपलक्षण होय थे (सू० ९)

ये हेय अने उपादेयना विवेकना अभावधी भगवत्-प्रतिपादित धर्मना  
स्थिर नहीं-उत्साही नहीं, जेभना तर्क अन्वयानुं शु कर्त्तव्य थे ? के वातने  
सूत्रकार “एवं तेसि” इत्यादि सूत्रद्वारा प्रकट करे थे

मूलम्—एवं तेसिं भगवओ अणुट्टाणे जहा से दियपोए। एवं ते सिस्सा दिया य राओ य अणुपुट्टवेण वाइयत्तिबेमि॥सू०१०॥

छाया—एवं तेषां भगवतोऽनुत्थाने यथा स द्विजपोतः । एवं ते शिष्या दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण वाचिताः, इति ब्रवीमि ॥ सू० १० ॥

टीका—भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनो धर्मे एवं=पूर्वोक्तरीत्या तेषां=तथाभूत-ज्ञानाभावेन भगवद्धर्मसमाराधनानुत्साहवतां शिष्याणाम् अनुत्थाने=उत्तरोत्तरस्मधिकाधिकप्रशस्तपरिणामधारानारोहणे सति आचार्यादिभिः सदुपदेशदानेन बुद्धिवैशद्यं विधेयमित्यर्थः । अत्र दृष्टान्तमाह—‘ यथा सः ’ इत्यादि,

यथा सः=प्रसिद्धः द्विजपोतः=पक्षिशावकः मातापितृभ्यामनुपाल्यते, एवं ते शिष्या आचार्येण दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण=क्रमेण वाचिताः=सामायिकादीन्येकादशाङ्गानि च पाठिताः सकलपरीषहोपसर्गसहिष्णवः संसारसागरोत्तरणसमर्थाश्च भवन्तीत्यर्थः । इति ब्रवीमि । अस्य व्याख्या प्राग्वत् ॥ सू० १० ॥

॥ षष्ठाध्ययनस्य तृतीयोद्देशः समाप्तः ॥ ६-३ ॥

भगवान् श्री वर्धमानस्वामीके धर्ममें इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे यदि शिष्यजन हेयोपादेय ज्ञानसे विकल होनेके कारण, भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्मकी आराधना करनेमें अनुत्साही हों तो, आचार्योंका कर्तव्य है कि वे उन्हें सदुपदेश प्रदान करें, जिससे उनकी बुद्धिमें विशदता आवे । दृष्टान्त—जैसे पक्षियुगल अपने बच्चोंको पालता है, उन्हें चलना-फिरना सिखलाता है उसी प्रकार वे शिष्य भी आचार्यद्वारा रात दिन क्रम २ से सामायिक आदिके तथा ग्यारह अंगोंके पाठी बनाये जाते हैं, ताकि वे सकल परीषह और उपसर्गोंको जीतनेमें सहनशील बन संसारसागरसे पार होनेमें शक्तिसम्पन्न बन सकें । “इति ब्रवीमि ” इन पदोंकी व्याख्या पहिले जैसी जाननी चाहिये ।

भगवान् श्री वर्धमान स्वामीना धर्ममा आ प्रकारे पूर्वोक्त रीतथी कदाच शिष्यजन-डेय उपदेयना ज्ञानथी विकल होवाना कारणे भगवान्द्वारा उपदिष्ट-उपदेशेन धर्मनी आराधना करवामा अनुत्साही होय तो आचार्यनु कर्तव्य छे के तेओ तेने सह उपदेश प्रदान करे जेनाथी तेनी बुद्धिमां विशदता आवे. दृष्टान्त-जेम ओके पक्षीनेडु पोताना गन्थाने पोषे छे, तेने आदता इरतां शीभवाडे छे, जेवी न रीते ते शिष्य पणु आचार्यद्वारा रातदिवस कभ कभथी सामायिक आदिना अने अग्यार ११ अ गोना पाठी बनाववामा आवे छे जेथी ते सकल परिषह अने उपसर्गो छुतवामा सहनशील अनी संसारसागरथी पार थवामा शक्तिस पन्न अनी शके “इति ब्रवीमि” आ पदोनी व्याख्या पडेला जेवी नालुवी



भगवान्के द्वारा कथित धर्ममें जो शिष्यजन मन्दपरिणामी हों-  
उत्साहशील न हों तो, आचार्यका कर्तव्य है कि वह उनका तिरस्कार न  
कर उन्हें उस धर्मकी आराधना करनेमें चतुर बनावे—उन्हें शास्त्रोंका  
अभ्यास करावे। जैसे पक्षी अपने बच्चोंकी संभाल रखते हैं उसी प्रकार  
आचार्य भी उनकी हर एक प्रकारसे संभाल रखते हुए हेय और उपा-  
देयके विवेकसे शास्त्रित भक्तिवाला करनेकी चेष्टा करते रहें; ताकि वे  
परीपट और उपसर्गोंके सहनमें अधीर न बन कर सहनशील बनें, और  
इस संसार समुद्रसे पार हो सकें ॥ सू० १०॥

॥ छद्म अध्ययन का तीसरा उद्देश समाप्त ॥ १-३ ॥



भगवान्द्वारा कहेवाले धर्ममें जो शिष्यजन मन्दपरिणामी हीन-  
उत्साहशील न होय तो, आचार्यका कर्तव्य है कि तेने तिरस्कार न करतां तेने  
आ धर्मकी आराधना करवाया चतुर बनावे—तेने शास्त्रोंका अभ्यास करावे, जेभ  
—पक्षी पोताना जन्मजातनी संभाल सजे छे ते प्रकार आचार्य पण तेनी हर  
प्रकारकी संभाल सजीने हेय जने उपादेयका विवेकधीं बरपूर भक्तिवाला करवाणी  
चेष्टा करता रहे, जेथी ते परियुक्त जने उपसर्गों सहन करवाया अधीश न जने,  
सहनशील जने, जने आ संसार समुद्रकी पार कर सकें ( सू० १० )

छद्म अध्ययनको तीसरे उद्देश समाप्त ॥ १-३ ॥



## ॥ अथ षष्ठ्याध्ययनेस्य चतुर्थ उद्देशः॥

इहानन्तरतृतीयोद्देशके उपकरणशरीरममत्वधूननं प्रतिबोधितम् । तच्च गौरव-  
त्रयवतः सम्पूर्णतया न भवत्यतस्तद्धूननार्थं चतुर्थो देशं कथयन्नाद्यं सूत्रमाह—‘ एवं  
ते सिस्सा ’ इत्यादि ।

मूलम्—एवं ते सिस्सा दिया य राओ य अणुपुव्वेण वा-  
इया तेहिं महावीरेहिं पण्णाणमंतेहिं, तेसिंतिए पण्णाणमुवल-  
ब्भ हिच्चा उवसमं फारुसियं समाइयंति ॥ सू० १ ॥

छाया—एव ते शिष्या दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण वाचिताः तैर्महावीरैः  
प्रज्ञानवद्भिः, तेपामन्तिके प्रज्ञानमुपलभ्य हित्वा उपशमं पारुषिकं समाददति ॥१॥

टीका—एव=पक्षिशावकसंवर्धनक्रमेण ते शिष्याः दिवा रात्रौ च अनुपूर्वेण=  
क्रमेण यथा त्रिवर्षपर्याय आचाराद्गादि अध्याप्यते, कक्षान्तरे केशसमुद्भवे सति ततः

## ॥ छट्टा अध्ययनका चोथा उद्देश ॥

इस अध्ययनके तृतीय उद्देशमें साधुको उपकरण और शरीरमें  
ममत्व नहीं रखना चाहिये, यह बात समझा दी गई है । इनमें ममत्व  
का त्याग, जो तीन गौरवोंसे युक्त है उसके संपूर्ण रीतिसे नहीं होता  
है । इसलिये उन गौरवोंके त्याग करानेके लिये इस चतुर्थ उद्देशको  
प्रारम्भ करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“ एवं ते सिस्सा ” इत्यादि ।

जिस प्रकार पक्षी अपने बच्चोंका क्रमशः संवर्धन करते हैं, उसी  
प्रकार सम्यग्ज्ञानी तीर्थङ्कर और गणधरादिकोंके द्वारा भी आचाराद्गादि

## छट्टा अध्ययननो योथो उद्देश.

आ अध्ययनना त्रीण उद्देशमा साधुञ्चे उपकरणे तरङ्ग ममत्व राभवु न  
नेधञ्चे आ वात समनववाभा आवी छे. आ ममत्वनो त्याग, जे त्रणु गौरवथी  
भरपूर छे तेनाथी सारी रीते थर्ध शकतो नथी भाटे ते त्रणु गौरवनो त्याग  
कराववा भाटे आ यतुर्थ उद्देशनो प्रारंभ करता सूत्रकार कहे छे—“ एवं ते  
सिस्सा ” इत्यादि

जे प्रकारे पक्षी पोताना भव्याने पाणी पोषीने भोटु करे छे ओ रीते  
सम्यग्ज्ञानी तीर्थंकर अने गणधर आदि द्वारा पणु आचाराग सूत्र इत्यादि  
पाठनकमथी शिष्यजन दिनरात अडणुशिक्षा अने आसेवनशिक्षा आ भन्ने

पूर्वमप्यभ्यास्यते, - इत्यादिक्रमेण प्रज्ञानवद्विः = सम्पूर्णज्ञानवद्विः तैर्महावीरै तीर्थङ्कराणां रमणादिभिः वाचिताः = ग्रहणासेवनाशिक्षाद्वयेन भिसिताः, सूत्रार्थतदुभयाभ्यापनरूपां ग्रहणाशिक्षां साधुसामाचारीपालनरूपामासेवनशिक्षां च प्राहिताः । तत्र क्वचन शिष्याः, तेषाम् आचार्यादीनां तीर्थङ्करादीनाम् अन्तिके = समीपे प्रज्ञानं = एकुटं ज्ञानं भुक्तज्ञानम् उपलभ्य = संप्राप्य ज्ञानगर्भान्याः सन्तः उपलभं ज्ञानिमात्रं हित्वा = प्रवल-मोहोदयापनीतसदुपदेशसञ्जातात्कटमदत्त्वन त्यक्त्वा पारुषिकं = पारुष्यं समाद-

सूत्र पाठनक्रमसे शिष्यजन दिन-रात निरन्तर ग्रहणशिक्षा और आसेवनशिक्षा इन दोनों शिक्षाओंसे शिक्षित किये जाते हैं। शिष्यकी दीक्षापर्याय जय तीन वर्षकी हो जाय तो उसे आचाराङ्ग आदि सूत्रोंका क्रमसे अध्ययन कराना चाहिये, तथा यदि कक्षा (कॉल) में बाल क्ला आर्य तो इसके पहिले भी उसे आचाराङ्ग आदिका अध्ययन कराया जा सकता है। क्रम २ से सूत्र अर्थ और साथ २ सूत्र अर्थका अध्ययन शिष्यको कराना इसका नाम ग्रहणशिक्षा है। साधु समाचारीके पालन करनेकी उन्हें शिक्षा देना इसका नाम आसेवनशिक्षा है। उसमें कोई २ शिष्य उन तीर्थङ्कर या आचार्योंके निकट सर्वोत्तम भुक्तज्ञान प्राप्त कर विशिष्ट ज्ञानी जय हो जाते हैं तय ज्ञानका गर्भ करने लग जाते हैं, और इस अभिमानसे अंध-उन्मत्त हो कर शांतिभाव तकका भी परित्याग कर देते हैं। इस अवस्थामें वे प्रवल मोहके उदयसे गुरुके प्रदत्त उपदेश अनुसार प्रवृत्ति नहीं करते हैं, और उत्कट मदके नशेमें बमान जैसे वन कर अपने उपकारी गुरुजनके साथ भी वाचनिक कठोर व्यवहार

शिक्षाओंकी शिक्षित बनाववामा आवे छे शिष्यनी दीक्षाने समय आदरे तब वर्षनी वर्ष अथ त्वारे तेने आचार्याज सूत्र आदि सूत्रोतु कर्मधी अध्ययन करा वपु लेछे। पछु ले आ समयनी पहर तेनी कथमा बाज उजवा छजे तो आ कण पड़ेवा आचार्याज आदिनु अध्ययन करावी शक्य छे कर्म कर्मधी सूत्र अर्थ जने साधुसाधु सूत्र अथपु अध्ययन शिष्यने करावपु लेछे जे आनु नाम ब्रह्मशिक्षा छे साधुसामाचारीनु पालन करवाली शिक्षा देनी लेछे जे ? आनु नाम आसेवनशिक्षा छे आमा कोछ कोछ शिष्य तीर्थ कर अवय आचार्योंनी पासेधी भुक्तज्ञान प्राप्त करी त्वारे साथ ज्ञानी जनी वय त्वारे ज्ञानते मय करवा लागी वय छे जने जे अभिमानधी अंध-उन्मत्त जनी ज्ञानिभावने पण परित्याग करी दे छे आ अवस्थामें ते प्रलय भेदना उदयधी गुरुधी प्राप्त धयेव उपदेश अनुसार प्रवृत्ति करवा नहीं जने महान नशामें बेजान जेवा जनी जे उपकारी गुरुजनोनी साथे पछु वादविवादधी

दति=वृहन्ति, यथा-ज्ञानलवं प्राप्य, तन्मदान्धाः परस्परं वाचनाप्रच्छनादिषु वदन्ति, 'भवता यन्निगद्यते नैतत् समीचीनं, अस्य शब्दस्य नायमर्थः, यथा मयोच्यते स एव सिद्धान्तः, शब्दार्थनिर्णयाय कश्चिदेवास्ति मादृशः' इत्यादिरूपं वचनपारुष्यं स्वीकुर्वन्ति ॥ सू० १ ॥

किञ्च—'वसित्ता' इत्यादि ।

मूलम्—वसित्ता बंभचेरांसि आणं तं नोत्ति मन्नमाणा ॥ सू० २ ॥

छाया—उषित्वा ब्रह्मचर्ये आज्ञां तां नो इति मन्यमानाः ॥ सू० २ ॥

टीका—एके तु शिष्याः ब्रह्मचर्ये=संयमे आचारार्थम् उषित्वा=स्थित्वा ता-माज्ञां तीर्थङ्करोपदेशरूपां नो इति मन्यमानाः=देशतस्तीर्थकृदुपदेशं नाद्रियमाणा-सातागौरवप्रकर्षेणाऽज्ञातकुलादिष्वन्तप्रान्ताहारप्राप्तिशङ्कया शरीरविभूषादिना चा-स्त्रिमालिन्यलक्षणं बाकुशिकत्वं प्रपद्यन्त इति भावः ॥ सू० २ ॥

करने लग जाते हैं । वे पल्लवग्राहिपाण्डित्यवाले शिष्यजन गर्वोन्मत्त बन-अहंकारसे फूल कर सूत्रोंकी वाचना एवं प्रच्छना आदिके समय यह कह दिया करते हैं कि " आप जो कुछ कह रहे हैं वह ठीक नहीं है, इस शब्दका यह अर्थ नहीं है " " जो कुछ मैं कहता हूं वही यथार्थ है-वही सुन्दर सिद्धान्त है, शब्द और अर्थका निर्णय मेरा जैसा कोई कर सकता है ! कोई नहीं " इत्यादि रूपसे अभिमानयुक्त वचन बोलते हैं ॥ सू० १ ॥

तथा—"वसित्ता" इत्यादि ।

कोई एक शिष्यजन ब्रह्मचर्यका पालन करके तीर्थङ्कर उपदिष्ट आज्ञा का आदर नहीं करते हैं । एकदेशसे भी तीर्थङ्करके उपदेशको वे नहीं मानते हैं । सातागौरवके प्रकर्षसे " कदाचित् अज्ञातकुलादिकोंमें हमें अन्तप्रान्त आहार मिले ? " इस प्रकारकी शङ्कासे वे शारीरिक वेष-

कठोर व्यवहार करना लागे छे तेवा पल्लवग्राहिपाण्डित्यवाणा शिष्यजन गर्वो-न्मत्त बानी अहंकारथी कुलाध ञ्ठ सूत्रोनी वाचना अथवा प्रच्छना आदिना समये ओषु कही दे छे के " आप जे काछ कहे छे ओ हीक नथी, आ शब्दने ओ अर्थ नथी " " हु जे काछ कहुं छुं ते अरोअर छे ओ न सुंदर सिद्धान्त छे, शब्द अने अर्थने निर्णय मारा जेवो काछ करी शके छे ! कोछ नहि " इत्यादि इपथी अभिमानयुक्त वचन बोले छे (सू० १)

तथा "वसित्ता" इत्यादि ।

कोछ ओक शिष्यजन ब्रह्मचर्यतु पालन करी तीर्थङ्करे उपदेशके आज्ञाने आदर न करे, ओकदेशथी पणु तीर्थङ्करना उपदेशने ओ न माने, सातागौरवना

નતુ સાધ્યાપારપરિભ્રજ્યાનાં કુશીલાનાં વીર્યઃ સસારો મ્મતીત્યુપદેશઃ કથં ન તેમ્ય ક્રિયત ? इति जिज्ञासायामाह—‘आचार्यं तु’ इत्यादि ।

મૂલ્ય-આધાય તુ સુચ્ચા નિસમ્મ, “સમણુઘ્ના જીવિસ્સામો” યગે નિક્કલ્લમ્મ તે અસમ્મવતા વિઢલ્લમાણા કામેહિં ગિહ્ધા અજ્જો વવઘ્ના સમાહિમાધાયમહ્હોસયતા સત્થારમેવ ફરુસ વયતિ ।સૂ.૦૩।

છાયા—આલ્યાત તુ ધૃત્વા નિશમ્ય, ‘સમનોઘ્ના જીવિવ્યામઃ’ એકે નિક્કલ્લમ્મતે અસમ્મવન્તઃ વિદલ્લમાનાઃ કામેર્ગુદ્ધાઃ અબ્બુપપ્પાઃ સમાધિમ્ આમ્યાતમ્ મજ્જોપવન્તઃ શાસ્તારમવ પરુપં વદન્તિ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકા—એકે=ક્રવન કુશીલાઃ શિવ્યાસ્તુ=માત્રયાતં=તીર્યક્રગઘરાદિમિ કથિતં કુશીલાચારિપાર્ક ધૃત્વા નિશમ્ય=અવધાર્ય શાસ્તારમવ પરુપં વદન્તીત્યવ્યમઃ। કથમ્મૂતાસ્ત શિવ્યા ? इत्यत्राह—‘समनोघ्ना’ इत्यादि, समनोघ्ना=श्रीश्रियाः सन्तः जीविष्यामः; इति मत्वा निकल्लम्य=प्रव्रजितो भूत्वा त अगमम्वन्ताः। न मृपा घनाते हे, इमसे उनका चारित्र्य मलिन घनता हे, और इससे वे पकृष्ण मुनियोंकी श्रेणिमें परिगणित होने लगते हे ॥ सू. ० ॥

સાધુકે આચારસે પરિભ્રષ્ટ ડન કુશીલોંકો આપ વહ ઉપદેશ વયો નહીં દસે તો ફિ કુશીલોંકા સંસાર વીર્ય ઠો જાતા હે ? હમ પ્રકારકી શિવ્યકી જિજ્ઞાસામે સૂત્રકાર “આચાર્ય તુ” યહ સૂત્ર કહસે હે—

વોઈ વહ કુશીલ શિવ્ય તીર્યક્ર ઓર ગણઘરાવિકો ઘારા કથિત કુશીલ સંવધી આચારકે વિપાકકો મુનકર ઓર લમ્પા અવધારણ કર કે ઓ અપને શાસકકે પ્રતિ વટિન ઘચન ષોલ્તે હે । “ હમ લોગ લોક પ્રિય વન વર જીવેંગે ” વેસે અભિપ્રાયસે પ્રેરિત ઠો ભાગવની વીક્ષાકા વય વહિન સાધુ તો વન જાતે હે, પરન્તુ ફિર વે “ ન સમ્યગ્

મહપથી “ ક્ષાય અભવ્યા યુગવાણાનાને ત્યાધી અન્તમ્મન્ત અપાર મયે ? આવી શકાધી તે શરીરની વેશમૂળ જનાવે છે આથી એનુચારિત્ર મલિન બની બપ છે, બપુશ મુનિઆની ગણત્રીમા મળ્યા તાવે છે ( સૂ ૨ )

સાધુના આચારથી જાલ ઘમેલા તે કુશીલાને આપ કેમ ઉપદેશ અપના નથી, જેથી કુશીલાને સંસાર દીપ બનો રહ્યા છે ? આ પ્રકારની શિવ્યની અને એવી તે છાયામાં સૂત્રકાર આપાયતુ આ સૂત્ર કહે છે

કોઈ એક કુશીલ શિવ્ય તીર્યક્ર અને મળુપરાદિકોદ્ધારા કહેવામા આવેલ કુશીલસંવધી આચારના વિપાકને સાંભળી અને સમજીને પણ પોતાના મુક્તિ વચેરે તરફ કાલુ વચન બોલે છે, અમિ તે વાક્યમિ । બનીને છવવાના’ આવા અભિધાયથી પ્રેરિત બની અમવતી દીખાને વેશ પડેશે

न सम्यग् भवन्तः—पुनर्मोहोदयाद् गौरवत्रयान्यतमावेशान्मोक्षमार्गे न प्रवर्तमाना इत्यर्थः; तथा कामैः=भोगाभिलाषैः विदह्यमानाः=अभिलषितविषयानवाप्त्या कपायानलेनान्तस्तप्यमानाः गृद्धाः=सातादिगौरवलोलुपाः, अद्युपपन्नाः=विषयसुखनिमग्नमानसाः आख्यातं=तीर्थङ्करप्ररूपितं समाधिम्=उपशमम् अजोपयन्तः=असेवमानाः सन्तः शास्तारमेव=शिक्षयितारमेव, यद्वा-तीर्थङ्करादिकमेव परुषं=रुक्षं निन्दावचनं वदन्ति । अत्र—एव गवदेनेदगुक्तं भवति—एवं तीर्थङ्करादि. सर्वप्राणिसुखावहं दुरन्तसंसारदुःखविध्वंसकं शाश्वतिकशिवपदभापकं दयामयं धर्मं परमकरुणया कल्याणाय

भवन्तः ” पुनः मोहके उदयसे तीन गौरवोंमें से किसी एक गौरवके आवेशसे मुक्ति मार्गमें प्रवृत्तिसे गृह्य ही रहते है । भोगोंकी अभिलाषासे वे रातदिन जलते रहते है । जब इन्हें अभिलषित विषय नहीं मिलता है तो उस समय वे कपायरूपी अग्निसे संतप्त बन कर सातादिक गौरवोंमें लोलुपी बने रहते है । इनकी वैषयिक सुखोंमें मानसिक वृत्ति चलायमान होती रहती है । तीर्थङ्कर प्रभुसे प्ररूपित समाधिभाव—उपशमभावसे रहित ही बने रहते है । समझाने पर उल्टे ये समझानेवालेको ही कठोर वचन बोलकर उनकी भर्त्सना करते है—रुक्ष निंदात्मक वचन बोलते है । सूत्रमें “शास्तारमेव” जो यहां ‘एव’ पदका प्रयोग हुआ है उससे यह बात मालूम होती है कि—जो तीर्थङ्कर भगवान् सर्वप्राणिओंको सुखकारक, इस दुरन्त संसारके दुःखोंका विनाशक शाश्वतिक शिवपदकी प्राप्तिका हेतु और दयामय ऐसे धर्मकी परम करुणासे जीवोंके कल्याणके निमित्त प्ररूपणा करते है, ऐसे तीर्थङ्करोंकी

साधु तो अपनी नथ छे, छता यषु ते “न सम्यग् भवन्त ” पुनः मोहना उदयथी त्रषु गौरवमांना अयेक गौरवना आवेशथी मुक्तिमार्गनी प्रवृत्तिथी हर अपनी नथ छे भोगोनी अबिलाषाथी ते रातदिवस भणतो रहे छे न्यारे तेने उच्छित विषय नथी भणतो त्यारे ते कपायइपी अग्निथी सतप्त अपनी सातादिक गौरवोभा लेखुपी अपनी रहे छे तेनी वैषयिक सुभोभा मानसिक वृत्ति चलायमान थती रहे छे तीर्थंकर प्रभुअे प्ररूपित उपशमलावथी रहित अपनी नथ छे समभववाथी ते उदटो समभवनार तरङ्ग न कठोर वचनो बोली अेनी मानडानि करे छे—निंदात्मक वचनो बोले छे सूत्रभा “शास्तारमेव” अर्हि ने ‘एव’ पदको प्रयोग छे, अेनाथी अे वात मालुम पडे छे के तीर्थंकर भगवान् सर्व प्राणियोने सुभप्ररक, आ दुरन्त संसारना दुभोना विनाशक, शाश्वतिक शिवपदनी प्राप्तिना हेतु अने दयामय अेवा धर्मनी परम करुणुथी अेवोना कल्याणु निमित्त प्ररूपणा करे छे अेमनी आज्ञासु पालन करषु तो हर रषु, यषु अेमनो

નતુ સાધ્યાધારપરિભ્રષ્ટાનાં કુશીલાનાં વીર્યઃ સસારો મન્વતીત્પુપ્દેશ કર્મ ન તેમ્ય ક્ષિપતે ? इति जिज्ञासायामाह—‘आघायं तु’ इत्यादि ।

મૂલ્ય—આઘાય તુ સુઘ્વા નિસમ્મ, ‘સમણુદ્ધા જીવિસ્સામો’ યગે નિક્કમ્મ તે અસમવંતા વિદ્ધજ્ઞમાણા કામેહિં ગિદ્ધા અજ્ઞો ષવદ્ધા સમાહિમાઘાયમદ્ધોસયતા સત્થારમેવ ફરુસ ષયતિ । સૂ. ૦૩ ।

છાયા—આલ્યાત તુ મૂલ્લા નિશ્ચમ્ય, ‘સમનોદ્ધા વીવિપ્યામઃ’ એકે નિક્કમ્મયે અસમવન્ત વિદ્ધમાના કામેર્ગુદ્ધા અપ્પુપપ્પાઃ સમાધિમ્ આસ્પાતમ્ અદ્ધોપવન્ત શાસ્તારમેવ પરુપ્ ષદન્તિ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકા—એકે=કેવન કુશીલાઃ શિષ્યાસ્તુ—આસ્પાતં=તીર્થકૂરગમધરાદિમિ કથિત કુશીલાચારવિપાકં મૂલ્લા નિશ્ચમ્ય=અવધાર્ય શાસ્તારમેવ પરુપ્ ષદન્તીત્યન્વય । કમ્યમૂતાસ્તે શિષ્યા ? इत्यत्राह—‘समनोद्धा’ इत्यादि, समनोद्धा=लोकप्रियाः सन्तः वीविष्याम ; इति मत्वा निष्कम्प=अप्रजितो मूत्वा ते अमम्मन्तः=न

મૂપા ષનાતે હૈ, इससे उनका चारित्र्य मलिन बनता है, और इससे बे पक़ुश मुनियोंकी भेणिमें परिगणित होने लगते हैं ॥ सू. २ ॥

સાધુકે બાધારસે પરિભ્રષ્ટ ષન કુશીલોક્યે આપ ષહ ઉપદેશ ષયો નહીં દેતે હો કિ કુશીલોકા સંસાર વીર્ય હો જાતા હૈ ? इस प्रकारकी शिष्यकी जिज्ञासामें सूत्रकार “आघायं तु” यह सूत्र कहते हैं—

કોઈ એક કુશીલ શિષ્ય તીર્થકૂર ઓર ગણધરાદિકો દ્વારા કથિત કુશીલ સંપંધી આધારકે વિપાકકો સુનકર ઓર ઉમ્મકા અવધારણ કર કે મી અપને શાસકકે પ્રતિ કઠિન ષષ્ઠન ષોલ્લે હૈ । “हम लोग लोक प्रिय बन कर जीयेंगे” ऐसे अभिप्रायसे प्रेरित हो भागवती वीक्षाका शेष पहिन साधु तो बन जाते हैं, परन्तु फिर ये “न सम्यग्

મકપથી કથાય અબાધ્યા કુળવાળાઓને ત્યાંથી અન્તઃપ્રાન્ત આદાર મળે ? આવી શકાથી તે શરીરની વેશમૂલ્યા બનાવે છે. આથી એનું ચારિત્ર મલિન બની બપ છે, બકુશ મુનિઆની ગણુત્રીમા ગણુવા લાગે છે (સૂ. ૨)

સાધુના અધ્યારથી બ્રહ્મ ધરેલા તે કુશીલોને આપ કેમ ઉપદેશ અપના નથી, એથી કુશીલોને અચાર દ્રીપ બની રહ્યો છે ? આ પ્રકારની શિષ્યની બને એથી તે લગભગમા સૂત્રકાર ‘આઘાય તુ’ આ સૂત્ર કહે છે.

કોઈ એક કુશીલ શિષ્ય તીર્થકૂર અને ગણધરાદિકોદ્વારા કહેવામા આવેલ કુશીલસબથી અધ્યારના વિપાકને સાંભળી, અને સમજીને પણ પોતાના અજ્ઞાન વજેરે તરફ કઠણ વચન બોલે છે ‘અમે તે લોકપ્રિય બનીને લખવાના’ આવા અભિપ્રાયથી પ્રેરિત બની ભાગવતી રીતને વંશ પહેરી

न सम्यग् भवन्तः—पुनर्मोहोदयाद् गौरवत्रयान्यतमावेगान्मोक्षमार्गे न प्रवर्त्तमाना इत्यर्थः; तथा कामैः=भोगाभिलाषैः विदह्यमानाः=अभिलषितविषयानवाप्त्वा कपायानलेनान्तस्तप्यमानाः गृद्धाः=सातादिगौरवल्लोपाः, अद्युपपन्नाः=विषयसुखनिमग्नमानसाः आख्यातं=तीर्थङ्करप्ररूपितं समाधिम्=उपशमम् अजोपयन्तः=असेवमानाः सन्तः शास्तारमेव=शिक्षयितारमेव, यद्वा-तीर्थङ्करादिकमेव परुषं=रुधं निन्दावचनं वदन्ति । अत्र—एव शब्देनेदमुक्तं भवति—एवं तीर्थङ्करादि सर्वप्राणिसुखावहं दुरन्तसंसारदुःखविध्वंसकं शाश्वतिकशिवपदप्रापकं दयामयं धर्मं परमकरुणया कल्याणाय भवन्तः ” पुन मोहके उदयसे तीन गौरवोंमें से किसी एक गौरवके आवेशसे मुक्ति मार्गमें प्रवृत्तिसे शून्य ही रहते हैं । भोगोंकी अभिलाषासे वे रातदिन जलते रहते हैं । जब इन्हें अभिलषित विषय नहीं मिलता है तो उस समय वे कपायरूपी अग्निसे संतप्त बन कर सातादिक गौरवोंमें लोलुपी बने रहते हैं । इनकी वैषयिक सुखोंमें मानसिक वृत्ति चलायमान होती रहती है । तीर्थङ्कर प्रभुसे प्ररूपित समाधिभाव—उपशमभावसे रहित ही बने रहते हैं । समझाने पर उल्टे ये समझानेवालेको ही कठोर वचन बोलकर उनकी भर्त्सना करते हैं—रुध निन्दात्मक वचन बोलते हैं । सूत्रमें “शास्तारमेव ” जो यहां ‘एव’ पदका प्रयोग हुआ है उससे यह बात मालूम होती है कि—जो तीर्थङ्कर भगवान् सर्वप्राणिओंको सुखकारक, इस दुरन्त संसारके दुःखोंका विनाशक शाश्वतिक शिवपदकी प्राप्ति हेतु और दयामय ऐसे धर्मकी परम करुणासे जीवोंके कल्याणके निमित्त प्ररूपणा करते हैं, ऐसे तीर्थङ्करोंकी

साधु तो अनी नय छे, छता पणु ते “न सम्यग् भवन्त ” पुनः मोहना उदयथी त्रणु गौरवमाना अेक गौरवना आवेशथी मुक्तिमार्गनी प्रवृत्तिथी हर अनी नय छे भोगोनी अभिलाषाथी ते रातदिवस अणतो रहे छे न्यारे तेने धृच्छित विषय नथी भणतो त्यारे ते कपायरूपी अग्निथी संतप्त अनी सातादिक गौरवोमा लेलुपी अनी रहे छे तेनी वैषयिक सुखोमा मानसिक वृत्ति चलायमान थती रहे छे. तीर्थंकर प्रभुअे प्ररूपित उपशमभावथी रहित अनी नय छे समनववाथी ते उल्टे समनवनार तरक न कठोर वचनो बोली अेनी मानडानि करे छे—निन्दात्मक वचनो बोले छे सूत्रमां “शास्तारमेव ” अर्थि ने ‘एव’ पदने प्रयोग छे, अेनाथी अे वात मालुम पडे छे के तीर्थंकर भगवान् सर्व प्राणीथेने सुभकरक, आ दुरन्त संसारना दुःखोना विनाशक, शाश्वतिक शिवपदनी प्राप्तिना हेतु अने दयामय अेवा धर्मनी परम करुणाथी अेवोना कल्याण निमित्त प्ररूपणा करे छे अेमनी आज्ञातु पालन करवु तो हर रह्यु, पणु अेमने



સમુપદિશ્ચતિ, તદાક્ષાપરિપાલ્નં તુ દૂરતોડપાસ્ત; પ્રત્યુત પરુપવચનેન ઠમેવાક્ષિપન્તિ,  
 ત ઘયા-ભગવાન પ્રમાદી પદ્મલેશ્યાધારી ગોશાલકરણેન સ્સલ્લિતઃ; ઇત્યાદિ। ઉદેસ્તર્ષ  
 તેવાં પ્રવલમિધ્યાત્વોદયવિભાસમાશ્રમિતિ નવમાધ્યયનચતુર્થોદેશ્ચૈત્તૌ સ્વપ્નો-  
 મધિપ્પતિ ॥ સૂં ૩ ॥

તે સ્વપ્ન ઝર્યા: કુશીલા ન કેવલં શાસ્તારં પરુપ વદન્તિ, અપરાનપિ સાધુન  
 પરુપ વદન્તીત્યાહ-‘સીલમતા’ ઇત્યાદિ ।

આક્ષાકા પાલન કરના તો દૂર રહ્યા, પરતુ ધે કુશીલ ઉનકા હી પરુપ (કઠિન)  
 વચનોસે તિરસ્કાર કરતે હૈ, કહતે હૈ કિ “ભગવાન તો પ્રમાદી ધે,  
 પદ્મલેશ્યાઓકો ધારણ કરતે ધે, ગોશાલાકે રક્ષણ કરનેસે ધે ચૂક ગયે  
 ધે” । હસ પ્રકાર ઉનકા કહના પ્રવલ મિધ્યાત્મકે ઉદયકા એક વિલાસ  
 માત્ર હૈ; યહ યાત હમ નૌમે અધ્યયનકે ચતુર્થ ઉદેશમે સ્વપ્ન કરેંગે ।

ધે વેપધારી સાધુકા ધાના હમલિયે પરિર લિયા કરતે હૈ કિ હસ  
 ધાનેસે હમે સ્નાને ધીનેકો નિશ્ચિન્તતાસે મિલ જાયા કરેગા; નહીં તો  
 કૌન પૂછે ! વિષયકપાયોકે ધે વિષ્ણુ હોતે હૈ । યોદ્ધી ૨ સી બાતોમિં છફને  
 જાગફનેકો તૈયાર હો જાતે હૈ । હને સાધુમર્યાદા ક્યા હૈ ? હસ તકકા મી  
 ખાન નહીં હોતા ! મૌજસે સ્નાના ઓર તીન ગૌરવોકે ઘણ રહના એક  
 યદ્ધી હનકા લક્ષ્ય રહતા હૈ ॥ સૂં ૩ ॥

સ્વયંઘ્રષ્ટ ધે કુશીલ સિર્ફ અપને શાસ્ત્રાકે પ્રતિ હી કઠોર વચનો  
 કા પ્રયોગ કરતે હૈ, સો યાત નહીં; કિન્તુ અન્ય સાધુઓસે મી યદ્યા-તદ્યા

વ હલ્લુ વચનેથી તિરસ્કાર કરે છે કે “અમવન તો પ્રમાદી હત્ય,  
 પદ્મલેશ્યાધારી હતા, ગૌશાલાનુ રક્ષણ કરવાથી તેઓ શૂં ગયા હત્ય.” આ  
 પ્રકારે તેનું હલ્લુ પ્રબળ મિધ્યાત્મના ઉદયનો એક વિલાસ માત્ર છે આ વાત  
 નવમા અધ્યયનના ચોથા ઉદેશમાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવે.

તે વેપધારી સાધુનો વેપ એ માટે પહેલી રાખે છે કે એ વેપથી ખાવા  
 પીવાનું તો વગર ચિન્તાએ મળતું રહે છે નહિ તો કેવલ ભાવ પૂછે વિષય  
 કપાષેના પિંડરૂપ તે જરા જરા વાતમાં લડવા-વગરવા તૈયાર થઈ અથ છે  
 સાધુમર્યાદા શું છે ? એનું તેને જ્ઞાન નથી હોતું મોજથી માત્ર જ્ઞાને ત્રણ ઓર  
 બના વશ રહેવું આ જ તેનું લક્ષ્ય હોય છે (સૂં ૩)

હતે જ્ઞાનેસ તે કુશીલ રૂપ યોતાના આચાર શુ આદિ પ્રત્યે જ  
 કઠોર વચનેનો પ્રયોગ કરે છે એ વાત નહીં; પરંતુ ખીજ સાધુઓથી પણ એ  
 આવેજ તિરસ્કાર કરે છે આ વાતને પ્રમં કરતા સૂત્રકાર હલ્લે છે ‘સેલમતા’ ઇત્યાદિ.

मूलम्—शीलमंता उवसंता संखाए रियमाणा 'असीला'  
अणुवयमाणस्स वितिया मंदस्स बालया ॥ सू०४ ॥

छाया—शीलवन्त उपशान्ताः संख्यया रियमाणाः 'अशीलाः' अनुवदतः  
द्वितीया मन्दस्य बालता ॥ सू० ४ ॥

टीका—ये साधवः शीलवन्तः=अष्टादशशीलाङ्गसहस्रधराः, यद्वा महाव्रत-  
पञ्चेन्द्रियकषायनिग्रह-गुप्तित्रय-धारिणः, अतएव उपशान्ताः=क्षान्त्यादिगुणयुक्ताः,  
'शीलवन्तः' इत्यनेनैव कषायोपशमार्थस्य गतार्थत्वात्पुनः 'उपशान्ताः' इति  
विशेषणं कषायनिग्रहस्य प्राधान्यं बोधयितुमुक्तम् तथा—सङ्ख्यया=हेयोपादेयप्रज्ञया  
व्यवहार करते हैं। इसी बातको प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं  
“शीलमंता” इत्यादि।

जो साधु अठारह हजार (१८०००) शीलोकें भेदोंको धारण करनेवाले  
हैं, अथवा पंच महाव्रतोंके पालक पंचेन्द्रियों एवं कषायोंका निग्रह करनेवाले  
और गुप्तित्रयके धारक हैं, तथा इसीसे जो क्षमा आदि सद्गुणोंसे विभूषित  
हैं, हेय और उपादेयके विवेकपूर्वक संयममार्गमें जो लवलीन हैं।  
उन्हें भी ये कुशील “ये अशील हैं—ये चारित्रसे रहित हैं” ऐसा कहते हैं।  
यह इन अवसन्न-पासत्थादिरूप कुशीलोंकी दूसरी अज्ञानता है। प्रथम  
तो उनकी यही बड़ी भारी अज्ञानता है—जो ये स्वयं चारित्रसे भ्रष्ट हुए  
हैं और दूसरी अज्ञानता यह है कि जो ये चारित्रशालियोंको भी अचा-  
रित्री-भ्रष्ट कहते हैं। सूत्रमें “शीलवन्तः” इस पदसे ही कषायोंके उप-  
शमनरूप अर्थकी प्रतीति हो जाती है; फिर भी “उपशान्ताः” ऐसा जो  
पद देकर उनका स्वतन्त्ररूपसे अभाव प्रदर्शित किया है, उसका मतलब  
केवल कषायोंके निग्रहकी प्रधानता प्रकट करना ही समझना चाहिये।

ये साधु अठारह हजार (१८०००) शीलोंने भेदोंने धारण करवावाणा छे, अथवा  
पाच महाव्रतोंने पालक पञ्चेन्द्रियो अने कषायोंने निग्रह करवावाणा अने गुप्तित्रयना  
धारक छे अने ऐथी ने क्षमा आदि सद्गुणोथी विभूषित छे, हेय अने उपा-  
देयना विवेकपूर्वक संयम मार्गमा ने लवलीन छे, ऐमने पणु ते कुशील  
“आ अशील छे—आ चारित्रथी रहित छे” ऐम कडे छे, आ ते अवसन्नपासत्थादि  
इप कुशीलोनी भील अज्ञानता छे पडेली तो तेनी आ मोटी अज्ञानता छे के  
ते स्वय चारित्रथी भ्रष्ट थई गया छे, अने भील अज्ञानता आ छे के ने  
चारित्रशाणीअने पणु अचारित्री भ्रष्ट कडे छे. सूत्रमां “शीलवन्त” आ पदथी  
ने कषायोना उपशमनइप अर्थनी प्रतीति थई नय छे छता पणु “उपशान्ता”

रीयमाणाः=संयममार्गं प्रवर्तमानाः सन्ति तान् 'अशीलाः=चारित्र्यवर्जिता एते' इति अनुषदतः प्रतिषदतः मन्वस्य=अवसन्नपार्श्वस्थादेरेपा द्वितीया बास्त्रास्ति । अप्र ज्ञानगर्वा क्त्वात् स्वयं चारित्र्यभ्रष्टा अभूवभिति प्रथमा, द्वितीया तु अन्यसाधून् प्रति 'भ्रष्टाः' इति कथनरूपेति भावः ॥ सू० ४ ॥

केचिद् ऋजुमत्यः स्वयमश्रुक्ता अपि साध्याचारं प्रशंसन्तीत्याह-  
'नियदृमाणा' इत्यादि ।

मूलम्—नियदृमाणा वेगे आचारगोचरमाह्वयस्वति ॥ सू० ५ ॥

छाया—निवर्तमाना वैके आचारगोचरमाख्यान्ति ॥ सू० ५ ॥

टीका--वा=अथवा एके=केचित् निवर्तमानाः=स्वयं संयमाराधनां सम्पन्नतया कर्तुमसमर्थतया ततो निवृत्ता अपि आचारगोचरं=मूलोचरगुणं अख्यान्ति=शुद्धतया वर्णयन्ति, तेषां द्वितीया बास्त्रा नास्तीति भावः ॥ सू० ५ ॥

जो शीलसंपन्न है—उपशान्त है, हेय और उपादेयके विवेकपूर्वक संयममार्गमें लगे हुए है उन्हें ये कुशील अचारित्री कह कर अपनी अज्ञानता प्रदर्शित करते हैं ॥ सू० ४ ॥

कोई २ कुशील (शिथिलाचारी) ऋजुमति युक्त होते हैं । ये चारित्र्यके भारको घटानेके लिये असमर्थ होते हुए भी माधुके आचारकी प्रशंसा करते हैं । इसी बातको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं "नियदृमाणा" इत्यादि—

अथवा कोई २ कुशील (शिथिलाचारी) स्वयं संयमकी समीचीन आराधना करनेमें असमर्थ होनेसे उससे दूर रहते हैं, तो भी मूलगुण और उचरगुणोंकी शुद्धतासे प्रशंसा करते हैं । इनके द्वितीया बास्त्रा (अज्ञानता) नहीं होती ।

ज्येष्ठ के यह है ते स्वतन्त्रपथी कथायाना अभाव्य प्रदर्शित करे छे आना अर्थ देवण कथायाना निवृत्तनी प्रमानता प्रकट करवा माटेण कडेवायानु सुभक्त्यु लेखजे. के शीलसंपन्न छे—उपशान्त छे, हेय अने उपादेयना विवेकपूर्वक संयम भागीय वाजेण छे ज्येष्ठने ते कुशील चारित्र्य वरना कही पातानी अज्ञानतानु प्रदर्शन करे छे (सू० ४)

कोई कोई कुशील (शिथिलाचारी) कलकी भतिथी अरेका दोष छे. चारित्र्यना कानने ज्ये वदन करी शकता नथी; छतां पण साधुना आचारानी प्रशंसा करे छे आ वातने प्रकट करतां सूत्रकार कडे छे 'नियदृमाणा' इत्यादि.

अथवा ज्येष्ठ कोई कुशील (शिथिलाचारी) स्वयं संयमना आराधना करवायं असमर्थ होवाथी ज्येष्ठनी इर स्टे छे ते पण भूयशुण अने उत्तरशुणनी

સદસદ્વિવેકભ્રષ્ટાઃ કિં કુર્વન્તી ? ત્યાકાહ્વાયામાહ—‘નાણભટ્ટા’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—નાણભટ્ટા દંસળલૂસિણો નમમાણા વેગે જીવિયં  
વિપ્પરિણામંતિ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

છાયા—જ્ઞાનભ્રષ્ટા દર્શનલૂપિણો નમન્ત એકે જીવિતં વિપરિણામયન્તિ ॥મૂ૦૬॥

ટીકા—એકે=કેચન દર્શનલૂપિણઃ=સમ્યક્ત્વપતિતાઃ, અતએવ જ્ઞાનભ્રષ્ટાઃ=  
હેયોપાદેયબુદ્ધિવિચ્યુતાઃ, નમન્તો વા=આચાર્યાદીન્ દ્રવ્યતઃ પ્રણમન્તોઽપિ જીવિતં=  
સ્વાત્માનં વિપરિણામયન્તિ=પરિવર્તયન્તિ—સમ્યક્ચારિત્રાદ્ વિધ્વંસયન્તીત્યર્થઃ; સમ્ય-  
ગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રલક્ષણાન્મોક્ષમાર્ગાદ્ ભ્રશ્યન્તીતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

ભાવાર્થ—શુદ્ધ સંયમકી આરાધના નહીં હો સકનેકે કારણ કોઈ  
૨ કુશીલ ઉસ સંયમકી પાલનાસે યદપિ દૂર રહતે હૈ, ફિર મી ઉસ  
સંયમકો શુદ્ધ રીતિસે પાલનેવાલોંકી વે નિંદા નહીં કરતે—ઉન્હેં ‘યે ભ્રષ્ટ  
હૈ, એસા નહીં સમજતે; અતઃ યે પ્રથમ વાલતાસે યુક્ત હોતે હુએ મી દૂસરી  
વાલતાસે રહિત માને જાતે હૈ ॥ સૂ૦૫ ॥

જો સત્ ઓર અસત્કે વિવેકસે ભ્રષ્ટ હૈં, વે ક્યા કરતે હૈં? ઇસ પ્રકાર  
કી આકાંક્ષા હોને પર સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ નાણભટ્ટા ” ઇત્યાદિ—

કોઈ ૨ બકુશ સમ્યક્ત્વસે પતિત હોનેકી વજહસે, હેય ઓર ઉપા-  
દેયવાલી બુદ્ધિસે રહિત હોતે હુએ, આચાર્યાદિકોંકે લિયે દ્રવ્યરૂપ નમસ્કાર  
સે નમન કરતે હૈ તો મી અપની આત્માકો સમ્યક્ત્વ ચારિત્રસે પતિત  
હી વનાયે રહતે હૈ । એસે જીવ સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન ઓર સમ્યક્-  
ચારિત્રરૂપ મોક્ષમાર્ગસે સદા ભ્રષ્ટ હૈ, એસા સમજના ચાહિયે ॥સૂ૦૬॥

શુદ્ધતાથી પ્રશસા કરે છે એને બીજી બાળતા (અજ્ઞાનતા) નથી હોતી.

ભાવાર્થ —શુદ્ધ સયમની આરાધના ન કરી શકવાને કારણે કોઈ કોઈ  
કુશીલ તે સયમની પાલનાથી જો કે દૂર રહે છે તો પણ સયમને શુદ્ધ રીતિથી  
પાળવાવાળાની નિદા તે નથી કરતો—એમને એ ભ્રષ્ટ છે એમ નથી સમજતો.  
આથી એ પ્રથમ બાલતાથી યુક્ત હોવા છતા પણ બીજી બાલતાથી રહિત  
માનવામા આવે છે (સૂ૦ ૫)

જે સત્ અને અને અસત્ના વિવેકથી ભ્રષ્ટ છે તે શુ કરે છે, આ પ્રકારની  
આકાંક્ષા હોવાથી કહે છે નાણમટ્ટા ઇત્યાદિ

કોઈ કોઈ બકુશ સમ્યક્ત્વથી પતિત થવાના કારણે હેય અને ઉપાદેયવાળી  
બુદ્ધિરહિત બની આચાર્યાદિકોને દ્રવ્યરૂપ નમસ્કારથી નમન કરે છે, તો પણ તે  
પોતાના આત્માને સમ્યક્ત્વચારિત્રથી પતિત જ બનાવી રાખે છે, એવા જીવ  
સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રરૂપ મોક્ષ માર્ગથી સદા ભ્રષ્ટ છે એવું  
સમજવું જોઈએ. (સૂ૦૬)

किञ्च—'पुट्टा' इत्यादि ।

मूष्म्—पुट्टा वेगे नियदृति जीवितस्तेषु कारणा, णिक्खतपि तेसिं दुन्निक्खत भवइ ॥ सू०७ ॥

छाया—सृष्टा वैके निर्घन्ते जीवितस्यैव कारणात्, निष्कान्तमपि तेषां दुर्निष्कान्तं भवति ॥ सू०७ ॥

टीका—एके=केचन सृष्टाः=परीपहोपसर्गैरुपहृताः सन्तः जीवितस्यैव कारणात्=स्वप्नमह्युरजीवनस्य सुखार्थं निर्घन्ते=संयमात्सुखम् भवन्ति । तेषां=चारिप्रप्युतानां निष्कान्तमपि=निष्क्रमणमपि दुर्निष्कान्तं भवति=मूलोत्तरगुणविघातनं निरर्थकं भवति । चारिप्रपरिभ्रष्टानां गृहाभिक्रमणं न श्लाघनीयं भवति; प्रत्युत गर्हणीयमेवेति भावः ॥ सू० ७ ॥

तथा—“पुट्टा” इत्यादि ।

कोई २ बकुचा परीपह और उपसर्गों से बाधित बन कर अपने प्यारे जीवनके विनाशके भयके कारणसे गृहीत संयममार्गमें भ्रष्ट हो जाते हैं । अर्थात् ये जहाँ भी जीवनके कष्टकारी विपत्तिरूप विभीषिका से उपद्रवित होते हैं शीघ्र ही वहाँ 'इस क्षण-मंगुर जीवनको सुख मिले' इस चाहनासे संयममार्गसे हट जाते हैं । ऐसे चारिप्रसे पतित हुए भयशीलोंकी पूर्वकालगृहीत प्रवृत्त्या—दीक्षा मूल और उत्तरगुणोंके विघातसे निरर्थक हो जाती है । ठीक बात है—जो चारिप्रसे भ्रष्ट हो चुके हैं, उनका यहसे निकलना—गृहका परित्याग करना प्रशंसनीय नहीं होता है; वरदा निर्दनीय ही माना जाता है ।

भावार्थ—कोई २ बकुचा क्षण-मंगुर जीवनको सुखी करनेके अभि-

तथा—'पुट्टा' इत्यादि ।

कैथं कोथं अणुरा पस्सिइ अने उपसर्गेथी जकसथं येतान्ना प्यारा एवणना विनाशना अणना अरवुथी अरवु अरेखा सयम मार्गथी अष्ट थर्ध नाथे अर्थात् जे जे पणु एवणने कष्टकारी कैथं पणु अपत्ति-विपत्तिरूप अरवुथी उपद्रवित अने अ तस्त ए त्वांथी अ अणुअणुर एवणनु सुअ भये जेथी अरु नाथी ते सयम मार्गथी अरु नाथे अ जेवा चारिप्रथी पतित अनेका अरशीवनी पूर्व अणभ्य अरवु अरेखी दीक्षा मूल अने उत्तर सुखेना विघातथी निरर्थक अनी नाथे अ ठीक बात अ जे चारिप्रथी अष्ट अनेका अ जेअनु अरभ्यथी निकलनु प्रशंसनीय अणनु नहीं; उरुं निर्दनीय मानवामां आवे अ

भावार्थ—कोथं कोथं अणुरा अणुअणुर एवणने सुधी अरेवाना अभिप्र

કિન્ન—‘બાલવયણિજ્જા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—બાલવયણિજ્જા હુ તે નરા, પુણો પુણો જાઈ પકપ્પંતિ, અહે સંભવંતા વિદ્વાયમાણા “અહમંસીતિ” વિડક્કસે, ઉદાસીણે ફરુસં વયંતિ, પલિયં પકત્થે, અદુવા પકત્થે અતહેહિં, તં વા મેહાવી જાણિજ્જા ધમ્મં ॥ સૂ૦ ૮ ॥

છાયા—બાલવચનીયા હુ તે નરાઃ, પુનઃ પુનર્જાતિં પ્રકલ્પયન્તિ, અધઃ સંભવન્તઃ વિદ્વાયમાનાઃ ‘અહમસ્મીતિ’ વ્યુત્કર્પયેયુઃ, ઉદાસીનાન પરુપં વદન્તિ, પલિતં પ્રકથયેત્, અથવા પ્રકથયેત્ અતથ્યૈઃ, તન્મેધાવી જાનોયાદ્ ધમ્મમ્ ॥ ૮ ॥

ટીકા—યતઃ જીવિતસુખાર્થં ચારિત્રવિચ્યુતા અતસ્તે નરા બાલવચનીયાઃ—  
વાલાનામ્=આપામરજનાનાં વચનીયાઃ=નિન્દનીયા ભવન્તિ, કિંચ તે પુનઃ પુનર્જાતિમ્  
=એકેન્દ્રિયાદિષ્ટ્વત્તિં પ્રકલ્પયન્તિ=પ્રકુર્વન્તિ । ચારિત્રપરિવર્જનેનાનન્તાનન્તવારં ચતુ-  
ર્ગતિકસંસારે જન્મમરણાન્યનુવર્તમાના અરહટ્ઘટીયન્ત્રન્યાયેન પરિવર્તન્ત ઇતિ ભાવઃ ।

કિન્ન—અધઃ સંભવન્તઃ=સંયમસ્થાનાત્પતન્તઃ વિદ્વાયમાનાઃ=પણ્ડિતમ્મન્યાઃ

પ્રાયસે હી પરીષહાદિકોંકે આને પર સંયમમાર્ગકો છોડ્ઢ દેતે હિં । એસે જીવોંકી પૂર્વકાલિક પ્રવ્રજ્યા ધી નિરર્થક હો જાતી હૈ ॥ સૂ૦૭ ॥

તથા—“બાલવયણિજ્જા” ઇત્યાદિ—

કયોં કિ યે બકુશ જીવનકો સુઘ્રી કરનેકે અભિપ્રાયસે ચારિત્રસે અષ્ટ બનતે હિં, ઇસીલિયે પામર જૈસે પ્રાણિયોં તકસે ધી નિંદનીય હોતે હિં । એસે જીવ બાર ૨ એકેન્દ્રિયાદિક પર્યાયોં મેં અપની ઉત્પત્તિ કરતે રહતે હિં—અર્થાત્ ગૃહીત ચારિત્રકે ત્યાગસે અનન્તાનન્ત બાર ચતુર્ગતિસ્વરૂપ સસારમેં જન્મ ઓર મરણકે ચક્કરમેં પડ કર અરહટ્-ઘટીયંત્રકી તરહ ભ્રમણ કિયા કરતે હિં ।

યે સંયમસ્થાનસે નીચે ગિરતે હિં, ફિર ધી અપનેકો પણ્ડિત માનતે

યથી જ પરિષહ આદિ આવતા સયમમાર્ગને છોડી દે છે. એવા જીવોની પૂર્વકાલિક પ્રવ્રજ્યા પણ નિરર્થક બની બાય છે ( સૂ૦૭ )

તથા—“બાલવયણિજ્જા” ઇત્યાદિ ।

કેમ કે એ બકુશ જીવને સુખી કરવાના અભિપ્રાયથી ચારિત્રથી અષ્ટ બને છે આ માટે પામર જેવા પ્રાણીઓથી પણ નિંદનીય બને છે એવા જીવ બારબાર એકેન્દ્રિયાદિક પર્યાયોમા પોતાની ઉત્પત્તિ કરતા રહે છે, અર્થાત્ ગૃહીત ચારિત્રના ત્યાગથી અનન્તાનન્તવાર ચતુર્ગતિસ્વરૂપ સસારમાં જન્મ અને મરણના ચક્કરમા પડી અરહટ્ઘટીયંત્રની માફક ભ્રમણ કિયા કરે છે

તે સયમ સ્થાનથી નીચે પડે છે, છતા પણ પોતાની બતને પડિત માને

‘अहमस्मीति’ अहमेव बहुभुतोऽस्मीति मत्यर्कं प्रलपन्तस्ते व्युत्कर्षययुः=स्व स्वमात्मानं प्रश्नसन्ति, यथा—यदाचार्यो जानाति तन्मया प्रागेव ज्ञातमित्यादि । किञ्च—उदासीनान्=उपशान्तकपायान् स्वस्मितद्वितकथनप्रवृत्तान्ऽन्यान्पि परुषं वदन्ति=आक्षिपन्ति । तदेव दर्शयति—पलितमित्यादि, पलितं=प्राक्तन दीक्षाग्रहणात्माकालिकचरितं काष्ठमारवहनादिकं प्रकथययेयुः=प्रवदन्ति—‘पूर्वं तृणकाष्ठमारवाहनादिमिर्धृष्टशिरसि तव नैकोऽपि केशा इष्टिगोचरीमवति, एवंभूतस्त्व किमिदानीमुपदष्टु प्रवृषोऽसि’ इत्यादि । अथवा अतथ्यैः=असङ्गिर्दोषैः प्रकथययुः=पुरुषे

हैं। “मैं ही पट्टश्रुत हूँ”—इस प्रकार ये हरएकसे अपनी आइलाया किया करते हैं। इसमें य कभी २ यह भी कह दिया करते हैं कि जो आचार्य जानते हैं वह तो मैं पहिलेसे ही जानता था—आदि। तथा—जिन की कपायें उपशांत हो चुकी हैं, आत्महितसे भ्रष्ट होने हुए मनुष्योंको जो आत्महितके उपदेश करनेमें प्रवृत्त हैं ऐसे अन्य साधुजनोंका भी ये तिरस्कार करते हैं—उनके प्रति भी ये कठोर वचनोंका प्रयोग करते हैं। इसी बातको सूत्रकार “पलितं प्रकथयेत्” इत्यादि सूत्रांशसे प्रकट करते हैं। दीक्षा ग्रहण करनेके पहिलेके समयके आचरणका नाम पलित है। यदि कोई प्रकृत निर्मल संयम मार्गके आराधक साधुजनसे ऐसा कहे कि हम तुम्हें जानते हैं, तुम वे ही हो जो पहिले काष्ठका भार माये पर डोया करते थे। दस्यो, यही कारण है कि पहिले तृणकाष्ठके भारों को ढोते ढोते तुम्हारे माये—शिरपर एक घाल भी नजर नहीं आ रहा है, तुम ऐसे हो; अथहम समय क्या हमें उपदेश देनेके लिये प्रवृत्त हो?—इस प्रकारके कथनका नाम पलित कथन है। अथवा जो दोष उसमें न हों

उ “तुं न अट्टश्रुतं तुं” आ प्रकाशधी ते इरेकनी साधे पोतानी न । ए उ कथे शये छे आभा ते कौछ वधने ओपु पलु कडे छे के आचार्य ने बाजे छे आ तो तुं पडेवेधी न बापु तुं नि

तथा—नेनी कपाय उपशान्त यद्यु कृती छे आत्महितधी प्रथमनेवा भावसेने ने आत्महितने उपदेश आपवामां प्रवृत्त छे जेवा अन्य साधुजनने पलु ते तिरस्कार करे छे जेना वरु कडोर वचनेने प्रयोग करे छे आ घातने सूत्रकार पलित प्रकथयेत्” इत्यादि सूत्रांशपी प्रकट करे छे दीक्षा वीधा पहिलेवांन समयना आचरणपु नाम पलित छे कही कौछ नकृत निर्मल संयम मार्गना आराधक साधुजनने जेव कडे के तुं तमने बापु तुं तमे तो जे छाने के पडेवा बाकडाना भारा माये उपा ना दता सुभा; आ बास्ते तमाश भाषाभां जेक पलु वाग नकरे प तो नधी, तमे ता जेवा छे,

प्रवदन्ति, यथा—‘त्वं हिंसको मृपावादी स्वयं पतितोऽसि, किमन्यमुपदिशसी’—  
त्यादि। सूत्रे ‘विउक्त्से’ ‘पसत्ये’ इत्यत्र आर्पत्वादेकवचनम्। उपसंहारच्चाह—‘तं  
मेहा वी’ इत्यादि, तत्=तस्मात् कारणात् मेधावी=साधुमर्यादाव्यवस्थितो मुनिः  
धर्म=श्रुतचारित्रलक्षणं जानीयात्=सम्यग् भावयेत्, न तु धर्मात्प्रचलितो भवेत्। ०८।

ऐसे अविद्यमान दोषोंसे उसे तर्जित-तिरस्कृत करना; जैसे-तुम हिंसक  
हो, मृपावादी हो, स्वयं पतित हो, दूसरोंके लिये क्या उपदेश देते हो?  
इत्यादि। उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“तं मेहावी” इत्यादि।  
इसलिये साधुमर्यादामें व्यवस्थित मेधावी मुनि श्रुतचारित्ररूप धर्मकी  
अच्छी तरहसे भावना भाता रहे—उसे सम्हालता रहे, धर्मसे कभी  
भी प्रच्युत न होवे।

भावार्थ—जो बकुश क्षणिक इस जीवनको सुखित बनानेकी इच्छा  
से चारित्ररूप धर्मसे च्युत हो जाते हैं, जगतके छोटे से भी छोटे प्राणी  
उनकी निंदा और हंसी करते हैं। चारित्रभ्रष्ट जीवोंका अनन्तानन्त काल  
एकेन्द्रियादिक जीवोंकी पर्यायमें ही व्यतीत होता है। चारित्र-  
भ्रष्ट हो कर भी जो अपनेको अच्छा समझते हैं—अपने भीतर बहु-  
श्रुत होनेका जो अभिमान करते हैं—अन्य निर्मल चारित्र आराधक  
साधुओंके प्रति जो कठोर शब्दोंका प्रयोग करने हैं—उनका तिरस्कार  
करते हैं—पहिलेके उनके आचरणोंको ले कर जो उन्हें नीचा दिखानेका

त्यारे आने अमने उपदेश आपवा आव्या छे, आ प्रकारना कथननु नाम  
पदित छे अथवा ने दोष अनामां न होय अवा पग-माथा विनाना दोषो  
लगाडी तिरस्कृत करवा, नेम के-तमे हिंसक छे, जोटु जोलनारा छे, स्वयं पतित  
छे इरी भीजने शु उपदेश आपो छे वगेरे उपसंहार करता सूत्रकार कहे छे के-  
“तं मेहावी” इत्यादि। आ माटे साधु-मर्यादाभा व्यवस्थित मेधावी मुनि श्रुतचारित्र-  
रूप धर्मनी भावना भावता रहे, अने सावणता रहे. धर्मथी कदि पशु पाछा न हठे

भावार्थ—ने बकुश क्षणिक आ लवनने सुभी बनानेवानी इच्छाथी  
चारित्ररूप धर्मथी पाछा हठे छे आवा साधुनी जगतमां नाना मोटा अनी  
निंदा अने हासी करे छे चारित्रभ्रष्ट लवोने अनन्तानन्त काल सुधी अकेन्द्रि-  
यादिक लवोनी पर्यायमा समय व्यतीत थाय छे चारित्रभ्रष्ट जनीने पशु ने  
पोताने सारा समने छे, पोतानी अदर बहुश्रुत होवानु अलिमान करे छे  
भीज निमंण चारित्र आगधक साधु तरहे ने कठोर शब्दोने प्रयोग करे छे-  
तेने तिरस्कार करे छे, पछेदाना तेना आचरणोने दाखवे आपी तेने नीचा





प्रसिद्धोऽसि, तथा अधर्मार्थी=अधर्माभिलाषी असि। किञ्च-घोरः=दुःखमयः कर्तुम-  
शक्यः, धर्मः=साधनामाचारः उदीरितः=तीर्थङ्करैः कथितः इत्यवधार्य अनाज्ञायां=  
तीर्थङ्कराज्ञावह्निर्वर्ती सन् तं=तीर्थङ्करोक्त धर्मम् उपेक्षसे=परित्यजसीत्यर्थः। आर्प-  
त्वात्प्रश्ने प्रथमपुरुषनिर्देशः। एषः=एवंविधस्त्वादृशो जनः विषण्णः=कामभोगमू-  
र्च्छितः, अतएव वितर्दः=पङ्जीवनिकायोपमर्दनपरायणः व्याख्यातः=तीर्थङ्करैः  
कथितः। तस्मात् इति ब्रवीमि=' त्वं मेधावी भूत्वा धर्मं जानीयाः ' इति पूर्वोक्तं,  
तथा वक्ष्यमाणं च कथयामि ॥ सू० ९ ॥

से उन्हें मरवाते हो, तथा उन्हें मारनेवालोंकी तुम अनुमोदना करते हो।  
इसलिये तुम बाल हो-अज्ञरूपसे प्रसिद्ध हो। इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे  
ही यह स्पष्ट मालूम होता है कि तुम अधर्माभिलाषी बने हुए हो।  
तीर्थङ्करों ने साधुओंका आचार बहुत कठिनतर बतलाया है-हर एक प्राणी  
उसे सहसा नहीं पाल सकता है - ऐसा निश्चय कर तुम उनकी आज्ञा  
के बहिर्वर्ती मत बनो। यदि ऐसा करते हो तो निश्चय है कि तुम उनके  
धर्मकी अवलेहना करते हो-उपेक्षा करते हो। तीर्थङ्करोंका यही आदेश  
है कि जो तुम्हारे जैसे मनुष्य कामभोगोंमें मूर्च्छित बने हुए हैं वे पङ्-  
जीवनिकाय के उपमर्दन करनेमें परायण माने गये हैं। इसलिये मैं  
कहता हूँ कि तुम मेधावी बन कर धर्मको समझो। तथा और भी जो  
कुछ कहता हूँ उसे सुनो। साधुको कृत, कारित और अनुमोदना एवं  
मन वचन और कायसे हिंसादिक पापोंका सर्वथा त्यागी होना चाहिये  
ऐसा तीर्थङ्कर प्रभुओंका मुख्य आदेश है यद्यपि-तुम स्वयं हिंसा नहीं

तथा तेने भारवावाणाओनी अनुमोदना करे छे, आ माटे तमे पाण छे-अज्ञ  
रूपथी प्रसिद्ध छे आ प्रकारनी प्रवृत्तिथी ओ स्पष्ट मालूम थाय छे के तमे  
अधर्म-अभिलाषी अन्या छे तीर्थ करेओ साधुओनो आचार धरुओ न कठिन  
पताओ छे, करेके प्राणी तेने सहसा पाणी शकतो नथी, तेयो निश्चय करी  
तमे ओमनी आज्ञातु उद्वेगन करनार न गनो जे तमे ओवु वर्तन रापता  
छे तो ओ निश्चय छे के तमे तेना धर्मनी अवलेहना करे छे-उपेक्षा करे  
छे तीर्थ करेनो ओ आदेश छे के, जे तमारा जेवा मनुष्य कामभोगोमा मूर्च्छित  
गनेला छे तेओ पङ्जीवनिकायनो उपमर्दन करवाभां परायण मानवामा आवेद छे  
आ माटे हुं कहुं छु के, तमे मेधावी गनी धर्मने समझे, गने जीवु पणु जे  
कहुं छु ते साभणो साधुओ करवु, करववु अने अनुमोदन आपवु अने मन  
वचन अने धायथी हिंसादिक पापोनो सह त्याग करेओ जेधओ, ओयो तीर्थकर  
प्रभुनो मुख्य आदेश छे कदाय तमे पोते हिंसा न करता छे, परतु धीम-

इति ब्रवीमिति पूर्वसूत्रोपात्तं वक्ष्यमाणवचनमाह ' किमणेण भो ' इत्यादि ।

मूळम्—किमणेण भो ! जणेण करिस्सामित्ति मन्नमाणा एव एगे विइत्ता मायर पियर हिच्चा णायओ य परिग्गह वीरायमाणा समुट्ठाए अविहिंससा सुव्वया दत्ता, पस्स दीणे उप्पइए पडिवयमाणे, वसट्ठा कायरा जणा लूसणा भवति । सू० १० ।

छाया—किमनेन मो ! जनेन करिष्यामीति मन्यमाना एवमेके विदित्वा मातर पितर इत्वा द्वातीन् च परिग्रहं वीरायमाणा समुत्थाम अविहिंसा सुव्रता वान्ता, पश्य दीनान् उत्पतितान् प्रतिपत्तव, वशार्थाः कातरा जनाः लूपका मनन्ति ॥ सू० १० ॥

टीका—मो ! हे आत्मन् ! अनेन=एतद्भ्रमभाप्तेन जनेन=मातापित्रादि-स्वजनेन स्वार्थपरण वस्तुतोऽन्यरूपेण किं करिष्यामि=स्वकर्मविपाकावसरे नार्थ

करते हो; परंतु फिर भी दूसरों को उस ओर लगाते हो, एव उस काम के करनेवालोंकी अनुमोदना भी करते हो । अतः तुम्हारी इस प्रवृत्तिसे पट्टी निश्चित होता है कि तुम अभी तक भी साधुमयीदासे अनभिज्ञ बने हुए हो; इसलिये इस अज्ञानका त्याग करो । तुम तो समझदार हो, प्रयत्न करो; ता कि मुनिधर्मका वास्तविक स्वरूप समझ सको । धारंभार्थी बन कर अधर्माभिलाषी मत बनो ॥ सू० ९ ॥

“इति ब्रवीमि” इस प्रकार जो ९ में सूत्रमें कहा है उसीके विषय को सूत्रकार कहते हैं—“ किमणेण भो ” इत्यादि ।

जो पहिले संसारका परित्याग कर विरक्त साधु बन जाते हैं और पीछे उमसे पतित बन गृहस्थ हो जाते हैं, उनके विषयमें सूत्रकार कथन करते हैं कि ये प्राणी प्रथम ऐसा विचार करते हैं “ हे आत्मन् ! इस

એને તે વસ્તુ લખાય છે, અને તેવા કામ કરવાવાળાઓની અનુમોદના પણ કરે છે. માટે તમારી આ પ્રવૃત્તિથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે તમે હજી મુખી સાધુમયોદાથી અનભિજ્ઞ છે. માટે આ અજ્ઞતાને ત્યાગ કરો. તમે સમજદાર છો, પ્રયત્ન કરો, જેથી મુનિધર્મનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ સમજી શકો. બારશર્થી બની અધર્મીભિલાષી ન બનો. (સૂ. ૯)

इति ब्रवीमि ' का प्रकारे ने नवमा सूत्रमां कहेल छे जे विषयने सूत्रकार कहे छे—“ किमणेण भो ” इत्यादि ।

जे पहिले संसारने परित्याग करि विरक्त साधु बनी जय छे अने पीछे उमसे पतित थप गृहस्थ थप जय छे जेना विषयमां सूत्रकार कहे छे जे प्राणी प्रथम जेवे विचार करे छे “ हे आत्मन् ! आ भवमां प्राप्त जेव

जनो मम शरणाय वा त्राणाय वा भविष्यतीति मन्यमानाः एके केचन धर्मकथादि-  
श्रवणेन विदितसंसारस्वभावाः एवम्=एतत्प्रकारकं संसारस्वरूपं विदित्वा=सर्वथा-  
नर्थमूलं विज्ञाय मातरं पितरम्, उपलक्षणतया पुत्रकलत्रमित्रादिकमपि, तथा ज्ञातीन्  
=वान्धवान् परिग्रहं=धनधान्यहिरण्यसुवर्णहर्म्यादिकं च हित्वा=वैराग्यभावनया तृण-  
वत्परित्यज्य वीरायमाणाः=चारित्रग्रहणे सिंहवत्प्रवर्तमानाः समुत्थाय=प्रव्रज्यां गृ-  
हीत्वा अत्रिहिंसाः=षट्कायोपमर्दननिवृत्ताः, अतएव सुव्रताः=प्राणातिपातविरमणादि-  
महाव्रतधारिणः, दान्ताः=इन्द्रियनोइन्द्रियदमनप्रवृत्ता भवन्ति । तान् उत्पतितान्=  
प्रबलमोहोदयेन संयमस्थानात् उत्प्लुत्य निर्गतान् प्रतिपततः=कर्मगतिवैचित्र्यात्का-

भवमें प्राप्त स्वार्थमें तत्पर एवं वास्तविक दृष्टिसे अनर्थरूप माता-पिता  
आदि स्वजनसे मैं क्या करूँगा? ये मेरे क्या काम आयेंगे? जब मैं अपने  
शुभ और अशुभ कर्मके फलका भोक्ता बनूँगा तब ये मुझे उसमें सहा-  
यक नहीं हो सकेंगे, न ये मुझे शरणभूत होंगे, और न ये मेरे रक्षक  
ही होंगे" ऐसे अध्यवसायसे प्रेरित हो कई एक जीव धार्मिक कथाओं  
के श्रवणसे संसारका स्वरूप जानकर और माता पिता तथा उपलक्षण  
से-पुत्र, कलत्र एवं मित्रादिकोंको, तथा बान्धवों, धन, धान्य, हिरण्य,  
सुवर्ण और मकान आदिको वैराग्यभावनासे वासित अन्तःकरण बन,  
तृणकी तरह छोड़ कर, चारित्रके ग्रहणमें सिंहकी तरह प्रवृत्तिशील  
बनते हुए दीक्षा धारण करते हैं, और षट्कायके जीवोंकी हिंसासे दूर  
रहते हुए प्राणातिपातविरमण आदि पंच महाव्रतोंका आराधन करते  
हुए इन्द्रिय और मनका निग्रह करनेमें लवलीन रहते हैं। इतनी अवस्था  
तक भी पहुँचे हुए जीवोंको मोहका प्रबल उदयका झकोरा कहां से कहां

स्वार्थमें तत्पर अने वास्तविक दृष्टिसे अनर्थरूप माता-पिता इत्यादि स्वजन  
साथे हूँ शुकड़ ? आ लोगो मारा क्या काममा आववाना ? न्यारे हूँ मारा शुभ अने  
अशुभ कर्मना इणोना लोडता अनीश त्यारे अमा अे भने सडाय करी शकवाना  
नथी, न अे भने आश्रय आपसे, न तो मारा रक्षक अनशे आवा विद्या-  
रथी प्रेरार्थने डोड अेक लव धार्मिक कथाअेना श्रवणुथी संसारतु स्वइप  
आणी, माता-पिता, स्त्री, पुत्र कुटुम्ब तेमज मित्रादिको तथा धन, धान्य, डीरा,  
भोती, सुवर्ण अने मकान इत्यादिने वैराग्य लावनाथी छोडी, चारित्रने  
अडलु करवामा सिडनी माइक प्रवृत्तिशील अनी दीक्षा धारणु करे छे, अने षट्का-  
यना लवोनी डि साथी हर रही प्राणातिपातविरमणु वगेरे पाय मकानतोनी  
आराधना करता, इन्द्रिय अने मननो निग्रह करवामा तत्पर रहे छे आटली  
अवस्था सुधी पडोयेला लवने पणु मोडना प्रणण उदयनो अेकज अपाटो कथाथी

रागारसद्वयगृहस्थावासे पुनर्निपतत, अतएव दीनान् शृगालवन्नीचमाश्रयगतान्  
ससारदुःखन्याकुलान् पश्यन्हे शिष्य ! अवशोकय । यतः वशात्ताः=कृपायवशम्  
चित्स्वादाचरौद्रध्यानयुक्ताः, कातरा=शृगालसादृश्यं प्राप्य परीषदोपसर्गमीरवो ये  
ले जाकर पटक देता है-इसके लिये सूत्रकार “पश्य दीनान् उत्पतितान्  
प्रतिपततः” इस पंक्तिद्वारा प्रकट करते हैं—

वे इसमें यत्नलाते हैं कि प्रयत्न मोहके उदयसे संयमस्थानसे उच्छ्र-  
कर निकलनेवाले वे जीव कर्मकी गतिकी विचित्रतासे कारागारके तुर्य  
गृहस्थावासमें जाकर ठहरते हैं और वहां शृगालकी तरह नीच मनो  
वृत्तिसे युक्त होते हुए सांसारिक दुःखोंसे व्याकुल होते रहते हैं।  
शिष्यको सम्बोधन कर सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो ! तुम देखो !  
क्या से क्या वे बन जाते हैं। इस प्रकारके उनके परिवर्तनमें छिपी हुई  
कौन वस्तु काम करती है कि जिससे मोहके उदयकी प्रयत्नता जाग्रत  
बन उनका सर्वसंहारक बनती है ? इसका उत्तर सूत्रकार “वशात्ताः  
कातराः जनाः रूपका भवन्ति” इस पंक्तिसे देते हैं। वे कहते  
हैं—इसमें प्रयत्न अपराध कृपायवशवर्तितताका है। इतना सब कुछ करने  
पर भी वे जो प्रयत्न मोहके उदयसे पतित बना दिये जाते हैं, उसका  
प्रधान कारण उनका कृपायोंसे युक्त होना है। कृपायोंसे युक्त होनेके  
कारण ही जीव आर्त्त एवं रौद्रध्यानवाले होते हैं। जिस प्रकार शृगाल  
जरासा भी ध्वनि पाकर अपने स्थानसे नाग लडा होता है, उसी प्रकार  
वे भी परीषद् और उपसर्ग आने पर, उनसे भयभीत बनकर अपने

उपाधी तथा पछाडी दे के जे अजे सूत्रकार पश्य दीनान् उत्पतितान् प्रतिपततः  
आ पंक्तिद्वारा प्रकट करे के तेजो आभा बतावे के के प्रयत्न मोहना उदयभी  
संयमस्थानभी उच्छ्रयी कर्मनी विचित्रताभी एव कारागारतुल्य गृहस्थावासमा अर्थ  
पठे के त्या शृगालनी माहक नीच मनोवृत्तिभी युक्त जनी सांसारिक दुःखोभी  
आकुल घटो रहे के शिष्यने सम्बोधन कर्त्वा सूत्रकार कहे के के शिष्यो !  
तमे तुम्हो; यदीमा शु धी शु यथं व्यव के आ प्रकाशना जेना परिवर्तनमां कर्  
जेवी छुपी वस्तु काम करे के के यदी मोहना उदयनी प्रभवता अश्रित यथं  
जेनो सब संहार करे के ? जेना उत्तर सूत्रकार वशात्ताः कातराः जना  
रूपका भवन्ति” आ पंक्तिभी आपे के तेजो कहे के—आमां प्रयत्न अपराध  
कृपायवशवर्तितानो के आटहुं कर्त्वा क्त्वा पक्ष मोहना प्रयत्न उदय जेने पतित  
जनावी दे के जेना प्रधान कारण जेनु कृपायोभी युक्त यत्न के कृपायोभी युक्त  
भवाना कारणे एव आर्त्त-रौद्र ध्यानवाणो जनी व्यव के के रीते शृगाल

જનાઃ સન્તિ તે લૂપકાઃ=વ્રતવિધ્વંસકા ભવન્તિ । અઘ્રાદગશીલાઙ્ગસહસ્રાણિ ધારયિતું  
કઃ પારયિષ્યતીત્યવધાર્ય દ્રવ્યલિઙ્ગ ભાવલિઙ્ગ ચ વિહાય સર્વથા પદ્કાયવિરાધકા  
ભવન્તીતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

પશ્ચાત્કૃતોના લોકેડવહેલના ભવતીત્યાહ-‘ અહમેગેસિં ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અહમેગેસિં સિલોઽ પાવણ ભવઈ, સે સમણવિઘ્મંતે  
સમણવિઘ્મંતે ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

છાયા—અથૈકેપાં શ્લોકઃ પાપકો ભવતિ, સ શ્રમણવિઘ્નન્તઃ શ્રમણવિઘ્નન્તઃ ।

ટીકા—અથ=દ્રવ્યભાવલિઙ્ગત્યાગાનન્તરમ્ એકેપાં=યે મગ્નપ્રતિજ્ઞાઃ પરિત્યક્ત-  
સંયમાસ્તેપાં મધ્યે કેચિત્પ્રવ્રજ્યાત્યાગસમનન્તરમેવ મ્નિયન્તે, કેચિદલ્પકાલેન, યથા  
કૃષીવલ્મુનિર્ભગવદભિમુખં રજોહરણ-સદોરકમુખવસ્ત્રિકા-વસ્ત્ર-પાત્રાણિ પ્રક્ષિપ્ય સમવસ-

મહાવ્રત-આરાધન-રૂપ સ્થાનસે ભાગ યદે હોતે હૈ-અર્થાત્ વ્રતોંકે લોપ  
કરનેવાલે હોતે હૈ । દ્રવ્યલિઙ્ગ તથા ભાવલિઙ્ગકો તજ કર યે સર્વથા ષ્-  
કાયકે જીવોંકે વિરાધક હો જાતે હૈ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

પછાકડોંકી લોકમં અવલેહના હોતી હૈ-ઇસ વાતકો પ્રદર્શિત  
કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ-“ અહમેગેસિં ” ઇત્યાદિ ।

દ્રવ્યલિઙ્ગ ઔર ભાવલિઙ્ગકે ત્યાગકે વાદ અપની પ્રતિજ્ઞામઙ્ગ કરનેવાલે  
તથા સંયમકા પરિત્યાગ કરનેવાલે ઉન જીવોંમં સે કિન્હીં ૨ જીવોંકી  
પ્રવ્રજ્યા ત્યાગકે અનન્તર સમયમં હી મૃત્યુ હો જાતી હૈ, તથા કિન્હીં ૨  
કી કુછ સમય પશ્ચાત્, જૈસે કૃષીવલ મુનિકી કિ જિસને ભગવાન્કે  
સમક્ષ હી રજોહરણ, સદોરક મુખવસ્ત્રિકા ંવં વસ્ત્ર ઔર પાત્રોંકા પરિ-  
ત્યાગ કર દિયા થા, સમવસરણકી ભૂમિસે બાહર નિકલતે સમય હી

(સિયાળ) જરા ખડખડાટ સાલળતા પોતાના સ્થાનથી ભાગે છે એ જ રીતે  
એ પશુ પરિષદ અને ઉપસર્ગ આવતાં એનાથી લયલીત બની પોતાના  
મહાવ્રતોની આરાધનાના સ્થાનેથી ભાગી છૂટે છે અર્થાત્ મહાવ્રતોને ભાગી  
નાખે છે દ્રવ્યલિંગ તથા ભાવલિંગને છોડીને ષ્ટ્કાયના જીવોના એ સદા  
વિરાધક બની બચ છે (સૂ૦૧૦)

પછાકડાઓની લોકોમા મશકરી થાય છે આ વાતને પ્રદર્શિત કરવા સૂત્રકાર  
કહે છે “ અહમેગેસિં ” ઇત્યાદિ

દ્રવ્યલિંગ અને ભાવલિંગના ત્યાગ બાદ, પોતાની પ્રતિજ્ઞા ભંગ કરવાવાળા  
અને સયમ પરિત્યાગ કરવાવાળા તે જીવોમાથી કોઈ કોઈ જીવની પ્રવ્રજ્યા  
ત્યાગના બાદના સમયમા જ મૃત્યુ થઈ બચ છે તથા કોઈ કોઈની થોડા સમય  
બાદ, જેવી રીતે કૃષીવલ મુનિતુ કે જેણે ભગવાનની સમક્ષ જ રજોહરણ સદોરક-

रणाद् यद्विनिर्गतस्तानीमव मृतः, यथा ना ततोऽधिकेन कालेन कण्डरीकः, क्वचिच्च ततोऽधिकमपि जीवन्ति, तेषां श्लोकः=चारिभ्रष्टणत्परिपालनजनितयगधीर्ति रूपः पापक=स्वपक्षपरपक्ष सर्वत्र भूमण्डले चाश्लोको भवति-मन्नात्साराणां मन्-पगक्रमाणां भग्नमहाव्रतानां लोक सर्वत्र निन्दा भवति । यथा—

“ परलोकविन्दानि, कुषाण दूरतस्स्यजेत् ।

आत्मानं या न सवचे, साऽन्यस्मै स्यात्कथं हितः ” ॥ १ ॥ इति ।

निन्दामदर्थयति—‘स’ इत्यादि, स=असौ भ्रमणविभ्रान्त=भ्रमण पश्चात्विभ्रान्त, भ्रमणा भूया पश्चात्प्रपट इति । अत्र मूल ‘भ्रमणविभ्रान्त’

मृत्यु हो गई थी, कण्डरीककी चारिभ्रत्यागके कुछ काल बाद ही मृत्यु हुई थी, कोई मनुष्य चारिभ्रत्यागके बाद भी जीवित रहते हैं । ऐसे जीवों की स्वपक्ष आर परपक्षमें तथा सर्वत्र अपकीर्ति फैलती है। लोग कहते हैं कि यह भग्न उस्ताहवाला है, भग्न पराक्रमवाला है, भग्न महाव्रतवाला है; इस प्रकार लोकमें मय जगह उमकी निन्दा होनी है । टीक ही है—लोकमें भग्न उस्ताहवालोंकी, भग्न पराक्रमवालोंकी, भग्न महाव्रतवालोंकी निन्दा होनी ही चाहिये; क्यों कि “परलोकविन्दानि कुषाण दूरतस्स्यजेत् । आत्मानं यो न सवचे सोऽन्यस्मै स्यात्कथं हितः॥” परलोक विन्दू कायोंकी करनेवाले व्यक्तिका दूरसे परिस्थाग कर देना चाहिये । जो स्वयंका हित नहीं कर सकता है यह दूसरोंका कैसे हितकारक हो सकता है । निन्दाका प्रकार प्रकट करनेके लिये मूत्रकार कहते हैं—“स भ्रमणविभ्रान्तः” यह चारिभ्रष्ट भ्रमण हो कर पश्चात् विभ्रान्त-घट हुआ है, इस-

भ्रमणविभ्रान्त भ्रमण तदा पात्रोने त्या । कथो, अने भ्रमणविभ्रान्त भूमिधीं अन्धारे नी कथया भ्रमणे व तेनु मृत्यु भयेषु कण्डरीकनु यास्त्रि पात्र वाह मा । कथे मृत्यु यथा पात्रेणु कथं मनुष्य यास्त्रि लात्र वाह पण्डु एवित रहे थे जेवा एवेण्यी स्वपक्ष अने परपक्षमा पण्डु अपकीर्ति सर्वत्र इत्यायुं थे बोको कहे थे के आ उस्ताह वगरेने थे पराक्रम वगरेने थे महाव्रतने त्यात्र करनार थे आ प्रकारे बोकोमा सर्वत्र तनी निन्दा पात्र थे हीकर थे-बोकोमा उस्ताह रक्षितनी, पराक्रम रक्षितनी तथा महाव्रतने त्यात्र कर्नारनी निन्दा यवी व जेधं जे केम के— परलोकविन्दानि कुषाण दूरतस्स्यजेत् । आत्मानं या न सवचे सोऽन्यस्मै स्यात् कथं हितः ॥ -परलोक विन्दू कायोंने करनार अहिनो इरभां त्यात्र करणे जेधं जे पात्रानु रिता तथा कथी शक्य ते जीवन्तोनु दिन केवी राते कथी शके निन्दने प्रकार प्रकट करण सूत्रकार कथे थे के स भ्रमणविभ्रान्तः” इति । आ चारिभ्रष्ट साधु अनीने पाठजयां विभ्रान्त-प्रपट भयेउं उ, भाटे भ्रमण

इति द्विस्वक्तेनेदमुक्तं भवति—लोके सर्वत्र प्रतिदेशं प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिस्थलं प्रतिजनं संयमभ्रष्टानां निन्दा प्रसरतीति ॥ सू० ११ ॥

किञ्च—‘पासहेगे’ इत्यादि ।

मूलम्—पासहेगे समन्नागएहिं असमन्नागए, णममाणेहिं अण-  
ममाणे, विरएहिं अविरए, दविएहिं अदविए। अभिसमेच्चा पंडिए  
मेहावी णिट्टियट्टे वीरे आगमेणं सया परक्कमेज्जासि—त्तिवेमि ॥ १२ ॥

छाया—पश्यत एके समन्वागतैः असमन्वागताः, नमद्भिरनमन्तः, वि-  
रतैरविरताः, द्रविकैर्द्रविकाः । अभिसमेत्य पण्डितः मेधावी निष्ठितार्थः वीरः  
आगमेन सदा पराक्रमेथाः, इति ब्रवीमि ॥ सू० १२ ॥

टीका—हे शिष्याः ! पश्यत युयं कर्मप्रभावम्, एके केचन हतभाग्याः समन्वा-  
गतैः=उग्रविहारिभिः सह वसन्तोऽपि असमन्वागताः=शीतलविहारिणो भवन्ति ।  
तथा—नमद्भिः=संयमाराधकतया विनयनम्रैः सह स्थिता अपि अनमन्तः=अविनीता  
अहङ्कारिणः, तथा विरतैः=विरतिमद्भिः सह निवसन्तोऽपि अविरताः=विरतिर-

लिये श्रमणविभ्रान्त है । मूल सूत्रमें यह पद दो बार कहा गया है; सो  
उसका यह मतलब है—कि लोकमें सर्व जगह—हरएक गांवमें, हरएक  
नगरमें, हरएक स्थानमें और प्रत्येक मनुष्यमें संयमसे भ्रष्ट हुए मनुष्यों  
की निन्दा होती है ॥ सू० ११ ॥

तथा—“पासहेगे” इत्यादि ।

शिष्योंको संबोधित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो !  
तुम लोग कर्मोंके प्रभावको तो देखो, विचारे हतभाग्य कोई साधुजन  
उग्र विहार करनेवालोंके साथ रहते हुए भी शीतलविहारी होते हैं,  
संयमके आराधन करनेवाले होनेसे विनीत साधुओंके साथ एक जगह  
वसते हुए भी उद्धतस्वभावके अहंकारी होते हैं, विरतिवालोंके साथ

विभ्रान्त छे भूण सूत्रमा आ पढ जे वार उडेवामा आवेल छे तेनो आ  
मतलब छे के लोकामा सर्व जग्या, दरेक गावमा, दरेक नगरमा, दरेक स्थानमा  
अने प्रत्येक मनुष्यमा संयमथी भ्रष्ट थयेला मनुष्यनी निन्दा थाय छे (सू० ११)  
तथा—“पासहेगे” इत्यादि

शिष्योने सधोधीने सूत्रकार उडे छे के, हे शिष्यो ! तमे कर्मोने  
प्रभाव तो बुजो थीआरा हतलागी केध साधुजन उग्रविहार करवावाण्योनी  
साथे रहेवा छता पण शीतलविहारी अने छे संयमनु आराधन करवावाण्योनी  
डोवाथी विनीत साधुयोनी साथे रहेवा छता पण उद्धतस्वभावना तथा अहं-  
कारी डोय छे विरतिवाण्योनी साथे ह मेशा स्थिति करवा छता पण अविरति-



द्विता, तथा द्रविकैः-संयमाराधकैः सदावन्वित्ता अपि अद्रविका = संयमानाराधका  
एव तिष्ठन्ति । हे शिष्य ! त्वं तु अमितमेत्य = ममन्वागतादिमहाप्रकृपान समाप्य  
वै सह निवासं कृत्वा, पण्डितः = सम्यग्ज्ञानवान् मेधावी = साधु सामाचारी-व्यवस्थित-  
निष्ठितार्थः = विगतत्रिपयसुखस्पृहः, तथा वीरः = परीपहोपसर्गो महानपुरस्सरं कर्मशु-  
दहनदक्षः सन् आगमेन = तीर्थङ्करापदज्ञानुसारं सदा सर्वदा पराक्रमयाः = तपः  
संयमे पराक्रम स्फोरय । इति श्रवीमि, व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० १२ ॥

॥ इति पञ्चाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ ६-४ ॥

सदा स्थिति करते हुए भी अविरतिसंपन्न होते हैं, संयमकी आराधना  
करनेवालोंके साथ नियास करते हुए भी संयमकी आराधना करनेसे  
यंश्चिन् रहते हैं । इसलिये हे शिष्य ! तुम उग्रविहारी, विनयी, विरति  
संपन्न और संयमाराधक साधुओंके साथ निवास करते हुए सम्यग्ज्ञान  
संपन्न, साधु समाचारीमें व्यवस्थित, वैयधिक सुखतृष्णासे निर्मुक्त, और  
परीपह और उपसर्गोंके महानपूर्यक कर्मशायुओंके विनाश करनेमें दक्ष  
होते हुए, तीर्थङ्कर प्रभुके उपदेशके अनुसार सदा तप और संयमकी  
आराधना करनेमें वीर्योन्मासी बनो । “ इति श्रवीमि ” इन पदोंकी  
व्याख्या पहिलेके समान समझनी चाहिये ॥ सू० १२ ॥

॥ छद्म अध्ययन का चौथा उद्देश समाप्त ॥ ६-४ ॥

संपन्न होने से संयमकी आराधना करवावाजाओनी साथे निवास करवा छद्म  
पक्ष संयमकी आराधना करवाधी वञ्चित रहे छे भाटे के शिष्यो । तमे उग्रविहारी,  
विनयी, विरतिसंपन्न होने संयम आराधक साधुओंकी साथे निवास करीने  
सम्यग्ज्ञानसंपन्न साधुसमाचारीमां व्यवस्थित, वैयधिक तृष्णाधी निमुक्त होने  
परिष्कृत होने उपसर्गों सङ्कन करी कर्मशायुओंको विनाश करवाभां दक्ष होने  
वीर्यकर प्रभुका उपदेश अनुसार सदा तप होने संयमकी आराधना करवाभा  
वीर्योन्मासी होने इति श्रवीमि ” आ पदोंकी व्याख्या पहिलेकी भाङ्क संयमकी  
छद्म अध्ययनने शेषो उद्देश समाप्त ॥ ६-४ ॥

## । अथ षष्ठाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः ।

इहानन्तरचतुर्थोद्देशके गौरवत्रयविधूननं निगदितम् । तदर्थं चोद्देशकार्यमुप-  
संहरन्—‘ वीरे सया आगमेणं परक्कमेज्जासि ’ इति वाक्येन ‘ मुनिना  
तीर्थङ्करोपदेशानुसारेण वर्त्तितव्य ’मित्यवोधि । अथ तच्च गौरवत्रयविधूननं  
परीषहोपसर्गमानापमानविधूननेन विना सम्पूर्णतया न भवितुमर्हतीत्यतस्तत्पदर्श-  
यितुं पञ्चमोद्देशमुपक्रमते, तत्र परीषहोपसर्गादीनि कुत्र संभवन्तीति दर्शयितुमाह—  
‘ से गिहेसु वा ’ इत्यादि ।

मूलम्—से गिहेसु वा गिहंतरेसु वा गामेसु वा गामंतरेसु वा  
नगरेसु वा नगरंतरेसु वा जणवणसु वा जणवयंतरेसु वा संते-

### छट्टा अध्ययनका पाँचवाँ उद्देश ।

इस छट्टे अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें सूत्रकारने तीन गौरवोंके त्याग  
करनेका उपदेश दिया है । उस उपदेशके अन्दर उद्देशमें कथित अर्थका  
उपसंहार करते हुए उन्होंने “ वीरे सया आगमेणं परक्कमेज्जासि ” इस  
वाक्यसे “ मुनियोंको तीर्थङ्कर प्रभुके उपदेशके अनुसार रहना चाहिये ”  
यह समझाया है । यह गौरवत्रयका त्याग परीषह, उपसर्ग, मान और  
अपमानके सहे विना पूर्ण रूपमें नहीं हो सकता है । इसलिये इसी  
विषयका प्रदर्शन करनेके लिये इस पञ्चम उद्देशका प्रारंभ किया गया है।  
उसमें सर्व प्रथम सूत्रकार परीषह और उपसर्ग कहां पर संभवित होता  
है—इस बातको दिखानेके लिये “ से गिहेसु ” इत्यादि सूत्र कहते हैं—

### छट्टा अध्ययनने पांचमो उद्देश

छट्टा अध्ययनना यथा उद्देशमा सूत्रकारे त्रणु गौरवोना त्यागने उपदेश  
आपेल छे ते उपदेशमा चतुर्थोद्देशकथित अर्थने उपसंहार करता तेओओ  
“ वीरे सया आगमेणं परक्कमेज्जासि ” आ वाक्यथी “ मुनियोओ तीर्थंकर प्रभुना  
उपदेश—अनुसार रहेवुं नेछिओ ” ते समन्वयु छे आ त्रणु गौरवने त्याग  
परिषड, उपसर्ग, मान—अपमानने सहा विना पूर्णरूपथी बनते नथी तेथी  
आ विषयने समभववा भाटे आ पाचमा उद्देशने प्रारंभ करेला छे आमा  
सर्वप्रथम सूत्रकार परिषड अने उपसर्ग क्या क्या संभवित बने छे ओ वात  
हेभाडवा भाटे “ से गिहेसु ” इत्यादि सूत्र कडे छे ।

गहया जणा लूसणा भवति, अदुवा फासा फुसति, ते फासे पुढो धीरो अहियासए ओए समियदसणे ॥ सू० १ ॥

छाया—तस्य गृहेषु वा गृहान्तरेषु वा ग्रामेषु वा ग्रामान्तरेषु वा नगरेषु वा नगरान्तरेषु वा जनपदेषु वा जनपदान्तरेषु वा सन्त्येयके जना लूपका भवन्ति, अथवा स्पर्शाः स्पृशन्ति; तान् स्पर्शान् स्पृष्टः धीरः अन्यासयेत् भोज्य-समित्-दर्शनः ॥ सू० १ ॥

टीका—तस्य=आहारादि ग्रहोक्तं गच्छतो मुनेः, गृहेषु वा उचनीषमध्यम-कुलेषु, गृहान्तरेषु वा गृहसमीपेषु, ग्रामेषु वा ग्रामसमीपेषु वा, नगरेषु वा नगरसमी-पेषु वा, तथा ग्रामान्नुग्रामं विहरतश्च जनपदेषु वा=देशेषु मगधादिषु, जनपदान्तरेषु=देशसीमासु, उपलक्षणत्वात् उधानेषु वा उधानान्तरेषु वा, तथा=विहारभूमिषु स्वाभ्यायं हृष्यतो, विचारभूमिषु शरीरचिन्तार्थं गच्छतो गतस्य वा, एकके=एके ये केचन कपायोपहतयेतसो जनाः लूपकाः=परीपहोपसर्गादिकारकाः भवन्ति। अथवा

आहारादि ग्रहण करनेके निमित्त जाते हुए मुनिजनको घरमें—उच्च, नीच और मध्यम कुलोंमें, घरके आसपासमें, गायमें, गांवोंके आसपासमें, नगरमें, नगरके आसपासमें, तथा एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें विहार करते हुए मुनिको मगधादिक जनपदमें, जनपदकी सीमा-इदमें, उपलक्षणसे पगीचामें, पगीचाके आसपासमें, तथा—स्वाभ्याय करनेवाले मुनिको विहार भूमिमें, शौचादिकी निवृत्तिके लिये जाते हुए अथवा गये हुए साधुको विचारभूमि—नगरके बाहिरी जंगल (वन) आदि प्रदेशमें, कई एक कि जिनका चित्त कपायसे मलिन हो रहा है—ज्यास या युक्त बना हुआ है ऐसे दुष्ट मनुष्य उपसर्ग और परीपह आदि करनेवाले होते ही हैं। अथवा—घात, पीस और कफजनित दुःख विज्ञोप या वृण स्पर्शा, ईशमंशक, शीत उष्ण आदि जनित दुःख भी कभी २ उन्हें द्वाश्वित

आहारादि ग्रहण करनेके निमित्त जाते मुनिजनके घरमें—उच्च, नीच और मध्य कुलोंमें पशु आसपासमें, आममें, ग्रामनी आसपासमें, नगरमें, नगरनी आसपासमें, तथा एक ग्रामकी सीमा आममें विहार करनेपर मुनिने मगधादिक जनपदमें, जनपदकी सीमा-इदमें उपलक्षणसे पगीचामें, पगीचाकी आसपासमें तथा स्वाभ्याय कर्त्वापण्य मुनिने विहार भूमिमें, शौचादिनी निवृत्ति भांटे जाते अथवा आवतं साधुने विचारभूमि—नगरकी बाह्य (वन) आदि प्रदेशमें, ईदवाक दुष्ट मनुष्य केनेनु चित्त कपायशी मलिन होनेसे उ-आहुण-आहुण होनेसे उ, उपसर्ग करने परिकर करनेपर उ-अथ उ-अथवा घात, पित्त

સ્પર્શાઃ=દુઃખવિશેષાઃ વાતાપ્તિકફદોષજનિતાઃ, તૃણસ્પર્શદંશમશકશીતોષ્ણાદિજનિતા  
 વા સ્પૃશન્તિ=કદાચિદભિભવન્તિ; તૈઃ=પરીપહોપસર્ગાદિભિઃ સ્પૃષ્ટઃ ઓજઃ=૧કઃ રાગ-  
 દ્વેષાદિરહિતઃ સમિતદર્શનઃ=ઉપશાન્તાધ્યવસાયઃ, યદ્વા સમિતદર્શનઃ=સમતામિતં  
 સમિતં દર્શનં યસ્ય સઃ, સમદૃષ્ટિરિત્યર્થઃ; ધીરઃ=અક્ષોભ્યઃ સન્ તાન્-લ્પકકૃતાન્  
 વાતાદિદોષજનિતાન્ તૃણસ્પર્શાદિજનિતાન્ વા સ્પર્શાન્=દુઃખવિશેષાન્ અધ્યાસયેત્=  
 અધિસહેત; નરકાદિદુઃખં યથા કર્મોદયજનિતં તથા મદીયમેતત્સર્વં સ્વકર્મોદયફલ-  
 મિત્યેતન્મયૈવ સોઢવ્યમિત્યવધાર્યં સમ્યક્ તિતિક્ષેત ઇત્યર્થઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

કિન્ચ—‘ દયં ’ ઇત્યાદિ ।

કરતે હી રહતે હૈં । ઇસલિયે ડન પરીષહ ઓર ઉપસર્ગ આદિસે સતાયે ગયે  
 યા ઉપદ્રવિત કિયે ગયે વે રાગદ્વેષરહિત સમ્યગ્દૃષ્ટિ મુનિજન અક્ષોભ્ય  
 હોતે હુયે ડન વાતાદિદોષ જનિત અથવા તૃણસ્પર્શાદિસે હોનેવાલે દુઃખ-  
 વિશેષોંકો સહન કરે, ઘબરાવે નહીં । ડસ સમય વે યહી વિચારે—કિ  
 જિસ પ્રકાર કર્મકે ઉદયજનિત નરક આદિકે દુઃખોંકો મૈને હી અન-  
 ન્તવાર સહન કિયે હૈં, ડસી તરહ યે સવ મી હમારે કર્મોદયજનિત હૈં;  
 ઇસલિયે હમૈં હી ઇન્હેં મધ્યસ્થભાવસે સહના ચાહિયે, ઇસા નિશ્ચય કર-  
 અચ્છી તરહ—વિના કિસી આકુલતાકે ડન્હેં સહેં । સમતાકો પ્રાસ જિસકા-  
 દર્શન હૈ ડસકા નામ સમિતદર્શન—સમ્યગ્દૃષ્ટિ હૈ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

તથા—“ દયં લોગસ્સ ” ઇત્યાદિ ।

અને કફજનિત દુઃખવિશેષ અને તૃણસ્પર્શ, દશમશક, શીત ઉષ્ણ આદિ  
 જનિત દુઃખ પણ એમને કોઈ કોઈ વખત દુઃખિત કરતો રહે છે.  
 આ માટે એવા પરિપક્વ અને ઉપસર્ગ વગેરેથી સતાવેલ અને ઉપદ્રવિત કરા-  
 એલ એ રાગદ્વેષરહિત સમ્યગ્દૃષ્ટિ મુનિજન અક્ષોભ્ય ખનીને તે વાતાદિ દોષ  
 જનિત અથવા તૃણ સ્પર્શાદિથી થવાવાળા દુઃખવિશેષોને સહન કરે. ગભરાય  
 નહિ એ સમયે એ એવું જ વિચારે કે જે પ્રકારે કર્મના ઉદયથી નરક  
 આદિના દુઃખોને મે અનેક વખતે સહન કરેલ છે, એ જ રીતે એ બધા મારા  
 કર્મોના ઉદયરૂપ છે. આ માટે મારે પણ તેને મધ્યસ્થભાવથી સહન કરવા  
 જોઈએ એવો નિશ્ચય કરી સારી રીતે આકુલતારહિત એને સહી, સમતાને પ્રાપ્ત  
 જેવું દર્શન છે એવું નામ સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે (સૂ૦ ૧)

તથા—“ દયં લોગસ્સ ” ઇત્યાદિ.

मूत्रम्—दय लोहस्त जाणित्ता पाईण पडीणं दाहिण उदीणं  
आह्वस्त्रे विमण् किट्टे वेयवी ॥ सू० २ ॥

छाया—दयां लोकस्य ज्ञात्वा प्राचीन प्रतीचीनं दक्षिणं उदीचीनम् आच-  
रति विमनेत् क्षीर्त्तमेत् वेदवित् ॥ सू० २ ॥

टीका—वेदवित्—सर्वज्ञप्रणीतागमज्ञानवान् मुनिः, लोकस्य ज्ञात्वा—द्रव्यतः  
पशुजीवनिकायस्वरूप विज्ञापेत्यर्थः, लोकस्यत्यत्र—कर्मणः सम्बन्धमात्रविचारायां  
पटी; तथा—क्षेत्रतः—प्राचीनं—पूर्व, प्रतीचीनं—पश्चिम, दक्षिणम्, उदीचीनम्—  
उत्तरम्, उपलक्षणत्वादन्यानपि दिग्भिर्भागान् ज्ञात्वा—अभिसमीक्ष्य कालतोयावग्नीर्ष-  
मानतो रागद्वेपरहितं सर्वत्र दयां कुर्वन् धर्ममाचरति; यथा—सर्वे प्राणिनो इत्य-  
द्विष सुखलिप्सव आत्मोपम्येन सर्वदा द्रष्टव्या इति । तथा धर्ममाचराणः विम-  
नेत्—द्रव्यक्षेत्रकालमाचरन्तैः प्राणातिपातविरमणादिभिर्भ प्ररूपयत् । क्षीर्त्तमेत्—  
धर्मानुष्ठानकर्म कथयेत् ॥ सू० २ ॥

सर्वज्ञरचित भागमके ज्ञाता मुनि द्रव्यसे पशुजीवनिकायस्वरूपको  
जान कर तथा क्षेत्रसे पूर्वदिशा, पश्चिमदिशा, दक्षिणदिशा और उत्तर  
दिशाको, एवं उपलक्षणसे इन दिशाओंके विभागोंको जानकर, कालकी  
अपेक्षा जीवनपर्यन्त, भावसे रागद्वेपरहित होकर, सर्वत्र धर्मका उपदेश  
करे । उस उपदेशमें यह अवश्य २ प्रकार करे कि समस्त संसारी प्राणी  
वृग्मको नहीं चाहते हैं और सुखके अभिलाषी हैं, अतः समस्त प्राणिमों  
को अपने समान समझना चाहिये, तथा यह धर्म द्रव्य, क्षेत्र, काल और  
भावके भेदों एवं अहिंसा आदि प्रतीकोंके भेदोंकी अपेक्षासे अनेक प्रकार  
का है । इस प्रकार उसका विभाग कर प्ररूपणा करे । धर्मकी आराधनासे  
जीवोंको क्या फल मिलता है ? इसका भी व्याख्यान करे ।

सर्वज्ञरचित भागमना ज्ञाता मुनि द्रव्यधी पशुजीवनिकायस्वरूप लोह-  
स्वरूप लक्ष्मीने, तथा क्षेत्रधी पूर्वदिशा पश्चिमदिशा, दक्षिणदिशा अने उत्तर  
दिशा अने उपलक्षणधी आ दिशाना विभाजने लक्ष्मीने, भागनी अपेक्षा जीवन  
पर्यन्त, भावधी राग द्वेष स्थित जनीने सर्वत्र धर्मनी उपदेश करे आ उपदेशमां  
ते अवश्य अवश्य प्रगः करे हे समस्त संसारी प्राणी इत्यने व्याख्या नहीं,  
अने सुभना अभिलाषी हे आ समस्त प्राणीअने पीताना समान समलवा  
नेध अने तथा ये धर्म द्रव्य, क्षेत्र अने भाग भावना बेदोअने अहिंसा आदि  
प्रतीका बेदोनी अपेक्षाधी अनेक प्रकारनी हे आ प्रकार तेना विभाग करी  
प्ररूपणा करे धर्मनी आराधनाधी लोचने शु शुभ अने हे तेनु व्याख्यान करे

किञ्च—‘से उद्विण्णसु वा’ इत्यादि ।

मूलम्—से उद्विण्णसु वा अणुद्विण्णसु वा सुस्सूसमाणेसु  
पवेदए—संतिं विरतिं उवसमं णिव्वाणं सोयं अज्जवियं मद्दवियं  
लाघवियं अणइवत्तिय ॥ सू० ३ ॥

छाया—उत्थितेषु वा अनुत्थितेषु वा शुश्रूषमाणेषु प्रवेदयेत् शान्तिं विरतिम्,  
उपशमं निर्वाणं शौचम् आर्जविकं मार्दविकं लाघविकम् अनतिपत्य ॥ सू० ३ ॥

टीका—सः=आगमचित् शुश्रूषमाणेषु=श्रोतुमिच्छत्सु गुर्वादिसेवां कुर्वत्सु वा  
उत्थितेषु=गृहीतप्रव्रज्येषु वा अनुत्थितेषु=श्रावकादिषु वा शान्तिम्=शमनम्—अहिंसा-

भावार्थ—सर्वज्ञ भगवानद्वारा प्रतिपादित आगमके ज्ञाता मुनिराज  
लोक आदिका यथार्थ स्वरूप जान कर, जीवोंकी रक्षाके निमित्त धर्मका  
उपदेश दे । उसमें वह द्रव्य, क्षेत्र, कालभावकी, अथवा अहिंसा व्रत  
आदिकी अपेक्षासे धर्मका विस्तारपूर्वक कथन करे, और साथमें यह  
भी स्पष्ट समझावें कि धर्मके आराधनसे किन २ जीवोंको किस २ फल  
की प्राप्ति हुई है ॥ सू० २ ॥

तथा—“से उद्विण्णसु वा” इत्यादि ।

आगमज्ञाता वे मुनि धर्मका उपदेश करते समय इन विषयोंका  
भी विवेचन करें । धार्मिक उपदेश सुननेके जो इच्छुक हैं उनका नाम  
शुश्रूषमाण हैं, अथवा जो गुरुओंकी सेवा करते हैं वे भी शुश्रूषमाण हैं ।  
जिन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली है वे उत्थित हैं और श्रावक आदि अनुत्थित  
हैं । इन सबके लिये वे आगमज्ञाता मुनि अहिंसा, मृषावाद आदिसे

भावार्थ—सर्वज्ञ भगवान् द्वारा प्रतिपादित आगमना ज्ञाता मुनिराज लोक  
आदिनु यथार्थ स्वरूप ज्ञातुी लोवानी रक्षा निमित्त धर्मनो उपदेश दे तेमां ते  
द्रव्य, क्षेत्र, काल, लाव अने अहिंसाव्रत आदिनी अपेक्षाथी धर्मनु विस्तार-  
पूर्वक कथन करे. अने साथे साथे ओ पणु समन्वये के धर्मना आराधनथी  
कया कया लोवोने कया कया कृणनी प्राप्ति थयेल छे.

तथा—“से उद्विण्णसु वा” इत्यादि

आगमज्ञाता ओ मुनि धर्मनो उपदेश करती वथते ओ विषयेनु पणु  
विवेचन करे. धार्मिक उपदेश सांभणवामा ओ धम्मिच्छुक छे तेनु नाम शुश्रूषमाणु  
छे, अथवा ओ शुद्ध्यानी सेवा करे छे तेओ पणु शुश्रूषमाणु छे. ओओओ दीक्षा  
ग्रहणु करेती छे तेओ उत्थित अने श्रावक आदि अनुत्थित छे. आ अथा माटे

मित्यर्थ, विरतिम्=विरमणं मृपावादादिविरमणं मूलगुणमित्यर्थः, उपशमं=क्रोधोपशमं क्षमा, उपलक्षणत्वात्सनंमुत्तरगुणमित्यर्थ, निर्वाणं=मूलगुणोत्तरगुणफलपूर्वमोक्ष, शौचं=मनःशुद्धिम्, आर्जविकम्=आर्जवं मायाशल्पराहित्यं, मार्दविकं=मार्दवं मानराहित्यं, लाघविकम्=कर्मभारापनयनादात्मनो लाघवम्। एतत्सर्वम् अनतिपत्यं यथावस्थितमर्थमनतिक्रम्य-आगमानुसारेणेत्यर्थः, प्रवेदयेत्=उपदिशेत् ॥ सू०३ ॥

किञ्च—'सर्व्वेसि' इत्यादि ।

मूलम्—सर्व्वेसि पाणाण, सर्व्वेसि मूयाण, सर्व्वेसि जीवाण,  
सर्व्वेसि सत्ताण अणुवीइ भिक्खवू धम्ममाइक्खेज्जा ॥ सू०४ ॥

छाया—सर्व्वेषां प्राणानां, सर्व्वेषां भूतानां सर्व्वेषां नीधानां, सर्व्वेषां सत्त्वानाम्,  
अनुविकित्थ भिक्खुर्धममाचसीत् ॥ सू०४ ॥

विरमण होनेरूप विरति—मूलगुण, क्रोधका उपशमरूप क्षमा, उपलक्षणसे समस्त उत्तरगुण, निर्वाण—मूलगुण और उत्तरगुणोंके फलभूत मोक्ष, मानसिक शुद्धि, मायाशल्पका अभावरूप आर्जव (सरलता), मानका अभावरूप मार्दव (नम्रता), और कर्मभारके नाश हो जानेसे उद्भूत आत्माके लाघवगुणका यथार्थ स्वस्वसे—आगमके अष्टरूप उपदेश करे ।

आगमज्ञाता मुनिको अपने उपदेशमें प्रधानतया किन २ विषयोंका वर्णन करना चाहिये सूत्रकारने के सच विषय उपर्युक्त रीतिसे प्रकट किये हैं । अतः विद्वान् उपदेशक मुनि, धार्मिक उपदेश सुननेवालोंके समक्ष उन विषयोंपर अवश्य ९ अपने उपदेशमें प्रकाश डालें ॥ सू० ३ ॥

तथा—“सर्व्वेसि” इत्यादि ।

ते आगमज्ञाता मुनि, आदिज्ञाने मृपावादा आदिषु विरमणु होवाङ्गुप निरति-  
भूणशुचने, निर्वाणु-कीधना उपशमङ्गुप क्षमाने, उपलक्षणुषी समस्त उत्तरशुच,  
मूलशुच अने उत्तरशुचोना इणभूत मोक्षने, मानसिक शुद्धि, मायाशल्पना अभावङ्गुप  
अज्ञाता, मानना अभावङ्गुप नम्रता अने कर्मभारने नाश यथं ल्वाधी उद्भूत  
आत्माना लाघवशुचने यथार्थस्वङ्गुपथी आगमने अनुङ्गुप उपदेश करे

आगमज्ञाता मुनिके पीताना उपदेशमां मुख्य तमा देवा देवा विष  
येषु बर्णन करुं लेधके. सूत्रकार के लिये विषय उपर्युक्त (उपर कहेत)  
रीतिथी प्रकट करेव छे. आटे विद्वान् उपदेशक मुनि धार्मिक उपदेश आत्मगवा  
वाग्य समक्ष के विषये उपर अवश्य अवश्य पीताना उपदेशने प्रकाश करे  
तथा—“सर्व्वेसि” इत्यादि

टीका--भिक्षुः=निर्दोषभिक्षाजीवी मुनिः सर्वप्राणिभूतजीवसंस्वानां हितं अनु-  
विचिन्त्य=पर्यालोच्य धर्म=श्रुतचारित्रलक्षणम्-अगारभर्ममनभारधर्मं वा आचक्षीत=  
प्रतिबोधयेत् । एकेन्द्रियादिषु सर्वेषु प्राणिषु कस्यचिदपि विराधना यथा न भवे-  
त्तथा धर्ममुपदिशेदिति भावः ॥ सू० ४ ॥

अनुविचिन्त्य धर्ममाचक्ष्णो भिक्षुरन्यत्किं कुर्यादित्याह-‘अणुवीइ भिक्खू’  
इत्यादि ।

सूटम्-अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खमाणे णो अत्ताणं  
आसाइज्जा, णो परं आसाइज्जा, णो अन्नाइं पाणाइं भूयाइं  
जीवाइं सत्ताइं आसाइज्जा ॥ सू० ५ ॥

निर्दोष भिक्षासे अपने शरीरका निर्वाह करनेवाले भिक्षु समस्त  
प्राणियों, समस्त भूतों, समस्त जीवों और समस्त सत्त्वोंका हित विचार  
कर श्रुतचारित्ररूप धर्मका, अथवा गृहस्थ और मुनिके धर्मका व्याख्यान  
करें । एकेन्द्रियादिक समस्त प्राणियोंमेंसे किसी भी जीवकी विराधना  
जिस तरह किसी भी जीवसे न बने-इस प्रकारसे धर्मका उपदेश देकर  
जीवोंको समझावें । अथवा मुनिका धर्म क्या है ? गृहस्थका धर्म क्या है ?  
इस विषयको समझावें । समझानेकी पद्धति इतनी हृदयरोचक एवं  
चित्ताकर्षक हो कि जिससे प्राणी उस उपदेशको सुन कर एकेन्द्रिया-  
दिक जीवों तककी भी विराधना करना छोड़ दें ॥ सू० ४ ॥

धर्मका बार २ विचार कर कथन करनेवाला भिक्षु और क्या करे ?  
इसके लिये सूत्रकार कहते हैं-“अणुवीइ भिक्खू” इत्यादि ।

निर्दोष भिक्षाथी पोताना शरीरको निर्वाह करवावाणा भिक्षु समस्त प्राणीयो,  
समस्त भूतो, समस्त ज्वो अने समस्त सत्वोना हितनो विचार करी श्रुत-  
चारित्ररूप धर्मतु अथवा गृहस्थ अने मुनि धर्मतु व्याख्यान करे ऐकेन्द्रि-  
यादिक समस्त प्राणीयोभाथी डोष्ठ पणु ज्वनी विराधना ने रीते डोष्ठ पणु  
ज्वथी न अने आ प्रकारथी धर्मनो उपदेश आपी ज्वोमे समन्तवे, अने मुनिनो  
धर्म शु छे ? गृहस्थनो धर्म शु छे ? आ विषय समन्तवे. समन्तववानी पद्धति ऐटकी  
इद्वयगम होवी नेष्ठये डे तेनी असर तात्कालिक पडोये, नेथी उपदेश  
साक्षणार ऐकेन्द्रियज्वोनी तरक्क पणु सइलाववाणो अने (सू० ४)

धर्मनो बारवार विचार करी जोलवावाणा भिक्षु थोणु शु करे ? आने  
भाटे सूत्रकार कहे छे-“अणुवीइ भिक्खू” इत्यादि.



छाया—अनुविचिन्त्य भिक्षुर्धर्ममाचक्ष्णाणः नो आत्मानमाशातयेत्, नो परमाशातयेत्, नो अन्यान् प्राणान् भूतान् जीवान् सत्त्वान् आशातयेत् ॥ सू० ५ ॥

टीका—धर्मम् आचक्ष्णाणः=कुर्यान् भिक्षुः=संयमी, अनुविचिन्त्य=सर्वमाप्तिरहितार्थं पर्यालोच्य आत्मानं=स्वकीयमात्मानं न आशातयेत्—स्वात्मन आशातनां सर्वथा न कुर्यात्, ज्ञानदर्शनचारित्र्यविकृद्बर्चनेनात्मनः संसारपरिभ्रमणं भवति तदेवात्मन आशातना विराधनेत्यर्थः॥ सा द्विविधा—लौकिकी लोकोत्तरा चेति, एकैकाऽपि द्रव्यभावमेदात् द्विधा । तत्र द्रव्यतो लौकिकी सच्चित्ताचित्तमिन्द्रद्रव्यविषया, मानसो विनयादिस्त्वस्त्वस्य विद्यादिलामो यया न भवति सा । द्रव्यतो लोकोत्तरा शरीरोपविषया, भावतस्तु ज्ञानदर्शनचारित्र्यतपोविनयादिगुणविषया । तथा—

धर्मका उपदेश करनेवाले भिक्षु-संयमी समस्त प्राणियोंके हित और अहितकी पर्यालोचना कर, अपनी निज आत्माकी सर्वथा विराधना न करे । ज्ञान, दर्शन और चारित्र्यसे विकृद्बर्चन करनेसे आत्माका जो संसारमें परिभ्रमण होता है, वह परिभ्रमण ही आत्माकी आशातना विराधना है । यह लौकिकी, और लोकोत्तरा के भेदसे प्रकारकी है । लौकिकी एवं लोकोत्तरा ये दोनों भी द्रव्य और भावके भेदसे दो दो भेदवाली हैं । सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यको विषय करनेवाली आशातना द्रव्यसे लौकिकी है । अविनयीके जिससे विद्यादिकका लाभ नहीं होता है वह भावसे लौकिकी आशातना है । शरीर और उपधिको विषय करनेवाली द्रव्यसे लोकोत्तरा आशातना है, तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य, तप और विनयादिक गुणोंको विषय करनेवाली भावसे लोकोत्तरा

धर्मका उपदेश करनेवाले भिक्षुके संयम प्राणियोंके हित और अहितकी पर्यालोचना करी पावना आत्माकी सर्वथा विराधना न करे ज्ञान, दर्शन और चारित्र्यसे विकृद्बर्चन करनेवाली आत्माके जो संसारमें परिभ्रमण होता है, वह परिभ्रमण ही आत्माकी आशातना विराधना है । यह लौकिकी, और लोकोत्तरा के भेदसे प्रकारकी है । लौकिकी एवं लोकोत्तरा ये दोनों भी द्रव्य और भावके भेदसे दो दो भेदवाली हैं । सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यको विषय करनेवाली आशातना द्रव्यसे लौकिकी है । अविनयीके जिससे विद्यादिकका लाभ नहीं होता है वह भावसे लौकिकी आशातना है । शरीर और उपधिको विषय करनेवाली द्रव्यसे लोकोत्तरा आशातना है, तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य, तप और विनयादिक गुणोंको विषय करनेवाली भावसे लोकोत्तरा

परम्=अन्यं, शुश्रूषुमार्यमनार्य्यमुत्थितमनुत्थितं वा न आशातयेत्, तथा-अन्यान् वा सामान्येन प्राणान्=प्राणिनः भूतान् जीवान् सत्त्वान्, सर्वानित्यर्थः; न आशातयेत्, षड्जीवनिकायस्वरूपाऽपलापेन सावद्योपदेशेन च न विराधयेत्। इदमुक्तं भवति-तथाभूतमुपदेशं न कुर्यात् येन कस्यापि प्राणिनो विराधना समुत्पद्येत ॥५॥

आशातना है। उपदेश सुननेके लिये अभिलाषी बने हुएका नाम शुश्रूषु, सर्वविरतिरूप चारित्रके पालक उत्थित और गृहस्थजन अनुत्थित हैं। इनमें से कोई भी हो, मुनिका कर्तव्य है कि वह इनकी आशातना (विराधना) न करें। इसी प्रकार सामान्यसे प्राणियोंकी, भूतोंकी, जीवोंकी, और सत्त्वोंकी वे आशातना करनेके अधिकारी नहीं हैं। ऐसा उपदेश न दें कि जिससे षड्जीवनिकायके स्वरूपका आपलाप हो और सावद्य व्यापारोंमें जीवोंकी प्रवृत्ति हो। क्यों कि इस प्रकारके उपदेशसे जीवोंकी प्रवृत्ति अन्य जीवोंकी विराधनाकी ओर उत्साहित होती है। कहनेका मतलब यह है कि ऐसा उपदेश मुनिको कभी नहीं देना चाहिये कि जिससे किसी भी जीवकी विराधना होवे।

धर्मका उपदेश करनेवाला संयमी सदा इस बातका पूर्ण ध्यान रखे कि, मेरे उपदेशसे जहां तक हो सके, सब जीवोंका कल्याण हो। कुमार्गमें जानेवाले भी प्राणी इससे लाभ उठावें और वे सन्मार्गमें लग जावें। श्रोताओंके ऊपर उसी उपदेशका प्रभाव पड़ता है जो स्वयं ज्ञान,

छे उपदेश साक्षणवा माटे उत्सुक अनेदानु नाम सुश्रूषु, सर्वविरतिरूप चारि-  
त्रना पालक उत्थित अने गृहस्थजन अनुत्थित छे आमांथी कोछ पणु डो,  
मुनिनु कर्तव्य छे के ते कोछनी विराधना न करे. आ न रीते सामान्य प्राणी-  
ओनी, भूतानी, एवोनी अने सत्त्वानी ते विराधना करवाना अधिकारी नथी.  
ओवो उपदेश न आपे के नेथी षड्जीवनिकायना स्वरूपनो अपलाप (स ताडवापणुं)  
थाय अने सावद्य व्यापारोमां एवोनी प्रवृत्ति वधे केभके आ प्रकारना उप-  
देशथी एवोनी प्रवृत्ति अन्य एवोनी विराधना तरङ्ग उत्साहित अने छे  
कडेवानी मतलब ओ छे के मुनिओ ओवो उपदेश न हेवो नेछ ओ के नेथी  
कोछ पणु एवोनी विराधना थाय

धर्मनो उपदेश करनार संयमी आ वातने सदा पूर्णरीते ध्यानमां राओ  
के मारा उपदेशथी अने त्या सुधी एवोनु कल्याणु थाय कुमार्गमां नवावाणा  
प्राणी पणु आनो लाल भेणवे अने सन्मार्गे आलवा लागे, श्रोताओ उपर  
आवा उपदेशकनो प्रभाव पडे छे ने स्वय ज्ञान दर्शन अने चारित्रथी विरुद्ध

एषम्भूतो मुनिः सर्वप्राणिनां शरणं भवतीति दृष्टान्तद्वाराण दर्शयति—  
'से अणासायए' इति ।

मूलम्—से अणासायए अणासायमाणे षड्भ्रमाणाण पाणाण  
भूयाण जीवाण सत्ताण जहा से दीवे असदीणे एव से भवइ  
सरण महामुणी ॥ सू० ६ ॥

छाया—स' अनाशातकः अनाशातयन् षड्यमानानां प्राणानां भूतानां जीवानां  
सत्त्वानां, यथा स द्वीपः असन्दीनः, एवं स भवति शरणं महामुनि ॥ सू० ६ ॥

टीका—यथा स' असिद्ध असन्दीनः=जलोपप्लवहरहितः द्वीप प्राणिनां शरणम्  
=आश्रयो भवति, एवं स' असौ अनाशातकः अविराघकः अनाशातयन्=आशातना-  
मङ्कुर्वन् महामुनिः=तीर्थङ्करो गणधरो वा तप'सयमलम्बिसम्पन्नोऽनगारो वा षड्य-

वर्षान, और चारित्र्यसे बिल्कुल प्रवर्त्सन नहीं करता है । इसी लिये उस  
उपदेष्टाके लिये प्रसुका यह आदेश है कि यह अपनी आशातना ( बिरा-  
घना ) न करे । जो स्वयं धर्मसे बिल्कुल प्रवृत्तिशाली होता है, वह दूसरों  
को सुमार्गपर नहीं ला सकता है ॥ सू० ५ ॥

ऐसा मुनि सर्व प्राणियोंका शरणभूत होता है—इस बातको दृष्टान्त  
द्वारा सूत्रकार दिग्बलानेके लिये “से अणासायए” यह सूत्र कहते हैं—

असन्दीन द्वीप कि जिसके चारों ओर पानी होते हुए भी जो  
स्वयं उसके उपद्रवसे रहित होता है—ऐसा प्रवेशविशेष जैसे  
अनेक प्राणियों का आश्रयभूत होता है, इसी तरह अनाशातक  
—अधिरामक महामुनि—तीर्थङ्कर भयवा गणधर देव या तप और  
सयमकी लम्बिवाले मुनिजन भी आशातना ( बिराघना ) से रहित होकर

प्रवृत्ति न करता होय आ भाटे उपदेशने प्रसुનો એ આદેશ છે કે તે  
પોતાની વિરોધના ન કરે એ સ્વયં ધર્મથી વિરૂદ્ધ આલનાર હોય છે તે બીજાને  
સુમાર્ગ ઉપર લાવી શકવા નથી. (સૂ. ૫)

એવા મુનિ સર્વપ્રાણીઓના શરણભૂત હોય છે એ વાત દૃષ્ટાન્તદ્વારા  
સૂત્રકાર બતાવવા માટે 'સે અણાસાયપ' આ સૂત્ર કહે છે

અસન્દીન બેટ કે જેની આરે તરફ પાણી હોય છે છતા તે બળના ઉપદ્ર  
વથી સહિત રહે છે આવે પ્રદેશ અનેક પ્રાણીઓને આશ્રયદાતા બને છે એ જ  
રીતે અનાશાતક—અવિરાઘક મહામુનિ—તીર્થંકર ભયવા ગણધરદેવ તેમજ તપ  
બને સયમની લંબિવાળા મુનિજન પણ આશાતના (વિરોધના)થી સહિત ધર્મને

मानानां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्त्वानां सर्वेषां तद्रक्षणोपायप्रदर्शनतः शरणं भवति । वधकानां च तदध्यवसायान्निवर्तनेन विशिष्टगुणस्थानावस्थापनाच्छरणं भवति । तथाहि—अगारानगारधर्ममाचक्षणस्तथाविधो महापुरुषः कतिचन प्रवाजयति; कतिचन श्रावकव्रते प्रवर्त्तयति, कतिचन सम्यक्त्वं प्रापयन् मोक्षमार्गस्य प्रथमसोपाने समारोहयति, कतिचन प्रकृतिभद्रान् करोति, प्रगाढमिथ्यात्ववत्त्रापि कतिचन नवनीतवन्मृदुलमानसान् विदधातीति ॥ सू० ६ ॥

उक्तमर्थमुपसंहरन्नाह—‘एवं से उट्टिए’ इत्यादि ।

समस्त प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वकी रक्षाके उपाय दिखानेके कारण समस्त प्राणियोंके, समस्त भूतोंके, समस्त जीवोंके और समस्त सत्त्वोंके आश्रय—शरण होते हैं । तथा—वे उन प्राणी आदिके वध करनेवालोंके भी, उन्हें हिंसाके व्यापारसे निवृत्त कर विशिष्ट गुणस्थानमें पहुँचानेके कारण; शरण होते हैं । सबके शरण वे महामुनि वध करनेवाले जीवोंमें से कितनेक जीवोंको उपदेश दे कर दीक्षित कर देते हैं, कड़्योंको श्रावकोंके व्रतोंमें स्थापित कर देते हैं, किननेकोंको सम्यक्त्व प्राप्त करा कर मोक्षमार्गकी प्रथम सीढ़ी पर चढ़ा देते हैं, और कितनेक प्राणियोंको प्रकृतिसे भद्र बना देते हैं । यहां तक कि जिनके गाढ मिथ्यात्वका भी उदय है ऐसे भी कई जीवोंके चित्त को वे नवनीत (मक्खन) के समान कोमल बना देते हैं ॥ सू० ६ ॥

पूर्वोक्त अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“एवं से उट्टिए” इत्यादि ।

समस्त प्राणी, भूत, एव अने सत्त्वनी रक्षानो उपाय प्रदर्शित करवाने लीधे समस्त प्राणियोंना, समस्त भूतेना, समस्त एवोना, अने समस्त सत्त्वोना आश्रय—शरण—दाता होय छे

तथा—ते प्राणी आदिनो वध करनार मनुष्योने हिंसाना व्यापारथी निवृत्त करी, विशिष्ट गुणस्थानमां लई जवाना कारणे, ते महामुनि ते हिंसकाना पणु शरणु थाय छे अधाना शरणु ते महामुनि वध करनार एवोमांथी डेटलाक एवोने उपदेश आपी दीक्षा अडणु करावे छे डेटलायने श्रावकना व्रतोमा दढ अनावे छे डेटलायने सम्यक्त्व प्राप्त करावी मोक्षधर्मनी प्रथम सीडी उपर चडावी हे छे अने डेटलाक प्राणियोंने प्रकृतिथी डेरवनार अने छे त्या सुधी डे जेनामा गाढ मिथ्यात्वनो पूर्ण उदय होय अेवा धणु एवोना चित्तमा पोतानी शुद्ध वाणीनो प्रवाह रेडी तेने भाषणु जेवा डेमण मनवाणा अनावी हे छे (सू० ६)

पूर्वोक्त अर्थनो उपसंहार करता सूत्रकार कहे छे—“एवं से उट्टिए” इत्यादि ।

પ્રમુખતો મુનિઃ સર્વપ્રાણિનાં શરણં મચતીતિ ઇષ્ટાન્તદ્વારેણ દર્શયતિ—  
'સે અણાસાયપ' ઇતિ ।

મૂલ્ય—સે અણાસાયપ અણાસાયમાણે વજ્જમાણાણ પાણાણં  
મૂયાણ જીવાણ સત્તાણ જહા સે દીવે અસદીણે યથ સે મવઇ  
સરણ મહામુણી ॥ સૂ૦ ૬ ॥

છાયા—સઃ અનાશાતકઃ અનાશાતયન્ ધખ્યમાનાનાં પ્રાણાનાં મૂતાનાં બ્રીહાનાં  
સસ્વાતાં, યયા સ શ્રીપઃ અસન્વીનઃ, ઇવં સ મવતિ શરણં મહામુનિ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

ટીકા—યયા સઃ=પ્રસિદ્ધઃ અસન્વીનઃ=અલોપ્સ્યમરહિતઃ શ્રીપઃ પ્રાણિનાં શરણમ્  
=આશ્રયો મવતિ, ઇવં સઃ=અસી અનાશાતકઃ=અભિરામકઃ અનાશાતયન્=આશાતના-  
મહુર્વન્ મહામુનિઃ=તીર્થંકુરો ગમ્યધરો યા તપઃસંયમલભિસમ્પન્નોઅગારો યા મન્ય-  
વર્ણન, ઓર આરિષ્ટસે ચિરુદ્ધ પ્રવર્ષન નહીં કરતા હૈ । હસી લિયે ઉસ  
ઉપદેષ્ટાકે લિયે પ્રમુખા યહ આદેશ હૈ કિ યહ અપની આશાતના ( ચિરા-  
ચના ) ન કરે । જો સ્વયં ધર્મસે ચિરુદ્ધ પ્રવૃત્તિશાલી હોતા હૈ, યહ દુસરો  
કો સુમાર્ગપર નહીં લા સકતા હૈ । સૂ૦ ૫ ॥

એસા મુનિ સર્વ પ્રાણિયોંકા શરણમૂત હોતા હૈ—હસ યાતકે ઇષ્ટાન્ત  
દ્વારા સૂત્રકાર વિસ્તારનેકે લિયે “સે અણાસાયપ” યહ સૂત્ર કહતે હૈ—

અસન્વીન શ્રીપ કિ જિસકે આરોં ઓર યાની હોતે કુપ મી જો  
સ્વયં જલકે ઉપદ્રવસે રહિત હોતા હૈ—એસા પ્રવેશાવિશેષ જૈસે  
અનેક પ્રાણિયોં કા આશ્રયમૂત હોતા હૈ, હસી તરહ અનાશાતક  
—અભિરામક મહામુનિ—તીર્થંકુર અથવા ગમ્યધર દેખ યા તપ ઓર  
સયમકી લભિવાલે મુનિજન મી આશાતના (ચિરાચના) સે રહિત હોકર

પ્રવૃત્તિ ન કરતા હોય. આ માટે ઉપદેશકને પ્રમુખોં જો આદેશ છે કે તે  
પ્રેતાની વિસમન્ય ન કરે. જે સ્વયં ધર્મથી વિરુદ્ધ આચનાર હોય છે તે બીજાને  
સુમાર્ગ ઉપર દર્શવી શકતા નથી. (સૂ૦ ૫)

એવા મુનિ સર્વપ્રાણીઓના શરણમૂત હોય છે જે. યાત દ્યાન્તદ્વાર  
સૂત્રકાર બતાવવા માટે 'સે અણાસાયપ' આ સૂત્ર કહે છે.

અસન્વીન એટ કે એની આરે તરહ પાણી હોય છે છતા તે બળના ઉપદ્ર  
વથી રહિત રહે છે આપે પ્રદેશ અનેક પ્રાણીયોંને આશ્રયશાતા બને છે એ જ  
રૂતે અનાશાતક—અવિશાક મહામુનિ—તીર્થંકુર અથવા ગમ્યધરદેવ તેમજ તપ  
અને સયમની લભિવાળા મુનિજન પણ, આશાતના (ચિરાચના)થી રહિત યદિને

मानानां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्त्वानां सर्वेषां तद्रक्षणोपायप्रदर्शनतः शरणं भवति । वधकानां च तदध्यवसायान्निवर्त्तनेन विशिष्टगुणस्थानावस्थापनाच्छरणं भवति । तथाहि—अगारानगारधर्ममाचक्षणस्तथाविधो महापुरुषः कतिचन प्रव्राजयति; कतिचन श्रावकव्रते प्रवर्त्तयति, कतिचन सम्यक्त्वं प्रापयन् मोक्षमार्गस्य प्रथमसोपाने समारोहयति, कतिचन प्रकृतिभद्रान् करोति, प्रगाढमिथ्यात्ववत्श्चापि कतिचन नवनीतवन्मृदुलमानसान् विदधातीति ॥ सू० ६ ॥

उक्तमर्थमुपसंहरन्नाह—‘एवं से उट्टिए’ इत्यादि ।

समस्त प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वकी रक्षाके उपाय दिखानेके कारण समस्त प्राणियोंके, समस्त भूतोंके, समस्त जीवोंके और समस्त सत्त्वोंके आश्रय—शरण होते हैं । तथा—वे उन प्राणी आदिके वध करनेवालोंके भी, उन्हें हिंसाके व्यापारसे निवृत्त कर विशिष्ट गुणस्थानमें पहुंचानेके कारण; शरण होते हैं । सबके शरण वे महामुनि वध करनेवाले जीवोंमें से कितनेक जीवोंको उपदेश दे कर दीक्षित कर देते हैं, कइयोंको श्रावकोंके व्रतोंमें स्थापित कर देते हैं, किननेकोंको सम्यक्त्व प्राप्त करा कर मोक्षमार्गकी प्रथम सीढ़ी पर चढ़ा देते हैं, और कितनेक प्राणियोंको प्रकृतिसे भद्र बना देते हैं । यहां तक कि जिनके गाढ मिथ्यात्वका भी उदय है ऐसे भी कई जीवोंके चित्त को वे नवनीत (मक्खन) के समान कोमल बना देते हैं ॥ सू० ६ ॥

पूर्वोक्त अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“एवं से उट्टिए” इत्यादि ।

समस्त प्राणी, भूत, जीव અને સત્ત્વની રક્ષાનો ઉપાય પ્રદર્શિત કરવાને લીધે સમસ્ત પ્રાણીયોના, સમસ્ત ભૂતોના, સમસ્ત જીવોના, અને સમસ્ત સત્ત્વોના આશ્રય—શરણ—દાતા હોય છે

તથા—તે પ્રાણી આદિનો વધ કરનાર મનુષ્યોને હિંસાના વ્યાપારથી નિવૃત્ત કરી, વિશિષ્ટ ગુણસ્થાનમાં લઈ જવાના કારણે, તે મહામુનિ તે હિંસકોના પણ શરણ થાય છે બધાના શરણ તે મહામુનિ વધ કરનાર જીવોમાંથી કેટલાક જીવોને ઉપદેશ આપી દીક્ષા પ્રહણ કરાવે છે કેટલાયને શ્રાવકના વ્રતોમાં દેખાવે છે કેટલાયને સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરાવી મોક્ષમર્મની પ્રથમ સીડી ઉપર ચઢાવી દે છે અને કેટલાક પ્રાણીયોને પ્રકૃતિથી દૂરવનાર બને છે ત્યાં સુધી કે જેનામાં ગાઢ મિથ્યાત્વનો પૂર્ણ ઉદય હોય એવા ઘણા જીવોના ચિત્તમાં પોતાની શુદ્ધ વાણીનો પ્રવાહ રેડી તેને માખણ જેવા કોમળ મનવાળા બનાવી દે છે (સૂ० ૬)

पूर्वोक्त अर्थનો ઉપસંહાર કરતા सूत्रकार કહે છે—“एवं से उट्टिए” इत्यादि.

મૂલમ્—एष से उद्विष्टं ठियप्पाअणिहे अचले चले अघहि  
लेस्से परित्रजेत् ॥ सू० ७ ॥

छाया—एवं स उस्थितः स्थितात्मा अनीहः अचलः चलः अघर्हिर्लेश्या  
परित्रजेत् ॥ सू० ७ ॥

टीका—एषम्=उत्करीत्या स उस्थित=कर्मपूनायै गृहीतप्रव्रज्यः स्थितात्मा-  
भुतचारित्रधर्मे स्थित=स्थिरीभूत आत्मा यस्य सः=धर्मापनपरायणाः, अनीहः=  
कपटवर्जित=अनिगूहितबलधीर्य इत्यर्थः, यद्वा—‘अस्निह’ इति श्रुत्या; रागद्वेष-  
रहितः, अचलः=महाबाते प्रबलति सति मेरुरिचानुसूम्पविकूलपरीपशोपसर्गसम्प  
स्थितौ सत्यामप्रकम्पः, विकृताभ्यभसायरहित इत्यर्थः । चल=स्थिरवासवर्जितः,  
उग्रविहारीत्यर्थः । अघर्हिर्लेश्या =न वर्धते संयमाद्बर्हिर्लेश्या=मनोवृत्तिर्यस्य सः  
तयोक्तः, संयमैकलक्ष्यः सन् परित्रजेत्=विहरेत् ॥ सू० ७ ॥

इस पूर्वोक्त रीतिसे कर्मों को हटानेके लिये जिसने आर्हती पीक्षा  
धारण की है, तथा जिसकी आत्मा शुभचारित्ररूप धर्ममें स्थिरीभूत है-  
धर्मके आराधन करनेमें जो परायण है, कपटरहित है-अपने चल और  
धीर्यको जिसने छिपाता नहीं है, अथवा अस्निह-राग और द्वेषसे  
रहित है, शंकायातके चलने पर भी सुमेरुकी ज्यों जो अनुकूल प्रतिकूल  
परीपह और उपसर्गोंके आने पर भी अडोल बना रहता है-विकृत-  
परिणामोंसे शून्य रहता है जो उग्रविहारी है-स्थिरवास नहीं करता है,  
संयमके सिवाय याहिरी पदार्थोंमें जिसकी मानसिक वृत्ति अशान्तमान नहीं  
होती है, ऐसा मुनि संयमरूप अपने एक लक्ष्यमें स्थिर बन बिहार करे॥सू०७॥

એ પૂર્વોક્ત રીતથી કર્મોને હટાવવા માટે જેણે અર્હતી પીક્ષા ધારણ કરી  
છે તથા જેનો આત્મા શુભ ચારિત્રરૂપ ધર્મમાં સ્થિર છે-ધર્મનું આરાધન કર  
વામાં જે પરાયણ છે કપટરહિત છે-પોતાનું જાગ અને ચીવને જેણે છુપાવેલ  
નથી. અથવા જે રાગ અને દ્વેષથી રહિત છે, અને તેવા અજ્ઞાતાતની સામે  
જેમ મેઠુ પવત અ ગ અને અજગ રહે છે, એ રીતે મને તેવા ઉપસર્ગો અને  
પરિપક્ષ આપવા છતાં અજગ રહે છે-વિકૃત પરિણામોથી શૂન્ય રહે છે જે ઉગ્ર  
બિહારી છે-સ્થિર વાસ કરતા નથી, સમમ સિવાય બદારના પદાર્થોમાં જેની  
માનસિક વૃત્તિ અશાન્તમાન થતી નથી, એવા મુનિ સંયમરૂપ પોતાના એક લક્ષ્યમાં  
સ્થિર બની વિહાર કરે. (સૂ૦૭)

उत्तरीत्या चारित्रमाराधयन् ज्ञानं प्राप्य मुक्तो भवतीति दर्शयति—  
'संखाय' इत्यादि ।

मूलम्—संखाय पेशलं धम्मं दिट्ठिमं परिणिव्वुडे ॥सु०८॥

छाया—संख्याय पेशलं धर्मं दृष्टिमान् परिनिर्वृतः ॥ सू० ८ ॥

टीका—दृष्टिमान्=सम्यग्दर्शनवान् पेशलं=हिंसादिदोषरहितं 'शुद्ध धर्म'=  
जिनोक्तं श्रुतचारित्राख्यं संख्याय=सम्यग्ज्ञानेन विज्ञाय परिनिर्वृतः=समूलसकल-  
कर्मक्षयात् प्रकटितशुद्धात्मस्वरूपतया निरावाधाऽमन्दानन्दसन्दोहसम्पन्नो भवति ॥

यस्तु मिथ्यादृष्टिः पेशलं धर्मं न जानाति स परिनिर्वृतो न भवतीति दर्श-  
यितुमाह—'तम्हा' इत्यादि ।

उक्त रीतिसे चारित्रकी आराधना करनेवाला मुनि ज्ञानकी प्राप्ति  
करके मुक्त होता है—इस बातको सूत्रकार कहते हैं—“ संखाय ” इत्यादि ।

सम्यक् दर्शन—सम्पन्न मुनि हिंसादिक दोषोंसे रहित शुद्ध ऐसे  
जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित श्रुतचारित्ररूप धर्मका सम्यक् ज्ञानसे परिज्ञान  
कर परिनिवृत्त हो जाता है—अर्थात् आभूलचूल सकल कर्मोंके विनाश  
होनेसे प्रकटित शुद्ध आत्मस्वरूप होनेके कारण, निरावाध अभन्द आनन्द  
की परंपरासे संपन्न हो जाता है—सम्यग्दर्शन संपन्न महामुनि जिनेन्द्रदेव  
कथित धर्मकी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना करनेसे समस्त कर्मोंसे रहित  
हो जाता है और अव्यावाध सुखका भोक्ता बन जाता है ॥ सू०८॥

जो मिथ्यादृष्टि हैं, वे मिथ्यात्वके प्रभावसे शुद्ध ऐसे जिनोक्त धर्म  
को नहीं जानते हैं; इसलिये वे मुक्तिके भी पात्र नहीं होते हैं—इस बात

आ रीतथी चारित्रनी आराधना करवावाणा मुनि ज्ञाननी प्राप्ति करी मुक्ता  
अने छे, आ वातने सूत्रकार कडे छे—'संखाय' इत्यादि—

सम्यग्दर्शनसंपन्न मुनि हिंसादिक दोषोथी रहित शुद्ध अथवा जिनेन्द्र  
द्वारा प्रतिपादित श्रुतचारित्ररूप धर्मने सम्यग्ज्ञानथी लक्ष्मिने परिनिर्वृत थछ  
अथ छे, अर्थात् पोताना सकल कर्मोंने समूण विनाश थतां प्रगटेला शुद्ध  
आत्मस्वरूपना कारणे कौथ प्रकारनी आधारदित अभन्द ( पारावार ) आनन्द-  
संपन्न थछ अथ छे सम्यग्दर्शनसंपन्न महामुनि जिनेन्द्रदेवे कडेला  
धर्मनी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना करवाथी सधणा कर्मोथी रहित अनी अथ  
छे अने अन्यायाध सुणना लोक्ता अने छे (सू०८)

वे मिथ्यादृष्टि छे ते मिथ्यात्वना प्रभावथी शुद्ध अथवा लोकोक्त धर्मने



मूत्रम्-तम्हा सगति पासह, गथेहिं गढिया णरा विसण्णा कामकता, तम्हा ल्हओ णा परिचित्तसेज्जा ॥ सु० ९ ॥

छाया—उस्मात् सङ्गमिति पश्यत, ग्रन्थैर्ग्रथिता नरा विपण्णा कामक्रान्ता, उस्माद् रूक्षात् नो परिचित्तसेत् ॥ सु० ९ ॥

टीका—इति सूत्रोऽत्र हेत्यर्थे, इति=यतः-मिथ्यादृष्टि सङ्गवान् भूत्वा न परिनिर्णयो भवति तस्मात् सङ्ग=मातापित्रादिसम्बन्धे तद्विपाक वा पश्यत=विपक्व युद्धया पर्यालोषयत । सङ्गमाह-ग्रन्थैः=समायाम्यन्तरपरिग्रहे ग्रथिताः=भगवद्वा विपण्णाः=ग्रन्थसङ्गे निमग्ना कामक्रान्ता कामभोगाभिनिषिद्धचिन्ता न परिनिर्णयान्ति, किन्तु शरीरमानसैर्नानाविधदुरन्तद्गुणैः परितप्ता एव भवन्ति, तस्मात् कारणात् मुनि रूक्षता-रागादिरहितत्वादस्मिन्भवतया रूक्ष इव रूक्ष=निस्तम्हा को दिखानेके लिये सूत्रकार कहते हैं “तम्हा” इत्यादि ।

सूत्रमें इति शब्द हत्यर्थमें प्रयुक्त हुआ है। जिस कारणसे वह मिथ्यादृष्टि वाद्य पदार्थों में सग-आसक्तिवाला बन कर मुक्त नहीं होता है, इसी कारणसे हे शिष्य ! तुम भी माता पिता आदिके संबंधका और उसके विपाकका विवेकयुद्धिसे अच्छी तरहसे विचार करो । जो वाद्य और आम्यन्तर परिग्रहोंसे बंधे हुए हैं, और इसीलिये जो परिग्रहके सम्बन्धमें मग्न है, कामभोगोंमें जिनका चित्त सर्व प्रकारसे लवलीन है, वे उस अवस्थामें मुक्त नहीं हो सकते हैं । सिर्फ ऐसे जीव शारीरिक और मानसिक नाना प्रकारके दुरन्त दुःखोंसे ही संतप्त होते रहते हैं । इस कारण मुनिका कर्तव्य है कि वह रूक्ष-संयमसे कामी भी उद्विग्न

नव्यता नहीं आधी ते मुक्तिने पात्र पद्य नहीं बनता आ बात अदापय सूत्रकार ठहरे है “तम्हा” इत्यादि—

सूत्रमा इति शब्द हेतु-अर्थमा प्रयुक्त कथेत है के कारणसे ही ते मिथ्या दृष्टि आद्य पदार्थोंमा आसक्तिवाला बनी मुक्त बर्ध शक्यता नहीं, आ ग्राह्ये हे शिष्यो । तमे पद्य माता पिता आदिना संबन्धने आने ज्येना विषयने विवेक युद्धिमी विचार करे, के आद्य आने आन्तरिक परिशुद्धिमी अर्थात्वेला है आने ज्येमी ठरी तेज्ये ज्येमां न पुष्येला है कामभोगोमा केमनु चित्त सव-प्रकाशमी मज्ज है तेज्ये ज्ये अन्वस्थामाधी मुक्त बर्ध शक्यता नहीं, आवा ल्यो शारीरिक आने मानसिक नाना प्रकारनी आधि-उपाधिज्योमां संतप्त रहे है आ कारणे मुनिव्य कर्तव्य है ते रूक्ष-संयममी ठहरे पद्य उद्विग्न न आने

संयमः, तस्मात् नो परिवित्रसेत्=न विभीयात्-संयममुपादाय परीषदादिभ्यस्त्रासं  
न प्राप्नुयात्-अविचलमनसा संयमं परिपालयेदित्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

न हो। रूक्षका अर्थ यहां संयम है; क्यों कि यह रागादिक दोषोंसे रहित  
होता है, इस लिये इसमें सिग्धता नहीं आ सकती है, अतः उसके न  
होनेसे यह रूक्षकी तरह रूक्ष है, रूक्ष होनेसे ही यह कपायोंसे संश्लिष्ट  
नहीं हो सकता है ऐसे संयमको ग्रहण कर मुनि परीषह आदिसे भय-  
भीत न हो-अविचलित चित्तसे संयमकी पालना और उसकी सदा  
रक्षा करे।

मिथ्यादृष्टि मुक्त नहीं होता-इसका कारण सूत्रकार बतलाते हैं। वे  
कहते हैं कि उसकी मिथ्यात्वके सम्बन्धसे बाह्य पदार्थोंमें आसक्ति  
बनी रहती है, जो संयमकी विघातक है। इसकी बुद्धि कामाक्रान्त होती  
है, तथा बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहोंमें यह सदा मग्न रहता है। इस  
लिये अनेक दुरन्त शारीरिक एवं मानसिक कष्टोंका सामना करता  
हुआ भी संयमके दर्शन तकसे वंचित रहता है, फिर मुक्तिकी तो बात  
ही क्या करनी? इसलिये मुनिका कर्तव्य है कि वह संयम ग्रहण करने  
के बाद परीषह और उपसर्गादिकोंके आने पर भय न करे और अवि-  
चलित मन धन संयमकी पालना और रक्षा करता रहे ॥ सू० ९ ॥

इक्ष्णो अर्थ अर्द्धि सयम छे, केम के ते रागादिक दोषोधी रद्धित डोय  
छे आ डारणु तेनामां सिग्धता आवी शकती नथी. आ डारणु ते इक्ष्णी  
तरह इक्ष छे इक्ष डोवाथी न ते कषायोधी अकणाता नथी आवा  
सयमने अडणु करी मुनि परिषड आद्विथी लयसीत न भने-अविचलितचित्तथी  
सयमनी पालना भने तेनी सदा रक्षा करे

मिथ्यादृष्टि मुक्त नहीं थई शकता, अणु डारणु सूत्रकार बतावे छे.  
ते डडे छे के अनामा मिथ्यात्व डोवा सणण तेनी बाह्य पदार्थोमां आसक्ति  
रडे छे, ने सयमनी विघातक छे अनी बुद्धि विषयथी व्याप्त डोय छे,  
अने बाह्य तथा आन्तरिक परिग्रहोमां अे सदा मग्न रडे छे आथी  
लयकर अेवां शारीरिक अने मानसिक कष्टोना सामना करता छता पणु संय  
मना दर्शनथी पणु वंचित रडे छे, पछी मुक्तिनी तो बात न कयां करवी आ  
माटे मुनिनु कर्तव्य छे के सयम धारणु करवा आद परिषड अने उपसर्गा-  
दिकोना आववाथी लयसीत न भने अने अविचलित मनना अनी सयमनी  
पालना अने रक्षा करता रडे. ( सू० ९ )

कस्य पुनः समयमादपरिप्रास संभवतीति जिज्ञासायामाह—'जस्सिमे' इत्यादि  
 मूळम्—जस्सिमे आरम्भा सव्वतो सव्वत्ताए सुपरिण्णाया  
 भवति, जेसिमे लूसिणो णो परिवित्तसति, से वता कोहं च  
 माण च माय चलोह च । एस तुट्ठे विद्याहिय—त्तिवेमि । सू० १०।

छाया—यस्यम आरम्भाः सर्वतः सर्वतया सुपरिज्ञाता भवन्ति, येषिमे  
 छपिणो नो परिविप्रस्यन्ति, स बान्त्वा क्रोधं च मानं च मायां च लोभं च । एष  
 तुट्ठं व्याख्यास , इति प्रवीमि ॥ सू० १० ॥

टीका—येषु=आरम्भेषु आरम्भप्रवृत्तिषु श्मे=अन्यग्रथिता विषयाः कामक्रान्ताः  
 अनाः छपिण =छूपमशीला हिंसका नो परिविप्रस्यन्ति=अज्ञानेन प्रयत्नमोहोदयेन च  
 नोद्विजन्ते । समन्वयपरिप्राप्तकारणात् स्वस्वस्थानस्थिता पृथिव्यादयस्ताम्  
 मयसठञ्जावता, तथा-भित्तीदृग्दृष्टादिकं निर्माय स्वात्मगोपनपराः स्थिता

क्या कारण है कि जिससे समयसे मुनिजनोंको प्राप्त नहीं होता  
 है? इस प्रकारकी जिज्ञासा होनेपर सूत्रकार कहते हैं—“जस्सिमे” इत्यादि।

जो जीव अनेक आरंभों—अनेक आरम्भमय प्रवृत्तियोंमें धाव और  
 आभ्यन्तर परिग्रहोंसे ग्रथित, तथा उस परिग्रहके जुटानेमें मग्न और  
 काममोगोंमें मूर्च्छित बन कर अनेक जीवोंकी हिंसा करनेरूप प्रवृत्तिमें  
 संश्लिष्टभिन्न रहते हैं, वे अज्ञान और प्रयत्न मोहके उदयसे उस प्रकार  
 की प्रवृत्तिको करते हुए भय नहीं करते हैं—हमें नरकनिगोदाविकोंके  
 दुरन्त दुःख भोगने पड़ेंगे इस प्रकारके भयसे वे किसी भी तरह नहीं  
 डरते हैं । ये कुछ जन अपने २ स्थानमें स्थित भयसंज्ञावाले पृथिवीका-

कस्य अरण्ये के मुनिजनने कबभी प्राप्त करते नहीं ? आ प्रकारकी  
 जिज्ञासा यथाशील प्रकार कहे छे—“जस्सिमे” इत्यादि।

वे एवं अनेक आरम्भ—अनेक आरम्भमय प्रवृत्तियोंमें धाव करने  
 आरम्भना परिग्रहोंकी जुटाव तथा आवा परिग्रहने ज्ञेयार्थों मग्न अने  
 काममोगोंमें मूर्च्छित जनी, अनेक छवोनी हिंसा करवाइय प्रवृत्तिमा व्याकुल  
 भित्त रहे छे ते अज्ञान अने प्रयत्न मोहना उदयसे जे प्रकारकी प्रवृत्तियों  
 करतां कय नहीं करता—अज्ञानेन च निभोद्विजन्तां भयकर इ जे भोगवत्त पठये  
 आ प्रकारका कबभी ते कोटिपक्ष हीते करता नहीं, आवा इष्ट करने पोत-  
 पोताना स्थानमें रही कयसंज्ञावाला पृथिवीकापिठ आदि कोटिन्द्रिय छवोने,

द्वीन्द्रियादयः पशुपक्षिमनुष्यादिपञ्चेन्द्रियाश्च ये स्वयमेव परित्रस्तास्तिष्ठन्ति तानपि हिंसितुं प्रवृत्ताः जना नरकनिगोदादिदुरन्तदुःखेभ्यः कथं चिदपि न विभ्यति, प्रत्युत तान् अन्विष्यान्विष्योपमर्द्य हृष्यन्तीति भावः ।

किन्तु यस्य गृहीतप्रव्रज्यस्य मुनेः इमे=पूर्वोक्ता मातापित्रादिसद्गजनिता वा आरम्भाः उपभोगाद्यर्थं द्रव्यभावशस्त्रैः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसोपमर्दनरूपाः शस्त्रपरिज्ञाध्ययनप्रतिबोधिताः सावद्यव्यापाराः सर्वतः=द्रव्यक्षेत्रकालभावतः सर्वात्मना=त्रिकरणात्रियोगैः सुपरिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धहेतुत्वेन विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्ति ।

यिक आदि एकेन्द्रिय जीवोंको, विल, नीड, घर बना कर उसीमें रह कर अपनी आत्माकी रक्षा करनेमें तत्पर द्वीन्द्रियादिक तथा पशु, पक्षी और मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय जीवों को, कि जो स्वयं ही डरे हुए रहते; हैं डूँड २ कर मारते हैं और आनन्द मनाते हैं ।

किंतु-जिसने भागवती दीक्षाका अङ्गीकार किया है; ऐसे मुनि इन पूर्वोक्त कुकृत्योंको अथवा माता पिता आदिके संगसे उद्भूत आरंभ और उपभोग आदिके लिये द्रव्य एवं भावशस्त्रोंसे पृथिवीकायिक, अप्कायिक तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रस जीवोंके विनाश करनेरूप शस्त्रपरिज्ञाके अध्ययनमें समझाये गये सावद्यव्यापारको, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षासे, त्रिकरण और त्रियोगोंद्वारा, ज्ञपरिज्ञा से बन्धके कारणरूप जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञासे परित्याग करते हैं ।

लोषु, राक्षस, घर बनायी ज्येमां रहींने पुपोताना आत्मान्नी रक्षा करवाभा तत्पर पंचेन्द्रिय, पशु, पक्षी अने मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय लोवोने, के के पोते न डरता रहे छे, गोती गोतीने मारे छे अने आनन्द मनावे छे

पशु ज्येज्ये भागवती दीक्षा अंगीकार करी छे, ज्येवा मुनिज्ये आ पूर्वोक्त कुकृत्योने, अथवा माता पिता आदिना संगथी उद्भूत आरंभ अने उपभोग आदिने मारे द्रव्य अने भावशस्त्रोथी पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, अने त्रसलोवोना विनाश करवाइए शस्त्रपरिज्ञाना अध्ययनमा समभववामा आवेल सावद्य व्यापारोने, द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावनी अपेक्षाथी, त्रिकरण अने त्रियोगथी, ज्ञपरिज्ञाथी अधना कारणरूप लोषुने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी परित्याग करे छे.

સ ક્રોધે ચ માને ચ માયાં ચ લોમં ચ ચતુરઃ ક્ષયાયાન્ બાન્ધ્વા=ઉદ્ગીર્ણ-  
સ્પક્ષ્વેત્યર્થઃ, મોહનીયં જ્ઞપયતિ-સંયમમાર્ગે વિહરતિ । એપઃ=અસૌ મુનિઃ કુદ્ધ=  
ક્રુટિતઃ-કર્મસન્તતેરપમૃત-છિન્નકર્મબન્ધઃ-અકર્મા વ્યાસ્પાત=તીર્થહૂરગણપરા-  
દિમિરમિહિત । પતાવૃક્ષસ્ય સયમાત્ પરિપ્રાસો ન મનવીતિ ષોષ્યમ્ । ઈતિ-એવં  
પૂર્વોક્તં વક્ષ્યમાર્ગં ચ ધ્રુવીમિ=વ્યયામિ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

જે ચતુર મુનિ ક્રોધ, માન, માયા ઓર લોભ કયાયોકા પરિત્યાગ  
કર, મોહનીય કર્મકે બિનાશ સ્વરૂપસંયમમાર્ગમેં વિહાર કરતા હૈ । એસા  
મુનિ હી તીર્થહૂર ઓર ગણધરાદિ વેષોકિ દ્વારા કર્મ સંતતિસે અલગ-છિન્ન  
-બંધબાલા-અકર્મા કહા ગયા હૈ । ઇસ પ્રકારકે મુનિકો સંયમસે ભય  
નહીં હોતા હૈ । 'ઈતિ ધ્રુવીમિ' -એસા મેં કહતા હું, આગે ઓર મી  
ઈસકે વિષયમેં કરુંગા ।

આવાર્થ-કયા કારણ હૈ કિ જિસસે સંયમી મુનિજનોકો સંયમસે ઘાસ  
નહીં હોતા હૈ ? ઇસી પ્રશ્નકા ઉપર ઇમ સૂત્રમેં સૂત્રકારને દિયા હૈ । જે કહતે  
હેં કિ જો ઝીવ ધારમ ઓર આરમમય પ્રવૃત્તિયોમેં લગલીન રહતે હેં,  
પરિગ્રહમેં જો ધગ્ન હો રહે હેં, અથવા ઉસકે જુટાનેમેં હી જો રાતવિન  
પક કરતે રહતે હૈ, વિષયોમેં ભોગેચ્છાસે જિનકા અન્ત કરણ આકાન્ત  
પના જુઆ હૈ, ઓર ઇસીલિયે જો દુસરે ઝીવોકી ચિરાપના કરનેસે નહીં  
કરતે હૈ -પ્રસ ઓર સ્થાવર તકતો મી મારકર જો આનંદ માનતે હૈ;  
એસે નિર્વયી ઝીવોકો ઇતના તક મી ક્યાલ નહીં હોતા હૈ કિ ઇમેં ઇન  
અપને કુકૃત્યો કા ફલ નરકનિગોવાદિ ગતિયોમેં જાકર ભોગના પહેગા ।

જે ચતુર મુનિ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ કયાયોનો પરિત્યાગ કરી  
મોહનીય કર્મના વિનાશરૂપ સયમમાર્ગમાં વિહાર કરે છે. એવા મુનિ  
તીર્થહર અને ગણધર આદિ દેવોદ્વારા કર્મસંતતિથી અલગ-છિન્નબંધબાળા-અકર્મા  
કહેવાયા છે. આવા પ્રકારના મુનિઓ સયમથી ભય કરવા નથી. 'ઈતિ ધ્રુવીમિ'

—આ રીતે હું હું હું આજળ પણ એના વિષયમાં કહીશ.

આવાર્થ-કયુ કાશ્વ છે કે એનાથી સયમી મુનિજનોને સયમથી ત્રાસ થતો  
નથી? આ પ્રશ્નના ઉત્તર આ સૂત્રમાં સૂત્રકારે આપેલ છે તેઓ કહે છે કે જે સ્વ  
આરભ અને આરભમય પ્રવૃત્તિઓમાં મગ્ન રહે છે, પરિગ્રહમાં જે મગ્ન કીય  
છે, અને એનામાં જે જે શત-દિન સ્થોપય્યો રહે છે વિષયોમાં લોભેચ્છથી  
જેટું અન્તાકરણ આકાન્ત બનેલું છે અને આ માટે જે બીજા લોભની વિલપના  
કરવાથી ઠસ્તો નથી ત્રસ અને રથાવરને મારીને જે આનંદ માને છે; એવા  
નિર્વયી લોભને એટલો પણ અ્યાલ નથી થતો કે અમારે આ જે કરેલા કૃત્યોનું  
ફળ નરકનિગોવાદિક ગતિઓમાં જઈને લોભવતું પડે. કેમકે અજ્ઞાન અને

ब्रवीमीतिपदप्रतिज्ञात वक्ष्यमाणमर्थमुपदर्शयति—‘कायस्स’ इत्यादि ।

मूलम्—कायस्स वियाघाए संगामसीसे वियाहिण । से हु पारंगमे मुणी। अवि ह्स्ममाणे फलगावयट्ठी कालोवणीए कंखेज्ज कालं जाव सरीरभेओ त्ति वेमि ॥ सू० ११ ॥

छाया—कायस्य व्याघातः सग्रामशीर्षं व्याख्यातः । स हु पारङ्गमो मुनिः । अपि हन्यमानः फलकापकृष्टी कालोपनीतः काङ्क्षेतकालं यावत् शरीरभेद इति ब्रवीमि ॥ सु० ११ ॥

टीका—कायस्य=औदारिक-तैजस-कर्मण-शरीरस्य भवग्राहिकर्मचतुष्टयस्य वा क्यो कि अज्ञान और प्रबल मोहके उदयसे उन्हें आरम्भ-समारंभादि कार्योंसे भय नहीं होता है, परंतु जो यह समझ चुके है कि ये आरम्भ-समारम्भ आदि कार्य भयङ्कर नरकनिगोदादिक अनर्थोंके उत्पादक है, इसलिये वे इनका त्रिकरण और त्रियोगसे द्रव्यक्षेत्रादिकी भी अपेक्षासे त्यागकर चुके हैं ऐसे मुनिजनोंको सदा ये भयप्रद ही ज्ञात होते रहते हैं। इसीलिये इन सब अनर्थोंके त्यागरूप संयमसे उन्हें अत्रास होता है, और इसीसे कपाय आदिके त्यागक्रमसे वे धीरे २ अकर्मा बनते हैं। यही तीर्थङ्करादिकोंका अभिमत है ॥ सू० १० ॥

“ब्रवीमि” इस पदसे सूचित वक्ष्यमाण विषयको सूत्रकार “कायस्स” इत्यादि सूत्रसे प्रदर्शित करते हैं—

औदारिक, तैजस और कर्मण—इन तीन शरीरों अथवा भवोपग्राहि

प्रणम भोडना उदयथी तेने आरल-समार लादि कार्योथी लय थतो नथी, परतु जे समल्ल युकेला छे के आ आरल समारल आदि कार्य लय कर नरक निगो दादि अनर्थोना उत्पादक छे, तेथी जे तेनो त्रणु करणु अने त्रणु योगथी द्रव्य-क्षेत्रादिनी पणु अपेक्षाथी त्याग करी युकेल छे, जेवा मुनिराज्जेने जे सदा लयप्रद जे जणुता रहे छे आ भाटे आ भधा अनर्थोना त्यागरूप संयमथी तेने त्रास थतो नथी अने जेथी कपाय आदिने त्यागकमथी ते धीरे धीरे अकर्मा भने छे जेवो तीर्थ कर आदिने अलिप्राय छे (सू० १०)

“ब्रवीमि” आ पदभी सूचित वक्ष्यमाण विषयने सूत्रकार “कायस्स” इत्यादि सूत्रथी प्रदर्शित करे छे

औदारिक, तैजस अने कर्मण आ त्रणु शरीरो अथवा भवोपग्राही आर

स प्रोधं च मानं च मायां च लामं च चतुरः कपायात् बान्त्वा=उद्गीर्य  
 त्यक्त्वेत्यर्थः, मोहनीय क्षपयति-संयममार्गं विहरति । एष=असौ मुनि' सृष्ट=  
 प्रुटितः-कमसन्तत्तेरपसृतः-छिन्नकर्मबन्धः-अकमा ध्यागप्यात्=तीर्थङ्करगणधरा-  
 दिभिरमिहित । एतादृशस्य संयमात् परिभासो न मनवीति बोध्यम् । इति-एवं  
 पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च प्रथीमि=कथयामि ॥ सू० १० ॥

एष चतुर मुनि प्रोध, मान, माया और लोभ कपायोका परित्याग  
 कर, मोहनीय कर्मके विनाश स्वरूपसंयममार्गमें विहार करता है। ऐसा  
 मुनि ही तीर्थङ्कर और गणधरादि देवोंके द्वारा कर्मसंततिसे अलग-छिन्न  
 -बंधवाला-अकर्मा कहा गया है। इस प्रकारके मुनिको संयमस भय  
 नहीं होता है। 'इति प्रथीमि'-ऐसा मैं कहता हू, आगे और भी  
 इसके विषयमें कहूंगा।

भावार्थ-क्या कारण है कि जिससे संयमी मुनिजनोंको संयमसे प्राप्त  
 नहीं होता है? इसी प्रश्नका उत्तर इस सूत्रमें सूत्रकारने दिया है। ये कहते  
 हैं कि जो जीव आरम्भ और आरम्भमय प्रवृत्तियोंमें लचलीन रहते हैं,  
 परिग्रहमें जो मग्न हो रहे हैं, अथवा उसके जुगानेमें ही जो रातदिन  
 एक करते रहते हैं, विषयोंमें भोगेच्छासे जिनका अन्तकरण आक्रान्त  
 पना हुआ है, और इसीलिये जो दूसरे जीवोंकी विराधना करनेसे नहीं  
 डरते हैं-प्रस और स्थावर तत्त्वको भी मारकर जो आनंद मानते हैं;  
 ऐसे निर्दयी जीवोंको इतना तफ भी क्याल नहीं होता है कि हमें इन  
 अपने कुकृत्यों का फल नरकनिगोदादि शक्तियोंमें जाकर भोगना पड़ेगा।

ये चतुर मुनि प्रोध, मान, माया અને લોભ કપાયોને પરિત્યાગ કરી  
 મોહનીય કર્મના વિનાશરૂપ સંયમમાર્ગમાં વિહાર કરે છે એવા મુનિ જ  
 તીર્થંકર અને ગણધર આદિ દેવોદ્વારા કર્મસંતતિથી અલગ-છિન્નબંધવાળા-અકર્માં  
 કહેવાયા છે એવા પ્રકારના મુનિઓ સંયમથી ભય કરવા નથી. "इति प्रथीमि"

—આ રીતે હું કહું છું આગળ પણ એના વિષયમાં કહીશ.  
 भाषार्थ-कमु क्षपयति है केनेधी संयमी मुनिजनोंने संयमधी प्राप्त बते  
 नहीं? आ प्रश्नका उत्तर आ सूत्रमां सूत्रकारे आपेक्ष है तेष्ये कहे छे के के लव  
 आरंभ અને आरंभमय प्रवृत्तियोंमां मग्न रहते छे प्रसिद्धता के मग्न होय  
 छे, અને એનામાં જ જે रात-दिन भोगेच्छा रहते छे विषयोंमां भोगेच्छाથી  
 જેનું અન્તકરણ આક્રાન્ત બનેલું છે અને આ માટે જે ખીલુ લવેની વિરાધના  
 કરવાથી ડરતા નથી પ્રસ અને સ્થાવરને મારીને જે આનંદ માને છે, એવા  
 નિર્દયી લવેને એટલો પણ ત્યાગ નથી થતો કે અમારે જા મે કરેલા કૃત્યોનું  
 ફળ નરકનિગોદાદિક શક્તિઓમાં જઈને ભોગવવું પડશે કેમકે અજ્ઞાન અને

ब्रवीमीतिपदप्रतिज्ञातं वक्ष्यमाणमर्थमुपदर्शयति—‘ कायस्स ’ इत्यादि ।

मूलम्—कायस्स वियाघाए संगामसीसे वियाहिए । से हु पारंगमे मुणी। अवि हम्ममाणे फलगावयट्ठी कालोवणीए कंखेज्ज कालं जाव सरीरभेओ त्ति वेमि ॥ सू० ११ ॥

छाया—कायस्य व्याघातः संग्रामशीर्षं व्याख्यातः । स हु पारङ्गमो मुनिः । अपि हन्यमानः फलकापकृष्टी कालोपनीतः काङ्क्षेत्कालं यावत् शरीरभेद इति ब्रवीमि ॥ सू० ११ ॥

टीका—कायस्य=औदारिक-तैजस-कर्मण-शरीरस्य भवग्राहिकर्मचतुष्टयस्य वा कयो कि अज्ञान और प्रबल मोहके उदयसे उन्हें आरंभ-समारंभादि कार्योंसे भय नहीं होता है, परंतु जो यह समझ चुके हैं कि ये आरम्भ-समारम्भ आदि कार्य भयङ्कर नरकनिगोदादिक अनर्थोंके उत्पादक हैं, इसलिये वे इनका त्रिकरण और त्रियोगसे द्रव्यक्षेत्रादिकी भी अपेक्षासे त्यागकर चुके हैं ऐसे मुनिजनोंको सदा ये भयप्रद ही ज्ञात होते रहते हैं। इसीलिये इन सब अनर्थोंके त्यागरूप संयमसे उन्हें अत्रास होता है, और इसीसे कषाय आदिके त्यागक्रमसे वे धीरे २ अकर्मा बनते हैं। यही तीर्थङ्करादिकोंका अभिमत है ॥ सू० १० ॥

“ ब्रवीमि ” इस पदसे सूचित वक्ष्यमाण विषयको सूत्रकार “ कायस्स ” इत्यादि सूत्रसे प्रदर्शित करते हैं—

औदारिक, तैजस और कर्मण—इन तीन शरीरों अथवा भवोपग्राहि

प्रणण मोडना उद्यथी तेने आरल-समार लादि कार्योंथी लय थतो नथी, परतु ने समल्ल चुकेला छे के आ आरल समारंल आदि कार्य लय कर नरक निगो-दादिक अनर्थोना उत्पादक छे, तेथी ने तेनो त्रणु करणु अने त्रणु योगथी द्रव्य-क्षेत्रादिनी पणु अपेक्षायी त्याग करी चुकेल छे, जेवा मुनिराजने जे सदा लयप्रद न् न्णुता रडे छे आ माटे आ भधा अनर्थोना त्यागइप संयमथी तेने त्रास थतो नथी अने जेथी कषाय आदिना त्यागकमथी ते धीरे धीरे अकर्मा अने छे जेयो तीर्थ कर आदिना अलिप्राय छे (सू० १०)

“ ब्रवीमि ” आ पदथी सूचित वक्ष्यमाण विषयने सूत्रकार “ कायस्स ” इत्यादि सूत्रथी प्रदर्शित करे छे

औदारिक, तैजस अने कर्मणु आ त्रणु शरीरो अथवा भवोपग्राही आर



व्यापातः=आत्यन्तिकविनाशः संग्रामशीर्षम्=अष्टविधकर्मवैरिसंग्रामशीर्षम् व्या-  
 ख्यातः=शीर्षकुरैः कथितः । यथा=द्रव्यसंग्रामश्चिरसि क्षत्रं पराञ्चित्येऽप्यन्तर्भोगान्  
 धीरः प्राप्नोति, एवं भास्संग्रामश्चिरसि कर्मवैरिविनाशनाद् धीरः संयमी अनन्त-  
 केबलज्ञानकेबलदर्शनं प्राप्नोतीति भावः । स हु=स एव मुनिः पारंगमः ज्ञानादि  
 पञ्चविधाचारतरणिसमाख्यः संसारसागरपारगामी भवति । किञ्च स परीपरी-  
 पसोर्हिन्यमानोऽपि=उपद्रुतोऽपि फलकावकृष्टी=अवकृष्टमस्यास्वीत्यवकृष्टी फलकफ-  
 वकृष्टी फलकावकृष्टी, यथा फलकं वास्यादिभिश्चमयपार्श्वतस्तप्ट घटितं सत् एव  
 भवति, अस्फटिष्टं वा भवति, तथा साधुरपि सवासाभ्यन्तरेण तपसा निष्क-

चार अघातिया कर्मोके आत्यन्तिक क्षयको, तीर्षकुरैनि संग्रामशीर्ष,  
 अघात्-अष्टविध कर्मोके साथ संग्रामका अग्रभाग कहा है । जैसे  
 द्रव्यसंग्रामके अग्र भागमें शत्रुको जीत कर धीर पुरुष अपने इच्छित  
 भोगोंको प्राप्त करता है, इसी तरह भावसंग्रामके अग्र भागमें कर्म-  
 रूपी वैरियोंके विनाशसे धीर संयमी अनन्त केबलज्ञान अनन्त केबलदर्शन  
 को प्राप्त कर लेता है । ऐसा ही मुनि ज्ञानाचार आवि पांच प्रकारके  
 आचाररूपी नौका पर सवार होकर संसाररूपी समुद्रका पारगामी होता  
 है । परीपह और उपसर्गोंसे उपद्रुत होता हुआ भी यह फलककी तरह  
 अवकृष्टी होता है । अवकृष्ट जिसके है वह अवकृष्टी है, फलकके तुल्य जो  
 अवकृष्टी है वह फलकावकृष्टी है । जैसे फलक-काष्ठका पाटिया कुल्हाड़ी  
 धौरेह इधियारोंसे आजूपाजूमें छीले जाने पर पतला हो जाता है,  
 उसी तरह साधु भी पाप और अभ्यन्तर तप तपनेसे कूशाशरीर-दुर्बल  
 और रागद्वेष रहित हो जाता है । अथवा-जैसे बड़ी फलक, वासी (भसोला)

अघातिया कर्मोका आत्यन्तिक क्षयने तीर्षकुरैनि संग्रामशीर्ष, अघात्-अष्टविध  
 कर्मोका साथ संग्रामका अग्रभाग कहेल छे जे शीते द्रव्यसंग्रामना  
 अग्र भागभां यजुने छली धीर पुरुष पावाना इच्छित भोगाने प्राप्त  
 करे छे जेही शीते भावसंग्रामना अग्र भागभां कर्मरूपी वैरियोना  
 विनाशशी धीर संयमी अनन्त केबलज्ञान, अनन्त केबल दर्शनने प्राप्त करी ले  
 छे जे जे शीते मुनि ज्ञानाचार आवि पांच प्रकारका आचाररूपी नौका उपर  
 सवार भई संसाररूपी समुद्रने पार वतस्वार भने छे परिष्कृत भने उपसर्गोकी  
 उपद्रव (मुद्रा) भया छतां पजु ते भक्तभर छे जेही शीते फलक-काष्ठयजु  
 पाटीयु कुवायभी के जोला इधियारोकी छेलवा पातजु भई अव छे,  
 जे जे शीते साधु पजु पाप और अदरशी तप तपतां तेनु शरीर दुबल भजे  
 राजद्वेषरहित भई अव छे जेभ पाटीयु कुवाय वि छेलवाकी पातजु भने छे

देहस्तनुदुर्बलशरीरां रागद्वेषरहितश्चेति । यद्वा—यथा फलकमुभयतो वास्यादिनाञ्च-  
कृष्यमाणमवकृष्टं च सत् शयनोपयोगि फलकं लेखनोपयोगि पट्टिकाख्यं वा संपद्यते  
तथा मुनिर्वाह्याभ्यन्तरेण तपसा वहिरन्तश्चात्मानमवकर्षति, तत्रानुकूलप्रतिकूलपरिप-  
होपसर्गैर्विहिः शरीरमन्तस्तु कर्म अवकृष्यमाणं सदात्माञ्चकृष्टो भवति, वास्यादिशस्त्रेण  
तक्ष्यमाणः कशावेत्रादिना ताड्यमानो वा कर्मत्रोटनान्नो निर्वेदं प्राप्नोति ।

यद्वा—‘ फलकावस्थायी ’ इति छाया । दुर्बचनवास्यादिभिस्तक्ष्यमाणोऽपि

कुल्हाडी वगैरहसे छीले जानेपर और घिसे जानेपर पतला और चिकना  
हो जाता है और शयन करनेके काममें तखतरूपसे और लिखने पढ़नेके  
काममें पट्टीरूपसे आता है, उसी प्रकार मुनि बाह्य और आभ्यन्तर तपोद्वारा  
बाहर और भीतरसे अपने आपको कृश कर देता है, अनुकूल, प्रतिकूल  
परीषह और उपसर्गों के जीतनेसे बाहरमें उसका शरीर और भीतरमें  
कर्मोंके बंधन शिथिल हो जाते हैं, ऐसी अवस्थामें वह आत्मा उन  
कर्मोंके बंधनसे शिथिल—हल्का हो जाता है । पहिले कर्मोंके बंधनका  
जितना भार उस पर था उसके शिथिल होने पर आत्मा भी पहिलेकी  
अपेक्षा उस भारके शिथिल होते ही स्वयं अपने आपको विना बोझके  
अनुभव करने लगता है । क्रम २ से जब वह कर्मोंका शिथिल हुआ बंधन  
बिलकुल नष्ट होने लगता है तब वह आत्मा कर्मोंके दूटते समय कुल्हाडी  
आदि शस्त्रसे काटे जाने पर या कशा—कोडा और वेत्र आदिसे ताडित  
होने पर भी खेदखिन्न नहीं बनता है ।

अथवा—“फलगावयट्टी” की संस्कृत छाया ‘फलकावस्थायी’ भी होती

अने धसवाथी लीसु थाय छे अने सूवा भाटे पाटना इपमां अने लणवा—पढवाना  
कामे पट्टीइपमा इेरवाय छे, अे ज रीते मुनि भाह्य अने अहरना तपथी पोते  
पोतानी नतने दुअणी अनापी दे छे अनुकूल प्रतिकूल परिषड अने उपसर्गने लतवाथी  
अहारमा अेतु शरीर अने अहरमा कर्मोनां अ धन छुटी जतां अेना आत्मा  
डडके अनी नय छे प्रथम कर्मोना अ धनने नेटवे। लार तेना उपर डते ते  
हर थता अने अहारना अ धन पणु डटी जता स्वय पोते पोताने जेअरडित  
माने छे कम कमथी कर्मोनाे जेअ डडके अने छे, अने अ धन तुटता तुटता  
साव निर्भूण अने छे, त्पारे आत्मा भीली डडे छे अेदनु नामनिशान सरणु  
रडेतुं नथी.

अथवा—“फलगावयट्टी ”नी संस्कृत छाया फलकावस्थायी पणु थाय छे. अेना

यः कपायामाषेन फलकवद्वचलोऽवतिष्ठते तच्छ्रीलम्ब स फलकापस्यायी—वासीचन्द  
नकल्पः, चास्मा तन्म्यते चन्दनेन याऽनुलिप्यते, उभयत्र सममाष इत्यर्थः ।

यद्वा—‘ फलकापद्वयी ’ फलं कर्मक्षयरूप तद्वच फलकं तेनाऽऽपदि संसार  
भ्रमणरूपायामर्षः प्रयोजन फलकापद्वयं, स विद्यते यस्यासीं फलकापद्वयी—संसार  
भ्रमणरूपायामापदि कर्मक्षयरूपफलाभिलाषीत्यर्थः ।

तथा कासोपनीत — फलक=मरणकाल उपनीत=प्रज्ञाविपरीकृतो, येन स  
है । इसका अर्थ इस प्रकार है कि दुर्बलरूपी कुठारसे छेदा गया भी  
यह मुनि कषायरहित होनेसे फलककी तरह घिना किसी विकृतिके स्थिर  
चित्त रहता है । इसे क्या बसोला क्या चन्दन ? दोनोंमें समता रहती है ।  
चाहे कुल्हाडीसे यह काट दिया जावे तो इसे उसमें रोप नहीं, और  
चन्दनसे लिप्त कर दिया जावे तो उसमें उसे इर्ष नहीं, अर्थात्—उस  
दोनोंमें समभाव रहता है ।

अथवा—“ फलकापद्वयी ” यह भी संस्कृत छाप “ फल-  
काषयद्वी ” जब इस पदकी मानी जावेगी, तब इसका अर्थ इस  
प्रकारसे होगा कि कर्मक्षयरूप जो फल बन्नी हुआ फलक, उससे  
संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें जो मुनि प्रयोजनवाला है वह  
फलकापद्वयी है । मुनिजन संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें कर्मक्षयरूप  
फलके अभिलाषी होते हैं । मुनिको जब अपना मरणकाल ज्ञात हो जावे  
तब वह १२ वर्षकी संलेम्पनासे क्रमशः शरीरको कृश करता हुआ मरत

अथ जे प्रकारने छे के दुर्बलरूपी कुठारकी छेदवामा आवेत्त तब जे मुनि  
कषायरहित होवाधी चाटीवानी माइत्त के छेदपव प्रकाशनी विद्यति विना स्थिरचित्त रहे  
छे जेने वासी (वासदी) गु ? जेने चन्दनसु ? जेनेमां समता रहे छे, जेने  
कुल्हाडी तेने आपवामा आवे तो फल तेने सुस्ते नधी, जेने चन्दनकी दीप  
क्षयरूप आवे तो तेने चर्ष नधी, जेनेमां समभाव रहे छे

अथवा—“ फलकापद्वयी ” आ पव संस्कृत छाप “ फलकाषयद्वी ” ल्कारे  
आ पदनी मानवामा आवेथे त्पारे जेने अथ जे प्रकार चरो के कर्मक्षयरूप  
जे हूण तेज यमु इत्त तेनाधी संसार-परिभ्रमण-रूप आपत्तिमां जे मुनि  
प्रयोजनवाला छे ते इत्तकापद्वयी छे मुनिजन संसार परिभ्रमणरूप आपत्तिमा  
कर्मक्षयरूप इजना अभिलाषां होथ छे, मुनिने ल्कारे पीताना मरणकालने समथ  
अर्थात् आवे त्पारेते १२ वर्षनी संलेम्पनाधी कर्म करे शरीरने मसावता मसावता

तथोक्तः—ज्ञातस्वमरणकालः साधुः, द्वादशवार्षिक्या संलेखनया क्रमशः शरीर संलिख्य  
भक्तप्रत्याख्यानेद्भितमरणपादपोपगमनान्यतममरणेन यावच्छरीरभेदः=शरीरस्य  
भेदः स्वात्मनः पार्थक्य यावद्भवति तावत् कालं=मरणकालम् काङ्क्षेत=इच्छेत्  
शरीरविधूननं कुर्यादित्यर्थः । एवं भक्तप्रत्याख्यानादिभिः कृत्स्नकर्मक्षयं

प्रत्याख्यान, इद्भितमरण और पादपोपगमन; इनमें से किसी एक मरणसे  
अपनी आत्मासे जब तक शरीरकी पृथक्ता नहीं हो जाती तब तक  
शरीरको कृश करता रहे, समाधिमरणसे ही शरीरको छोड़े ।

भावार्थ—औदारिक आदि शरीरत्रयका, अथवा भवोपग्राहि कर्म-  
चतुष्टयका अभाव होते ही कर्मोंके साथ लगे हुए युद्धका अन्त हो जाता  
है । इस अवस्थामें संग्राममें विजयश्री पानेवाले वीरकी तरह वह आत्मा  
भी अनन्त ज्ञान और अनन्तदर्शनकी विजयपताका फहराता हुआ पंच  
प्रकारके आचारोंकी पूर्णतासे मुक्तिका वरण कर लेता है । परीषह  
और उपसर्ग मुक्ति प्राप्तिकी तैयारी करनेवालेके लिये बाधक नहीं बनते  
हैं । हां, इनसे इतना अवश्य होता है कि वह आत्मा यदि इनका सम-  
भावसे सामना करता है तो मुक्ति प्राप्तिके लायक बाह्य और आभ्य-  
न्तर तपोंको तपता हुआ, बाह्यमें कृशगात्र एवं भीतर शिथिल कर्मबंध-  
वाला बन जाता है । इस अवस्थामें आत्मा कर्मोंके भारसे हल्का बन

लक्तप्रत्याख्यान, धि गितमरण्ये अने पादपोपगमन आभाथी डोड अेक मरण्यथी पोताना  
आत्माथी न्यां सुधी शरीरनी पृथकता नथी थती, त्यां सुधी शरीरने कृश करता  
रडे, अने समाधिमरण्यथी शरीरने छोडे

भावार्थ—औदारिक आदि शरीरत्रयने अथवा भवोपग्राही आर कर्मोने  
अभाव थता अ कर्मोनी साथे लागेला युद्धने अत थध न्ये छे आ अवस्थाभां  
संग्रामभा विजयश्री भेजवनार वीरनी भाङ्क ते आत्मा पण्य अनन्तज्ञान अने  
अनन्तदर्शननी विजयपताका दाडेरवता पाय प्रकारना आचारोनी पूर्णताथी  
मुक्तिने भागे पडेथे छे परिषह अने उपसर्ग मुक्ति प्राप्तिनी तैयारी करवा-  
वाणा भाटे बाधक अनता नथी डा, अथी अेटलु अवश्य थाय छे ते आत्मा  
कहाय तेने समभावथी सामने करे तो मुक्ति प्राप्तिने लायक बाह्य अने  
अदरना तपोने तपता तपता णडारभा कृशशरीर अने अदरथी शिथिल-कर्म-  
ण धवाणा अनी न्ये छे आ अवस्थाभा आत्मा कर्मोना लारथी डलडे अनी  
पोते पोताने डलडे अनुभव करवा लागे छे नेवी रीते दाकडानुं पाटीयु

विधाय महापुरुषः शिवमचत्मरुजमनन्तमज्ञयमव्याषापमपुनरतृचिसिदिगतिनामधेयं  
स्यानं समाप्नोसीति भाषः ॥ सू० ११ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

स्वजन—कर्म—शरीर—विधूननं,  
श्रितयगौरव—धूननमात्मनः ।

इह परीपहधूननमन्ततो,—

निजगदे गणनाथसुधर्मणा ॥ १ ॥

॥ इतिथी—विश्वविरम्यात—जगद्वल्लभ—प्रसिद्धवाचक—पञ्चदशभाषाकस्मिन्सल्लि-  
कलापालापक—प्रविशुद्गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक—वादिमानमर्दक—ब्राह्-  
उग्रपति—कोल्हापुरराजमदक्ष—“ जैनशास्त्राचार्य ”—पद्मपित-  
कोल्हापुरराजगुरु—बालग्रन्थचारि—जैनाचार्य—जैनधर्मविधाकर-  
पूज्य—श्रीघासीलाल—प्रतिभिरचितायाम् आचाराङ्घ्रि-  
स्याऽऽचारधित्वात्मपिटीकायां पूषारस्य पठ-  
मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ६ ॥

अपने आपको इतका अनुभव करने लगता है। जिस प्रकार काष्ठस्य  
पाटिया आजूयाजूसे व्यर्थके अथयव छिल जाने पर शयनादिक कार्योंमें  
उपयोगी बन जाता है उसी प्रकार तपश्चर्या आदिसे आत्माके ऊपरका  
कर्मरूपी व्यर्थका कचरा जब निकल जाता है तो यह भी मुक्तिका प्राप्ति  
में उपयोगी बन जाता है ।

मुनिको जब अपना मरणकाल मात्सूम होजावे तो उसका कर्तव्य  
है कि वह १२ वर्षकी संछेखनासे शरीरको कूश कर भक्तप्रस्थाक्यान  
आदि किसी भी प्रकारसे अपने शरीरका परित्याग करे ॥सू०११॥

आनुआनुभी ऐतद्यं न्याथी शयनादिधर्मोभां उपयोगी वनी न्यथ उ न्ने  
प्रकारे तपश्चर्या न्याथी न्यत्माना उपरना इग्रीथी नकागि कवशे न्याथे निवनी  
न्यथ उ त्पारे को पक्ष मुक्तिनी प्रसिभां उपयोगी वनी न्यथ उ

मुनिने न्याथे पोतानी भरणकाल मात्सूम भव न्यथ त्पारे तेषु कर्तव्य  
उ इ ते १२ वर्षनी संछेखनाथी शरीरने कूश करी उतव प्रस्थाक्यान न्याथे कोष  
पक्ष प्रकारथी पोताना शरीरने त्पान करे (सू०११)

अध्ययनान्तर्गतविषयोका उपसंहार

स्वजन-संग शरीर-ममत्वके

त्रितय गौरवके अरु कर्मके।

कथन है इसमें परिहार का

विधि परीषहके जयकी कही ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके धूतनामक छद्म अध्ययनकी आचार-  
चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ६ ॥

अध्ययनान्तर्गत विषयोनो उपसंहार—

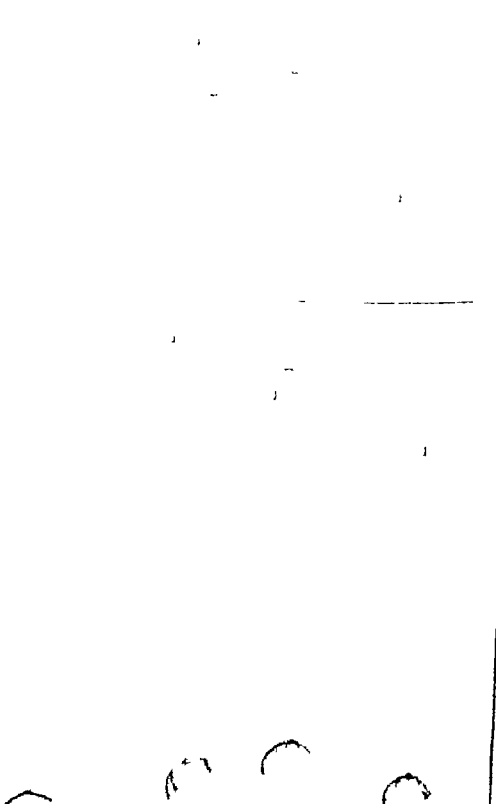
स्वजन-संग शरीर-ममत्वना,

त्रितय-गौरवना सहु कर्मना,

वणि परीषहना परिहारने,

अहिं कही लगवत गण्ठाधिचे.

आ आचाराङ्गसूत्रना धूत नामना छद्म अध्ययननी आचार-  
चिन्तामणि-टीकानो गुजराती अनुवाद संपूर्ण ॥ ६ ॥



। अथ विमोक्षाख्यस्य अष्टमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः ।

अथ धृताख्यपण्डाध्ययनानन्तरं क्रमप्राप्तमहापरिज्ञाख्यसप्तमाध्ययनस्यावसरः, किन्तु तस्य विच्छेदात्सम्प्रति तन्नोपलभ्यते, यतोऽत्र यावच्छरीरभेदस्तावत् संयमं परिपालयन् भक्तप्रत्याख्यानपूर्वकं पण्डितमरणेन मुनिः कालमभिकाङ्क्षेदिति धृताध्ययने 'कखिज्ज कालं जाव शरीरभेओ' इत्यन्तिमसूत्रेण प्रोक्तम् । तदनु महापरिज्ञानामकं सप्तममाध्ययनम् । शास्त्रस्य सकलहेयोपादेयविषयप्रतिपादकत्वेन तदध्ययनं हेयनानाविधचमत्कारजनकविषयपरिपूरितमासीत् । एतदध्ययनमधीत्य समा-

॥ विमोक्षनामक आठवां अध्ययनका पहला उद्देश ॥

धृत नामक छठे अध्ययनके बाद क्रमप्राप्त महापरिज्ञा-नामक सातवें अध्ययनका अवसर था, किन्तु विच्छेद हो जानेसे वह इस समय उपलब्ध नहीं है । जब तक शरीरका भेद ( विनाश ) है, तब तक संयमकी पालना करता हुआ मुनि काल-समाधिमरणरूप कालकी चाहना करता रहे, यह बात धृत अध्ययनमें " कखिज्ज कालं जाव शरीरभेओ " इस अन्तिम सूत्रसे कही गई है, उसीके पीछे महापरिज्ञानामक सातवां अध्ययन है ।

यह अध्ययन अनेक प्रकारके चामत्कारिक विषयोंसे, जो हेयकोटिमें माने गये हैं; परिपूरित था । शास्त्रोंमें प्रत्येक विषयका, चाहे वह हेय हो या उपादेय हो; वर्णन होता है । इस अध्ययनको पढ़ कर और सुन कर

विमोक्ष नामना आठवां अध्ययनको पढ़ेले उद्देश.

धृत नामना छठा अध्ययन पछी महापरिज्ञा नामना सातवां अध्ययनको अवसर हुतो पणु तेनो विच्छेद थई नवाथी ते आ समये प्राप्त थई शक्रे तेम नथीः न्यां सुधी शरीरने लेद (विनाश) छे, त्यां सुधी सयमनी पालना करता मुनि काल-समाधिमरणरूप कालनी आहना करता रहे आ बात धृत अध्ययनमा " कखिज्ज काल जाव शरीरभेओ " आ अन्तिम सूत्रथी कहेवामा आवेल छे, जे पछी महापरिज्ञा नामनु सातसु अध्ययन छे

आ अध्ययन, अनेक प्रकारना चमत्कारिक विषयोथी-जे हेय कोटीमां मानवामां आवेल छे तेनाथी-परिपूर्णा हुतु शास्त्रोमा प्रत्येक विषयनु, आडे ते हेय होय अथवा उपादेय होय, वर्णन होय छे आ अध्ययनने वाचीने अने सांख्यीने महा-



कर्म्यं च महापुरुषास्त्वदुक्तविद्यां ज्ञपरिज्ञया कर्ममन्वकारिणीं ज्ञाता मत्प्राप्त्यानपरिज्ञया तां परिहृत्य च कर्मपूजनपूर्वकं स्वात्मकल्याणमकार्षुः ।

तत्र जल-स्थलाऽऽकाश-पातालादिविहरिण्यः परकायप्रवेशादिका सिंहाभ्यामादिशरीरधारणपूर्वकस्वस्वरूपपरावर्तनादिस्वमात्राभारतिन्यो विद्या आसन् । श्रूयते च गुरुपरम्परया-स्नात्त्रिप्यमभ्यापयन् कश्चिदाचार्य एकदा विचारभूमिं गतवान्, तदनु स क्षिप्यो वास्यचापश्येन महापरिज्ञाऽऽभ्ययनेऽभिहितायाः सिंहवतनुधारणविद्याया उपयोगं कुर्वन् तत्प्रभावेण स सिंहरूपो जातां, परन्तु तत्परावर्तनविधानं महापुरुषो ने हस अभ्ययनमें वर्णित विद्याओं को ज्ञपरिज्ञासे कर्मोंके पंथ करानेवाली जान कर मत्प्राप्त्यानपरिज्ञासे उनका परिहार कर कर्मपूजनपूर्वक अपनी आत्माका कल्याण किया है ।

हस अभ्ययनके अद्वर जलमें, स्थलमें, आकाशमें, पातालमें विहार करानेवाली विद्याओंका, परशरीरमें प्रवेश करानेवाली विद्याओंका, और सिंहभ्याम आदिका शरीर धारणपूर्वक अपने निजरूपका परिवर्तन करानेवाली विद्याओंका वर्णन था । गुरुपरपरासे ऐसा सुना जाता है कि कोई एक आचार्य महाराज यह अभ्ययन एक समय अपने शिष्यको वहा रहे थे। शौचक्रिया की बाधा होने पर जब ये बाहर शौचनिवृत्तिके लिये गये तो शिष्यने बाल-सुलभ बलबलता से इस महापरिज्ञाके अभ्ययनमें कथित सिंहशरीरको धरानेवाली विद्याका उपयोग किया और वह उसके प्रभा-

पुरुषोक्ते ज्ञे अभ्ययनमां वसुविधी विद्याज्ज्ञाने ज्ञपरिज्ञाधी कर्मोना ज्ञ च कश्चापानी व्यष्टीने मत्प्राप्त्यानपरिज्ञाधी ज्ञेने परिहार करी कर्मपूजनपूर्वकं धेताना आत्मानु कल्याणं कथुं ॐ

आ अभ्ययनमां जगमां स्थलमां, आकाशमां, पातालगमा विहार कश्चापानी विद्याज्ज्ञानु, परशरीरमा प्रवेश कश्चापानी विद्याज्ज्ञानु ज्ञने सिद्धं, बाह्य ज्ञानिया शरीर धारण करीने धेताना निजरूपमा परिवर्तन कश्चापानी विद्या ज्ज्ञानु वपुन तदनु शृङ्गपरम्पराधी ज्ज्ञेनुं सांख्यज्ज्ञु ॐ के कोष ज्ज्ञेक अभ्यास मद्भाशज्ज्ञे अभ्ययन धेताना शिष्यने ज्ज्ञेक समय शीघ्रवी वहा इता, आ वभते शौचक्रियानी बाधा यतां ज्ज्ञेने तेज्ये शौचनिवृत्ति माटे जाडेर जथा पातागधी शिष्ये भागमुल्लभ ज्ज्ञेणताधी ज्ज्ञे मद्भापरिज्ञा अभ्ययनमां कहेत सिद्ध शरीरने धारण कश्चापानी विद्याने उपयोम कथो, ज्ञने ते सिद्धना स्वर्गमां देवर्थां ज्ज्ञे सिद्धस्वर्गज्ज्ञु परिवर्तन कश्चापानी विद्याना अभ्ययनधी व्यप-

ध्ययनेन तद्रूप एव स्थितः किंकर्तव्यविमूढो विचारभूमेरागतेनाऽऽचार्येण विलो-  
कितः, परमकरुणया पुनः स्वस्वरूपं प्रापितः स्वचेतसि चिन्तितं च-पञ्चमारकेऽस्या-  
ऽध्ययनेन लाभस्तु दूरापेत एव; प्रत्युत महाननर्थो भावीति । तत आरभ्यैष  
तस्याध्यापनक्रिया लुप्तप्रायाऽभूत् । तेनैव हेतुना पुस्तकारूढसमयेऽप्याचार्यवयैरे-  
तदध्ययनं न सङ्गृहीतम् । तस्मादिदं विच्छेदमापेति युक्तमुत्पश्यामः ।

अथाऽष्टमं विमोक्षाध्ययनं प्रारभ्यते । तत्र विमोक्षः—वि=विशेषेण सर्वथा मोक्षः=  
दूरीभवनं कर्मभ्यः कर्मबन्धकारणेभ्यश्च, पृथग् भूत्वा पण्डितमरणेन शरीरपरित्यागं  
वसे सिंहके स्वरूपमें आ गया । वह सिंहस्वरूपके परावर्तन करानेवाली  
विद्याके अध्ययनसे अपरिचित था, इसलिये उससे छूट कर अपने अस-  
ली रूपमें नहीं आ सका । शौचसे निवृत्त होकर जब आचार्य महाराज  
आये तब उन्होंने इसे सिंहरूपमें देखा, देखकर उसके ऊपर उन्हें दया  
आई और उसे सिंहके रूपसे मुनिरूपमें परिवर्तित कर दिया । बादमें  
आचार्यने विचार किया कि पंचमकालमें इस अध्ययनके पठनसे लाभकी  
तो कोई आशा ही नहीं है; उल्टा महान् अनर्थ ही होगा । अतः उस  
समयसे लगाकर ही इस अध्ययनको लुप्त कर दिया । इसी कारणसे  
शास्त्रोंकी रचनाके समयमें भी आचार्योंने इस अध्ययनका संग्रह नहीं  
किया, इसीलिये इसका विच्छेद हुआ ।

अब विमोक्षाध्ययन नामका आठवां अध्ययन प्रारम्भ होता है ।  
इसमें 'विमोक्ष' शब्दका अर्थ इस प्रकार है—वि-सर्वथा मोक्ष-दूर होना

रिचित होवार्थी ऐशिव्य पोताना असल स्वइपने प्राप्त करी शकेल नडि शीचथी  
निवृत्त थई न्यारे आचार्य महाराज आव्या त्यारे तेमहे शिव्यने सिङ्गना इपमां  
जेथो, अने हया आवतां सिङ्गना इपथी मुनिइपमा परिवर्तन कराव्यु. आ पछी  
आचार्ये विचार कर्यो के पाचमा काणमा आ अध्ययनना पठनथी लालनी तो  
कोई आशा नथी, पणु ऐथी विपरीत महाअनर्थनीज स भावना छे आथी ते समये  
तेमहे ऐ अध्ययनने लुप्त करी हीथो आ कारणथी शास्त्रोनी रचनाना समयमा पणु  
आचार्योऐ ऐ अध्ययननो सग्रह करेले नथी, आ अरहे ऐना विच्छेद थयेले छे

हुवे विमोक्षाध्ययन नामना आठमा अध्ययननो प्रारंभ थाय छे.  
आमा 'विमोक्ष' शब्दना अर्थ आ प्रकारे छे—वि-सर्वथा, मोक्ष-  
दूर थवुं अर्थात् कर्म अने जेना अधना कारणथी पृथक् थई

कर्म्यं च महापुरुषास्तदुक्तविद्यां प्रपरिज्ञया कर्मन चकारिणीं ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरि  
ज्ञया तां परिहस्य च कर्मधूननपूर्वकं स्वात्मकल्याणमकार्षुः ।

तत्र जल-स्थलाऽऽकाश-पातालादिविहरणरूपाः परकायप्रवेशादिका सिं-  
ध्याघ्रादिशरीरधारणपूर्वकस्वस्वरूपपरावर्तनादिस्वभावाभावार्तिन्यो विद्या आसन् ।  
ध्रुयते च गुरुपरम्परया-स्वशिष्यमध्यापयन् कश्चिदाचार्य एकदा विचारभूमिं गतवान्,  
तदनु स शिष्यो वाच्यचापरयेन महापरिज्ञाऽऽध्ययनेऽभिरिहायाः सिद्धत्वभारण  
विद्याया उपयोगं कुर्वन् तस्ममावेव स सिद्धरूपो जातः, परन्तु तत्परावर्तनविद्यार्त  
महापुरुषो ने इस अध्ययनमें वर्णित विद्याओं को प्रपरिज्ञासे कर्मके  
बंध करानेवाली जान कर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका परिहार कर कर्म  
धूननपूर्वक अपनी आत्माका कल्याण किया है ।

इस अध्ययनके अंदर जलमें, स्थलमें, आकाशमें, पातलमें बिहार करा-  
नेवाली विद्याओंका, परशरीरमें प्रवेश करानेवाली विद्याओंका, और सिंह  
घ्याघ्रादिका शरीर धारणपूर्वक अपने निजरूपका परिवर्तन करानेवाली  
विद्याओंका वर्णन था । गुरुपरपरासे ऐसा सुना जाता है कि कोई एक  
आचार्य महाराज यह अध्ययन एक समय अपने शिष्यको पढा रहे थे।  
शौचक्रिया की बाधा होने पर जब ये बाहर शौचनिवृत्तिके लिये गये  
तो शिष्यने पाल-सुलभ श्वसलता से इस महापरिज्ञाके अध्ययनमें कथित  
सिंहशरीरको धरानेवाली विद्याका उपयोग किया और यह उसके प्रमा-

पुष्टोन्ने के अध्ययनमां वसुविधी विद्याओने प्रपरिज्ञाधी कर्मोना वध करवाचरणी  
जातीने प्रत्याख्यानपरिज्ञाधी ओने परिहार करी के म धूननपूर्वक पोताना आत्मगत  
कल्याण करुं छे

आ अध्ययनमां वजमां, स्थलमां, आकाशमां, पातलमां विहार करवाचरणी  
विद्याओनु परशरीरमां प्रवेश करवाचरणी विद्याओनु अने सिंह, वाघ  
आदिना शरीर धारण करीने पोताना निवृत्तना परिवर्तन करवाचरणी विद्या  
ओनु वसुन छतु प्रपरिज्ञाधी ओनु साधुओ छे के केतु ओके अन्वय  
महापुरुष के अध्ययन पोताना शिष्यने ओके समय शीघ्रनी रक्ष्य दत्ता आ  
वधते शौचक्रियानी बाधा यथां ओकरे तेओ शौचनिवृत्ति भाटे जाठेर तथा  
पातलधी शिष्ये जागमुल्लभ कल्याणमां के महापरिज्ञा अध्ययनमां कठोर  
सिद्ध शरीरने धारण करवाचरणी विद्याने उपयोग कर्मो, अने ते सिद्धता स्वरूपमा  
इसबाध जये सिद्धस्वरूप परिवर्तन करवाचरणी विद्याना अध्ययनधी अप

ध्ययनेन तद्रूप एव स्थितः किंकर्तव्यविमूढो विचारभूमेरागतेनाऽऽचार्येण विलो-  
कितः, परमकरुणया पुनः स्वस्वरूपं प्रापितः स्वचेतसि चिन्तितं च-पञ्चमारकेऽस्या-  
ऽध्ययनेन लाभस्तु दूरापेत एव; प्रत्युत महाननर्थो भावीति । तत आरभ्यैष  
तस्याध्यापनक्रिया लुप्तप्रायाऽभूत् । तेनैव हेतुना पुस्तकारूढसमयेऽप्याचार्यवयैरे-  
तदध्ययनं न सद्गृहीतम् । तस्मादिदं विच्छेदमापेति युक्तमुत्पश्यामः ।

अथाऽष्टमं विमोक्षाध्ययनं प्रारभ्यते । तत्र विमोक्षः—वि=विशेषण सर्वथा मोक्षः=  
दूरीभवनं कर्मभ्यः कर्मबन्धकारणेभ्यश्च, पृथग् भूत्वा पण्डितमरणेन शरीरपरित्यागं  
वसे सिंहके स्वरूपमें आ गया । वह सिंहस्वरूपके परावर्तन करानेवाली  
विद्याके अध्ययनसे अपरिचित था, इसलिये उससे छूट कर अपने अस-  
ली रूपमें नहीं आ सका । शौचसे निवृत्त होकर जब आचार्य महाराज  
आये तब उन्होंने इसे सिंहरूपमें देखा, देखकर उसके ऊपर उन्हें दया  
आई और उसे सिंहके रूपसे मुनिरूपमें परिवर्तित कर दिया । बादमें  
आचार्यने विचार किया कि पंचमकालमें इस अध्ययनके पठनसे लाभकी  
तो कोई आशा ही नहीं है; उल्टा महान् अनर्थ ही होगा । अतः उस  
समयसे लगाकर ही इस अध्ययनको लुप्त कर दिया । इसी कारणसे  
शास्त्रोंकी रचनाके समयमें भी आचार्योंने इस अध्ययनका संग्रह नहीं  
किया, इसीलिये इसका विच्छेद हुआ ।

अब विमोक्षाध्ययन नामका आठवां अध्ययन प्रारम्भ होता है ।  
इसमें 'विमोक्ष' शब्दका अर्थ इस प्रकार है—वि-सर्वथा मोक्ष-दूर होना

रिचित होवार्थी ऐ शिष्य पोताना असल स्वइपने प्राप्त करी शकेल नडि शीष्यथी  
निवृत्त थई न्यारे आचार्य महाराज आवा त्यारे तेमणे शिष्यने सिंढना इपमां  
जेथो, अने हया आवता सिंढना इपथी मुनिइपमा परिवर्तन कराव्यु आ पंछी  
आचार्ये विचार कर्यो डे पांचमा काणमा आ अध्ययनना पठनथी लालनी तो  
कोई आशा नथी, पण ऐथी विपरीत महाअनर्थनीज सलावना छे आथी ते संभये  
तेमणे ऐ अध्ययनने लुप्त करी हीथो आ कारणथी शास्त्रोनी रचनाना समयमा पणु  
आचार्येऐ ऐ अध्ययननो सग्रह करेले नथी, आ अरणे ऐनो विच्छेद थयेले छे.

हुवे विमोक्षाध्ययन नामना आठमा अध्ययननो प्रारंभ थाय छे.  
आमा 'विमोक्ष' शब्दनो अर्थ आ प्रकारे छे—वि-सर्वथा, मोक्ष-  
दूर थवुं अर्थात् कर्म अने जेना बधना कारणथी पृथक् थई

इत्यर्थः। तत्प्रतिपादकमिदमध्ययनमपि विमोक्षसम्बन्धेन व्यबह्रियते। अस्य धृताध्ययनेन सहायं परम्परासम्बन्धः—तत्र स्वकर्मशरीरोपकरणशक्तिरससाक्षात्गौरवप्रियोपसर्गमम्मनानां विधूननेन मुने सङ्गरहित्यं प्रतिपादितम्, तद्विधूननं तदैव सफलं स्यात् यद्यन्तकाळे सम्यग् नियामं जायेतेति तदर्थमस्याध्ययनस्यारम्भः ।

अथवा—पठे शब्दादिविषयसङ्गर्जितेन मुनिनाऽनेकपरीपक्षोपसर्गाः सहनीया इत्यभिहितम् । एवमत्र मारणान्तिकोपसर्गसंसर्गोऽप्यनुद्विग्नेन संयमिना सम्यग् नियामं कार्यमिति वचनायेदमारभ्यते ।

—अर्थात् कर्म और इनके बन्धके कारणोंसे पृथक् होकर पण्डितमरणसे शरीरका परिस्थाग करना वही विमोक्ष है। इस विमोक्षका प्रतिपादन करने वाला यह अध्ययन भी 'विमोक्ष' शब्दसे व्यपहृत हुआ है। इस अध्ययनका मूल नामक छठे अध्ययनके साथ परंपरारूपसे संबन्ध है। छठे अध्ययनमें मुनिको अपनेद्वारा मूल कर्म, शरीर, उपकरण, शक्ति-रस-मात्सा-नामक तीन गौरव, उपसर्ग एवं मान और अपमान इन सबके विधूननसे सङ्गरहित होना चाहिये—इस प्रकारसे प्रतिपादन किया है। इन सबका विधूनन मुनिके तभी सफल हो सकता है, कि जब उसका अन्तसमयमें निर्याण सम्यक्—शास्त्रोक्त विधिके अनुसार हो, इसी विषयको प्रकट करनेके लिये इस अध्ययनका आरंभ हुआ है।

अथवा—शब्दादिक विषयोंमें संगसे रहित मुनिको अनेक परीपक्ष और उपसर्ग सहन करना चाहिये—यह बात भी छठे अध्ययनमें कही गई है; सो मरणके समयमें उपसर्गों के आने पर भी समी-मुनिको उद्विग्न

परिष्ठतभरखुषी शरीरने परिस्थाग करेवे। जे व विमोक्ष छे आ विमोक्षनु प्रतिपादन करवावाणु आ अध्ययन पणु विमोक्ष शब्दभी अपहृत भवेत छे आ अध्ययनने मूल नामना छुआ अध्ययननी साथ परम्परासङ्गधी सङ्ग छे। छठु अध्ययनमा मुनिके पोताना दास हुत कर्म, शरीर उपकरण, शक्ति-रस-सात्ता नामना त्रयु गौरव, उपसर्ग अने मान अने अपमान आ सङ्गाना विधून नधी सङ्गरहित होवा जेधजे, आ प्रकृति प्रतिपादन करैत छे आ लभानु विधूनन मुनिनु त्पारे सङ्ग अने छे के अन्तरे अने अत समयमा निर्धार सम्यक्—शास्त्रोक्तविधि अनुसार होय, आ विषयने प्रकट करवा भारे आ अध्ययनने आरंभ याय छे।

अथवा—शब्दादिक विषयाना सङ्गधी रहित मुनिके अनेक परिपक्ष अने उपसर्ग सहन करवा जेधजे आ वात पणु छुआ अध्ययनमा कहेवायेत छे। सो भरणना समयमा उपसर्गों अपवाधी पणु सङ्गधी मुनिके उद्विग्नचित

अत्रोद्देशार्थाधिकारः । अस्मिन्नष्टोद्देशाः सन्ति । तत्र प्रथमे—त्रिषष्ट्यधिकत्रिंश-  
तप षण्डिकानामाहारोपधिश्च्युत्यादिसंसर्गो वर्जनीयः, किं पुनस्तन्मतस्वीकारः! तपः-  
संयम विराधकानामवसन्नपार्श्वस्थादीनां संसर्गत्यागश्च कर्तव्य इति । (१)

द्वितीये—चाकल्प्याहारादि प्रयच्छतस्तन्निषेधरुष्टगृहस्थस्य शास्त्रोक्तदोषप्रक-  
थनपुरस्सरं तदाहारादिपरित्याग इति । (२)

चित्त नहीं होना चाहिये और सम्यक्-रीतिसे निर्माण करना चाहिये  
इस बात को समझानेके लिये इस अध्ययनका प्रारंभ किया गया है। यहाँ  
उद्देशके अर्थका अधिकार है। इसमें आठ उद्देश हैं—१ प्रथम उद्देशमें यह  
बतलाया गया है कि मुनिजनको ३६३ पाण्डिमतबालोंका आहार,  
उपधि और शय्या आदिके संसर्गका परित्याग कर देना चाहिये। जब  
उनकी ये सब चीजें परिवर्जनीय हैं तो फिर उनके मतकी स्वीकृति तो  
वर्जनीय है ही, इसमें क्या कहना! इसी प्रकार यह भी बतलाया गया है  
कि जो तप और संयमके विराधक हैं ऐसे अवसन्न-पासत्यादिकोंका  
संसर्ग भी त्यागने योग्य है।

२ द्वितीय उद्देशमें—मुनिकल्पके विरुद्ध-अकल्पनीय आहारादिक  
प्रदान करनेवाला गृहस्थ, “यह आहार मुनिजनके अयोग्य-अकल्प्य है”  
इस प्रकार मुनिजन द्वारा निषेध करनेपर यदि रुष्ट होता है तो, मुनिका  
कर्तव्य है कि वह उस आहारके ग्रहण करनेमें शास्त्रोक्त दोषोंका प्रतिपादन  
करे और उस आहारका परित्याग करे। यह प्रकट किया गया है।

अननुं न जेष्ठये, अने सम्यक्-रीतिथी निर्माण करतुं जेष्ठये. आ वातने सम-  
न्ववा माटे आ अध्ययनने प्रारंभ करेले छे अहि उद्देशना अर्थने अधिधार  
छे जेभां आठ उद्देश छे १ प्रथम उद्देशभां जेम अतावेले छे के मुनिजने उ६३  
पाण्डिमतवाणाज्जेना आहार, उपधि अने शैया आदिना संसर्गने परित्याग  
करवे जेष्ठये, न्यारे तेनी जे सधणी थिजे परिवर्जनीय छे तो पछी तेना  
मतनी स्वीकृति तो वर्जनीय छे न, जेभां उडेवानु शुं डोय आ रीते जे पण्य  
अतावायु छे के जे तप अने संयमने विराधक छे जेवा अवसन्न-पासत्यादिकने  
संसर्ग पण्य त्याग करवा जोग्य छे

२ थिजे उद्देशभा-मुनिकल्पना विरुद्ध अकल्पनीय आहारादिक प्रदान  
करवावाणा गृहस्थ, “आ आहार मुनिजनने माटे अयोग्य छे-अकल्प्य छे”  
आ प्रकारे मुनिजनद्वारा निषेध करवाथी जे रीसाय तो, अननुं कर्तव्य छे के ते तेवा  
आहारने ग्रहण करवाभा शास्त्रोक्त दोषानु प्रतिपादन करे अने जे आहारने

दृष्टीये—श्रीतादिना प्रकम्पितं मुनिं कामविकारिणं चङ्गमानाय गृहपत्ये  
'श्रीतादिकं मम गात्रकम्पनकारणं न कामविकारः' इति प्रतिपाद्यं तच्छब्दान्ते-  
दनमिति । (३)

चतुर्थे—चापरिहार्यस्याशुपसर्गोपनिपाते संयमस्यार्थं वैदानस-गार्द्वेषुष्ण-  
रूपमरणं भेद्य इति । (४)

पञ्चमे—ग्लानाद्यवस्थायां पूर्वाद्युपनिपात्या पासनासक्तौ मुनेर्मक्तपरिष्ठाया  
मरणं साधीय इति । (५)

३ तृतीय उद्देशार्थे—श्रीता आदिसे कंपते हुए मुनिको देख कर  
यह स्थिति यदि यह शङ्काशील मन जाय कि "इस मुनिके कामविकार हो  
गया है इसीलिये यह कंप रहा है" तो मुनिजनका यह धर्म है कि  
जब शंकाका निवारण करे और कहे कि मेरा शरीर श्रीतादिक निमि-  
शसे कंप रहा है, कामविकारसे नहीं!—यह प्रतिपादित किया गया है।

४ चतुर्थ उद्देशार्थे—स्त्री वगैरह द्वारा कृत उपसर्गके अपरिहार्य हो  
जाने पर साधुका कर्तव्य है कि वह अपने संयमकी रक्षाके लिये वैदा-  
नस और गार्द्वेषुष्ण नामक मरणसे अपने प्राणोंको छोड़ देवे—यह स्पष्ट  
किया गया है।

५ पंचम उद्देशार्थे—ग्लान आदि अवस्थामें पूर्वग्रहीत प्रतिज्ञा की  
पालनार्थे साधुकी अक्षरि होने पर उस मुनिके लिये भक्तपरिष्ठासे मरण  
प्राप्त करना अवेयकर है—यह पात पललाई गई है।

परिष्ठायां करे अथ प्रगत कस्यामां आवेत्तु

३ त्रीना उद्देशार्थे—कथं आदिषी मूलतः मुनिने जेठ गृहस्थ कथय जेवी  
शुद्ध करे के "आ मुनिने कामविकार कथेत्तु अथेत्तु जे कथी रहेत्तु अथेत्तु"  
तो मुनिजनने जे धर्म अथेत्तु ते गृहस्थानी जेवी शकतु निवारण करे जेने  
कथेत्तु अथेत्तु शरीर कथी आदिषी कथी रहेत्तु अथेत्तु, कामविकारकी नकि, आदि  
प्रतिपादित कस्यामां आवेत्तु अथेत्तु

४ चतुर्थ उद्देशार्थे—स्त्री वगैरह द्वारा कृत उपसर्ग अपरिहार्य होव तो  
साधुका कर्तव्य अथेत्तु ते पिताना संयमनी रक्षा अथेत्तु वैदानस जेने आदि  
पृथ नामना मरणकी पिताना प्राणोने छोड़ी के आ रूप अथेत्तु अथेत्तु अथेत्तु

५ पंचम उद्देशार्थे—ग्लान आदि अवस्थामें पूर्वे लीपित प्रतिज्ञाना पालनार्थे

पण्ठे—चैकत्वभावनया मुनेरिङ्गितमरणं प्रशस्तमिति । (६)

सप्तमे—मुनिनैकमासादिका भिक्षुप्रतिमा पालनीया, शरीरस्य संयमपालनाश-  
क्तावस्थायां क्रमेण पष्ठाष्टमादित्पसाऽऽहारादिसंक्षेपं कृत्वा पादपोपगमनं  
विधेयमिति । (७)

अष्टमे च—चिरपरिपालितचारित्रस्य यथाशास्त्रविहारिणः सूत्रार्थतदुभय-  
ग्रहणादानाऽऽसेवनानन्तरं बलहान्या संसीदत्संयमक्रियस्य संवर्द्धितशिष्यसम्पद

६ छठे उद्देशमें—एकत्व-भावनासे युक्त होकर मुनिका इंगितमरण  
प्रशस्त है । यह प्रकट किया गया है ।

७ सातवें उद्देशमें—एक मास आदि प्रमाणवाली भिक्षुप्रतिमा  
मुनिको पालनी चाहिये, तथा जब शरीर संयम पालन करनेकी शक्ति-  
रहित अवस्थामें आ जावे तो क्रम २ से षष्ठ और अष्टम आदि तपसे  
आहारका संक्षेप कर उसे पादपोपगमन संथारा धारण कर लेना चाहिये—  
यह वर्णन किया गया है ।

८ आठवें उद्देशमें—चिरकालसे जिसने चारित्रकी आराधना की  
है और शास्त्रोक्त विधिके अनुसार ही जिसने विहार किया है—ऐसे मुनि  
की सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ इन तीनोंके ग्रहण, दान और आसेवनके  
बाद बलकी हानिसे संयमरूप क्रियाकी पालनामें शिथिलता आ रही हो

साधुनी अशक्ति थाथी अे मुनिने भाटे लडतपरिश्राथी भरषु प्राप्त करुं  
श्रेयस्कर छे आ वात अतावेले छे

६ छठ्ठा उद्देशमा—अेकत्वभावनाथी युक्त अनी मुनिनुं ङगितमरण  
प्रशस्त छे. आ प्रगट करायेल छे.

७ सातमा उद्देशमा—अेकमास - आदि प्रमाणवाणी भिक्षुप्रतिमा  
मुनिअे पाणवी लेअे तथा अन्यारे शरीर, संयम पाणवानी शक्तिथी  
रहित अवस्थामां आवी अथ तो धीरे धीरे छठ अने अठम आदि तपथी  
आहारने अथ करी तेले पादपोपगमन स थारे धारण करी देवे। लेअे अे, आ  
वर्णन करेल छे.

८ आठमा उद्देशमां—लांआ ङाणथी लेले आरित्रनी आराधना करी छे  
अने शास्त्रोक्तविधि अनुसार अ लेले विहार करेल छे अेवा मुनिने सूत्र-  
अर्थ अने सूत्रार्थ अे त्रलेनुं अडणु, दान अने आसेवनना पछी अणनी  
हानिथी संयमरूप क्रियाने पाणवामा शिथिलता आवी रडेले डीय तो  
३७



उत्सर्गतो द्वादशवर्षसंखेखनाक्रमेण संलिखितशरीरस्य भक्तप्रत्याम्भ्यानेत्रितपादपाप-  
गमनमरणेषु किंचिदेकमाधित्य जन्म सफलीकर्तव्यमिति प्रतिपादितम् । (८)

साम्प्रतं प्रथमसूत्रेण परमतनिराकरणार्थमेवोपक्रमते ' से वेमि ' इत्यादि ।

मूलम्—से वेमि समणुघ्नस्स वा असमणुघ्नस्स वा असणं  
वा पाण वा खाइम वा साइम वा वस्थ वा पडिग्गह वा कवलं  
वा पायपुछण वा नो पायजा नो निमतिजा नो कुज्जा वेयाव  
डिय पर आढायमाणे त्तिवेमि ॥ सू० १ ॥

छाया—सोऽहं धवीमि समनोद्वाय वाऽसमनोद्वाय वाऽश्न वा पान वा सार्धं  
वा स्वार्धं वा वस्त्रं वा पतद्ग्रहं वा कम्बल वा पादमोच्छनं वा नो मदघातं नो  
निमन्त्रयेद् नो कुर्याद् वैयाहृत्यं परमाद्रियमाण इति धवीमि ॥ सू० १ ॥

टीका—' सोऽहम् ' इत्यादि—यो भगवन्मुखादिनिर्गतपयाभ्रुतप्रारी  
परिज्ञातहेयोपादेय सोऽहं स्वां धवीमि=वक्ष्यमाणवचनं बन्मि, तदवाह—'समनोद्वाय

तो संवर्द्धित-शिष्यरूप-संपत्तिवाले उस मुनिको उत्सर्गसे १२ वर्ष  
की संखेखना धारण कर लेनी चाहिये । इस क्रमसे शरीरके कृश होने  
पर उसे भक्तप्रत्याख्यान, हंगित और पादपोषण इन मरणोसे किसी  
एक मरणको धारण कर जन्म सफल करना चाहिये—यह विषय  
समझाया गया है ।

इस समय प्रथम सूत्रसे सूत्रकार परमतके निराकरण करनेका  
उपक्रम ( प्रारंभ ) करते हैं—' से वेमि ' इत्यादि—

श्री सुभमोस्वामी श्री जम्बूस्वामीसे कहते हैं—हे शिष्य ! जिसने  
भगवानके मुखसे निर्गत भ्रुतके अनुसार ही तत्त्व ग्रहण किया है और

शिष्यरूप संपत्तिकी वृद्धि पाभिल को मुनिके उत्सर्गकी १२ वर्षकी संखेखना धारण  
करी देवी नैष्ठिके, वा कम्बली शरीरना कृश यवाशी तेल्ले लक्षप्रत्याख्यान,  
हंगित अने पादपोषण अने भक्त्युभांशी ठाण्ठेक भक्तने धारण करी जन्म  
सफल करवे नैष्ठिके, वा विषय समभावले छे

अ समय प्रथम सूत्रकी सूत्रकार परमतके निराकरण करवाने प्रारंभ  
करे छे—' से वेमि ' इत्यादि

श्री सुभमोस्वामी श्री जम्बूस्वामीने कहे छे—हे शिष्य ! जेने भगवानके  
सुभकी निर्गत भ्रुतके अनुसार ही तत्त्व ग्रहण करेले छे अने जेनाकी ले लेब  
अने उपादेयना गानकी मुक्त छे जेवे हुं तमने अ प्रकाशकी कर्तुं हुं के तमे

त्यादि । परम्=उत्कृष्टम् आद्रियमाणः=सत्कुर्वाणः सन् समनोज्ञाय=दृष्टिलिङ्गाभ्यां चारुवेपाय रवमतावसन्नपार्श्वस्थप्रभृतये, वा-शब्दः पक्षान्तरद्योतकः; असमनोज्ञाय =परतीर्थिकाय शाक्यप्रभृतये वा यद् अशनम्-ओदनादिकम् पानं=द्राक्षादिधावन-जलं वा, खाद्यं=नारिकेलालिकं वा, स्वाद्यं=लवङ्गादिकं वा, वस्त्रं वा, पतद्ग्रहं=पात्रं वा, कम्बलं वा, पादप्रोच्छन्नं=रजोहरणादिकं वा नो प्रदद्यात्=प्रासुकमपि तस्मै न ददेत्, नापि च वितरणाय निमन्त्रयेत्, वैद्यावृत्त्यं=शुश्रूपादिकमपि न कुर्याद्=नो विदध्यात् । इति=एवम् अहं त्वां ब्रवीमि=यथा भगवत्सकाशाच्छ्रुतं तथा कथयामि ॥

अपरमप्यहं ब्रवीमीत्याह-‘ ध्रुवं ’ इत्यादि ।

मूलम्-ध्रुवं चेयं जाणिज्जा असणं वा जाव पायपुंछणं वा लभिया, नो लभिया, भुंजिया, नो भुंजिया, पंथं विउत्ता विउक्कम विभत्तं धम्मं जोसमाणे समेमाणे चलेमाणे पाइज्जा

इसीसे जो हेय और उपादेयके ज्ञानसे युक्त है वह मैं तुमसे इस प्रकार कहता हूँ कि तुम अच्छी तरह-भक्तिके आवेशसे-आदर सत्कार करके, समनोज्ञ-दृष्टि और लिङ्गोंसे सुन्दर वेषवाले ऐसे स्व-जैनमतानुयायी अवसन्न पासत्थादिकोंको, अथवा असमनोज्ञ-परतीर्थिक शाक्य आदिको अशन-ओदनादिक, पान-द्राक्षादिका धोवन जल, खाद्य-नारियल आदि, अथवा स्वाद्य-लवंगादिक, वस्त्र, पतद्ग्रह-पात्र, कम्बल अथवा पादप्रोच्छन्न-रजोहरणादिक, प्रासुक होने पर भी न दो और न उन्हें देनेके लिये आमंत्रित करो, वैद्यावृत्त्य भी उनकी न करो-इस प्रकार जैसा भगवानसे सुना है वैसा मैं तुमसे कहता हूँ ॥ सू०१ ॥

और भी “ ध्रुवं ” इत्यादि सूत्रसे कहता हूँ, सो सुनो—

सारी रीते-लङ्कितना आवेशथी आदरसत्कार करीने समनोज्ञ-दृष्टि अने लिङ्गथी सुन्दर वेशवाणा अथवा चोताना जैनमत अनुयायी अवसन्न-पासत्थादिकोंने माटे— अथवा असमनोज्ञ-परतीर्थिक शाक्य आदिने माटे अशन-ओदनादिक, पान-द्राक्षादिकेनु धोवणु नण, आद्य-नारियल आदि, अने स्वाद्य-लवंगादिक, वस्त्र, पतद्ग्रह-पात्र, कम्बल अने पादप्रोच्छन्न-रजोहरणादिके प्रासुक होवा छतां पणु न द्यो, अने न अने आपवा माटे आमंत्रणु करो, वैद्यावृत्ति पणु तेनी न करो. आ प्रकरी नेणु भगवानथी सालणु छे तेणु हुं तमने कहुं छु. (सू०१)

धीणु पणु “ ध्रुवं ” इत्यादि सूत्रथी कहुं छु सालणो

वा निमत्तिज्जा वा कुज्जा वा वेयावडिय पर अणादायमाणे  
त्तिवेमि ॥ सू० २ ॥

छाया—ध्रुवं चैतज्जानीयादभनं वा यावत् पादप्रोच्छन्नं वा लम्बा नो  
सम्भवा, सुक्त्वा, नो सुक्त्वा, पन्थानं व्यावर्त्यापि उल्लस्य विमर्क्तं धर्मं जुपमाणः  
समायन् चलन् मदघात् वा निमन्त्रयेद्वा कुर्याद्द्वेयाहृत्य परमाद्रियमाण इति ध्रुवीमि ॥

टीका—‘ध्रुव’मित्यादि । शास्त्रादयो हि कदाचिदशनादिक प्रदर्शयन्  
ध्रुवन्ति,—मघान्—एतत्=वक्तव्यं ध्रुव=निश्चितं जानीयात्=सुध्येत, यद्  
अशनादिकमारभ्य यावत् पादप्रोच्छन्नं सर्वं परगृहे लम्बा वा असम्भवा वा सुक्त्वा  
वा असुक्त्वा वा अवश्यमस्माकं मनस्तुष्टये तद्ग्रहणायास्मदीयस्ततौ समागन्तव्यम्,  
तथा हि—अशनादीनामलामे सामाय, लामेऽपि चोत्कृष्टमिष्णादिलामार्यं वा,  
सुक्तेऽपि पुनर्मीननार्यम्, असुक्तेऽपि प्रथमालिकार्थम् [‘सिरावन्’ इति मापायाम् ],

शास्त्र आदि, मुनिको देख कर कदाचित् भोजनादिक  
दिखा कर यह कहें कि हे मुनि ! आप यह हमारा कहना  
अवश्य मानें कि आपको अशनसे लगाकर पादप्रोच्छन्न तककी  
समस्त सामग्री अथवा असमस्त सामग्री परगृहमें मिले या न  
मिले, आपने आहार किया हो अथवा न भी किया हो तो भी आप  
अवश्य २ हमारे सन्तोपके लिये ही कम से कम अशनादिक लामके  
निमित्त, हमारे स्थान पर पधारे। वहां आनेसे आपको फायदा होगा—  
अशनादिकके अलाममें आपको वहां उनका लाम होगा, अन्यत्र उनके  
मिल जाने पर भी वहां आनेसे आपके लिये उत्तम २ मिष्टान्न आदि  
सामग्री की प्राप्ति हो जायगी, स्वा करके भी आने पर फिरसे भोजन हो

शास्त्र आदि, मुनिने कुछ कहायित् भोजनादिक जतायी जेवुं  
ठडे के डे मुनि ! आप जमाई जे ठडेवुं अवश्य माने के आपने  
अशनधी लगायी पादप्रोच्छन्न सुधी असस्त सामग्री अथवा असमस्त सामग्री  
जोखने धरे भजे अथवा न भजे, आपे आहार कथीं होय अथवा न  
कथीं होय तो पण आप अवश्य अवश्य जमास सतोप भाटे जे जमधी जम  
अशनादिके अलामा निमित्त जमास स्थान उपर पधारे त्या आपवाधी आपने  
हायदा धरे—अशनादिकेना अलामभां आपने त्या जेने हाल धरे, जीने स्थजेधी  
जे भजवा छता पण त्यां आपवाधी आपने भाटे उत्तमभां उत्तम मिष्टान्न  
आदि सामग्रीनी प्राप्ति धरी, जाछने आपवा छतां हरीधी भोजन धरे, जने

अस्मत्सन्तोषायावश्यमस्मत्स्थाने समागन्तव्यम्, यद् यद् भवतां कल्पनीयं तत्तदा-  
स्यामीति भावः। ममावासो भवत्संचरणरथ्यायामेव वर्तते, यदि वक्रोऽपि भवेत्त-  
थाऽपि पन्थानं=मार्गं व्यावर्त्यापि=परिश्रम्यापि उत्क्रम्य=मार्गमध्यवर्तिगृहाण्युल-  
ङ्घ्यागन्तव्यम्, नाऽत्र क्लेशो गणनीयः, कृपा विधेया-इत्यादि कथयित्वा सः  
विभक्तं=भिन्नं धर्मं जुषमाणः=सेवमानः शाक्यादि, समायन्=तेन मार्गेण कदाचिद्  
आगच्छन्, चलन्=मार्गे गच्छन् यच्चाशनादिकं प्रदद्यात्, तद्दानादिना निमन्त्र-  
येद्वा, अन्यद्वा वैयावृत्त्यं कुर्यात्=विदध्यात्, तर्हि मुनिः परम्=अत्यर्थम् अनाद्रियमाणः  
तस्यानादरं कुर्वन्-समस्वीकुर्वाणः सन् विहरेत्, तेन सह परिचयमपि न कुर्यात्,  
अनेन दर्शनशुद्ध्यादेरवश्यं भावादित्याशयः। इति पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च ब्रवीमि=  
कथयामि ॥ सू० २ ॥

जायगा, और नहीं खा कर आनेपर सुबहका लघुभोजन हो जायगा। इस  
लिये हमारे संतोषके लिये आप मेरे स्थान पर अवश्य २ आवें। आनेपर  
आपके लिये जो २ वस्तुएँ कल्पनीय होंगी उन्हें मैं अवश्य २ दूंगा। मेरा  
निवासस्थान आपके निकलनेकी गली ही में है। यदि वहाँसे वह शायद  
आपके लिये टेड़ा भी पड़े तो भी घूमकर कुछ मध्यवर्ती घरोंको छोड़  
कर आप वहाँ जरूर आवें। इसमें परिश्रमका ख्याल न करें। बड़ी  
दया होगी।” इत्यादि कह कर वह भिन्न धर्मका अनुयायी- शाक्य  
आदि उस मार्गसे कदाचित् आता जाता मिल जाय और  
उस मुनिके लिये जो कुछ भी अशनादिक दे, अथवा उसके लिये  
आग्रह करे, या आमंत्रित करे अथवा दूसरी तरहसे कोई वैयावृत्ति  
करना चाहे तो उस मुनिको चाहिये कि वह उसकी किसी  
भी बात पर ख्याल न करे, उसके द्वारा प्रदत्त किसी भी वस्तुका ग्रहण

आपने न आववाथी शिरामणु थशे आ माटे अमारा स्थान उपर अमारा संतोष  
माटे आप अवश्य अवश्य आवो आववाथी आपने माटे ने ने वस्तुओ कल्पनीय  
इशे ओ हुँ तमोने अवश्य अवश्य आपीश माई निवासस्थान आपनी निक्षण-  
वानी शेशीमां न छे अथवा त्याथीओ थोडो छोटो पडे तो पणु इरीने डेटलाड  
पथला धरोने मुडीने पणु आप त्यां नइर आवो आमां परिश्रमने ख्याल न  
करेशो पूथ दया थशे। इत्यादि कहीने ओ भीन धर्मना अनुयायी शाक्य आदि  
ओ मार्गथी कदाचित् आवतां नता भणी नथ अने ओ मुनि  
माटे ने काई भावा पीवानुं आपे, अथवा ओने माटे आग्रह करे, या  
आमंत्रणु करे, अथवा भीलु रीते काई वैयावृत्त करवा आडे, त्यारे ते मुनि

अपि च वक्ष्यमाणं दर्शयति— 'इहमेगेसि' इत्यादि—

मूलम्—इहमेगेसिं आचारगोचरे नो मुनिसते भवति, ते इह आरभष्टी अणुवयमाणा हण पाणे घायमाणा हणओ याधि समणुजाणमाणा, अदुवा अदिन्नमाययति, अदुवा वायाउ विउ उजति, त जहा—अरिथ लोए, नरिथ लोए, धुवे लोए, अधुवे लोए, साइए लोए, अणाइए लोए, सपउजवसिए लोए, अप उजवसिए लोए, सुकडेत्ति वा, दुक्कडेत्ति वा, कल्लाणेत्ति वा, पावेत्ति वा, साट्टत्ति वा, असाट्टत्ति वा, सिद्धित्ति वा, असिद्धित्ति वा, निरपत्ति वा, अनिरपत्ति वा, जमिण विप्पट्टिवन्ना मामग धम्म पन्नवेमाणा, एत्थ वि जाणहअकस्मात्, एव सेसिं नो सुयक्खाए धम्मे नो सुपन्नत्ते धम्मे भवइ ॥ सू० ३ ॥

छाया—इहकेपामाचारगोचरो ना मुनिशान्तो भवति, त इहारम्मार्थिनोऽनु बन्तो धन्त माणान् घातयन्तः धन्तथापि समनुजानन्तः, अयवाऽदृष्टमाददति, अयवा वाचो वियुञ्जन्ति, तथया—अस्ति लोका, नास्ति लोको, धुनो लोका, अधुवा लोका, सादिको लोकोऽनादिको लोका, सपर्यवसितो लोकोऽपर्यवसितो लोका, सुकृतमिति वा, दुक्कृतमिति वा, कल्याणमिति वा, पापमिति वा, धाम्भित्ति वा, अमाध्भित्ति वा, सिद्धिरिति वा, असिद्धिरिति वा, निरय इति वा, अनिरय इति वा, परिदं विप्रतिपन्ना मामकं धर्मं प्रवदन्त, अत्रापि जानीत अकस्मात्, एव वेपां नो स्वाप्प्यातो धर्मो न सुप्रज्ञतो धर्मो भवति ॥ सू० ३ ॥

टीका—'इहकेपा'मिति—इह=अत्र मनुष्यलोके एकपां = कतिपयानाम्, न कर और यहांसे चल देवे, कोई भी प्रकारका सपर्क उमसे न रखे। इस प्रकारके धर्षनसे उम मुनिके समकित की शुद्धि होती है। गेसा मं कहता हूं ॥ सू० २ ॥

तथा—'इहमेगेसिं' इत्यादि—

इस मनुष्य लोकमें जो सूर्यज्ञसे उपदिष्ट संयमक मार्गसे अनभिज्ञ

ज्येनी होठिपणुवात उपर प्थात न इरे ज्येना द्वारा भगती होठिपणु वस्तुने अदणु न इरे अने त्याधी आत्था आय, होठि पणु प्रसारने अ पठ ज्येनाधी न शजे आ प्रसारना वतनधी ते मुनिना समकितनी शुद्धि थाय छ, जेव दुं दुं छ (सू० २)

अर्थ च—“इहमेगसि” इत्यादि.

आ मनुष्य लोकमें जे सर्वज्ञधी उपदेशवाभा आवेत्त अथम मार्गधी

न सर्वेषाम्; ' आचारगोचरः ' आचारस्य=संयमस्य गोचरः=विषयः सर्वज्ञोपदिष्ट-  
मार्ग इत्यर्थः, सुनिशान्तः—सुपरिचितः, नो भवति, ते इह=अस्मिँल्लोके आरम्भा-  
र्थिनः पचन-पाचनानुमोदनादिसावधव्यापारवन्तः शाक्यादयो द्रव्यलिङ्गिनोऽवसन्न-  
पार्श्वस्थादयः, अनुवदन्तः=देवायतननिर्माणे प्रतिमाप्रतिष्ठापूजादौ औद्देशिकाहारादौ  
च धर्मं प्ररूपयन्तः सन्तः प्राणान्=एकेन्द्रियादिजीवान् घ्नन्तः=नाशयन्तः अन्यै-  
र्घातयन्तः, घ्नतः घातयतो वा समनुजानन्तः=अनुमोदयन्तो भवन्ति । एतेन  
षड्जीवनिकायविराधकत्वं तेषामभिहितम् ।

' अथवा ' =पक्षान्तरे, तेन—ते आरम्भार्थिनः अदत्तं=परस्य धनादिकम् आद-  
दति=गृह्णन्ति, तृतीयेऽव्रते स्तोककथनीयत्वात्तस्य पूर्वं प्रतिपादनम् । द्वितीये च  
बहुवक्तव्यत्वात्ततस्तदुपन्यास इति विज्ञेयम् ।

हैं, अर्थात् जो सर्वज्ञकथित संयमके मार्गसे अपरिचित हैं—ऐसे वे  
शाक्यादिक तथा द्रव्यलिङ्गी अवसन्न-पासत्थादिक आरम्भार्थी, पचन,  
पाचन और अनुमोदन आदि सावध व्यापारोंसे युक्त वन देवाय-  
तन-मन्दिर आदिके निर्माणमें, प्रतिमा की प्रतिष्ठामें, और उसके पूजन  
आदिमें तथा उद्दिष्ट आहार वगैरहमें धर्मकी प्ररूपणा करते हुए एकेन्द्रि-  
यादिक जीवोंका स्वयं आरम्भ करनेवाले, दूसरोंसे उनका आरम्भ करा-  
नेवाले एवं उनके आरम्भ करनेवालोंकी अनुमोदना करनेवाले होते हैं।  
इस कथनसे षड्जीवनिकायोंकी विराधकता उनके कही गई  
समझनी चाहिये ।

अथवा—वे आरम्भार्थी—शाक्यादिक एवं अवसन्न-पासत्थादिक पर  
का अदत्त धनादिक द्रव्य ग्रहण करते हैं। तृतीय अव्रत-चौर्य है।

अनलिङ्गं छे, अर्थात् वे सर्वज्ञकथित संयमना मार्गथी अपरिचित छे अथवा  
अे शाक्यादिक तथा द्रव्यलिङ्गी अवसन्न-पासत्थादिक आरम्भार्थी, पचन, पाचन  
अने अनुमोदन आदि सावध व्यापारोथी युक्त अनी देवायतन-मन्दिर आदिना  
निर्माणुमा, प्रतिमानी प्रतिष्ठामा अने तेना पूजन आदिमा तथा उद्दिष्ट आहार  
वगैरेमा धर्मनी प्ररूपणा करता अेकेन्द्रिय आदि जीवोना स्वयं आरंभ करवा-  
वाणा, भीज्जथी तेना आरंभ करवावाणा अने तेना आरंभ करवावाणाने अनु-  
मोदन आपनारा होय छे आ कथनथी षड्जीवनिकायोनी विराधकता तेनी कहे-  
वामा आनी समझनी जेधअे

अथवा—अे आरम्भार्थी—शाक्यादिक अने अवसन्न-पासत्थादिक भीज्जनुं  
अदत्त धनादिक द्रव्य ग्रहण करे छे त्रीण्य अव्रत-चौर्य छे सूत्रअर आ

‘अथवा’ पश्चान्तरघोसकाः, तद्यथा—अदक्षं गृह्णन्तां हि वाचः=वदुषिणाः बह्व-  
माया वियुञ्जन्ति=वयुञ्जन्ति—वाचो विनियोगं कुर्वन्ति—कथयन्तीत्यर्थः, तदेवा-  
तद्यपेत्यादिना—तद्यथा—

केचिदाहु - ‘लोकः=स्थावर-जङ्गमलक्षणः, भस्ति=विद्यते। तवारि=सप्तसङ्ख्या  
सप्तद्वीपा नवस्वप्णा पृथिवी, नातः परमन्यो लोकः’ इति ।

केचिच्च—एतादृशानि बहूनि ब्रह्माण्डानि सन्ति, तेषु कति किञ्जल्मन्मे प्लव-  
मानानि सन्तीति, वर्तन्ते पञ्चमहाभूतानि पृथिव्यादीनीति, तथा भस्ति च पर  
लोकः=यमलोकादिरूपाः’ इति प्रषदन्ति ।

सूत्रकारको इसके विषयमें विशेष कथन नहीं करना है—इसलिये इसका  
क्रमप्राप्त असत्यके कथन करनेके पहिले कथन नामोस्तेस्वरूपसे किया  
है । द्वितीय अवतमें विशेष शक्तव्यता है; इसलिये उसके बाद उसका  
कथन किया है ।

अथवा—अदक्षका ग्रहण करनेवाले मनुष्य बहुत प्रकारकी (जिसके  
विषयमें आगे कहा जायगा) बातें बनाया करते हैं । इसीका “तद्यथा”  
पदसे स्पष्टीकरण करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

कोई कोई कहते हैं—स्थावर और अंगम स्वरूपवाला यह लोक है ।  
इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि यह पृथिवी सात समुद्रवाली है,  
सात इसमें द्वीप है, और नव इसके स्वप्न हैं । इसीका नाम लोक है ।  
इससे जुवा और कोई लोक नहीं है । कोई २ ऐसा भी कहते हैं—ऐसे  
तो बहुत ब्रह्माण्ड हैं । इनमें कितनेक तो जलके बीचमें बूबे हुए हैं,

आ विषयगत विशेष बड़ेवा भागता नहीं, आ भाटे क्रमप्राप्त असत्यनु कथन  
नहि कर्तां पहेला अदक्षाननु नाभोब्रह्मण्डली कथन करैत छे बीजा अवतमां  
विशेष बहतव्य छे, आ भाटे जेना पछी जेनु कथन करैत छे

अथवा—अदक्षानु ब्रह्मण्ड कथावाणा मनुष्य पला प्रकल्पी (जेना विषयमां  
आमज बड़ेवामा आवरी) वाता बनाव्य करै छे, जेनु “तद्यथा” पदवी  
स्पष्टीकरण कर्तां सूत्रकार बड़े छे—

कैअं कैअं बड़े छे स्थावर अने जगम-स्वरूपवाजे आ लोक छे, अने  
अर्थ इहा जेनेवा न छे के आ पृथ्वी सात समुद्रवाणी छे, आमा सात द्वीप  
छे अने नव जेना जट छे आनु नाम लोक छे आनाथी जुवा बीजे कैअं  
लोक नहीं, कैअं दोअ जेम पला बड़े छे—जेम तो पला जटव्य छे, आमा  
कटवाक तो पाणीमा जुनी जयेत छे कटवाक पञ्चमहाभूतवद्वा पृथ्वी आदि

चार्वाकारस्तु—‘लोकः=परलोको नास्ति’ इत्याहुः । इत्थं च तेषामभ्युपगमः—  
स्वर्गादिकं गन्धर्वनगरमरुमरीचिकादिसदृशमेव, प्रत्यक्षमेव प्रमाणं, नान्यदमनुमाना-  
दिकं परोक्षम्, परलोकाभावेन जीवः परलोकगामी न भवत्येव; किन्तु प्रत्यक्षं परि-  
दृश्यमानः पञ्चभूतात्मक एव लोकः, अतो नास्ति बन्धो, नास्ति मोक्षः, नास्ति  
पुण्यं, नास्ति पापमित्यादि, तथाहि—

“यथा यथाऽर्थाश्चिन्त्यन्ते, विविच्यन्ते तथा तथा ।

यद्येतत्त्वयमर्थेभ्यो, रोचते तत्र के वयम् ॥ १ ॥

कितनेक पंचमहाभूतस्वरूप पृथिवी आदिक विद्यमान हैं । तथा यम-  
लोक-आदि-स्वरूप परलोक भी मौजूद हैं । चार्वाक-सिद्धान्तवाले  
नास्तिकलोग ‘परलोक नहीं है’ ऐसा मानते हैं । उनका सिद्धान्त  
इस प्रकारसे है—स्वर्गादिक परलोककी मान्यता गन्धर्वनगर  
तथा मरुमरीचिका जैसी है । जैसे इनका आभास भ्रमसे होता है, उसी  
तरहसे स्वर्गादिक परलोककी भी मान्यता ऐसी ही है, वास्तविक नहीं ।  
इनके सिद्धान्तानुसार १ प्रत्यक्ष ही प्रमाण है । परोक्ष-अनुमानादिक  
नहीं । जब परलोक ही नहीं तो जीव परलोकमें जाता है,  
अथवा परलोकमें उसके जानेका स्वभाव है—ऐसी कल्पना  
भी ठीक नहीं है । जो कुछ प्रत्यक्षसे पञ्चभूतात्मक दिखाई देता है वही  
लोक है, इससे परे नहीं । इसलिये न बन्ध है, न मोक्ष है, न पुण्य है,  
और न पाप है ।

विद्यमान छे तथा यमलोक वगैरे स्वर्गपथी परलोक पणु छे चार्वाक सिद्धांत-  
वाणा नास्तिक लोक ‘परलोक नथी’ जेवु माने छे जेभनो सिद्धांत  
आ प्रकारनो छे—स्वर्गादिक परलोकनी मान्यता गन्धर्वनगर तथा मरुमरीचिका  
जेवी छे जेभ जेनो आभास भ्रमथी थाय छे जेवी ज रीते स्वर्गादिक परलो-  
कनी मान्यता पणु छे, वास्तविक नथी जेभना सिद्धान्त—अनुसार  
१ प्रत्यक्ष ज प्रमाणु छे परोक्ष—अनुमानादिक नथी. ज्यारे परलोक ज  
नथी तो एव परलोकमां जय छे, अथवा परलोकमां जेनो जवानो स्वभाव छे  
जेवी कल्पना करवी जे पणु ठीक नथी. जे हांथ प्रत्यक्षथी पञ्चभूतात्मक देखाय  
छे जे ज लोक छे, आथी भीणु नथी. आथी न बन्ध छे, न मोक्ष छे, न  
पुण्य छे के न पाप छे



भौतिकानि शरीराणि, विषयाः करणानि च ॥  
तथाऽपि मन्दैरन्यस्य, तत्र समुपदिश्यते ॥ २ ॥ ” इति ।

किमधिकेन ।

कापिलास्तु—‘ ध्रुवो लोकः ’=लोकः ध्रुवः=शाश्वतिकः=नित्यः कूर्माङ्गानी  
याऽऽविर्भाव-विरोभावनैवोत्पत्तिष्वसादिष्यवहार औपचारिको न तु वास्तविकोऽ-  
पूर्वोपजनरूपः ।

वैशेषिकादितन्त्रवदुत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्याऽसत्त्वस्वीकारेऽतः शशङ्कादेरपु-  
त्यधिः कदाचिदङ्गीकार्या स्यात् । सतो विनाशाऽसम्मवाच न सभाऽसत्; किन्तु

यथा यथायौञ्चिन्त्यन्ते विविच्यन्ते तथा तथा ।  
यद्येतस्त्वयमर्थेभ्यो रोचते तत्र के वयम् ॥ १ ॥  
भौतिकानि शरीराणि विषयाः करणानि च ।  
तथापि मन्दैरन्यस्य तत्त्वं समुपदिश्यते ॥ २ ॥

भाष्यार्थ—जिस जिस प्रकारसे पदार्थोंका विचार किया जाता है  
उस उस प्रकारसे वे विशीर्ण (नष्ट) होते हैं। हम क्या करें—यदि यह  
शून्यता ही पदार्थोंको रुक्ती है तो! शरीर, विषय और इन्द्रियां ये  
सब भौतिक हैं, तो भी मूर्ख प्राणी अन्यके लिये तत्त्वोंका उपवेश देते  
हैं; ज्यादा क्या कहा जाय ?

कापिलमतानुयायी सांख्य—यह कहते हैं कि यह लोक  
ध्रुव-शाश्वतिक-नित्य है। इसमें उत्पत्ति और च्वंस-नाशका व्यवहार  
औपचारिक-गौण है। इसमें आविर्भाव और विरोभाव ही होते

यथा यथायौञ्चिन्त्यन्ते विविच्यन्ते तथा तथा ।  
यद्येतस्त्वयमर्थेभ्यो रोचते तत्र के वयम् ॥ १ ॥  
भौतिकानि शरीराणि विषया करणानि च ।  
तथापि मन्दैरन्यस्य तत्त्वं समुपदिश्यते ॥ २ ॥

भाष्यार्थ—ये ये पदार्थोंको ये प्रकारसे विचार करणार्थ आवेते ते ते  
प्रकारसे तेना नाश वाच्य है अन्ये शुं करीजे—ये आ शून्यता व पदार्थोनि कृते  
ते शरीर, विषय अने इन्द्रिये आ अधुं भौतिक है तो पञ्च भूर्ज प्राणी  
जीवने भटे वत्त्वोने उपदेश आपे है वधुं शुं कहेवाय.

कापिल-मतानुयायी सांख्य जेवुं कहे है के आ दोक ध्रुव-शाश्वतिक-नित्य है  
आमा उत्पत्ति अने नाशने अवधार गौण है जेभा आविर्भाव अने विरोभाव व

‘सदसदिदं प्रपञ्चजातं, मृत्तिकादानुपादानकारणे घटादिरव्यक्तरूपेण सन् वहिरिन्द्रियप्रत्यक्षायोग्यत्वेनाऽसन् घट इति व्यवहारः’ इत्यादिकमाहुः, तेषां मते सिद्धमेव लोकस्य ध्रुवत्वम् ।

हैं, अतः यह व्यवहार-वास्तविक नहीं है । मिट्टीसे घट कोई अपूर्व वस्तु उत्पन्न नहीं होती है किंतु उसमें घटका तिरोभाव था और कारण-कलापसे तिरोभाव हट जाने पर उसका आविर्भाव होता है । अर्थात्-सत्का ही आविर्भाव हुआ असत्का नहीं । इस लिये अपूर्व कुछ भी उत्पन्न नहीं होता । वैशेषिकसिद्धान्तकी तरह उत्पत्तिसे पूर्व कार्यका असत्त्व माना जायगा तो असत् शशशृङ्गकी भी उत्पत्ति कदाचित् स्वीकार करनी पड़ेगी । सत्का कभी भी विनाश नहीं होता है इसीलिये घटका सर्वथा सत्त्व मानने पर उसका कभी विनाश नहीं हो सकता है, परन्तु विनाश होता दिखता तो है, इसलिये यह जगत्प्रपञ्च सत्-असत्-स्वरूप है । उपादानकारणस्वरूप मिट्टीमें घटादिक कार्य अव्यक्तरूपसे थे, इसलिये वे वहिरिन्द्रिय चक्षुरादिकोंके अविषयभूत थे; अतः मिट्टीमें वर्तमान होते हुए भी उनका चक्षुरिन्द्रियसे ग्रहण नहीं होता है । इस लिये वहिरिन्द्रियसे ग्रहणके अयोग्य होनेसे घटादिकोंमें “ असन् घटः ” इत्यादिक व्यवहार होता है—ऐसा सांख्योंका कहना है, इस प्रकारके उनके कथनसे लोकमें ध्रुवता सिद्ध होती है ।

थाय छे, पणु आ व्यवहार वास्तविक नथी. माटीथी घट केअ अपूर्व वस्तु उत्पन्न थती नथी, परन्तु ऐमा घटनेो तिरोभाव छतो अने कारणुकलापथी तिरोभाव हर थता ऐनेो आविर्भाव थथ नय छे, अर्थात्-सत्नेो न आविर्भाव थथे असत्नेो नई आथी अपूर्व केअ पणु उत्पन्न थतुं नथी वैशेषिक सिद्धात माइक उत्पत्तिथी पूर्व कार्यतु असत्त्व मानवामा आवे तो असत् शशशृङ्गनी पणु उत्पत्ति केअय स्वीकारनी पडे सत्नेो कटि पणु विनाश थतो नथी आ कारणे घटतु सर्वथा सत्त्व मानवथी ऐनेो कटि विनाश थथ शकतो नथी परन्तु विनाश थतो हेभाय तो छे आथी आ नगत-प्रपञ्च सत्-असत्-स्वरूप छे. उपादान कारणु माटीमा घटादिक कार्य अव्यक्तरूपथी छता, आथी ते गहिरिन्द्रिय चक्षुनां अविषयभूत छतां माटे माटीमा वर्तमान होवा छता पणु तेने आपथी नेअ शकतुं नथी माटे आह्य छन्द्रियथी नेवाने अयोग्य होवाथी घट आदिमा “ असन् घट ” इत्यादि व्यवहार थाय छे ऐवु सांख्योतु कडेवुं छे आ प्रकारना तेना कथनथी बोझमा ध्रुवता सिद्ध थाय छे

બૌદ્ધાસ્તુ-‘અધુવો સ્લોકઃ’ ઇતિ ધ્રુવઃ; ઇત્યં દિ તેષામન્યુપગમ-સર્વમિદં સ્યાવરમજ્જમાત્મકં વગત્ ક્ષયિકમ્, સ્લોકસ્ય વિનાશકારણામાયેન યદિ ‘સ્લોકો નિત્ય’ ઇતિ મન્યસે ઠઈ નિત્યમૂતસ્ય શામ્વતિકસ્ય સ્વરૂપેનાચિચ્યુતસ્ય તસ્ય સર્વથા ચિક્ષરરહિત્વેન માત્રમ્, તથા ચ ક્રમેષ યૌગપથેન ઘા તસ્યાર્થક્રિયાયાં સામર્થ્યામાવાસર્વવ્યવહારોચ્છેદાપતિઃ સ્યાત્, તસ્માત્ ‘અધુવો સ્લોકઃ’ ઇતિ ।

પૌટ્ટોક્તકથન છે કે યહ લોક અધુવ-અનિત્ય છે । તેની માન્યતા હસ પ્રકાર છે-કિ સ્યાવર-જંગમ-સ્વરૂપ યહ લોક ક્ષણિક-ક્ષણ ૨ મેં નષ્ટ હોતા રહતા છે । વિનાશકે કારણોકે અમાયસે યદિ સ્લોકો નિત્ય માના જાયે તો ફિર હસ પ્રકાર સે સર્વથા નિત્ય યને હસ લોકમેં ચિક્ષુતિકા સદ્ભાવ નહીં પાયા જાના જાહિયે, ક્યોંકિ “અપ્રત્યુત્પન્નસ્થિરૈકરૂપો નિત્યઃ” ઉત્પત્તિરહિત, શામ્વતિક, સ્વરૂપસે અપ્રચ્યુતકા નામ હી નિત્ય છે, ધૌર હસ પ્રકાર નિત્ય યને હુપ મેં ચિક્ષુતિ નહીં હોતી છે । તથા-ક્રમ ઓર યૌગપથસે સર્વથા નિત્ય પદાર્થકી અર્થક્રિયા કરનેમેં સામર્થ્ય ઘટિત નહીં હોનેસે અર્થક્રિયાકારિત્વ કે અમાયસે ઉસમેં શૂન્યતા હી આવેગી, “યદેધાર્થક્રિયાકારિ તદેવ પરમાર્થસત્” હસ વાક્યકે અનુસાર અર્થક્રિયાકારી પદાર્થ હી પરમાર્થ સે સત્ માના ગયા છે । હસલિપે નિત્યમેં ચિક્ષુતિકે અમાયસે સર્વ વ્યવહાર કે ઉચ્છેદકી આપત્તિ આવેસે “લોકઅધુવ” છે યહી માન્યતા ઠીક છે ।

બૌદ્ધોનુ કથન છે કે આ લોક અધુવ-અનિત્ય છે તેની માન્યતા આ પ્રકારની છે સ્યાવર-જંગમ-સ્વરૂપ આ લોક ક્ષણિક-ક્ષણ ક્ષણમા નષ્ટ ઘટો-સ્થે છે વિનાશના કારણેના અભાવથી કદાચ લોકને નિત્ય માનવામાં આવે તે પછી આ પ્રકારથી સર્વથા નિત્ય બનેલા આ લોકમાં વિદ્યુતિને સદ્ભાવ રહેવું એકંએ નહિ; કારણ કે ‘અપ્રત્યુત્પન્નસ્થિરૈકરૂપો નિત્યા’ ઉત્પત્તિરહિત, શામ્વતિક અને સ્વરૂપથી અપ્રચ્યુતનુ નામજ નિત્ય છે, યને આ પ્રકારે નિત્ય બનેલામાં વિદ્યુતિ હોતી નથી. ક્રમ અને યૌગપથથી સર્વથા નિત્ય પદાર્થની અર્થક્રિયા કરવામાં સામર્થ્ય ઘટિત નહિ હોવાથી, અર્થક્રિયાકારિત્વના અભાવથી તેમા શૂન્યતા જ આવવાની. “યદેધાર્થક્રિયાકારિ તદેવ પરમાર્થસત્” આ વાક્ય અનુસાર અર્થ ક્રિયાકારી પદાર્થ જ પરમાર્થથી સત્ માનવામાં આવેલ છે નિત્યમાં વિદ્યુતિના અભાવથી સર્વ વ્યવહારના ઉચ્છેદની આપત્તિ આવશે, માટે “લોક અધુવ” છે એજ માન્યતા ઠીક છે

यद्वा केचित्—‘लोकः=भूलोकः पृथिवीमण्डलमित्यर्थः, अध्रुवः=चल’ इति वदन्ति, तथा हि—यथा—नौकादिगतैर्जनैश्चलद्भिरपि भ्रान्तिवशादचलास्तीरस्थ-  
वृक्षादयश्चला दृश्यन्ते, एवं वस्तुतः पृथिव्येव चलति सूर्यस्त्वचलोऽपि भ्रान्तिवशाच्चल  
इव प्रतिभाति ।

यत्तु—सूर्यं ये पूर्वस्यां दिशि वीक्षन्ते तेषामुदितः सूर्यो जायते, ये तु दूरवर्ति-  
त्वात् नैक्षन्ते तेषामस्तमितः सूर्य इति । मध्यस्थितानां मध्याह्नगतो भवति ।

पौराणिकास्तु—सादिको लोकः=उत्पत्तिमान् लोकः, तत्पूर्वं सृष्ट्यादौ तमो-  
भूतमतर्क्यं सर्वतः प्रमुप्तमिवाऽऽसीत् । विष्णोर्नाभिकमलाज्जगदिदमुत्पन्नमिति  
कथयन्ति ।

अथवा—कोई यह कहते हैं—लोक—भूलोक—पृथिवीमंडल—चल है ।  
जैसे—नौकादिसे चलनेवाले मनुष्योंको ( जो नौकादिमें रहनेसे स्वयं स्थिर  
होते हुए भी भ्रमण कर रहे हैं ) भ्रान्तिके वशासे तीरस्थ वृक्षादिक  
चलते हुए नजर आते हैं । इसी तरह वस्तुतः पृथिवी ही चलती है सूर्य  
अचल होते हुए भी भ्रान्तिके वशासे चलता हुआ जैसा ज्ञात होता है ।  
सूर्यको जो पूर्वदिशामें उदित हुआ देखते हैं वे कहते हैं कि सूर्यका उदय  
हुआ, दूर होनेसे जो नहीं देख सकते हैं वे कहते है कि सूर्य अस्तमित  
हो गया, मध्यमें स्थित प्राणियोंको मध्याह्नगत मालूम देता है; वास्तवमें  
तो सूर्य अचल ही है ।

पौराणिकोंका यह कथन है कि यह लोक सादिक उत्पत्तिवाला  
है, जब इसकी उत्पत्ति नहीं हुई थी अर्थात् सृष्टिकी आदि  
में यह तमोभूत था, अतर्क्य था (यह क्या था कुछ नहीं कहा जा सकता

अथवा—कोई એમ કહે છે—લોક—ભૂલોક—પૃથ્વીમ ડળ ચલ છે જેમ જહાજમાં  
ચાલવાવાળા મનુષ્યને ભ્રાન્તિને કારણે તીરસ્થિત વૃક્ષ વગેરે દોડતાં—ચાલતા નજરે  
પડે છે એ જ રીતે વસ્તુતઃ પૃથ્વી ચાલે છે, સૂર્ય અચલ હોવા છતાં પણ ભ્રાન્તિના  
વશથી ચાલતો હોય એમ દેખાય છે સૂર્ય કે જેને પૂર્વ દિશામાં ઉદિત થએલો  
જેમએ છીએ, અને કહીએ છીએ કે સૂર્યનો ઉદય થયો ફર હોવાથી જે નથી  
દેખી શકતા તે કહે છે કે સૂર્ય આથમી ગયો મધ્યમાં સ્થિત પ્રાણીઓને મધ્યાહ્ન  
માલુમ પડે છે વાસ્તવમાં તો સૂર્ય અચલ જ છે.

પૌરાણિકોનુ એવું કથન છે કે આ લોક સાદિક—ઉત્પત્તિવાળો જ છે બ્યારે  
એની ઉત્પત્તિ થયેલ ન હતી, અર્થાત્ સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ પહેલાં આ તમોભૂત

बौद्धास्तु—‘अधुवो लोकः’ इति द्रुवते; इत्थं हि तेषामभ्युपगमः—सर्वमिदं  
 स्यावरजसाम्भक्तं ब्रह्मत् क्षणिकम्, लोकस्य विनाशकारणाभावेन यदि ‘लोको  
 नित्यः’ इति मन्यसे तर्हि नित्यभूतस्य शाश्वतिकस्य स्वरूपेणाविच्युतस्य तस्य  
 सर्वथा विकाररहितत्वेन भाव्यम्, तथा च क्रमेण यौगपद्येन वा तत्सार्थक्रियायां  
 सामर्थ्याभावात्सर्वव्यवहारोच्छेदापत्तिः स्यात्, तस्मात् ‘अधुवो लोकः’ इति ।

बौद्धोक्तकथन है कि यह लोक अधुव—अनित्य है । उनकी मान्यता  
 इस प्रकार है—कि स्यावर—जंगम—स्वरूप यह लोक क्षणिक—क्षण २  
 में नष्ट होता रहता है । विनाशके कारणोंके अभावसे यदि लोकको  
 नित्य माना जावे तो फिर इस प्रकार से सर्वथा नित्य बने इस  
 लोकमें विकृतिका संभाव नहीं पाया जाना चाहिये; क्योंकि  
 “अप्रत्युत्पन्नस्विरैकरूपो नित्यः” उत्पत्तिरहित, शाश्वतिक, स्वरूपसे  
 अप्रच्युतका नाम ही नित्य है, और इस प्रकार नित्य बने हुए में  
 विकृति नहीं होती है । तथा—क्रम और यौगपद्यसे सर्वथा नित्य  
 पदार्थकी अर्थक्रिया करनेमें सामर्थ्य घटित नहीं होनेसे अर्थक्रियाकारित्व  
 के अभावसे उसमें शून्यता ही आवेगी, “यदेवार्थक्रियाकारि तदेव  
 परमार्थसत्” इस वाक्यके अनुसार अर्थक्रियाकारी पदार्थ ही परमार्थ  
 से सत् माना गया है । इसलिये नित्यमें विकृतिके अभावसे सर्वव्यवहार  
 के उच्छेदकी आपत्ति आनेसे “लोकअधुव” है यही मान्यता ठीक है ।

बौद्धोक्तकथन है कि यह लोक अधुव—अनित्य है । उनकी मान्यता  
 इस प्रकार है—कि स्यावर—जंगम—स्वरूप यह लोक क्षणिक—क्षण २  
 में नष्ट होता रहता है । विनाशका कारणोंके अभावसे यदि लोकको  
 नित्य माना जावे तो फिर इस प्रकार से सर्वथा नित्य बने इस  
 लोकमें विकृतिका संभाव नहीं पाया जाना चाहिये; क्योंकि  
 “अप्रत्युत्पन्नस्विरैकरूपो नित्यः” उत्पत्तिरहित, शाश्वतिक, स्वरूपसे  
 अप्रच्युतका नाम ही नित्य है, और इस प्रकार नित्य बने हुए में  
 विकृति नहीं होती है । तथा—क्रम और यौगपद्यसे सर्वथा नित्य  
 पदार्थकी अर्थक्रिया करनेमें सामर्थ्य घटित नहीं होनेसे अर्थक्रियाकारित्व  
 के अभावसे उसमें शून्यता ही आवेगी, “यदेवार्थक्रियाकारि तदेव  
 परमार्थसत्” इस वाक्यके अनुसार अर्थक्रियाकारी पदार्थ ही परमार्थ  
 से सत् माना गया है । इसलिये नित्यमें विकृतिके अभावसे सर्वव्यवहार  
 के उच्छेदकी आपत्ति आनेसे “लोकअधुव” है यही मान्यता ठीक है ।

यद्वा केचित्—‘लोकः=भूलोकः पृथिवीमण्डलमित्यर्थः, अध्रुवः=चल’ इति वदन्ति, तथा हि—यथा—नौकादिगतैर्जनैश्चलद्भिरपि भ्रान्तिवशादचलास्तीरस्थ-  
वृक्षादयश्चला दृश्यन्ते, एवं वस्तुतः पृथिव्येव चलति सूर्यस्त्वचलोऽपि भ्रान्तिवशाच्चल  
इव प्रतिभाति ।

यत्तु—सूर्यं ये पूर्वस्यां दिशि वीक्षन्ते तेषामुदितः सूर्यो जायते, ये तु दूरवर्ति-  
त्वात् नैक्षन्ते तेषामस्तमितः सूर्य इति । मध्यस्थितानां मध्याह्नगतो भवति ।

पौराणिकास्तु—सादिको लोकः=उत्पत्तिमान् लोकः, तत्पूर्वं सृष्ट्यादौ तमो-  
भूतमतर्क्यं सर्वतः प्रसुप्तमिवाऽऽसीत् । विष्णोर्नाभिकमलाज्जगदिदमुत्पन्नमिति  
कथयन्ति ।

अथवा—कोई यह कहते हैं—लोक-भूलोक-पृथिवीमंडल-चल है ।  
जैसे—नौकादिसे चलनेवाले मनुष्योंको ( जो नौकादिमें रहनेसे स्वयं स्थिर  
होते हुए भी भ्रमण कर रहे हैं ) भ्रान्तिके वशासे तीरस्थ वृक्षादिक  
चलते हुए नजर आते हैं । इसी तरह वस्तुतः पृथिवी ही चलती है सूर्य  
अचल होते हुए भी भ्रान्तिके वशासे चलता हुआ जैसा ज्ञात होता है ।  
सूर्यको जो पूर्वदिशामें उदित हुआ देखते हैं वे कहते हैं कि सूर्यका उदय  
हुआ, दूर होनेसे जो नहीं देख सकते हैं वे कहते हैं कि सूर्य अस्तमित  
हो गया, मध्यमें स्थित प्राणियोंको मध्याह्नगत मालूम देता है; वास्तवमें  
तो सूर्य अचल ही है ।

पौराणिकोंका यह कथन है कि यह लोक सादिक उत्पत्तिवाला  
है, जब इसकी उत्पत्ति नहीं हुई थी अर्थात् सृष्टिकी आदि  
में यह तमोभूत था, अतर्क्य था (यह क्या था कुछ नहीं कहा जा सकता

अथवा—कोई એમ કહે છે—લોક-ભૂલોક=પૃથ્વીમ ડળ ચલ છે જેમ જહાજમાં  
ચાલવાવાળા મનુષ્યને ભ્રાન્તિને કારણે તીરસ્થિત વૃક્ષ વગેરે દોડતાં—ચાલતા નજર  
પડે છે. એ જ રીતે વસ્તુતઃ પૃથ્વી ચાલે છે, સૂર્ય અચલ હોવા છતાં પણ ભ્રાન્તિના  
વશથી ચાલતો હોય એમ દેખાય છે સૂર્ય કે જેને પૂર્વ દિશામાં ઉદિત થએલો  
જોઈએ છીએ, અને કહીએ છીએ કે સૂર્યનો ઉદય થયો ફર હોવાથી જે નથી  
દેખી શકતા તે કહે છે કે સૂર્ય આથમી ગયો. મધ્યમાં સ્થિત પ્રાણીઓને મધ્યાહ્ન  
માલુમ પડે છે. વાસ્તવમાં તો સૂર્ય અચલ જ છે.

પૌરાણિકેતુ એવું કથન છે કે આ લોક સાદિક-ઉત્પત્તિવાળો જ છે ન્યારે  
એની ઉત્પત્તિ થયેલ ન હતી, અર્થાત્ સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ પહેલા આ તમોભૂત

અનાદિકો લોકઃ=સૌગતમતે ઘાનાદિપરમ્પરયૈકાન્તતો લોકસ્થાનાદિત્વં ભવતિ  
 સપર્યવસિતઃ=સાન્તઃ પ્રભુસમયે વિષ્ણોર્નામિકમઠે લોકો વિલીનો ભવતિ,  
 પત્રપિ પૌરાણિકમતમ્ ।

અપર્યવસિતઃ=અન્તરહિતો લોકોઽસ્તિ । સતો લોકસ્થાઽઽત્યન્તિકવિનાશ  
 સમ્ભવાત્ ।

યેષાં મતે સાદિકો લોકસ્તેષાં મતે લોક સપર્યવસિતઃ । યેષાં ત્વનાદિકસ્તે  
 પામપર્યવસિત ઇતિ બોધ્યમ્ ।

હૈ ) ઔર સર્વત પ્રસુત જૈસા ધા । વિષ્ણુકી નામિમેં રહે હુપ કમલસે  
 યહ જગત ઉત્પન્ન હુઆ હૈ । અતઃ યહ સાદિક હૈ ।

યહ લોક અનાદિ હૈ-યહ મી સૌગતોકા મત હૈ । ઇસ માન્યતામે  
 ઇકાન્તરૂપસે અનાદિ પરમ્પરાસે ચલા આયા હુઆ હોનેસે લોકમે અના-  
 દિતા આતી હૈ ।

“ સપર્યવસિતો લોક ” યહ લોક સાન્ત હૈ, પ્રભુકે મમયમેં  
 યહ લોક વિષ્ણુકી નામિકે કમલમેં બિલીન હો જાતા હૈ-યહ મી  
 પૌરાણિકોકા મત હૈ । “ અપર્યવસિતો લોકઃ ” યહ લોક અન્તરહિત હૈ,  
 ક્યોં કિ જો સત્ પદાર્થ હોતા હૈ ઉસકા અત્યન્તિક વિનાશ નહીં હોતા  
 હૈ । જિમકે સિદ્ધાન્તાનુસાર લોક સાદિક હૈ ઉસકે સિદ્ધાન્તાનુસાર લોક  
 સપર્યવસિત મી હૈ, જિસને ઉસે અનાદિ માના હૈ, ઉસકી માન્યતાનુસાર  
 યહ અપર્યવસિત મી હૈ ।

હત્, શુ હત્ તે કહેવાઈ ચકતું નથી આરે જાનુ સુનકાર જેવું હત્ વિષ્ણુની  
 નામિમાં શહેલા કમળથી આ જગત ઉત્પત્ત થયેલ છે આ બરાબર છે

આ લોક અનાદિ છે-આ સૌગતોક હોવું છે આ માન્યતા-અનુસાર  
 એકાન્ત રૂપથી અનાદિ પરપરાથી આજુ આવેલ હોવાથી, લોકમાં અનાદિતા  
 આવે છે

સપર્યવસિતો લોકઃ ” આ લોક સાન્ત છે પ્રભુના મમયમાં આ  
 લોક વિષ્ણુના નામિ-કમળમાં વિલીન થઈ ગય છે આવો પણ પૌરાણિકોનો  
 મત છે “ અપર્યવસિતો લોકઃ ” આ લોક અન્તરહિત છે, કેમ કે જે સત્  
 પદાર્થ હોય છે એને અત્યન્તિક વિનાશ થતો નથી જેના સિદ્ધાન્ત અનુસાર  
 લોક સાદિક છે તેના સિદ્ધાન્ત-અનુસાર લોક સપર્યવસિત પણ છે, જેને  
 એવું અનાદિ માનેલ છે-એમની માન્યતાનુસાર તે અપર્યવસિત પણ છે

स्याद्वादतत्त्वानाभिज्ञास्ते ' अस्ति लोकः ' इत्यादिनैकान्तवादमाश्रित्य नाना-  
विधवाचां विनियोजनमभिधायामविषयेऽपि विवदन्ते । तदेव दर्शयति—'सुकृत'-  
मित्यादि। सुकृतमिति वा=पुण्यमिति, सुष्ठुकृतमित्यर्थो वा, एवमेव दुष्कृतमिति वा  
=पापमिति वादिनो भवन्ति । तथा हि—यदनेन परिहृतसर्वसङ्गेन पञ्चमहाव्रतादान  
विहितं तत्सुष्ठु कृतम्, तथा विहितस्त्रीपरिग्रहेण तनयमनुत्पाद्य स्त्री त्यक्तेति दुष्कृ-  
तमिति वा कृतमिति ।

किञ्च 'कल्याणमिति वा' गृहीतसंयमं कश्चित्कथयति—कल्याणमाचरितं त्वयेति,

ये पूर्वोक्त " अस्ति " आदि लोकविषयक समस्त मान्यताएँ स्या-  
द्वादसिद्धान्तके तत्त्वसे अनभिज्ञ हुए व्यक्तियोंकी हैं । इन अनेक प्रकारकी  
मान्यताओंमें एकान्तरूपसे ही अपने २ अभिमतकी पुष्टि की गई है ।  
इन प्रवादियों की मान्यता आत्मतत्त्वमें भी भिन्न २ रूपसे है—यही बात  
'सुकृत' मित्यादि वाक्योंसे सूत्रकार स्पष्ट करते हैं ।

पुण्य अथवा सुष्ठुकृतका नाम सुकृत है । पाप अथवा खोटे कृत-  
किये गयेका नाम दुष्कृत है । जैसे—इसने सर्व परिग्रह आदिका त्यागकर  
पंच महाव्रतोंको धारण किया यह तो सुष्ठुकृतम्—बहुत अच्छा किया;  
परन्तु जब इसके स्त्री थी तो इसे चाहिये था कि उसके कमसे कम एक-  
बच्चा ही हो जाता तब जा कर यह मुनि बनता, इसके पहिले इसने स्त्री  
त्याग कर दिया और मुनि बन गया यह इसने 'दुष्कृतम्'—अच्छा नहीं किया ।

तथा—' कल्याणम् इति वा'—जिसने संयम धारण कर लिया है, ऐसे

आ, पूर्वोक्त " अस्ति " आदि लोकविषयक समस्त मान्यताओं, स्याद्वाद  
सिद्धातना तत्त्वथी अन्वेष्ये एवी व्यक्तित्वांनी छे आवी अनेक प्रकारनी मान्य-  
ताओंमा ओकान्तरूपथी न पोतपोताना मतनी पुष्टि करवामा आवेल छे आ  
मतवाणाओंनी मान्यता आत्म तत्त्वमा पण्णु णुहा णुहा रूपथी छे आ वात-  
'सुकृतम्' मित्यादि वाक्योथी सूत्रकार स्पष्ट करे छे पुण्य—अथवा साईं कार्यं तेनु  
नाम सुकृत छे, पाप अने ओट्टु कार्यं तेनु नाम दुष्कृत छे. नेम—तेण्णु  
सर्व परिग्रहनेो त्याग करी पाय महाव्रत धारणु कर्यां तेण्णु सुकृत कर्युं परन्तु  
ओनी स्त्रीने ओकाद भाणक थया पछी ओण्णु मुनिव्रत ग्रहणु कर्युं होत तो  
दीक हुतु. आनी पडेला ते मुनि भनी गयो ते ओण्णु दुष्कृत्य कर्युं,  
ओट्टवे साईं नथी कर्युं .

तथा कल्याणम् इति वा—नेण्णु संयम धारणु करेद छे ओवा मुनिना प्रत्ये



तथा 'पापमिति वा' कश्चित्कथयति-पाप त्वया समाचरित यद् गृहस्थधर्मपरिपास-  
नासमर्थं कातरोऽनपत्य एव त्वं समयं गृहीतवानित। एवमेव कश्चित्कथयति-साधु  
रिति वा असाधुरिति वा, तथैव तव सिद्धिरिति वा, असिद्धिरिति वा, तथा नित्य

मुनिके प्रति कोई ऐसा कहता है कि "कल्याणम् आचरित त्वया" तुमने  
अपनी आत्माका कल्याण भला-कर लिया। तथा 'पापमिति वा' कोई कहता  
है कि आपने यह अच्छा नहीं किया; क्यों कि इससे तो यह माकूम  
होता है कि तुम गृहस्थ धर्मके पालन करनेमें कायर-असमर्थ थे और  
इससे कायर बन कर बिना पुत्ररूप वसराधिकारीके हुए तुमने समय  
घारण कर लिया है। इसी तरह कोई कहता है- 'साधु इति वा, असाधु  
इति वा-आपने अच्छा किया, आपने अच्छा नहीं किया, तथा-'तव  
सिद्धिरिति वा'-असिद्धिरिति वा, तुम्हारी सिद्धि होगी-तुम्हारी सिद्धि  
नहीं होगी, एवं नित्य इति वा-तुमने घरवालोंका कुछ भी ख्याल न  
कर और उन्हें रोता बिलम्बता छोड़ कर जो यह साधुका वेप पहिर लिया  
है-इससे तुम्हारी गति अच्छी हो जावेगी, सो यह बात नहीं है, दूसरों  
को दुःस्वके उत्पादक होनेसे तुमने नरक गमनके योग्य पापका ही उपा-  
र्जन किया है, अतः तुम मनुष्य नहीं-नारकी हो। यह आवेशके वचन  
हैं। कोई २ मनुष्य सांसारिक पदार्थोंको छोड़कर आत्मकल्याण करने

कहाँ जेब ठेके छे के "कल्याणम् आचरित त्वया" तमे तमास आत्मानु  
कल्याणु भवे करी बीधु तथा-'पापमिति वा'-कहाँ जेब ठेके छे के तमे अ धीक  
नधी कहुं; केम छे आधी तो जेब माह्रम पठे छे के तमे गृहस्थ धर्मनु पालन  
करवामा असमर्थ देता, अने जेधी कायर अनी पुत्ररूपी उत्तराधिकारी बिना  
तमे समय धारण करेस छे आमा कहीं जेब पलु ठेके छे के 'साधु इति वा'  
'असाधु इति वा' आपे साइ कहुं आपे साइ नधी कहुं तथा- तव सिद्धि-  
रिति वा असिद्धिरिति वा तमारी सिद्धि भये तमारी सिद्धि यन्तर नधी  
तथा-'नित्य इति वा' तमे पोताना परवाणज्जोने कहीं पलु अथ  
कहाँ बजर अने तेने देता कइजना ऐडीने ने अ साधुने वेश पड़ेथे छे  
जेधी तमारी अति सारी भये जे बात बरोबर नधी, पीबज्जोने दुःख भाप  
तेपु करवाधी तमोजे नरक योग्य पापनु अ उपाजन करेस छे आधी तमे  
मनुष्य नधी, नारकी छे। अ आवेशनु बचन छे कहीं कहीं मनुष्य, सांसा-  
रीक पदार्थोने ऐडीने आत्मकल्याणु करवाणज्जोनी प्रथसा-स्तुति पलु करे छे

इति वा-नरकगमनायोपार्जितपापत्वादेव त्वं नरकः=नरकगामी, अथवा निरय इति वा-नरकलोकोऽस्तीति वा, तथैव अनिरय इति वा-नरकलोको नास्तीति, यद्वा-नास्य संयमिनो नरकगमनमिति वा-इति । इत्यादीनि स्वच्छन्दमतिकल्पितानि नाना-विधानि वाक्यानि विवदन्ते । अन्यदप्युक्त्वा विवदन्त इति दर्शयति-‘यदिदं’-मित्यादि । यद्=यस्मात् कारणात्, यद्वा-यत्पूर्वोक्तं=लोकादिकमभिहितं तद् इदं=लोकादिकं विप्रतिपन्नाः=विरुद्धभाषणस्ते मिथ्यादृष्टयः, मामकं=स्वकीयं धर्मं श्रेयस्करं मुक्तिकरं च प्रज्ञापयन्तः=प्रकर्षेण प्ररूपयन्तः स्वयं श्रेयोमार्गाद् वञ्चिताः परा-

वालोक्य प्रशंसा-स्तुति भी करते हैं और कहते हैं-“अनिरय इति” आपने अच्छा किया जो इस संसाररूपी नरकसे आप पार हो गये, अथवा यह सिद्धान्तका वचन है कि “अणुवयमहव्वयाहं न लहह देवाउगं मुत्तं” अणुव्रत महाव्रत देवायुके बंध करनेवालेके सिवाय किसी अन्य आयुके बंधक जीवको नहीं होते हैं-इस अपेक्षा इस संयमीका नरकमें गमन नहीं हो सकता । इस प्रकार लोग स्वच्छन्दमतिसे कल्पित अनेक प्रकारके वाक्योंका प्रयोग करते रहते हैं । और भी स्वकल्पित बातें बनावते हैं-इसे सूत्रकार “यदिदं विप्रतिपन्नाः” इन पदोंसे प्रदर्शित करते हैं । इस प्रकारसे विरुद्ध भाषण करनेवाले ये मिथ्यादृष्टि जीव “मेरा ही धर्म श्रेयस्कर और मोक्षप्रदाता है” इस प्रकारकी प्ररूपणा कर स्वयं श्रेयोमार्गसे वंचित बन, अन्य जीवोंको भी ठगा करते हैं, अर्थात् उस मार्गसे दूसरोंको वंचित बनावते रहते हैं । जिस प्रकार कोई

अने कडे छे ‘अनिरय इति वा’ आपे साइ कथुं ले आ ससारुपी नरकथी आप पार थया, अथवा आ सिद्धातनु वचन छे डे-“अणुवयमहव्वयाहं न लहह देवाउगं मुत्तं” अणुव्रत महाव्रत देवायुना बंध करवावाणानी सिवाय कोई भीन आयुष्यना बन्धक लवने थतुं नथी आ अपेक्षा जेवा जेवा संयमीनु नरकमा गमन थछ शकतुं नथी आ रीते लोक स्वच्छन्दमतिथी कल्पित अनेक प्रकारना वाक्योना प्रयोग करता रहे छे भील पणु स्वकल्पित वातो ते कडेता रहे छे तेने सूत्रकार-“यदिदं विप्रतिपन्ना” आ पदोथी प्रदर्शित करे छे आ लोकमां आ प्रकारथी विरुद्ध भाषण करवावाणा जे मिथ्यादृष्टि लव “मेरो न धर्म श्रेयस्कर अने मोक्ष आपनार छे” आ प्रकारनी इरूपणा करी श्रेयोमार्गथी वंचित जनी, भीन लवने पणु कगे छे अर्थात् जे मार्गथी भीनजोने पणु वंचित जनावे छे जे रीते कोई आधुणो आधुणानो हाथ

નપિ વચ્ચયન્તિ 'અધેનૈત્ર નીયમાનો યથાડ્ઞઃ' ઇતિ સ્લોકોક્ત્યા સ્વયં નષ્ટા  
પરાભાગ્નયન્તીતિ વાત્પર્યમ્ । સ્લોકાદિવિષયે તે યદુષ્ઠા વિષદન્તે, તથા—

“ઈષ્ઠન્તિ કૃત્રિમ સૃષ્ટિવાદિનઃ સર્વમેવમિતિ ભિન્નમ્ ॥  
કૃસ્ત્નં લોકે મહેશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥  
નારીશ્વરં કેષિકેક્તિસોમાન્નિસમ્મર્થં લોકમ્ ॥  
દ્રવ્યાદિપદ્ધવિકલ્પં અગદતત્ કેચિદિચ્છન્તિ ॥ ૨ ॥  
ઈશ્વરપ્રેરિત કેચિત્ કેચિદ્બ્રહ્મકૃતં અગત્ ॥  
અપ્યક્તમર્થં સર્વં વિશ્વમિચ્છન્તિ કાપિલાઃ ॥ ૩ ॥

અંધા અધેકા હાથ પકડી કર માર્ગ યતાને છે જાતા હૈ તો વહુ દુસરે અંધ  
કો ઢી માર્ગસે અષ્ટ યના દેતા હૈ, અથવા યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં પહુંચા  
સકતા, ઘસી પ્રકાર હન મિધ્યાદષ્ટિયોકે કંદેમે પડા હુઆ પ્રાણી ઢી  
યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં જા સકતા । અતઃ એસે ઝીવ સ્વયં નષ્ટ યન કર  
દુસરોકો ઢી નષ્ટ કરતે હૈ । લોકાદિકકે વિષયમે ઢી યે યદુષ્ઠા વિષદ  
કિયા કરતે હૈ—

ઈષ્ઠન્તિ કૃત્રિમ સૃષ્ટિવાદિનઃ, સર્વમેવમિતિ ભિન્નમ્ ।  
કૃસ્ત્નં લોકે મહેશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥  
નારીશ્વરં કેચિત્ કેષિત્ સોમાન્નિસમર્થં લોકમ્ ।  
દ્રવ્યાદિ-પદ્ધવિકલ્પ અગદતત્ કેચિદિચ્છન્તિ ॥ ૨ ॥  
ઈશ્વરપ્રેરિતં કેચિત્ કેચિત્ બ્રહ્મકૃતં અગત્ ।  
અપ્યક્તમર્થં સર્વં વિશ્વમિચ્છન્તિ કાપિલાઃ ॥ ૩ ॥

પદ્ધતિને માર્ગ યતાનવા લઈ જાય છે તે ઝીવ આંધળાને પણ માર્ગથી વેગળ  
કરી દે છે અને ઉચિત સ્થાને પહોંચાડી શકતો નથી. એ રીતે જાવા મિધ્યા-  
દષ્ટિના દુષ્ટા પડેલા પ્રાણી પણ ઉચિત સ્થાને પહોંચી શકતા નથી. જ્યથી  
એવા એવા સ્વયં નાશ પામીને ઝીવને પણ નાશ કરે છે લોકાદિકના વિષયમાં  
પણ યજી વખત વિવાદ થયાં કરે છે

ઈષ્ઠન્તિ કૃત્રિમ સૃષ્ટિવાદિન , સર્વમેવમિતિ ભિન્નમ્ ।  
કૃસ્ત્નં લોકે મહેશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥  
નારીશ્વરં કેચિત્ કેષિત્ સામાન્નિમર્થં ભોક્તમ્ ।  
દ્રવ્યાદિ-પદ્ધવિકલ્પ અગદતત્ કેચિદિષ્ઠન્તિ ॥ ૨ ॥  
ઈશ્વરપ્રેરિત કેચિત્ કેચિત્ બ્રહ્મકૃતં અગત્ ।  
અપ્યક્તમર્થં સર્વં વિશ્વમિષ્ઠન્તિ કાપિલાઃ ॥ ૩ ॥

यादृच्छिकमिदं सर्वं केचिद्भूतविकारजम् ॥

केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः ॥ ४ ॥

अनेकान्तवादानभिज्ञानामेकान्तवादिनामेतत्कथनम् । तथाहि—

यादृच्छिकमिदं सर्वं केचिद्भूतविकारजम् ।

केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः ॥ ४ ॥

भावार्थ—सृष्टिवादी वैशेषिक, भीमांसक और नैयायिक आदि सिद्धान्तकार इस लोकको कृत्रिम और आदि-अन्तसहित मानते हैं । कोई २ अर्धनारीश्वरसे उत्पन्न हुआ इसे स्वीकार करते हैं । सोम, चन्द्र और अग्निसे यह लोक हुआ है—कोई २ ऐसा कहते हैं । किसी २ का सिद्धान्त है कि यह लोक द्रव्यादि-षड्-विकल्प-स्वरूप है । कोई २ इसे ईश्वरसे उद्भूत, कोई २ इसे ब्रह्मासे रचित मानते हैं । सांख्य इसे प्रकृति से जनित, कोई २ इसे स्वतः उद्भूत, और कोई २ इसे पृथ्व्यादिक पांच भूतोंका विकारस्वरूप स्वीकार करते हैं । कोई इसे एकरूप और कोई इसे अनेकरूप भी मानते हैं । इस प्रकारसे इस लोकके विषयमें भिन्न २ सिद्धान्तकारोंकी भिन्न २ मान्यताएँ इन पद्यों द्वारा बतलाई गई हैं । लोक और आत्मतत्त्वके विषयमें ये उपर्युक्त मान्यताएँ उन्हीं व्यक्तियों की हैं जो अनेकान्तवादसे अनभिज्ञ बने हुए हैं । कहा भी है—

यादृच्छिकमिदं सर्वं केचिद् भूतविकारजम् ।

केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः ॥ ४ ॥

भावार्थ—सृष्टिवादी वैशेषिक, भीमांसक अने नैयायिक आदि सिद्धान्तकार आ लोकने कृत्रिम अने आदि-अन्त-सहित माने छे कोछ कोछ अर्धनारीश्वरथी उत्पन्न थयेल छे सोम, चन्द्र अने अग्निथी आ लोक थयेल छे तेम कोछ छे कोछ कोछनो सिद्धांत छे के आ लोक द्रव्यादि-षड्-विकल्प-स्वरूप छे कोछकोछ तेने ईश्वरथी उत्पन्न थयेल, कोछ कोछ तेने ब्रह्माथी रचित थयेल माने छे सांख्य तेने प्रकृतिथी जनित स्वीकारे छे कोछ कोछ तेने स्वतः उद्भूत अने कोछ कोछ तेने पृथ्वी आदि पांच भूताना विकार-स्वरूप स्वीकार करे छे कोछ तेने कोछ, कोछ तेने अनेक रूप पणु माने छे, आ प्रकारथी आ लोकना विषयमा भिन्न भिन्न सिद्धांतकारानी भिन्न भिन्न मान्यतायो आ पद्यो द्वारा बतावेल छे लोक अने आत्मतत्त्वना विषयमा उपर उहेल अने मान्यतायो अने व्यक्तियोंनी छे के अनेकान्तवादथी अन्तु छे कहु पणु छे

“लोकक्रियाऽऽत्मतत्त्वे, विषदन्ते वादिनो विभिन्नार्थम् ।”

अधिदितपूर्व येषां स्याद्वादविनिश्चितं तत्त्वम् ॥ १ ॥ इति ।

येषां तु स्याद्वादसिद्धान्तो हृदये प्रकृतस्तेषामस्तित्वनास्तित्वाद्यर्थस्य तत्त्व-  
भयाभिप्रायेण कथञ्चित्सङ्घटिसद्भावात्मवादस्यानमेव नास्तीति ।

परतैरिच्छामांशमपारमार्थिकत्वं प्रतिपादयन् स्वधर्मस्य पारमार्थिकत्वं दर्श-  
यति—‘इत्यादि’—इत्यादि, अप्रापि ‘अस्ति लोको नास्ति लोक’ इत्यादि—

लोकक्रियात्मतत्त्वे विषदन्ते वादिनो विभिन्नार्थम् ।

अधिदितपूर्व येषां स्याद्वादविनिश्चितं तत्त्वम् ॥

जिनके हृदयमें स्याद्वाद सिद्धान्तका वास्तव्य है, उन्हें अस्तित्व-नास्तित्व  
इत्यादि अर्थमें उस २ नयके अभिप्रायसे संगतिका सद्भाव होनेसे, वाद  
विषादके लिये स्थान ही नहीं है ।

भाषार्थ—ये पूर्वोक्त मन्तव्य एकान्तरूपमें माने जाने पर ही एक  
दूसरेके लिये विषादका कारण बनते हैं, परन्तु जब ये किसी अपेक्षासे  
( नयके अभिप्रायसे ) विचार करनेमें आते हैं तो इनमें विषादके लिये  
स्थान ही नहीं रहता है । इसी बातको सूत्रकार “अप्रापि” इत्यादि  
पदोंसे प्रदर्शित करते हैं, ये कहते हैं—परतीर्थिक धर्मोंमें अपरमार्थिकता  
और स्वधर्ममें परमार्थिकता इस प्रकारसे है—

अस्ति लोक, नास्ति लोक, ये दो परस्पर विरुद्ध हैं—अस्ति लोकी

लोकक्रियात्मतत्त्वे विषदन्ते वादिनो विभिन्नार्थम् ।

अधिदितपूर्व येषां स्याद्वादविनिश्चितं तत्त्वम् ॥

जोना हृदयमें स्याद्वाद सिद्धान्तका वास्तव्य है, उन्हें अस्तित्व-नास्तित्व इत्यादि  
अर्थोंमें वे वे नयके अभिप्रायसे संगतिका सद्भाव होनेसे, वादविषाद  
भाटे स्थान नहीं ।

भाषार्थ—ये पूर्वोक्त मन्तव्य एकान्तरूपमें मानवार्थोंमें आवेक होनेसे  
लोक-लोकाभाटे विषादका कारण बनते हैं, परन्तु जय ये कोई अपेक्षासे  
( नयके अभिप्रायसे ) विचार करनेमें आते हैं तो इनमें विषादके लिये  
स्थान ही नहीं, ये वादके सूत्रकार “अप्रापि” इत्यादि पदोंसे प्रदर्शित करते  
हैं, वे कहते हैं—परतीर्थिक धर्मोंमें अपरमार्थिकता और स्वधर्मोंमें परमार्थिकता  
इस प्रकारसे है—

‘अस्ति लोक, नास्ति लोक’ ये दो परस्पर विरुद्ध हैं—अस्ति लोकी

विप्रतिपत्तां एवं यूयं जानीत=बुद्ध्यध्वम्, यस्तेषाम् 'अस्ति लोकः' 'नास्ति लोकः'  
इत्याद्येकान्तवाद. सः अकस्मात्='अकस्मात्' इति संस्कृतस्यैव मगधदेशे प्रसिद्धत्वान्मूले  
गणधरैस्तदेव गृहीतम्, 'कस्मात्' इति हेतौ; न कस्मात् अकस्मात् निर्हेतुकोऽस्तीत्यर्थः।  
तथा हि-यद्येकान्तः, 'अस्ति लोकः' इत्यत्रास्तित्वसमानाधिकरणत्वं लोकस्य स्यात्  
ततश्च 'यदस्ति तल्लोकः' इति व्याप्ते. 'अलोकोऽस्ति' इत्यत्राऽस्तित्वरूपहेतोः

अपेक्षा नास्ति और नास्तिकी अपेक्षा अस्ति। कोई वादी लोकमें अस्तित्व  
धर्म स्वीकार करता है दूसरा उसमें नास्तित्व। ये दोनों कथन परस्पर  
विरुद्ध इसलिये हैं कि ये नयकी विवक्षासे रहित हैं। इसीका नाम  
एकान्तवाद है। इसीलिये इनमें अपनी २ मान्यतानुसार वादियोंको  
विवादका प्रसंग आता है। सूत्रकार कहते हैं कि इस विप्रतिपत्तिमें आप  
लोग यही समझो कि उनका "अस्ति लोकः, नास्ति लोकः" यह जो  
एकान्तवाद है वह अकस्मात्-निर्हेतुक है। "अकस्मात्" यह निर्हेतुकता-  
बोधक पद संस्कृत भाषाकी तरह मगधदेशकी भाषामें भी प्रसिद्ध है, इस  
लिये गणधरोंने भी मूल सूत्रमें उसी पदका ग्रहण किया है। "कस्मात्" यह  
हेत्वर्थमें आता है, जो "कस्मात्" नहीं वह "अकस्मात्" है। इसका  
अर्थ निर्हेतुक" होता है, अर्थात् उनका यह वाद निर्हेतुक है। जैसे कि-  
"अस्ति लोकः" इस कथनमें अस्तित्वके साथ समानाधिकरणता एका-  
न्तरूपसे लोकमें मानी जावे तो "यदस्ति तल्लोकः" जो है वह लोक है-

अपेक्षा नास्ति अने नास्तिकी अपेक्षा अस्ति कोई वादी लोकमा अस्तित्व धर्मनो  
स्वीकार करे छे भील नास्तित्वनो आ अने वातो परस्पर विरुद्ध आ भाटे छे  
के अे नयनी विवक्षाथी रहित छे. आनु नाम ऐकान्तवाद छे आ भाटे ऐमां  
पोतपोतानी मान्यता अनुसार वादवाणाने विवादनो प्रसंग आवे छे. सूत्रकार  
कहे छे के आ सामान्यमा वाद अगे आप अे समझे के ऐमनुं 'अस्ति लोक'  
नास्ति लोक' आ ने ऐकान्तवाद छे अे अकस्मात्-हेतु वगरनो छे. 'अकस्मात्' अे  
हेतु वगरनो बोधक पद संस्कृत भाषानी नेम मगधदेशमा पणु प्रसिद्ध छे. आ  
भाटे गणधराने पणु मूल सूत्रमा अे पढ़ने अडणु करेद छे "कस्मात्" आ  
हेत्वर्थमा आवे छे ने "कस्मात्" नहीं ते "अकस्मात्" छे ऐनो अर्थ  
हेतु वगरनो थाय छे अर्थात् ऐमनो अे वाद निर्हेतुक छे. "अस्ति लोक"  
आ वाक्यमा अस्तित्वनी साथे समानाधिकरणता ऐकान्तरूपथी लोकमां मान-  
वामां आवे तो "यदस्ति तल्लोक" ने छे ते लोक छे आ प्रकारनी व्याप्ति.

सत्त्वात्, साध्यस्य लोकास्य नासत्त्वादनैकान्तिको हेतु । लोकाभावरूपसाध्यामात्र-  
साधकत्ववा विरुद्धोऽपि च भवति । तथा च-अस्तित्वहेतुना लोकस्य साधने लोका-  
एवालोकाः स्यात्, आकाशास्तिकायस्य लोकालोकमेदमाभित्य 'अत्थि अलोए'

इस प्रकारकी व्याप्ति होनेसे हेतु अनैकान्तिक हो जाता है; क्यों कि  
साध्य लोकसे विरुद्ध अलोकके साथ भी इस अस्तित्वरूप हेतुकी व्याप्ति  
व्यावृत्तिवाली नहीं होती है। अनैकान्तिक हेतु यही होता है जो पक्ष  
सपक्षमें रहता हुआ भी विपक्षमें रहता है। प्रकृतमें "यदस्ति तद्लोकः"  
यहां पर अस्तित्वरूप हेतु पक्ष लोकके साथ रहता हुआ भी विपक्ष अ-  
लोकमें भी रहता है, क्यों कि यहाँ-अलोकमें साध्य-लोकका अभाव है,  
दूसरे इसीलिये यह हेतु विरुद्ध भी पड़ता है, लोकका अभावरूप जो  
साध्यका अभाव अलोक है उसका साधक यह हेतु होता है-अलोकाकाश  
में भी अस्तित्वरूप हेतु रहता है। इस बातको प्रकट करनेके लिये टीका-  
कार कहते हैं कि लोक और अलोक ये दो विभाग एक आकाश अस्ति-  
काय द्रव्यके ही हैं तो जिस प्रकार लोकमें "अस्ति लोकः" ऐसा व्यव-  
हार होता है, उसी प्रकार "अस्ति अलोकः" अलोकमें भी यह अस्ति-  
त्वविशिष्ट व्यवहार होता है। "अत्थि लोए-अत्थि अलोए" ये दोनों वचन  
आकाशाविषयक हैं, अतः अस्तित्व यह हेतु लोक और अलोक इन

दोनों ही हेतु अनैकान्तिक यह ज्ञेय है कि साध्य लोककी विरुद्ध अलोकाकी  
साधने पक्ष में अस्तित्वरूप हेतुकी व्याप्ति व्यावृत्तिवाणी यती नहीं, अनैकान्तिक  
हेतु जो कि लोक है जो पक्ष सपक्षमा रहेवा छाया विपक्षमा पक्ष रहे है प्रकृ-  
तमा 'यदस्ति तद्लोकः' अहाँ पर अस्तित्वरूप हेतु पक्ष लोककी साधने रहेवा  
छाया पक्ष विपक्ष अलोकाकाशमा पक्ष रहे है किम कि त्या अलोकाकाशमा साध्य लोकने  
अभाव है पीछे व्यावृत्ति अस्तित्व हेतु विरुद्ध पक्ष पक्ष है लोकने अभावपक्ष  
साध्यने अभाव अलोका है जेने साधक में हेतु साध है-अलोकाकाशमा पक्ष  
अस्तित्वरूप हेतु रहे है आ वातने प्रकट करवा भाटे टीकाकार कहे है कि  
लोक अने अलोका आ जे विलास कोक आकाश अस्तिकाय द्रव्यमा है तो  
जे प्रकार लोकमा "अस्ति लोकः" जेवे व्यवहार साध है जे कि हीते "अस्ति  
अलोका" अलोकाकाशमा पक्ष अतः अस्तित्वविशिष्ट व्यवहार साध है जे आकाशमा  
"अत्थि लोए-अत्थि अलोए" वचन है आभी अस्तित्व आ हेतु लोक अने अलोका  
अनेमां व्यापक है लोक अने अलोका अने अस्तित्वना व्याप्य है आ

इत्यागमवचनाद् अस्तित्वं लोकालोकव्यापकम् । लोकत्वमलोकत्वं च अस्तित्वव्याप्यम् इति अस्तित्वहेतोरुभयत्र समानत्वाद् अस्तित्वहेतुसद्भावेन लोकोऽप्यलोक इत्यापद्येत, अलोकस्य अस्तित्वव्याप्यतया व्यापकीभूतास्तित्वसत्तया व्याप्यभूतालोकत्वसत्ता निर्वाधा ।

अपरञ्च—एवम् अलोकाभावरूपस्य लोकस्य अस्तित्वव्याप्यत्वे अलोकस्यापि लोकत्वप्रसङ्गः, लोकत्वरूपव्याप्यसद्भावे व्यापकस्यापि अलोकस्यास्तित्वस्य नि-

उभयोर्में व्यापक है, लोक और अलोक ये दोनों उस अस्तित्वके व्याप्य हैं । इसलिये अस्तित्व हेतु दोनोंमें समानरूपसे रहता है । इस हेतुसे अतिप्रसंग नामका भी दूषण आता है । क्योंकि अस्तित्व हेतुके सद्भावसे लोक भी अलोकरूपसे और अलोक लोकरूपसे आपादित किया जा सकता है । कारण कि लोक जिस प्रकार अस्तित्वका व्याप्य है और वह अपनी व्यापकीभूत सत्तासे समन्वित है उसी प्रकार अलोक भी अस्तित्वका व्याप्य है और वह भी उसी सत्तासे समन्वित है, अतः सत्ताके एकत्व होनेसे लोकमें भी अलोकपना आपादित किया जा सकता है । इसी प्रकार अलोकमें भी लोकपना आपादित हो सकता है, और वह भी इस प्रकारसे कि अलोकके अभावरूप लोक अस्तित्वका व्याप्यपनामें रहता है; इसलिये अलोकमें लोकत्वका प्रसंग हो सकता है; क्योंकि लोकत्वरूप व्याप्यके सद्भावमें व्यापक—जो अलोकका अस्तित्व है, उसका भी नियमसे वहां सद्भाव पाया जाता है । तब तो लोक अलोक और अलोक लोक हो जायगा—इस प्रकार अनिष्टापत्ति होनेसे कुछ

કારણે અસ્તિત્વ હેતુ બન્નેમા સમાન રૂપથી રહેલ છે આ હેતુથી અતિપ્રસંગ નામનુ દૂષણ આવે છે કેમકે અસ્તિત્વ હેતુના સદ્ભાવથી લોક પણ અલોક-રૂપથી અને અલોક લોકરૂપથી આપાદિત કરી શકાય છે કારણ કે લોક ને પ્રકારે અસ્તિત્વનો વ્યાપ્ય છે અને તે પોતાની વ્યાપકભૂત સત્તાથી સમન્વિત છે એવી રીતે અલોક પણ અસ્તિત્વનો વ્યાપ્ય છે અને એ પણ એવી સત્તાથી સમન્વિત છે, આથી સત્તાનુ એકત્વ થવાથી લોકમા પણ અલોકપના આપાદિત કરી શકાય છે.

આ રીતે અલોકમા પણ લોકપના આપાદિત થઈ શકે છે અને એ પણ આ પ્રકારથી કે અલોકના અભાવરૂપ લોક અસ્તિત્વના વ્યાપ્યપનામાં રહે છે આ કારણે અલોકમા લોકત્વનો પ્રસંગ થઈ શકે છે, કેમકે લોકત્વરૂપ વ્યાપ્યના સદ્ભાવમા વ્યાપક ને અલોકનુ અસ્તિત્વ છે એનો પણ નિયમથી ત્યા સદ્ભાવ દેખાય છે. ત્યારેતો લોક અલોક અને અલોક લોક થઈ જશે. આ પ્રકારની



यमतः सद्भावान्, तथा च-लोक' अशोको भवति, अशोकोऽपि लोका, इत्यादि सर्वमनिष्टम् ।

किञ्च-सोफालोकापेक्षयाऽस्तित्वस्य व्यापकत्वे जिनदत्तनिनदासादरप्यलोका स्थापत्ति, व्याप्याया जिनदत्तच्यवतेर्नियमतो व्यापकीभूतशोकास्तित्वसद्भावान्, जिनदत्तादौ अशोकव्यापकस्तित्वस्य सद्भाव अशोकत्वसत्ताया अवश्यम्भावत्व ।

किञ्च-यद्यस्तित्वरूपेण इतना लोकस्य साध्यते तर्हि 'अस्तित्वरूपो हेतुरस्ति' इति कृत्वा इतुरपि-भगित्ववानेष भवति, तथा च हेतोरपि लोकस्वे सिद्धे इत्-भी व्यवस्था नहीं बन सकती है ।

तथा-लोक और अलोककी अपेक्षासे अस्तित्वमें व्यापकता मानने पर जिनदत्त और जिनदास भादि व्यक्तियोंमें भी लोकस्य और अलोकत्व की आपत्ति भाषगी, क्योंकि उभयकी सत्ताका यहाँ सद्भाव है। व्याप्य जिनदत्त आदि व्यक्ति लोकरूप इसलिये माने जाने चाहिये कि उनमें लोकका व्यापक जो अस्तित्व है उसका सद्भाव है, तथा अलोकका व्यापक जो अस्तित्व है उसका भी यहाँ सद्भाव है।

तथा-यदि अस्तित्वरूपसे लोककी सिद्धि होती है तो कोई यहाँ यह भी प्रश्न कर सकता है कि अस्तित्वरूप हेतु जय स्वयं अस्तित्व है तो उसे भी अस्तित्वविशिष्ट होनेसे लोकस्थापत्ति आवेगी, अर्थात् वह स्वयं लोकरूप हो जायगा ।

तथा-हेतु और साध्यमें लोकरूपपनेसे एकत्वापत्ति आ जानेसे साध्यसाधकभाव ही नहीं बन सकता है, ऐसी स्थितिमें किसको हेतु मान

अनिष्टापत्ति कदाची कदा पक्ष व्यवस्था नहीं कर सकती।

तथा-लोक अने अलोककी अपेक्षाधी अस्तित्वमें व्यापकता मानवार्थी अनदत्त अने अनदास वगैरे व्यक्तिओंमें पक्ष लोकत्व अने अलोकत्वकी आपत्ति आधी नये। हेम के अनेनी सत्ताने त्या सद्भाव छे व्याप्य अनदत्त आदि व्यक्तिने लोकत्व के कारणे मानवी कोठके के अनेमां लोकत्व के व्यापक अस्तित्व छे अनेने सद्भाव छे तथा अलोकत्व व्यापक के अस्तित्व छे अनेने पक्ष सद्भाव छे

तथा-अने अस्तित्वरूपधी लोककी सिद्धि शक्य छे ते कदा केवे। पक्ष प्रश्न करी शक्य छे के अस्तित्वरूप हेतु अथवा स्वयं अस्तित्व छे ते अनेने पक्ष अस्तित्वविशिष्ट कोवाधी लोकत्वापत्ति आवये अर्थात् के स्वयं लोकत्व अनी नये। तेमके हेतु अने साध्यमा लोकत्वपक्षधी लोकत्वापत्ति आधी नवाधी

સાધ્યોર્લોકત્વરૂપતયૈકત્વાપત્તિઃ, તતથ્ચ કં હેતુમાશ્રિત્ય લોકઃ સાધયિષ્યતે પ્રત્યુત લોકાદન્યોઽપ્યલોકઃ અસ્તિત્વહેત્વસમ્ભવાદ્ 'અસ્તિ લોકઃ' ઇતિ પ્રતિજ્ઞાઽપિ નૈવ સિદ્ધયતિ । તસ્માદેકાન્તત એવ લોકાસ્તિત્વે સ્વીક્રિયમાણે ઉક્તરીત્યા હેત્વભાવોઽસ્તીતિ 'અકસ્માત્' ઇતિ પદેન ભગવતા પ્રદર્શિતમ્ ।

અત્રાયં વિવેકઃ—સિદ્ધો હિ હેતુર્ભવતિ, તત્ર યદ્યસ્તિત્વહેતોર્લોકરૂપસાધ્યાન્ત-

કર લોકકી સિદ્ધિ કી જા સકેગી ! લોકકી સિદ્ધિકે અભાવમેં 'અસ્તિ લોકઃ' યહ સાધ્ય ઓર પક્ષકી વચનસ્વરૂપ જો પ્રતિજ્ઞા હૈ ઉસકી ખા સિદ્ધિ નહીં હો સકતી ! સાધ્યકી સિદ્ધિ હેતુસે હોતી હૈ, ક્યોં કિ હેતુ ઓર સાધ્યકા પરસ્પરમેં અવિનાભાવ સમ્બન્ધ હોતા હૈ । યહાં પર લોકકે અસ્તિત્વવિધાયક હેતુકા હી જબ અભાવ હૈ તબ ફિર સાધ્યકી સિદ્ધિ હેતુકે અભાવમેં હો ખી કૈસે સકતી હૈ ? નહીં હો સકને સે પ્રતિજ્ઞા કી હાનિ આતી હૈ । ઇસલિયે મૂલ સૂત્રમેં જો "અકસ્માત્" ઇસ પદસે યહ સૂત્રકારને કહા હૈ કિ "અસ્તિ લોકઃ નાસ્તિ લોકઃ" ઇત્યાદિ વિપ્રતિપત્તિયાં નિર્હેતુક હૈં, વહ વાત યહાં તક સ્પષ્ટ રીતિસે સમઘાઈ ગઈ હૈ; ક્યોં કિ એકાન્તરીતિસે હી લોકકા અસ્તિત્વ સ્વીકાર કરનેમેં ઉપર્યુક્ત રીતિસે હેતુકા અભાવ આયા હૈ ।

જો હેતુ સિદ્ધ હોતા હૈ વહી અપને સાધ્યકા સાધક હોતા હૈ, અસિદ્ધ નહીં । અસિદ્ધ સાધ્ય હોતા હૈ । પ્રકૃતમેં અસ્તિત્વરૂપ હેતુ જબ અપને સાધ્યકે

સાધ્ય-સાધકભાવ જ નથી બની શકતા એવી સ્થિતિમાં કોને હેતુ માની લોકની સિદ્ધિ કરી શકાય ! લોકની સિદ્ધિના અભાવમા "અસ્તિ લોકઃ" આ સાધ્ય અને પક્ષના વચનરૂપ જે પ્રતિજ્ઞા છે એની પણ સિદ્ધિ થઈ શકતી. સાધ્યની સિદ્ધિ હેતુથી થાય છે, કેમ કે હેતુ અને સાધ્યનો પરસ્પર અવિનાભાવ સબધ થાય છે અહીં લોકનું અસ્તિત્વ-વિધાયક હેતુનો જ બ્યારે અભાવ છે-ત્યારે પછી સાધ્યની સિદ્ધિ હેતુના અભાવમા થઈ પણ કેમ શકે ? ન થઈ શકવાથી પ્રતિજ્ઞાને હાનિ પહોંચે છે આ કારણે મૂળ સૂત્રમાં "અકસ્માત્" એ પદથી સૂત્રકારે આ કહ્યું છે કે "અસ્તિ લોક નાસ્તિ લોક" ઇત્યાદિ વિપ્રતિપત્તિઓ નિર્હેતુક છે એ વાત અહીં સુધી સ્પષ્ટ રીતે સમજાવવામા આવી છે કે એકાન્ત રીતિથી જ લોકના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરવામા ઉપર્યુક્ત રીતિથી હેતુનો અભાવ આવે છે.

જે હેતુ સિદ્ધ થાય છે તે જ સાધ્યમા સાધક બને છે, અસિદ્ધ નહીં અસિદ્ધ સાધ્ય થાય છે પ્રકૃતમા અસ્તિત્વરૂપ હેતુ બ્યારે પોતાના સાધ્યના અન્તર્ભૂત થઈ

यमत' सद्भावात्, तथा च—लाक' अशोको भवति, अशोकाऽपि लाक', इत्यादि सर्वमनिष्टम् ।

किञ्च—लोकालोकापेक्षयाऽस्तित्वस्य व्यापकत्वे जिनदत्तजिनदासादेरप्यशोक स्वापत्ति, व्याप्याया जिनदत्तत्रयवर्तनियमतो व्यापकीभूतशोकास्तित्वसद्भावात्, जिनदत्तादीं अशोकव्यापकमित्यस्य सद्भाव अशोकत्वसत्ताया अवश्यम्भावात् ।

किञ्च—यद्यस्तित्वरूपेण हेतुना लोकस्य साध्यते तर्हि 'अस्तित्वरूपो हेतुरस्ति' इति कृत्वा हेतुरपि—अस्तित्वत्रानेष भवति, तथा च हेतोरपि लोकत्वे सिद्धे हेतु भी व्यवस्था नहीं बन सकती है ।

तथा—लोक और अलोककी अपेक्षासे अस्तित्वमें व्यापकता मानने पर जिनदत्त और जिनदास आदि व्यक्तियोंमें भी लोकत्व और अलोकत्व की व्यापत्ति आयगी, क्योंकि उभयकी सत्ताका यहाँ सद्भाव है। व्याप्य जिनदत्त आदि व्यक्ति लोकरूप इसलिये माने जाने चाहिये कि उनमें लोकका व्यापक जो अस्तित्व है उसका सद्भाव है, तथा अलोकका व्यापक जो अस्तित्व है उसका भी यहाँ सद्भाव है।

तथा—यदि अस्तित्वरूपसे लोककी सिद्धि होती है तो कोई यहाँ यह भी प्रश्न कर सकता है कि अस्तित्वरूप हेतु जय स्वयं अस्तिरूप है तो उसे भी अस्तित्वविशिष्ट होनेसे लोकव्यापत्ति आवेगी, अर्थात् वह स्वयं लोकरूप हो जायगा ।

तथा—हेतु और साध्यमें लोकरूपपनेसे एकत्वापत्ति आ जानेसे साध्यसाधकभाव ही नहीं बन सकता है, ऐसी स्थितिमें किसको हेतु मान

अनिष्टापत्ति धवाधी ठाठ पक्ष व्यवस्था नहीं यह शकती

तथा—लोक जने अलोकनी अपेक्षाधी अस्तित्वमां व्यापकता मानवाधी लूनदत्त जने लूनदास वगैरे व्यक्तियोंमा पक्ष लोकत्व जने अलोकत्वनी व्यापत्ति आवी जरी केम के जनेनी सत्ताने त्या सद्भाव छे व्याप्य लूनदत्त आदि व्यक्तिये लोकत्व के कारणे मानवी लोकांके के जनेमां लोकत्व के व्यापक अस्तित्व छे जनेने सद्भाव छे तथा अलोकत्व व्यापक के अस्तित्व छे जनेने पक्ष सद्भाव छे

तथा—जे अस्तित्वरूपधी लोकनी सिद्धि माय छे ते ठाठ जेवे पक्ष प्रश्न करी शके छे के अस्तित्वरूप हेतु ज्यारे स्वयं अस्तित्व छे ते जने पक्ष अस्तित्वविशिष्ट लोकाधी लोकत्वापत्ति आवये अर्थात् जे स्वयं लोकत्व जनी जरी तेमज हेतु जने साध्यमा लोकत्वपक्षधी लोकत्वापत्ति आवी जवाधी

पुत्रादिवत् सर्वथाऽसत्त्वं तव प्राप्तं, तर्हि सुयैवाऽसता त्वया सह वादकथाऽऽरम्भः ।

अनेकान्तवादिनामस्माकं मते त्वेकान्ततः सत्त्वस्यासत्त्वस्य वा न सम्भवः, किन्तु द्वयोरपि सम्भवोऽस्ति, तथा हि-घटादिः स्वस्वरूपेण सन् परकीयरूपेण चाऽसन्-स्वद्रव्य-क्षेत्र-कालभावैः घटादे सत्त्वं परकीयैश्च तैरसत्त्वमिति । उक्तञ्च-

“सदेव सर्वं को नेच्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १ ॥ ” इति ।

लोकके अंतर्गत अपने आपको नहीं मानते होतो तुम्हारी वन्ध्यापुत्रकी तरह स्वतन्त्र सत्ता ही सिद्ध नहीं हो सकती; अतः असत्यात्मक होने से तुम्हारे साथ वादविवाद करना भी व्यर्थ है । वादविवाद सत्के साथ होता है, असत् वन्ध्यापुत्रके साथ नहीं ।

अनेकान्तवादी हम लोगोंके सिद्धान्तमें न किसीका एकान्तसे एकत्वं माना गया है और न एकान्तसे किसीका असत्त्व ही । सत्त्व और असत्त्व ये दो धर्म हैं और इनका सम्भव स्वद्रव्यादि-चतुष्टयकी अपेक्षासे ही स्वीकृत है, जैसे-घटादि द्रव्य अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षासे ही है, परद्रव्य-पटादिकके द्रव्य-क्षेत्रादिकी अपेक्षासे नहीं । उनकी अपेक्षासे तो उसका असत्त्व ही अंगीकृत है । कहा भी है—

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासात् न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १ ॥

इपथी लोकनी अदर पोताने मानी रह्या छे जे लोकनी अदर पोताने न मानता छे तो तमारी वध्यापुत्रनी तरह स्वतन्त्र सत्ता न सिद्ध थछे शकती नथी. अेटके असत्यात्मक होवाथी अे अगे तमारी साथे वादविवाद करवेा व्यर्थ छे. वादविवाद सत्यनी साथे होय छे, असत्य वन्ध्यापुत्रनी साथे नहीँ.

अमारा अनेकान्तवादिओना सिद्धांतमा न कोछेनु अेकान्तथी अेकत्व मानेले छे अने न तो अेकान्तथी कोछेनु असत्त्व सत्त्व अने असत्त्व आ जे धर्म छे. अने अेना सलव स्वद्रव्यादि-चतुष्टयनी अपेक्षाथी न स्वीकृत छे जेम-घटादि द्रव्य पोताना द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावनी अपेक्षाथी न छे, परद्रव्य पटादिकना द्रव्य-क्षेत्रादिनी अपेक्षाथी नहीँ अेनी अपेक्षाथी तो अेना असत्त्वनेा न अंगीकार छे कहु पछु छे—

“सदेव सर्वं को नेच्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासान्नचेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १ ॥ ” इति ।

गैतत्वेन तस्यापि साध्यत्वमापतितं, साध्यरूपहेतोरसिद्धत्वेनासाध्यतयाऽनुमानस्यै  
 धोन्धेदः स्यात्स्वन्मते-इत्यादिबहुवचन्यत्वाद् विस्तरमिया चिरम्यते । एवं 'ध्रुवो  
 लोकः' 'अध्रुवो लोकः' इत्यादिष्वपि एकान्तवाद् निरस्य स्याद्वादपक्षः सर्वत्र  
 योजनीयः । यथा-'नास्ति लोक' इति वादिर्न पृच्छामि- स्वमसि न वा ?  
 यदि स्वमसि तथा लोकान्तर्भूतस्तद्वर्हिर्भूतो वा ? यदि लोकान्तर्भूतस्त्वं तर्हि  
 'नास्ति लोक' इति ध्रुवन् कथं न सज्जस?, अथ तदन्तर्भूतो नासि तर्हि बन्ध्या

अन्तर्भूत हो जागया तब यह साध्यसम-असिद्ध, होनेसे स्वयं साध्य  
 कोटिमें आ जायगा । यहाँ साध्य लोक है, हेतु भी लोकस्वरूप हो जानेसे यह  
 साध्य जैसा हो गया; अतः साध्य भाषका अभाव होनेसे साधनसे साध्य  
 का ज्ञान न हो सकनेसे यहाँ अनुमान ही नहीं बन सकता है । इस  
 विषयमें टीकाकार कहते हैं कि बहुत कुछ कहना था, परन्तु विस्तार  
 के भयसे इतना ही कहना काफी है । इसी प्रकार "ध्रुवो लोकः" इत्यादि  
 वाक्योंमें भी एकान्तवादका निरसन और स्याद्वाद पक्षका समर्थन कर  
 लेना चाहिये । जो लोग एकान्तरूपसे "नास्ति लोकः" इस बातको कहते  
 हैं, हम उन वादियोंसे इतना पूछते हैं कि "तुम स्वयं अस्तिरूप हो कि  
 नास्तिरूप ?" यदि अस्तिरूप हो तो लोकके अन्तर्गत हो या उससे बाहर ?  
 यदि लोकके अन्तर्गत तुम अपनेको मानते हो तो "नास्ति लोक" इस  
 प्रकार कहते हुए आपको संकोच क्यों नहीं होता । क्यों कि तुम स्वयं  
 अस्तिस्वरूपसे लोकके अन्तर्गत अपने आपको मान रहे हो । यदि

अथे त्वारे ते साध्यसम-असिद्ध-हेतवाभी स्वयं साध्यकोटिमें आवी अथे, अर्हो  
 साध्य लोक है हेतु पक्ष लोकस्वरूप कथं बन्धाभी ते साध्य भाषक कथं भाष से.  
 साध्यसाधकभावने अभाव होनाभी साधनथी साध्यनु ज्ञान न बनी शकवाभी  
 आ बन्धाभी अनुमान बनी शकतु नथी. आ विषयभा टीकाकार उहे छे हे-मधुं  
 कहेवतुं कहे, परतु विस्तारभा अथथी अटहुं अ कहेवुं अथेअर छे आ प्रकारे  
 "ध्रुवो लोकः" इत्यादि वाक्यभा पक्ष लोकान्तर्वाद्नु निरसन अने स्याद्वाद पक्षनु  
 समर्थन करी देवुं अर्थके. जे लोको लोकान्तरूपथी "नास्ति लोक" आ बातने  
 कहे छे अथे तेवा वादीअने अणु पृछीअे छीअे हे "तमे स्वयं  
 अस्तिरूप छे के नास्तिरूप ?" जे अस्तिरूप छे तो लोकना अन्तर्गत छे के  
 तेनाथी जाकर ? जे लोकना अन्तर्गत पाताने मानवा हो तो "नास्ति लोक"  
 आ प्रकारे कहेवां आपने संकोच केम नथी यती ? केम के तमे स्वयं अस्तिरूप

पुत्रादिवत् सर्वथाऽसत्त्वं तव प्राप्तं, तर्हि भुधैवाऽसता त्वया सह वादकथाऽऽरम्भः ।

अनेकान्तवादिनामस्माकं मते त्वेकान्ततः सत्त्वस्यासत्त्वस्य वा न सम्भवः, किन्तु द्वयोरपि सम्भवोऽस्ति, तथा हि-घटादिः स्वस्वरूपेण सन् परकीयरूपेण चाऽसन्-स्वद्रव्य-क्षेत्र-कालभावैः घटादे सत्त्वं परकीर्यैश्च तैरसत्त्वमिति । उक्तञ्च-

“सदेव सर्वं को नेच्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १ ॥ ” इति ।

लोकके अंतर्गत अपने आपको नहीं मानते हो तो तुम्हारी बन्ध्यापुत्रकी तरह स्वतन्त्र सत्ता ही सिद्ध नहीं हो सकती; अतः असत्त्यात्मक होने से तुम्हारे साथ वादविवाद करना भी व्यर्थ है । वादविवाद सतके साथ होता है, असत् बन्ध्यापुत्रके साथ नहीं ।

अनेकान्तवादी हम लोगोंके सिद्धान्तमें न किसीका एकान्तसे एकत्वं माना गया है और न एकान्तसे किसीका असत्त्व ही । सत्त्व और असत्त्व ये दो धर्म हैं और इनका सम्भव स्वद्रव्यादि-चतुष्टयकी अपेक्षासे ही स्वीकृत है, जैसे-घटादि द्रव्य अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षासे ही है, परद्रव्य-पटादिकके द्रव्य-क्षेत्रादिकी अपेक्षासे नहीं । उनकी अपेक्षासे तो उसका असत्त्व ही अंगीकृत है । कहा भी है—

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासात् न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १ ॥

इपथी लोकनी अहर पोताने मानी रह्या छे जे लोकनी अहर पोताने न मानता छे तो तमारी बन्ध्यापुत्रनी तरह स्वतंत्र सत्ता न सिद्ध थछ शकती नथी. अेटवे असत्त्यात्मक होवारी अे अगे तमारी साथे वादविवाद करवे व्यर्थ छे. वादविवाद सत्यनी साथे होय छे, असत्य बन्ध्यापुत्रनी साथे नहीं

अमारा अनेकान्तवादिअेना सिद्धांतमा न कोठनु अेकान्तथी अेकत्व मानेअ छे अने न तो अेकान्तथी कोठनु अमत्त्व सत्त्व अने असत्त्व आ जे धर्म छे. अने अेना सत्त्व स्वद्रव्यादि-चतुष्टयनी अपेक्षाथी न स्वीकृत छे जेम-घटादि द्रव्य पोताना द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावनी अपेक्षाथी न छे, परद्रव्य पटादिकना द्रव्य-क्षेत्रादिनी अपेक्षाथी नहीं अेनी अपेक्षाथी तो अेना असत्त्वनो न अंगीकार छे. कहु पद्य छे—

“सदेव सर्वं को नेच्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १ ॥ ” इति ।

इति सुदृढमनेकान्तवादसाम्राज्यम् ।

एषमुक्तमकारण तेषां विरुद्धमपरुपतां परतैर्थिकाणां धर्मो न स्वाख्यातः—  
 क्षोभनो व्याख्यातः, एकान्तवादगर्मितत्वात्, नैव च तेषां धर्म सुप्रसङ्गः—सुप्रस-  
 पितो भवति असर्वधर्मास्तत्वात्; अतः स्याद्वादसाम्राज्यवर्हिर्मूर्तत्वात्तेषां परवादिनां  
 धर्मः सर्वथा हेय एवेति भावः ॥ सू० ३ ॥

स्वबुद्धिपरिकल्पितत्वनिरासायाऽऽह—‘से जहेय’ इत्यादि—

मूह्य्—से जहेय भगवया पवेइय आसुपझेण जाणया पासया,  
 अतुवा गुत्ती वओगोयरस्स त्तिवेमि, सव्वत्थ समय पाव तमेव  
 उवाइक्कम्म एस मह विवेगे वियाहिण, गामे वा अतुवा रणणे  
 नेव गामे नेव रणणे, धम्ममायाणह पवेइय माहणेण महम्मया

वस्तु स्वद्रव्यादिक की ही अपेक्षासे सत्त्वात्मक और परद्रव्यादिक  
 की अपेक्षासे ही असत्त्वात्मक मानी गई है । इस प्रकारकी मान्यता न  
 माननेसे किसी भी वस्तुकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती है। यही  
 सुदृढ अनेकान्तवादका साम्राज्य है ।

इस प्रकार उक्तरूपसे एकान्तरूपमें गर्मित होनेके कारण परस्परमें  
 विरुद्धार्थकी प्ररूपणा करनेवाले अन्य तीर्थिकोंका मत निर्दोष रूपसे कथित  
 नहीं है, और इसीलिये वह असर्वज्ञ प्रणीत होनेसे अच्छी तरहसे प्ररूपित  
 भी नहीं है । इसलिये स्याद्वाद साम्राज्यके यहिर्मूर्त होनेसे उन  
 परवादियोंका धर्म सर्वथा हेय ही है ॥ सू० ३ ॥

अनेकान्ततत्त्वमें सूत्रकार स्वबुद्धिसे परिकल्पितपनेका निषेध करने  
 के लिये “से जहेय” इत्यादि सूत्र कहते हैं ।

वस्तु स्वद्रव्यादिककी अपेक्षाधी सत्त्वात्मक अने परद्रव्यादिककी अपेक्षाधी  
 असत्त्वात्मक माननाका आवेग है आ प्रकारकी मान्यता न माननाकी दोषपण वस्तुकी  
 स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं सकती नही. आ सुदृढ अनेकान्तवादनु साम्राज्य है  
 आ शीते के रूपधी अनेकान्तरूपमा अभित यथाना कारणे परस्परमां विरु-  
 द्धार्थनी प्ररूपणा करनाकाका अन्य तीर्थिकाना मत निर्दोषरूपधी कहेवावेव नही  
 अने के कारणे असर्वज्ञ प्रणीत दावाधी सारी शीते प्ररूपित पण नही. आ कारणे  
 स्याद्वादसाम्राज्यना अदिर्मूर्त दावाधी परवादीकोना धर्म सर्वथा हेय है (सू०३)

अनेकान्त तत्त्वमा सूत्रकार स्वबुद्धिधी परिकल्पितपणाने निषेध करना  
 भाटे “से जहेय” इत्यादि सूत्र कहे है—

जामा तिन्नि उदाहिया, जेसु इमे आयरिया संबुज्जमाणा समु-  
द्विया, जे णिव्वुया पावेहिं कम्ममेहिं अणियाणा ते वियाहिया ॥सू०४॥

छाया—तद्यथेदं भगवता प्रवेदितम् आशुप्रज्ञेन जानता पश्यता, अथवा  
शुक्तिर्वचोगोचरस्येति ब्रवीमि, सर्वत्र सम्मतं पापं, तदेवोपातिक्रम्य एष मम विवेको  
व्याख्यातः, ग्रामे वा अथवाऽरण्ये, नैव ग्रामे नैवारण्ये, धर्ममाजानीत प्रवेदितं  
माहनेन मतिमता, यामास्त्रय उदाहृताः, एषु इमे आर्याः सम्बुध्यमानाः समुत्थिताः,  
ये निर्वृताः पापेषु कर्मसु अनिदानास्ते व्याख्याताः ॥ सू० ४ ॥

टीका—तद्यथा—इदम् अनेकान्तरूपं पूर्वोक्तं सकलव्यवहारानुसारि कुत्राप्यस्व-  
लितं मतं आशुप्रज्ञेन=शीघ्रबुद्धिना आवरणक्षयात् सततोपयुक्तेन, जानता=ज्ञानोपयुक्तेन  
पश्यता=दर्शनोपयोगवता भगवता=तीर्थङ्करेण प्रवेदितं=प्ररूपितम् । एकान्तवादिनां  
धर्मो न स्वाख्यातो भवति तत्र हेतुदृष्टान्ताभावात्, सर्वज्ञोपदिष्टस्तु स्वाख्यातः  
प्रतिज्ञा-हेतु-दृष्टान्तादिसद्भावादिति बोध्यम् । अथवा पक्षान्तरे वाग्गोचरस्य=

कोई भी वस्तु एकान्तरूपसे न अस्तिरूप है और न नास्तिरूप है,  
किन्तु अस्ति-नास्तिरूपता वस्तुओं में स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे  
ही मानी जाती है—यह बात तृतीय सूत्रकी व्याख्याके अंतमें संक्षेप-  
रूपसे बतलाई गई है। इसीका नाम अनेकान्त है। इसकी स्वीकृति  
बिना दुनियाका कोई भी व्यवहार नहीं चल सकता है। ऐसी कोई भी  
वस्तु नहीं है जो इस अनेकान्तके साम्राज्यसे बहिर्भूत हो। ऐसी  
प्ररूपणा आशुप्रज्ञ-अनन्त ज्ञानशाली और अनन्तदर्शनोपयोगी श्री  
तीर्थङ्कर भगवान्ने की है। हेतु और दृष्टान्तके अभावसे एकान्तवादिसंमत  
धर्म स्वाख्यात-निर्दोषरूपसे प्रतिपादित नहीं हुआ है। प्रतिज्ञा, हेतु,

कोई पशु वस्तु ऐकान्तइपथी न अस्तित्इय छे अने न तो नास्तित्इय छे  
अस्ति-नास्तित्इयता वस्तुओमा स्वद्रव्यादित्तुष्टयनी अपेक्षाथी न मानी शक्य  
छे आ वात त्रीण सूत्रनी व्याख्याना अतमा संक्षेपइपथी कडेलछे ऐतु न नाम  
अनेकान्त छे ऐनी स्वीकृति वगर दुनियानो कोई पशु वडेवार आली शके नहीं.  
ऐवी कोई पशु वस्तु नथी न् ऐ आ अनेकान्तना साम्राज्यथी अडिर्भूत होय ऐवी  
प्रइपथ्या आशुप्रज्ञ-अनन्तज्ञान अने अनन्तदर्शनशाणी श्री तीर्थंकर भगवाने करी  
छे हेतु अने दृष्टान्तना अलावथी ऐकान्तवादी-संमत धर्म स्वाख्यात-निर्दोष-  
इपथी प्रतिपादित थया नथी प्रतिज्ञा, हेतु अने दृष्टान्त आदिना सद्भावाथी



इति सुदृढमनेकान्तवादसाम्राज्यम् ।

एषमुक्तप्रकारेण तेषां विरुद्धमपलपतां परतैर्थिकाणां धर्मो न स्वास्यात्—  
 शोभनो न्यास्यात्, एकान्तवादगमितत्वात्, नैव च तेषां धर्म सुप्रवृत्तः—सुप्रवृ-  
 त्तितो भवति असर्वप्रणीतत्वात्; अतः स्याद्वादसाम्राज्यवर्हिर्भूतत्वाच्चेपां परवादिनां  
 धर्मः सर्वथा हेय एवेति भावः ॥ सू० ३ ॥

स्वबुद्धिपरिकल्पितत्वनिरासायाऽऽह—‘से अहेय’ इत्यादि—

मूळम्—से जहेय भगवत्या पवेइय आसुपन्नेण जाणया पासया,  
 अंदुवा गुत्ती वओगोयरस्स त्तिवेमि, सव्वरथ समय पाव तमेव  
 उवाइक्कम्म एस मह धिवेगे वियाहिण, गामे वा अंदुवा रणणे  
 नेव गामे नेव रणणे, धम्ममायाणह पवेइय माहणेण मइमया

वस्तु स्वद्रव्यादिक की ही अपेक्षासे सत्त्वात्मक और परद्रव्यादिकों  
 की अपेक्षासे ही असत्त्वात्मक मानी गई है। इस प्रकारकी मान्यता न  
 माननेसे किसी भी वस्तुकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती है। यही  
 सुदृढ अनेकान्तवादका साम्राज्य है।

इस प्रकार उक्तरूपसे एकान्तरूपमें गमित होनेके कारण परस्परमें  
 विरुद्धार्थकी प्ररूपणा करनेवाले अन्य तीर्थिकोंका मत निर्दोषरूपसे कथित  
 नहीं है, और इसीलिये यह असर्वज्ञ प्रणीत होनेसे अच्छी तरहसे प्ररूपित  
 भी नहीं है। इसलिये स्याद्वाद साम्राज्यके बहिर्भूत होनेसे उन  
 परवादियोंका धर्म सर्वथा हेय ही है ॥ सू० ३ ॥

अनेकान्तत्वमें सूत्रकार स्वबुद्धिसे परिकल्पितपनेका निषेध करने  
 के लिये “से जहेय” इत्यादि सूत्र कहते हैं।

वस्तु स्वद्रव्यादिकनी अपेक्षाधी सत्त्वात्मक अने परद्रव्यादिकनी अपेक्षाधी  
 असत्त्वात्मक मानवाम आवेत्त उ आ प्रकारनी मान्यता न मानवाधी कोपिपुवस्तुनी  
 स्वतत्र सत्ता सिद्ध भइ सकती नथी, अ सुदृढ अनेकान्तवादनु साम्राज्य उ

आ शीते के रूपधी अनेकान्तरूपमा अमित यवाना कारणे, परस्परमां विरु-  
 द्धाधीनी प्ररूपणा करवावाण अन्य तीर्थिकोना मत निर्दोषरूपधी कहेवायेत्त नथी  
 अने के कारणे असर्वज्ञ प्रणीत होवाधी सारी शीते प्ररूपित पण नथी आ कारणे  
 स्याद्वादसाम्राज्यना बहिर्भूत होवाधी परवादीओना धर्म सर्वथा हेय उ (सू०३)

अनेकान्त तत्वमा सूत्रकार स्वबुद्धिधी परिकल्पितपणाने निषेध करवा  
 भाटे “से जहेय” इत्यादि सूत्र कहे उ—

जामा तिन्नि उदाहिया, जेसु इमे आयरिया संबुज्झमाणा समु-  
ट्टिया, जे णिव्वुया पावेहिं कम्ममेहिं अणियाणा ते वियाहिया ॥सू०४॥

छाया—तद्यथेदं भगवता प्रवेदितम् आशुप्रज्ञेन जानता पश्यता, अथवा  
गुतिर्वचोगोचरस्येति ब्रवीमि, सर्वत्र सम्मतं पापं, तदेवोपातिक्रम्य एष मम विवेको  
व्याख्यातः, ग्रामे वा अथवाऽरण्ये, नैव ग्रामे नैवारण्ये, धर्ममाजानीत प्रवेदितं  
माहनेन मतिमता, यामास्त्रय उदाहृताः, एषु इमे आर्याः सम्बुध्यमानाः समुत्थिताः,  
ये निर्धृताः पापेषु कर्मसु अनिदानास्ते व्याख्याताः ॥ सू० ४ ॥

टीका—तद्यथा—इदम् अनेकान्तरूपं पूर्वोक्तं सकलव्यवहारानुसारि कुत्राप्यस्व-  
लितं मतं आशुप्रज्ञेन=शीघ्रबुद्धिना आवरणक्षयात् सततोपयुक्तेन, जानता=ज्ञानोपयुक्तेन  
पश्यता=दर्शनोपयोगवता भगवता=तीर्थङ्करेण प्रवेदितं=प्ररूपितम् । एकान्तवादिनां  
धर्मो न स्वाख्यातो भवति तत्र हेतुदृष्टान्ताभावात्, सर्वज्ञोपदिष्टस्तु स्वाख्यातः  
प्रतिज्ञा-हेतु-दृष्टान्तादिसद्भावादिति बोध्यम् । अथवा पक्षान्तरे वागोचरस्य=

कोई भी वस्तु एकान्तरूपसे न अस्तिरूप है और न नास्तिरूप है,  
किन्तु अस्ति-नास्तिरूपता वस्तुओं में स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे  
ही मानी जाती है—यह बात तृतीय सूत्रकी व्याख्याके अंतमें संक्षेप-  
रूपसे बतलाई गई है । इसीका नाम अनेकान्त है । इसकी स्वीकृति  
बिना दुनियाका कोई भी व्यवहार नहीं चल सकता है । ऐसी कोई भी  
वस्तु नहीं है जो इस अनेकान्तके साम्राज्यसे बहिर्भूत हो । ऐसी  
प्ररूपणा आशुप्रज्ञ-अनन्त ज्ञानशाली और अनन्तदर्शनोपयोगी श्री  
तीर्थङ्कर भगवान्ने की है । हेतु और दृष्टान्तके अभावसे एकान्तवादिसंमत  
धर्म स्वाख्यात-निर्दोषरूपसे प्रतिपादित नहीं हुआ है । प्रतिज्ञा, हेतु,

कोई पक्ष वस्तु एकान्तरूपथी न अस्तिरूप छे अने न तो नास्तिरूप छे,  
अस्ति-नास्तिरूपता वस्तुओमा स्वद्रव्यादियतुष्टयनी अपेक्षाथी न मानी शक्य  
छे आ वात त्रीण सूत्रनी व्याख्याना अतमा संक्षेपरूपथी कडेल छे अतु न नाम  
अनेकान्त छे, अनी स्वीकृति वगरदुनियानो कोई पक्ष वडेवार आली शके नहीं.  
अनी कोई पक्ष वस्तु नथी न्ने आ अनेकान्तना साम्राज्यथी षडिर्भूत होय अनी  
प्ररूपणा आशुप्रज्ञ-अनन्तज्ञान अने अनन्तदर्शनशाली श्री तीर्थंकर भगवाने करी  
छे. हेतु अने दृष्टान्तना अभावथी एकान्तवादी-संमत धर्म स्वाख्यात-निर्दोष-  
रूपथी प्रतिपादित थया नथी प्रतिज्ञा, हेतु अने दृष्टान्त आदिना सद्भावथी

वाचिपयस्य गृप्तिः=भाषासमितिर्विधेयस्यतदपि प्रवेदितम् ।

यद्वा-‘अस्ति लोको नास्ति लोक’ इत्यादिवादाय समुत्थितानां पापण्डिकानां स्वाभिमतहेतुदृष्टान्तस्थापनेन तदुक्तदूषणगणनिरसनेन च जयात् स्वमतस्थापनं और दृष्टान्त आदिके सद्भावमें सर्वज्ञप्रतिपादित धर्म ही स्थाप्यात है ।

एकान्तस्थापक न कोई हेतु है और न कोई दृष्टान्त ही मिलता है कि जिसके बल पर एकान्त धर्मकी प्ररूपणा वास्तविक सिद्ध हो सके । हां-अनेक धर्मात्मक ही वस्तु है । इसकी प्ररूपणाके स्थापक हेतु और दृष्टान्तादि उपलब्ध होते हैं ।

(भगवान्ने वचन योलनेवाले साधुके लिये भाषासमिति पालनेका भी आदेश दिया है । “ अस्ति लोकः नास्ति लोक ” इत्यादि वादके लिये तैयार हुए वादियोंके अभिमत तत्त्वका जो उन्होंने अपने इच्छानुसार हेतु-दृष्टान्तकी स्थापनासे स्थापन किया है, और प्रतिवादी जैनसंमत तत्त्वकी निराकृतिनिमित्त दूषणोंका प्रदर्शन किया है, सो उनके प्रदर्शित हेतु और दृष्टान्तोंका निराकरण एवं प्रवृत्त दूषणोंका परिहार करते समय प्रतिवादी मुनिके लिये भाषासमितिका पालन करना चाहिये । परपक्षका निराकरण करते या तद्विषयक उत्तर देने समय कभी २ जोश

सर्वज्ञप्रतिपादित धर्म न स्थाप्यात छे

जेकान्तस्थापक न होय हेतु छे अने न होय दृष्टान्त पक्ष भणे छे, जेना भण उपर जेकान्त धर्मनी प्ररूपण वास्तविक सिद्ध बर्य शके हां-अनेक धर्मात्मक न वस्तु छे जेनी प्ररूपणान् स्थापक हेतु अने दृष्टान्तादि उपलब्ध बाय छे

अजवाने वचन योलवावाण साधु भाटे भाषासमिति पालवाने पक्ष आदेश आये छे “ अस्ति लोकः नास्ति लोक ” इत्यादि वादने भाटे तैयार बयेला वादि योजे पेताना अभिमत-तत्त्वनु पेतानी इच्छानुसार हेतु-दृष्टान्तनी स्थापनाभी स्थापन करेव छे अने प्रतिवादी जैनसंमत तत्त्वनी निराकृति निमित्त दूषणोंनु प्रदर्शन करेव छे जेवा जेमना प्रदर्शित हेतु अने दृष्टान्तोंनु निराकरेव अने प्रवृत्त ( आपेव ) दूषणोंनु परिहार करवी वअते प्रतिवादी मुनिने भाटे भाषासमितिनु पालन करी छे परपक्षनु निराकरेव करवा अथवा होय प्रअनने उत्तर देवाने समये क्यारेंक जेश आपी जवाभी वचनने समय रहेतो नही, तो पक्ष विद्वान्

वागोचरस्य गुप्तिरिति । वावसंयमेन सम्यगुत्तरं देयं न तु भाषासमितिमनपेक्षयेति  
 भावः । इति=गुप्तिर्वागोचरस्य कार्येत्येतद्वक्ष्यमाणं चाहं ब्रवीमि । तदेव वक्तुं प्रक-  
 मते- ' सर्वत्रे 'त्यादि-प्रतिवादिनं संबोध्य पृच्छेद्-यत्तव षड्जीवनिकायोपमर्दनं कृ-  
 तकारितानुमोदनैः सर्वत्र त्वच्छास्त्रे सम्मतम्=अप्रतिषिद्धत्वेनाभिलषितं तत्सर्वं पापं=  
 पापजनकं नरकनिगोदादिदुःखकारकत्वादतो न ममाभिलषितमित्यर्थः । तदेवाह-

आ जाने से वचनका संयम नहीं रहता है, तो भी विद्वान् मुनिके लिये  
 इस बातका वहाँ भी ध्यान रखना चाहिये । भाषासमिति का परिहार  
 कर अपने मूलगुणमें विराधना लाना यह विद्वान् मुनिका कर्तव्य नहीं  
 है । इसी वस्तुस्थितिको ध्यानमें रख कर सूत्रकार " गुप्तिर्वचोगोचर-  
 स्येति ब्रवीमि " यह कहते हैं-जैनसिद्धान्ताभिमत हेतु और दृष्टान्तकी  
 स्थापनासे एवं पाखण्डियोंके द्वारा कथित दूषणोंके निरसन ( उत्तर )से  
 उन पाखण्डियोंके परास्त होनेपर स्वमतकी स्थापन स्वतः हो जाती है, और  
 यही वचनविषयकी गुप्ति है । इसमें रहनेवाले साधुको वाक्-संयमसे  
 ही उत्तर देना चाहिये; उसकी उपेक्षा करके नहीं । इसी प्रकारसे  
 सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं-विद्वान् वादी मुनि, प्रतिवादीको संबोधित  
 कर यह पूछे कि आपके शास्त्रमें कृत, कारित और अनुमोदनासे षड्-  
 जीवनिकायका उपमर्दन प्रतिपादित हुआ है और वह अप्रतिषिद्ध होनेसे  
 आपके लिये सम्मत है । परंतु यह आप विश्वास रखे कि यह सब कु-  
 कृत्य है और करनेवाले जीवोंको नरक और निगोदादिक दुःखोंके प्रदाता  
 है । इसलिये हमारी दृष्टिमें यह उपादेय-अभिलषित नहीं है । इसी कारण

मुनिञ्चे अ वातनो त्यां पणु ञ्याल राभवो ञेधञ्चे. भाषासमितिने परिहार करी  
 पोताना भूण गुणुमां विराधना लाववी अ विद्वान् मुनितुं कर्तव्य नथी आ वस्तु  
 स्थितिने ध्यानमां राभी सूत्रकार " गुप्तिर्वचोगोचरस्येति ब्रवीमि " आभ कडे छे  
 जैनसिद्धान्ताभिमत हेतु अने दृष्टान्तनी स्थापनाथी अने पाप उीञ्चो द्वारा कडेवायेला  
 दूषणोना उत्तरेथी ते पाप डिञ्चोनी हार थवाथी स्वमतनी स्थापना आपभेणे थध  
 लय छे-आ वचनविषयनी गुप्ति छे आमा रडेवावाणा साधुञ्चे वाक्-संयमथी  
 व उत्तर आपवा ञेधञ्चे, भाषासमितिनी उपेक्षा करीने नही आ प्रकारेण  
 सूत्रकार प्रदर्शित करे छे-विद्वान् वादी मुनि, प्रतिवादीने संबोधित करी पूछे के  
 आपना शास्त्रमा कृत, कारित अने अनुमोदनाथी षड्जीवनिकायतु उपमर्दन प्रति-  
 पादित थयेल छे अने अने अप्रतिषिद्ध होवाथी आपने माटे सम्मत छे, परंतु  
 आप विश्वास राभो के अने अधा कुकृत्य छे, अने करवावाणा लुवोने नरक अने  
 निगोदाना अने उपादेय-

वाग्विषयस्य गृह्णित्वाः=भाषासमितिर्विधेयस्येतदपि प्रवेदितम् ।

यद्वा—‘अस्ति लोको नास्ति लोक’ इत्यादिवादाय समुत्पितानां पापञ्चिन्नां स्वाभिमतहेतुदृष्टान्तस्थापनेन तदुक्तदूषणगणनिरसनेन च जयात् स्वमतस्थापनं और दृष्टान्त आदिके सद्भाषमें सर्वज्ञप्रतिपादित धर्म ही स्थाप्यत है ।

एकान्तस्थापक न कोई हेतु है और न कोई दृष्टान्त ही मिलता है कि जिसके चल पर एकान्त धर्मकी प्ररूपणा वास्तविक सिद्ध हो सके । हां—अनेक धर्मात्मक ही वस्तु है । इसकी प्ररूपणाके स्थापक हेतु और दृष्टान्तादि उपलब्ध होते हैं ।

(भगवान्ने घचन षोडशेयाले साधुके लिये भाषासमिति पालनेका भी आदेश दिया है । “ अस्ति लोकः नास्ति लोकः ” इत्यादि वादके लिये तैयार हुए वादियोंके अभिमत तत्त्वका जो उन्होंने अपने इच्छानुसार हेतु—दृष्टान्तकी स्थापनासे स्थापन किया है, और प्रतिवादी जैनसंमत तत्त्वकी निराकृतिनिमित्त दूषणोंका प्रदर्शन किया है, सो उनके प्रदर्शित हेतु और दृष्टान्तोंका निराकरण एवं प्रदत्त दूषणोंका परिहार करते समय प्रतिवादी मुनिके लिये भाषासमितिका पालन करना चाहिये । परपक्षका निराकरण करते या तद्विषयक उत्तर देने समय कभी २ जोश

सर्वज्ञप्रतिपादित धर्म न स्थाप्यत ॥

दृष्टान्तस्थापक न कोई हेतु है और न कोई दृष्टान्त मिलता है, जेना जण उपर दृष्टान्त धर्मनी प्ररूपणा वास्तविक सिद्ध नहीं शके हां—अनेक धर्मात्मक न वस्तु है जेनी प्ररूपणानु स्थापक हेतु और दृष्टान्तादि उपलब्ध माय है

भगवाने वचन शोडशवाक्या साधु भाटे भाषासमिति पालनेका पक्ष आदेश आये है “ अस्ति लोकः नास्ति लोकः ” इत्यादि वादने भाटे तैयार कियेवा वादि योजने पोताना अभिमत—तत्त्वनु पोतानी इच्छानुसार हेतु—दृष्टान्तकी स्थापनाकी स्थापन करेव है और प्रतिवादी जैनसंमत तत्त्वकी निराकृति निमित्त दूषणोंका प्रदर्शन करेव है जेवा जेभना प्रदर्शित हेतु और दृष्टान्तोंका निराकरण और प्रदत्त (आपेव) दूषणोंका परिहार करती चमते प्रतिवादी मुनिके भाटे भाषासमितिके पालन करेव है परपक्षका निराकरण करेवा जेवना प्ररूपणानु उत्तर देनेके समय कभी २ जोश आयेव नैवानी चमतेव सचम रहेतो नहीं, तो पक्ष विद्वान्

વાગ્ગોચરસ્ય ગુપ્તિરિતિ । વાવસંયમેન સમ્યગુત્તરં દેયં નતુ ભાષાસમિતિમનપેક્ષ્યેતિ  
ભાવઃ । इति=गुप्तिर्वाग्गोचरस्य कार्येत्येतद्वक्ष्यमाणं चाहं ब्रवीमि । तदेव वक्तुं प्रक-  
मते-‘ सर्वत्र ’स्यादि-प्रतिवादिनं संबोध्य पृच्छेद्-यत्तव षड्जीवनिकायोपमर्दनं कृ-  
तकारितानुमोदनैः सर्वत्र त्वच्छास्त्रे सम्मतम्=अप्रतिषिद्धत्वेनाभिलषितं तत्सर्वं पापं=  
पापजनकं नरकनिगोदादिदुःखकारकत्वादतो न ममाभिलषितमित्यर्थः । तदेवाह-

આ જાને સે વચનકા સંયમ નહીં રહતા હૈ, તો ખી વિદ્વાન્ મુનિકે લિયે  
इस बातका वहां भी ध्यान रखना चाहिये । भाषासमितिका परिहारं  
कर अपने मूलगुणमें विराधना लाना यह विद्वान् मुनिका कर्तव्य नहीं  
है । इसी वस्तुस्थितिको ध्यानमें रख कर सूत्रकार “ गुप्तिर्वचोगोचर-  
स्येति ब्रवीमि ” यह कहते हैं-जैनसिद्धान्ताभिमत हेतु और दृष्टान्तकी  
स्थापनासे एवं पाखण्डियोंके द्वारा कथित, दूषणोंके निरसन (उत्तर)से  
उन पाखण्डियोंके परास्त होनेपर स्वमतकी स्थापन स्वतः हो जाती है, और  
यही वचनविषयकी गुप्ति है । इसमें रहनेवाले साधुको वाक्-संयमसे  
ही उत्तर देना चाहिये; उसकी उपेक्षा करके नहीं । इसी प्रकारसे  
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं-विद्वान् वादी मुनि, प्रतिवादीको संबोधित  
कर यह पूछे कि आपके शास्त्रमें कृत, कारित और अनुमोदनासे षड्-  
जीवनिकायका उपमर्दन प्रतिपादित हुआ है और वह अप्रतिषिद्ध होनेसे  
आपके लिये सम्मत है । परंतु यह आप विश्वास रखे कि यह सब कु-  
कृत्य है और करनेवाले जीवोंको नरक और निगोदादिक दुःखोंके प्रदाता  
है । इसलिये हमारी दृष्टिमें यह उपादेय-अभिलषित नहीं है । इसी कारण

મુનિએ એ વાતનો ત્યાં પણ ખ્યાલ રાખવો જોઈએ. ભાષાસમિતિનો પરિહાર કરી  
પોતાના મૂળ ગુણમાં વિરાધના લાવવી એ વિદ્વાન્ મુનિનું કર્તવ્ય નથી આ વસ્તુ  
સ્થિતિને ધ્યાનમાં રાખી સૂત્રકાર “ ગુપ્તિર્વચોગોચરસ્યેતિ બ્રવીમિ ” આમ કહે છે.  
જૈનસિદ્ધાન્તાભિમત હેતુ અને દષ્ટાન્તની સ્થાપનાથી અને પાખ ડીઓ દ્વારા કહેવાયેલા  
દૂષણોના ઉત્તરથી તે પાખ ડીઓની હાર થવાથી સ્વમતની સ્થાપના આપમેળે થઈ  
ગય છે-આ વચનવિષયની ગુપ્તિ છે આમાં રહેવાવાળા સાધુએ વાક્-સંયમથી  
જ ઉત્તર આપવા જોઈએ, ભાષાસમિતિની ઉપેક્ષા કરીને નહીં આ પ્રકારેજ  
સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે-વિદ્વાન્ વાદી મુનિ, પ્રતિવાદીને સંબોધિત કરી પૂછે કે  
આપના શાસ્ત્રમાં કૃત, કારિત અને અનુમોદનાથી ષડ્જીવનિકાયનું ઉપમર્દન પ્રતિ-  
પાદિત થયેલ છે અને એ અપ્રતિષિદ્ધ હોવાથી આપને માટે સમ્મત છે, પરંતુ  
આપ વિશ્વાસ રાખો કે એ અધાં કુકૃત્ય છે, અને કરવાવાળા જીવોને નરક અને  
નિગોદાદિક દુઃખો આપનાર છે આ કારણે અમારી દૃષ્ટિમાં એ ઉપાદેય-

‘तदेवे’त्यादि—तदेव=सावधानरममष उपातिक्रम्य=उल्लङ्घ्याई वर्तमानोऽस्मीत्येवं-  
भूतस्य मम एष महान् विवेकः=हेयोपादेयरूपविचारो व्याहृतः=कथित, अनपिहि  
ब्राह्मणद्वारेण भवत्या सह सम्भाषणेनालम् ।

ननु परतीर्थिका अपि वनवासिनः फल-मूल-कन्दाद्याहारास्करुतलवासिनो म-  
श्नन्ति, कथं ते संभाषणानर्हा? इति चेन्न, वनवास-फलाहारादिकरणेन न धर्मः, अपि तु  
जीवाजीवादितत्त्वपरिज्ञानपूर्वकनिस्वधाधरणात्, तत्र च तेषां नास्ति । एतमेवार्थमाहि-  
मावयन्नाह—‘ग्रामे चे’त्यादि—ग्रामे=ग्रामविषय वसेत्चेदमो भवेद्, एवमरण्ये=वने  
मै सदा इह कृत्स्नो-पापोंसे दूर रहता हू । मेरा विवेक-हेय और  
उपादेयकी जागृतिरूप बोध भी मुझे यही कहता है । महापुरुषोंकी  
भी यही शिक्षा है । अतः जिन्होंने इन पापमय सावध व्यापारोंके  
अत्यागसे अपने कर्मोंके आस्त्रधके द्वारको बंद नहीं किया है, उनके साथ  
संभाषण करना भी मुझे उचित नहीं है ।

शङ्का—परतीर्थिक जन भी वनमें रहते हैं, फल, मूल और  
फल आदिका आहार करते हैं, गिरि गुफामें एव वृक्षोंके नीचे निवास  
करते हैं तो फिर ये संभाषणके अयोग्य कैसे माने जा सकते हैं ?

उत्तर—कन्दमूल आदि खानेसे और वनमें निवास करनेसे धर्मकी  
प्राप्ति होती है, मो पात नहीं है । धर्मकी प्राप्तिका कारण जीव और  
अजीव आदि तत्त्वोंका परिज्ञानपूर्वक निरयथ आचरण करना है । यह  
उनके नहीं होता है । इसी अर्थको समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं—

अविदित नथी । अ माटे दुं सद्यं के कृत्स्नो-पापोंसे दूर रहूँ  
भास विवेक-हेय अने उपादेयनी अभूतिश्च बोधं पद्यं मने के कडे  
छे महापुरुषोंनी पद्य के शिक्षा छे माटे जेजोके आवा पापमय सावध व्याप  
शाना अत्यागथी घेताना कर्मोंना आस्त्रध द्वार बध करैत नथी तेनी साथे  
संभाषण करतु पद्य मने उचित नथी ।

श. ४१—परतीर्थिक जन पद्य वनभास्टे छे, कंद, मूल, इत आदिना आहार  
करै छे । गिरि गुफामें अने वृक्षोंनी नीचे वास करै छे तो पद्य जेजो संभाषण  
करवाने अथोअ देवी रीते भानी शक्य ?

उत्तर—कंदमूल आदि आवाथी अने वनभां निवास करवाथी धर्मनी  
प्राप्ति घाय छे जेवी वात नथी । धर्मनी प्राप्तिनु करतु एव अने अल्प आदि  
वत्त्वोनु परिज्ञानपूर्वक निरयथ आचरण करतु ते छे अ तेनाथी जनतु नथी ।

वा धर्मो भवेदिति नैष नियमः, यतो धर्मो नैव ग्रामे भवति नैवारण्ये, किन्तु यत्र कुत्रापि वसतो जीवाजीवादितत्त्वपरिज्ञानपूर्वकनिरवधानुष्ठानमेव धर्मम् आजानीत, इति माहनेन 'मा हन-मा हन' इति यो जीवरक्षामुपदिशति स माहनो वीतरागस्तेन, मतिमता-मतिः=सकलवस्तुतत्त्वपरिज्ञानं, सा यस्यास्तीति मतिमान्, तेन-केवलिना, धर्मः=पूर्वोदाहृतो वक्ष्यमाणश्च प्रवेदितः=प्ररूपितः। वक्ष्यमाण-मैवाह-'यामा' इत्यादि-त्रयो यामाः=व्रतरूपाः उदाहृताः=कथिताः, अत्र त्रिग्रहणेन प्राणातिपातमृषावादपरिग्रहविरमणरूपा गृहीताः, मैथुनाऽदत्ताऽऽदानविरमणयोः परिग्रहविरमणेऽन्तर्भावमाश्रित्य तथा प्रोक्तमिति बोध्यम् ।

कि 'ग्राममें रहनेसे, जंगलमें निवास करनेसे धर्म होता है' ऐसा नियम नहीं है; क्यों कि धर्म ग्राम अथवा जंगलमें नहीं रखा है जो वहां रहने से मिल जाता हो। धर्म जीव और अजीवादि तत्त्वोंके परिज्ञानपूर्वक निरवद्य अनुष्ठानके आचरणका नाम है, ऐसा जीवरक्षाके उपदेशक और वस्तुतत्त्वके ज्ञाता केवली भगवानने कहा है। 'माहन' शब्दका अर्थ वीतराग और 'मति' शब्दका अर्थ सम्पूर्ण वस्तुओं का परिज्ञान है। यह मतिरूप परिज्ञान जिसके है वह मतिमान् केवली है।

व्रतरूप तीन याम्य कहे गये हैं—१ प्राणातिपातविरमण, २ मृषावाद-विरमण और ३ परिग्रहविरमण। बाकीके मैथुनका विरमण और अदत्तादानका विरमण, ये दो महाव्रतरूप धर्म यहां इसलिये स्वतन्त्ररूपसे नहीं कहे गये हैं कि उनका अन्तर्भाव परिग्रहविरमणरूप महाव्रतमें कर लिया है।

आ अर्थने समझववा माटे सूत्रकार कहे छे डे—'ग्राममां रडेवार्थी, जंगलमां निवास करवार्थी धर्म थाय छे' अवेो नियम नथी, केम डे धर्म ग्राम अने जंगलमां राभेल नथी डे ने त्या रडेवार्थी मणी नय, धर्म लव अने अलवादि तत्त्वोनु परिज्ञानपूर्वक निरवद्य अनुष्ठाननु आचरणु ते छे, आम लवरक्षाना उपदेशक अने वस्तुतत्त्वना ज्ञाता केवली भगवाने कहेल छे 'माहन' शब्दनेो अर्थ वीतराग, अने 'मति' शब्दनेो अर्थ स पूर्ण वस्तुओनु परिज्ञान छे आ मतिरूप परिज्ञान नेने छे ते मतिमान् केवली छे.

व्रतरूप त्रणु याम कहेवायां छे, १ प्रणातिपातविरमणु, २ मृषावाद-विरमणु, ३ परिग्रहविरमणु. पाकीना मैथुनविरमणु अने अदत्तादान-विरमणु, आ अने मडाव्रतरूप धर्म अडि आ माटे स्वतन्त्ररूपथी कहेवायेल नथी डे तेनेो अतर्भाव परिग्रहविरमणुत्रुप मडाव्रतमा करायेल छे



‘तदेवे’ स्यादि—तद्वच=सावधाचरणमेव उपातिक्रम्य=उल्लङ्घ्याई वर्तमानोऽस्मीत्येवं-  
मृतस्य मम एव महान् विवक = हेयोपादेयरूपविचारो ज्याहृतः=अचित्त, अपिपि  
प्राप्तवद्धारण मवसा सह सम्भाषणेनात्मम् ।

ननु परतीर्थिका अपि वनवासिनः फल-मूल-कन्द-आहारस्तत्त्वस्नासिनो म  
श्रन्ति, कथं ते संभाषणानर्हा? इति चेन्न, वनवास-फलाहारादिकरणेन न धर्मो, अपि तु  
जीषानीवादिदुष्परिज्ञानपूर्वकनिरवद्याचरणत्वात्, तत्र च तेषां नास्ति । एतमेवार्थमादि-  
भानयन्नाह—‘ग्रामे चे’ स्यादि—ग्रामे=ग्रामविषय वसेच्चेदमो मवेद्, एवमरण्ये=वने  
में सदा इन कृत्यों—पापोंसे दूर रहता हू । मेरा विवेक-हेय और  
उपादेयकी जागृतिरूप बोध भी मुझे यही कहता है । महापुरुषोंकी  
भी यही शिक्षा है । अतः जिन्होंने इन पापमय सावध व्यापारोंके  
अवस्थागसे अपने कर्मोंके आखण्डके द्वारको बंद नहीं किया है, उनके साथ  
संभाषण करना भी मुझे उचित नहीं है ।

शङ्क—परतीर्थिक जन भी वनमें रहते हैं, कंद, मूल और  
फल आविका आहार करते हैं, गिरि गुफामें एवं वृक्षोंके भीचे निवास  
करते हैं तो फिर ये संभाषणके अयोग्य कैसे माने जा सकते हैं ?

उत्तर—कन्दमूल आदि स्वानेसे और वनमें निवास करनेसे धर्मकी  
प्राप्ति होती है, सो बात नहीं है । धर्मकी प्राप्तिका कारण जीव और  
अजीव आदि तत्त्वोंका परिज्ञानपूर्वक निरवद्य आचरण करना है । यह  
उनके नहीं होता है । इसी अर्थको समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं—

अकिंचित्तपित नधी आ भाटे तु सदा जे कृत्यों—पापोंसे दूर रहूँ तु-  
भाषा विवेक-बोध जने उपादेयनी जागृतिरूप बोध पवु भने जे कहे  
उ महापुरुषोंनी पवु जे शिक्षा उ भाटे जेजोके ज्ञान पापमय सावधव्याप  
रणा अत्याजधी चेताना कर्मोना आखण्ड द्वार बन्द करेन नधी तेनी साथे  
संभाषण कश्यु पवु भने उचित नधी ।

शङ्का—परतिर्थाक जन पवु वनभाषण उ कंद, मूल, इण आदिने आहार  
करे उ गिरि गुफामा जने वृक्षोंनी भीचे वास करे उ तो पछी जेजो संभाषण  
करवाने अथोच्च केवी रीते भाती शक्य ?

उत्तर—कंदमूल आदि भावाधी जने वनभाषा करवाधी धर्मनी  
प्राप्ति साथ उ जेवी बात नधी धर्मनी प्राप्तिनु कारण एव जने अल्प आदि  
वस्तुनु परिज्ञानपूर्वक निरवद्य आचरण कश्यु ते उ अ तेनाधी अनंतु नधी ।

વા ધર્મો ભવેદિતિ નૈષ નિયમઃ, યતો ધર્મો નૈવ ગ્રામે ભવતિ નૈવારણ્યે, કિન્તુ યત્ર કુત્રાપિ વસતો જીવાજીવાદિતત્ત્વપરિજ્ઞાનપૂર્વકનિરવધાનુષ્ઠાનમેવ ધર્મમ્ આજાનીત, ઇતિ માહનેન ' મા હન-મા હન ' ઇતિ યો જીવરક્ષામુપદિશતિ સ માહનો વીતરાગસ્તેન, મતિમતા-મતિઃ=સકલવસ્તુતત્ત્વપરિજ્ઞાનં, સા યસ્યાસ્તીતિ મતિમાન્, તેન-કેવલિના, ધર્મઃ=પૂર્વોદાહતો વક્ષ્યમાણશ્ચ પ્રવેદિતઃ=પ્રરૂપિતઃ। વક્ષ્યમાણ-મેવાહ-' યામા ' ઇત્યાદિ-ત્રયો યામાઃ=વ્રતરૂપાઃ ઉદાહતાઃ=કથિતાઃ, અત્ર ત્રિગ્ર-હણેન પ્રાણાતિપાતમૃષાવાદપરિગ્રહવિરમણરૂપા ગૃહીતાઃ, મૈથુનાઽદત્તાઽઽદાનવિરમ-ણયોઃ પરિગ્રહવિરમણેઽન્તર્ભાવમાશ્રિત્ય તથા પ્રોક્તમિતિ બોધ્યમ્ ।

કિ 'ગ્રામમેં રહનેસે, જંગલમેં નિવાસ કરનેસે ધર્મ હોતા હૈ' એસા નિયમ નહીં હૈ; ક્યોં કિ ધર્મ ગ્રામ અથવા જંગલમેં નહીં રહ્યા હૈ જો વહાં રહને સે મિલ જાતા હો । ધર્મ જીવ ઓર અજીવાદિ તત્ત્વોંકે પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ અનુષ્ઠાનકે આચરણકા નામ હૈ, એસા જીવરક્ષાકે ઉપદેશક ઓર વસ્તુતત્ત્વકે જ્ઞાતા કેવલી ભગવાને કહા હૈ । 'માહન' શબ્દકા અર્થ વીતરાગ ઓર 'મતિ' શબ્દકા અર્થ સમ્પૂર્ણ વસ્તુઓં કા પરિજ્ઞાન હૈ । યહ મતિરૂપ પરિજ્ઞાન જિસકે હૈ વહ મતિમાન્ કેવલી હૈ ।

વ્રતરૂપ ત્રીન યામ કહે ગયે હૈ—૧ પ્રાણાતિપાતવિરમણ, ૨ મૃષાવાદ-વિરમણ ઓર ૩ પરિગ્રહવિરમણ । બાકીકે મૈથુનકા વિરમણ ઓર અદ-ત્તાદાનકા વિરમણ, યે દો મહાવ્રતરૂપ ધર્મ યહાં ઇસલિયે સ્વતન્ત્રરૂપસે નહીં કહે ગયે હૈં કિ ઉનકા અન્તર્ભાવ પરિગ્રહવિરમણરૂપ મહાવ્રતમેં કરલિયા હૈ ।

આ અર્થને સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે કે—'ગામમાં રહેવાથી, જંગલમાં નિવાસ કરવાથી ધર્મ થાય છે' એવો નિયમ નથી, કેમ કે ધર્મ ગ્રામ અને જંગલમાં રાખેલ નથી કે જે ત્યાં રહેવાથી મળી જાય, ધર્મ જીવ અને અજીવાદિ તત્ત્વોનું પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ અનુષ્ઠાનનું આચરણ તે છે, આમ જીવરક્ષાના ઉપદેશક અને વસ્તુતત્ત્વના જ્ઞાતા કેવલી ભગવાને કહેલ છે 'માહન' શબ્દનો અર્થ વીતરાગ, અને 'મતિ' શબ્દનો અર્થ સંપૂર્ણ વસ્તુઓનું પરિજ્ઞાન છે આ મતિરૂપ પરિજ્ઞાન જેને છે તે મતિમાન્ કેવલી છે

વ્રતરૂપ ત્રણ યામ કહેવાયા છે, ૧ પ્રાણાતિપાતવિરમણ, ૨ મૃષાવાદ-વિરમણ, ૩ પરિગ્રહવિરમણ. બાકીના મૈથુનવિરમણ અને અદત્તાદાન-વિરમણ, આ બંને મહાવ્રતરૂપ ધર્મ અહીં આ માટે સ્વતન્ત્રરૂપથી કહેવાયેલ નથી કે તેનો અંતર્ભાવ પરિગ્રહવિરમણરૂપ મહાવ્રતમાં કરાયેલ છે.

यद्वा—यामा=अवस्थाविशेषास्त्रयस्ते यया—अष्टवर्षादात्रिंशत् एका (१), ततः पट्टिष्वर्षपर्यन्त द्वितीया (२), तत ऊर्ध्वं तृतीयेति, उद्गाहताः=कथिता, एतेनातिषाल-हृदयोर्निरासः, तिस्रुष्वेवावस्थासु धर्माचारणस्य सम्भवात् ।

अथवा—'यामाः' यस्यते=विरम्यते संसारपरिभ्रमणादेभिरिति यामाः=ज्ञानाद्यस्त्रयः कथिताः, किमेतेनेत्याह—'येष्वि'—स्यादि, येषु=वयोविशेषेषु त्रिषु ज्ञानादिषु वा संबुध्यमानाः=धर्माचरणवसरं मोक्ष वा जानानाः, इमे=आर्या ब्रह्म-क्षेत्र-काल-भावमेवेन चतुर्विधास्ते स्मृत्यिताः=तपःसंयमाचरणादौ प्रवृत्ताः, के ? ये पापेषु=पापजनकेषु प्राणातिपाताद्यष्टादशस्थानेषु कर्मसु निवृत्ताः=कपायापन-

अथवा—अवस्थाविशेषोका नाम भी याम है, ये तीन हैं—आठ वर्षसे लगा करतीस वर्ष तक प्रथम, एकतीस वर्षसे छे कर ६० वर्ष तक द्वितीय, और उससे आगे तृतीय । इससे यह ध्यनित होता है कि अतिपाल और अतिवृद्ध अवस्था धर्माचरणके योग्य नहीं है । इन तीनों ही अवस्थाओंमें धर्माचरणकी संभावना है ।

अथवा—संसारका परिभ्रमण जिनसे इस जीवका एक जाता है वनका नाम भी याम है । ऐसे ये याम ज्ञानादिक तीन हैं । जिन वयोविशेष या ज्ञानादिकत्रयमें संबुध्यमान, धर्मके आचरणके अवसरको अथवा मोक्षको जानते हुए ये ब्रह्म, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे चार प्रकारके आर्यजन मुनिराज कि जो पापजनक प्राणातिपातादिक रूप १८ पापस्थानोंमें कपायके दूर होनेसे ज्ञान-आस्त्रयसे निवृत्त हैं, ये तप और संयमके

अथवा—अवस्थाविशेषीनु नाम पञ्च याम छे ते त्रय छे आठ वर्षधी मांझी वीस वर्ष सुधी प्रथम, जेठतीस वर्षधी मांझी ६० वर्ष सुधी द्वितीय अने तेनाधी आगण तृतीय आधी जे इणित भाव छे के अतिपाल अने अतिवृद्ध अवस्था धर्माचरणने योग्य नधी आ त्रय अवस्थाज्येभा धर्माचरणनी संभावना छे

अथवा—संसारनु परिभ्रमण जेनाधी आ एवतु आठौ अव छे तेनु नाम याम छे आवा जे यम ज्ञानादिक त्रय छे जे वयोविशेष अवस्था ज्ञानादिक त्रयभा संबुध्यमान धमना आचरणने अवसरने अववा मोक्षने अवनाश, ब्रह्म, क्षेत्र, काल अने भावना जेइधी चार प्रकारना जे आर्यजन मुनिराज के जे पापजनक प्राणातिपातादिक रूप १८ पापस्थानोंमा कपायना दूर कवाधी यात छे—आस्त्रयनी निवृत्त छे ते तप अने संयमना आस्त्रय आदिभ्य प्रवृत्त भाव छे

यनेन ज्ञान्ताः, आस्रवनिवृत्ता इत्यर्थः, तेषां रागादिवन्धहेतवो न सम्भवन्ति, अत एव ते अनिदानाः=द्रव्य-भाव-निदानरहिताः, तत्र द्रव्यनिदानं माता-पितृ-पुत्र-कलत्रादि-विषयकं धन-धान्यादिविषयकं च, भावनिदानं विषयकपायादिकं चेति द्विविधनिदानानपरायणास्ते व्याख्याताः=कथिताः ॥ सू० ४ ॥

कस्मिरते निदानरहिताः ? इति दर्शयति—‘उड्डं’ इत्यादि ।

मूलम्—उड्डं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ सव्वावंति च णं पाडियकं जीवेहिं कम्मसमारंभे णं, तं परिन्नाय मेहावी नेव सयं एएहिं काएहिं दंडं समारंभिज्जा, नेवन्ने एएहिं काएहिं दंडं समारंभावेज्जा, नेवन्ने एएहिं काएहिं समारंभंतेऽवि समणु-जाणेज्जा । जे अन्ने एएहिं काएहिं दंडं समारंभंति तेसिं पि वयं लज्जामो, तं परिन्नाय मेहावी तं वा दंडं अन्नं वा दंडं नो दंडभी दंडं समारंभिज्जासि—त्तिवेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—ऊर्ध्वमथस्तिर्यग् दिक्षु सर्वतः सर्वासु च खलु प्रत्येकं जीवेषु कर्मसमारम्भः खलु, त परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयमेतेषु दण्डं समारभेत, नैवान्यैरेतेषु कायेषु दण्डं समारम्भयेत्, नैवान्यैरेतेषु कायेषु दण्डं समारभमाणानपि समनुजानीयात्, ये चान्ये एतेषु कायेषु दण्डं समारभन्ते तैरपि वयं लज्जामहे, तं परिज्ञाय मेधावी तं वा दण्डमन्यं वा नो दण्डभीर्दण्डं समारभेथाः, इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

आचरण आदिमें प्रवृत्त होते हैं। इनके रागादिक जो बन्धके कारण हैं वे नहीं होते हैं। इसीलिये ये द्रव्य और भावके भेदसे दोनों प्रकारके निदानोंके विनाश करनेमें तत्पर कहे गये हैं। माता, पिता, पुत्र और स्त्री आदि स्वजनविषयक, और धन-धान्य आदि परिग्रहविषयक द्रव्य-निदान, एवं विषयकपायादिविषयक भावनिदान होता है ॥ सू० ४ ॥

और भी किसमें वे निदानरहित होते हैं? इस विषयको सूत्रकार कहते हैं—“उड्डं अहं” इत्यादि—

तेने रागादिके जे बन्धतु कारण छे ते अनंतु नहीं, जेथी ते द्रव्य अने लाव ना भेदथी जे प्रकारना निदानानो विनाश करवामा तत्पर कहेवायेला छे माता, पिता, पुत्र अने स्त्री आदि स्वजनविषयक, अने धन धान्य आदि परिग्रह-विषयक द्रव्य निदान छे, अने विषयकपायादिविषयक लावनिदान छे। (सू० ४)

भील कथा कथामा निदानरहित छे। आ विषयने सूत्रकार कहे छे—  
“उड्डं अहं” इत्यादि.

टीका-‘ऊर्ध्व’मित्यादि-ऊर्ध्वमवस्तिर्यग् दिक्षु सर्वता-सर्वप्रकारेण ‘सञ्जावति’इति सर्वास्तु ‘घ’स्य्याद् विदिषां सङ्ग्रहस्तेन विदिषु-इत्यर्थः, स्वल्प-निश्चयेन प्रत्येकं जीवेषु-सूक्ष्मधादरादिषु प्रत्येकं प्राणिषु यः कर्मसमारम्भः-प्राणिविराघनाविरुध्यः स्वल्प-निश्चयेन अस्ति। मेघावी-विदितप्राण्युपमर्दनजनितकटुककर्म, तं-कर्मसमारम्भं परिहाय-ज्ञपरिज्ञया ज्ञाना प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहृत्य च स्वयम् एतेषु कायेषु-पशुजीवनिकायेषु दण्डं-मनोवाक्यैर्जीवविराघनारूप नैव समारभेत-नैव कुर्यादित्यर्थः। अपि च-स एव एतेषु कायेषु-चतुर्दशभूतप्राणवर्तिषु जीवेषु अन्यैर्दण्डं न समारम्भयेत्-न कारयेत्, एतेषु कायेषु दण्डं समारभमानाप्यन्यान्नेव समनुब्रवीयात्-नातुमोक्षयेत् । मेघाऽन्य दण्डं समारभते तैः-दण्डसमारम्भविधायिभिः सह षण्ड-

उर्ध्व, अधः और तिर्यग् दिशाओमें, सर्व प्रकारसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओमें, और “घ” शब्दसे गृहीत विदिशाओमें वर्तमान सूक्ष्म और चादर आदिकक मेवसे १४ प्रकारके प्रत्येक जीवोंमें जो प्राणियोंकी विराघनारूप कर्मसमारंभ है, मेघावी-जिसने प्राणियोंकी हिंसासे उत्पन्न कटुक परिणाम जान लिया है ऐसा मेघावी (बुद्धिमान) मुनि-उस कर्मसमारम्भकी ज्ञपरिज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञासे उसका परित्याग कर पशुजीवनिकायोंके विषयमें मन, वचन और कायसे जीवविराघनारूप दण्डका समारम्भ न करे, दूसरोंसे इन १४ प्रकारके जीवोंमें दण्डका आरंभ न करावें, और जो इनके विषयमें समारंभ कर रहे हैं उनकी अनुमोदना भी न करे । अतमें शिष्यको संयोजित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जो अन्य प्राणी पशुजीवनिकायोंमें दण्ड

उ०२, अधः अने तिर्यग् दिशाओमें सव प्रकारकी पूर्व, पश्चिम, उत्तर अने दक्षिण दिशाओमें “घ” शब्दकी गृहीत विदिशाओमें वर्तमान सूक्ष्म अने चादर आदिना बोधी १४ प्रकारका प्रत्येक लोका के प्राणियोंकी विराघनारूप कर्मसमारंभ है, मेघावी-जो बुद्धिमान-मुनि कर्मसमारंभने ज्ञपरिज्ञाकी बोधी अने प्रत्याख्यानपरिज्ञासे तेना त्याग करी स्वयं पशुजीविकायोंके विषे मन, वचन अने कायाकी व्यवहारनाश्रय इतना समारंभ न करे, जीवोंकी ज्ञया १४ प्रकारका लोका इतना समारंभ न करवे अने जो तेना समारंभ करे छे तेनी अनुमोदना न करे अतमा शिष्यने संयोजित करीने सूत्रकार कहे छे छे-जो अन्य प्राणी पशुजीवनिकायोंमें इतना समारंभ करे छे,

मपि वयं लज्जामहे; किमुत तदभिमतानुमोदनम्, इत्थं कृतनिश्चयः मेधावी=साधुमर्यादास्थितः--'दण्डभीः' दण्डात्=प्राणिविराधनारूपाद् विभेतीति दण्डभीः=प्राणातिपातभीरुः सन् तम्=अनर्थकरं कर्मसमारम्भं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा मेधावी तं=पूर्वोक्तं प्राणातिपातादिरूपं दण्डमन्यं वा दण्डं न समारभेथाः=त्वं न कुरुष्व-त्रिकरण-त्रियोगैस्तं सर्वथा परित्यजेरित्याशयः । 'इति ब्रवीमी' त्यस्यार्थस्तूक्त एवेति॥ सू० ५ ॥

॥ इति अष्टमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥८-१॥



का समारम्भ करते हैं साधुजनोंका यह दृढ़ निश्चय होता है कि वे यह विचार कर उनके कृत्यकी प्रशंसा नहीं करते हैं कि जब हम इनके साथ बोलने तकमें लजाते हैं तो इनके कृत्यकी प्रशंसा कैसे कर सकते है ? इसलिये हे शिष्य ! तुम भी साधुमर्यादाके पालक हो और प्राणियोंकी विराधनारूप दण्डसे भीरु हो, अतः इस अनर्थकर प्राणातिपातादिरूप दण्डका तथा अन्य दण्डका तुम तीन करण और तीन योगसे सर्वथा परित्याग करो ॥ सू०५ ॥

॥ आठवां अध्ययनका पहला उद्देश समाप्त ॥ ८-१ ॥



साधुजनो नो ऽप्येवो दद निश्चय डोय छे के तेज्यो विचार करी तेना कृत्योनी प्रशसा करता नथी, केम के न्यारे अमे तेनी साथे बोलवामा पणु शरभ अनुभवो छीअे तो पछी तेना कृत्यनी प्रशसा केवी रीते थछ शके ? माटे डे शिष्यो ! तमे पणु साधुमर्यादाना पालक छे अने प्राणीज्योनी विराधनारूप दडथी लीरु छे माटे आवा अनर्थकारी प्राणातिपात-आदिइप दडनेो तथा अन्य दडनेो तमे त्रणु करणु अने त्रणु योगोथी सर्वथा परित्याग करे ( सू०५ )

आठमा अध्ययननो पडेलो उद्देश समाप्त ॥ ८-१ ॥



## । अष्टमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देश ।

उक्तः प्रथमोद्देश, सम्प्रति द्वितीय आरम्भ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायमभि-  
सम्बन्धा, पूर्वोद्देशे विशुद्धसंयमनिर्वाहाय अहृष्टिपरिहार उक्तः, स चाऽकल्प्य  
परिहारं विना न संभवति, तत्सम्बन्धेनास्मिन्नुद्देशे चाऽकल्प्यपरित्याग एव प्रतिपा-  
दनीयोऽस्ति । तत्र पूर्वमकल्प्यपरिहारविधिं दर्शयति—‘से भिक्खू’ इत्यादि—

मूलम्—से भिक्खू परिक्रमिज्ज वा, चिद्धिज्ज वा, निसीइज्ज  
वा, तुयद्धिज्ज वा, सुसाणसि वा, सुन्नागारसि वा, गिरिशुहसि  
वा, रुक्खमूलसि वा, कुमाराययणसि वा, दुररथा वा, कर्हिधि  
विहरमाण त भिक्खु उपसकमित्तु गाहावई बूया—आउसतो ।  
समणा । अह खलु तव अट्ठाए असण वा, पाण वा, खाइम  
वा, साइम वा, वरथ वा, पडिमाह वा, कबल वा, पायपुच्छण

## आठवें अध्यायनका दूसरा उद्देश ।

प्रथम उद्देश कहा जा चुका । अब द्वितीय उद्देशका प्रारम्भ होता है ।  
इसका पूर्व उद्देशके साथ सम्बन्ध इस प्रकारसे है—प्रथम उद्देशमें  
विशुद्ध संयमके निर्वाहके लिये मुनिको जो मिथ्यादृष्टियोंका परिहार  
करना कहा है वह अकल्पनिक अज्ञानादिक परिहारके विना संभवित  
नहीं होता है इसलिये विशुद्ध संयमके साथ सम्बन्ध रखनेसे इस  
उद्देशमें अकल्पनिक अज्ञानादिकका परित्यागसम्बन्धी वर्णन है । उसमें  
सर्व प्रथम सूत्रकार अकल्पनिकके परिहारकी विधिका प्रदर्शन करते  
हैं—“से भिक्खू” इत्यादि ।

## आठमा अध्यायननो पीजे उद्देश

प्रथम उद्देश कहेवाच जये छे छेवे पीजे उद्देशनो प्रारम्भ थाम छे  
आनो पूर्व उद्देशनी साथे सम्बन्ध व्या प्रकाशनी छे—प्रथम उद्देशमा विशुद्ध  
संयमना निर्वाह माटे मुनिजे मिथ्यादृष्टियेनो परिहार क्वानु कसु छे ते  
अकल्पनिक अज्ञानादिकन्य परिहार विना संभवित जननु नथी, व्या माटे विशुद्ध  
संयमनी साथे सम्बन्ध सम्बन्धी व्या उद्देशमा अकल्पनिक अज्ञानादिकन्य परि-  
त्यागसम्बन्धी वर्णन छे आमां सब प्रथम सूत्रकार अकल्पनिकना परिहारनी  
विधि प्रदर्शन करे छे—“से भिक्खू” इत्यादि

वा, पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं  
 पामिच्चं अच्छिज्जं अणिसिट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएमि, आवसहं  
 वा समुस्सिणोमि से भुंजह वसह आउसंतो! समणा! भिक्खूतं  
 गाहावइं समणसं सवयसं पडियाइक्खे—आउसंतो ! गाहावइ !  
 नो खलु ते वयणं आढामि, नो खलु ते वयणं परिजाणामि जो  
 तुमं मम अट्ठाए असणं वा ४, वत्थं वा ४, पाणाइं वा ४, समारब्भ  
 समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छिज्जं अणिसिट्ठं अभिहडं आहट्टु  
 चेएसि आवसहं वा, समणुस्सिणासि से विरओ आउसो !  
 गाहावई ! एयस्स अकरणयाए ॥ सू० १ ॥

छाया—स भिक्षुः पराक्रमेत वा तिष्ठेद्वा निषीदेद्वा त्वग्वर्तयेद्वा श्मशाने वा  
 शून्यागारे वा गिरिगुहायां वा वृक्षमूले वा कुम्भकारायतने वा हुरत्या वा क्व-  
 चिद्विहरन्तं तं भिक्षुमुपसंक्रम्य गाथापतिर्ब्रूयात्—आयुष्मन् ! श्रमण ! अहं खलु तवा-  
 र्थायाशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा वस्त्रं वा पतद्ग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रो-  
 व्छनं वा प्राणिनो भूतान् जीवान् सत्त्वानि समारभ्य समुद्दिश्य क्रीतं प्रामित्यम्  
 आच्छिद्यम् अनिसृष्टम् अभिहतम् आहत्य ददामि, आवसथं समुच्छृणोमि तद् भूङ्क्ष्व  
 वस आयुष्मन् ! श्रमण ! । भिक्षुस्तं गाथापतिं समनसं सवयसं प्रत्याचक्षीत—आयुष्मन् !  
 गाथापते ! न खलु ते वचनमाद्रिये न खलु ते वचनं परिजानामि, यस्त्वं ममार्थाय  
 अशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ प्राणिनो वा ४ समारभ्य समुद्दिश्य क्रीतं प्रामित्यम् आच्छि-  
 द्यम् अनिसृष्टम् अभिहतम् आहत्य ददासि, आवसथं वा समुच्छृणोषि, सोऽहं  
 विरत आयुष्मन् ! गाथापते ! एतस्याकरणतया ॥ सू० १ ॥

इसमें ये जितने कल्प प्रकट किये गये हैं वे सब प्रतिमाप्रतिपन्न  
 साधुकी अपेक्षा से कहे गये हैं। अन्य साधुजनोंमें भी ये यथासंभव  
 जान लेना चाहिये। सूत्रकार 'इसमें मुनिजनके लिये इस प्रकारका अहार  
 अकल्पनिक है' वह बतलाते हैं—

आमा नेटला कल्प प्रगट करवा मा आवेल छे ते षधा प्रतिमाप्रतिपन्न साधुनी  
 अपेक्षाथी कडेवाया छे अन्य साधुजनोमा पणु अये यथासंभव समज्जवा लेधअ.  
 सूत्रकार आमा मुनिजनने माटे 'अये प्रकारना आहार अकल्पनिक छे' ते यतावे छे—



टीका-‘ स मिष्ठु ’-रित्यादि, सः=गृहीतपञ्चमहाप्रता, परिष्ठाञ्चित्परिष्ठात्  
समाह्वः सकलसमारम्भोपरत’ मिष्ठु=शरीरयात्रानिर्वहणार्थमञ्जनवसनादियाचन-  
शीलो मुनिः ‘श्मशाने’ श्वाः श्वेतो यत्र तत् श्मशानम्, अत्र ‘वा’ इन्द्रः सर्वत्र  
पक्षान्तरघोतक’ । तथा शुन्यागारे=निर्जनगृहे गिरिगुहायां=पर्वतकन्दरायां वृक्षमूले  
=तलमूले, कुम्भकारयतने=कुम्भकाराशालायां ‘दुरत्या’ इति दक्षमापया पूर्वो  
क्तस्यानेम्योऽन्यत्र वा कुम्भचित् स्थाने पराक्रमेत=तपःसयमाचरन्नादौ पराक्रम  
कुर्यात्, निहरेदित्यर्थ, तिष्ठेद्वा ध्यानादिनिषानाय, निपीवेद्वा वाचना-पृच्छना-  
परिवर्तनादिप्रणाय उपविशेत्, अपि चाध्वस्वेदसमापन्नः स स्वस्वर्तयत्=त्वन्वर्तनं  
कुर्यात्, पार्श्वं परिवर्तयेदित्यर्थः। एते च कस्याः प्रतिमामतिपन्नमधिकृत्य प्रोक्ताः,  
अन्यथा तु यथासम्भवं बोध्यम्। गाथापतिः=गृहस्थः=स्त्रीकृतसम्पत्तसाध्यावारा  
नमिष्ठु प्रकृतिभद्रस्तत्र तत्र स्थानेषु विहरन्ते=विचरन्तं मुनिम् उपसकृम्य=मुनिस्-

पांच महाप्रतौका धारक, परिष्कारूपी पर्वतकी शिखर पर समाह्व  
समस्त समारम्भोंसे निवृत्त मिष्ठु शरीरयात्राके निष्ठाहके लिये ही  
अज्ञान, वसन ( वस्त्र ) आदिकी वाचना करनेवाला मुनि ध्यान आदि  
करनेके निमित्त, या आगमकी वाचना, पृच्छना और परिवर्तना आदि  
करनेके निमित्त अथवा अपने गृहीत तप और संयमकी विशेष आरा-  
धनाके निमित्त कमी श्मशानमें जाता है, कमी शून्य गृहमें ठहरता है  
कमी पर्वतकी गुफामें पसता है और कमी किसी वृक्षके नीचे और कमी  
किसी कुम्भारकी शालामें या और भी कहीं इन स्थानोंसे अतिरिक्त स्थानोंमें  
तथा मागैजनित परिश्रमको बुर करनेके लिये विश्रामके निमित्त भी इन्हीं  
स्थानोंमेंसे कहीं ठहर जाता है। इस परिस्थितिसे सम्पन्न विहार करनेवाले  
मुनिके पास प्रकृतिके भद्र सम्पद्दृष्टि कोई गृहस्थ जो मुनिके आचारसे

पांच महाप्रतौका धारक, परिष्कारूपी पर्वतकी शिखर पर समाह्व  
समस्त समारम्भोंकी निवृत्त मिष्ठु-शरीर यात्राया निष्ठाह माटे व अज्ञान,  
वसन आदिनी वाचना करवावाण मुनि-ध्यान आदि करवा निमित्त, अथवा अत्र  
अनी वाचना, पृच्छना अने परिवर्तना आदि करवा निमित्त, अथवा पोते धारक  
करके तप अने संयमकी विशेष आराधनाया निमित्त क्यारैक श्मशानमा जाय  
छे क्यारैक वृक्षनी नीचे अने कुम्भारनी शालामा अथवा वीथ्य कोठ स्थानमा  
तथा मागैनी जाकेने बुर करवा माटे विश्राम निमित्त पद्य अथवा स्थानोंमाथी क छपय  
रही जाय छे आ परिस्थितिधी स पत्र विहार करवावाण मुनिनी पासे प्रकृतिकी

मीपमागत्य 'अयं सानुक्रोशः लाभालाभसन्तोषी भिक्षोपजीवी परोपकारपरायणो-  
ऽस्ति तस्मादेत स्मै सर्वमशनादिकं दास्यामी'-ति चेतसि विचिन्त्य च ब्रूयात्=वक्ष्यमाणं  
वाक्यं कथयेत्, तदेवाह-आयुष्मन्! श्रमण! =भो मुने! अहं संसारपारावारपारं  
जिगमिषुः 'खलु' वाक्यालङ्कारे तवार्थाय=भवदर्थं सर्वम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं चतु-  
र्विधमप्याहारम्, तथा वस्त्रं पतद्ग्रहं कम्बलं पादप्रोच्छन्नं समुद्दिश्य=भवन्तमुद्दिश्य  
एवं प्राणिनी भूतानि=जीवान् सत्त्वानि समारभ्य=विराध्य सम्पादितम् अशनादि-  
सम्पादने षड्जीवनिकायविराधनाया अवश्यम्भावात्, तदशनादिकं क्रीतं=मूल्येन,  
प्राप्तित्यम्=अपमृत्यमुच्छिन्नतया गृहीतम्, आच्छिद्यं=बलात्कारेण यद् दुर्वलाद् गृ-

अनभिज्ञ है वह आकर इस ख्यालसे कि "यह साधु सानुक्रोश लाभ  
और अलाभमें संतोषी भिक्षोपजीवी तथा परोपकारमें निरत है इस कारण  
इसके लिए मैं अशन वसनादिक दूँ" इस भावनासे प्रेरित होकर ऐसा  
कहता है कि-हे आयुष्मन् मुने! मैं संसाररूपी समुद्रसे पार होनेका हूँ, अतः  
आपके लिये समस्त अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, ये चार प्रकारका आहार,  
तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण देना चाहता हूँ। ये समस्त वस्तुएँ  
मैंने आपके उद्देशसे ही रख छोड़ी है। इनकी तैयारी करनेमें अथवा संग्रह  
करनेमें अनेक प्राणियों भूतों जीवों और सत्त्वोंकी विराधना हुई है, क्यों  
कि षट्कायके जीवोंकी विराधना हुए बिना इनकी उत्पत्ति हो भी कैसे  
सकती है, आपको देनेके लिये ही मैंने इन्हें मूल्य दे कर खरीदा है,  
इन वस्तुओंको मैंने येन केन प्रकारेण उधार ले कर इन्हें रखा है।  
बलात्कारसे छीन कर इनका संग्रह किया है। मेरे घरमें इन वस्तु-

षट् सम्बन्धेष्टि कोष्ठं गृहस्थे न मुनिना आचारथी अन्वेष्ये ते आवीने आवा ज्वालथी  
के "आ साधु सानुक्रोश लाभाने अलाभमां संतोषी, भिक्षोपजीवी, तथा परोपकारमां  
निरतं छे आ कारणे आने हुं अत्र वस्त्र आपु" आ आवी भावनाथी प्रेरित भनी  
साधु समक्ष आवी वदना करी कडे छे-हे आयुष्मन् मुने! हुं संसाररूपी  
समुद्रथी पार थवानो अविदापी छुं आपना माटे अशन, पान, आद्य, स्वाद्य,  
आ चार प्रकारना आहार तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल अने रजोहरण देवा आहुं  
छु आ अंधी वस्तुओ मे आपना उद्देशथी न राभी छे आनी तैयारी कर-  
वामा अथवा संग्रह करवामा अनेक प्राणीओ, भूतो, लुवो अने सत्त्वोनी  
विराधना थई छे, केम के षट्कायना लुवोनी विराधना थया बिना अनी उत्पत्ति  
थई पणु केम शके?, आपने आपवा माटे न मे आ वस्तुओ  
मूल्य दई खरीदी छे, आ अंधी वस्तुओ उछीती दईने राभेल छे,  
अन्वेष्यथी दुर्भणोथी छीनवी अने संग्रह करेल छे मारा घरमा

टीका- 'स मिष्णु'-रित्यादि, सः=गृहीतपञ्चमहाप्रतः, परिष्ठाञ्चिस्त्रिस्त्रिस्त्र  
 समासः सकलसमारम्भोपरतः मिष्णुः=शरीरयात्रानिर्वाहणार्थमश्वनवसनादियाचन-  
 षीलो मुनिः 'श्मशाने' श्वा' श्वेरते यत्र तत् श्मशानम्, अत्र 'वा' क्वम्: सर्वत्र  
 पसान्तरघोतक'। तथा शून्यागारे=निर्जनगृहे गिरिगुहायां=पर्वतकन्दरायां वृक्षमूले  
 =वृक्षमूले, कुम्भकारयत्ने=कुम्भकाराद्यालायां 'हुरस्या' इति वृक्षमापया पूर्वो  
 कस्यानेभ्योऽन्यत्र वा कुप्रचित् स्थाने पराक्रमेत्=तपःसपमाचरणादौ पराक्रम  
 कुर्यात्, विहरेदित्यर्थ, सिण्ठेद्वा म्यानादिषिधानाय, निपीदेद्वा वाचना-पृच्छना-  
 परिवर्तनादिकरणाय उपविशेत्, अपि चाप्यखेदसमापकः स स्वम्वर्तयेत्=स्वम्वर्तनं  
 कुर्यात्, पार्श्वं परिवर्तयेदित्यर्थः। एते च क्रमपाः प्रतिमाप्रतिपन्नमधिकृत्य प्रोक्ताः,  
 अन्येषां तु यथासम्भवं बोध्यम्। गाथापतिः=गृहस्थः=स्वीकृतसम्यक्त्वसाध्याचारा  
 नमिच्छ प्रकृतिमद्रस्तत्र तत्र स्थानेषु विहरन्तं=विचरन्तं मुनिम् उपसङ्गम्य=मुनिस्-

पांच महाप्रतोका धारक, परिष्कारूपी पर्वतकी शिखर पर समास  
 समस्त समारम्भोसे निवृत्त मिष्णु शरीरयात्राके निर्वाहके लिये ही  
 अश्वान, वसन ( वस्त्र ) आदिकी याचना करनेवाला मुनि ध्यान आदि  
 करनेके निमित्त, या आगमकी वाचना, पृच्छना और परिवर्तना आदि  
 करनेके निमित्त अथवा अपने गृहीत तप और संयमकी विशेष आरा-  
 घनाके निमित्त कमी श्मशानमें जाता है, कमी शून्य गृहमें ठहरता है  
 कमी पर्वतकी गुफामें बसता है और कमी किसी वृक्षके नीचे और कमी  
 किसी कुम्भारकी शालामें या और भी कहीं हम स्थानोंसे अतिरिक्त स्थानोंमें  
 तथा मार्गजनित परिश्रमको दूर करनेके लिये विद्यामके निमित्त भी इन्हीं  
 स्थानोंमेंसे कहीं ठहर जाता है। इस परिस्थितिसे सम्पन्न विहार करनेवाले  
 मुनिके पास प्रकृतिके 'मद्र सम्यग्दृष्टि कोई गृहस्थ जो मुनिके आचारसे

पांच महाप्रतोका धारक, परिष्कारूपी पर्वतकी शिखर पर समास  
 समस्त समारम्भोभाषी निवृत्त मिष्णु-शरीर यात्राया निर्वहण भाटे अश्वान,  
 वसन आदिनी याचना कर्वावाण मुनि-ध्यान आदि कर्वा निमित्त, अत्र अत्र  
 मनी वाचना पृच्छना अने परिवर्तना आदि कर्वा निमित्त, अथवा पोते धारण  
 करे तप अने संयमनी विशेष आराधनाया निमित्त क्यारैक श्मशानमा अथ  
 छे क्यारैक वृक्षमा अने अथवा पर्वतनी गुहामा वसे छे अने  
 क्यारैक कुम्भारनी शालामा अथवा अथवा कोठ स्थानमा  
 तथा मार्गनी यात्राके दूर कर्वा भाटे विद्याम निमित्त पञ्च ज्येष्ठ स्थानोंमांशी कर्वा  
 रही अथ छे अथ परिस्थितिधी स पञ्च विहार कर्वावाण मुनिनी पास प्रकृतिशी

मीपमागत्य 'अयं सानुक्रोशः लाभालाभसन्तोषी भिक्षोपजीवी परोपकारपरायणो-  
ऽस्ति तस्मादेत रमै सर्वमशनादिकं दास्यामी'-ति चेतसि विचिन्त्य च त्रूयात्=वक्ष्यमाणं  
वाक्यं कथयेत्, तदेवाह-आयुष्मन्! श्रमण! =भो मुने! अहं संसारपारावारपारं  
जिगमिषुः 'खलु' वाक्यालङ्कारे तवार्थाय=भवदर्थं सर्वम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं चतु-  
र्विधमप्याहारम्, तथा वस्त्रं पतद्ग्रहं कम्बलं पादप्रोच्छन्नं समुद्दिश्य=भवन्तमुद्दिश्य  
एवं प्राणिनी भूतानि=जीवान् सत्त्वानि समारभ्य=विराध्य सम्पादितम् अशनादि-  
सम्पादने पङ्जीवनिकायविराधनाया अवश्यम्भावात्, तदशनादिकं क्रीतं=मूल्येन,  
प्राप्तियम्=अप मित्यमुच्छिन्नतया गृहीतम्, आच्छिद्यं=वलात्कारेण यद् दुर्बलाद् गृ-

अनभिज्ञ है वह आकर इस ख्यालसे कि " यह साधु सानुक्रोश लाभ  
और अलाभमें संतोषी भिक्षोपजीवी तथा परोपकारमें निरत है इस कारण  
इसके लिए मैं अशन वसनादिक दूँ " इस भावनासे प्रेरित होकर ऐसा  
कहता है कि-हे आयुष्मन् मुने ! मैं संसाररूपी समुद्रसे पार होनेका हूँ, अतः  
आपके लिये समस्त अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, ये चार प्रकारका आहार,  
तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण देना चाहता हूँ। ये समस्त वस्तुएँ  
मैंने आपके उद्देशसे ही रख छोड़ी है। इनकी तैयारी करनेमें अथवा संग्रह  
करनेमें अनेक प्राणियों भूतों जीवों और सत्त्वोंकी विराधना हुई है, क्यों  
कि षट्कायके जीवोंकी विराधना हुए विना इनकी उत्पत्ति हो भी कैसे  
सकती है, आपको देनेके लिये ही मैंने इन्हें मूल्य दे कर खरीदा है,  
इन वस्तुओंको मैंने घेन केन प्रकारेण उधार ले कर इन्हें रखा है।  
वलात्कारसे छीन कर इनका संग्रह किया है। मेरे घरमें इन वस्तु-

संग्रहस्य गृहस्थे कोष्ठे गृहस्थे न मुनिना आचारथी अन्वेष्यते ते आवीने आवा भ्यालथी  
हे " आसाधु सानुक्रोश लाभाने अलाभमां स तोषी, भिक्षोपजीवी, तथा परोपकारमां  
निरत छे आ शरणे आने हूँ अन्न वस्त्र आयु " आ आची लावनाथी प्रेरित जनी  
साधु समक्ष आवी वदना करी कडे छे-हे आयुष्मन् मुने ! हूँ संसाररूपी  
समुद्रथी पार थवाने अबिलाषी छुं आपना माटे अशन, पान, भाद्य, स्वाद्य,  
आ आर प्रकारना आहार तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल अने रजोहरण देवा आहुं  
छुं आ अधी वस्तुओ मे आपना उदेशथी न राभी छे. आनी तैयारी कर-  
वामा अथवा संग्रह करवामां अनेके प्राणीओ, भूतो, जिवो अने सत्वोनी  
विराधना थछे छे, केम के षट्कायना जिवोनी विराधना थया विना जेनी उत्पत्ति  
थछे पणु केम शके ?, आपने आपवा माटे न मे' आ वस्तुओ  
मूल्य हछे भरीही छे, आ अंधी वस्तुओ उछीती लछेने राखेल छे,  
अपणाकारथी दुर्भणोथी छीनवी जेने संग्रह करेल छे मारा घरमां

हीतम्, अनिमृष्टम्=अनेकस्वामिकाहारादिकमन्याननापृच्छय तदनिच्छयैकेन यहीय  
 मानम्, अमिह्व=साधुसमीपमानीय हीयमानम्, एतादृश सर्वमाहारादिकम् आहृत्य=  
 आनीय तुभ्य दद्यामि एवम् आसयस्यं=वसतिं वा भवदर्थं समुच्छृणोमि=नवीनं विद  
 भामि जीर्णं वा परिष्करोमि सो आयुष्मन् ! भ्रमण ! त्वं तद्यथाभूतमज्ञादिकं मु  
 क्तस्व=अज्ञान, त्वदर्थं मभिमित्तमवने च वस=तिष्ठ । मूले बहुवचनमार्षत्वात् । एक-  
 मुक्तवन्त गाथापतिं निषेधय मुनिरेवमाह-मिक्षुः=मुनि समनसं मनसा सहेति सम-  
 नास्वं=सषेत्सम् शोभनमनसा कृत्वादर्शं, सवयसं वयसा=वात्यातिरिक्तेन सह स-  
 पास्व सवयस=वात्येत्तरावस्यापन्नं तादृशं गाथापतिं=गृहस्थं प्रत्याचक्षीत्=वक्ष्यमाणं  
 प्रत्युचरं वधात्—

सो आयुष्मन् ! गृहपते ? अहं ते वचनं=पूर्वोक्तं न 'सख' शब्दोऽ  
 प्यर्थे तेन नापि आद्रिये=न तत्रादरं करोमि, अपि च अहं ते वचनं न परिजानामि  
 ओंकि अनेक मालिक हैं सो मैंने इन्हें देनेके निमित्त और किसीसे नहीं  
 पूछा है—शायद उनकी इच्छा देनेकी न हो—मो मैं तो एक ही जनसे  
 पूछ कर इन्हें देनेके लिये आपके समक्ष ले आया हूँ । ये आहारादिक  
 वस्तुएँ आपके लेनेके योग्य हैं अतः आप इन्हें लीजिये मैं देता हूँ, इसी  
 प्रकार मैं आपको ठहरनेके लिये एक नवीन मकान बनवाये देता हूँ,  
 अथवा पुरानेको ही ठीक करवाये देता हूँ, सो आप जैसा मैंने कहा है  
 उस प्रकारसे अज्ञानादिकको ग्रहण करें और उस मेरे द्वारा बनवाये हुए  
 मकानमें रहें । इस प्रकार कहनेवाले गृहस्थजमके लिये मुनि इस प्रकारसे  
 निषेध करे—

हे आयुष्मन् गृहपते ! आपने जो कुछ कहा है वह भक्तिसे भरे  
 हुए अतःकरणसे कहा है—उसमें ऊपरके दिखावकी झलक नहीं है । तथा

आ वस्तुभ्याना अनेक मालिक छे परंतु आपने देवा निमित्त मे ओंकिने पूछतु  
 नहीं, अरखु के कथय जेमनी भिक्षु देवानी न भाय-इकत जेकन आपुने पूछी देवा  
 भाटे आपनी समख लक्ष आपवेस हूँ आकाशदिक वस्तुभ्या आपने देवा भे  
 छे, आप जेने स्वीकार करे, हुँ आपु हूँ न्य हीते आपने रहेवा भाटे जेक  
 ननु भक्तान जनापी आपु हूँ अथवा गुनाने ठीक कथापी आपु हूँ तो आप मे  
 कहु तेम असनादिकने प्रदखु करे अने भाश जनावेसा महानर्मा रहे। आ  
 प्रकार रहेवावाण्य गृहस्थने मुनि आ प्रकार निषेध करे—

हे आयुष्मान् गृहस्थ ! आपने जो कुछ ते अहितशी अरपूर अताकखुशी  
 कहु छे, तेमां उपरना देवदानी जेक नही, तथा तमे आत्म अवस्थाने उल्लेखन

आसेवनपरिज्ञया न समनुजानामि, यस्त्वं ममार्थाय=मन्निमित्तं यद् अशनं=चतुर्विधं वस्त्रं वा=वस्त्रादिकं प्राणादीन् समारभ्य षड्जीवनिकायमुपमर्द्यं सम्पादितम्, तथा समुद्दिश्य=मामुद्दिश्य क्रीतं प्रामित्यम् आच्छिद्यम् अनिसृष्टम् धमिहतम् आहत्य ददासि, आव्रसथं वा समुच्छृणोपि=मदर्थं निर्मापयसि किन्तु हे आयुष्मन् ! गृह्यते !

तुम बाल्य अवस्थाको उल्लङ्घन भी कर चुके हो इसलिये हम यह भी नहीं मान सकते कि किसीने तुम्हें समझा बुझाकर हमारे पास भेजा है, अतः तुम सहृदय एवं उमरलायक व्यक्ति हो फिर भी तुम मुनि के आचार विचारोंसे अपरिचित हो इसलिये हम तुम्हें समझाते हैं कि-आपने जो कुछ आहार आदि सामग्रीके लेनेके विषयमें कहा है, मैं उन वचनोंको न सुनना चाहता हूं, न आदरकी दृष्टिसे देखता हूं और न आसेवनपरिज्ञासे उनकी अनुमोदना भी करता हूं। तुम जो कह रहे हो कि मैंने अशनादिक चारों प्रकारका आहार तथा वस्त्रादिक षड्जीवनिकायको उपमर्दन करके संपादित किया है, तथा मेरे उद्देश्यसे इन्हें खरीदा है, ये समस्त चीजें तुमने उधार लेकर हमको देनेके लिये इन्हें रख छोड़ी है, बलात्कारसे निर्बलोंसे इसे छीन झपट कर संग्रह की है, घरमें इस सामग्रीके अनेक मालिक थे सो किसीसे न पूछ कर केवल एक ही अनुष्यकी आज्ञा ले कर तुम अपनी इच्छासे ही हमें देनेके लिये इसे लाये हो, तथा एक नवीन भवन भी मुझे करवा देनेके लिये कह रहे हो, आदि २ ये तुम्हारी बातें मुनियोंके योग्य नहीं हैं, इस लिये

करी गया छे माटे अमे अे पणु भानता नथी के केअंअे तमने समनवी पुनवीने अमारी पासे मोकलेल छे, माटे तमे सहृदय तेमज उमरलायक व्यक्तित छे तो पणु तमे मुनिना आचार विचारथी अपरिचित छे माटे अमे तमोने समनवीअे छीअे के आपे अे कांअ आकारादि सामग्री लेवाना विषयमां कहु छे हु ते वयनोने सांभणवा धरुअतो नथी, आदरनी दृष्टिथी हेअतो नथी अने आसेवनपरिज्ञाथी तेनी अनुमोदना पणु करतो नथी, तमे अे कही रह्या छे के मे अशनादिक चारे प्रकारने आहार तथा वस्त्रादिक षड्जीवनिकायनु उपमर्दन करीने संपादित करैल छे, तथा मारी धरुअथी पारीहेल छे, आ समस्त चीजे तमे उछीनी लधने मने आपवा माटे राणी मुकेल छे अणात्कारथी निर्बणो पासेथी आने आचरकी लध सग्रह करैल छे, घरमा आ सामग्रीना अनेक मालीक हुता अेमाथी केअंअे न पूछता केवण अेक ज भाणुसनी आज्ञा लधने तमे तमारी धरुअथी मने आपवा माटे लावेल छे तेमज अेक ननु

एतस्य=पूर्वोक्तस्य अकरणतया अनासेवनपरिहृया सोऽह विरतः=अकल्पनीयास्त-  
नादिप्रहणेभ्यो निवृत्तोऽस्मि, पूर्वोक्त सर्वं मम न कल्पत इति भावः, अतो मर्त्य  
सुपकल्पितं पूर्वोक्तं सर्वं वस्तुभातं भगवदाज्ञानहिर्मृतत्वात् स्वीकर्तुं न शक्नोमि,  
नात्र त्वया स्वमनसि खेदो विधेयाः, इत्यादि सान्त्वनावाक्यैस्तं प्रकृतिमद्रं गृहस्थ-  
मनुनयेदिति तात्पर्यम् ॥ सू० १ ॥

विदितसाध्याचारो गृहपतिः साधुमविद्याप्याशनादिकसुपकल्प्य निमन्त्रयेत्  
तन्निषेधयितुमाह—' से भिक्षु' इत्यादि ।

हम इसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं और न हम इसकी तुम्हें स्वीकृति ही  
दे सकते हैं, कारण कि इस प्रकारकी अकल्पनीय सामग्रीके ग्रहणसे  
हम सर्वथा विरत हैं । तीर्थङ्कर प्रभुकी यह आज्ञा है कि मुनिजन इस  
प्रकारकी अकल्पनीय भक्षणादि सामग्रीको ग्रहण न करे, अतः हमारे  
निमित्त रखी हुई पूर्वोक्त समस्त अशनवसनादिरूप सामग्री तीर्थङ्कर  
भगवान्की आज्ञासे परिहृत होनेके कारण हमें ग्रहण करनेयोग्य नहीं  
है, इसलिये हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं । इस विषयमें तुम  
अपने चित्तमें खेद मत करना । इस प्रकारके सान्त्वना परिपूर्ण वचनोंसे  
यह मुनि उस प्रकृतिमद्रं गृहस्थको समझावे ॥ सू० १ ॥

साधुके निमित्त तप्यार की गई आहारादिक सामग्री ज्ञात होने पर  
साधुके लिये अकल्पनीय है । साधुजन उसे नहीं ले सकते हैं ।  
जिसने साधुका आचार जाना है ऐसे गृहस्थके द्वारा साधुके उद्देश

भक्षण पक्ष भास भाटे कल्पनी अपवानु कही रक्षा छे आ सवणी तभारी  
बातो मुनिने योग्य नहीं देखी तेने हु अहलु करी शकते नहीं तेभ जेनी स्वीकृति  
पक्ष छे शकते नहीं अहलु के आ प्रकल्पनी अकल्पनीय सामग्रीना अहलुधी  
हुं सर्वथा विरक्त छे तीर्थंकर प्रभुनी जेवी आशा छे के मुनिजन आवा  
प्रकल्पनी अकल्पनीय अशनादि सामग्री अहलु न करे भाटे भास निमित्त सपेही  
पूर्वोक्त समस्त अशनवसनादिरूप सामग्री तीर्थंकर भगवाननी आशाही अहि-  
कृत होवाने अहलु भाटे योग्य नहीं आ भाटे हु तेने अहलु करी शकते  
नहीं आ आगत तसे तभास मनमां जेह करीये नहीं आ प्रकारे सान्त्वना  
परिपूर्ण वचनोंसे ते मुनि जे प्रकृतिमद्रं अहस्थने समझावे ॥ सू० १ ॥

साधुना निमित्त तप्यार कसजेही आहारादिक सामग्री ज्ञाप्य पछी साधु  
भाटे अकल्पनीय छे साधुजन तेना स्वीकार कस्ता नहीं देखे साधुना आचार  
ज्ञाप्य छे जेवा अहस्थद्वारा साधुना उद्देश बिना पक्ष तप्यार कसयेही योग्यनादिक

मूलम्—से भिक्खू परक्कमिज्ज वा, जाव हुरत्था वा, कहिं चि विहरमाणं तं भिक्खुं उवसंकमिच्चु गाहावई आयगयाए पेहाए असणं वा ४, वत्थं वा ४, जाव आहट्ट चेएइ आवसहं वा समुस्सिणाइ तं भिक्खुं परिघासेउं। तं च भिक्खू जाणिज्जा सह सम्मइयाए परवागरणेणं अन्नेसिं वा अंतिए सुच्चा—अयं खलु गाहावई मम अट्टाए असणं वा ४, जाव आवसहं वा समुस्सिणाइ तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमिच्चा आणविज्जा अणासेवणयाए त्तिवेमि ॥ सू० २ ॥

छाया—स भिक्षुः पराक्रमेत वा यावद् हुरत्था ( अन्यत्र ) वा क्वचिद् विहरमाणं तं भिक्षुमुपसंक्रम्य गृहपतिरात्मगतया प्रेक्षया अशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ यावदाहृत्य ददाति आवसथं वा समुच्छृणोति तं भिक्षुं परिघासयितुं। तच्च भिक्षुर्जानीयात् सहसम्मत्या परव्याकरणेनाऽन्येषां वाऽन्तिके श्रुत्वा—अयं खलु गाथापतिर्ममार्थायाशनं वा ४ यावदावसथं वा समुच्छृणोति तद्भिक्षुः प्रत्युपेक्ष्यावगम्याऽऽज्ञापयेदनासेवनतयेति ब्रवीमि ॥ सू० २ ॥

टीका—‘ स भिक्षु’—रित्यादि, स भिक्षुः=मुनिः पूर्वोक्ते श्मशानादौ ‘हुरत्था’ देशभाषया अन्यत्रापि ग्रामादौ पराक्रमेत=तपःसंयमादौ, ‘यावत्’ इत्यनेन पूर्वोक्ते विना भी तैयार की गई भोजनादिक सामग्री निमंत्रित किया गया साधु नहीं ले सकता है, इसे प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—  
“ से भिक्खू ” इत्यादि ।

उस मुनिको कि जो अपने तप और संयमकी वृद्धि करनेके निमित्त ध्यान आदिकी सिद्धिके निमित्त, अथवा आगमकी वाचना, पृच्छना और परिवर्तना आदिके निमित्त श्मशान आदि स्थानोंमें शून्य घरमें पर्वतकी

सामग्री निमंत्रित करवाभां आवेद साधु लक्ष शकता नथी, तेने प्रकट करवा भाटे सूत्रकार कहे छे—“ से भिक्खू ” इत्यादि

ये मुनि के ने चोताना तप अने संयमनी वृद्धि करवा निमित्त ध्यान आदिनी सिद्धिना निमित्त अथवा आगमनी वाचना, पृच्छना, अने परिवर्तना आदिना निमित्त श्मशान आदि स्थानोभा, उन्नत घरभा, पर्वतनी शुक्राभां,



कर्मभिपीदेवम्वर्चयेदिति सङ्ग्रहः, गायपतिः=प्रकृतिमद्रकः कर्मिद् मात्मगतया  
 =अन्तःकरणस्थितया प्रेक्षयाऽनाविष्कृताक्षयः प्रच्छन्नपचनपाचनादिना पद्मीनिनि-  
 कायं विराघयन् तं मिष्टं तत्र क्वचिदेकत्र विहरन्तम् उपसंक्रम्य तत्समीपं गत्वा  
 अन्नं वा घटुर्विभं, वस्त्रं वा ४ यावत्सर्वम् आहृत्य=आदाय तं मिष्टं परिपासयितुं=  
 मुनिमोजनाय ददाति=भितरति आषसयं वा=नदीन गृहं वासयितुं समुच्छ्रोति=  
 निर्मापयति भीषी वा परिष्करोति, मिष्टुः=सयमी तद् आहारादिकं पश्चादिक्रमात्-  
 सयं वा साध्यमेव कृतमिति सासम्मस्या=स्वपुद्गला, तथाऽनधिगमे परव्याकरणेन  
 परपरिभ्रमेन, ततोऽनधगमे अन्येषां=तत्परिजनदासादीनामन्तिके=समीपे भुत्वा वा

गुफाओंमें कुंमारकी शालामें या इनसे अतिरिक्त किसी भी स्थानमें  
 रहता है ठहरता है उठता है तथा बैठता है या मार्गजन्य खेदको दूर  
 करनेके लिये उन २ स्थानोंमें विश्राम करता है उन्हें देख कर कोई  
 प्रकृतिभद्र गृहस्थ अपनी इच्छासे उपार्जित आहार देनेकी भावनासे अज्ञा  
 है। मुनिके निमित्त इसने आहारादिक सामग्री तैयार की है इस प्रकार  
 का उसका अभिप्राय प्रकट नहीं हो रहा है, तथा मुनिसे प्रच्छन्न पचन  
 पाचनादि व्यापारसे जिसने पद्मीवनिकायकी विराघना भी की है वह  
 गृहस्थ अन्न, पान, आद्य और स्वाद्य तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और  
 रजोहरण आदि समस्त सामग्रीको छे कर मुनिको देनेके निमित्त कहीं  
 रख देता है। नया मकान भी ठहरनेके लिये पनवा देता है, अथवा जीर्ण  
 का उद्धार करवा देता है। मुनिको जब यह बात अपनी बुद्धिसे या उस  
 से नहीं मालूम पड़ने पर हमरेसे पूछनेसे, उससे भी निश्चित न होनेपर

कुमारानी शालामां अथवा तेनाथी सिवाय कोऽप्यप्यु स्थानमां रदो छे-शालाव छे  
 छे छे छे तथा मार्गजन्य याकने इर करवा माटे तेवा स्थानमां  
 विश्राम करे छे तेने जेधने कोऽप्यु प्रकृतिभद्र गृहस्थ पोतानी छिन्धिथी उपार्जित  
 आहार देवानी व्यापारथी अने छे मुनि निमित्त तेजे व्यापारदिक सामग्री  
 तैयार करेथी छे आ प्रकारने भाव देवाछि आवतो नथी तथा मुनिथी  
 प्रच्छन्न पचनपाचनादि व्यापारथी जेजे पद्मीवनिकायनी विराघना करेथी छे ते  
 गृहस्थ अन्न पान, आद्य अने स्वाद्य तथा वस्त्र पात्र, कम्बल अने रजोहरण  
 आदि समस्त सामग्री छेधने मुनिने देवा माटे कोऽप्यु जेथेको सजे छे नउ  
 मकान पजु रदोवा माटे जनाथी दे छे अथवा जनुधने समस्तथी आपे छे मुनिने  
 आ बात जेधरे पोतानी बुद्धिथी, अथवा तेने नई भावुम प वाथी भीजने  
 पूछवाथी, जेनाथी पजु निश्चित न यवाथी तेवा दास दासी अदिना पसेथी

जानीयात्=बुद्धयेत्, किं जानीयादित्याह—‘अय’—मित्यादि—अयम्=एष गाथापतिः खलु=निश्चयेन, ममार्थाय=मदर्थं संपाद्य अशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ यावत्सर्वं ददाति, आवसथं वा समुच्छृणोति एतत्सर्वं जानीयादिति सम्बन्धः । तत्सर्वमकल्प्यत्वात्परिहरेदित्याह—‘तदि’—त्यादि, भिक्षुः=मुनिः तत्=अशन—वसनावसथादिकं मदर्थमेव सम्पादितमिति प्रत्युपेक्ष्य=दृष्ट्यादिना सम्प्रेक्ष्य अवगम्य=स्वबुद्ध्या सम्यगवबुद्धय च तं गृहस्थम् अनासेवनतया=अकल्पनीयत्वेन सेवितुमयोग्यमिति आज्ञापयेत्=प्रतिबोधयेत्, ग्रहीतुमपि न कल्पते इति तात्पर्यम्, ‘एतन्मदर्थमुपकल्पितमशनादिकमुद्गमादिदोषदूषिततया नाहं ग्रहीष्ये, नापि तस्मिन् आवसथे वत्स्यामि, इत्याद्यभिधाय ‘प्रासुकदाने धर्मोऽन्यथा न धर्मः’ इत्यादिकं

उसीके दासदासी आदिके पासमें सुननेसे यह मालूम होता है कि यह आहारादिक सामग्री, या वस्त्र पात्रादिक वस्तुएँ, और ठहरनेके लिये यह निर्मित स्थान इस श्रावकने मुनियोंके निमित्त ही तैयार किये हैं । यह आहारादिक सामग्री इसने हमारे निमित्त ही बनवाई है, वस्त्रादिक ये हमारे निमित्त ही देने लाया है, यह मकान भी इसने हमारे निमित्त ही तय्यार करवाया है, इस प्रकार अच्छी तरह जानकर और विचारकर उस दाता गृहस्थको समझावे, कि—ये तुम्हारे द्वारा दी जानेवाली समस्त वस्तुएँ हमें अकल्प्य हैं—हमें सेवन करनेके अयोग्य हैं । हम इन्हें ग्रहण तक नहीं कर सकते हैं, कारण कि ये सब अशनादिक वस्तुएँ उद्गमादिक दोषोंसे दूषित हैं, इसलिये हम न इन्हें ग्रहण करेंगे और न मकानमें ही ठहरेंगे । ऐसा कह कर “निर्दोषके देनेमें ही धर्म होता है

शाक्यणी अथ मालूम पडे छे के अे आहारादिक सामग्री अने वस्त्र पात्रादिक वस्तुअे अने उतरवा भाटे आ निर्मित स्थान ते श्रावके मुनियोना निमित्त अे तयार करेले छे आ आहारादिक सामग्री तेले अमारा निमित्त अे बनावेली छे, वस्त्रादिक अमारा निमित्त अे आपवा भाटे लावेले छे. आ मकान पण अमारा निमित्तअे तेले बनावेले छे आ प्रकारे सारी रीते ळणुनि अने विचार करीने ते दाता गृहस्थने आ प्रकारे समजवे के आ तमारा द्वारा अपाती समस्त वस्तुअे अमारे अकल्पनीय छे, अमारा सेवन भाटे अयोग्य छे, अमे तेने अडणु करी शकता नथी, कारण के अे सधणी अशनादिक वस्तुअे उद्गमादिक दोषोथी दूषित छे भाटे अमे तेने अडणु करता नथी अेलु कहीने “ प्रासुकने देवमा अे धर्म थाय छे अे सिवाय नही ” इत्यादि शास्त्रोक्त कल्पोना अेने

शास्त्रोक्तकल्पमुपदिश्य तमभिसान्त्वयेदिति मान । 'इति' अधिकारसमाप्ती, यन्मया  
भगवत्सकाशात् ध्रुवं तत्सर्वं पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च प्रवीमि=कथयामि ॥ सू० २ ॥

वक्ष्यमाणमेवाह—'मिक्खु च' इत्यादि—

मूळम्—मिक्खु च खल्ल पुट्ठा वा, अपुट्ठा वा जे इमे आहञ्च  
गथा वा फुसति से हता हणह, खणह, छिंदह दहह, पयह,  
आल्लपह, विल्लपह सहसा कारेह, विप्परामुसह, ते फासे, पुट्ठो  
धीरो अहियासप, अदुवा, आयारगोयरमाहक्खे तक्किया णमणे  
लिस, अदुवा वइगुत्तीप गोयरस्स अणुपुव्वेण सम्म पडिलेहाए  
आयगुत्ते, बुद्धेहिं एय पवेइय ॥ सू० ३ ॥

छाया—मिक्खु च खल्ल पट्ठा वा अपट्ठा वा ये इमे आहृत्य प्रत्याग्रा स्पृशन्ति  
स इन्ता इत सणुत, छिन्त, दहत, पषत, आल्लम्पत, विल्लम्पत, सहसाकारयत, विप-  
रामुसत, तान् स्पशान् स्पृष्टोऽभ्यासयेत्, अथ वा आचारगोचरमाचसीत, तर्कयित्वा  
खल्ल अनीइअमपवा धामुप्पा गोचरस्यानुपूर्व्यां सम्यक् प्रत्युपेक्षेत् आत्मगम',  
धुद्धैरेत्त्ववेदितम् ॥ सू० ३ ॥

टीका—'मिक्खु'—मित्यादि, ये=पूर्वोक्ता इमे=प्रत्यक्षनिर्दिष्टा गाथापठयो मिक्खु  
=क्षमज्ञानादौ विहरन्त तं मुनि 'चः' समुच्चयार्थकः, 'खल्ल' वाक्यालङ्कारे, पट्ठा  
अन्यथा नहीं " इत्यादिक शास्त्रोक्त कल्पका उसे उपदेश देकर सम-  
झावे । सूत्रमें इति शब्द अधिकारकी समाप्तिका सूचक है । जो मीने  
भगवान्से सुना है वह सब पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण सुमसे कहा है,  
तथा भागे कहता हूँ ॥ सू० २ ॥

वक्ष्यमाण विषयको सूत्रकार कहते हैं—“ मिक्खु च ” इत्यादि ।

सूत्रकारने १ प्रथम और २ द्वितीय सूत्रमें यह प्रकट किया है कि-  
कुछ गृहस्थ ऐसे हैं जो मुनियों के प्रति पूर्ण भक्ति रखते हैं परन्तु उनके

उपदेश आभी सम्भवते. सूत्रमा इति शब्द अधिकारणी समाप्तिने सूचक छे  
ने ये भगवान् पासधी आभणेत छे जे सबगु पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण  
तमने कहेल छे तथा आभण कहुं छुं ॥ सू० २ ॥

वक्ष्यमाण विषयने सूत्रकार कहे छे—“ मिक्खु च ” इत्यादि

सूत्रकारे १ प्रथम अने २ बीज सूत्रमा जे प्रकट करेल छे के को  
गृहस्थ जेवा होय छे के ने मुनिसेनी तरह पूजु भक्ति शपे छे पूजु तेना

‘भो भिक्षो ! तुभ्यमाहारवस्त्रादिकं दातुमिच्छामि स्थानं वा परिष्करिष्यामि अनु-  
जानीहि मा’-मित्यादिवाक्यैस्तं पृष्ट्वा, अप्राप्तानुज्ञोऽपि गाथापतिर्यदि सहसा चाऽऽ-  
ग्राहयिष्यते, कश्चिच्च स्तोकमनगाराचारविधिज्ञः अपृष्ट्वा वा भिक्षुणाऽननुज्ञातः

आचारसे अपरिचित हैं, तथा कुछ गृहस्थ ऐसे हैं जो उनके आचारसे  
परिचित हैं। इनमें जो उनके आचारसे अपरिचित हैं उनके विषयमें  
सूत्रकार फिर भी कह रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति मुनिको ध्यान अध्ययनादि  
पूर्वोक्त कारणोंके कारण इमशान आदि स्थानोंमें विहार करते हुए देख  
कर भक्तिके आवेशसे स्वयं मुनिसे पूछते हैं कि-महाराज ! मैं आपके  
लिये आहार वस्त्रादिक देनेका अभिलाषी हूँ। आपके लिये एक नवीन  
भवन भी जिसमें आप निवास कर सकें वैसा बनवा देना चाहता हूँ।  
नहीं तो कोई एक आपके लायक पुराना ही स्थान सुधरवा दूँ, कहिये  
आपकी क्या संमति है। आपकी आज्ञाकी ही देरी है काम बहुत शीघ्र  
हो जायगा। इस प्रकार उस गृहस्थकी बातको सुन कर मुनि ध्यानादिके  
कारण जब कुछ भी उत्तर नहीं देते हैं तो वह गृहस्थ अपने मनमें  
अपनी ही कल्पनासे यह निश्चय कर लेता है कि ठीक है, मुनिराजने  
हमें कोई इस वावतमें उत्तर नहीं दिया है तो कोई हर्ज नहीं, मैंने उन्हें  
सूचित तो कर दिया है, चलो भक्ति-अनुनय विनयादि करके सब  
उनसे मंजूर कावा लूंगा और यह सब आहारादिककी सामग्री इन्हें

आचारथी अपरिचित छे तथा डेटलाक गृहस्थ ओवा डोय छे डे तेना आचारथी  
परिचित छे. ओमां जे ओना आचारथी अपरिचित छे तेना विषयमां सूत्रकार  
इरीथी पणु डडे छे डे ओवी व्यक्ति मुनिने ध्यान अध्ययन आदि स्थानोमां  
विहार करता ओधने लडितना आवेशथी पोते मुनिने पूछे छे डे-महाराज हुं  
आपने माटे आहार वस्त्रादिक देवानो अभिलाषी छु आपने माटे ओक नवीन  
भडान पणु जेमां आप निवास करी शकै तेवु भनावी देवा आहुं छु, नडि तो  
आपने लायक जुना भडानने सुधरावी डड. डडो आपनी शु समति छे ?  
आपनी आज्ञानी वार छे काम जदही थड जशे. आ प्रकारनी ते गृहस्थनी वात  
सालणीने मुनि ध्यानादिकना कारणे न्यारे कांठ पणु उत्तर आपता नथी त्यारे  
ते गृहस्थ पोतानी कल्पनाथी पोताना मनमा निश्चय करी ले छे-डीक छे  
मुनिराजे भने आ आणतमा कांठ उत्तर आपेव नथी तो कांठ वाधे नथी.  
मे तेमने जडेर तो करी ज दीधु छे. लडित-अनुनय-विनय विगेरे-थी मज्जर  
करावी लडश अने आ आहारादिकनी सामग्री पणु ओमने कांठ पणु प्रकारे  
५३

‘येन केनापि प्रकारेणैतदशन-वसनादिकं ग्राहयिष्यामी’-त्येषं चेतसि परिक्लित्य तं  
 मिश्रमपृष्टैव तदर्थमशनादिकं निष्पादययुः । गृहस्थोपहतमशनादिकमगृह्यतो मुनेः

किसी भी प्रकारसे वे ही दूगा। अथवा यदि कोई इसी प्रकारका राजपु-  
 रुष है तो वह कहता है कि-वे नहीं लेंगे तो यलात्कारसे उन्हें लेना पड़ेगा  
 कम से कम वे इतना तो विचार करेंगे कि यह एक राजाका उच्च  
 कर्मचारी है या स्वयं राजपुरुष है इसके द्वारा लाई गई सामग्री अब  
 कैसे नहीं लूँ-नहीं लेनेसे इसके बिचमें खेद होगा-उससे मेरे प्रति इस  
 की विरक्ति हो जायगी और इससे यह मुझे उपद्रवित करेगा।

जो गृहस्थ पूर्णरूपसे मुनिके आश्वारसे परिचित नहीं है, इस कारण  
 से वह पूछना उचित नहीं समझ कर नहीं पूछता है पर वह इतना तो  
 अवश्य विचार करता है कि चाहे कुछ भी हो, परन्तु यह अशान वस-  
 नादि सामग्री इस मुनिके लिये अवश्य वृंगा और वे इसे अवश्य २ ले  
 लेंगे। ऐसे विचारसे वह भी अशान वसनादिक सामग्री तय्यार करा कर  
 और उसे ले कर उनके निकट पहुंच जाते हैं परन्तु मुनिराज और  
 शिष्यादि दोषसे दूषित इस सामग्रीको जप नहीं लेते हैं, तब उनके  
 बिचमें यह ख्याल जम जाता है कि इस साधुने हमारा तिरस्कार किया  
 है अतः देखाविष्ट बन के राजपुरुषरूप गृहस्थ उस मुनिके ऊपर अनेक

दोषों को उठाएगा अथवा वे दोषों का प्रकारना राजपुरुष होय तो वे कहे के वे  
 तेजो नहीं वे तो जलजलरीधी जेहे स्वीकारुं पश्ये कोअभां कोअ तेजो  
 कोटवे। तो विचार करे के ‘आ कोक राजने कर्मचारी छे अथवा स्वयं राज  
 पुरुष छे, कोअहे आवेती आ सामग्री कु कर् शीते न लह-न लेवाधी द्विअभां  
 जेड वरी-आधी भास तरह कोनी विरक्ति बनये अने कोधी को मने  
 दुःखकारक बनये’

ये पुरुष-गृहस्थ पूषा शीते मुनिना आश्वारी परिचित नहीं अने को  
 कारणधी को पूछनु उचित न भानी पूछतो नहीं अने मनभां निश्चय करे छे  
 के आके अने तेम साथ तो पयु हुं जल, वर आदि सामग्री मुनिने अवरस्य  
 आपवाने छुं, अने तेजो अवरस्य कोना स्वीकार करेये आवे निर्धार करी  
 को अल, पर अत्यादि सामग्री तैयार करानी कोने लर् को मुनि पासे पढेयि  
 छे, परत मुनिअल और शिष्यादि दोषधी दूषित को सामग्री अथार वेता नहीं  
 त्थार कोना द्विअभां कोवे अथल स्वभी अय छे के आ साधुने भासे तिरस्कार  
 को छे, आधी देष आपवानाण्य कर् को राजपुरुष गृहस्थ को मुनिना उपर

द्वेषाधिप्टास्ते तिरस्कृता गृहस्था राजपुरुषास्तस्य बहुविधमुपतापं कुर्वन्तीत्याह—  
 'आहृच्च' इत्यादि, ते गृहस्थास्तत्सर्वमगनादिकं ग्रन्थात्=अपरिमितद्रव्यव्ययात्  
 आहृत्य=हौकित्वा तदर्थं निष्पाद्येत्यर्थः । आहृतमप्यशनादिकमनङ्गीकुर्वन्तं स्पृश-  
 न्ति=परितापयन्ति, तदेव दर्शयति—'स' इत्यादि—सः=प्रद्वेषमुपगतो राजपुरुषा-  
 दिस्तस्य मुनेर्हन्ता=स्वयं हन्तुं प्रवृत्तो भवति अन्यमाज्ञापयति च—'हते'—त्यादि—  
 भो पुरुषाः ? गृयमेनं मुनिं हत दण्ड—कशादिना, क्षणुत=मुष्टिलत्तादिना मारयत,  
 छिन्त=कुठारादिना कर—चरणाद्यवयवानां छेदं कुरुत, दहत=वह्यादिना भस्मी-  
 कुरुत, पचत तदेहमांसादिकम्, आलुम्पत=वस्त्रादिकमपहरत, विलुम्पत=सर्वस्वं  
 गृह्णीत, सहसाफारयत=त्वरितं प्राणानपहरत, विपरामृगत=वि=विविधैः पीडनोत्पा-

प्रकारके उपद्रव करना प्रारंभ कर देते हैं, इसी बातको सूत्रकार—“आ  
 हृच्च गंधा वा फुसन्ति” इस वाक्यसे प्रकट करते हैं । वे गृहस्थ अपरिमित  
 द्रव्यके व्ययसे साध्य उस अशनादिक सामग्रीको उसके निमित्त तय्यार  
 कराकर जब उस मुनिके निकट ले जाते हैं और वह जब उस सामग्रीको  
 स्वीकृत नहीं करता है तब वे उसे अस्वीकार करनेवाले उस मुनिको  
 अनेक प्रकारसे दुःखित करने लग जाते हैं । कभी वे राजपुरुष गृहस्थ  
 स्वयं उस मुनिको मारने लग जाते हैं और दूसरोंसे भी यह कहते हैं  
 कि अरे ! तुम सब लोग इस मुनिको दण्ड और कशा आदिसे पीटो  
 मुष्टि और लातके प्रहारोंसे इसे चोट पहुँचाओ, कुठार आदिसे इसके  
 हाथ और पैर आदि अवयवोंको छेद दो, अग्निमें इसे जलादो, इसकी  
 देहके मांसको निकालकर पका लो, इसके वस्त्र वगैरह सब छीन लो—  
 इसका सर्वस्व लूट लो और जल्दी से जल्दी इसके प्राणोंको ले लो, तथा

अनेक प्रकारको उपद्रव करना लागे छे, आ बातने सूत्रकार—“आहृच्च गंधा वा  
 फुसन्ति” आ वाक्यथी प्रगट करे छे ते गृहस्थ अपरिमित द्रव्यना व्ययथी अशनादिक  
 सामग्री मुनिना निमित्ते तय्यार करावी न्यारे अे मुनिनी पासे लधने न्य छे अने  
 मुनिअे सामग्री न्यारे स्वीकारता नथी त्यारे ते अस्वीकार करनार मुनिने अनेक  
 प्रकारथी दुःख आपवा लागे छे क्यारेक क्यारेक अे राजपुरुष गृहस्थ नते न  
 ते मुनिने मारवा प्रेराय छे अने भीनअेने पणु उश्केरे छे अने कडे छे के तमे  
 थथा लोडो आ मुनिने लाकडीथी, हाथथी, पगना प्रहारथी भुण पीटो, कुडाडी  
 आदिथी अेना हाथ पग वगेरे अवयवोने छेदी नाणो, अग्निमा अेने आणी  
 नाणो, अेना शरीरना मासना लोया काठी लो, अेना वस्त्र अने अन्य सामग्री  
 आंथडी लो अने नददी अेना लुवननो अत लावी हो, ने ने प्रकारनी यात-

वनैः परासृष्टत=यातनां ददत । एवं सृष्टः=पूर्वोक्तहननादिवहुविषयपरीपहामिमूतः  
सन् धीरः=परीपहोपसर्गसहनशीलः तान्=पूर्वोक्तान् हननादीन् स्पृष्टान्=दुःखवि  
शेषान् अधिसहेत । स मिष्टुः परिपहोपसर्गं स्पृष्टोऽपि न तदौरेशिकादिदोषदुष्ट  
माहारं शृङ्गीयात्, नापि ग्लानत्वमवलम्बेतेत्याशयः ।

अथवा स मिष्टुः अनीदृष्टम् 'अयं पुरुषः कः किं सम्यग्दृष्टिस्त मिध्यादृष्टिः ?  
अभिगृहीतनियमोऽनभिगृहीतनियमो वा ?' इत्यादिरूपमीदृशं, 'तद्भिन्नमनीदृष्टं  
पुरुष तर्कयित्वा=सम्भाषणार्थं समालोच्य आचारगोचर=शुनराचारविषयम् आन-  
शीत=सम्यग्दृष्टेत् । स्वसमयस्थापन-परसमयनिरसनेन च तमभिसान्त्वयेदित्यर्थाः,

जिस २ प्रकारसे इसे अनेक घातनाए दी जा सकें वी । इस प्रकार इन  
उपर्युक्त हननादिक अनेक प्रकारके परीपहोंसे व्याप्त होता हुआ भी  
वह धीर-परीपह और उपसर्गों के सहन करनेमें शक्तिशाली-मुनि इन  
हननादिक दुःखविशेषोंको समभाव से सहन कर । इन परीपह और  
उपसर्गों से घमड़ा कर वह मुनि औरेशिकादि दोषोंसे दूषित उस  
आहारको न छेवे और न चित्तमें कोई ग्लानि ही लावे ।

अथवा—वह मुनि " यह पुरुष कौन है ? सम्यग्दृष्टि है ? कि  
मिध्यादृष्टि ? अभिगृहीत नियमवाला है ? या उससे रहित है ? " इत्या-  
दिरूप विचारका जो विषय हो उसका नाम ईदृश है, इससे भिन्नका  
नाम अनीदृश है । "यह अनीदृश है" ऐसा विचार कर—'यह संभाषणके  
योग्य है ' ऐसा जानकर—उसे मुनिके आचारका उपदेश दे । स्वसिद्धान्त  
की स्थापना और परसिद्धान्तके निराकरणसे उस प्यक्तिको संतुष्ट कर

नामो पक्षेऽपि शक्यं तद्वत् पक्षेऽपि, जेने शीलावी शीलावीने भारी नापे  
आ प्रकारे अनेक परिपह अने उपसर्गोंकी व्याप्त वत्ता पक्ष धीर-  
परीपह अने उपसर्गोंने सहन कस्याभा शक्तिशाली मुनि हननादि दुःखोंने  
समभावसे सहन करे पक्ष औरेशिकादिक दोषोंकी दूषित वत्ता वसादिकने अक्षय  
न करे तेम चित्तमां केश प्रकारनी ग्लानि पक्ष न लावे ।

अथवा—ते मुनि " जे पुरुष कौणु छै ? सम्यग्दृष्टि छै ? कि मिध्यादृष्टि ?  
अभिगृहीतनियमवाणु छै ? अथवा जेधी रहित छै ? " इत्यादि विचारवाने  
विषय जेवु नाम ईदृश छै जेनाथी कितवु नाम अनीदृश छै "आ अनीदृश छै"  
जेवु विचारी-जे संभाषणने योग्य छै-जेवु वदणी वदु जेने मुनिना ज्ञान  
रूपे उपदेश नापे । स्वसिद्धान्तनी स्थापना अने परसिद्धान्तना निराकरणकी जे  
अद्वितने धर्माप नापे । अथवा भाटे आ औरेशिक अशन वसनादिक व्यस्वी

‘ममेदंमशनवसनादिकं न कल्प्य’-मिति मूलोत्तरगुणभेदभिन्नां सर्वां पिण्डैषणाविशुद्धिं कथयित्वा—“ यत्स्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । केवलमुपग्रहकरं, धर्मकृते तद्भवेद्देयम् ” ॥ १ ॥ इत्यादिवाक्यैस्तमनुनयेदिति भावः ।

स्वस्मिन् कथनसामर्थ्ये श्रोतरि चानुकूले कथनीयम्, अन्यथा कथनवैयर्थ्यादित्याह—अथ वा वाग्गुप्त्या वाचो गुप्तिः वाग्गुप्तिः=वाक्यसंयमनं मौनमित्यर्थः, तथा वाग्गुप्त्या उपलक्षितः मौन एव आत्मगुप्तः=आत्मना तिसृभिर्मनोगुप्त्यादिभिर्गुप्तः=रक्षितः सन् गोचरस्य=आचारगोचरस्य पिण्डविशुद्ध्यादेः, आनुपूर्व्या=उद्-

हमारे लिये औद्देशिक अशन वसनादिक कल्पनिक नहीं है, इस प्रकार मूल गुण और उत्तरगुणोंके भेदसे भिन्न ऐसी सम्पूर्ण पिण्डैषणाकी शुद्धि का कथन कर “यत्स्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । केवलमुपग्रहकरं, धर्मकृते तद्भवेद्देयम् ॥” इत्यादि वाक्योंसे यह बतलावे कि जो आहारादिक वस्तु अदोष होगी वही दूसरोंकी उपकारक होगी, ऐसी उपकारक वस्तु ही मुनियों के लिये उनके धर्मकी वृद्धिमें सहायक होनेसे देनेयोग्य मानी गई है । यह सब मुनि आचारविषयक कथन तब ही करे कि जब अपनेमें इस आचारको समझानेकी पूर्ण शक्ति-योग्यता हो और सुननेवाला श्रोता अनुकूल हो । अन्यथा कहनेसे कोई लाभ नहीं होगा । इसी बातको “अथवा वाग्गुप्त्या गोचरस्यानुपूर्व्या सम्यक् प्रत्युपेक्षेत आत्मगुप्तः” इन पदोंसे प्रस्फुट करते हैं—अथवा वचनगुप्ति-वचनसंयम-मौन ही आत्माका गुण है । इस प्रकार मनोगुप्ति आदि तीन गुप्तियोंसे गुप्त होता हुआ वह साधु पिण्डविशुद्धि आदिके उद्गम

कार्य छे आ प्रकारे मूलशुषु अने उत्तरशुषुना लेदथी लिन अेवी पिंडैषणानी शुद्धिनु कथन करी ते गृहस्थना मनभा दठता नभावे, तेवी वाष्णीथी तेने समजवे “यत्स्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । केवल मुपग्रहकरं, धर्मकृते तद् भवेद्देयम्” इत्यादि वाक्योथी अे जतावे के आहारादिक वस्तु अदोष होय ते न जीवने उपकारक अने आवी उपकारक वस्तु न मुनियो भाटे अेमना धर्मनी वृद्धिमा सहायक होवाथी देवा योग्य मानवाभां आवेल छे. आ रीते मुनि आचारविषयक कथन त्तारे न करे के न्त्यारे अेनामा आचारने समजववानी पूर्ण शक्ति-योग्यता होय अने सांलणनार पषु योग्य-पात्र होय अेम न होय तो कडेवाथी कोठे लाल नहीं अने आ वातने “अथवा वाग्गुप्त्या” इत्यादि आ पदोथी प्रस्फुट (स्पष्ट) करे छे अथवा वचन गुप्ति-वचनसंयम-मौन न आत्मानो शुषु छे. आ रीते मनोगुप्ति आदि



मोत्यादनादिप्रभप्रतिषेधनादिपूर्वकं सम्पत्क मत्पुपेक्षेत=तद्गतदोषान् सम्पत्क-  
 धारयत् । भिक्षु कदाचिदप्यौरेशिकाहारादिकं न गृह्णीयात्, तदाहाउपवस्य-  
 कल्प्यत्व प्रतिपादयेत्, सम्पापणेनाप्यममावितासङ्गायां मौनमेवावस्येति वदुं  
 कार्यः । सर्वमेवैतन्न मया स्वमुद्युच्यते इत्याह—'बुद्धे'—रित्यादि, एतत्=सर्वं पूर्वोक्त  
 मकल्प्याहारादिनिषेधनं वक्ष्यमाणं वा बुद्धे कल्प्याकल्प्यविधानामिहै' सर्वैः  
 मवेदितं=द्वादशपरिपदि प्ररूपितम् ॥ सू० ३ ॥

वक्ष्यमाणमेव दर्शयति—' से समणुन्ने ' इत्यादि ।

उत्पादनादि गत दोषोका प्रभप्रतिषेधनादिपूर्वकं अच्छी तरहसे निश्चय करो  
 तात्पर्य यह कि—भिक्षु कभी भी औरेशिक आदि आहारको न लेवे । दूसरे  
 जन यदि बलात्कारसे उसे वेनेकी इठ करें—भापसि विपक्षिया खड़ी करें  
 —तो उनसे बिलकुल भी न घबड़ावे । मुनिको कैसा आहार कल्पनिक  
 है यह उन्हें समझावे । यदि समझाने पर भी वे न माने तो सर्वोत्तम  
 एक यही उपाय है कि यह मौन रखें ।

यह सच मैंने अपनी बुद्धिसे कल्पित कर नहीं कहा है किन्तु यह  
 पूर्वोक्त कल्प्य अकल्प्य आहारादिविषयक कथन तथा आगे और भी जो  
 कहना है यह सच कल्प्य और अकल्प्यके विधानको जाननेवाले सर्वज्ञ  
 भगवान्ने अपनी १२ प्रकारकी सभामें कहा है ॥ सू० ३ ॥

वक्ष्यमाण विषयको ही सूत्रकार सूत्रद्वारा प्रदर्शित करते हैं—  
 " से समणुन्ने " इत्यादि ।

त्रयु शुशिक्षोथी शुभ रहेता जे बाधु पिपप्रविशुद्धि आदिना उद्भव उरुपाइगर्दि  
 गत होयेना प्रभप्रतिषेधनादिपूर्वकं सारी रीतथी निश्चय करे तात्पर्य जे छे  
 छे—भिक्षु कदि पखु औरेशिक आदिआहार न ले नीजे भावुस कही अणुत्तरकी  
 जेने आप्पामी छठ पठे—आपत्ति विपत्तिको कही करे—तुम्हारे जेनाथी बरस पखु  
 न जससब मुनि भाटे केवो आहार कल्पनिक छे ते जेने समजवे जेने सब  
 जववा छता पखु ते न माने तो साशमा साथे स्तये भीन धारखु करवाने छे  
 आ जधु मे भारी बुद्धिकी कल्पित करीने कहु नथी परतु आ पूर्वोक्त  
 कल्प्य अकल्प्य आहारादिविषयक कथन, तथा आगण काइ कडेवानु छे जे जधु  
 कल्प्य जेने अकल्प्यना विधानने जलुवा वाग्य सर्वज्ञ भगवाने पावानी १२ प्रकारनी  
 सभाभा कडेव छे ( सू० ३ )

वक्ष्यमाण विषयने जे सूत्रकार सूत्रद्वारा प्रदर्शित करे छे—“ से  
 समणुन्ने ” इत्यादि

सुलम्—से समणुन्ने असमणुन्नस्स असणं वा ४, वत्थं वा ४  
नो पाइज्जा नो निमंतिज्जा नो कुज्जा वेयावडियं परं आढाय-  
माणे त्तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—स समनोज्ञोऽसमनोज्ञायाशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ नो प्रदद्यान्नो निमन्त्र-  
येन्नो कुर्या द्वैयावृत्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘स समनोज्ञ’ इत्यादि, स समनोज्ञः=पूर्वोक्तोऽनगरः परम्=अत्यर्थम्  
आद्रियमाणः तैः कृतादरोऽपि गृहपतिसकाशात्केवलमकल्पनीयमेव न गृह्णीयात्  
इत्येव न प्रवेदितं, किन्तु असमनोज्ञाय=शाक्यप्रभृतये तत्पूर्वोक्तमाहारादिकं न  
प्रदद्यात् न निमन्त्रयेत् न तेषां वैयावृत्यं कुर्यात् । ‘इति’ अधिकारसमाप्तौ त्वां  
ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० ४ ॥

कौटशः कस्मै दद्यादित्याह—‘धम्म०’ इत्यादि ।

वह अनगर उन असमनोज्ञ—शाक्यादिकों—द्वारा अत्यंत आदृत होता  
हुआ भी गृहस्थोंके यहांसे प्राप्त—कल्पनिक आहारादिक अशन, पान, खाद्य  
और स्वाद्य एवं वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोच्छनको उन शाक्यादिकों  
के लिये न देवे न उन्हें देनेके लिये आमंत्रित करें और न उनकी वैया-  
वृत्ति ही करो। यहां ‘इति’ शब्द अधिकारकी समाप्तिमें आया है, इस प्रकार  
अधिकारकी समाप्तिमें सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामीसे कहते हैं—

साधु गृहस्थोंसे सिर्फ अकल्पनीय आहारादिकका ग्रहण न करे  
इतना ही नहीं किन्तु जो कल्पनीय आहारादिक ग्रहण किये गये हैं, वे  
अन्यःशाक्यादिकों को प्रदान भी न करे ॥सू० ४॥

‘कैसा होकर किसके लिये उन्हें दे’ इसे प्रकट करते हैं—‘धम्म०’ इत्यादि।

ये अनगर ते असमनोज्ञ—शाक्यादिकों द्वारा अत्यंत आदृत धकेल पणु  
गृहस्थोंने त्याधी प्राप्त कल्पनिक आहारादिक अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्य तथा  
वस्त्र, पात्र, कम्बल अने पादप्रोच्छन, ये शाक्यादिकोंने न आपे, अथवा तो  
येमने आपवा भाटे न आमंत्रण आपे, अथवा तो न तेनी वैयावृत्य करे.  
अर्हि ‘इति’ शब्द अधिकारनी समाप्तिमां आपे छे आ प्रकारे अधिकारनी समा-  
प्तिमां श्री सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामीने कहे छे—

साधु गृहस्थो पासेधी इकत अकल्पनीय आहारादिक स्वीकार न करे आटलुण  
नहि परन्तु कल्पनीय आहारादिक स्वीकारेव डोय ते अन्य शाक्यादिकोंने आपे  
पणु नहि ( सू० ४ )

“केवा थर्छे केने भाटे आपे” आने प्रगट करे छे—‘धम्ममायाणह’ इत्यादि.

मूळम्—धम्ममायाणह पवेइय माहणेण महमया समणुत्ते  
समणुत्तस्स असण वा ४ धत्थं वा ४ पापज्जा निमतेज्जा कुब्बा  
वेयावड्ढियं पर आढायमाणे च्चिवेमि ॥सू० ५ ॥

छाया—धर्ममाआनीत मवेदितं माहनेन मतिमता समनोऽऽ समनोऽऽपाञ्चनं वा  
४ वस्त्र वा ४ पदघात् निमन्त्रयत् कुर्यां द्वैयावृत्त्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥५॥

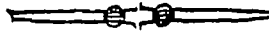
टीका—‘धर्म’—मित्यादि, परम्=उत्कृष्टम् आद्रियमाणः तस्यादरं कुर्वन्  
समनोऽऽराहतो वा स समनोऽऽ=अनगारः उद्यतनिहारी समनोऽऽपाय=परस्मै सम्प-  
द्वर्धनादिमते संविन्नाय साम्मोगिकायैकसामाचारीप्रविष्टाय मुनये अन्नं वा क्षुरिं  
घमाहारं वस्त्रादिकं प्रदद्यात्, निमन्त्रयत्, वेयावृत्त्यं=सुश्रूपां वा कुर्यात्। गृहस्थस्या  
केवलमफलपनीयाऽऽहारादिग्रहणस्यैव प्रतिषेधः, असमनोऽऽभ्यस्तु न प्राप्तं नापि  
सस्मै देयमिति मानः। इत्येष माहनेन मतिमता=मगधता महावीरेण मवेदितं=  
प्ररूपितं धर्म=पूर्वोक्तमन्ननादिग्रहणविधिनिषेधप्रतिपादकं साध्वान्चाररूपम् ‘मात्रा

समनोऽऽज्ञोका आदर करता हुआ, अथवा समनोऽऽज्ञोसे आदर होता  
हुआ वह उष्यतयिहारी साधु सम्पद्वर्धनादिमें संविन्न-एक सामाचारीके  
पालन करनेमें प्रविष्ट-अन्य मुनिजनोंके लिये चार प्रकारके अशन और  
चार प्रकारके वस्त्रादिक देवे, उन्हें देनेके लिये आमंत्रित करे, और उनकी  
विद्यावृत्त्य-सुश्रूपा भी करे। गृहस्थोंके पाससे केवल अकल्पनीय आहा-  
रादिक एवं वस्त्रादिक छे छेनेका ही निषेध है-कल्पनीयका नहीं, परंतु  
असमनोऽऽज्ञोसे तो उन्हें न यह छेवे और न उन्हें यह देवे। इस प्रकार  
मतिमान्-केवलज्ञानी श्री महावीर मगधान् द्वारा प्ररूपित पूर्वोक्त  
अशनादिके ग्रहणकी विधि और निषेधका प्रतिपादक साधुके आचाररूप

समनोऽऽज्ञोको आदर करने का अथवा समनोऽऽज्ञोधी आदर यत्न से उष्यतविहारी  
साधु सम्पद्वर्धनादिमें संविन्न-कोक सामाचारीके पालन करनेका प्रविष्ट-अन्य  
मुनिजनों के लिये चार प्रकारका अशन करने चार प्रकारका वस्त्रादिक दे, अने  
आपणवा भाते आमंत्रण आपे अने अनेनी वेयावृत्त्य-सुश्रूपा पण करे मूळ  
स्थानी पासेधी केवल अकल्पनीय आहारादिक अने वस्त्रादिकने लेवाना निषेध छे  
अकल्पनीयका नहीं, परंतु असमनोऽऽज्ञा पासेधी न तो वे छे न अने आपे या  
प्रकारे अनिमान्-केवलज्ञानी महावीर मगधान् द्वारा प्ररूपित पूर्वोक्त अशना  
दिना प्ररूपनी विधि अने निषेधका प्रतिपादक साधुना आचाररूप धर्मने छे

नीत ' आ=सर्वतो जानीत=बुद्धयध्वं यूयमिति शेषः । ' इति ब्रवीमि '-त्यस्यार्थ-  
स्त्वक्त एवेति ॥ सू० ५ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ८-२ ॥



धर्मको हे शिष्यो ! तुम सब सर्व प्रकारसे समझो । इति ब्रवीमि इन  
पदोंका अर्थ पहिले उद्देशोंमें कहा जा चुका है ॥ सू० ५ ॥

॥ आठवां अध्ययनका द्वितीय उद्देश समाप्त ॥ ८-२ ॥



शिष्यो ! तमे सधना सारी रीते समझे " इति ब्रवीमि " आ पढ़ोना अर्थ पढेलांना  
उद्देशोमा ढडेवाळ गयेल छे (सू० ५)

आठमा अध्ययनना भीजे उद्देश समाप्त ॥ ८-२ ॥

## । अधाष्टमाध्ययनस्य तृतीय उद्देश ।

अभिहितो द्वितीयोद्देशः, साम्प्रतं तृतीय आरभ्यते, अस्य च पूर्वोद्देशन सहायं सम्बन्ध-अनन्तरोद्देशो चाकल्पनीयाशनादिग्रहणनिषेध उक्तः, अत्र च गृहपतिः कदाचिच्छीतादिना प्राप्तमक्षय्यं मिसाघर्षमागतं मिथुं पृच्छति-‘कामचेष्ट्यैव मवच्छीरं कम्पते?’ इति तस्य गृहपतेरसदासङ्गतं मुनिर्दूरीकुर्यात्, ‘शीतादिना मम गात्रं कम्पते नान्यथे’-ति प्रतिपादयिष्यते, तत्र मध्यमावस्थायां शीतप्रवेपितगात्रप्रसङ्गात्तस्य प्रथमं सयमाचरणयोग्यतां प्रथममूत्रेणोपदर्शयति-‘मज्जिमेण’ इत्यादि ।

## आठवें अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

द्वितीय उद्देश कहा । अयं तृतीय उद्देश कहा जाता है, इस उद्देशका पूर्व उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है-वहाँ साधुके लिये अकल्पनीय अशानादि ग्रहण करनेका निषेध किया है, इस उद्देशमें यह यत्नलाया जायगा कि अपने घर आहारादि ग्रहण करनेके निमित्त आये हुए मुनिको कोई अत्र गृहस्थ कदाचित् शीतादि कारणवशा प्रकम्पित होते देखे पड़े कि “कामकी चेष्टासे ही आपका शरीर कांप रहा है क्या?” तब साधुका कर्तव्य है कि यह इस प्रकारकी गृहस्थकी अस्वत्-सोटी आर्शकाका निवारण करे और कहे कि ‘शीतादिक निमित्तसे ही मेरा शरीर कांप रहा है अन्य कारणसे नहीं।’ उसमें सर्व प्रथम मध्यम अवस्थामें शीत से कपित शरीरके प्रसंगसे उस अवस्था की संयमके आचरणकी योग्यता को सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं-‘मज्जिमेण’ इत्यादि ।

## आठमा अध्ययननो त्रीने उद्देश

त्रीने उद्देश ठडेवाचं जयेत्त छे हवे त्रीने उद्देश ठडेवाचं आवे छे. आ उद्देशने पूव उद्देश साथे जेवो संबध छे-साधुने अकल्पनीय अशानादि ग्रहण करवाने जेभा निषेध करवाभा आवेत्त छे आ उद्देशभा जे जतावचना आवये के पोताने येर आकाशदि अक्षय करवा निमित्ते आवेत्ता मुनिने कौठं अत्र अकम्प कर्तव्य करवास्ता जेठं पूठे के “कामनी चेष्टायी आ शरीरं कपी रक्षुं छे के सु? त्वाहे साधुन जे कर्तव्य छे के तेहे येवा अकम्पनी भोगी शकानु निवा रणु करवुं जने ठडेवुं के- ठडीना कारखे भाई शरीर कपी रक्षुं छे जीनु कौठं कारखे नयी” ज्वाभा सव प्रथम मध्यम अवस्थामा ठडीनी कपता शरीरप्र प्रसजयी जे अवस्थाभा संयमना आवरखुनी योज्यताने सूत्रकार प्रदर्शित करे छे-“मज्जिमेण” इत्यादि

મૂલમ્—મજ્જિમેણ વયસાવિ એગે સંબુજ્જમાણા સમુટ્થિયા સુચ્ચા મેહાવી વયણં પંડિયાણં નિસામિયા સમિયાએ ધમ્મે આરિએહિં પવેડ્ડે, તે અણવકંઠમાણા અણડ્વાએમાણા અપરિગ્ગ-હેમાણા નો પરિગ્ગહાવંતિ સઠ્વાવંતિ ચ ણં લોગંસિ વિહાય દંડં પાણેહિં પાવં કમ્મં અકુલ્લમાણે એસમહં અગંથે વિયાહિએ, ઓએ જુડમસ્સ સ્વેયન્ને ઉવવાયં ચવણં ચ નચ્ચા ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા—મધ્યમેન વયસાએકે સંબુદ્ધચમાનાઃ સમુત્થિતાઃ, શ્રુત્વા મેઘાવી વચનં પળિડતાનાં નિશમ્ય સમતયા ધર્મ આર્યેઃ પ્રવેદિતઃ, તેઽનભિકાક્ષન્તઃ અનતિપા-તયન્તોઽપરિગ્ગહન્તઃ નો પરિગ્ગહવન્તઃ સર્વસ્મિન્નાપ ચ સ્વલુ લોકે વિહાય દણ્ડં પ્રા-ણિષુ પાપં કર્માઽકુર્વાણઃ એષ મહાન્ અગ્રન્થો વ્યાખ્યાતઃ, ઓજો ધૃતિમતઃ સ્વેદજ્ઞઃ ઉપપાતં ચ્યવનં ચ જ્ઞાત્વા ॥ મૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—‘મધ્યમેને’—ત્યાદિ, મધ્યમેન વયસા=યૌવન—વાર્ધક્યાતિરિક્તેન તપઃ સંયમાચરણયોગ્યેનાવસ્થાવિશેષેણ સંબુદ્ધચમાનાઃ=સંયમાચરણાય વોધં પ્રાપ્તા એકે=કેચન સમુત્થિતાઃ=ગૃહીતપ્રવ્રજ્યાઃ મુનયો ભવન્તિ । અત્ર પ્રથમ—તૃતીયાવસ્થાદ્વયં વિહાય મધ્યમગ્રહણાતપ્રાયશસ્તસ્મિન્ વયસિ નિવૃત્તકામાભિલાષા નિર્વિઘ્નં રત્નત્રયા-રાધને શક્તિસમ્પન્ના ભવન્તીતિ ઘોષિતમ્ ।

યૌવન એવં વૃદ્ધ અવસ્થાસે ભિન્ન અવસ્થાવિશેષકા નામ મધ્યમ અવસ્થાએ । યહ અવસ્થા હી પ્રધાનતયા તપ ઓર સંયમકે યોગ્ય માની ગઈ છે । ઇસ અવસ્થાસે સંયમકે આચરણકે લિયે વોધકો પ્રાપ્ત હુઆ કોઈ ૨ મનુષ્ય દીક્ષા લેકર મુનિ હો જાતે હૈં । સૂત્રમેં પ્રથમ ઓર તૃતીય, ઇન દોનોં અવસ્થાઓંકો છોડકર જો મધ્યમ અવસ્થાકા ગ્રહણ કિયા હૈ ઉસસે યહ વાત માલૂમ હોતી હૈ કિ પ્રાયઃ કર ઇસ અવસ્થામેં કામકી અભિ-લાષાસે નિવૃત્ત હો કર પ્રાણી નિર્વિઘ્ન રૂપસે રત્નત્રયકી આરાધના કરને મેં શક્તિશાલી હોતે હૈં ।

યૌવન અને વૃદ્ધ અવસ્થાથી વચ્ચેની અવસ્થાનુ નામ મધ્યમ અવસ્થા છે, એ અવસ્થા બે ખાસ કરી તપ અને સયમ માટે યોગ્ય માનવામાં આવેલ છે, એ અવસ્થામાં સયમના આચરણ માટે બોધને પ્રાપ્ત થયેલ કોઈ કોઈ મનુષ્ય દીક્ષા લઈ મુનિ બને છે સૂત્રમાં પ્રથમ અને ત્રીજી, આ બંને અવસ્થાઓને છોડી બે મધ્યમ અવસ્થા નક્કી કરવામાં આવી છે આથી એ વાત માલુમ પડે છે કે ખાસ કરી એ અવસ્થામાં કામની અભિલાષાથી નિવૃત્ત બની પ્રાણી નિર્વિઘ્ન રૂપથી રત્નત્રયની આરાધના કરવામાં શક્તિશાળી હોય છે

અર્થાત્ વિશેષ:-૨૨ સમ્યુદ્ધમાના:-સ્વયંપુદ્ધા: પ્રત્યેકપુદ્ધા પુદ્ધબોધિતામેતિ  
 ત્રિવિધા સન્તિ, તેષુ પુદ્ધબોધિતાનામવાગ્રાધિકારોઽસ્તિ, તમેવાપસ્મન્ય દર્શયતિ-  
 'શ્રુત્વે' -તિ-મેધાધી-રત્નપ્રપારાપનફલામિદ્મ પશ્ચિતાનાં=તીર્થકૂર-ગણધરાદીનાં  
 ષષ્ઠનમ્-ઈષ્ટાનિષ્ટપ્રાપ્તિપરિહારપ્રતિપાદકમાગમ શ્રુત્વા=સમાકર્ષ્ય તત્તો નિષ્ઠમ્ય=હૃદયેઽ-  
 વધાર્ય ચ સમતામાશ્રમેત્ । યતો ધર્મ =શ્રુત-ચારિત્રસક્ષણ: સમતપ્યા=સ્વપ્રાણિષુ  
 સમમાથેન ઔચ્યે: =તીર્થકૂર-ગણધરૈ: પ્રથેદિત =દ્વાદશવિધપરિપદિ પ્રકૃપિતા: । તેપા-  
 મેષ કર્તવ્યં નિર્દિશતિ-'તે' ઇત્યાદિના, તે=સમ્યુચ્યમાના: સમુચ્ચતા: સન્તા:  
 અનકલાહન્તા: =સમ્પ્રદાદિનિપયમનિચ્ચન્તા અનતિપાતપન્તા =પ્રાણિપામ્પન્યપરોપનમકુ-

યદાં ઇતના વિશેષ છે-સંબુધ્યમાન ઝીષ તી પ્રકારક છે-૧ સ્વપમ્યુદ્ધ,  
 ૨ પ્રત્યેકપુદ્ધ, ઓર ૩ પુદ્ધબોધિત । ઇનમેં ઝો પુદ્ધબોધિત છે ઁનકા  
 ઠી યદાં અધિકાર છે, અતઃ ઁસી અધિકારકો છે ક્ષર કહતે છે  
 "શ્રુત્વા" ઇત્યાદિ રત્નપ્રયકી આરાધનાઝન્ય ફલકા જ્ઞાતા વહ  
 મેધાધી-તીર્થકૂર ઓર ગણધરાદિકોકે ઇષ્ટ ઓર અનિષ્ટકી પ્રાપ્તિ ઓર  
 પરિહારકે પ્રતિપાદક આગમસ્વરૂપ ષષ્ઠન સુન કર, ઓર ઁને હૃદયમેં  
 ઘારણ કર સમસ્ત ઝીવોમેં સમતામાય ઘારણ કરે । ક્યોં કિ શ્રુતચા-  
 રિત્રલક્ષણરૂપ ઠી ધર્મ છે ઓર યહ સમસ્ત ઝીવોમેં સમભાવરૂપસે રહને  
 સે ઠી પ્રાપ્ત હોતા છે, ઁસા તીર્થકૂર ઓર ગણધરાદિ વેધોને ઘારહ પ્રકારકી  
 સમામેં કહા છે । પુદ્ધબોધિતોં કે કર્તવ્યોંકો વિસ્તલાનેકે નિમિષ્ઠ સૂઘ  
 કાર 'તે અણવકલમાણા' ઇસ સૂઘાશકા કથન કરતે છે-ઁ પે પુદ્ધબોધિત  
 ઝીષ પ્રમજ્યા ઘારણ કરનેકે લિયે ઉચ્ચત હોતે ક્રુપ શન્દાવિક વિષયોંકી

આમાં એટલું વિશેષ છે-સંબુધ્યમાન ઁવ ત્રણ પ્રકારના છે ૧ સ્વપ  
 પુદ્ધ, ૨ પ્રત્યેકપુદ્ધ, ૩ પુદ્ધબોધિત । આમાં જે પુદ્ધબોધિત છે એનોજ  
 અધિક અધિકાર છે । ઝાધી એ અધિકારને લઈ સુચકાર કહે છે-'શ્રુત્વા' ઇત્યાદિ  
 રત્નપ્રયની આરાધનાઅન્ય કળના અલુનાર એ મેધાધી-તીર્થકૂર-અને ગણધ  
 શિકોનાં ઇષ્ટ અને અનિષ્ટની પ્રાપ્તિ અને પરિહારના પ્રતિપાદક આગમસ્વરૂપ  
 ષષ્ઠન સાંબળી અને તેને હૃદયમા ઘારણ કરી સમસ્ત ઁવોમાં સમતામાય  
 ઘારણ કરે । કેમ કે શ્રુતચારિત્રલક્ષણરૂપ જ ધર્મ છે, અને તે સમસ્ત ઁવોમા  
 સમભાવરૂપથી રહેવાથી પ્રાપ્ત થાય છે । એવું તીર્થકૂર અને ગણધર અધિકારોને  
 આર પ્રકારની સભામાં કહ્યું છે । પુદ્ધબોધિતોનાં કર્તવ્ય બતાવવા માટે સુચકાર  
 "તે અણવકલમાણા" આ સુચકારી કથન કરે છે-આ પુદ્ધબોધિત ઁવ પ્રમજ્યા  
 ઘારણ કરવા માટે ઉચ્ચત બનીને શન્દાવિક વિષયોની ઘાડનાથી સ્કિત બનીને

वाणाः, अपरिग्रहन्तः=परिग्रहमकुर्वाणाः, अत्र प्रथमचरमयोर्ग्रहणे मध्यवर्तिनां त्रयाणां मृषावादादीनामपि ग्रहणं, तेन 'मृषावादमकुर्वन्त' इत्यादिकं वाच्यम्, सर्वस्मिन्नपि लोके, अत्र 'चकारः' समुच्चायकः स च 'नो परिग्रहवन्त' इत्यनेन सम्बध्यते, 'खलु' वाक्यालङ्कारे 'नो परिग्रहवन्तः=निष्परिग्रहाश्च भवन्ति, ते कुत्रापि परिग्रहदोषैर्न लिप्यन्ते इत्यर्थः। अपि च-स एव प्राणेषु=प्राणिषु दण्डं=परितापकरं मनोवाक्याव्यापारं विहाय=त्यक्त्वा पापं=पापजनकं कर्म प्राणातिपातादिकमष्टादशविधम् अकुर्वाणः=अननुतिष्ठन् एष महान्=लघुकर्मा 'अग्रन्थः' न विद्यते ग्रन्थो बाह्यो धन-धान्यादिशाभ्यन्तरः कषायादिश्च यस्य सोऽग्रन्थः=सर्वतः परिग्रहवर्जितः व्याख्यातः=तीर्थकृद्भिः प्ररूपितः।

किं च स ओजः=एको रागद्वेषवर्जित इत्यर्थः, द्युतिमतः=मोक्षरय तत्साधनस्य

चाहनासे रहित होकर प्राणियोंके प्राणोंके व्यपरोपण कार्यसे सर्वथा दूर रहते हैं और परिग्रहसे अलग होकर समस्त लोकमें कहीं भी परिग्रहके दोषसे लिप्त नहीं बनते हैं। यहां प्रथम और अंतिम पापसे उनकी निवृत्ति प्रकट करनेसे मध्यवर्ती मृषावाद आदि पापोंसे भी वे रहित होते हैं। यह बात भी स्वयं समझ लेनी चाहिये। वह बुद्धबोधित साधु ही प्राणियोंके विषयमें परिताप उपजानेवाले मन, वचन, कायके व्यापारका परित्याग कर पापजनक प्राणातिपातादिकरूप पापकर्मको नहीं करता हुआ लघुकर्मा बनता है, एव धन धान्यादिक बाह्य परिग्रह से और कषायादिरूप आभ्यन्तर परिग्रहसे रहित होनेसे निष्परिग्रही-परिग्रहसे रहित-तीर्थङ्करोंद्वारा कहा गया है।

तथा—यह बुद्धबोधित मुनि 'ओजो' अकेला अर्थात् रागद्वेषरहित

प्राणीओना प्राणुओना नाशना डारणुथी सदा दूर रहे छे, अने परिग्रहथी अलग गनी समस्त लोकमा डेछ पणु स्थणे परिग्रहना दोषथी लिप्त गनता नथी. अहि प्रथम अने अतिम पापथी तेनी निवृत्ति प्रकट करवाथी मध्यवर्ती मृषा-वाद आदि पापथी पणु ते रहित गने छे आ वात पणु पोते समलु लेवी जेछे अ ते बुद्धबोधित साधु न प्राणीओना विषे परिताप उपजन्ववावाणा मन, वचन अने कथाना व्यापारने परित्याग करी पापजनक प्राणातिपातादिकरूप पाप कर्मो नहि करता लघुकर्मो अने छे, अने धनधान्यादिक बाह्य परिग्रहथी अने कषायादिरूप आभ्यन्तर परिग्रहथी रहित होवाथी निष्परिग्रही-परिग्रहथी रहित तीर्थङ्करोंद्वारा कहेवाभां आवेल छे

तथा—आ बुद्धबोधित मुनि 'ओए'-अकेला-रागद्वेष-रहित होछे 'द्युतिमत'



अत्रायं विशेष — इह मन्बुद्धयमानाः—स्वयंपुद्गा' प्रत्येकपुद्गाः पुद्गलोपिधाभेति  
 भिविधाः सन्ति, तेषु पुद्गलोपिधानामेवात्राधिकारोऽस्ति, तमेवावस्मभ्य दर्शयति—  
 'श्रुत्वा'—ति-मेधाधी-रत्नप्रयाराधनफलामिह पण्डितानां=तीर्थङ्कर-गणधरादीनां  
 वचनम् इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारप्रतिपादकमागमं श्रुत्वा=समाकर्ष्य ततो निश्चयः=इदमेव  
 वधार्य च समतामाश्रयेत् । यतो धर्म=भूत-चारित्र्यलक्षणः समतया=सर्वप्राणिषु  
 समभावेन आर्यैः=तीर्थङ्कर-गणधरैः प्रवेदितः=द्वादशविधपरिपदि प्ररूपितः। तेषा-  
 मेव कर्तव्यं निर्दिशति—'ते' इत्यादिना, ते=सम्बुध्यमानाः समुद्यताः सन्तः  
 अनवकाहन्तः=सुप्तादिविषयमनिच्छन्तः अनतिपातयन्तः=प्राणिप्राणव्यपरोपभमङ्-

यहां इतना विशेष है—संबुध्यमान जीव ती प्रकारके हैं—१ स्वयम्बुद्ध,  
 २ प्रत्येकपुद्ग, और ३ पुद्गलोपिधत । इनमें जो पुद्गलोपिधत हैं उनका  
 ही यहां अधिकार है, अतः उसी अधिकारको छे कर कहते हैं  
 "श्रुत्वा" इत्यादि रत्नत्रयकी आराधनाजन्य फलका ज्ञाता वह  
 मेधाधी-तीर्थङ्कर और गणधरादिकोंके इष्ट और अनिष्टकी प्राप्ति और  
 परिहारके प्रतिपादक आगमस्वरूप वचन सुन कर, और उन्हें इदयमें  
 धारण कर समस्त जीवोंमें समताभाव धारण करे । क्यों कि श्रुतवा  
 रित्रलक्षणरूप ही धर्म है और यह समस्त जीवोंमें समभावरूपसे रहने  
 से ही प्राप्त होता है, ऐसा तीर्थङ्कर और गणधरादि देवोंने धारण प्रकारकी  
 समामें कहा है । पुद्गलोपिधतों के कर्तव्योंको दिखलानेके निमित्त सूत्र  
 कार 'ते अणवर्कस्वमाणा' इस सूत्रांशका कथन करते हैं—ये पुद्गलोपिधत  
 जीव प्रवृत्त्या धारण करनेके लिये उद्यत होते हुए शब्दादिक विषयोंकी

आमां जेटुं विशेष छे—संबुध्यमान एव त्रय प्रकारना छे १ स्वय  
 पुद्ग, २ प्रत्येकपुद्ग, ३ पुद्गलोपिधत आमा के पुद्गलोपिधत छे जेनीव  
 आदि अधिकार छे आधी जे अधिकारने लक्ष्यकार कहें छे— श्रुत्वा इत्यादि  
 रत्नत्रयनी आराधनाजन्य इष्टना अच्युतार जे मेधाधी-तीर्थङ्कर-अने अच्युत  
 शक्तिहोना इष्ट अने अनिष्टनी प्राप्ति अने परिहारना प्रतिपादक आगमस्वरूप  
 वचन सांभली अने तेने लक्ष्यमा धारण करी अमस्त एवोमां समताभाव  
 धारण करे केम के श्रुतवारित्रलक्षणरूप व धर्म छे अने ते समस्त एवोमां  
 समतावरूपकी रहेवाधी प्राप्त अय छे जेवु तीर्थङ्कर अने गणधर आदिदेवोंने  
 धार प्रकारनी सभाभां कहु छे पुद्गलोपिधतानां कर्तव्य अताववा भाटे सूत्रकार  
 "ते अणवर्कस्वमाणा" आ सूत्रांशकी कथन करे छे—आ पुद्गलोपिधत एव प्रवृत्त्या  
 धारण करवा भाटे उद्यमी जनीने शब्दादिक विषयोंनी आधनाधी स्थित यनीने

वाणाः, अपरिग्रहन्तः=परिग्रहमकुर्वाणाः, अत्र प्रथमचरमयोर्ग्रहणे मध्यवर्तिनां त्रयाणा मृपावादादीनामपि ग्रहणं, तेन 'मृपावादमकुर्वन्त' इत्यादिकं वाच्यम्, सर्वस्मिन्नपि लोके, अत्र 'चकारः' समुच्चायकः स च 'नो परिग्रहवन्त' इत्यनेन सम्बध्यते, 'खलु' वाक्यालङ्कारे 'नो परिग्रहवन्तः=निष्परिग्रहाश्च भवन्ति, ते कुत्रापि परिग्रहदोषैर्न लिप्यन्ते इत्यर्थः। अपि च-स एव प्राणेषु=प्राणिषु दण्डं=परितापकरं मनोवाक्कायव्यापारं विहाय=त्यक्त्या पापं=पापजनकं कर्म प्राणातिपातादिकमष्टादशविधम् अकुर्वाणः=अननुतिष्ठन् एष महान्=लघुकर्मा 'अग्रन्थः' न विद्यते ग्रन्थो बाह्यो धन-धान्यादिराभ्यन्तरः कपायादिविश्वस्य सोऽग्रन्थः=सर्वतः परिग्रहवर्जितः व्याख्यातः=तीर्थकृद्भिः प्ररूपितः।

किं च स ओजः=एको रागद्वेषवर्जित इत्यर्थः, द्युतिमतः=मोक्षस्य तत्साधनस्य चाहनासे रहित होकर प्राणियोंके प्राणोंके व्यपरोपण कार्यसे सर्वथा दूर रहते हैं और परिग्रहसे अलग होकर समस्त लोकमें कहीं भी परिग्रहके दोषसे लिप्त नहीं बनते हैं। यहां प्रथम और अंतिम पापसे उनकी निवृत्ति प्रकट करनेसे मध्यवर्ती मृपावाद आदि पापोंसे भी वे रहित होते हैं। यह बात भी स्वयं समझ लेनी चाहिये। वह बुद्धबोधित साधु ही प्राणियोंके विषयमें परिताप उपजानेवाले मन, वचन, कायके व्यापारका परित्याग कर पापजनक प्राणातिपातादिकरूप पापकर्मको नहीं करता हुआ लघुकर्मा बनता है, एव धन धान्यादिक बाह्य परिग्रह से और कपायादिरूप आभ्यन्तर परिग्रहसे रहित होनेसे निष्परिग्रही-परिग्रहसे रहित-तीर्थङ्करोद्दारा कहा गया है।

तथा—यह बुद्धबोधित मुनि 'ओजो' अकेला अर्थात् रागद्वेषरहित

प्राणीओना प्राणीओना नाशना कारणथी सदा दूर रहे छे, अने परिग्रहथी अलग अपनी समस्त लोकमा डोर्छ पणु स्थणे परिग्रहना दोषथी लिप्त बनता नथी अछि प्रथम अने अंतिम पापथी तेनी निवृत्ति प्रकट करवाथी मध्यवर्ती मृपावाद आदि पापथी पणु ते रहित अने छे आ वात पणु पोते समल लेवी जेठ ओ ते बुद्धबोधित साधु न प्राणीओना विषे परिताप उपजववावाणा मन, वचन अने कथाना व्यापारने परित्याग करी पापजनक प्राणातिपातादिकरूप पाप कर्मो नहि करता लघुकर्मो अने छे, अने धनधान्यादिक बाह्य परिग्रहथी अने कपायादिरूप आभ्यन्तर परिग्रहथी रहित होवाथी निष्परिग्रही-परिग्रहथी रहित तीर्थङ्करोद्दारा कहेवामा आवेल छे

तथा—आ बुद्धबोधित मुनि 'ओज'—ओकडो—रागद्वेषरहित होछ 'द्युतिमत'

या खेदज्ञ, खेदशब्दोऽत्र स्वस्वार्थमतिबोधकस्तेन मोक्ष-संयमयोः स्वरूपपरि-  
ज्ञातेत्यर्थः । इवलोक्येऽपि उपपात च्यवनं चकाराभर-नरक-तिर्यग्ज-म-मरणादिदुःखं  
ज्ञात्वा=पुत्र्या पापकर्म नैव कुर्यात् ॥ सू० १ ॥

हो 'शुतिमत'—मोक्ष और उसके साधन-संयम-के 'खेदज्ञ' स्वरूपका  
परिज्ञाता होता है, संसारके साधनोंका नहीं, कारण कि यह इस  
पातको अच्छी तरह जान चुका है कि संसारमें इस जीवको कभी सच्ची  
सुखशांति नहीं मिल सकती है, देवगतिमें भी जीवको जन्म और मरण  
करना पड़ता है, मनुष्यगति, नरकगति और तिर्यक्षगतिमें भी यही परि-  
स्थिति है । यहां पर भी जीव जन्म और मरणके दुःखोंसे रहित नहीं है,  
इसलिये इन समस्त सासारिक दुःखोंसे छुड़ानेवाला यदि कोई है तो,  
यह इनका अभावस्वरूप एक मोक्ष है, और मोक्षकी प्राप्ति कारण  
ण्ड संयम है अतः यह मोक्ष और संयमके स्वरूपका ज्ञाता बनकर उसी  
ओर अपनी प्रवृत्तिको लगाता रहता है और पापकर्मोंसे सर्वथा जुदा  
रहता है, इसी आशयको सूचित करनेके लिये "ओजो शुतिमतः खेदज्ञः  
उपपातं च्यवनं च ज्ञात्वा" यह कहा है ।

खेदज्ञ—खेद शब्दका अर्थ स्वरूप है, उसके ज्ञाताका नाम खेदज्ञ  
है । मध्यम अवस्थामें संयमके आचरणके लिये बोधको प्राप्त हुए कोई २  
जीव दीक्षा ले कर मुनि हो जाते हैं । तीर्थङ्करादिप्रतिपादित ध्यान

—मोक्ष अथवा तेन साधन-संयम-ना खेदज्ञ' स्वरूपना व्यसृष्टार होय उ-  
स साधना साधनेना नहि, कारण के अने आ पातने आरी शीते अन्वी पूकेस छे के  
स साधना आ अपने इटी पञ्च साची सुभ शांति गानी शक्ति नही  
देवगतिमां पञ्च अपने अ-म अपने मरण करवा पडे छे मनुष्यगति  
नरकगति, अने तिर्यक्षगतिमां पञ्च जायी अ परिस्थिति छे—अ पञ्च  
अप अ म अपने मरणना दु जोधी रहित नही, भाटे आवा समस्त सासारिक  
दु जोधी छे उपपातपाणा अे केछे होय तो ते तेन अभावस्वरूप अेके मोक्ष अ छे,  
अने मोक्षानी प्राप्ति सधमकी अ भोगयी शक्य छे मोक्षानी प्राप्तिनु कारण अेके  
सधम छे भाटे मोक्ष अने सधमना स्वरूपना ज्ञान अनी तेन तरहे पौतयनी  
प्रवृत्तिने लत्राटे छे अने पाप कर्मोधी सबया गुण रहते छे आ आशयने अम  
अथवा भाटे ओजो शुतिमतः नरका उपपातं च्यवना च ज्ञात्वा' आ इहु छे  
मोक्ष-जेह शब्दने अथ आ स्थले स्वरूप छे, तेन ज्ञातायु नाम जेह छे  
मध्यम अवस्थामा सधमना आचरण भाटे प्राप्त ध्येते केछे केछे अप  
दीक्षा लने मुनि अनी अथ छे तीर्थङ्करादिप्रतिपादित पयनरूप आश्रम

मध्यमे वयसि प्रव्रजिता अप्यन्ये परीषहेन्द्रियैर्ग्लायन्तीत्याह—‘आहारो०’ इत्यादि।

मूलम्—आहारोवचया देहा परीसहप्रभंगुरा, पासह एगे सविंदिएहिं परिगिलायमाणेहिं ओए दयं दयइ ॥सू० २ ॥

छाया—आहारोपचया देहाः परीषहप्रभङ्गुराः पश्यत एके सर्वेन्द्रियैः परिग्लायमानैः ओजो दयां दयते ॥ सू० २ ॥

टीका—‘आहारोपचये’—त्यादि, ‘आहारोपचया’ आहारेण=अशनादिना उपचयो वृद्धिर्येषां ते आहारोपचयाः ‘परीषहप्रभङ्गुराः’ परीषहेण=क्षुधारूपेण

रूप आगमके श्रवण एवं मनन से समस्त जीवों में समता धारण करने से ही श्रुतचारित्ररूप धर्मकी प्राप्ति होती है, ऐसे दृढ़ विश्वास से शब्दादिक विषयों की ओर नहीं जा कर अठारह प्रकारके पापस्थानकोंका परित्याग कर अपने गृहीत चारित्रकी उज्ज्वलता करने निमित्त समस्त परिग्रहसे रहित बन राग और द्वेषसे रहित होनेके लिये मोक्ष और उसके साधनों को जानने की ओर ही अग्रसर होते हैं ॥सू० १॥

मध्यम वयमें दीक्षित होने पर भी कोई एक मुनि परीषह और इन्द्रियोंसे दुःखित होते हैं, इस विषयको बतानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—‘आहारोवचया’ इत्यादि ।

प्राणियोंके शरीर, “आहारोपचया” आहार—अशन आदिसे उपचय—वृद्धि को प्राप्त होनेवाले तथा “परीषहप्रभंगुराः” क्षुधारूप परीषहसे विनशनशील होते हैं ।

तात्पर्य यह कि—प्राणियोंका औदारिक शरीर आहारसे वृद्धिगत और

श्रवण तेमञ् मननथी समस्त जवोमा समता धारण करवाथी न श्रुतयात्रिरूप धर्मनी प्राप्ति थाय छे, जेवा दृढ विश्वासथी ते शब्दादिक विषयानी तरइ नडी नता अठार प्रकारना पापस्थानेने परित्याग करी पोताना गृहीत यात्रिने उन्नयन करवा निमित्त समस्त परिग्रहथी रहित गनी राग अने द्वेषथी पर गनवाथी मोक्ष अने तेना साधने ज्ञानुवानी तरइ न अग्रसर थाय छे (सू० १)

मध्यम वयमा दीक्षित गनवाथी पणु कोछि जेक मुनि परिषह अने इन्द्रियेथी दुःखित थाय छे, आ विषयने अताववा भाटे सूत्रकार कहे छे—“आहारोवचया” इत्यादि

प्राणीओना शरीर, “आहारोपचया” आहार—अशन आदिसे उपचय—वृद्धिने प्राप्त थनारा तथा—“परीषहप्रभंगुरा” क्षुधारूप परिषहथी ग्लान होय छे

तात्पर्य अे छे के—प्राणीओनु औदारिक शरीर आहारथी वृद्धिगत अने

पमङ्गुरा = विनशनशीलाः प्राणिनां दहाः = शरीराणि मवन्तीति पश्यत = पूर्यं प्रेक्ष-  
 ष्वम्, एके = केचित्कातराः श्लुषया परिस्त्रायमानैः सर्वेन्द्रियैः कातरमारं गच्छन्ति,  
 इत्यपि पश्यतेति पूर्वेण सम्बन्धः । किन्तु तद्विपरीत औच्चः = एकः राग-द्वेषवर्जितः  
 परीपहोपसर्गसहनसमर्थः श्लुषादिपरीपहोपनिपातेऽपि महागिरिरिवाऽकम्प्यो दयां  
 पञ्जीयनिकायानुकम्पां दयते = परिपालयति ।

श्लुषार्थश्लुषा रूपविक्रं न सम्यक् पश्यति, कर्मणश्च न सम्यक् श्रुणोति,  
 रसनया न रसं सम्यगास्वादयति, नाऽपि घ्राणेन गन्धं सम्यग् जिघ्रति, त्वचा  
 नाऽपि शीतादिक् सम्यक् स्पृशति, श्लुषा सर्वेन्द्रियाणां शक्तिप्रतिपातकारिणी  
 भवतीत्याशयः ।

श्लुषारूप परीपह से म्लान या बिनष्ट हो जाता है, यह घात शिष्यों को  
 समझाते हैं—“पश्यत” आप लोग इस घात पर विश्वास रखो ।  
 जब यह घात है तो कोई २ कातर प्राणी श्लुषावेदनीय से दुःखित हुए  
 इन्द्रियोंद्वारा कातर भावको धारण करते हैं । यह भी घात विश्वास करने  
 जैसी है, किन्तु जो राग-द्वेषसे रक्षित होते हैं वे परीपह और उपसर्गों  
 को सहनेमें शोक्तशाली होते हैं—श्लुषादि परीपहों के आ जाने पर भी  
 वे सुमेरुकी तरह अकम्प्य होते हैं, और पञ्जीयनिकाय की दयाका  
 परिपालन करते हैं ।

जो कातर होते हैं वे जब श्लुषासे पीड़ित होते हैं तब आंगुलियोंसे  
 रूपादिकका अच्छी तरहसे अयलोकन नहीं कर सकते हैं, कानोंसे  
 अच्छी तरह शब्द भी नहीं सुन सकते हैं, जीभसे सुन्दर सुस्वादु रस  
 तक का भी स्वाद नहीं छे सकते हैं, नाकसे सुन्दर गंध तक भी नहीं

श्लुषाश्च परिपह्यं भ्वात अने निज्ज गते छे आ वात शिष्येने सम  
 आवे छे अने हडे छे— पश्यत आप बोड आ वात उपर विश्वास शयो  
 आ वात छे तो कोर् कोर् अवर प्राणी भूषण दुःखी दुःखित जनी  
 इन्द्रियोंद्वारा कातर भाव धारण करे छे आ वात पञ्ज विश्वास करवा जेयी छे परत  
 जे राग द्वेषी स्थित छे ते परिपह अने उपसर्गो अडेवाभां शक्तिशाली होय छे—  
 श्लुषादि पश्यमाना अयवाधी पञ्ज ते सुमेरुनी भाङ्क अ ग रडे छे अने पर  
 एगनिभायनी दयानु परिपालन करे छे

जे कातर होय छे ते आरे भूषण पीड़ित घाय छे त्पारे आयेधी  
 इन्द्रिय पञ्ज भासी रीने अयवेदन करी सकता नथी अनेधी धारी रीते शब्द  
 पञ्ज साभगी गठता नथी एवधी सुन्दर सुस्वादु रसने पञ्ज स्वाद लक्ष  
 शकता नथी नाकधी सुन्दर गंध पञ्ज सुधी सकता नथी अनेरपश इन्द्रियधी

ननु केवलिभिन्नानां देहा आहारोपचया भवन्तीति तदर्थं तेऽश्नन्ति, दयादीनि च पालयन्तीति, केवलिनो हि नियतं सेत्स्यन्ति तर्हि किमर्थं ते देहं धारयन्ति? किमर्थं च भुञ्जते? इति चेत् . न, केवलिनामपि वेदनीयादिकर्मचतुष्टयसद्भावेन तत्क्ष-  
पणार्थं शरीरधारणस्याऽऽहारस्य चाऽऽवश्यकत्वात्, अन्यथा तेषां तदानीमपि वेद-  
नीयादिकर्मसत्त्वात्क्षुधापरीपहाभिभवस्य दुर्वारत्वं स्यात्, ततश्च केवलिनोऽपि  
कवलाहारं कुर्वन्ति, तं विनौदारिकशरीरस्थितेरसम्भवात्, शरीरस्थितिं विना शेष-  
कर्मचतुष्टयक्षपणासम्भवाच्चावश्यक एव केवलिनामपि कवलाहार इत्यलम् ॥सू०२॥  
षड्जीवनिकायरक्षकः कीदृशो भवतीति दर्शयति—‘जे संनिहाणसत्थस्स’ इत्यादि ।

सूँघ सकते हैं और स्पर्शन इन्द्रियसे शीतादिकके ज्ञानसे भी अपरिचित रहते हैं, तात्पर्य—क्षुधा समस्त इन्द्रियोंकी शक्तिका प्रतिघात करनेवाली होती है ।

केवलियों के भी वेदनीयादिक चार अघातिया कर्मोंका सद्भाव है, अतः उन कर्मोंको नाश करनेके लिये उन्हें भी शरीररक्षाकी आवश्यक-  
कता है, और शरीररक्षाके निमित्त कवलाहार की जरूरत है, कवलाहार भी इसलिये वहां होता है कि वह वेदनीय कर्मका कार्य है, यदि वे कव-  
लाहार न करें तो वेदनीय कर्मके सद्भावेसे तज्जन्य—क्षुधापरीषहजन्य कष्टका उन्हें सामना करना पड़े । इस लिये केवली भी कवलाहार करते हैं, इसके विना औदारिक शरीरकी स्थिति नहीं रह सकती, शरीरस्थिति रहे विना शेष कर्मचतुष्टयका विनाश नहीं हो सकता है, अतः केव-  
लियोंके भी कवलाहार है ॥ सू०२ ॥

षड्जीवनिकायका रक्षक वह कैसा होता है ? सो कहते हैं—  
“जे संनिहाणसत्थस्स ” इत्यादि ।

ठंडी आदिना ज्ञानथी पणु अपरिचित रहे छे तात्पर्य—लूभ समस्त इन्द्रियोंनी शक्तिनो प्रतिघात करना छे

केवलियोने पणु वेदनीय आदि चार अघातिया कर्मोने सद्भाव छे माटे तेवा कर्मोने नाश करवा तेने पणु शरीररक्षानी आवश्यकता छे, अने शरीररक्षाना निमित्त कवल आहारनी जरूरत छे कवल आहार पणु ओ माटे त्या डोय छे के ते वेदनीय कर्मनु कार्य छे जे ते कवल आहार न करे तो वेदनीय कर्मना सद्भावेथी तज्जन्य—क्षुधापरिषहजन्य कष्टनो तेने सामना करवो पडे, माटे केवली पणु कवल आहार करे छे, तेना विना औदारिक शरीरनी स्थिति रही शकती नथी शरीरस्थिति रह्या विना पाडी रहेला चार कर्मोने विनाश थछ शकतो नथी, माटे केवलियोने पणु कवल आहार छे (सू०३)

षड्जीवनिकायना रक्षक केवा डोय छे? ते कडे छे—“जे संनिहाणसत्थस्स” इत्यादि

मृक्ष्म-जे सनिहाणसत्थस्स खेयन्ने से भिक्खू कालझे  
 वलन्ने मायन्ने खणन्ने विणयन्ने समयन्ने परिग्गह् अममा  
 यमाणे कालेणुट्ठाई अपढिन्ने दुह्ओ छित्ता नियाइ ॥ सू० ३॥

छाया—यः सन्निधानशास्त्रस्य खेदज्ञ मिष्ट कालज्ञो बलज्ञो मात्राज्ञः क्षणज्ञो  
 विनयज्ञः समयज्ञः परिग्रहमममायमानः कालेऽनुष्ठायी अप्रतिज्ञो द्विषा छित्त्वा नियाति

टीका—‘यः’ इत्यादि, यः=पूर्वोक्तो दयापरिपालकः सन्निधानशास्त्रस्य-  
 सभिधीयत=स्थाप्यते नरकनिगोदादिषु जीषो यन तत् सन्निधानं=ज्ञानावरणीयादिकं  
 कर्म, तस्य श्वास्थ्यं=तत्स्वरूपप्रतिपादक आगमं=सन्निधानशास्त्र, तस्य। यद्वा—‘सन्नि-  
 धानशास्त्रस्य’ इति छाया, तेन सन्निधानस्य कर्मणः शक्यच्छेदकत्वेन शस्यं समय  
 स्तस्य खेदज्ञः=कुशलो भवति स मिष्टः कामज्ञो बलज्ञो मात्राज्ञः क्षणज्ञो विनयज्ञः  
 समयज्ञः परिग्रहमममायमानः कालेऽनुष्ठायी अप्रतिज्ञो द्विषा रागं द्वेषं च छित्त्वा  
 नियाति=मोक्ष प्राप्नोति। एतेषां व्याख्या द्वितीयाभ्ययनस्य पञ्चमोद्देशे प्रोक्तेति ॥

सन्निधानशास्त्रका अर्थ आगम है, वह इस प्रकारसे—नरक और  
 निगोदादिकों में जीष जिसके द्वारा स्थापित किया जाता है वह सन्निधान  
 —ज्ञानावरणीयादि कर्म—है, इनके स्वरूपका प्रतिपादक जो शास्त्र  
 है वह सन्निधानशास्त्र—आगम है। अथवा—“सन्निधानशास्त्र” यह भी  
 “संनिहाणसत्थस्स” की छाया हो सकती है। इसका अर्थ समय है  
 संनिधानका अर्थ कर्म, और उस कर्मका शास्त्रकी तरह छेदक होनेसे  
 शास्त्र संयम है। आगमका अथवा संयमका जो ज्ञाता—उस विषयमें जो  
 कुशल—है वह कालज्ञ, बलज्ञ, मात्राज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ, समयज्ञ परिग्र  
 हत्यागी, कालोच्छल संयम क्रियाका आराधक, अप्रतिज्ञ मुनि राग और  
 द्वेषका विनाश कर मोक्षको प्राप्त करता है। इन समस्त पदों की

सन्निधानशास्त्रना अर्थ आगम छे ते आ प्रकारधी—नरक अने निगोदा  
 दिकोभां छव अना द्वारा स्थापित कराव छे ते सन्निधान—ज्ञानावरणीयादि  
 कर्म छे तेना स्वरूपनु प्रतिपादक के शास्त्र छे ते सन्निधानशास्त्र-  
 आगम छे अथवा—“सन्निधानशास्त्रस्य” आ पद्यु ‘संनिहाणसत्थस्स’नी  
 छाया अने छे आना अर्थ समय छे सन्निधानना अर्थ कर्म—अने के  
 कर्मनु शास्त्री शीते छेन करनारहोवाधी शस्य संयम छे आगमना अथवा  
 संयमना के शास्त्र—आ विषयभां के कुशल—छे ते कालज्ञ बलस मात्राज्ञ क्षणज्ञ  
 विनयज्ञ समयज्ञ परिग्रह—त्यागी, शक्योच्छल संयम क्रियाना आराधक अप्रतिज्ञ  
 मुनि राग अने द्वेषना विनाश करी मोक्षने प्राप्त करे छे आ समस्त पदोनी

संयमाचरणाय प्रव्रजतो यद्भवति तद्दर्शयति—‘ तं भिक्खुं ’ इत्यादि ।

मूलम्—तं भिक्खुं सीयफासपरिवेवमाणगायं उवसंकमित्ता गाहावई बूया—आउसंतो ! समणा ! नो खलु तं गामधम्मा उव्वाहंति ?! आउसंतो ! गाहावई ! नो खलु मम गामधम्मा उव्वाहंति, सीयफासं च नो खलु अहं संचाएमिअहियासित्तए, नो खलु मे कप्पइ अगणिकायं उज्जालित्तए वा पज्जालित्तए वा, कायं आयावित्तए वा पयावित्तए वा, अत्तेसिं वा वयणाओ सिया से एवं वयंतस्स परो अगणिकायं उज्जालित्ता पज्जालित्ता कायं आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणयाए—त्तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—तं भिक्षुं शीतस्पर्शपरिवेपमानगात्रमुपसंक्रम्य गाथापतिर्ब्रूयात्—आयुष्मन् ! श्रमण ! न खलु ते ग्रामधर्मा उद्वाधन्ते ? । आयुष्मन् ! गाथापते ! नो खलु मम ग्रामधर्मा उद्वाधन्ते शीतस्पर्शं च न खल्वहं शक्नोम्यध्यासितुं, न खलु मे कल्पतेऽग्निकायमुज्ज्वलयितुं वा प्रज्वालयितुं वा कायमातापयितुं वा प्रतापयितुं वा; अन्येषां वा वचनात् स्यात् तस्य एव वदतः परोऽग्निकायमुज्ज्वाल्य प्रज्वाल्य कायमातापयेद्वा, प्रतापयेद्वा, तद्भिक्षुः प्रत्युपेक्ष्यावगम्याऽऽज्ञापयेदनासेवनयेति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ तं भिक्षु ’—मित्यादि, गाथापति = धन—धान्य—हिरण्य—सुवर्णादिसमृद्धिमान् कस्तूरीचन्दनादिपरिलिप्तगात्रो रमणीयवपुः कमनीयरमणीगणसमन्वितो

व्याख्या द्वितीय अध्ययनके पांचवें उद्देशमें कह दी गई है ॥ सू० ३ ॥

संयमके आचरणके लिये दीक्षित हुए मुनि के जो होता है उसे सूत्रकार कहते हैं—“ तं भिक्खुं ” इत्यादि ।

जो धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण आदि समृद्धिसे युक्त है, कस्तूरी, चन्दन आदिसे जिसका शरीर लिप्त हो रहा है, देह

व्याख्या भील अध्ययनना पाचमा उद्देशमा उडेवायेल छे (सू० ३)

सयमना आचरणु भाटे दीक्षित भनेल ने मुनि डोय छे अने सूत्रकार उडे छे—“ तं भिक्खु ” इत्यादि

ने धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण, आदि समृद्धिथी युक्त छे, कस्तूरी, चन्दन, आदिथी नेतु शरीर लिप्त थई रहेल छे, देह पणु नेनी



गृहस्थः शीतस्पर्शपरिवेषमानगार्भः=हेमन्तर्तौ शीतस्पर्शेन परिवेषमान=कम्पमानं  
 गाभः=शरीरं यस्य स शीतस्पर्शपरिवेषमानगाभस्तम् अप्योपधिकरत्वेन शीतवात  
 परिकम्पितशरीरं तम्=अन्तप्रान्ताक्षिन तज्जोरहितमकिञ्चन मिष्टुं=मध्यमावस्थापन्नं  
 मुनिम्=उपसंक्रम्य=वत्समीपमागत्य ' किमयं मदीयवन्नितारूप-लाघव्य-विशोक्तन  
 शृङ्गारचेष्टामिभूतत्वात् परिकम्पितगाभोऽथवा शीतस्पर्शोद्दिना वा? इति सन्देहमुपगम्य  
 च सं मिष्टुं ह्यात्=वस्यमाण वाक्य कथयेत् पृच्छेदित्यर्थः, तदेवाह—' मां आयु-  
 प्मन् ! भ्रमण ! किं ग्रामधर्माः=शृङ्गारादिमदनचेष्टाभिरोपा विषयास्तां ' नो  
 उवृषाभ-तं =न पीडयन्ति ? तादृशं कृतप्रभमसत्याशङ्कं गृहपतिमालक्ष्य स मिष्टु  
 स्तच्छ्रामपनतुं प्रवीति—' आयुष्मन्—मित्यादि, हे आयुष्मन् ! ग्रामधर्माः मां नो  
 भी जिसकी बहुत सुन्दर है, घरमें जिसके मनोहर अंगवाली  
 नारियोंका समूह है, ऐसे किसी गृहस्थके घर पर मध्यम अवस्थावाले,  
 अल्प उपधिके घारी मुनि आहार लेनेके निमित्त आवे तब उन्हें  
 अधिक ठण्डसे कंपित होते देखकर वह गृहस्थ उन अन्तप्रान्तमोजी  
 एवं तेजरहित अकिञ्चन मुनिके प्रति सन्देहयुक्त विचार करता है कि—  
 "वह मेरे घरकी इन धनिताओंके सुन्दर रूप और लाघव्यको निहार कर  
 शृङ्गार की चेष्टासे युक्त वन कम्पितशरीरवाला हुआ है? या शीतके स्पर्श  
 से इसका शरीर कम्प रहा है ?" ऐसा सोच कर वह मुनिसे पूछता है—  
 'मो मुने ! आपका शरीर हमारी स्त्रियोंको देखकर कम्प रहा है या  
 अन्य किसी कारणसे ?, इस प्रकार असत्य आशङ्कसे युक्त उस पूछने  
 वाले गृहस्थ के प्रभको सुन कर वह मिष्टु उसकी आशङ्कके परिहार  
 करने हेतु इस प्रकार कहे—मो आयुष्मन् ! ग्रामधर्म-काम-की चेष्टा

युक्त सुन्दर छे घरमा मनोहर अंगवाणी स्त्रीजोने समूह छे जेवा ठोर्ष बुद्ध  
 स्थना घेर मध्यम अवस्थावाण्य, न्यय उपनिना धारक मुनि प्यहार देवा भाटे  
 आवे त्पारे तेने अशिक ढीधी आपतां जेठ ते गृहस्थ अन्तप्रान्तकोल जेव  
 तेवरहित अकिञ्चन मुनिना तरह स देहयुक्त विचार करे छे के—' आ भाश  
 धरनी स्त्रीजोना सुन्दर रूप अने लाघवयने जेठ शृङ्गारनी चेष्टाभी अङ्गार्थ  
 भापी रहेल छे ? अथवा ढीनी स्पर्शभी आपुं शरीर भापी रह्यु छे? ' जेनुं विचार  
 जे मुनिने पूछे छे—हे मुनि ! तमाई शरीर भाश धरनी स्त्रीजोने जेठ भापी  
 रह्यु छे के पीला कोर्ष करवथी ? आ प्रकारनी असत्य आशङ्कभी पूछनामें  
 आवेला गृहस्थना जे प्रभने सावणी किछु जेनी आशङ्कानु निवारण कर  
 वान्य हेतुथी कहे छे के—जे आयुष्मन् ! ग्रामधर्म-काम-नी चेष्टास्वरूप शृङ्गार-

खलु=नैव उद्वाधन्ते=न मां पीडयन्ति किन्तु अहं शरीरदौर्बल्येनालपोपधिकत्वेन च शीतस्पर्श=तीव्रतरशीतवाधाम् अध्यासितुम्=अधिसोढुं न शक्नोमि तेन मे गात्रं कम्पते न तु कामचेष्टयेति भावः । इति लब्धोत्तरो गृहपतिर्विनयभक्तिपरिपूरितान्तःकरणः सन् लज्जित. पुनः पृच्छति-प्रदीप्तं वह्निं ससेव्य शीतपीडां कथं भवान् नापनयति ? इति प्रश्ने सति मुनिरुत्तरमाह-‘ न खल्वि ’-त्यादि, अग्निकायम् उज्ज्वालयितुम्=ईपत् ज्वालयितुं प्रज्वालयितुं=प्रकर्षेण ज्वालयितुं कायं=स्वशरीरम्=आतापयितुम्=मनाक् तापयिम्=अधिकमातापयितु प्रतापयितुं वा, अन्येषां=परेषां वा वचनात्=कथनादपि तद् मे=मम न कल्पते, अग्निकायारम्भे पद्मजीवनिकायारम्भस्यावश्यम्भावाद्भगवदाज्ञाविराधनादोषापातात् ।

स्वरूप शृङ्गारादि विषयवाले विषय मुझे पीडित नहीं कर रहे हैं, किंतु इस समय शीत अधिक पड़ रहा है, उपधि भी इतनी अधिक नहीं है कि जिससे मैं शीतका निवारण कर सकूँ, खैर-उपधि अल्प होने पर भी यदि शरीर सशक्त हो तो भी शीत वगैरह सहन किया जा सकता है परन्तु इस समय शरीर भी दुर्बल हो रहा है अतः शीतके कारण मेरा शरीर कंप रहा है-कामचेष्टासे नहीं । इस प्रकार मुनिसे जब वह अपनी आशङ्काका उत्तर ठीक २ पालेता है तब वह लज्जित अवश्य होता है, साथमें उसके हृदयमें विवेकका सागरसा उमड़ आनेसे वह उस मुनिके प्रति भक्ति और विनयके भारसे भरित अंतःकरणवाला

राहि विषयवाणा विषय भने पीडता नथी परतु अत्यारे ठडी अधिक प्रभाषुमा ढोवाथी, तेम भारी यासे अे ठडीथी अत्याव करी शके ते रीते पश्चादिके न ढोवाथी कापी रह्यो छु पश्चादिके ओछा ढोवा छता पणु ने शरीर सशक्त होय तो ठडी सहन करवामा हरकत न पडे, आ समये माइ शरीर पणु दुर्बल छे, आथी ठडीना अरथे माइ शरीर कापी रह्यु छे-कामचेष्टाथी नही. आ प्रकारे मुनिथी न्यारे ते पोतानी आशकाने उत्तर ठीक ठीक भेणवी वे छे त्यारे ते लज्जित अने छे, साथमा तेना हृदयमा विवेकने उलरे आव-वाथी ते मुनि प्रत्ये लज्जित अने विनयना भावथी लरेला अतःकरणवाणो थध

एवं षडतो मुनेरग्निः कायमज्ज्वात्मनादे परिहारे हृतेऽपि स्यात्=कदाचिद् यदि सा=पूर्वोक्तोऽप्यो वा गृहस्यः अग्निः कार्यं=वर्हिं तदर्धमुज्ज्वात्म्यं प्रज्वात्म्यं च तस्य मुनेः काय=शरीरम् आतापयेद्वा प्रतापयेद्वा तदा भिक्षुः=स मुनिः सत् सर्वं प्रत्युपेत्य =साध्याधारणतया विधायं अनगम्य=ज्ञात्वा वा सं गृहपतिम् अनासेनतया=अहृत्यनीपतया 'अग्निसेषेन मम न कल्पते' इत्यनासेषेन परिहृत्या आघ्रापयत्=प्रतिबोधयेत् । इति ब्रवीमि '-स्यस्यार्यस्तुक्त एव ॥ सू० ४ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ८-३ ॥

हो कर वह कहता है—महाराज ! जब आपकी यह हालत है तो फिर आप शीतको अग्निद्वारा क्यों नहीं दूर करते हैं ? इसके उत्तरमें मुनि इस प्रकार कहता है कि—अग्निकायको थोड़ा या अधिक जलानेका और उससे इस शरीरको थोड़ा या अधिक तपानेका मुनिकल्प नहीं है ।

भावार्थ—अग्निकायके आरम्भमें पड़जीबनिकायकी विराधना होती है, इस लिये शास्त्रमें इस प्रकारका आचार मुनिके लिये निषिद्ध है, क्यों न मयङ्करसे मयङ्कर शीत पड़े तो भी मुनि इस प्रकारका अग्निका आरंभ नहीं कर सकते । किसीकी विराधना कर इस पौद्गलिक शरीरको सुखित करना यह मुनियोंका कर्तव्य नहीं है । अग्निकायके आरम्भमें अग्नि कायिक जीवोंकी विराधनाके साथ २ इतरकायिक जीवोंकी भी विरा-

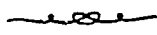
ते ठहरे थे—महाशय व्यापारे आपनी शय हालत थे तो पछी आप ठहीने अग्निधी केम इर करवा नथी ? तेना उत्तरमां मुनि ठहरे थे के—अग्निधायने मोक्ष अथवा वधारे आणवाग्य अने तेनाधी आ शरीरने मोठो अथवा अधिक ताप आपवाभां मुनिकल्प नथी.

भावार्थ—अग्निकायना आरंभमां पड़लुपनिकायनी विराधना घाय छे भाटे शास्त्रमा आ प्रकाशने अथार भनि भाटे निषिद्ध छे अले अयकरमां अयकर ठही पडे तो पछ मुनि आ प्रकाशे अग्निने आरंभ करी शकता नथी. केअग्नि विराधना करी अ पौद्गलिक शरीरने सुणी करवे अने मुनिनु कर्तव्य नथी. अग्निकायना आरंभमां अग्निधायना लुपोनी विराधनानी साथे साथे भील

घनाका आरंभ अवश्य होता है, इस लिये इस प्रकारके आरंभ करनेकी भगवान् की आज्ञा मुनिके लिये नहीं है ।

इस प्रकार समझाने पर भी यदि कोई या वही गृहस्थ भक्ति या दयाके आवेशसे उस मुनिकी शीतसे रक्षा करनेके अभिप्रायसे थोड़ी या बहुत अग्नि जला कर उसके शरीरको थोड़े रूपमें या बहुत रूपमें तपाने की चेष्टा भी करे तो उस समय वह भिक्षु इस प्रकारकी उनकी (अग्नि-ज्वालनादि क्रियासे शरीरको तपानेरूप) क्रियाको सावद्यके आचरण रूपसे विचार कर और जानकर उस गृहस्थसे “ यह आचार हम मुनियों को अकल्पनीय होनेसे नहीं कल्पता है ” इस प्रकार अनासेवनपरिज्ञा से कहे—उसे समझावे । “ इति ब्रवीमि ” इन पदोंका अर्थ पहिले कहा जा चुका है ॥सू०४॥

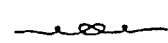
॥ आठवें अध्ययनका तीसरा उद्देश समाप्त ॥ ८-३ ॥



श्रुतानी पणु विराधनानो आरंभ अवश्य थाय छे, भाटे आ प्रकारनो आरंभ करवानी लगवाननी आज्ञा मुनि भाटे नथी

आ रीते समझववा छतां पणु न्ने डोछ अथवा अेज गृहस्थ लक्षित अगर द्याना आवेशथी ते मुनिनी ठीथी रक्षा करवाना अलिप्रायथी थोडी धणी अग्नि सणगावी तेना शरीरने थोडा रूपमा अथवा धणु रूपमा तपाववानी चेष्टा पणु करे तो ते समय ते भिक्षु आ प्रकारनी तेनी ( अग्निज्वालनादि क्रियाथी शरीरने तपाववा रूप ) क्रियाने सावधाना आचरण रूपथी विचारी अने न्णणी ते गृहस्थथी “ आ आचार अमे मुनिओ भाटे अकल्पनीय डोवाथी कल्पतुं नथी ” आ प्रकारे अनासेवनपरिज्ञाथी कहे—तेने समझवे “ इति ब्रवीमि ” आ पढोनो अर्थ पढेवाना उद्देशोमा कहेवाछ गयेल छे ( सू०४ )

आठमा अध्ययननो त्रीन्ने उद्देश समाप्त ॥ ८-३ ॥



एवं बद्धो घुनरन्निर्कायप्रज्वालनादे परिहारे कृतंऽपि स्यात्=कदाचिद् यदि  
 सा=पूर्वोक्तोऽप्यो वा गृहस्यः अग्निकार्यं=वर्द्धिं तदर्थमुज्ज्वाल्य प्रज्वाल्य च तस्य  
 घुने काय=शरीरम् आतापयेद्वा प्रतापयेद्वा तदा मिथुः=स घुनिः तत् सर्वं प्रत्युपेक्ष  
 =साधदापरम्पतया विचार्य अपगम्य=ज्ञात्वा वा तं गृहपतिम् अनासन्नतया  
 अकल्पनीयतया 'अग्निसेवर्न मम न कल्पते' इत्यनासेवनपरिह्रया आघ्रापयेत्=  
 प्रतिबोधयत् । इति ब्रवीमि'-स्यस्यार्यस्तुक्त एष ॥ सू० ४ ॥

॥अष्टमाध्ययनस्य तृतीय उद्देश समाप्त ॥८-३॥

हो कर बह कहता है—महाराज ! जय आपकी यह हालत है तो  
 फिर आप शीतको अग्निद्वारा क्यों नहीं दूर करते हैं ?  
 इसके उत्तरमें मुनि इस प्रकार कहता है कि—अग्निकायको घोड़ा या  
 अधिक जलानेका और उससे इस शरीरको घोड़ा या अधिक तपानेका  
 मुनिकल्प नहीं है ।

भावार्थ—अग्निकायके आरम्भमें पशुजीवनिकायकी विराधना होती  
 है, इस लिये शास्त्रमें इस प्रकारका आचार मुनिके लिये निषिद्ध है, क्यों  
 न भयङ्करसे भयङ्कर शीत पड़े तो भी मुनि इस प्रकारका अग्निका आरंभ  
 नहीं कर सकते । किसीकी विराधना कर इस पौद्गलिक शरीरको सुखित  
 करना यह मुनियोंका कर्म्म नहीं है । अग्निकायके आरम्भमें अग्नि  
 कायिक जीवोंकी विराधनाक साथ २ इतरकायिक जीवोंकी भी विरा-

ते कहे थे—महाशय अग्निरे आपनी आ दावत छे तो पछी आप कहीने अग्निधी  
 केम दूर करवा नधी ? तेना उत्तरमां मुनि कहे छे के—अग्निकायने मोक्ष जन्मवा  
 वधाये आणनामा अने तेनाभी आ शरीरने घोडो जन्मवा अधिक ताप आपवाभां  
 मुनिकल्प नधी.

भावार्थ—अग्निकायना आरंभमां पशुजीवनिकायनी विराधना साथ छे भये  
 शास्त्रमा आ प्रहारने आआर भनि भाटे निषिद्ध छे लखे जयकरमां कयकर  
 कही पडे तो पख मुनि आ प्रहारे अग्निने आरंभ करी शकवा नधी । काल्पनी  
 विराधना करी आ पौद्गलिक शरीरने सुधी करवे जेनुं मुनिनुं कर्म्म नधी.  
 अग्निकायना आरंभमां अग्निकायना लवोनी विराधनानी साथे साथे जीव

स्त्यजेत्, न तु शीलभङ्गं समाचरेत्, तदभावे च तन्मरणं गर्हितमिति कथयन्नादौ शीतस्पर्शप्रसङ्गेन वस्त्रस्य कल्पनीयतामावेदयति—‘जे भिक्खू इत्यादि ।

मूलम्—जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायचउत्थेहिं, तस्स णं नो एवं भवइ—चउत्थं वत्थं जाइस्सामि से । अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाइज्जा अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारिज्जा नो धोइज्जा नो रएज्जा नो धोयरत्ताइं वत्थाइं धारिज्जा अपलिउंचमाणे गामंतरेसु ओमचेलिए एयं खु वत्थधारिस्स सामग्गियं ॥सू०१॥

छाया—यो भिक्षुस्त्रिभिर्वस्त्रैः पर्युषितः पात्रचतुर्थैः, तस्य खलु नो एवं भवति—चतुर्थं वस्त्रं याचिष्ये, स यथैषणीयानि वस्त्राणि याचेत्, यथापरिगृहीतानि वस्त्राणि धारयेत्, नो धावेत्, नो रञ्जयेत्, नो धौतरक्तानि वस्त्राणि धारयेत्, अपरिकुञ्चमानः ग्रामान्तरेषु अवमवेळिकः, एतत्खलु वस्त्रधारिणः सामग्र्यम् ॥मू० १ ॥

टीका—‘यो भिक्षु’—रित्यादि, यो मुनिः पात्रचतुर्थैः—वस्त्रत्रयातिरिक्तं चतुर्थं पात्रं यत्र तानि, तैः पात्रचतुर्थैः त्रिभिर्वस्त्रैः—कार्पासिके द्वे, तृतीयमौर्णिकं कम्बलादिकम्, एतन्नयमेव वस्त्रं तेषां कल्पते, तत्र शीतप्रारम्भे चैकं प्रावरणवस्त्रं स मुनिर्धारयेत्, ततोऽप्यधिकशीतपीढायां कम्बलमुपरि धारयेत्, एतेन कम्बलगत-वाह्याच्छादनता बोध्या ।

से अपने प्राणोंको छोड़ दे परन्तु वे शील—ब्रह्मचर्य महाव्रत—का भङ्ग न करे, क्यों कि ब्रह्मचर्यके अभावमें उसका मरण निर्दिष्ट है, इस बातको कहते हुए सूत्रकार आदिमें शीतस्पर्शके प्रसंग से वस्त्रकी कल्पनीयता और अकल्पनीयता सूत्रद्वारा प्रकट करते हैं—‘जे भिक्खू’ इत्यादि ।

स्थविरकल्पी मुनि तीन वस्त्र (दो सूती एक ऊनी कम्बल) आदि और एक पात्र, इस प्रकार वस्त्र और पात्र रखते हैं, क्यों कि इतने ही वस्त्र और पात्र रखने का उनका कल्प है । इनमें शीतकालके प्रारम्भमें एक ही ओढनेका वस्त्र वे रखते हैं । जब अधिक शीत पड़ने लगती है तो वे द्वितीय वस्त्र भी ओढनेके लिये रख लेते हैं, और भी अधिक

अभावथी ऐनु भरणु निर्दिष्ट छे आ वात डडेता सूत्रकार ठडीना प्रसंगमा वस्त्रनी कल्पनीयता अने अकल्पनीयता सूत्रद्वारा प्रकट करे छे—‘जे भिक्खू’ इत्यादि आ स्थविरकल्पी मुनि त्रय वस्त्र जेमा जे सुतराठ अने ऐक डम्भल वजेरे अने ऐक पात्र आ प्रधारना वस्त्र अने पात्र राषे छे डेम डे ओटला न वस्त्र अने पात्र, राषवानो ऐनो कल्प छे आमा ठडीना प्रारभमा ऐक न ओढवानु वस्त्र राषे छे न्यारे ठडी वधु प्रमाणमा पडवा लागे त्यारे णीणु वस्त्र पणु ओढवा माटे राषी दे छे णुण न प्रमाणमा ठडी पडवा लागे त्यारे ऐक डम्भल पणु राषी

## ॥ अथाष्टमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

अथ तृतीयोद्देशरूपनांतर सम्पत्ति तुरीय आरम्भते । अस्यानन्तरोद्देशेन सहस्र सम्पत्ति-भ्रमन्तरोद्देशे मिश्रार्थ परिभ्राम्यन् मुनिः शीतस्पर्शवेपितगात्रो ग्रामघर्म-शक्तिमनसा गृहस्थेन पृष्टस्तस्यासत्यशङ्कामपनयेदित्यभिहितम् । अत्र च यदि पुनः स्त्रिय एव स मिश्रु हावभावादिभिर्विघ्नैर्कृत्व चेष्टरन्, मुनिस्तत्स्थानाभिष्क-मितुमशक्तो भवेत्तदा चारित्रपरिरक्षणार्थं वैहायस-गार्दृषुष्ठाख्यमरणविधिना प्राणा-

### आठवें अध्यायनका चौथा उद्देश ।

तृतीय उद्देशके कहनेके बाद अब चतुर्थ उद्देश आरम्भ होता है । इस उद्देशका अनन्तर उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है-उस अनन्तर उद्देशमें यह कहा है कि " मिश्रताके लिये निकले हुए मुनिका शीतकालमें शीतके स्पर्शसे कम्पित शरीर देख कर यदि कोई गृहस्थ ग्रामघर्मकी आशङ्कत उसमें कर लेता है तो वह मुनि उसकी उस असत्य आशङ्कता परिहार कर देता है । इस उद्देशमें यह प्रकट किया जायगा कि स्त्रियाँ ही यदि उस मुनिको हावभाव आदि चेष्टाओंसे घशमें करनेका प्रयत्न करें, और मुनि उस स्थानसे बाहर निकलनेके लिये असमर्थ बन जाय तो उस समय उस मुनिका यही कर्तव्य है कि वह अपने चारित्रकी सप प्रकाशते रक्षा करनेके लिये वैहायस और गार्दृषुष्ठ नामक मरणविधि

### आठवा अध्यायनको चौथा उद्देश

तीसरे उद्देश के बाद अथ आठवें उद्देश आरम्भ होता है । इस उद्देशके अनन्तर उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है-उस अनन्तर उद्देशमें यह कहा है कि " मिश्रताके लिये निकले हुए मुनिका शीतकालमें शीतके स्पर्शसे कम्पित शरीर देख कर यदि कोई गृहस्थ ग्रामघर्मकी आशङ्कत उसमें कर लेता है तो वह मुनि उसकी उस असत्य आशङ्कता परिहार कर देता है । इस उद्देशमें यह प्रकट किया जायगा कि स्त्रियाँ ही यदि उस मुनिको हावभाव आदि चेष्टाओंसे घशमें करनेका प्रयत्न करें, और मुनि उस स्थानसे बाहर निकलनेके लिये असमर्थ बन जाय तो उस समय उस मुनिका यही कर्तव्य है कि वह अपने चारित्रकी सप प्रकाशते रक्षा करनेके लिये वैहायस और गार्दृषुष्ठ नामक मरणविधि

સ્યજેત્, ન તુ શીલભક્તં સમાચરેત્, તદભાવે ચ તન્મરણં ગર્હિતમિતિ કથયન્નાદી  
શીતસ્પર્શપ્રસન્નેન વસ્ત્રસ્ય કલ્પનીયતામાવેદયતિ-‘જે ભિક્ષૂ’ इत्यादि ।

મૂલમ્-જે ભિક્ષૂ તિહિં વત્થેહિં પરિવુસિણ્ણ પાયચ્ચઉત્થેહિં, તસ્સ  
પં નો એવં ભવઈ-ચઉત્થં વત્થં જાઈસ્સામિ સે । અહેસણિજ્ઞાઈં  
વત્થાઈં જાઈજ્ઞા અહાપરિગ્ગહિયાઈં વત્થાઈં ધારિજ્ઞા નો ધોઈજ્ઞા  
નો રણ્ણા નો ધોયરત્તાઈં વત્થાઈં ધારિજ્ઞા અપલિઉંચમાણે  
ગામંતરેસુ ઓમચેલિણ્ણ એયં સુ વત્થધારિસ્સ સામગ્ગિયં ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા-યો ભિક્ષુસ્ત્રિભિર્વસ્ત્રૈઃ પર્યુપિતઃ પાત્રચતુર્થૈઃ, તસ્ય સ્વલુ નો એવં ભવતિ-  
ચતુર્થ વસ્ત્રં યાચિષ્યે, સ યથૈપળીયાનિ વસ્ત્રાણિ યાચેત્, યથાપરિગૃહીતાનિ વસ્ત્રાણિ  
ધારયેત્, નો ધાવેત્, નો રજ્જયેત્, નો ધૌતરક્તાનિ વસ્ત્રાણિ ધારયેત્, અપરિકુચ્ચ-  
માનઃ ગ્રામાન્તરેણ અવમચેલિક્કઃ, એતત્સ્વલુ વસ્ત્રધારિણઃ સામગ્યમ્ ॥ મૂ૦ ૧ ॥

ટીકા-‘યો ભિક્ષુ’-રિત્યાદિ, યો મુનિઃ પાત્રચતુર્થૈઃ=વસ્ત્રત્રયાતિરિક્તં ચતુર્થ  
પાત્રં યત્ર તાનિ, તૈઃ પાત્રચતુર્થૈઃ ત્રિભિર્વસ્ત્રૈઃ-કાર્પાસિકે દ્વે, તૃતીયમૌર્ણિકં કમ્બ-  
લાદિકમ્, એતત્રયમેવ વસ્ત્રં તેષાં કલ્પતે, તત્ર શીતપ્રારમ્ભે ચૈકં પ્રાવરણવસ્ત્રં સ  
મુનિર્ધારયેત્, તતોઽપ્યધિકશીતપીઠાયાં કમ્બલમુપરિ ધારયેત્, એતેન કમ્બલગત-  
વાહ્યાચ્છાદનતા વોધ્યા ।

સે અપને પ્રાણોંકો છોડુ દે પરન્તુ વે શીલ-બ્રહ્મચર્ય મહાવ્રત-કા ભક્તિ ન  
કરે, ક્યોં કિ બ્રહ્મચર્યકે અભાવમેં ઉસકા મરણ નિંદિત હૈ, ઇસ વાતકો  
કહતે હુણ સૂત્રકાર આદિમેં શીતસ્પર્શકે પ્રસંગ સે વસ્ત્રકી કલ્પનીયતા  
ઔર અકલ્પનીયતા સૂત્રદ્વારા પ્રકટ કરતે હૈ-‘જે ભિક્ષૂ’ इत्यादि ।

સ્થવિરકલ્પી મુનિ ત્રીન વસ્ત્ર (દો સૂતી એક ઝની કમ્બલ ) આદિ  
ઔર એક પાત્ર, ઇસ પ્રકાર વસ્ત્ર ઔર પાત્ર રખતે હૈ, ક્યોં કિ ઇતને હી  
વસ્ત્ર ઔર પાત્ર રખને કા ઉનકા કલ્પ હૈ । ઇનમેં શીતકાલકે પ્રારમ્ભમેં  
એક હી ઓઢનેકા વસ્ત્ર વે રખતે હૈ । જબ અધિક શીત પડને લગતી હૈ  
તો વે દ્વિતીય વસ્ત્ર હી ઓઢનેકે લિયે રખ લેતે હૈ, ઔર હી અધિક

અભાવથી એનુ મરણુ નિંદિત છે આ વાત ઠહેતા સૂત્રકાર ઠડીના પ્રસંગમા  
વસ્ત્રની કલ્પનીયતા અને અકલ્પનીયતા સૂત્રદ્વારા પ્રગટ કરે છે-‘જે ભિક્ષૂ’ इत्यादि  
આ સ્થવિરકલ્પી મુનિ ત્રણુ વસ્ત્ર જેમા જે સુતરાઉ અને એક કમ્બલ વગેરે  
અને એક પાત્ર આ પ્રકારના વસ્ત્ર અને પાત્ર રાખે છે કેમ કે એટલા જ વસ્ત્ર અને  
પાત્ર, રાખવાનો એનો કલ્પ છે આમા ઠડીના પ્રારભમા એક જ ઓઢવાનુ વસ્ત્ર રાખે  
છે ન્યારે ઠડી વધુ પ્રમાણમા પડવા લાગે ત્યારે બીજુ વસ્ત્ર પણ ઓઢવા માટે  
રાખી લે છે. ખુબ જ પ્રમાણમા ઠડી પડવા લાગે ત્યારે એક કમ્બલ પણ રાખી



एतैर्वस्त्रैः पर्युपितः=व्यवस्थितो मिष्टु-संयतो भवति, तस्य=पूर्वोक्तस्य  
 भिन्नाभेनस्यमध्यवसायः खलु=निश्चयेन न भवति-मम कल्पेन=कल्पप्रयरूपेण  
 न शीतापगमो भवति तदर्थमह चतुर्थे वस्त्रं याचिष्ये। मध्यवसायस्य  
 प्रतिषेधेन चतुर्थवस्त्रयाचनं तु सर्वथा द्वेष्यमेवेति दर्शितम्। यदि वस्त्र  
 त्रितयं न सम्बधान् शीतकालस्य सम्प्राप्तो भवेत् तदा तत् कल्पनीयं याचेत्  
 भिक्षुरिति दशयति-‘स’ इत्यादि-स=मिक्षु यथैषणीयानि वस्त्राणि मूल्यता  
 प्रमाणतश्चोत्कर्षापरिहृतान्यपरिकर्माणि याचेत्, एवं स एव यथापरिगृहीतानि  
 =यथारूपप्राप्तानि श्वेतान्यव वस्त्राणि धारयत्, किन्तु तानि वस्त्राणि नो धावेत्-भा  
 ठण्ड पढ़ने पर वे एक कम्पल भी लेते है, जिससे शीतजन्य बाधा उन्हें  
 पाषित न कर सके।

इन वस्त्रोंसे व्यवस्थित-युक्त जो साधु होता है। उसके चित्तमें  
 निश्चयसे इस प्रकारका मध्यवसाय नहीं होता है कि-मेरा इस  
 वस्त्रत्रय रखनेरूप कल्पसे शीतका निवारण नहीं होता है इसलिये चौथे  
 वस्त्रकी याचना करू। जब सूत्रकारने चौथे वस्त्रकी याचना करनेरूप  
 मध्यवसायका ही प्रतिषेध किया है तो उससे यह बात स्पष्ट हो जाती  
 है कि वे चतुर्थ वस्त्रकी याचना करेंगे ही कैसे?—यह याचना तो सर्वथा  
 त्याग्य ही है, हां इतना हो सकता है कि उसके पास यदि वे पूर्वोक्त तीन  
 वस्त्र नहीं हैं और शीतकाल आ चुका है तो वे अपने लिये कल्पनीय ही  
 वस्त्रोंकी याचना करेंगे, अकल्पनीय की नहीं, यही बात “से” इत्यादि  
 सूत्रांश द्वारा प्रकट की है। वह मिष्टु यथैषणीय-प्रमाणसे एवं मूल्यसे  
 जो उत्कर्ष और अपकर्ष रहित हैं ऐसे अपरिचर्य वस्त्रोंकी ही याचना कर  
 सकते हैं। तथा याचना समयमें जो वस्त्र जिस रूपमें मिले हैं उसी

वे छे नेधी ङीने उपद्रव नहि थाय

आ वस्त्रोश्च व्यवस्थित-युक्त ने साधु होय छे तेना द्विसम निश्चयधी  
 आ प्रधारनेो मध्यवसाय बतेो नधी के भास-आ वस्त्रत्रय राजवाङ्म  
 कल्पधी ङीनेो निवारणु यतेो नधी आधी थोथा वस्त्रनी याचना करेँ न्यारे  
 सूत्रकारे थोथा वस्त्रनी याचना कस्वाङ्म मध्यवसायनेो / निषेध करेँछ छे  
 तेो आधी जे वात स्पष्ट यर्ष जाय छे के जे थोथा वस्त्रनी  
 याचना करे पणु कर्ष हीते ?—जे याचना तो ग्रह या त्याग्य छे जेटनु कर्ष  
 शके छे के जेनी पास जे पूर्वोक्त त्रय वस्त्र न डोम जने ङी शत्रु यर्ष अर्ष होय  
 तेो ते पीतने भाटे कल्पनीय वस्त्रानी व याचना करेँ आ कल्पनीयनी नही आ  
 वात से धियादि सूत्रांशधी प्रकट कस्वाभां आवेक्ष छे ते मिष्टु यथैषणीय-

सुकोदकेनापि न प्रक्षालयेत्, नापि रञ्जयेत्=केशरहारिद्रादिना पीतादिरागरञ्जितानि न कुर्यात्, किं च 'धौत-रक्तानि' पूर्वं धौतानि=प्रक्षालितानि पश्चाच्च रक्तानि धौतरक्तानि वस्त्राणि नो धारयेत् तेन गृह्णारादिभावसम्भवात् । अपि च स ग्रामान्तरेषु विहरन् तस्करादिभयेन मार्गं वस्त्राणि अपरिकुञ्चमानः=न परिगोपयन्-मूल्यप्रमाणादिना हीनत्वादुज्झितधर्मकत्वेनागोपनीयान्येव मुनीनां वसनानि भवन्तीति कक्षपात्रादिषु तानि न प्रच्छन्नानि कुर्वन्नित्यर्थः, अवमचेलिकः=अग्रमं मूल्यतः प्रमाणतश्च न्यूनं च तत् चेलं जीर्णमलिनवस्त्रम्=अवमचेलं, तदस्यास्तीति अवमचेलिकः=हीनजीर्णमलीमसवसनवान् सन् मुनिर्विहरेत्, एतत् खलु पूर्वोक्तमेव नान्यत्, वस्त्रधारिणः साधोः सामर्थ्यं=पात्रचतुर्थवस्त्रत्रयादिरूपं सामर्थ्यमस्ति ॥ सू० १ ॥

रूपमें वे श्वेत वस्त्रोंका उपयोग कर सकते हैं । अर्थात् याचना समयमें श्वेत वस्त्र ही लेते हैं और उन्हें वे उसी रूपमें रख कर अपने काममें ला सकते हैं । उन्हें ये प्रासुक पानीसे धो भी नहीं सकते हैं और न हरिद्रा केशर आदि पीले रंगसे रंग ही सकते हैं, क्यों कि ऐसे वस्त्रोंके रखनेसे शृङ्गारका आविर्भाव होता है। जो पहिले धोये गये हों और पीछे रंगे गये हों वे धौत-रक्त वस्त्र हैं। ग्रामान्तरों में विहार करते समय ये वस्त्रोंको चौरादिकके भयसे कक्षा और पात्रादिकों में छुपानेकी भावना न रखे, क्यों कि मुनियों के वस्त्र मूल्यसे और प्रमाण आदि से हीन ही होते हैं, तथा सामान्य दशामें रहते हैं अतः ये अगोपनीय ही होते हैं, इस लिये इन्हें छिपाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये । मूल्य एवं प्रमाणसे हीन वस्त्र अवमचेल कहलाता है, ये जिसके पास होते हैं अर्थात् ऐसे वस्त्रको

प्रमाणार्थी अथवा मूल्यार्थी के उत्कर्ष अने अपकर्ष रहित थे अथवा अपरिदर्भ वस्त्रोनीज याचना करी शके थे तथा याचना समये के वस्त्र के रूपमा भणे अथवा रूपमां ते श्वेत वस्त्रोना उपयोग करे अर्थात् याचना समये सङ्केत वस्त्र न ले थे अने तेने अथवा रूपमा राणी पोताना काममा लक्ष शके थे अने अथवा धौत शकता नथी तेम डलदर केशर के तेवा पीणा रगथी रगी शकता नथी केम के अथवा वस्त्रो राणवाथी शृंगारने आविर्भाव अनी नथ्य थे के पडेला धौवाया डोय अने पाछणथी रगवामा आवे ते धौत-रक्त वस्त्र थे गामडाअथवा विहार करती वषते अोर वगेरेथी वस्त्रो अोरार्थ नवाना लयथी वस्त्रोने कक्षा के पात्रोमां छुपाववानी कोशिश न करवी जेथ अथवा, केम के मुनि-अनां वस्त्र मूल्यार्थी अने प्रमाणार्थी हीन न डोय थे तेम सामान्य दशाना डोय थे, आथी अथवा अगोपनीय न डोय थे आ माटे अने छुपाववानी कोशिश न करवी जेथ अथवा मूल्य अने प्रमाणार्थी हीन वस्त्र अवमचेल कडेवाय थे. आ

एतैर्वस्त्रैः पर्युपितः=व्यवस्थितो मिष्टु-संपतो भवति, तस्य=पूर्वोक्तस्य  
 मिष्टोभेनत्येषमभ्यवसाय स्वच्छ=निश्चयेन न भवति-मम कल्पेन=वस्त्रप्रकरणेन  
 न क्षीतापगमो भवति तदर्थमहं चतुर्यं वस्त्रं याचिष्ये। मध्यवसायस्य  
 प्रतिषेधेन चतुर्यं वस्त्रयाचनं तु सर्वथा हेयमेवेति दर्शितम्। यदि पक्ष  
 त्रितयं न सम्प्रधान् क्षीतकालश्च सम्प्राप्तो भवेत् तदा तत् कल्पनीयं याचेत्  
 भिक्षुरिति दक्षयति-‘स’ इत्यादि-स=मिक्षुः ययैपणीयानि वस्त्राणि मूल्यता  
 प्रमाणतश्चोत्कर्षापर्यपरहितान्यपरिकर्माणि याचेत्, एवं स एव यथापरिगृहीतानि  
 व्ययारूपप्राप्तानि श्वेतान्येव वस्त्राणि धारयत्, किन्तु तानि वस्त्राणि नो धावेत्-श-  
 ठण्ड पढ़ने पर वे एक कम्पल मी लेते है, जिससे शीतजन्य वाधा उन्हें  
 बाधित न कर सके।

इन वस्त्रोंसे व्यवस्थित-युक्त जो साधु होता है। उसके विलम्बमें  
 निश्चयसे इस प्रकारका अभ्यवसाय नहीं होता है कि-मेरा इस  
 वस्त्रत्रय रखनेरूप कल्पसे शीतका निवारण नहीं होता है इसलिये चौथे  
 वस्त्रकी याचना करूं। जब सूत्रकारने चौथे वस्त्रकी याचना करनेरूप  
 अभ्यवसायका ही प्रतिषेध किया है तो उससे यह बात स्पष्ट हो जाती  
 है कि वे चतुर्यं वस्त्रकी याचना करेंगे ही कैसे?—यह याचना तो सर्वथा  
 त्याग्य ही है, हां इतना हो सकता है कि उसके पास यदि वे पूर्वोक्त तीन  
 वस्त्र नहीं हैं और शीतकाल आ चुका है तो वे अपने लिये कल्पनीय ही  
 वस्त्रोंकी याचना करेंगे, अकल्पनीय की नहीं, यही बात “से” इत्यादि  
 सूत्रांश द्वारा प्रकट की है। वह मिष्टु ययैपणीय-प्रमाणसे एवं मूल्यसे  
 जो उत्कर्ष और अपकर्ष रहित हैं ऐसे अपरिकर्म वस्त्रोंकी ही याचना कर  
 सकते हैं। तथा याचना समयमें जो वस्त्र जिस रूपमें मिले हैं उसी

हे ठे नेधी ढीने उप्रव नदि वाच

आ वस्त्रोभी व्यवस्थित-युक्त ने साधु होय छे, तेना विलम्ब निश्चयभी  
 आ प्रकारने अभ्यवसाय यतो नधी के भाउ-आ वस्त्रत्रय राखवाइय  
 रूपभी ढीने निवारण यतो नधी आभी सोधा वस्त्रनी याचना करूं न्यारे  
 सूत्रकारे सोधा वस्त्रनी याचना करवाइय अभ्यवसायने न निषेध करे छे  
 तो आभी के बात स्पष्ट यथं ज्ञाय छे के के सोधा वस्त्रनी  
 याचना करे पणु कर्ष रीते?—जे याचना तो सर्वथा त्याग्य न छे ओटतुं कर्ष  
 शके छे के केनेनी पासे के पूर्वोक्त त्रय वस्त्र न डोय जने ढी शङ्क यथं ज्ञाय छे  
 तो ते पातने भाटे कल्पनीय वस्त्रोनी न याचना करे, अकल्पनीयनी नही आ न  
 बात से इत्यादि सूत्रांशधी प्रकट करवाभां आवे छे ते भिक्षु ययैपणीय-

मुकोदकेनापि न प्रक्षालयेत्, नापि रञ्जयेत्=केशरहारिद्रादिना पीतादिरागरञ्जितानि न कुर्यात्, किं च 'धौत-रक्तानि' पूर्वं धौतानि=प्रक्षालितानि पश्चाच्च रक्तानि धौतरक्तानि वस्त्राणि नो धारयेत् तेन गृह्णारादिभावसम्भवात् । अपि च स ग्रामान्तरेषु विहरन् तस्करादिभयेन मार्गं वस्त्राणि अपरिकुञ्चमानः=न परिगोपयन्-मूल्यप्रमाणादिना हीनत्वाद्दुज्जितधर्मकत्वेनागोपनीयान्येव मुनीनां वसनानि भवन्तीति कक्षपात्रादिषु तानि न प्रच्छन्नानि कुर्वन्नित्यर्थः, अवमचेलिकः=अग्रं मूल्यतः प्रमाणतश्च न्यूनं च तत् चेलं जीर्णमलिनवस्त्रम्=अवमचेलं, तदस्यास्तीति अवमचेलिकः=हीन-जीर्णमलीमसवसनवान् सन् मुनिर्विद्वरेत्, एतत् खलु पूर्वोक्तमेव नान्यत्, वस्त्रधारिणः साधोः सामर्थ्यं=पात्रचतुर्थवस्त्रत्रयादिरूपं सामर्थ्यमस्ति ॥ मृ० १ ॥

रूपमें वे इवेत वस्त्रोंका उपयोग कर सकते हैं । अर्थात् याचना समयमें इवेत वस्त्र ही लेते हैं और उन्हें वे उसी रूपमें रख कर अपने काममें ला सकते हैं । उन्हें ये प्रासुक पानीसे धो भी नहीं सकते हैं और न हरिद्रा केशर आदि पीले रंगसे रंग ही सकने हैं, क्योंकि ऐसे वस्त्रोंके रखनेसे शृङ्गारका आविर्भाव होता है। जो पहिले धोये गये हों और पीछे रंगे गये हों वे धौत-रक्त वस्त्र हैं। ग्रामान्तरों में विहार करते समय ये वस्त्रोंको चौरादिकके भयसे कक्षा और पात्रादिकों में छुपानेकी भावना न रखे, क्योंकि मुनियोंके वस्त्र मूल्यसे और प्रमाण आदि से हीन ही होते हैं, तथा सामान्य दशामें रहते हैं अतः ये अगोपनीय ही होते हैं, इस लिये इन्हें छिपाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये । मूल्य एवं प्रमाणसे हीन वस्त्र अवमचेल कहलाता है, ये जिसके पास होते हैं अर्थात् ऐसे वस्त्रको

प्रमाण्थी अथवा मूल्यथी के उत्कर्ष अने अपकर्ष रहित छे अथवा अपरिकर्भ वस्त्रोनीय याचना करी शक्ये छे तथा याचना समये के वस्त्र के रूपमा भणे अथवा रूपमा ते श्वेत वस्त्रोना उपयोग करे अर्थात् याचना समये संशुद्ध वस्त्र न ले छे अने तेने अथवा रूपमा राणी पोताना काममा लक्ष्य शक्ये छे अने अथवा धौत शक्यता नथी तेम ललहर केशर के तेवा पीणा रगथी रगी शक्यता नथी केम के अथवा वस्त्रो राभवथी शृंगारने आविर्भाव अनी नय छे के पडेला धोवाया डोय अने पाछणथी रगवामा आवे ते धौत-रक्त वस्त्र छे गामडाअथवा विहार करती वभते थोर वगेरेथी वस्त्रो थोराथ नवाना लयथी वस्त्रोने कक्षा के पात्रोमा छुपाववानी कोशिश न करवी लेछअ, केम के मुनि-अथवा वस्त्र मूल्यथी अने प्रमाण्थी हीन न डोय छे तेम सामान्य दशाना डोय छे, अथवा अथवा अगोपनीय न डोय छे आ माटे अने छुपाववानी कोशिश न करवी लेछअ मूल्य अने प्रमाण्थी हीन वस्त्र अवमचेल कहेवाय छे आ

મુનિઃ શ્રીતઽતિકાલે ક્રમેણ તાન્યપિ વસનાનિ પરિત્યજેદિતિ ર્શ્વપિ-  
'અહ પુણ' इत्यादि ।

મૂલ્ય—અહ પુણ એ જાણિજ્ઞા ઉવાહકતે સ્વલ્પ હેમતે  
ગિમ્હે પદિવન્ને અહાપરિજુન્નાઈ વરથાઈ પરિટ્ટવિજ્ઞા, અદુવા  
સતરુત્તરે અદુવા યગસાહે અદુવા અવેલે લાઘવિય આગમમાણે  
તવે સે અભિસમન્નાગપ્ ભવઈ ॥ સૂ૦૨૧ ॥

છાયા—અય પુનરેવં જાનીયાત્ ઉપાતિકાન્તઃ સ્વલ્પ હેમન્તો પ્રીષ્ઠઃ પ્રતિપન્નઃ  
પયાપરિમીર્ણાનિ વન્નાણિ પરિષ્ઠાપયેત્, અયથા સાન્તરોષરા, અયથા અવમવેષઃ,  
અયથા એકસ્રાટ, અથવા અવેસ, સામવિકમાગમયન્, ઇપસ્તસ્યામિતમન્વાર્ગતં  
મ્ભવતિ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

જો ધારણ કરતા હૈ વહ અઘમવેલિક હૈ । ણેસે વસ્ત્ર મુનિયોકે પાસ  
હોતે હૈ, ક્યોં કિ વે હીન જીર્ણ ઓર શીર્ણ વસ્ત્રવાલે હોતે હૈ । વે હી  
તીન વસ્ત્ર ઓર એક પાત્ર વે, ધાર હી ઇન સ્વવિરકલ્પધારી સાધુઓકે પાસ  
સામગ્ર્ય-સાધન હૈ, અન્ય નહીં ।

ઢોરેસહિત મુંહપત્તી, રજોહરણ ઓર પહિરનેકા એક વસ્ત્ર ઇનકે  
સિવાય અન્ય વે પૂર્વોક્ત તીન વસ્ત્ર ઓર એક પાત્ર મુનિ રખતે હૈ, ઇનસે  
અધિક નહીં । ઇં ઇન તીનમેં વાહે તો વહ કમ્ હી કર સકતે હૈ પર  
ઈન્હેં પકા નહીં સકતે ।

અધિક યાચનાકી યાચના કરના હી જય મના હૈ તો ફિર  
વ્યતુર્થ વસ્ત્રકી વહ યાચના કર મી કૈસે સકતે હૈ ? વિહારમેં વહ મિહ  
કી તરફ વિચરે-વસ્ત્રોંકી તરફસે નિર્મિત રહે-કારણ કિ વે ઇતને

એની પાસે હોય છે એટલે જ્યાં વસ્ત્રને બે ધારણ કરે છે તે અવમવેલિક છે  
એવા વસ્ત્રો મુનિઓની પાસે હોય છે કારણ કે તે સ્વલ્પ શીર્ણ વસ્ત્રોવાળા  
હોય છે એ જ ત્રણ વસ્ત્ર અને એક પાત્ર, આ વ્યતુર્થ આ સ્વવિરકલ્પધારી  
સાધુઓની પાસે સામગ્ર્ય-સાધન છે બીજી નહીં ।

દોસ યાચે મુંહપત્તી, રજોહરણ અને પહેરવાનું વસ્ત્ર ઉપરાંત ત્રણ વસ્ત્ર  
અને એક પાત્ર મુનિ રાખી શકે છે એનાથી અધિક નહીં । આ ત્રણમાંથી બે  
તે યાચે તો બોધાઈ કરી શકે છે પણ વધારી શકતા નથી ।

વધુ વસ્ત્રોની યાચનાની યાચના કરવી એ પણ અધારે મના છે તો યોગ્ય  
વસ્ત્રની તે યાચના પણ કઈ સીતે કરી શકે છે વિહારમાં તે સિદ્ધની માફક  
વિચરે-વસ્ત્રોની યાચનામાં નિર્મિત રહે, કારણ કે તે એટલા મૂલ્યવાન

टीका—‘अथे’—त्यादि, स भिक्षुरथ पुनरेवं जानीयात् यत् उपातिक्रान्तः= व्यतीत. खलु हेमन्तः=शीतसमयः प्रतिपन्नः=प्राप्तश्च ग्रीष्मः=उष्णसमयः तदा स भिक्षुः यथापरिजीर्णानि वस्त्राणि परिष्ठापयेत्=परिहरेत्—यद् यद् जीर्णं संजातं तत्परित्यज्य सद्गरहितो विचरेदित्यर्थः । व्यतीते शीतसमये क्षेत्र—काल-पुरुषस्वभावेन शीतवाधाया सत्यां किं कर्तव्यमित्याह—‘ सान्तरोत्तरः ’ इत्यादि, अथवा=

अधिक मूल्य एवं प्रमाणमें अधिक होते ही नहीं हैं जो चौरोंके खनको विगाड़ सकें, हीन, जीर्ण और मलिन वे वस्त्र होते हैं—भलां चौर ऐसे वस्त्रोंको लेकर करेंगे ही क्या ? अतः इन वस्त्रोंको छुपानेकी साधुको किसी भी प्रकारकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये ॥सू०१॥

अब सूत्रकार ‘ शीतकाल व्यतीत हो जाने पर क्रम २ से उन वस्त्रों का भी साधुको परित्याग कर देना चाहिये ’ यह प्रदर्शित करते हैं—“अह पुण ” इत्यादि ।

वह भिक्षु इस बातको जाने कि—हेमन्तकाल व्यतीत हो चुका है और ग्रीष्मसमय आ गया है उस समय वह भिक्षु जीर्ण वस्त्रोंको परिष्ठापित कर देवे—जो जो जीर्ण हो चुके हों उन २ का परित्याग कर निःसंग वने । शीत समयके व्यतीत होने पर भी यदि क्षेत्र काल और पुरुषस्वभाव को ले कर शीतवाधा उपस्थित हो जाय तो वह क्या करे ? इस प्रकारकी आगङ्गाका उत्तर “सन्तरुत्तरे” इत्यादि सूत्रांशसे सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—‘अथवा ’ यह पद पक्षान्तर में है, वे कहते हैं—जब इस प्रकारकी परिस्थिति हो तो वह तीन वस्त्र सहित हो जावे, आन्तर—सूतके दो वस्त्र एवं उत्तर—एक प्रावरणरूप ऊनका कम्बल,

अने प्रमाणमां अधिक नहीं होता के थोरैनु मन ललयाय ओछी किंमतना दुकां अने मेला वस्त्र होय छे, थोर अने लछने करे पणु शु ? आथी आ वस्त्रोने छुपाववानी साधुअे कोठपणु प्रकारनी चेष्टा न करवी न्नेछअे. (सू०१)

इवे सूत्रकार ठडीनी मोसम पुरी थछ न्ता कमे कमे अे वस्त्रोना त्याग करी देवे न्नेछअे अेवु प्रदर्शित करे छे—‘अह पुण ’ इत्यादि

तेलिक्षु आ वात समने के हेमन्तकाण पूरे थछयुकेल छे अने ग्रीष्म समय आवी गथे छे, आ वअते ते लिक्षु लुण्ण वस्त्रोना त्याग करे—ने ने लुण्ण थछ गथा होय अेना त्याग करी निःसंग अने. ठडीना समय व्यतीत थछ न्वा छता पणु क्षेत्र काण अने पुरुषस्वभावना कारणे ठडीना उपद्रव थछ नय तो ते शु करे ? आ प्रकारनी आशकाने उत्तर “सन्तरुत्तरे” इत्यादि सूत्रांशथी सूत्रकार स्पष्ट करे छे—“अथवा ” आ पद पक्षान्तरमां छे, तेओ कडे छे—न्यारे आ प्रकारनी परिस्थिति उली थाय तो ते त्रणु वस्त्र धारणु करी दे. आतर—

પ્રસાન્તરે સ સાન્તરોચરઃ માન્તરં=મુખવક્ત્રદ્વયમ્ ઉચરં=પ્રાવરણવસ્ત્ર, તામ્યા સરિતો વક્ત્રમ્પવાન્ મષેત્, શ્રીતાવાધયા ક્ષયિત્ શરીરમાચ્છાદયેત્, ક્ષયિષ્ઠ શ્રીતાવદ્વયા પાર્શ્વે સ્થાપયેત્ ન તુ તત્પરિત્પજેત્। અથવા સ અથમચેલઃ=મૂલ્યતઃ પ્રમાણતમ્ હીન-જીર્ણવસ્ત્રવાન્ મષેત્-કલ્પનીયેષુ ત્રિપુ વસ્ત્રેષુ મધ્યે વૈકપરિહારેઽ વક્ત્રદ્વયં પ્રાપે દિતિ માવ । અથવા શ્વનૈ શ્વનૈ શ્રીતાપગમે એકશ્ચાટકઃ દ્વિતીયવક્ત્રપરિત્યાગેનૈક-વક્ત્રપારી મષેત્ । અથવા સર્વથા શ્રીતાપગમે વૈકમપિ વક્ત્રં પરિહૃત્ય અચેલઃ=પ્રાવ-રણવક્ત્રરહિતો મષેત્। કેવલં સ્વદોરકમ્બુલવસ્ત્રિકારમોહરણજ્જાવસ્ત્રોપધિકઃ સન્ વિહરેત્।

इन सहित होनेका नाम सान्तरोत्तर है । क्षेत्र काल और पुरुषस्वभावकी अपेक्षासे यदि शीतकालकी याथा भाई हुई उसे ज्ञात हो तो वह साधु पूर्वोक्त दो वस्त्र सूतके और १ ऊनका कम्बल, इस प्रकार तीन वस्त्र रखे । जब शीतकी याथा उसे छोड़े तब तो यह उन्हें ओढ़ लेवे और यदि शीतयाथा न हो तो वह उन्हें पासमें ही रखे पर वस्त्रोंका त्याग न करे । अथवा वह अवमचेल रहे—हीन जीर्ण वस्त्र रखे । कल्पनीय तीन वस्त्रोंमें किसी एकके परित्यागसे दो वस्त्र रखे । शीत जैसेर व्यतीत हो जैसेर यह भी किसी एक द्वितीय वस्त्रका फिर त्याग करे और एक ही वस्त्र रखे। जब पिलकुल ही शीतकाल निकल जावे तब यह एक भी रखे हुए वस्त्रका परित्याग कर देवे और इस प्रकार यह प्रावरण वस्त्र से रहित हो जावे । पासमें केवल एक यागेसहित मुम्बवस्त्रिकार रजोहरण और लज्जा निवारणार्थ एक पहननेका वस्त्र ही रखे ।

સૂતરના બે વસ્ત્ર તેમજ ઉત્તર-એક પ્રાવરણરૂપ બિનની કબલ, આ સહિત મવાનું નામ સાન્તરોચર છે । ક્ષેત્ર કાળ અને પુરૂષસ્વભાવનાં અપેક્ષાથી બે ઠાંડીની યાથા આવેલી જણાય તો તે સાધુ પૂર્વોક્ત બે વસ્ત્ર સૂતરનાં અને એક ઉની કમ્બલ, આ પ્રકારે ત્રણ વસ્ત્ર રાખી લે. જ્યારે ઠાંડીને ઉપદ્રવ તેને લાગે ત્યારે તે બેને બોલી લે. ઉપદ્રવ બોલે મતાં પોતાની પાસે સખે પણ વસ્ત્રોને ત્યાગ ન કરે. અથવા—તે અવમચેલ રહે-હલકાં જુગપ વસ્ત્ર રાખે કલ્પનીય ત્રણ વસ્ત્રો-માથી એકને પરિત્યાગ કરી બે વસ્ત્ર રાખે ઠાંડી બોલી મતાં આ બે વસ્ત્રોમાથી પણ કોઈ એક વસ્ત્ર તણ દે અને એક જ વસ્ત્ર રાખે, જ્યારે સપૂર્ણપણે ઠાંડી બોલી થઈ જાય ત્યારે રાખેલા એક વસ્ત્રને પણ તે ત્યાગ કરી દે. આ રીતે તે પ્રાવરણ વસ્ત્રથી રહિત બની જાય પોતા પાસે રહ્યા હોય સામેની એક મુદપત્તી એક રજોહરણ અને લજ્જા સામવવાનાં હેતુથી એક પહેરવાનું વસ્ત્ર, આટલું જ રાખે, બાકી કોઈ નહીં.

किमर्थं क्रमेणैकैकं वसनं परिहार्यमित्याह—‘लाघविक’—मित्यादि, ‘लाघ-  
विकं’ लघोर्भावो लाघवं तद् यस्यास्तीति लाघविकस्तं लाघविकं=स्वात्मानम्  
आगमयन्=सम्पादयन् भिक्षुः क्रमेण वसनं परिहरेत् । यद्वा—लाघविकं=देहोपकरणे  
कर्मणि च लघुताम् आगमयन्=सम्पादयन् स वसनं परिवर्जयेत् । तस्य=एतादृशस्य  
भिक्षोः एवं करणे तपः=कायक्लेशरूपम् अभिसमन्वागतं=प्राप्तं भवति कायक्लेशस्य  
तपोभेदत्वात्, तथा हि—“ पंचहिं ठाणेहिं समणाणं निग्गंथाणं अचेलगत्ते पसत्थे  
भवइ, तं जहा-अप्पा पडिलेहा १ वेसासिए रूवे, २ तवे अणुमाए, ३ लाघवे  
पसत्थे, ४ विउले इंदियनिग्गहे ॥ ” छाया-पञ्चभिः स्थानैः श्रमणानां निर्ग्रन्थानाम-  
चेलकत्वं प्रशस्तं भवति—अल्पा प्रतिलेखना १, वैश्वासिकं रूपं २, तपोऽनुमत ३,  
लाघवं प्रशस्तं ४, विपुल इन्द्रियनिग्रहः ५ । इति ।

मुनीनां वस्त्रलाघवेन प्रतिलेखनाऽल्पत्वं १ विश्वासपात्रत्वं २ तपःसद्भावः  
३ प्रशस्तलाघवं ४ प्रभूततरेन्द्रियनिग्रहत्वं ५ च भवति भावः ॥ मू०२ ॥

यह एकर वस्त्रके परिहारका जो यहां क्रम बतलाया है उसका मतलब  
केवल इतना ही है कि इन पूर्वाक्त तीन वस्त्रोंके रखनेसे आत्मामें लाघव  
नहीं आता है, मुनिजन आत्मामें लाघव लानेके ही अभिलाषी होते हैं  
अतः ज्यों २ इनका परित्याग होगा त्यों २ आत्मामें इनके हटनेसे इन  
संबंधी भारका भी अभाव हो जायगा । इस आत्मामें एक प्रकारका लाघव  
नामका गुण प्रकट होगा । इस प्रकारसे रहनेवाले उस पडिमाधारी स्थ-  
विरकल्पी भिक्षुके कायक्लेश नामक तप आचरित होता है । कायक्लेश  
यह बाह्य तपका एक भेद है, जैसे—“ पंचहिं ठाणेहिं ” इत्यादि, अर्थात्—  
अल्पवस्त्र रखनेसे पांच स्थानोंद्वारा निर्ग्रन्थ श्रमणोंका अचेलपना प्रशस्त

आ रीते ओक ओक वस्त्रने त्याग ने रीते अताववामा अवेद छे ओने  
मतलब इकट ओटलो न छे इ-ओ पूर्वोक्त त्रय वस्त्रो राणवाथा आत्माभा  
लाघव नहि आवे मुनिजनेने आत्मा मदा सतोषी अने कोठ पणु प्रकारनी  
आकाक्षा वगरने डोवो जेठ अे, आथी जेम जेम त्याग थतो रहे तेम तेम  
आत्माभा ओना दूर थवाथी अे सण धी लारने पणु अभाव थाय छे, अने ओथी  
आत्माभा ओक प्रकारने लाघव नामने गुणु प्रगट थाय छे, आ प्रकारथी रहेवावाणा  
ते पडिमाधारी स्थविरकल्पी भिक्षु कायक्लेश नामना तपने आचरनारा डोय  
छे कायक्लेश अे बाह्य तपने ओक लेद छे जेम—“ पंचहिं ठाणेहिं ” धन्यादि  
अल्प वस्त्र राणवाथी पाय स्थाने द्वारा निर्ग्रन्थ श्रमणोनु अवेदपायु प्रशस्त



સ્વમતિપરિકલ્પિતત્વનિરસનાયાદ-‘જમેય’ इत्यादि,

मूळम्-जमेय भगवया पवेइय तमेव अभिसमिच्छा सव्वओ  
सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिज्जा ॥ सू० ३ ॥

छाया—यदेतद् भगवता प्रवेदितं तदेवाभिसमेस्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्प-  
क्त्वमेव सममिजानीयात् ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘य’-दित्यादि, यत्=पूर्वोक्त तदेवत्सर्वं भगवता=महावीरेण प्रवेदितं=  
द्वादशपदी प्ररूपितम्, मुनिः तदव=पूर्वोक्तमव सर्वतः=सर्वप्रकारै सर्वात्मतया  
सकलात्ममाशेन अभिसमेस्य विचार्य=सम्यक्त्वमेव सममिजानीयात्=आसेवनपरि-  
श्रया सेवेत । यद्वा-‘समत्वमेव’-तिच्छाया, तेन समत्वमेव-सवेसाऽवेसावस्वयोः  
समानमाश्रम् सममिजानीयात् ॥ सू० ३ ॥

હોતા છે, જે પાંચ સ્થાન યે છે-૧ પ્રતિલેખના કી અલ્પતા, ૨ વિશ્વાસપાત્રતા,  
૩ તપને સદ્ભાવ, ૪ પ્રશસ્તલગ્નતા, ૫ પ્રભૂતતર ઈન્દ્રિયોંકી નિગ્રહતા ॥ સૂ० ૨ ॥

સૂત્રકાર અપને કથનમેં અપની મતિદ્વારા કલ્પિતતાકા નિષેધ કરનેકે  
લિયે કહતે છે-‘જમેય’ इत्यादि ।

જો કુછ ઊપર કહા ગયા છે ઘટ સય ભગવાન્ મહાવીરદ્વારા અપની  
પારહ પ્રકારકી સમાઓમેં પ્રરૂપિત હુઆ છે અતા મુનિ હસ પૂર્વોક્ત કથન  
કા સર્વ પ્રકારસે વિચાર કર હસે સત્પરૂપ સે હી જાને । અથવા “સમ  
તમેવ” કી છાયા “સમત્વમેવ” મી હોતી છે, હસકા અર્થ યહ છે કિ  
પૂર્વોક્ત કથન ભગવાન્ દ્વારા હી કથિત હુઆ છે, અતઃ મુનિ સચેલ ઓર  
અચેલ ઇન દોનોં અવસ્થાઓમેં સમાન ભાવકા આસેવનપરિજ્ઞાસે  
સેવન કરે ॥ સૂ० ૩ ॥

કાંચ છે તે પાંચ સ્થાન આ છે-૧ પ્રતિલેખનાની અલ્પતા, ૨ વિશ્વાસપાત્રતા,  
૩ તપને સદ્ભાવ, ૪ પ્રશસ્તલગ્નતા, ૫ પ્રભૂતતર ઈન્દ્રિયોંકી નિગ્રહતા (સૂ० ૨)

સૂત્રકાર આ કથનમાં પોતાની મતિ-અનુસાર કલ્પિતતાનો નિષેધ કરતાં  
કહે છે- ‘જમેય’ इत्यादि ।

જો કુછ ઉપર કહેવાઈ ગયું છે એ બધું ભગવાન મહાવીરદ્વારા પાર  
પ્રકારની સમાજોમાં પ્રરૂપિત થયેલ છે આથી મુનિ આ પૂર્વોક્ત કથનને સર્વ  
પ્રકારથી વિચાર કરી જાને અત્યહપથી જ જણે. અથવા “સમતમેવ” ની છાયા  
સમત્વમેવ” પણ કાંચ છે આનો અર્થ એ છે કે પૂર્વોક્ત કથન ભગવાનનું  
જ કહેલ છે આથી મુનિ સચેલ અને અચેલ આ બન્ને અવસ્થાઓમાં સમાન  
ભાવનું આસેવનપરિજ્ઞાથી સેવન કરે (સૂ० ૩)

शरीराशक्ततया मन्दाध्यवसाये सति किं कर्त्तव्यमिति-दर्शयति-‘ जस्स णं ’ इत्यादि ।

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—पुट्ठो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं अहियासित्तए, से वसुमं सव्वसमन्ना-गयपन्नाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरणयाए आउट्टे तवस्सिणो हु तं सेयं जमेगे विहमाइए तत्थवि तस्स कालपरियाए, सेऽवि तत्थ विअंतिकारए, इच्चेयं विमोहायतणं हियं सुहं खमं निस्सेयसं आणुगामियं—तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—स्पृष्टः खल्वहमस्मि नालमहस्मि शीतस्पर्श-मध्यासितुम्, स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेनाऽऽत्मना कश्चिदकरणतयाऽऽवृत्तस्त-पस्विनस्तदेव श्रेयो यदेको विहायआदिकं, तत्राऽपि तस्य कालपर्यायः, सोऽपि तत्र व्यन्तिकारकः, इत्येतद् विमोहायतनं हितं सुखं क्षमं निःश्रेयसमानुगामिकमिति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ यस्ये ’—त्यादि, यस्य=पूर्वोक्तस्य भिक्षोः=मुनेः खलु, एवं=वक्ष्यमा-णोऽध्यवसायो भवति, तमेवाह—अहं स्पृष्टः=रोगातद्धैः शीतादिना कामिन्युपसर्गेण वा पीडितोऽस्मि, शीतस्पर्शं=शीतजन्यदुःखविशेषं योपिदुपसर्गं भावशीतस्पर्शं वा अध्यासितुम्=अधिसोढुमहं नाल=न समर्थोऽस्मि । समुत्थिते च कामिन्युपसर्गे प्रतिकारान्तरविधानासमर्थः समयपरिपालको मुनिस्तदा किं कुर्यादित्याह—‘सवसु-

शरीर अशक्त होनेके कारण यदि अध्यवसायोमें मंदता आ जाय तो मोक्षार्थी मुनिको क्या करना चाहिये ? इसे सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘जस्स णं’ इत्यादि ।

जिस मुनिके इस प्रकारका वक्ष्यमाण अध्यवसाय होता है कि “मैं रोगोंके आतङ्कसे, शीत आदिके स्पर्शसे, अथवा भावशीत-कामिनीके उपसर्ग-से पीडित हूँ, मैं इस शीतजन्य दुःखविशेषको अथवा, भाव-शीतस्पर्शरूप कामिनीके उपसर्गको सहनेके लिये समर्थ नहीं हूँ” उस

शरीर अशक्त तथाथी ने अध्यवसायोमा म हता आवी नय तो मोक्षार्थी मुनिअे शु करवुं नेअये? आ वात सूत्रकार सूत्रद्वारा प्रदर्शित करे छे—‘जस्स णं’ इत्यादि.

ने मुनिमा आ प्रकारनो—वक्ष्यमाण अध्यवसाय होय छे छे—“हुँ रोगोना उपद्रवथी, ठडी वगेरेना स्पर्शथी, अथवा लावशीत-कामिनीना उपसर्ग—थी पीडित छु. हुँ आ ठडीना दुःख विशेषने अथवा लावशीतस्पर्शरूप कामिनीना उपसर्गने सहन

मान्' इत्यादि, सः=पूर्वोक्तविचारवान् कोऽपि=उपसर्गसहनासमः सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन=समुपलब्धहेयोपादयविशिष्टज्ञानवता, आत्मना=अन्त करणेन अस्मत्प्रवृत्त्या=उपसर्गप्रतीकारस्याकरणप्रतिज्ञया आवृतः=व्ययस्थितः वसुमान्=चारित्र्यमनो मुनिर्मर्षति । तादृशः किं कुर्यादित्याह-'तपस्विन' इत्यादि, यत् यस्मिन् काले स्त्रीमिसार्यमागतं मुनिं मोहयित्वा मुच्यता तं न मुञ्चति, सर्वयापसगपितुमिच्छन्त्यत्र तद्=तदा उपस्विनः=विरफालोपाजितसयमपर्यायस्य तपोधनस्यापसर्गाभिभवत्परि

समय वह मुनि कि जो चारित्र्यका पालक है एवं कामिनी आदिके उपसर्ग उपस्थित होने पर उसके अन्य प्रतिफार करनेमें असमर्थ है तोयया करे। इस का उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-वह मुनि जिसके ये पूर्वोक्त विचार हैं अपने अन्तःकरणसे कि जो समुपलब्ध हेय और उपादेयके विशिष्ट ज्ञानसे युक्त है उस आये हुए उपसर्गको अच्छी तरह अकरणनेसे सहन करे, अर्थात् मेरे ऊपर जो यह उपसर्ग स्त्री आदि द्वारा उपस्थित किया गया है मैं उसके अनुफल कभी नहीं होऊँगा-विषयादिको का सेवन इसके साथ कभी नहीं करूँगा चाहे प्राण भले ही निकल जायें, इस प्रकारकी अकरणपरिज्ञानसे युक्त होता हुआ अपने चारित्र्यरूप धन का रक्षक बने। इस प्रकारसे जब उसकी दृढ़ता होगी तो भिक्षाके लिये आये हुए उस मुनिको मोहित करनेके लिये उद्यत कोई भी स्त्री-कामिनी उसे वश करनेके लिये जब भरपूर चेष्टा करती है, उसके संयमरूपी रत्नको छूटनेके लिये वह कोई भी धनता उपाय नहीं छोड़ती है, अपना

करवाभां अस्मभवे धुं' के समर्थे ते मुनि के ने चारित्र्यना पावक के जाने कामिनी आदिना उपसर्गों उपस्थित कतां ज्येनी साभा प्रतिकार करवाभां अस्मभवे' के ते मुं करे। जाने उत्तर आपत्ता सूत्रकार कहे के के-जे मुनि जेना पूर्वोक्त विचार के पीताना अन्तःकरणसे के ने समुपलब्ध हेय जने उपादेयना विशिष्ट ज्ञानसे युक्त के जे आवेला उपसर्गने साथी शीते अकरणपद्धती सहन करे अर्थात् आरा उपर के आ उपसर्ग स्त्री आदि द्वारा उपस्थित करवाभां आवेला के के तेने अद्रव्य कदी पक्ष नहीं अनु-विषयादिके सेवन ज्येनी साथी कदि नकि कहे आके आरा प्राण भले निकली अथ आ प्रकारनी अकरणपरिज्ञानी मक्षम स्त्री पीताना चारित्र्यरूप धनना रक्षक बने, आ प्रकार जे ज्येनाभां द्रव्य होय तो भिक्षाने माटे आवेला जे मुनिने मोहित करवा तत्पर यथेव केध पक्ष स्त्री-कामिनी ज्येने वश करवा माटे अन्तःकरण भरपूर चेष्टा करे के ज्येना संयमरूपी रत्नने द्रव्य माटे ते केध पक्ष अनतो उपाय छोड़ती नहीं, अथवा केध निर्दोष

ष्णो केनाऽपि जनेन कामिन्या सह गृहे प्रवेश्य कृतनिरोधस्य ततो निःसरणोपाय-  
मलभमानस्य शीलभङ्गमत्तिच्छतो मुनेः, विहायआदिकं=वैहायसादिकं मरणं श्रेयः=  
प्रशस्तमस्ति । इत्थमुपसर्गाभिभवे सति स मुनिर्गले पाशवन्धनं विषभक्षणं जिह्वाक-  
र्षणमुपरिष्ठात् पतनं वा विधाय प्राणान् परित्यजेत्, न तु चारित्रं खण्डयेदिति पर-  
मार्थः । ममौत्सर्गिकैर्भक्तपरिज्ञेद्भितमरणपादपोपगमनरूपैर्मरणैः शरीरपरित्याग एव

कोई निर्लज्ज मनुष्य उस स्त्रीके साथ उस मुनिको कि जिसने बहुत काल  
संयमपर्यायकी अच्छी तरह कमाई की है, और यही तपरूपी धन ही  
जिसके पास एक सहारा है, एवं जो उपसर्गजन्य पराभवको सहनेमें  
असहिष्णु है उसको उस घरमें प्रवेश करा देता है और बाहिर नहीं  
निकलने देता है, इस अवस्थामें उस मुनिका कि जिसे वहांसे निकलने  
का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है, और जो अपने शीलके भंगसे डर  
रहा है, उसके लिये यही कर्तव्य मार्ग है कि वह उस समय वैहायस  
आदि मरण अंगीकार करे । अर्थात्—इस प्रकारके उपद्रव आने पर वह  
मुनि गलेमें फांसी लगा कर, विषका भक्षण कर या जिह्वाको  
आकर्षित (खींच) कर अपने प्राणों का विसर्जन कर देवे, यदि कोई  
उपाय उसे हाथ न आ सके तो वह ऊपरसे गिर कर भी मर जावे पर  
अपने अमूल्य प्राणप्यारे चारित्रकी चोरी अपनी आंखोंके समक्ष न होने  
देवे । यह विचार उस समय अवश्य करे कि—मुझे तो उत्सर्ग मार्ग  
ही अपने प्राणोंसे अधिक प्यारा था, मैं तो वही चाहता था कि मेरा मरण

मनुष्य ओ स्त्रीनी साथे ओ मुनिने के जेले धरुा काणथी सयम पर्यायनी सारी  
कमाणी करी छे अने ओ ज तपस्वी धनने जेनी पासे ओउ सहारे छे अने  
जे उपसर्गजन्य पराभवने सहेवाभां असहिष्णु छे अने ओ घरभां प्रवेश  
करावी छे अहार निकणवा हेता नथी. ओवी अवस्थाभां ओ मुनि के जेना त्यांथी  
निकणवाभा केछ उपाय नथी सूजतो अने जे पोताना शीलना ल गथी करी  
रहेल छे, अने भाटे ओ ज कर्तव्य मार्ग छे के ते ओ समये वैहायस आदि मरण  
अंगीकार करे अर्थात्—आ प्रकारने उपद्रव आववाथी ते मुनि गणामां दासी  
लगावी, विषनु लक्षण करी अथवा तो ललने जेथी काही पोताना प्राणुनु  
विसर्जन करी हे जे कोछ भीजे उपाय तेने न सूजे तो उपरथी पडीने  
पणु प्राणुनु विसर्जन करी हे गमे तेवी आपत्ति वर्ये पणु पोताना अभूद्व्य  
चारित्रनी चोरी पोतानी आपो सामे न थवा हे ओ समये आ विचार ते  
अवश्य करे के अने तो उत्सर्ग मार्ग भारा प्राणु करता पणु वधु प्यारे छे.

મેયાન્, પરન્તુ તેપાં ચિરકાલસામ્યતયા કાલક્ષેપાસનયોગ્યેઽસ્મિન્નવસરે ન સમ્મ-  
વોઽસ્તિ । ઉપસર્ગમ્મ સોદુમનર્હચારિભવિરાષકઃ સમુપસ્થિતસ્વસ્માત્સામ્પ્રતમાપવાદિ  
કમપિ વક્ષણનિપ્પાપ્ય વૈહાયસ—ગાર્દ્દપૃષ્ઠાસ્થ્યં ઘાલમરણ પચ્છિતમરણમ્બેતિ માવાઃ ।

નત્તુ વૈહાયસગાર્દ્દપૃષ્ઠાદિરૂપવાલ્મરણે સત્યનર્યાધિગમસ્પાગમે દર્શન મયા—

‘મરુપરિચ્છા, ઇક્ષિતમરણ, ઓર પાદપોપગમન, इन तीन मरणोंमें से किसी  
एक मरणकी धाराघनासे होता, पर हाय ! मुझ बुभौंगीके लिये यह जीवन  
का सुवर्ण अवसर देखनेके लिये नहीं मिला । इस प्रकार आत्माकी निंदा  
करता हुआ वह साधु यह देख कर कि—“इन मरणोंका समय चिरकाल  
साध्य है, और यह समय अथ कालक्षेप करने योग्य नहीं है, इनकी  
सम्माधना भी यहाँ कैसे हो सकती है, यह चारिअधिध्वंसक उपद्रव जो  
धुनिवार आ कर उपस्थित हो गया है इस लिये इस समय यही अपवाद  
मार्गरूप मरण मेरे लिये पंचितमरण है, वैहायस, गार्दपृष्ठ आदि मरण  
घालमरण हैं, परन्तु मेरा काम तो इस समय इनसे ही साध्य होता है  
अतः इन्हें ही पंचितमरण मान कर मैं अपना काम कर लूँ, इसीमें मेरा  
कल्याण है, वैहायस आदि मरण स्वीकार करे ।

શાક્ટ—વૈહાયસ ઓર ગાર્દ્દપૃષ્ઠરૂપ ઘાલમરણસે પ્રાણોંકો છોડનેવાસોં  
કો અનર્થકી પ્રાપ્તિ ધાગમમ્મં યત્તલાઈ છે, જૈસે—

હું તો જો શાકું હું કે મારું મરણ બહુપરિશ્રમ, ઇતિવ મરણ અને  
પાદપોપગમન, આ ત્રણ મરણમાંથી જોકે મરણની આસપનાથી શાય,  
પરંતુ માસ જેવા દુભોંગીને માટે છવનને આ સુવર્ણ અવસર જોવાને ન મળે,  
આ રીતે આત્માની નિંદા કરતાં કરતાં તે સાધુ આ જોઈને—“જો મરણનો સમય  
ચિરકાલસાધ્ય છે, અને આ સમય હવે કાલક્ષેપ કરવા યોગ્ય નથી તો જોની  
સલાવના પણ કેમ થઈ શકે ? આ વ્યસ્તિને નાશ કરનાર ઉપદ્રવ આનીને  
પડ્યો છે, જો કાણ્ણે મારે માટે આ સમયે અપવાદમાર્ગરૂપ મરણ પચ્છિત  
મરણ છે વૈહાયસ, ગાર્દ્દપૃષ્ઠ નજેર મરણ બાળ—મરણ છે મારું કામ તો આ  
સમયે આથી જ સાધ્ય બને છે આથી જાને જ પચ્છિતમરણ માનીને હું મારું  
કામ કરી લઉં આમાં જ મારું કલ્યાણ છે.” વૈહાયસ આદિ મરણ સ્વીકાર કરે.

શાક્ટ—વૈહાયસ અને ગાર્દ્દપૃષ્ઠરૂપ બાળમરણથી પ્રાણ ઉત્કલાવવાને આ  
ધની પ્રાપ્તિ ધવાતુ બાગમમાં બતાવેલ છે જેમ—

“इच्छेएणं वालमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ जाव अणाइयं च णं अणदयग्गं चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो भुज्जो परियट्ठइ” इति । छाया—इत्येतेन वालमरणेन म्रियमाणो जीवो अनन्तैर्नैरयिकभवग्रहणैरात्मानं संयोजयति यावदनादिकं चानवदग्रं चातुरन्तं संसारकान्तारं भूयो भूयः परिवर्तते” । इति प्रतिपिद्धत्वेन कथं निन्दितमाचरतीति चेदाह—मैथुनं हि सकलस्याऽप्यधर्मस्य मूलं महादोषपुञ्जभूतम्, तेन च निखिलव्रतभङ्गो भवति, तथा चोक्तं भगवता—

“मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं ।”

तम्हा मेहुणसंसग्गं निग्गंथा वज्जयंति णं” ॥ १ ॥ (इति दशवै० अ० ६)

छाया—मूलमेतदधर्मस्य, महादोषसमुच्छ्रयम् ॥

तस्मान्मैथुनसंसर्गं, निर्ग्रन्था वर्जयन्ति तम् ॥ १ ॥ इति ।

“इच्छेएणं वालमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं णेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ जाव अणाइयं च णं अणवयग्गं चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो भुज्जो परियट्ठइ” इति ।

अर्थात्—इस वालमरणसे मरनेवाला जीव अनन्त वार अपनी आत्माको नरकमें डालता है और वह अनादि अनन्त संसारमें परिभ्रमण करता है, इत्यादि, अतः जब आगममें इसका निषेध है तो वह उस निन्दित वालमरणका आचरण क्यों करता है ?

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्यों कि मैथुन सकल अधर्म का मूल है और अनेक दोषोंका पुञ्ज है । इसके सेवनसे समस्त व्रतोंका भंग होता है । इस प्रकार दशवैकालिकके अध्ययन छट्टेमें कहा है, जैसे—“मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं” इत्यादि । यह मैथुन कर्म अधर्म

इच्छेएणं वालमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं णेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ जाव अणाइयं च णं अणवयग्गं चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो भुज्जो परियट्ठइ” इति ।

अर्थात्—आ आलमरणथी मरणावाणा एव अनन्तवार पोताना आत्माने नरकमां नाणे छे, अने ते अनादि अनन्त संसारमा परिभ्रमणु करी करे छे । इत्यादि । आथी आगममा अनेा निषेध छे तो पछी आवु आणमरणु निन्दित आचरणु केम करे छे ?

उत्तर—अेवु न कडेवु लेछेअे । केम के मैथुन सकल अधर्मनुं मूण छे अने अनेक दोषोनी पुंज छे । अेना सेवनथी समस्त व्रतोनी भंग थाय छे आ प्रकारे दशवैकालिकना छट्टा अध्ययनमा कडेल छे जेभ—“मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं” इत्यादि । अे मैथुन कर्म अधर्मनुं मूण अने महादोषोनी आणु छे,

अतस्तत्सेवनापेक्षयाऽऽपवादिकबालमरणमपि पण्डितमरणमेवेत्यस्याप्यत्र प्रतिपादितत्वात् । तदेव दर्शयति—‘तत्राऽपि’—त्यादि, तत्राऽपि=उपसर्गाभिभवसरे वैश्वसर्गाद्गार्दपृष्ठादिमरणेऽपि तस्य=समुपस्थितोपसर्गाभिभवस्य मुनेः कालपर्याय परचिरकालं समयपरिरक्षणं विदधतो मुनेर्यथा द्वादशवार्षिकसंश्लेषनाधिधिना शरीरकृष्णरणपूर्वकाऽनश्नरूपेण कालपर्यायेण भक्तपरिज्ञादिमरण गुणाय भवति, तत्र तदा तस्य वैहायस-गार्दपृष्ठमरणमपि गुणायैवेत्याश्रय । यः कोऽपि बहुमिरपि कालपर्यायैर्यावन्ति कर्माप्यपनयति तावन्ति च कर्माणि स स्वोक्ते नैव कालेन ह्रीका मूल और महादोषों की खान है। ऐसा समझ कर ही निर्ग्रन्थ उसके सेवन नहीं करते हैं।

इसलिये उसके सेवनकी अपेक्षा अपवादस्वरूप बाल मरण भी पण्डितमरण ही है, यह बात यहाँ पर प्रतिपादित की गई है। इसी विषयको सूत्रकार दिखलाते हैं—‘तत्पवि’—इत्यादि, उपसर्गजन्य अभिभवके समयमें वैहायस और गार्दपृष्ठ आदि बालमरण होने पर भी जैसे चिरकाल तक समयकी रक्षा करनेवाले मुनिके लिये बारह वर्ष की संश्लेषनाधिधिसे शरीरको कृश करनेपूर्वक अनश्नरूप कालपर्यायसे भक्तपरिज्ञादि मरण लाभदायक होता है उसी प्रकार उपसर्गजन्य अभिभव जिस मुनिके उपस्थित हो चुका है उस मुनिके लिये वैहायस और गार्दपृष्ठ मरण भी लाभदायक होता है। जो कोई भी अव्यती प्राणी बहुत कालपर्यायों द्वारा जितने कर्मोंका नाश करता है उतने कर्मोंका नाश वह मुनि थोड़ेसे ही कालमें कर देता है। इसी अर्थको प्रकट करते हुए

येषु समलने च निर्ग्रन्थ येषु सेवनं कर्तव्यं नही।

अथ शास्त्रे येना सेवननी अपेक्षा अपवादस्वरूप बालमरण पक्ष पण्डितमरण च उ चो वात पक्ष आदि प्रतिपादित कर्वाभां आवी उ अ विषयने सूत्रकार जतावे उ— तत्पवि’ इत्यादि।

उपसर्गजन्य अभिभवना समये वैहायस अने गार्दपृष्ठ आदि बालमरण धर्माधी पक्ष नेम चिरकाल सुधी अवमनी रक्षा कर्वावाणा मुनिने भाटे पार वर्षनी संश्लेषनाधिधिशी शरीरने कृश-नशु कर्वाणी साथ अनश्नरूप कालपर्यायशी भक्तपरिज्ञादिमरण लाभदायक माय उ चो च शीते उपसर्गजन्य अभिभव ने मुनिना उपर आवी पडे उ चो मुनि भाटे पक्ष वैहायस अने गार्दपृष्ठ मरण पक्ष लाभदायक अने उ नेम कोई अव्यती प्राणी वाणा कालने अते कालपर्यायोद्देश्य के लिये कर्मोंने नाश करी शके उ चो तत्पवि च कर्मोंने नाश से

करोतीति हृदयम् । तमेवार्थं प्रकटयन्नाह—‘सोऽपी—’त्यादि, सोऽपि=वैहायसादि-  
कारी ‘अपि’ शब्देन केवलभक्तपरिज्ञादेरानुपूर्व्या न कारकः, इत्यर्थो द्योत्यते,  
तत्र वैहायसादिमरणे ‘व्यन्तिकारकः’ वि=विशेषेण अन्तिः—व्यन्तिः=अन्तक्रिया,  
तस्याः कारकः व्यन्तिकारक=संसारान्तकारको मुनिर्भवति, अत एव तस्य  
तदा वैहायसादिमरणमप्यौत्सर्गिकमेवेत्यभिप्रायः । उपसंहरन्नाह—‘इत्येत’—दित्यादि,  
इति=पूर्वोक्तम् एतत्=वैहायसगार्द्धपृष्ठमरणं, विमोहायतनम् वि=विगतो मोहः=  
अविवेको येषां ते विमोहाः=मोहरहिताः महापुरुषास्तेषाम् आयतनं कर्तव्यतया  
स्थानम् विमोहायतनम्, एवं हितम्=इष्टम् कल्याणकारित्वात्, तथा सुखं शिवसु-  
खजनकं कर्मनिर्जरापूर्वकमव्यावाधामन्दानन्दसन्दोहजनकत्वात्, एवं क्षमं=समर्थं

सूत्रकार ‘सोवि’ इत्यादि सूत्रांश कहते हैं—यहां ‘अपि’ शब्द यह प्रकट  
करता है कि केवल भक्तपरिज्ञा आदिको अनुक्रमसे नहीं करनेवाला भी  
वह वैहायस आदि मरण प्राप्त करनेवाला मुनि उस मरणमें भी अन्तक्रिया  
रूप संसारका अन्त करनेवाला होता है, इसलिये उसका वैहायस आदि  
मरण भी औत्सर्गिक ही है ।

इस विषयका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि यह वैहा-  
यस और गार्द्धपृष्ठ मरण विमोहायतन—जिनका मोह—अविवेक नष्ट  
हो चुका है ऐसे मोहरहित महापुरुषोंका कर्तव्यरूपसे स्थान—है, यह  
कल्याणकारी होनेसे हित—इष्ट है, कर्मोंकी निर्जरापूर्वक अव्यावाध अमन्द  
आनंदपरम्पराका जनक होनेसे वह सुख—सुखस्वरूप है, अर्थात् शिवसुखका

मुनि थोडा न् क् ङाणमां करी दे छे आ अर्थने प्रगट करतां सूत्रकार “सोऽपि”  
इत्यादि सूत्रांश कडे छे—अर्हि “अपि” शब्द ओषु प्रगट करे छे के केवण लकत-  
परिज्ञा आदिने अनुकमयी न करवावाणा पणु ओ वैहायस आदि मरणु प्राप्त  
करनार मुनि ओ मरणुमां पणु अन्तक्रियाइप स सारने अन्त करवावाणा डोय  
छे आ कारणु ओषु वैहायस आदि मरणु पणु औत्सर्गिक न् छे

आ विषयने उपसंहार करता सूत्रकार कडे छे के आ वैहायस अने  
गार्द्धपृष्ठ मरणु विमोहायतन—नेमने मोह—अविवेक नष्ट थर्धुकेल छे, ओवा  
मोहरहित महापुरुषोतु कर्तव्यइपथी स्थान—छे ओ कल्याणकारी डोवाथी हित—इष्ट  
छे ओ कर्मोनी निर्जरापूर्वक अव्यावाध अमन्द आनंदपर पराने आपनार डोवाथी  
ते सुख—सुखस्वइप छे, अर्थात् शिवसुखना आपनार छे, वन् न् प्रकारे पर्वतोतु



વજ્રવત્ કર્મવિદારણશક્તિમત્વાત્, તવા નિ શ્વેયસ-નિ-શ્વેયસચારકં કર્માપનયનવિધાસક  
ત્વાત્, एषम् आनुगामिकम् आत्मनो जन्ममरणाद्यनन्तदुःस्वजात्मस्यच्छेप मोक्षानुस  
गमनकारकत्वात् । एषादृशं मरणं तस्य मुनेर्मङ्गलरूपमेव मवतीति भावः । 'इति  
ब्रषीमी'—स्यस्यार्थस्तुक्करीत्या षोड्य ॥ सू० ४ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ ८-४ ॥

1

વેનેવાલા છે । વજ્ર જેવો પ્રકાર પર્વતોનો મેદ વેતા છે તેવો પ્રકાર પણ  
મરણ બી કર્મોનો વિદારણ કરવાનો સમર્થ હોવાને કારણે ક્ષમ-શક્તિવાળો છે । તથા  
કર્મોનો આત્માને મિત્ત કરાવવાનો હોવાને કારણે યદ્ નિ-શ્વેયસ-મોક્ષકારક  
છે, ઓર આત્માનો જન્મ મરણ આદિ અનન્ત-દુઃસ્વરૂપી પાશકાલ્પેન  
કર મોક્ષની ઓર છે જાનેવાલા હોવાને કારણે આનુગામિક છે । એવા વજ્ર મરણ  
વસ મુનિને લિયે મંગલરૂપ હી હોતા છે ॥ સૂ० ૪ ॥

॥આઠમું અધ્યયનના ચતુર્થ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૪ ॥

વેદન કારક છે એ જ રીતે આજી મરણ પણ કર્મોનો નાશ કરવામાં સમર્થ હોવાથી  
ક્ષમ-શક્તિવાળો છે તથા કર્મોને આત્માથી કિત કરવાને હોવાથી તે નિ-શ્વેયસ-મોક્ષ  
આપનાર છે અને આત્માને જન્મ મરણાદિ અનન્ત દુઃખરૂપી કાંસલાનુ છેદન કરી  
મોક્ષની તરફ લઈ જનારા હોવાથી તે આનુગામિક છે એવું મરણ તે મુનિને  
આટું મંગલરૂપ ધારક છે (સૂ० ૪)

આઠમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૪ ॥

## । अथाष्टमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः ।

अथ चतुर्थोद्देशकथनानन्तरं सम्प्रति पञ्चमोद्देशः समारभ्यते । अस्यानन्तरोद्देशेन सहाऽयमभिसम्बन्धः—अनन्तरोद्देशे स्त्रीप्रभृत्युपसर्गाऽभिभवप्राप्तौ वैहायस-गार्द्ध-पृष्ठादिकं बालमरणं मुनेराचरणीयमित्युक्तम् । इह तु रोगादिना ग्लानिमुपगतो मुनिस्तद्विपरीतं भक्तपरिज्ञाख्यं मरणमङ्गीकुर्यादिति प्रतिपादयन् मुनेर्ग्लानितामुप-वर्णयितुं तावत्प्रक्रमते—‘जे भिक्खू’ इत्यादि ।

मूलम्—जे भिक्खू दोहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायतइएहिं, तस्स णं नो एवं भवइ--तइयं वत्थं जाइस्सामि । से अहेस णिज्जाइं वत्थाइं जाइज्जा जाव एवं खुतस्स भिक्खुस्स साम-गियं। अह पुण एवं जाणिज्जा उवाइक्कंते खल्ल हेमंते गिम्हे पडिवण्णे अहापरिजुन्नाइं वत्थाइं परिट्ठविज्जा अदुवा संतरुत्ते, अदुवा ओम-

### आठवें अध्ययनका पाँचवाँ उद्देश ।

चतुर्थ उद्देशके कथन करने बाद अब पंचम उद्देशका कथन प्रारंभ होता है, इसका चतुर्थ उद्देशके साथ यह संबंध है—वहां ‘निष्प्रतीकार स्त्री आदि द्वारा कृत उपसर्गसे अभिभव प्राप्त होने पर मुनिको अन्य उपायके अभावसे वैहायस एवं गार्द्धपृष्ठ मरण आदि मरण अङ्गीकार कर लेना चाहिये’ यह बात समझाई गई है । इस उद्देशमें “ ग्लानि को प्राप्त हुआ मुनि उससे विपरीत भक्तपरिज्ञा नामक मरण अङ्गीकार करे ” इस विषयका वर्णन किया जायगा, अतः मुनिकी ग्लानताका वर्णन करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“ जे भिक्खू ” इत्यादि ।

### आठमा अध्ययननो पांचमो उद्देश

योथा उद्देशना कथन भाद हुवे पाचमा उद्देशनो प्रारभ थाय छे तेनो योथा उद्देशनी साथे एवेो सभध छे—त्या निष्प्रतीकार स्त्री आदि द्वारा करायेला उपसर्गथी अलिखव प्राप्त थता मुनिअे अन्य उपाय न होवाथी वैहायस अने गार्द्धपृष्ठ मरण आदि मरण अङ्गीकार करी देवु भेधअे, अे वात समभववामा आवेल छे आ उद्देशमा “ ग्लानिथी लरपूर मुनि तेनाथी विपरीत भक्तपरिज्ञा नामना मरणने अङ्गीकार करे ” आ विषयनु वर्णन करवामा आवशे आथी मुनिनी ग्लानिनु वर्णन करवा माटे सूत्रकार कहे छे—“ जे भिक्खू ” इत्यादि

चेले, अटुवा एगसाढे, अटुवा अचेले, लाघविय आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ। जमेय भगवया पवेइय तमेव अभिसमिच्छा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया। जस्स ण भिक्खुस्स एव भवइ पुट्ठो अवलो अहमसि नालमहमसि गिहतरसकमण भिक्खारियगमणाए, से एव वयतस्स परो अभिहइ असण वा ४ आहइ दलइज्जा, से पुठ्वामेव आलोइज्जा-आउसता ! गाहा वइ। नो खल्ल मे कप्पइ अभिहइ असण वा ४ मुत्तए वा पायए वा, अस्से वा एयप्पगारे ॥ सू० १ ॥

छाया—यो मिधुद्वीम्यां क्त्वाभ्यां पर्युपित पाप्रवृत्तीयाभ्यां, तस्य खल्ल नो एवं भवति—तृतीयं बर्त्सं याचिष्ये। स ययैपणीयानि क्त्वाणि याचेत् यावत्—एव खल्ल तस्य मिधोः सामप्यम्। अथ पुनरेवं ज्ञानीयात् उपातिक्रान्तः खल्ल इमन्तः, प्रीप्सः प्रतिपन्नः, यथापरिजीर्णानि क्त्वाभि परिष्ठापयेत्, अथ वा सान्तरोचरः, अथवा भवमषेलः, अथवा एककष्टाः, अथवा भवेत्, 'छापविक्रमागमपत्तपस्तस्याभिसमन्नागर्तं भवति, यदेतत् भगवता भवेदितम् तद्वामिसमेत्य सर्षत्' सर्षात्मतया सम्यक्त्वमेव समभिजाणीयात्। यस्य खल्ल मिसोरेवं भवति—स्युप्पोज्जसोऽहमस्मि, नालमहमस्मि गृहान्तरसंक्रमण मिसाचर्यागमनाय, तदेव ववतः परोऽभिहइतमश्नं वा ४ आहस्य दद्यात्, स पूर्वमेवाऽऽलोचयत्—आप्पुप्पन्। गायापत्त। नो खल्ल मे कल्पतऽभिहइतमश्नं ४ मोक्ख वा पातुं वा अन्यानप्यथमकारान्॥सू० १॥

टीका—'यो मिधु'—रित्यादि, पूर्वोरेषे मिधुत्वपर्युपितं स्थिरस्थिको भवेत्, कल्पवृत्त्यपर्युपितो हि नियमतो जिनकल्पिक-परिहारविधुद्विक-पयालन्दिक

पूर्व—चतुर्थं वरेष्ठार्थे यह यत्तलाया जा बुफा है कि स्थिरकल्पी मुनि तीन घण्ट और एक पात्रसे स्थिरस्थित होता है, अर्थात् तीन घण्टोंको रखनेके कल्पयाला स्थिरकल्पी होगा। यहाँ दो घण्ट रखनेका कल्प जो प्रकृत किया गया है उससे यह घान मात्तम होती है कि दो घण्टोंके रखनेका कल्पयाला

आजगता आधा उदेशार्थं केवुं अताप्यामां आवेत उ ठे स्थिरकल्पी मुनि तत्र बन्धने के ३ पात्रधी अवस्थित होय उ अर्थात् तत्र पत्रो रापयाना कल्पयाला स्थिरकल्पी आधु होय उ मे पत्र रापयाने कल्पके प्रकृत करत उ तेनार्थी के वात मात्तम पाय उ ठे मे पत्रना रापयाना आधु निबन्धी एनकल्पी,

-प्रतिमाप्रतिपन्नेष्वन्यतमोऽत्र कथितः। द्वाभ्यां वस्त्राभ्यां पर्युषितः, इत्यनेनैकः कार्पासिकोऽपर और्णिकः, इति गृह्यते. वस्त्रसामान्यवाचित्वप्रतिपादनात्। 'जे भिक्षू' इत्याधारभ्य 'समत्तमेव समभिजाणिया' इत्यन्तस्य व्याख्या त्वेतदध्ययनस्य चतुर्थोद्देशान्तर्गत-प्रथम-द्वितीय-तृतीय-सूत्रव्याख्यावद्विज्ञेया, नवरमत्र पात्रतृतीयं वस्त्रद्वयं भवतीति, ततोऽधिकं न याचेत। यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति-अहं स्पृष्टः=

साधु नियमसे जिनकल्पी, परिहारविशुद्धिक, यथालन्दिक एवं प्रतिमा-प्रतिपन्न, इन साधुओंमें से कोई एक होगा। "द्वाभ्यां वस्त्राभ्यां पर्युषितः" इस कथनसे यद्यपि सामान्यतया दो वस्त्रोंके ही रखनेका कल्प कथित हुआ है परन्तु उन दो वस्त्रोंमें एक वस्त्र सूत्रका और एक वस्त्र ऊनका बना हुआ कम्बल, ऐसे दो वस्त्र ही परिगणित हुए हैं, अतः वस्त्रसामान्य अर्थका प्रतिपादन करनेवाले इस वस्त्र शब्दसे इन दो वस्त्रोंका ही यहां ग्रहण हुआ है, ऐसा समझना चाहिये। "जे भिक्षू" यहांसे ले कर "समत्तमेव समभिजाणिया" यहां तकके पदोंकी व्याख्या इस अध्ययनके चतुर्थ उद्देशके अन्तर्गत पहिले दूसरे तीसरे सूत्रोंकी व्याख्या जैसी ही समझनी चाहिये। उनमें तीन वस्त्र और एक पात्रको लेकर व्याख्या की गई है यहां पर दो वस्त्र एक पात्रको ले कर व्याख्या होगी, बस उनसे इस सूत्रके पदोंकी व्याख्यामें यही विशेषता है, इस लिये इस व्याख्या के अनुसार मुनि अधिक की याचना न करे।

परिहारविशुद्धिक, यथालन्दिक, अने प्रतिमाप्रतिपन्न, जेवा साधुओमाथी अहीं कोर्ध जेकनु अर्द्धु करेले छे "द्वाभ्या वस्त्राभ्यां पर्युषितः" आ कथनथी यद्यपि सामान्यतया जे वस्त्रने ज राषवानो कल्प कथित थयेले छे, परन्तु ते जे वस्त्रोमा जेक सुतरनुं अने जेक वस्त्र उननु भनेले कम्बल, जेवा जे वस्त्र ज परिगणित थयेले छे भाटे वस्त्रसामान्य अर्थनु प्रतिपादन करवावाणा आ वस्त्र शब्दथी आ जे वस्त्रोनाज स्वीकार करेले छे, जेवु समजवु जेधजे "जे भिक्षू" अडीथी लर्ध "समत्तमेव समभिजाणिया" अर्हि सुधीना पढोनी व्याख्या आ अध्ययनना जोथा उद्देशना अतर्गत पढेला भीज अने त्रीज सूत्रनी व्याख्या जेवी ज समजवी जेधजे. तेमा त्रणु वस्त्र अने जेक पात्रने लधने व्याख्या करवाभा आवेले छे, अर्हि जे वस्त्र अने जेक पात्रने लधने व्याख्या थशे जस आथी आ सूत्रना पढोनी व्याख्याभा जे ज विशेषता छे, तेने भाटे आ व्याख्यानुसार मुनि अधिकनी याचना न करे

घातादिरोगविज्ञेयै पीडित, अपलाः—अकिरहितोऽस्मि, अत एव मित्राचर्यां ग-  
नाय—मित्रार्थं गृहान्तरसकर्मणं—गृहात् गृहान्तरगमने कर्तुम् अहं नास्मि—स्वमर्षो  
नैवास्मोति । तदेवम्—इत्ययम् एतादृशवाक्यं अथ साधोः उपलक्षणाद्भवदतोऽपि च  
परा—आधापतिः प्रकृतिमद्रकः सम्प्रदायानुरक्तो वा अभिहृत—पद्मीनिकायविराम-  
नासम्यादितम् अहं—चतुर्विधमाहारम् अभिहृत्य—स्वगृहादितः समानीय दद्यात् ।  
तद्—गृहस्थोपकरणितमशनादिकं परिहरता श्रीकनस्पृहारहितेन ग्लानेनाऽपि मुनिना  
धीतरागोपदेशमनुगच्छता मरणमपि स्वीकार्ये न तु तदसनादिकं ब्राह्ममित्याह्वयः ।

उनके वादके पदोंकी व्याख्या इस प्रकार है—जिस भिक्षुके चित्तमें  
इस प्रकारका विचार आता है कि—“ मैं घात आदि रोगबिदोषोंसे आ-  
क्रान्त हो कर शक्तिरहित हो गया हू अतः मित्राचर्यां निमित्त  
एक घरसे दूसरे घर जानेकी अब मुझमें शक्ति नहीं रही है ” इस प्रकार  
से कहनेवाले अथवा उपलक्षणसे नहीं कहनेवाले उस साधुके निमित्त  
कोई गृहस्थ, कि जो प्रकृतिसे अत्र एव अपने सम्प्रदायमें अनुरक्त है,  
वह पद्मीनिकायकी विराघनासे संपन्न हुए चार प्रकारके आहारको  
अपने घरसे मुनिके स्थानपर ला कर यदि उन्हें देवे तो गृहस्थद्वारा लाये  
गये उस आहारादिकको, अपने जीवनमें भी स्पृहारहित बना हुआ वह  
ग्लान साधु न लेवे, और धीतरागके उपदेशका अनुसरण करनेवाला होनेसे  
वह अपनी मृत्यु तककी भी परवाह न करे । इस अवस्थामें उसकी यदि  
मृत्यु भी हो जाय तो वह अच्छी, पर उसे अकल्पनीय अस अम्याहृत  
आहारादिकका ग्रहण करना कथमपि ठीक नहीं है । इस लिये जिनक-

तेन पठिता पठेती व्याख्या आ प्रकाशनी छे—ने भिक्षुना चित्तमां आ  
प्रकाशने विचार आवे छे के—“तु घात आदि रोगोभी व्याकुण जनी शक्तिरहित  
जनी अवेळ तु भाटे भिक्षाचर्यां निमित्त ओठ परेकी जीव परे ल्यानी  
दवे भाशाम शक्ति रही नथी ” आ प्रकाशनी कहेवावाण आदवा उपलक्षणभी  
नहीं कहेवावाण ओ साधुना निमित्त हाथ गृहस्थ के ने प्रकृतिभी अत्र जने  
पैताना अग्रघयने अनुरागी छे ते पद्मीनिकायनी विशधनाकी संपन्न जनेळ  
आ प्रकाशना आकाशने पैताने परेकी मुनिना स्थानपर लावीने ते तेने आपे ते  
गृहस्थद्वारा लावनामा अवेळ जे आहारादिकने पैताना लुपनमां पण स्पृहाशक्ति  
जनेळ आन साधु न वे, जने धीतरागना उपदेशनु अनुसरण करवावाण  
आधी ते पैताना मृत्यु मुभीनी परना पण न करे आ अवस्थाम कदाय  
तेन मृत्यु पण यथं ज्ञाय ते पण अकल्पनीय जे अम्याहृत आहारादिकत अहं

तदा मुनिः किं कुर्यादित्याह—‘स’ इत्यादि—सः=जिनकल्पिकाद्यन्यतमो मुनिः पूर्वमेव=  
 =आहारादिग्रहणात्प्रथममेव आलोचयेत्=‘अधःकर्मादिदोषदूषिततयाऽभ्याहृततया  
 च प्रासुकमप्यशनादिकमेतन्न मम कल्पते, तत्सेवनापेक्षया मरणमेव श्रेयः’ इति  
 विचारयेत्, तं गृहपतिं संबोधयेच्च, तद्यथा—हे आयुष्मन् ! गाथापते ! एतद्भ्या-  
 हृतमशनं चतुर्विधम् सदोषं निर्दोषं वा यथायोग्यं भोक्तुमुपभोक्तुं वा पातुं वा अ-  
 न्यानपि=अशनाद्यतिरिक्तानपि वस्त्र-पात्रादिकान् एतत्प्रकारान् अभ्याहृतान्  
 अधःकर्मादिदोषदुष्टान् वा न मम कल्पत इति, इत्येवं दातुमुद्यतं गृहपतिमनासेव-  
 नयाऽऽज्ञापयेत् ॥ सू० १ ॥

ल्पिक आदि मुनिजनों में से कोई भी मुनिजन क्यों न हो वह आहार  
 आदिके ग्रहणके पहिले ही इस बात की आलोचना करे कि यह “आहार  
 आदि सामग्री आधाकर्मी आदि दोषोंसे दूषित होनेसे, एवं अभ्याहृत-  
 लाई गई होनेसे प्रासुक होने पर भी मुझे कल्प्य नहीं है, इसके  
 सेवनकी अपेक्षा मरण ही अच्छा है” ऐसा विचार करे। तथा लाकर देने-  
 वाले उस गृहस्थको भी इस प्रकार समझावे कि—“ हे आयुष्मन् ! गृहस्था  
 यह लाया गया चारों प्रकारका आहार, अथवा यथायोग्य वस्त्र पात्र आदि  
 अन्य वस्तुएं जो इसी प्रकार की हैं चाहे सदोष हों चाहे निर्दोष हों,  
 मेरे भोग उपभोग एवं पानके योग्य नहीं हैं, क्यों कि ये सब आधा  
 कर्मादिदोषोंसे युक्त हैं। आधाकर्मादिदोषविशिष्ट आहारादिक  
 सामग्री साधु को कल्प्य नहीं मानी गई, है इस लिये मैं इन सबका  
 परिहार करता हूँ।” सू० १ ॥

करु ठीक नहीं आभा अनकल्पी आदि मुनिजनोनाथी कोष्ठ पणु मुनिजन केम  
 न डोय ते आहार आदितु ग्रहणु करता पडेला न आ वातनो विचार करे के  
 “आ आहार आदि सामग्री आधाकर्मी आदि दोषोधी दूषित डोवाथी, अने  
 अभ्याहृत-लाववामा आवेल डोवाथी प्रासुक डोवा छता पणु मारा भाटे कल्प्य  
 नहीं, अनेना सेवननी अपेक्षा मरणु न साइ छे” अवेा विचार करे अने लावीने  
 आपनार अे गृहस्थने पणु आ प्रकारथी समन्तवे के—“ हे आयुष्मन् !  
 गृहस्थ ! आ लाववामा आवेल यारे प्रकारनो आहार, अथवा यथायोग्य वस्त्र  
 पात्र आदि अन्य वस्तुओ न्ने अे प्रकारनी छे याहे सदोष डोय, याहे निर्दोष  
 डोय, मारा भोग उपभोग अने पानना योग्य नहीं केम के अे अणु आधा-  
 कर्मादि दोषोधी लरेल छे आधाकर्मादिदोषविशिष्ट आहारादिक सामग्री साधुने  
 भाटे कल्प्य मानवामा आवेल नहीं, आ भाटे हु आ अधानो त्याग करे छुं (सू० १)

किं चान्यदप्याह—'जस्त ण' इत्यादि ।

मूळम्—जस्त ण भिक्खुस्स अय पगप्पे—अह च खलु पडि  
 झत्तो अपडिच्चत्तेहिं, गिलाणो अगिलाणेहिं अभिकख साहम्मि  
 पडिं कीरमाण वेयावडिय साइज्जिजस्सामि, अह वावि खलु  
 अप्पडिन्नत्तो पडिन्नत्तस्स अगिलाणा गिलाणस्स अभिकख  
 साहम्मियस्स कुञ्जा वेयावडिय करणाए, आहट्टु परिन्न अणु  
 क्खिस्सस्सामि, आहड च साइज्जिजस्सामि ( १ ), आहट्टु परिन्न  
 आणक्खिस्सस्सामि आहड च नो साइज्जिजस्सामि ( २ ), आहट्टु  
 परिन्न नो आणक्खिस्सस्सामि आहड च साइज्जिजस्सामि ( ३ ),  
 आहट्टु परिन्न नो आणक्खिस्सस्सामि आहड च नो साइज्जि  
 ज्जस्सामि ( ४ )। एव से अहाकिट्टियमेव समभिजाणमाणे सते  
 विरए सुसमाहियलेसे तथवि तस्स कालपरियाए से तथ  
 विअतिकारए, इच्छेय विमोहाययण हिय सुह खम निस्सेयस  
 आणुगामिय—तिथेमि ॥ सू० २ ॥

छाया—यस्य खलु भिसोरयं प्रकल्पं—अहं च खलु प्रतिज्ञतोऽप्रतिज्ञते,  
 ग्लानोऽग्लानैरभिकाङ्क्ष साधर्मिकै क्रियमाणं वेयावृत्स्यं स्वादयिष्यामि, अहं वापि  
 खलु अप्रतिज्ञस प्रतिज्ञस्य अग्लानो ग्लानस्य अभिकाङ्क्ष साधर्मिकस्य कुर्या  
 वेयावृत्स्यं करमाय । आहत्य परिज्ञामन्वेपयिष्यामि, आहृतं च स्वादयिष्यामि १,  
 आहत्य परिज्ञामन्वेपयिष्यामि आहृतं च नो स्वादयिष्यामि २, आहत्य परिज्ञां नो  
 अन्वेपयिष्यामि आहृतं च स्वादयिष्यामि ३, आहत्य परिज्ञां नो अन्वेपयिष्यामि आहृतं  
 च नो स्वादयिष्यामि ४, एवं स यथाकीर्तितमेव धर्मं समभिजानन् शान्तः  
 विरतः सुसमाहृतच्छेद्यस्तथापि तस्य कालपर्यायः । स एव व्यन्तिकारकाः, इत्येतत्  
 विमोहायतर्कं हितं सुखं क्षमं निश्चेयसमानुगमिकमिति प्रथमि ॥ सू० २ ॥

और भी इसी विषयसे संबंधित बात सूत्रकार प्रकट करते हैं—  
 'जस्त ण' इत्यादि ।

गी० पद्य भा० विषयशी खलमित्वात् पाठ सूत्रकार प्रकट करे छे—  
 "जस्त ण" इत्यादि ।

टीका—‘यस्ये’-त्यादि, यस्य भिक्षोः=परिहारविशुद्धिकस्य यथालन्दिकस्य वा ‘खलु’ वाक्यालङ्कारे, अयं वक्ष्यमाणः प्रकल्पः=आचारो भवति । तमेव दर्शयति—‘अह’-मित्यादि, ‘चः’ समुच्चये, ‘खलु’ वाक्यालङ्कारे, अप्रतिज्ञप्तैः=केनाप्यनुक्तैः=वैयावृत्यकरणाय केनाप्यप्रेरितैरित्यर्थः, अग्लानैः=समुचितकार्यसहनशीलैः प्रतिज्ञप्तैः=वैयावृत्यविधानाय प्रोक्तः—‘वयं तव समुचितं वैयावृत्यं करिष्यामः’—इत्यभिहितः वातादिभोभेण तपश्चर्यादिना वा ग्लानः अहम् अभिकाङ्क्ष्य=निर्जरासु-दृश्य साधर्मिकैः=एककल्पस्थैः संयतैः क्रियमाणं=विधीयमानं वैयावृत्यं शुश्रूपादिक स्वादयिष्यामि=स्वीकरिष्यामि, एतादृशो यस्य भिक्षोः प्रकल्पोऽस्तीति पूर्वेण सम्बन्धः, स भिक्षुस्तादृशं कल्पं परिरक्षन् भक्तपरिज्ञया प्राणांस्त्यजेत्, न पुनरभिग्रहं परिरखण्डयेदित्याशयः । पूर्वमितरसाधर्मिकेण विधीयमानवैयावृत्यानुज्ञाऽ-

सूत्रकार इस सूत्रमें परिहारविशुद्धि संयमवाले साधुका, अथवा यथालन्दिक साधुका आचार कैसा होता है ? इस विषयको प्रदर्शित करते हैं—“वैयावृत्य करनेके लिये किसी अन्य साधु द्वारा प्रेरित नहीं किये गये ऐसे अग्लान-समुचित कार्यसंपादन करनेमें सहनशील संयतोद्वारा “हम तुम्हारी समुचित वैयावृत्य आदि करेंगे ” इस प्रकारसे कहा गया मैं, जो इस समय वातपित्तादिक दोषोंसे या तपश्चर्यासे ग्लान हो रहा हूँ, अपने कर्मोंकी निर्जरा करनेके उद्देशसे एककल्पस्थ उन साधुओंद्वारा की गई वैयावृत्य आदिको स्वीकार कर लूंगा ” इस प्रकारका जिस परिहारविशुद्धिका या यथालन्दिक साधुका कल्प होता है वह भिक्षु उस प्रकारके कल्प-आचारकी रक्षा करता हुआ भक्तपरिज्ञा नामक मरणद्वारा अपने प्राणोंको छोड़ देवे पर अभिग्रहका खण्डन न करे ।

सूत्रकार या सूत्रमा परिहारविशुद्धि संयमवाणा साधुनो अथवा यथा-लन्दिक साधुनो आचार केवो डोय छे ? या विषयने प्रदर्शित करे छे—“वैयावृत्य करवा माटे कोई अन्य साधुथी प्रेरित न करायेल जेवा अग्लान जेटले समुचित कार्य संपादन करवामा सहनशील संयतो द्वारा “हुँ तमारी समुचित वैयावृत्य आदि करीग” जे प्रकारे कहेवाजेल हुँ जे या समये वातपित्तादिक दोषोथी अथवा तपश्चर्याथी अकषाठ रह्यो छु पोताना कर्मोनी निर्जरा करवाना उद्देशथी जेक कल्पस्थ साधुज्योधी करवामा आवेल वैयावृत्य आदिने स्वीकार करी लईश ” या प्रकारनु जेने परिहारविशुद्धिके अने यथालन्दिक साधुनो कल्प डोय छे ते भिक्षु या प्रकारनो कल्प-आचार-नी रक्षा करीने लकतपरिज्ञा नामनु भरषु स्वीकारी पोतानो प्राण छोडी दे छे यणु अलिअहनु अडन करता नथी.



मिद्विता, इदानीं स एवान्यस्य वैयावृत्त्यं विदधातीत्याह—‘अह’—मित्यादि, ‘वः’  
 समुच्चये ‘अपि’ उच्यते पुनरर्थे पूर्वस्मादिशेषप्रदर्शनायां अहं पुनः स्वच्छ अम्लानः—रोगा-  
 विरहितः, अपतिवृत्तः—वैयावृत्यकरणाय केनाप्यनुक्त, प्रतिवृत्तस्य—कवितस्य म्लान-  
 स्य तपसा वात—शूलरोगादिना वा पीडितस्य साधर्मिकस्य=सद्व्यकरणिकस्य साधो-  
 करणाय=उपकारार्थं निर्मराममिकाङ्गस्य वैयावृत्त्यं कुर्यामिति । एतादृशो मुनिमिग्रह  
 शिखरिश्चिखरपरिसरपरिचारी प्रतिज्ञां स्वीकृत्य प्राणान् परिहरेत् स्वमिग्रहमि-  
 त्याह्वय । अमिग्रहस्वरूपप्रकटनाय चतुर्मूर्त्तिकां दर्शयति—‘आहङ्कु’—इत्यादि,

पढ़िछे किमी साधर्मी साधुने वैयावृत्त्य करणे के लिये अपनी संमति  
 प्रदान की पर यह इस समय स्वयं किसी दूसरे साधुकी वैयावृत्त्य करने  
 में लग गया इसके लिये सूत्रकार “अह”—मित्यादि, सूत्रांश कहते हैं—

“ मैं रोगाविरहित हूँ, वैयावृत्त्य करनेके लिये मुझसे किसीने भी  
 नहीं कहा है, इस लिये पूर्वमें कथित म्लान साधुकी कि जो इस समय  
 तपस्यासे अथवा वात शूल रोग आदिसे पीडित हो रहा है, अपने उप-  
 कारके लिये कर्मोंकी निर्जराकी चाहनाके उद्देशको ले कर वैयावृत्त्य कर  
 हूँ” इस प्रकारकी भाषनाबाला मुनि कि जो अमिग्रहरूपी पर्वतके शिखर  
 के प्रदेश तक पहुंच चुका है, अमिग्रह स्वीकार कर प्राणोंको छोड़ देवे  
 पर अपने अमिग्रहको न छोड़े ।

सूत्रकार अमिग्रहके स्वरूपको प्रकट करनेके लिये चार मंगोंका प्रव-  
 र्णन करते हैं—“ आहङ्कु ” इत्यादि,

इहेला केहू साधर्मी साधुजे वैयावृत्त्य करवा भाटे पोतानी संमति अप्पी  
 पणु ते आ अमह केहू वीज साधुनी वैयावृत्त्य करवाभां लागी जया, आने  
 भाटे सूत्रकार अह उत्यादि सूत्रांश केहे छे—

दु रोगाविरहिणी रदिन धुं वैयावृत्त्य करवा भाटे भने कोछजे केहेल नभी  
 आ भाटे पूर्वमें इहेलाजेव म्लान साधुनी के के आ समय तपस्वाधी अथवा  
 वात शूल आदि गजधी पीडित छे पोताना उपकरणे भाटे कर्मोनी  
 निर्जराकी चाहनाको उद्देश लधने वैयावृत्त्य करी आयु” अथ प्रकारनी भाषना  
 वाग्ज मुनि के के अमिग्रहरूपी पर्वतना शिखरना प्रदेश सुधी पडोवित छे  
 अमिग्रह स्वीकारोने प्राणने छोडी दे पणु अमिग्रह न छोटे.

सूत्रकार अमिग्रहना स्वरूपने प्रकट करवा भाटे चार मंगोनु प्रदर्शन करे  
 छे ‘आहङ्कु’ इत्यादि.

कश्चिदेकः परिज्ञां=वक्ष्यमाणामभिग्रहरूपाम् आहत्य=आदाय निश्चिनोति अहं-ग्लान-  
स्यापरस्य भिक्षोः साधर्मिकस्याशनादिकम् अन्वेषयिष्यामि, वैयावृत्त्यं च करिष्यामि,  
एवं परेण साधर्मिकेण मुनिना आहतम् आनीतमशनादिकं स्वादयिष्यामि=ग्रही-  
ष्यामि। इति प्रथमो भङ्गः (१)।

अपरः कश्चिदेवं प्रतिजानीते—‘अहं साधर्मिकार्थमशनादिकम् अन्वेषयिष्यामि=  
आनेष्यामि, तथा परेण आहतम्=आनीतं च नो स्वादयिष्यामि=नो ग्रहीष्यामि’।  
इति द्वितीयो भङ्गः (२)।

तथाऽन्य एव अभिग्रहं करोति—‘अहं परार्थमाहारादिकं नो अन्वेषयिष्यामि=  
नाऽऽनेष्ये किन्तु इतरेणाऽऽहृतं स्वादयिष्यामि’। इति तृतीयो भङ्गः (३)।

कोई मुनि इस प्रकारका अभिग्रह लेते हैं कि—मैं किसी ग्लान मुनिके  
लिये अथवा साधर्मिक भिक्षुके लिये आहार पानी आदि ला दिया करूंगा  
और उनकी वैयावृत्त्य भी कर दिया करूंगा, तथा दूसरे साधर्मी मुनिद्वारा  
लाये गये आहारादिकका मैं स्वयं भी ग्रहण करूंगा। यह प्रथम भंग है। १।

दूसरा कोई ऐसा अभिग्रह करता है कि—मैं साधर्मिक साधुके लिये  
आहारादिक ला तो दिया करूंगा पर दूसरे कोईके द्वारा लाये गये  
आहारादिकका मैं सेवन नहीं करूंगा। यह द्वितीय भंग है। २।

कोई दूसरा ऐसा अभिग्रह करता है कि—मैं दूसरोंके लिये आहारादिक  
नहीं लाऊंगा पर दूसरा कोई मुझे ला देगा तो मैं उसका सेवन करूंगा।  
यह तीसरा भंग है। ३।

कोई २ ऐसा अभिग्रह करते हैं कि—मैं न तो दूसरोंके लिये आहा-

कोई मुनि या प्रकारको अभिग्रह ले छे के हु कोछ ग्लान मुनि भाटे अथवा  
साधर्मिक भिक्षु भाटे आहार पाणी आदि लावी आपीश अने तेनी सेवा याकरी  
पणु करीश, तथा भील साधर्मी मुनि मारइत लावेला आहारादिकनु हु अहणु  
करीश या प्रथम लग छे (१)

भील कोछ अवेओ अभिग्रह करे छे के हु साधर्मी साधु भाटे आहारादिक लावी  
आपीश पणु भील कोछनी मारइत लावेला आहारादिकनु हु सेवन नही कइं.  
या भीले लग छे (२)

कोछ अवेओ अभिग्रह करे छे के हु भीलओ भाटे आहारादिक नही लावु  
पणु भील कोछ लावशे तो हु तेनु सेवन करीश. या त्रीले लग छे (३)

कोछ कोछ अवेओ अभिग्रह करे छे के हु भीलओने भाटे आहारादिक

अपरिभेतादृष्टमभिग्रहं करोति—' अहं परार्थमज्ञानादिकं नान्वेपयिष्यामि, परेणाऽऽहतमपि नो स्वादयिष्यामि ' । इति चतुर्थो मङ्ग (४) ।

इति बहुविधमभिग्रहं स्वीकृत्य म्लायमानोऽपि ग्रीहित परिनिष्ठाश्च पुनरभिग्रहं त्यजेदिति परमार्थः । तमेवार्थमनुपसंहरन्नाह—' एव '—मित्यादि, सः=अनगारः परिहाततत्त्व एव=पूर्वोक्तं यथाकीर्तितमेव=ययोक्तमेव धर्मम्=अभिग्रहस्वीकारवत्त्वं समभिजानन्=आसेवनपरिज्ञायाऽऽसेवमानः, शान्तः=कपायोपशमनेन । यद्वा—' शान्तः ' इतिच्छाया, शान्तः=निरन्तरसंसारपरिभ्रमणात् भ्रममुक्तः, विरतः=सर्वसमारम्भा-दुपरतः, सुसमाहृतलेश्य -सुसमाहृताः=सम्यग्रूपेण गृहीताः श्रेण्याः=अन्तःकरण-वृत्तयो येन सः । यद्वा—सुसमाहृताः=सम्यक् सङ्कोचिता श्रेण्याः=तेजोश्रेण्या यन स रादिकं सा कर द्वा और न दूसरोसे लाये हुए आहारादिकका मैं उपभोग ही कल्पा । यह चतुर्थ भग है । ४ ।

इस तरह अनेक प्रकारकी प्रतिज्ञाको स्वीकार करके, म्लायमान मी मुनि अपने जीवनको छोड़ देवे पर अभिग्रहका भग न करे । इसी धर्मका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—' एव '—मित्यादि, वह तत्त्वोक्त ज्ञाता भगवार अभिग्रहका स्वीकार करना और उसका आसेवनपरिज्ञासे पूर्णरूपसे सेवन—निर्वाह करना, इस रूप धर्मको जानता हुआ भक्तप्रत्या-क्ष्यान नामक मरण स्वीकार करे । " शान्तः, विरतः, सुसमाहृतलेश्यः " ये सय अनगारके विशेषण हैं । इनका अर्थ इस प्रकार है—यह अनगार कपायोंके उपशम होनेसे शान्त, सर्व प्रकारके समारंभोंसे उपरत होनेसे विरत और अन्तःकरणकी वृत्तियोंको अच्छी तरह निगृहीत करनेसे सु-

नक्ति तावी आधुं अने जानबोधी तावेसा आकाशकिने पक्षु दु उपभोग नक्ति कइं आ बोधी भज ठे (४)

आपनी रीते अनेक प्रकारका अभिग्रहको स्वीकार करीने ज्ञान मुनि पक्षु पोटाना उपनने जेही दे पक्षु अभिग्रहने भज न करे, आ अर्थनि उपसंहार करीने सूत्रकार कहे छे— एव 'मित्यादि, ते तत्वोक्त व्यस्तार अनगार अभिग्रहने स्वीकार करवे, अने तेनु आसेवनपरिज्ञाधी पूष इयधी सेवन—निर्वाह करवे, आ इयधी धर्म जानीने भक्तप्रत्याक्ष्यान नामनु भरषु स्वीकारे, " शान्तः, विरतः, सुसमाहृतलेश्यः " आ सवण अनगारका विशेषण छे जेने, अभ आ प्रकार छे—ते अनगार कपायोंनि उपशम वनाधी शान्त, सर्व प्रकारका समारंभोधी उपरत वनाधी विरत अने अन्तःकरणकी वृत्तियोंने सारी रीते निगृहीत करवाधी सुसमाहृतलेश्यवाणा कहेवाय छे सते " प्राकृतनी संशुद

सुसमाहृतलेश्यः । प्रथमस्वीकृताभिग्रहपरिपालनाक्षमो रोगेण तपसा वा ग्लानः  
सन् अभिग्रहमपरित्यजन् भक्तप्रत्याख्यानानेन शरीरं त्यजेदिति तात्पर्यम् ।

तत्रापि मरणकालपर्याय एव=सम्पादितशिष्यगणस्य संलेखना-जोषणाजुष्ट-  
देहस्य यो मृत्योरवसरः स एव ग्लानावसरेऽपि कालपर्याय एव, कर्मनिर्जरणस्याऽ-

समाहृतलेश्यावाला कहलाता है 'संते' प्राकृतकी संस्कृत छाया 'शान्त'  
मानकर अर्थ ऊपर बतलाया जा चुका है । जब इसकी छाया "श्रान्त"  
ऐसी मानी जायगी तब इसका अर्थ इस प्रकारसे होगा कि वह "संसार  
में परिभ्रमण करते २ श्रमयुक्त हुआ है, इसी लिये सर्वसमारम्भोंसे  
यह विरत-उपरत हुआ है। "सुसमाहृतलेश्यः" का यह भी दूसरे प्रकारसे  
अर्थ निकलता है कि-जिसने अच्छी तरहसे तेजोलेइया संकुचित की  
है, ऐसा वह अनगार होता है ।

तात्पर्य कहनेका यह है कि-जिसने पहिले पूर्वोक्त अभिग्रह स्वीकृत  
किये हैं पर रोग या तपसे जो ग्लान अवस्थायुक्त बन रहा है इस लिये  
स्वीकृत अभिग्रहोंके पालन करनेमें असमर्थ हो रहा है, तो भी स्वीकृत  
अभिग्रहवाले साधुका यह कर्तव्य है कि वह अपने गृहीत अभिग्रहका  
परिहार न कर भक्तप्रत्याख्यानद्वारा शरीरका परित्याग कर दे, यह मरण  
कालपर्याय ही है । जिसका शिष्यमण्डल तय्यार हो चुका है, ऐसे सं-  
लेखनाके सेवनसे युक्त देहवाले साधुकी मृत्युका जो अवसर है वह

छाया शान्त मानी अर्थ ऊपर बताववामा आवेल छे न्यारे तेनी छाया "श्रान्त"  
ओवी मानवामा आवशे त्यारे तेना अर्थ आ प्रकारे थशे के ते संसारमां  
परिभ्रमणु करता श्रमयुक्त थथेल छे आ भाटे सर्व समार बोथी ते विरत-निवृत्त छे  
"सुसमाहृतलेश्य" ने ओवो पणु भीज प्रकारे अर्थ नीकणे छे के नेछे सारी  
रीते तेनेदेइया सकुचित करेली छे ओवा ते अनगार होय छे

तात्पर्य कडेवातु ओ छे के-नेछे पडेला पूर्वोक्त अबिग्रहो स्वीकारेला  
छे परतु रोग अने तपथी ने ग्लान अवस्थामा आवी गओल छे ओ कारेछे  
स्वीकारेला अबिग्रहोतु पालन करवामा असमर्थ अनि रडेला छे, तो पणु नेछे  
अबिग्रहो स्वीकार्यो छे तेवा साधुतु ओ कर्तव्य छे के तेछे स्वीकारेला अबि-  
ग्रहोने त्याग न करी लक्तप्रत्याख्यानद्वारा शरीरने त्याग करे आ मरणु पणु  
कालपर्याय न छे नेतु शिष्यमण्डल तय्यार थर्थ गथेल छे ओवा सलेखनाना  
सेवनथी युक्त देहवाणा साधुना मृत्युनी ने अवसर छे ते न ग्लानना अवसरमा,

ત્રાપિ સમાનત્વાદિત્યાશ્રયઃ । અત એવ સ તાદૃશો મુનિરનશનકરણે ચ્યન્તિકારકઃ=  
કર્મનાશકારકો મવતિ । તદેશમુપસંહરતિ-‘ઇત્યેત’-દિત્યાદિ, ઇત્યેતદ્-જ્ઞાનસ્વ  
મક્તપ્રત્યાશ્વાનેન શરીરત્યાગસ્તદ્ વિમોહાયતનં દિતં સુત્વં ક્ષમં નિશ્ચેપસમાનુગા-  
મિકં મવતિ । एतेषां पदानां व्याख्याऽनन्तरोद्देशसमाप्तौ प्रोक्ता । ‘इति ब्रवीमी’-  
त्यस्यार्यस्तुक्त एवेति ॥ सू० २ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः समाप्तः ॥ ८-५ ॥

હી ગ્લાન કે અવસરમેં મી કાલપર્યાય હી હૈ, ક્યોં ફિ યહાં મી કર્મોક્તી  
નિર્જેરાક્ષી સમાનતા હૈ । ઇસીલિયે જેસા મુનિ અનશન કરકે મક્તપ્રત્યા  
શ્વાનસે મરણ કરને પર કર્મકા નાશ કરનેવાલા હોતા હૈ અતાઃ મક્ત  
પ્રત્યાશ્વાનપૂર્વક શરીરકા ત્યાગ કરના, ગ્લાન મુનિકે લિયે વિમોહાય  
તન, દિતસ્વરૂપ, સુખસ્વરૂપ, ક્ષમસ્વરૂપ, નિશ્ચેપસ્વરૂપ, એવ આનુગામિક  
રૂપ હોતા હૈ । ઇમ પદોંકી વ્યાખ્યા ઇસી અધ્યયનકે ચતુર્થ ઉદેશક્ષી  
સમાપ્તિમેં કહ વીઃ ગઈ હૈ ॥સૂ૦૨॥

॥ आठवें अध्ययनका पांचवां उद्देश समाप्त ॥ ८-५ ॥

પણ કાલપર્યાય જ છે, કેમ કે અહીં પણ કર્મોંની નિર્જેરાની સમાનતા છે,  
આ માટે જેવા મુનિ અનશન કરીને મક્તપ્રત્યાશ્વાનથી મરણ શાવવાથી કર્મોંનો  
નાશ કરવાવાળા થાય છે માટે મક્તપ્રત્યાશ્વાનપૂર્વક શરીરનો ત્યાગ કરવો  
જ્ઞાન મુનિ માટે વિમોહાયતન, દિતસ્વરૂપ, સુખસ્વરૂપ, ક્ષમસ્વરૂપ, નિશ્ચેપરૂપ,  
અને આનુગામિકરૂપ બને છે આ પદોંની વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના ઉદેશની  
સમાપ્તિમાં કહેવાયેલ છે (સૂ૦૨)

आठमा अध्ययनना पांचवा उद्देश समाप्त ॥८-५॥

## । अथाष्टमाध्ययनस्य षष्ठ उद्देशः ।

पञ्चमोद्देशकथननान्तरमधुना षष्ठः प्रारभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायमभिसम्बन्धः—पूर्वोद्देशे ग्लानस्य भक्तप्रत्याख्यानमरणसमिहितम्; अत्र च धृति-संहननादिवलयुक्त एकत्वभावनां भावयन् इङ्गितमरणं विदधीतेति वक्तव्यमस्ति, तत्प्रसङ्गेन पूर्वं तस्य वस्त्रपरित्यागं दर्शयति—‘जे भिक्खू’ इत्यादि ।

मूलम्—जे भिक्खू एगेण वत्थेण परिवुसिए पायविइएण, तस्स णं नो एवं भवइ—विइयं वत्थं जाइस्सामि । से अहेसणिज्जं वत्थं जाएज्जा, अहापरिग्गहियं वत्थं धारिज्जा जाव गिम्हे पडिवन्ने अहापरिजुञ्जं वत्थं परिट्ठविज्जा, अदुवा एगसाडे अदुवा अचेले लाघवियं आगममाणे, तवे से अभिसमन्नागए भवइ, जहेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ॥ सू० १ ॥

छाया—यो भिक्षुरेकेन वस्त्रेण पर्युषितः पात्रद्वितीयेन, तस्य खलु नो एवं भवति द्वितीयं वस्त्रं याचिष्ये, स यथैषणीयं वस्त्रं याचेत्, यथापरिशुद्धीतं वस्त्रं धारयेद् यावद् ग्रीष्मः

### ॥ आठवें अध्ययनका छटा उद्देश ॥

पञ्चम उद्देशके कहनेके बाद अब षष्ठ उद्देशका कथन प्रारम्भ होता है । इस उद्देशका पूर्व उद्देशके साथ इस प्रकारसे संबंध है—वहाँ ग्लान मुनिके लिये भक्तप्रत्याख्यानमरण धारण करना कहा है । इस उद्देशमें धृति, संहनन आदि बलविशिष्ट मुनि एकत्वभावनाको भाता हुआ इङ्गितमरण करे, यह कहा जायगा, इसलिये उसीके प्रसंगसे पहिले उसके वस्त्रोंका परित्याग सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—“जे भिक्खू” इत्यादि ।

### आठमा अध्ययनना छोटा उद्देश

पाचमो उद्देश कडेवाया आठ हवे छोटे उद्देश शर थाय छे आ उद्देशमा आगणना उद्देशनी साथे आ प्रकारथी सगंध छे—त्या ग्लान मुनि माटे लक्ष्म-प्रत्याख्यान मरण धारण करवा कहु छे, आ उद्देशमा धृति, संहनन, आदि अण-विशिष्ट मुनि एकत्वभावनाने भावने धरित मरण करे, येम कडेवामा आवशे. आ माटे तेना प्रसंगथी पडेला तेना वस्त्रोना परित्याग सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—“जे भिक्खू” इत्यादि.

प्रतिपक्षः, यथापरिनीयं वस्त्र परिष्ठापयेत्, अथवा एकघाट, अथवा अथेसो सप्त-  
घनिकमागमयन्, तपस्तस्य अमिममन्वागतं भवति, यदेतद् मग्वता प्रवेदितं  
तदेवाभिसमेस्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्यक्स्वमेव सममिजानीयात् ॥ सू०१ ॥

टीका—‘यो मिधु’—रित्यादि, स्पष्टार्थमेतत्सूत्रम्, विशेषस्त्वयम्—अत्र  
‘पात्रद्वितीयेनैकेन वस्त्रेण’ इति व्याख्येयम् । सू०१॥

अभिग्रहविशेषेण पात्रद्वितीयं वस्त्रमेकं द्रुपतो मित्ता सपदि मोक्षपयमाकृता  
परिकर्मितमतेल्लघुकर्मत्वादेकत्वभावनाऽध्यवसायमाह—‘जस्म णं’ इत्यादि—

इस सूत्रमें साधुके लिये एक वस्त्र और एक पात्र रखनेका कल्प प्रद-  
र्शित किया गया है; अतः एक वस्त्र और एक पात्र रखते हुए किसी भी समय  
ऐसी इच्छा न करे कि मैं दूसरे वस्त्र या पात्रकी याचना करूं। वह मुनि  
यथायोग्य एषणीय वस्त्रकी ही याचना करे और जिस प्रकारका मित्त  
जाय वही धारण करे। घीघ्न षट्पु आने पर वह एक वस्त्र रखना चाहे  
तो रखे, अथवा जीर्ण हो जाने पर उस जीर्ण वस्त्रका त्याग करके अथेस  
धन जावे, और जिस प्रकार भगवानने आगममें कहा उसी प्रकार संय-  
माधरण करता हुआ मुनि समभावसे विचरें ॥ सू०॥१॥

अभिग्रहविशेषसे एक पात्र और एक वस्त्रको रखनेवाला मिधु जो  
कि शीघ्र मोक्षके पथ पर आरुढ़ होनेका अभिलाषी बना हुआ है, तथा  
परिकर्मितमतिवाला है, लघुकर्मों होनेसे उसके एकत्वभावनाका अध्यव-  
साय होता है; इस लिये एकत्वभावनाके अध्यवसायका कथन करते  
हैं—“जस्म णं भिक्खुस्स” इत्यादि ।

आ सूत्रमा साधु भारे जेक वस्त्र अने जेक पात्र सभवाने कल्प  
प्रदर्शित करैल छे जेकी जेक वस्त्र अने जेक पात्र सपदिने कौछ पवु बभउ  
जेवी छिछा न करै छे दुं जीका वस्त्र अने पात्रनी सायना करूं  
ते मुनि यथायोग्य एषणीय वस्त्रनी ज सायना करै, अने जेवा प्रकारनी भवी  
जाय ते धारण करै, जीघ्न षट्पु अपववाधी ते जेक वस्त्रसभवा आछे ते सजे  
अथवा लघु यज्जवाधी ते लघु वस्त्रने त्याग करीने अथेस जनी जाय, अने  
जे प्रकारे भगवाने आगममा कहु तेवा प्रकारे संयमाधरण करीने मुनि  
समभावधी विचरे (सू०१)

अभिग्रहविशेषधी जेक पात्र अने जेक वस्त्रने साधुवाणा मिधु के जे  
शीघ्र मोक्षना मात्र पर आरुढ़ दीवाना अभिलाषी जनैल छे तथा परिकर्मित मति  
वाला छे लघुकर्मों बोवाधी तेने जेकत्वभावनाना अध्यवसाय भाव छे तेधी  
जेकत्वभावनाना अध्यवसायनु कथन करै छे—‘जस्म ण भिक्खुस्स’ इत्यादि

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—एगे अहमंसि, न मे अत्थि कोइ, न चाहमवि कस्सवि, एवं से एगागिणमेव अप्पाणं समभिजाणिज्जा, लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ जाव समभिजाणिया ॥ सू० २ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—एकोऽहमस्मि, न मेऽस्ति कोऽपि, न चाहमपि कस्यापि, एवमसौ एकाकिनमेवात्मानं समभिजानीयात्, लाघविकमागमयन्, तपस्तस्याभिसमन्वागतं भवति यावत् समभिजानीयात् ॥ सू० २ ॥

टीका—‘यस्ये’—त्यादि, यस्य भिक्षोश्चेतसि एवं=वक्ष्यमाण भवति, तदेव दर्शयति—‘अह’—मित्यादि—अहम् एकोऽस्मि, न मेऽस्ति कोऽपीतरः सहायकः, न चाहमपि कस्य चिदपि परस्य दुःखविमोचने सहायकोऽस्मि, सर्वेऽपि स्वकृतकर्मफलभोक्तारः सन्त्यतो न कोऽपि मम सहायकः, नाप्यहं कस्यापि साहाय्यं कर्तुमर्होऽस्मीति परमार्थः, अतो योऽर्थः सम्पन्नस्तमाह—‘एव’ मित्यादि, एवं—पूर्वोक्तप्रकारेण स्वस्य सहायकासम्भवात् साहाय्यकरणासम्भवाच्चेत्यादिरूपेण असौ मुनिः आत्मानं=निजात्मानम्, एकाकिनमेव सहायरहितमेव समभिजानीयात्,

जिस भिक्षुके चित्तमें इस प्रकारका विचार होता है कि—“मैं एक हूँ, यहां मेरा दूसरा कोई सहायक नहीं है, मैं भी किसी दूसरेके दु खोंको दूर करनेमें सहायक नहीं हो सकता हू, जितने भी प्राणी हैं वे सब अपनेर किये हुए कर्मोंके फलको भोगते हैं, इस लिये मैं उन्हें इस कर्मके फलके भोगमें थोड़ी भी सहायता करनेवाला नहीं हो सकता हूँ और न दूसरे भी मुझे इस विषयमें सहायता प्रदान करनेवाले ही सकते हैं, इस प्रकार न कोई अपना सहायक है और न मैं दूसरोंका ही सहायक हू ” ऐसा विचार कर यह मुनि अपनी आत्माको सहायरहित ही मानता है, इसका यह प्रभाव होता है

जे ब्रिह्जुना चित्तमा एवा प्रकारना विचार होय छे डे—“हुं अके छु, अहिं भारे भीजे कोर सहायक नथी, हुं पणु कोर भीजना डु भोने दूर करवाभा सहायक अनी शकतो नथी, जेटला प्राणी छे ते अथा पोतपोताना करेला कर्मोना इणने भोगवे छे, आ माटे हुं तेभने अे कर्मना इणने भोगववाभा थोडी पणु सहायता करवावाणो थर शकतो नथी, अने अने पणु भीज आ विषयभा सहायता करवावाणा अनी शकता नथी आ प्रकारे कोर भारे सहायक नथी अने हुं पणु भीजने सहायक अनी शकतो नथी ” एवो विचार करी अे मुनि पोताना आत्माने सहायरहित अे माने छे. एसे अे प्रभाव होय छे डे ते



‘નરકનિગોદાદિકો’ સ્વપારાવારમજ્જદાત્મસન્તારણે સ્વાત્માનં પિના કોઽપિ ન કર્મધારઃ’ इत्यवधार्य सम्प्राप्त रोगशोकादिक सन्तापकारकमितरकृतप्रलक्षण स्पृहारहितो—‘ मत्कृत्वत्वेन मयैषोपमोक्तव्य’—मिति निश्चिन्तान सर्वं सहैवेति भावः । कृतो दुःखादिकं सोढव्यमित्याह—‘ लाघविक ’—मित्यादि, अयं वृत्रमाग एतस्यैषाम्ययनस्य चतुर्थो देशे व्याख्यातः । इत्यलम् । मृत्रमिदं चतुषु पुस्तकेषु नृपसम्भवमपि क्वचिदुपलभ्यतया व्याख्यातमिति विभावनीयम् ॥ ६० २ ॥

अस्याप्ययनस्य त्रितीयोद्देशे उद्गमोत्पादनैपणाऽभिहितः, पञ्चमोद्देशे च व्रजै-  
पणा कथिता, साम्प्रतं प्राप्तेपणासुपदर्शयितुमाह—‘ से मिषसू ’ इत्यादि ।

कि इस मुनिके चित्तमें यह दृढ़ धारणा हो जाती है कि “ नरक और निगोदादिकोंके दुःस्वरूपी समुद्रमें डूबते हुए मेरे आत्माको बर्हासे पर लगानेवाला यदि कोई है तो वह अपनी आत्मा ही है-इसके अतिरिक्त और कोई नहीं।” इस प्रकारकी धारणासे प्राप्त हुए सन्तापकारी रोग और शोक आदिमें अपने लिये दूसरोंसे की जानेवाली रक्षा एवं धारणाकी स्पृहासे रहित हो जाते हैं, और इस निश्चयसे कि यह सब मेरे द्वारा ही किया गयाहै अत मृष्टे ही भोगना चाहिये इस प्रकार मोक्ष कर सब कुछ सहन करता है। दुःखादिकोंके सहनेसे लाभ क्या होता है ? तथा यह दुःखादिक सहन क्यों करता है ? इसका उत्तर मृष्टकारने “ लाघविय आगममाणे ” से लेकर “ समभिजागिया ” यहाँ तकके पदों द्वारा दिया है । इन समस्त पदों का स्पष्ट रूपसे अर्थ इमी अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें लिखा जा चुका है ॥ ६० २ ॥

मुनिना चित्तमा ज्येवी दृढ धारणा जनी रहते छे के ‘ नरक અને નિગોદાદિકોના દુઃખરૂપી સમુદ્રમાં ડુબતા મરા આત્માને ત્યાથી પાર લગાવનાર એ કોઈ હોય તે તે મારે પોતાનો જ આત્મા છે, તેના સિવાય બીજો કોઈ નથી. ’ આ પ્રકારની ધારણાથી પ્રાપ્ત થયેલા સન્તાપકારી રોગ અને શોક આદિમાં પોતાને મારે, બીજાઓથી ધનાર વ્યય અને શરણની સ્પૃહાથી સ્થિત થઈ બચ છે અને આજ નિઃશ ધર્મી કે આ બધું માત્ર દ્વારા જ હસાયેલ છે અને મારે જ ભોગવતું ભોષ્યું આ પ્રકારે સમજને બધું સહન કરે છે કે દુઃખ રિકને સહેવાથી લાભ શું મળે છે ? તથા એ દુઃખારિકને સહન કેમ કરે છે ? એને ઉત્તર સૂત્રકારે ‘ લાઘવિય આગમમાણે ’ થી લઈ “ સમભિજાગિયા ” અર્થે મુખીના પદો દ્વારા આપેલ છે આ સમસ્ત પદોને સ્પષ્ટ રૂપથી અપ આ અધ્યયનના આશા ઉદ્દેશમાં બતાવવામાં આવેલ છે. (સુ. ૨)

મૂલમ્—સે મિક્ત્વૂ વા મિક્ત્વુણી વા અસણં વા ૪ આહારેમાણે  
નો વામાઓ હણુયાઓ દાહિણં હણુયં સંચારિજ્જા આસાણમાણે,  
દાહિણાઓ હણુયાઓ વામં હણુયંનો સંચારિજ્જા આસાણમાણે,  
સે અણાસાયમાણે લાઘવિયં આગસમાણે, તવે સે અભિસમન્ના-  
ગણ ભવઈ, જમેયં ભગવયા પવેઈયં તમેવ અભિસમિચ્ચા સવ્વઓ-  
સવ્વત્તાણ સમત્તમેવ સમભિજાણિયા ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—સ મિક્ત્વૂર્વા મિક્ત્વૂકી વા અશનં વા ૪ આહારયન્ નો વામતો દ્વનુતો  
દક્ષિણં દ્વનું સંચારયેદાસ્વાદયન્, દક્ષિણતો દ્વનુતો વામં દ્વનું નો સંચારયેદાસ્વાદયન્,  
સઃ અનાસ્વાદયન્ લાઘવિકમાગમયન્, તપસ્તસ્પામિસમન્નાગતં ભવતિ, યદેતદ્ ભગવ-  
તા પ્રવેદિતં તદેવામિસમેત્ય સર્વતઃ સર્વાત્મતયા સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—‘સમિક્ષુ’—રિત્યાદિ, સઃ=પૂર્વોક્તરૂપઃ મિક્ત્વૂર્વા=સાધુર્વા મિક્ત્વૂકી  
વા=સાધ્વી વા અશનં વા ૪ ચતુર્વિધમ્ ઉદ્ગમોત્પાદનૈષણાપરિશુદ્ધં યથાપ્રાપ્તં ગૃહીતં  
ગ્રહણૈષણાદિદોષરહિતં વિગતાઙ્ગારધૂમાદિકમેવ શુક્તીત, રાગદ્વેષાભ્યાં હેતુભૂતાભ્યા-

હસ અધ્યયનકે ઢિતીય ઉદ્દેશમે ઉદ્ગમ ઉત્પાદન ઓર ંષણા કહી  
ગઈ હૈ । પંચમ ઉદ્દેશમે ગ્રહણ ંષણા વર્ણિત હુઈ હૈ, અથ હસ સમય ગ્રાસ  
ંષણાકા વર્ણન કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—“સે મિક્ત્વૂ” ંત્યાદિ ।

પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાલા સાધુ અથવા સાધ્વી ંસે ચારોં પ્રકારકે આહાર  
કો જો ઉદ્ગમ ઉત્પાદન ંર ંષણાસે પરિશુદ્ધ હૈ, જિસ સમય જો મી  
જિતને રૂપમે પ્રાસ હુઆ હૈ, ગ્રહણ-ંષણા આદિ દોષોંસે જો રહિત હૈ,  
ંર ંંગાર ંવં ધૂમાદિક દોષ જિસમે નહીં હૈ વૈસે આહારકો મોગવે-  
ઉપયોગમે લાવે । ંંગાર ંવં ધૂમાદિક દોષોંકે કારણ રાગ ંર દ્વેષ હૈ,  
હનસે હી વહ આહાર ંઙ્ગાર ંવં ધૂમાદિકદોષવિશિષ્ટ હોતા હૈ । રાગ

આ અધ્યયનના ધીજ્ઞ ઉદ્દેશમા ઉદ્ગમ ઉત્પાદન અને ંષણા કહેવામા  
આવેલ છે પાત્રમા ઉદ્દેશમા ગ્રહણ ંષણા કહેવાયેલ છે હવે આ સમયે ગ્રાસ  
ંષણાનુ વર્ણન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—“સે મિક્ત્વૂ” ંત્યાદિ

પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળા સાધુ અથવા સાધ્વી ંવા પ્રકારના આહારને કે જે  
ઉદ્ગમ ઉત્પાદન અને ંષણાથી પરિશુદ્ધ છે, જે વખતે જે પણ જેટલા સ્વરૂ-  
પમા પ્રાસ થયેલ છે, ગ્રહણ ંષણા આદિ દોષોંથી જે રહિત છે અને ંંગાર  
અને ધૂમાદિક દોષ જેમા નથી, ંવા આહારને મોગવે-ઉપયોગમા લાવે.  
અંગાર અને ધૂમાદિક દોષોના કારણ રાગ અને દ્વેષ છે. આનાથીજ તે આહાર

મજ્જારૂમાદિદોષદુષ્ટમણનાદિક્ જાયતે, રાગદ્વેષી સરસનીરસાહારોપલક્ષ્મદેતુના  
 જાયતે । કારણમન્તરા કાયોત્પચેરદર્શનાદિસિ રસોપલ્લન્ધિકારણપરિહારમેવ પ્રદર્શ-  
 યતિ-‘આહારયત્તિ’-સ્વાદિ, સ મિધુરજનં ષા ધ અજ્ઞનાદિકમ્ આહારયન્=  
 મજ્જાનઃ, આસ્વાદયન્=વદજ્ઞનાદિકં વર્ષયન્ વામતો હનુતઃ=વામહનુતઃ આદાય રસ-  
 સ્વાદાય દક્ષિણં હનુ નો સજ્જારયેત્, અપિ વાજ્ઞનાદિક્માસ્વાદયન્ સમિધુઃ દક્ષિ-  
 ણ્તો હનુત્=દક્ષિણહનુતો મૂલીત્વા વામં હનુ ન સજ્જારયેત્, તાદૃશ્વાસ્વાદન-સજ્જારણયોઃ  
 કૃતયોઃ સતો રસોપલ્લન્ધ્યા રાગ-દ્વેષજ્ઞન્યા અજ્ઞાર-પૂમાદિદોષા જાયતે, અતસ્તથા  
 કૃત્વા નો આસ્વાદયેદિત્યાશ્ચ । યો નાસ્વાદયતિ તમાશ્રિત્ય ક્ષયયતિ-‘સ’

और द्वेष होनेका कारण भी सरस और नीरस आहारकी प्राप्ति है । इससे  
 ही राग और द्वेष ये दोनों उसमें उत्पन्न होते हैं । कारण के बिना कार्यकी  
 उत्पत्ति नहीं होती है इस लिये सूत्रकार यहाँ पर रसोपलब्धिरूप कारण के  
 परिहारका प्रदर्शन करते हुए कहते हैं—मह मिधु जिस समय आहार  
 करे उस समय चबाते हुए उस आहारका रसास्वादके निमित्त मुँह  
 में एक तरफसे दूसरी तरफ परिवर्तन न करे । यदि घ्रास दक्षिणकी  
 दाढ़ाओंके नीचे रखा है तो उसे उन्हीं दाढ़ाओं द्वारा चबावे—वामतरफ  
 न फेरे, यदि वामयाजूकी दाढ़ाओं तले उसे रखा है तो उन्हींसे उसे  
 चबावे—दक्षिणकी तरफ उसे न ले जावे, इस प्रकार के परिवर्तनसं  
 आहार के रसकी उपलब्धि होती है अतः इस प्रकार का चबाना और  
 परिवर्तन करना, ये दोनों साधु क लिये रसास्वाद के निमित्त हेय है ।  
 ऐसा करनेसे रसकी उपलब्धि होगी और फिर उससे रागद्वेषके कारण

અચાર અને પૂમાદિક દોષવિશિષ્ટ યાય છે પણ અને દ્વેષ હોવાનું કારણ પણ  
 સરસ અને નિરસ આહારની પ્રાપ્તિ છે તેનાથી જ તે બન્ને તેમાં ઉત્પન્ન થાય  
 છે કારણના વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થતી નથી આ માટે સૂત્રકાર અહિં રસની  
 ઉપલબ્ધિરૂપ કારણના પરિહારનું પ્રદર્શન કરીને કહે છે કે તે ભિક્ષુ જે સમય  
 આહાર કરે તે સમય આવતી નખતે તે આહારના રસાસ્વાદ માટે મોઢામાં જોઈ  
 વશ્કથી બીજી વશ્ક ફેરફાર ન કરે. કદાચ આસને દક્ષિણ દારોની નીચે રાખેલ  
 દોષ તો તેને જો જ દારો ઢાસ આવે બીજી વશ્ક ન ફેરવે કદાચ બીજી  
 બાજુની દારો નીચે રખાએલ હોય તો તેનાથી જ આવે આગી વશ્ક તેને ન  
 હાઈ જાય. આ પ્રકારના પરિવર્તનથી આહારના રસની ઉપલબ્ધિ થાય છે માટે  
 આ પ્રકારથી આવવું અને પરિવર્તન કરવું જો બન્ને સાધુ માટે હેય છે જોમ  
 કરવાથી રસની ઉપલબ્ધિ થશે અને પછી તેનાથી તેને તમ અને દ્વેષના

इत्यादि—सः पूर्वोक्तो भिक्षुः अनास्वादयन्=हन्वन्तराद्वन्वन्तरेऽशनादिसञ्चारमकुर्वन्  
लाघविकम्=आहारलाघवम् आगमयन्=विदधद् भवति, एतादस्य तस्य मुनेः तपः  
समन्वागतं भवतीति पूर्ववत् । स्ववृद्धिपरिकल्पितत्वनिरासायाह—‘यदेत’—दित्यादि,  
यत्=भोजनविधानं दोषरहितम् एतत् सर्वं भगवता=सर्वज्ञेन प्रवेदितं=प्ररूपितम्, तत्-  
स्तदेव=पूर्वोक्तमेव अभिसमेत्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्यक्त्वमेव समभिजानीयादि-  
त्यादेर्व्याख्या पूर्वोक्तदिशाऽवसेया ॥ सू० ३ ॥

भूत अंगार-धृमादिक दोष उत्पन्न होंगे, इसलिये इन दोषों से बचने  
के लिये साधु इस तरह से भोजन-आहार न चखावे । जो साधुजन  
इस प्रकार से भोजनको नहीं चखाते हैं—अर्थात् एकजबड़े से दूसरे जबड़े  
तरफ उसे रसास्वाद के निमित्त परिवर्तित नहीं करते हैं, इससे आहा-  
रविषयक रसास्वाद न आनेसे वे रागद्वेषकी लघुता करदेते हैं । इस  
परिस्थितिमें जो भी उन्हें अल्पमात्रामें शुद्ध निर्दोष विधि-अनुसार  
आहार उपलब्ध होता है वही उन्हें ग्राह्य होनेसे मुनिके तपकी प्राप्ति  
और वृद्धि होती रहती है । साधुके लिये जो यह निर्दोष भोजनका  
विधान कहा है वह सब भगवान् सर्वज्ञ द्वारा प्ररूपित ही कहा गया है,  
इसलिये इस पूर्वोक्त विधान को सर्व प्रकार एवं सर्वात्मरूपसे सत्य ही  
जानना चाहिये ।

भावार्थ—चाहे साधु हो या साध्वी हो आहारको बिना रसास्वाद-  
लिये ही करें । यह बात साधुको तब ही बन सकती है कि जब वह

कारण अंगारधूमदिक दोषो उत्पन्न थसे आ भाटे खेवा दोषोथी  
अथवा भाटे साधु आ रीते आहारने आवे नहि जे साधुजन आ  
प्रकारथी खोजन आवता नथी अर्थात् जेक जडभाथी भोजन जडभा तरङ्ग तेने  
रसास्वाद निमित्त श्रेयता नथी खेथी आहारविषयक रसास्वाद न आववाथी  
तेखो रागद्वेषनी लघुता करी दे छे आ परिस्थितिमा जे पणु तेने अल्प मात्रामा  
शुद्ध निर्दोष विधि अनुसार आहार भणे छे तेज खेने ग्राह्य होवाथी खेनाथी  
तपनी प्राप्ति खेने वृद्धि तेने थती रडे छे साधु भाटे जे आ निर्दोष  
आहारनु विधान कडेल छे ते पणु लगवान सर्वज्ञद्वारा प्ररूपित जे अर्हो कडे-  
वायु छे, आ भाटे आ पूर्वोक्त विधानने सर्व प्रकारे खेने सर्वात्मरूपथी  
सत्यज मानवुं जेथं खे.

भावार्थ—जबे साधु होय अगर साध्वी आहारने रसास्वाद लीधा बिना  
आरोगे आ बात साधु भाटे खेने छे ते खेने ते आहारने

एतादृशस्य मिथोरन्तप्रान्तसेचिनः परिशुष्कमांसशोणितसकलकायक्रियायाम्-  
सोदतो देहपरित्यागबुद्धिः समुदेतीति दर्शयति- 'नस्त ण भिक्खुस्स'-इत्यादि।

मूलम्—जस्त ण भिक्खुस्स एव भवइ—से गिलामि च खलु  
अह इमंसि समय इम सरीरग अणुपुव्वेण परिवहित्तए, से  
अणुपुव्वेण आहार सवट्टिज्जा, अणुपुव्वेण आहार सवट्टिच्चा  
कसाए पयणुए किच्चा समाहियठ्ठे फलगावयट्ठी उट्ठाए  
भिक्खू अभिनिव्वुड्ढच्चे ॥ सू० ४ ॥

छाया—यस्य खलु मिथोरेवं भवति—तद् ग्मायामि च खलु अहमस्मिन् समये  
इदं शरीरकमानुपूर्व्वां परिवोदुम्, स आनुपूर्व्यां आहारं सपत्तयेत्, आनुपूर्व्यां  
आहारं सवर्त्य कपायान् प्रतनुकान् कृत्वा समाहितार्चः फलकापदर्यां उत्पाप  
मिधुरमिनिर्वाणं ॥ सू० ४ ॥

आहार का मुख्यमें इधर उधर परिघर्तन न करे । आहार का स्वाद न  
मानेसे 'मोजनमें लघुता होती है उससे तपकी प्राप्ति और उसकी वृद्धि  
साधुके होती है । यह सय आहारविषयक कथन भगवान सर्वज्ञद्वारा प्रक-  
पित है, वही यहाँ कहा गया है इनलिये इस पर पूर्ण विश्वास करें ॥ सू० १ ॥

जो मुनि अत प्रान्त आहारका सेवन करता है और इसी कारणसे  
जिसके शरीरके मांस और शाणित शुष्क हो चुके हैं, और इसीलिये जो  
समस्त शारीरिक क्रियाओंके करनेमें असमर्थ बना हुआ है उसके  
चित्तमें इस देहको परित्याग करनेकी बुद्धि जाग्रत होती है, इस विषयको  
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—“जस्त ण भिक्खुस्स” इत्यादि।

ખાટે અવળે ન ફેરવે આહારને સ્વાદ ન આનવાથી લોભનમાં લગુતા થવાથી  
તપની પ્રાપ્તિ અને તેની વૃદ્ધિ સાધુને માથ છે આ અવળુ આહાર વિષેનુ કથન  
ભગવાન સવજ્ઞ દ્વારા પ્રકૃપિતજ આદિ કહેવામાં આવેલ છે એ ખાટે તેના ઉપર  
વિશ્વાસ કરવે. (સૂ૦૩)

જે મુનિ અન્ત-પ્રાન્ત આહારનુ સેવન કરે છે અને તેના કારણથી  
તેનું લોહી અને માથ સુકાઈ બચ છે તેનાથી સમસ્ત શરીરની ક્રિયાઓ કર  
વામાં અસમર્થ બનેલ છે તેના ચિત્તમાં આ દેહનો ત્યાગ કરવાની બુદ્ધિ બાજવ  
માથ છે આ વિષયને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે- 'જસ્ત ણ ભિક્ખુસ્સ' ઈત્યાદિ.

टीका—‘यस्ये’—त्यादि, यस्य=एकत्वभावनाभावितान्तकरणस्य भिक्षोः=अशनादिपु लघुतामुपगतस्य मुने. खलु चेतसि एवं=वक्ष्यमाणं भवति, तदेवाह—‘तद्’ तद्यथा, ‘च’ शब्दः समुच्चायकः, अत एवान्तप्रान्ताशनसञ्जातरोगाभिभूतः, अहं खलु अस्मिन् समये प्रतिक्षण शरीरस्य शीर्यमाणत्वाद् ग्लायामि=ग्लानतामुपगतोऽस्मि, इदम्=औदारिकं शरीरकं—शीर्यते=विदीर्यते यत्तच्छरीरं, शरीरमेव शरीरकम्, आनुपूर्व्यां=समुचितावसरावश्यकर्तव्यक्रियया परिवोहुं=तत्र व्यापारयितुं न शक्नोमि, इति विचार्य च स.=मुनिः, आनुपूर्व्यां=चतुर्थ-षष्ठा-सृष्टमाऽऽ-चामाम्लादिक्रिया, आहारम्=अशनादिकं संवर्तयेत्=सक्षेपयेत् ।

नन्वानुपूर्वी पुनर्द्वादशवर्षसंलेनारूपा कुतो न गृह्यते? इति चेन्न-ग्लानिमुपगतस्य तच्छरीरस्य द्वादशवर्षकालिकावस्थानासम्भवात्, अतस्तत्कालसमुचितयाऽऽनु-

जो मुनिका अन्तःकरण एकत्व-भावनासे भावित है, और आहार आदि भी जिसका कम हो गया है उसके चित्तमें इस प्रकारका विचार आता है कि—मैं इस समय अन्त प्रान्त आहार के सेवन करनेसे रोगाक्रान्त हो चुका हूं, शरीर भी प्रतिक्षण अपने कर्तव्यपथसे क्षीण हो रहा है—गिथिल बनता जा रहा है, इसलिये योग्य अवसरमें जिनर आवश्यक क्रियाओंको करना चाहिये वे अब इस शरीरद्वारा पूर्णरूपसे नहीं हो सकती हैं। ऐसा विचार कर वह ग्लान मुनि चतुर्थ-षष्ठ-अष्टम भक्तसे, एवं आयम्बिल आदि तपसे आहार आदिको कम कर देवे ।

शङ्का—बारह वर्षकी संलेखनारूप आनुपूर्वीका आपने यहां ग्रहण क्यों नहीं किया ?।

उत्तर—यह शङ्का ठीक नहीं है, क्यों कि जो मुनि ग्लान-अवस्था-बीमारी हालत-में पड़ा हुआ है, उसका शरीर बारह वर्षतक स्थिर नहीं रह

ने मुनिनु अन्तःकरण एकत्व-भावनाथी भावित छे अने आहार आदि पणु नेनो थोडो थरु गयेल छे तेना चित्तमा अवे प्रकरोना विचार आवे छे के-हुं अन्तप्रान्त आहार लेवाथी आ समये रोगग्रस्त अनेल छु, शरीर पणु प्रतिक्षणु पोताना कर्तव्यथी क्षीणु थरु रहेल छे—निर्भण अनी रहेल छे, आ माटे योग्य अवसरमा ने ने आवश्यक क्रियाओ करवी नेछे अे ते डवे आ शरीरथी पूर्ण स्वरूपथी अनी शकती नथी अेवो विचार करी ते ग्लान मुनि यत्तच्छरीरकं अकृतथी, आयम्बिल आदि तपथी आहार आदि ओछा करता रहे.

शङ्का—बार वर्षकी संलेखनारूप आनुपूर्वीको आपने ग्रहण कैसे नहीं करे ?।

उत्तर—आ शङ्का ठीक नहीं, केमके ने मुनि ग्लान अवस्था-बीमारी हालत-मा पडेल छे, अेतु शरीर बार वर्ष सुधी स्थिर रही शकतुं नथी, आ

पूर्व्यां द्रव्यसंलेखनयाऽशनादिक संक्षेपयेदित्याशयः । स च द्रव्यसंलेखनया संसि-  
 ख्यान्यदपि विदधीतेत्याह—'से' इत्यादि, आनुपूर्व्यां=तपःक्रमेण सर्वस्य=अशनादिक  
 संक्षिप्य तदनु कपायान्=क्रोधादीन् मतनुकान्=कृशान् कृत्वा 'समाहितार्चः' समा-  
 हिता=सम्यग् व्यवस्थापिता अर्चा=शरीरं येन स समाहितार्चः=नियमितशरीरव्यापारः  
 यद्वा-समाहिता=सम्यक् सम्पादिता अर्चा=प्रसन्नस्तलेभ्या येन स समाहितार्चः=परिशुद्धा-  
 ध्यवसायः, अथ वा समाहिता=मन्त्रमिता अर्चा=क्रोधाद्यध्यवसायरूपा लेभ्या=स्वाहा येन  
 स समाहितार्चः, 'फलकापदर्थी' = फलमेष फलक कर्मसंपणात्मकं, तेन फलकेन आपदि=

सकता इसलिये उस कालमें समुचित द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीसे यह  
 अशनादिकको कम करे, एसा कहा है, और इसी विचार से चतुर्थ-षष्ठ  
 आविरूप आनुपूर्वीका यहां ग्रहण किया गया है।

इस द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीसे आहारकी कृशता कर फिर वह  
 साधु उसके बाद क्रोधादिक कपायोंको कृश करे। उनके कृश हो जाने  
 पर फिर वह अपने शरीरको नियमित व्यापारमें लगावे। अथवा अपने  
 परिणामोंको शुद्ध रखे। अथवा क्रोधादिक अध्यवसायरूप स्वाहाको  
 शान्त करे। इस तरहकी प्रवृत्तिसे यह मुनि पण्डितमरण में उद्योग  
 करके कर्मक्षपक तपकी विधिसे संसिद्ध शरीरवाला बनकर महर्षियों  
 द्वारा तथा तीर्थकर गणधरों द्वारा समाचरित मार्गका अनुगामी होता  
 हुआ इंगितमरण करे।

फलकापदर्थी—इस पदमें फलक १, आपद् २, अर्थी ३, ऐसे तीन शब्द  
 हैं। कर्मोंका जो क्षपण होता है, वह फलक है, संसारमें परिभ्रमण करनेका

भाटे जे भागमा समुचित द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीधी ते अशनादिकने कोषण  
 करे, कोवु कर्षु छे अने आ व विचारधी यत्त-छु आद्विष आनुपूर्वीनि अर्चि  
 अद्वेष करवाभा आवेल छे

आ द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीधी आहारनी कृशता-अथवा करी करी ते साधु  
 कोवु पक्षी कोभादिक अशयाने कर करे आ यक्षु छेअथ वाह पक्षी ते चोत्ताना शरीरने  
 नियमित व्यापारमा लगावे अथवा चोत्ताना परिवर्तमाने शुद्ध राखे अथवा  
 क्रोधादिक अध्यवसायरूप स्वाहाने शान्त करे आ रीतनी प्रवृत्तिधी  
 ते मुनि पंडित भयषु भाटे उद्योगशील अनी कर्मक्षपक तपनी विधिधी संसिद्ध  
 शरीरवाला अनी महर्षिकोदारा तथा तीर्थकर गणधरों द्वारा सुव्यापेला मार्गमा  
 अनुगामी अनी इंगित भयषु करे

फलकापदर्थी—जे पदमा इलक १, आपद् २, अर्थी ३ कोवा त्रयु शब्द छे,  
 अर्थीने के क्षय घाम छे, ते इलक छे-संसारमा परिभ्रमण करवानु नाम आपद् छे अर्थ

संसारपरिभ्रमणरूपायां योऽर्थः=प्रयोजनं स फलकापदर्थः सोऽस्यास्तीति फलकापद-  
र्थीसंसारजनककर्मक्षपणप्रयोजनवान् भिक्षुः=मुनिः उत्थाय पण्डितमरणोद्योगं विधाय  
अभिनिर्वृतार्चः-अभिनिर्वृता=कर्मक्षपकतपोविधिना संसिद्धा अर्चा=शरीरं यस्य  
स तथोक्तः-महर्षिसमाचरितमार्गानुगामी सन् इङ्गितमरणं कुर्यात् ॥ सू०४ ॥

नाम आपद् है, अर्थ शब्दका अर्थ प्रयोजन है, कर्मक्षपणरूप फलकसे  
संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें जो अपने प्रयोजनका अभिलाषी है,  
अर्थात् संसार में भ्रमण करानेवाले कर्मोंको विनाश करनेका ही जिसका  
अभिप्रायरूप प्रयोजन है, वह फलकापदर्थी है। सूत्र में अर्चा शब्दका  
अर्थ शरीरलेख्या या क्रोधादिरूप ज्वाला, ऐसा अर्थ किया गया है।

भावार्थ—मुनिका शरीर जब अपने कर्तव्यमार्गके आचरण करनेमें  
शिथिल हो रहा हो तब उसका कर्तव्य है कि वह संसारजनक कर्मों के  
क्षय करनेका प्रयोजनशील होकर चतुर्थ पण्ड आदि आनुपूर्वीद्वारा  
आहारको, पश्चात् क्रोधादिक कषायोंको कुश करता हुआ इंगितमरणरूप  
संधाराको धारण करे। यह मार्ग महर्षियों द्वारा भी इसी अवसर पर  
पहिले आचरित किया गया है, इस विचारसे वह मुनि भी अपनी शारी-  
रिक क्रियाओंको नियमित कर इस मरणके करनेमें उत्तरोत्तर परिणा-  
मोंकी वृद्धि करता रहे। थोड़ी सी भी शिथिलता इस समय न आने  
पावे, इसकी पूर्ण सावधानी रखे। 'फलकापदर्थी' इस पदसे सूत्रकारने इस

शब्दको अर्थ प्रयोजन से कर्मक्षयरूप इलक्ष्यी संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमा  
ने पोताना प्रयोजनना अलिखापी से, अर्थात् संसारमा भ्रमण कराववा  
वाणां कर्मोना विनाश करवाने से अलिप्रायरूप निश्चय से ते फलकापदर्थी  
से सूत्रमा अर्था शब्दको अर्थ शरीरलेख्या-अटले क्रोधादिरूप ज्वाला, अवे  
अर्थ करवामा आवेल से

भावार्थ—मुनिनु शरीर न्यारे पोताना कर्तव्य मार्गानु आचरण कर-  
वामा शिथिल थाय से त्यारे अनु कर्तव्य से से तेले संसारजनक कर्मोना  
क्षय करवामा प्रयोजनशाणी थर्ध अतुर्थ पण्ड आदि आनुपूर्वीथी आहार अने  
क्रोधादिक कषायोने हर करता करता इंगितमरणरूप संधारे धारण करवो आ  
मार्ग महर्षियोद्वारा पण्ड आन अवसरमा पहिला आचरणवामा आवेल से आ विद्या  
रथी से मुनि पण्ड पोतानी शारीरिक क्रियाओने नियमित करी आवु मरण  
करवा माटे उत्तरोत्तर परिणामोनी वृद्धि करता रहे आ समये थोड़ी पण्ड  
शिथिलता न आवे, अनी पूरुपण्डे स बाण राणे फलकापदर्थी आपदर्थी सूत्रकारे



तादृशमरणाविधिमेवाह—'अणुपविसिधा' इत्यादि ।

मूष्य्—अणुपविसिन्ता गाम वा नगर वा खेड वा कब्बडं वा मडव वा पट्टण वा दोगमुह वा आगर वा आसम वा सन्निवेस वा नेगम वा रायहारिणि वा तणाइ जाइउजा, तणाइ जाइत्तासे तमायाए एगतमवक्कमिउजा, एगतमवक्कमिन्ता अप्पंडे अप्पपाणे अप्पधीए अप्पहरिये अप्पोसे अप्पोदए अप्पुत्तिगपणगदगमद्वियमक्कडासताणए पडिलेहियर पमज्जियर तणाइ सथरिउजा, तणाइ सथरिन्ता इत्थवि समय इत्तरिय कुज्जा, तं सच्छ सच्चवाई ओए तिन्ने छिन्नकहकहे आईयट्टे अणाईए चिन्नाण मेउर काय, सविभूय विरूवरूवे परीसहोवसग्गे, अस्सि विस्सभणाए भेरवमणुचिन्ने सत्थवि तस्स कालपरियाए, जाव आणुगामिय ति वेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—अनुपविश्य ग्राम वा नगरं वा खेट वा कर्बटं वा मडम्बं वा पत्तनं वा, दोगमुखं वा, आगरं वा, आग्रम वा, सन्निवस वा, नेगमं वा, रामभानां वा, वृणानि वा, याथत, वृणानि याचित्वा स तान्यादाय एकात्ते अपक्रमत एकान्तमपक्रम्य भ्रूपाण्ड भ्रूयप्राण भ्रूयबीजे अत्यहरिते भ्रूयारइयाये भ्रूपोदके भ्रूपोचिद्रूपनक वक्रपत्तिकामर्कसंतानक मत्स्यपेक्ष्यर मस्य्यर वृणानि सस्तरेत्, वृणानि सस्तीर्य अप्रापि समय इत्वरिकं कुर्यात्, तत्सस्य सस्यवादी ओबस्तीर्षिच्छिन्नकधक्यः आतीतार्य अनातीतः, स्वस्त्या भिदुरं काय संबिधूय विरूपरूपान् परीपहोपरान् अस्मिन् विधम्मणतया भेरवमनुषीर्षणान्, तत्रापि तस्य कालपार्यायो यावदानुगामिकम्—इति प्रथमि ॥ सू० ५ ॥

प्रकारके मरण करनमें आत्मघातका अभाव प्रकट किया है ॥ सू० ४ ॥

अस इम मरणकी ही विधिकी प्रदर्शन करते हैं—'अणुपविसिन्ता' इत्यादि ।

आवु भरण इत्याभा आ भयान जेव जनतु नधी तेम प्रपट इत ठे (सू० ४)  
जे भरणनीच विधिने प्रथित इत्या सूत्र ४११ ठे ठे—'अणुपविसिन्ता' इत्यादि

टीका—‘अनुप्रविश्ये’—त्यादि, स भिक्षुः ‘ग्रामं’—ग्रसति बुद्ध्यादिगुणानिति ग्रामस्तं, ‘वा’ सर्वत्र पक्षान्तरद्योतको ज्ञेयः, नगरं=प्रसिद्धं, खेटं=पांशुप्राकारवद्धं, कर्बटं=शुलप्राकारवेष्टितम्, मडम्बं-यस्य चतुर्दिक्षु सार्धक्रोडयान्तरे ग्रामादिकं नास्ति तत्,

इंगितभरणका अभिलाषी वह मुनि ग्राम, नगर, खेट, कर्बट, मडम्ब, प्रत्तन, द्रोणमुख, आकर, आश्रम, सन्निवेश, निगम, अथवा राजधानीमें जाकर घासकी याचना करे। घासको लेकर वह पर्वतकी गुफा-आदि एकान्त स्थानमें जावे। वहां कीड़ीआदिकोंके अण्डोंसे रहित, डीन्द्रियादिक प्राणियोंसे रहित, नीवार-धान्यादिकबीजरहित, दूर्वादिरहित, अंकुररहित, हिमरहित, भौम एवं आन्तरिक्ष जलरहित, उत्तिग, पनक, दक-मृत्तिका और मर्कटसन्तानसे रहित, ऐसे स्थानमें उस घासका संस्तारा करे (उसे बिछावे)। संस्तारा करनेके पहिले वह उस स्थानकी अच्छी तरह-वार वार-प्रतिलेखना कर लेवे, प्रतिलेखना कर लेने बाद उसका फिर रजोहरण आदिसे प्रमार्जन करे। बडीनीत एव लघुनीतके स्थानका भी अच्छी तरहसे निरीक्षण करलेवे।

‘ग्रसति बुद्ध्यादिगुणान् इति ग्रामः’—बुद्धिआदि गुणोंका जो ग्राम करता है—अर्थात् जहां पर रहनेसे बुद्ध्यादिक गुणोंमें विशेष उत्कर्षता नहीं आती है उसका नाम ग्राम है। नगर, प्रसिद्ध है। जिसके चारों ओर विशाल ऊँचा धूलि का कोट रहता है वह खेट है। जो छोटे परकोटेसे घिरा होता है वह कर्बट है। जिसकी चारों दिशाओंमें ढाई-ढाई कोश तक ग्रामादिक नहीं होते हैं वह मडम्ब कहलाता है। जहां पर प्रत्येक वस्तु

इंगित भरणका अभिलाषी ये मुनि ग्राम, नगर, खेट, कर्बट, मडम्ब, प्रत्तन, द्रोणमुख, आकर, आश्रम, सन्निवेश, निगम, अथवा राजधानीमा जध घासनी याचना करे. घासने लध ते पर्वतनी शुद्ध वगेरे एकान्त स्थानमा लय, त्या कीड़ी वगेरेना धडाथी रहित, ये धन्द्रियवाणा प्राणीओथी रहित, उत्तिग, पनक, दक-मृत्तिका अने मर्कटसतान-(करोणीयानी लण)थी रहित येवा स्थानमां भिछावे संथारे करता पडेला ते ये स्थानने सारी रीते लध ले अने त्यापछी रनेडरणु वगेरेथी प्रभार्जित करे हरेक रीते ये स्थाननुं संपूर्णपणे निरीक्षण करी वे

ग्रसति बुद्ध्यादिगुणान्, इति ग्रामः—बुद्धि वगेरे शुद्धीना ने ग्राम करे छे, अर्थात् ने स्थाने रहेवाथी बुद्धि आदि शुद्धीमां उत्कर्षता आवती नथी अनु नाम ग्राम छे, नगर प्रसिद्ध छे, नेनी थारे आणु धुणना उया उया टेकरा डोय छे ते खेट छे, ने नाना परकोटाथी घेरायेल छे ते कर्बट छे, नेनी थारे दिशाओमां अढी-अढी

પત્તન=સર્વથસ્તુજાત યમ સુખેન લભ્યતે સ્તુ, સ્વ દ્વિવિધં બલપત્તનં સ્વલપત્તનં ચ, તમ્ બલપત્તન રત્નદ્વીપાદિકં, સ્થલપત્તનં=સ્થપુરાદિકં, દ્રોણમુસ=બલ-સ્વભાગ-મનિર્ગમભાગમ્, યયા-ધુમ્વાપુર્યાદિકમ્, આકરં=હિરણ્યાદિસ્વનિમ્, આશ્રમં=વાપ-સાદીનાં ઘસર્તિ, સન્નિવેશં=સમાગન્તુક્ષ્મરણામાવાસ-સામાન્યજનાવાસં, નિર્ગમં=પ્રચુરતરવણિગાદીનામાવાસં, રાજઘાનીં=રાજસ્થાનમ્, અનુપ્રવિશ્ય તુષાનિ યાચેત, તુષાનિ યાચિસ્વા તાનિ તુષાનિ આદાય=ગૃહીત્વા એકાન્તમ્=નિર્મનસ્થાનં ગિરિકન્દરાદિકમ્ ઉપક્રમેત=ગણ્ઠેઽ, એકાન્તમુપક્રમ્ય ચ-‘અસ્થાપ્ઠે’ અસ્થાનિ=અવિઘમાનાનિ અન્ધાનિ કીટકાદીનાં યમ તથ્ અસ્થાપ્ઠં, તમ્-અન્ધપરિવર્તિતે સ્થાને, અલ્પસ્રષ્ઠોઽમ પ્રકરણે સર્વપ્રાઽમાવાર્યક એવ ધોષ્યઃ । એમ્ અલ્પમાણે=દ્વીન્દ્રિયા

અનાપાસ મિલત્તી છે ઘડ પત્તન છે । યહ દો પ્રકારકા હોતા છે-એક જસ્ત-પત્તન છે ઓર દૂસરા સ્થલપત્તન । રત્નદ્વીપ આદિ જસ્તપત્તન છે । લહપુર (લાહોર) આદિ નગર સ્થલપત્તન છે । જિસમેં આને જાનેકા માર્ગ જલ એવં સ્થલ, હન દોનોસે હોતા છે ઘડદ્રોણમુસ છે, જૈસે ઘર્તમાનમેં બંધઈ આદિ શાહર છે । સુઘર્ણઆદિકી ઉત્પત્તિ કા જો સ્થાન છે ઘડ આકર છે । તાપસ આદિકે નિઘામસ્થાન આશ્રમ છે । પથિકોકે ઠહરનેકે સ્થાનકા નામ સમિ-વેશ છે । જહાં અધિક સંખ્યામેં ઘ્યાપારિવર્ગકા નિવાસ હો વહ નિર્ગમ છે । જિસમેં સ્વર્ય રાજાકા નિવાસ રહતા છે ઘડ રાજઘાની છે ।

इस प्रकरणमें अस्य शब्द अभाव अर्थका द्योतक है । उसिंग, कीडी नगरेका नाम है । पनक-भापामें लीलण-पूरणको कहते हैं, यह जहाँ

કાશ(ગાઉ) કુધી ગામ નથી હોતાં તે મડમ્બ કહેવાય છે અથા હરેક વસ્તુ અન્ન-માસે મળી બધ છે તે પત્તન છે એ એ પ્રકારનાં હોય છે-એક જળ-પત્તન અને ધીનુ સ્થળ-પત્તન, રત્નદ્વીપ આદિ જળ-પત્તન છે લહપુર-લાહોર વિગેરે નગર સ્થળ-પત્તન છે અથા આવા બધાને માર્ગ જળ અને સ્થળ બન્નેથી હીય છે તે દ્રોણમુસ છે તે હાલના ઝુલઈ આદિ શહેર છે સુવર્ણ વગેરેની ઉત્પત્તિનાં એ સ્થાન છે તે આકર-પ્તન છે તાપસ વગેરેનાં નિવાસસ્થાન આશ્રમ છે પથિકોને આશ્રમ આપનારું સ્થાનનુ નામ સન્નિવેશ છે અથા અધિક પ્રમાણમાં વેપારી વર્તનો વસવાટ હોય છે તે નિર્ગમ છે અથા શબ્દો નિવાસ હોય છે તે રાજઘાની છે.

આ પ્રકરણમાં અસ્ય શબ્દ અભાવ અર્થને દ્યોતક છે ઉત્તિમ કીડી નગરાનુ નામ છે પનક-ભાપામાં લીલણ-પૂરણને કહે છે, એ જમીનમાં ધીનુચ

दिप्राणिवर्जिते, अल्पबीजे=नीवार-धान्यादि बीजरहिते, अल्पहरिते=दूर्वादिहरित-  
 वर्जिते 'अल्पावश्याये'—अल्पः=अविद्यमानः अवश्यायो=नीहारो यत्र तत्र  
 =हिमरहिते, अल्पोदके=भौमान्तरिक्षजलरहिते, 'अल्पोत्तिङ्ग-पनक-दकमृत्तिका,  
 मर्कटसन्तानके-उत्तिङ्गः=पिपीलिकानगरादिकः, पनकः=आर्द्रत्वेन पृथिव्यादिस्थितः  
 उल्लिविशेषः 'लीलण-फूलण' इति भाषायाम्, दकमृत्तिका=अप्कायाद्रीभूता मृत्तिका,  
 मर्कटसन्तानकः=लूतातन्तुजालं चैतेपामितरेतरद्वन्द्वे उत्तिङ्ग-पनक-दकमृत्तिका-  
 मर्कटसन्तानकास्ते अल्पाः=अविद्यमाना यत्र तत् तत्र स्थाने गत्वा, तच्चक्षुषा  
 प्रत्युपेक्ष्यर=गुह्यगुह्यदृष्ट्या, अत्र वीप्सायां द्विवचनम्; प्रमृज्यर=रजोहरणादिना  
 सम्मार्ज्यर, तादृशे पूर्वोक्ते स्थाने तृणानि संस्तरेत्, तृणानि संस्तीर्य उच्चारप्रस्र-  
 वणभूमिं प्रत्युपेक्ष्य च संस्तारकस्थितः पूर्वाभिमुखः सदोरकमुखवस्त्रिकोपशोभितमुखः  
 कृतसिद्धनमस्कारः आवर्तितपञ्चपरमेष्ठिमन्त्रो गृहीतचतुर्विधशरण' प्रत्याख्याताष्टा-  
 दशपापः क्षमापितसकलजीवः, अत्रापि समये=एतस्मिन्नवसरे 'अपि' शब्दादन्यस्मि-  
 न्नापि आकस्मिकोपसर्गसमये क्रियमाणत्वग्वर्तनादिक्रियो धृतिसंहननादिवलसमन्वितो

जमीनमें गीलापन रहता है वहां रहती है। अप्कायसे गीली हुई  
 मिट्टीका नाम दकमृत्तिका है। मकड़ीके जालेका नाम मर्कटसन्तान  
 है। ये सब जावजात जहां नहीं है, ऐसे स्थान पर वह अपना  
 घासका संधारा करे, और उस पर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जावे। डोरा  
 सहित मुँहपत्तिसे शोभित है मुख जिसका ऐसा वह साधु सिद्धोंको  
 नमस्कार कर पंचपरमेष्ठिवाचक नमस्कार मंत्रका जापकरे और अरहंत  
 सिद्ध, साधु और केवलिप्रज्ञप्त धर्मका शरण ग्रहण करे। सत्रह प्रकारके  
 पापस्थानोंका परित्याग करे और समस्तजीवोंसे क्षमायाचना करे,  
 अपनी ओरसे भी उन्हे क्षमा प्रदान करे। इस अवसरमें भी त्वग्वर्तना-  
 दिक्रिया करता हुआ वह धृति-संहनन-बल-समन्वित ग्लान साधु नियत

होय छे त्या ओ रडे छे अप्कायथी लींनअली भाटीनु नाम दकमृत्तिका छे  
 कशेणीया वगेरेनां नाना मर्कटसन्तान छे आवी लुव-नत न्यां न  
 होय अवा स्थान उपर ते घासने सथारो करे, अने तेना उपर  
 पूर्वाभिमुखथी असी नय डोरा साथेनी मुँहपत्तीथी शोभित मुँहवाणा ते  
 साधु सिद्धोने नमस्कार करी पञ्चपरमेष्ठिवाचक नमस्कार मंत्रने नप कुी  
 अरहत, सिद्ध, साधु अने केवलिप्रज्ञप्त धर्मनु शरणु ले अठार प्रकारना  
 पापस्थानोने परित्याग करी समस्त लुवोनी क्षमायाचना करी पोताना तरङ्गथी  
 पणु अनेने क्षमा आपे. आ अवसरमा पणु त्वग्वर्तनादि क्रिया करता करता  
 ते धृति-संहनन-अण-युक्त ग्लान साधु नियमित देशमा डालवा डालवाइप

स्नानः स मिष्टु इत्वरिकम्=इङ्गितमरणं नियतदेशप्रचाराङ्गीकाररूपं यावज्जीवं चतुर्विधाहारस्यागनियमं कुर्यात्, उक्तञ्च—

“पञ्चमस्तद् आहारं, चतुर्विहं नियमओ गुरुसमीपे ।

इगियदेसमि तथा, चिहं पि हु नियमओ कुणइ ॥ १ ॥

उञ्चत्तइ परियत्तइ, काइगमाईवि अप्पणा कुणइ ।

सम्भमिह अप्पण च्चिय, ण अन्नजोगेण चित्तिवलिओ ” ॥ २ ॥ इति ।

छया-प्रत्यास्पाति आहारं, चतुर्विधं नियमाद् गुरुसमीपे ॥

इङ्गितदेशे तथा, चेष्टामपि नियमतः करोति ॥ १ ॥

उद्धर्तते परिवर्तते कायिक्याद्यपि आत्मना करोति ॥

सर्वमिहात्मनैव नान्ययोगेन घृतिवलिः ॥ २ ॥ इति ।

प्रदेशमें हलने—बलनेरूप मयावासे युक्त इङ्गितमरणको कि जिसमें यावज्जीव चतुर्विध आहारका परिस्थाग होता है धारण करे। कहा ‘मी है—

“पञ्चमस्तद् आहारं, चतुर्विहं नियमओ गुरुसमीपे ।

इगियदेसमि तथा, चिहं पि हु नियमओ कुणइ ॥ १ ॥

उञ्चत्तइ परियत्तइ, काइगमाई वि अप्पणा कुणइ ।

सम्भमिह अप्पण च्चिय, ण अन्नजोगेण, चित्तिवलिओ ” ॥ २ ॥ इति ।

भावार्थ—इस इङ्गित मरणमें गुरुके समीप चतुर्विध आहारका परिस्थाग नियमसे होता है, इस मरणमें नियमित प्रदेशमें ही गमनागमन रूप चेष्टा साधु करता है, अनियमित प्रदेशमें नहीं। इसमें समस्त शारीरिक सेवा समाल साधु स्थित करता है, दूसरों से नहीं करवाता ।

मर्त्यायुक्तं इङ्गितमरणं के लिये यावज्जीव चतुर्विध आहारने परित्याग छेप छे-भारण करे कर्तव्य है—

“पञ्चमस्तद् आहारं, चतुर्विहं नियमओ गुरुसमीपे ।

इगियदेसमि तथा, चिहं पि हु नियमओ कुणइ ॥ १ ॥

उञ्चत्तइ परियत्तइ, काइगमाई वि अप्पणा कुणइ ।

सम्भमिह अप्पण च्चिय, ण अन्नजोगेण चित्तिवलिओ ” ॥ २ ॥ इति ।

भावार्थ—इस इङ्गित मरणमें शरीरों सारे चतुर्विध आहारने परित्याग नियमसे ही छेप छे, लिये मरणमें नियमित प्रदेशमें गमनागमन रूप चेष्टा साधु करे छे, अनियमित प्रदेशमें नहीं। लिये मरणमें समस्त शारीरिक सेवा समाल साधु धारण करे छे—वीजधी करवाता नहीं।

एवमिङ्गितमरणविधायी कीदृशो भवतीत्याह—‘तत्सत्य’—मित्यादि, सत्यवादी यथोक्तानुष्ठानाद् यथागृहीतप्रतिज्ञापरिपालनात्, एवम् ओजः=रागद्वेषवर्जितः, किं च—तीर्णः=दुष्पारसंसारपारावारपारं गतः, अत्र तरणस्य भविष्यत्कालिकत्वेऽपि भूतकालिकत्वमौपचारिकं बोध्यम्। एवं ‘छिन्नकथंकथः’ छिन्ना=दूरीकृता कथं=कथमपिरूपा कथा=रागकथादिरूपा विकथा येन स च्छिन्नकथंकथः। यद्वा—‘छिन्नकथंकथः’—छिन्ना=अपनीता ‘इङ्गितमरणप्रतिज्ञामहं कथं=केन प्रकारेण पारयिष्ये’ इत्येवंविधा कथा येन स च्छिन्नकथंकथः, यस्त्वधृतिमान् दुरनुष्ठेयाचारमाचरितुं प्रवृत्तो भवति स जायते कथंकथी, परन्तु यः पूर्वोक्तविधः

इङ्गितमरण करनेवाला साधु कैसा होता है इस बातको सूत्रकार निम्नलिखित पदों द्वारा प्रदर्शित करते हैं—वह सत्यवादी होता है, कारण कि जिसरूपसे उसने नियम ग्रहण किया है उसी रूपसे वह उसका निर्वाहक होता है। वह ओज-रागद्वेष रहित होता है। तीर्ण-जिसका पार होना मुश्किल है, ऐसे संसाररूपी समुद्रको तैरनेवाला होता है। यद्यपि संसारसमुद्रसे यह अभी पार नहीं हुआ है, आगे पार होगा, फिर जो यहां ‘तीर्णः’ ऐसा भूतकालका प्रयोग किया है वह केवल उपचारसे ही समझना चाहिये। यह छिन्नकथंकथ होता है—रागकथादिरूप विकथाओंका दूर करनेवाला होता है। अथवा—“इस इङ्गितमरण नियमका मैं कैसे निर्वाह कर सकूंगा?” इस प्रकारकी कथाका परिहारक होता है। जो अधृतिवाला हो कर दुरनुष्ठेय आचारको आचरित करनेके लिये प्रवृत्त होता है वही

धृति मरण करवावाणा साधु डेवा डोय छे अे वातने सूत्रकार नियेना पदोथी डडे छे—ते सत्यवादी डोय छे, डारणु डे नेवा डूपथी अेल्ले नियम दीधेल डोय छे, अे डूपथी ते अेने नीलावे छे ते ओज-रागद्वेषरहित डोय छे, तीर्ण-नेनाथी पार थवुं मडामुडकेड छे तेवा स सारडूपी समुद्रने तरी जनारा डोय छे, डुडु सुधी अे स सारसमुद्रथी पार थड शक्या नथी—आगण उपर पार थशे, छता पणु अडि “तीर्ण” अेवी लूतडणने प्रयोग डरेड छे ते डकत डपथारडप न समनवेो नेडअे ते छिन्नकथ कथ डोय छे—रागद्वेषादिक कथाडप विकथाअेथी दूर रडेनारा डोय छे अथवा —“आ धृतिमरण नियमने डु डध रीते पाणी शकीश” आ प्रडारनी आश डवाणा डोय छे ने अधृतिवाणा (धीरन वगरना) थड दुरनुष्ठेय आथारनां आथरणु करवामा प्रवृत्त थाय छे ते कथ डथी अने छे, “डु डवे आ आथारनु पालन डेम डरी शकीश” अेवी कथा डथी डरे छे परतु ते अेवा नथी, डेम डे

स महापुरुषतया घृतिषलसम्पन्नस्तादृशो न भवतीत्यर्थः, तथा—आतीतार्थं  
 आ=समन्तात् अतीत इतो=द्वातः अर्थाः=जीवाजीवादिपदार्थो येन स  
 आतीतार्थः=सम्यक्तया परिष्ठातपदार्थसार्थः । यद्वा—आतीता =सम्यग्भूषेणातिक्रा  
 न्ता अर्थाः=प्रयोजनानि यस्य स आतीतार्थः=निवृत्तध्यापारः, एवम्—' अनातीत'  
 आ=समन्तात् अतीत इतो=गतोऽनादिसंसारं स आतीता, अविद्यमान आतीतो यस्य  
 स—अनातीतः=अपारसंसारपारगामी, स मिथुः, तद्=इच्छित्तमरणं—' सत्यं ' सद्गुणो  
 हितं सत्यं सर्वज्ञोपदेशेन सुगतिगमनेऽविसंवादात्तर्था विज्ञाप मिदुरं=प्रतिक्षणविश्र  
 णशीलं कायम्=श्रीदारिकं देहं त्यक्त्वा=विहाय विरूपरूपम्=बहुविधान् परीपद्योप  
 सर्गान् सविधूय=अपनीय अस्मिन्=वीतरागोपदिष्ट शासने विश्रामनतया=विश्वास  
 भाजनतया तद्दुक्कागमस्य निःसंशयं परिशीलितत्वेन भैरवं=कातराणां भयावहं

कथं कधी होता है, "मैं अब इस आचारका पालन कैसे कर सकूंगा" ऐसी  
 कथा किया करता है परंतु यह ऐसा नहीं है, क्यों कि यह महापुरुष  
 होनेसे घृतिषलसम्पन्न होता है । यह आतीतार्थ होता है—अच्छी तरहसे  
 जीव और अजीव आदि पदार्थों का ज्ञान होता है । अथवा सम्यक् रूपसे  
 अतिक्रान्त हो चुके हैं समस्त प्रयोजन जिसके ऐसा होता है । यह  
 अनातीत—अपार संसारसे पारगामी होता है ।

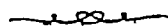
यह मुनि सर्वज्ञके उपदेशसे सुगतिके गमनमें विसंवादादरहित होनेसे  
 ही सज्जनके लिये हितविधायक इस इंगितमरणरूप सत्यको जो कायरके  
 लिये भयावह है जानकर वीतराग उपदिष्ट शासनमें विश्वासयुक्त होनेके  
 कारणसे ही सेवन करता है; और यह समझता है कि "यह औदारिक  
 शरीर प्रतिक्षण बिनाकारूप है, इस लिये इस मरणद्वारा इसका त्याग

ते महापुरुष देवाधी घृतिषलसम्पन्न होता है । ते आतीताय देव्ये उ—आरी शीते  
 एव अने अलक्ष्य वगेरे पदार्थानां अलक्ष्यकार देव्ये उ अथवा सुभ्यद्रूपधी अति  
 कान्त यद् सुभ्या उ समस्त प्रयोजन जे मनां जेबां देव्ये उ, ते अनातीत—अपार  
 संसारधी पारगामी देव्ये उ

ते मुनि सर्वज्ञके उपदेशधी सुप्रतिभा अभनभा विसंवादादरहित देवाधी  
 अ सत्त्वनेने भाटे हितविधायक जेबा उ गितमरणरूप सत्यने जे कायरोने भाटे  
 लयकारक उ अलक्ष्यने चीतधमद्वारा उपदेशके शासनभा विश्वास देवाना कारणे सेवे  
 उ अने समझे उ हे— आ औदारिक शरीर प्रतिक्षण बिनाकारूप उ आ भा  
 जे मरणद्वारा त्याग करधी ते सर्वोत्तम कार्य उ आ अथावधी जे औदारिक  
 शरीरने जेना सेवनधी प्रतिष्ठान करे उ जेटवे आ मरणनु आचारण करती वपते

साध्याचारम् अनुचीर्णः = आचरितवान् , तत्रापि = व्याधिपीडाजनितेद्विमत-  
रणस्वीकरणेऽपि तस्य=कालज्ञस्य साधोः कालपर्यायः, कर्मनिर्जरणस्योभयत्र  
समानत्वात् , अतः स तत्र व्यन्तिकारको भवति, इत्यारभ्य यावत् आनुगामिकं  
तस्य भवति। 'इति ब्रवीमी'-त्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ आठवें अध्ययनका छट्टा उद्देश समाप्त ॥ ८-६ ॥



करना सर्वोत्तम कार्य है " इसी ख्याल से जो इस औदारिक शरीरका  
इसके सेवनसे परित्याग करता है, एवं इस मरणके आचरण करते  
समय इसे जो भी अनेक प्रकारके परीपह और उपसर्ग आते हैं उन्हें  
यह आनंदसे सहन करता है, उस ओर ध्यान नहीं देता है,  
उस कालज्ञ साधुकी, व्याधिपीडासे जनित इस इंगितमरणमें भी  
कालपर्याय है, क्यों कि कर्मकी निर्जरा दोनों जगह समान है, इस  
लिये वह साधु संसारका अन्तकारक होता है और जन्ममरणके जालको  
विनष्ट कर मोक्षके अनुकूल मार्गपर चलनेवाला होता है ॥सू०७॥

॥ आठवें अध्ययनका छट्टा उद्देश समाप्त ॥ ८-६ ॥



तेने अनेक प्रकारना परिषद अने उपसर्ग आवे छे तेने आनदधी सडन करे  
छे-अे तरङ् ध्यान आपता नथी अेवा डालन साधुनु व्याधि पीडाधी थयेद  
इंगित मरण पणु डणपर्याय छे, केम के कर्मनी निर्जरा अन्ने स्थणे समान  
छे, आ डारणे ते साधु संसारना अन्त करनार डोय छे अने जन्म मरणनी  
जणने लेहीने मोक्षना अनुकूल मार्ग उपर आलवावाणा डोय छे (सू० ५)

आठमा अध्ययनना छट्टा उद्देश समाप्त ॥ ८-६ ॥





## । अथाष्टमाध्ययनस्य सप्तम उद्देश ।

अभिहितः पठ्यते, साम्प्रत सप्तम आरभ्यते । अस्य पूर्वोद्देशेन सहाय्य सम्बन्ध-पूर्ववैकल्यभावनामावितान्तःकरणस्य घृति-संज्ञाननयुक्तस्येकितमरणं धर्म-सम् । अत्र वैकल्यभावना प्रतिमाभि सम्पादनीयेत्येकत्वभावनामेव कथयित्वा विशि-ष्टतरसंज्ञाननोपतम्य पादपोपगमनमपि विधेयमिति प्रतिपादनीयम् । तत्र प्रथम प्रति-माप्रतिपक्षस्याभिग्रहविशेषेणावस्थां वर्णयति-‘जे मिक्खू’ इत्यादि ।

मूळम्-जे मिक्खू अचेले परिवुसिए, तस्स ण मिक्खुस्स एवं भवइ-चापमि अह तणफास अहियासित्तए, सीयफासं अहियासित्तए, तेउफास अहियासित्तए, दस-मसगफासं अहि यासित्तए, एगयरे अन्नतरे विरुवरूवे फासे अहियासित्तए, हिरिपडिच्छायण चऽह नो सचापमि अहियासित्तए, एवं से कप्पड कडिवघण धारित्तए ॥ सू० १ ॥

## ॥ आठवें अध्यायनका सातवां उद्देश ॥

उद्देश उद्देशा कहा जा चुका है । अब सप्तम उद्देश प्रारम्भ होता है । इसका पूर्व उद्देश के साथ यह संबंध है-पूर्व उद्देशमें एकत्वकी भावनासे भाषित अन्तःकरणवाले, एवं घृति-संज्ञाननसे युक्त साधुके इंगित मरणका वर्णन किया है । इस उद्देशमें प्रतिमाओं द्वारा यह एकत्व भाषना संपादनीय है, अतः एकत्वभावनाका ही कथन करके विशिष्ट तर संज्ञाननसे युक्त उस साधुको पादपोपगमन सपारा भी विधेय है, यह प्रतिपादित होगा । इसमें सर्व प्रथम सूत्रकार प्रतिमाप्रतिपक्ष साधुकी अभिग्रहविशेषसे अवस्थाका वर्णन करते हैं-“जे मिक्खू ” इत्यादि ।

## आठमा अध्यायननो सातमो उद्देश

उद्देश उद्देशा कहेनाई अचेल छे इवे सातमा उद्देशनो प्रारम्भ बाप छे । अनेो पूर्व उद्देशनी साथे जा संबंध छे-पूर्व उद्देशमां एकत्वनी भावनाभी भाषित अन्तःकरणवाला अने घृति संज्ञाननभी युक्त साधुना उचित मरणनु वर्णन कहेल छे जा उद्देशमां प्रतिमाओद्वारा ते एकत्वभावना संपादनीय छे आशिते एकत्वभावनानु क कथन करीने विशिष्टतर ( ६६ ) संज्ञाननभी युक्त जे साधुने पादपोपगमन सपारा पण विधेय छे जा प्रतिपादित भये ।

आमां सर्व प्रथम सूत्रकार प्रतिमाप्रतिपक्ष साधुनी अभिग्रहविशेष अवस्थानु वर्णन करे छे-‘ जे मिक्खू ’ इत्यादि ।

छाया—यो भिक्षुरचेलः पर्युपितस्तस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—शक्नोम्यहं  
 तृणस्पर्शमध्यासितुं, शीतस्पर्शमध्यासितुं, दंश-मशकस्पर्शमध्यासितुमेकतरानन्यतरान्  
 विरूपरूपान् स्पर्शान् अध्यासितुं हीमतिच्छादनं चाहं नो शक्नोम्यध्यासितुम्, एवं  
 तस्य कल्पते कटिवन्धनं धर्तुम् ॥३०१॥

टीका—‘यो भिक्षु’—रित्यादि, यः प्रतिमाप्रतिपन्नो भिक्षुः=अनगारः, अचेलः  
 =अभिग्रहविशेषेण वसनवर्जितः सन् पर्युपितः=संयमे तपसि च व्यवस्थितोऽस्ति  
 तस्य भिक्षोः=मुनेश्चेतसि एवम्=इत्थं भवति—अहं तृणस्पर्शम्=तृणस्पर्शजन्यपीडाम्  
 अध्यासितुम्=अधिसहितुम्, एवं शीतस्पर्शमध्यासितुम्, किञ्च तेजःस्पर्शं=प्रचण्डमा-  
 तृणकिरणजनितोष्णजन्यकष्टमध्यासितुम्, तथा दंश-मशकस्पर्शं=दंश-मशकदंशनजनि-  
 तदुःखविशेषमध्यासितुं, तथा एकतरान्=मुख्यान् केवलशीतोष्णादिजनितान्, अन्य-  
 तरान्=द्विवहोरेकतरान्, तथाविधान् विरूपरूपान्=बहुविधान् कर्कशकठोरभूमिकण्ट-

‘यः भिक्षुः’=जो प्रतिमाप्रतिपन्न साधु, ‘अचेलः’=अभिग्रहविशेष से  
 वस्त्ररहित होता हुआ, ‘पर्युपितः’=संयम और तपमें व्यवस्थित है, तस्य  
 भिक्षो’=उस मुनिके ‘चेतसि’ चित्तमें, ‘एवं भवति’=इस प्रकार विचार  
 आता है कि—‘अहं’=मैं, ‘तृणस्पर्शं’=तृणस्पर्शजन्य पीडाको, ‘अध्यासितुं’=  
 सहन करनेके लिये, ‘एवं’ इसी प्रकार ‘शीतस्पर्शं’=शीतस्पर्शजन्य बाधाको  
 ‘अध्यासितुं’=सहन करने के लिये, ‘तेजः स्पर्शं’ सूर्यकी प्रखर किरणोंसे  
 जनित उष्णताजन्य कष्टको ‘अध्यासितुं’=सहन करनेके लिये, तथा  
 ‘दंशमशकस्पर्शं’=दंशमशकके काटनेसे उत्पन्न हुए परिग्रहविशेषको  
 ‘अध्यासितुं’=सहन करनेके लिये, तथा—‘एकतरान्’—केवल शीत अथवा  
 उष्ण आदि जनित किसी एक दुःखको, तथा ‘अन्यतरान्’—शीत उष्ण  
 आदि दो में से अथवा बहुतोंमें से किसी अन्यतर कष्टको, अथवा ‘विरूपरू-  
 पान्’=अनेक प्रकारके कर्कश और कठोर भूमि और कण्टक आदिसे

यः भिक्षुः=जो प्रतिमाप्रतिपन्न साधु, अचेलः=अलिख्य विशेषथी वस्त्ररहित  
 होता था, पर्युपित =संयम अने तपथी व्यवस्थित थे, तस्य भिक्षोः=ते मुनिने  
 चेतसि चित्तमा, एवं भवति=आ प्रकारने विचार आवे थे, अहं=हुं,  
 तृणस्पर्शं=तृणस्पर्शावाणी पीडाने, अध्यासितुं=सहन करवा भाटे, “ एवं ” अने  
 प्रकारे शीतस्पर्शं=ठंडीना उपद्रववाणी बाधाने अध्यासितुं=सहन करवा भाटे, तथा  
 तेज स्पर्शं=अति तपता सूर्यना उग्र किरणोने अध्यासितुं=सहन करवा भाटे, तथा  
 दंशमशकस्पर्शं=दास भक्षरने परिसह अध्यासितुं=सहन करवा भाटे, एकतरान्=  
 केवल-ठंडी अथवा गर्मी आ ठेमाथी गर्मे ते अेक, अन्यतरान्=तथा थील  
 प्रकारना धरु दुःखोमाथी अन्यतर विरूपरूपान्=अनेक प्रकारना डाकशावाणी अने

कादिजनितान् स्पर्शान्=दुःस्वानि अध्यासितुं शक्नोमि=समर्थोऽस्मि। धृति-संहनन-युक्तस्य श्रुतज्ञानदृष्ट्या परिष्ठात-नारक-तिर्यग्वेदनामिभवस्य वैराग्यमावना-भाषितस्य प्रतिमाप्रतिपन्नस्य मे तादृशानि दुःस्वानि बहुशोऽनुभूतपूर्वाणि सन्त्यत एतानि दुःस्वानि मां परिमथितुं न शक्नुवन्तीत्याशयः, परन्तु-अहं केवलं 'श्रीप्रतिष्ठादन' द्विया=लज्जया गुह्यस्य प्रतिच्छादनम्=आच्छादनम्, मध्यमपदस्य गुह्यस्य लोपः, त्यक्तुं=विहातुं न शक्नोमि=लज्जास्वभावत्वेन विकृतसाधुवेषणद्वयात् च तत्परिहर्तुं न समर्थोऽस्मीत्यर्थः। एवं पूर्वोक्तद्वेषिभिः तस्य=प्रतिमाप्रतिपन्नस्य मितोः कटिबन्धनं=विस्तरेण चतुरस्रगुलाधिकइत्तममाणं, वैश्वेभ कटिपमाणं, गणनया वैश्वे

जनित 'स्पर्शान्'=दुःस्वोको, 'अध्यासितुं'=सहन करनेके लिये, 'शक्नोमि'=समर्थ हूं।

भाषार्थ—धृति और सहननसे युक्त, श्रुतज्ञानकी दृष्टिसे नरक और तिर्यग्गतिके कष्टोंको जाननेवाले, वैराग्यभावनासे भाषित, और प्रतिमाप्रतिपन्न, ऐसे मैंने जय उस २ प्रकारके दुःस्वोका पूर्वमें बहुतवार अनुभव किया है तो फिर ये दुःस्व मुझे, दुःखित या तिरस्कृत करनेके लिये समर्थ नहीं हो सकते हैं।

“श्री-प्रतिच्छादन” इस पदमें मध्यम पद “गुह्य”का लोप हुआ है, अतः ‘द्विया’=लज्जाके कारण ‘गुह्यस्य’=गुह्यभागके ‘प्रतिच्छादनं’=आच्छादनरूप बन्धको ‘त्यक्तुं’=छोड़ने के लिये मैं, ‘न शक्नोमि’=लज्जा-युक्त स्वभाववाला होनेसे, और साधुकावेषकी विकृति हो जानेकी शंका से समर्थ नहीं हूं। ‘एवं’=इन पूर्वोक्त कारणोंसे ‘तस्य’=उस प्रतिमाप्रतिपन्न साधुके, ‘कटिबन्धनं’=चार अंगुल अधिक एक हाथ प्रमाण विस्तृत एवं

ठोकर भूमिना, जने कांटा वजेश्ठी बरेशा, स्पर्शान्=दुःखाने, अध्यासितुं=सहन करवा। भाटे शक्नोमि=समर्थ हूं।

भाषार्थ—धृति जने सहननशी मुक्त श्रुतज्ञानकी दृष्टिसे नरक जने तिर्यग्-गतिके कष्टोंके बहुवारवार वैराग्य भावनाशी भाषित जने प्रतिमाप्रतिपन्न कोबो मे स्थित ने ने दुःखाने अगार धरती वषत अनुभव करैत छे तो पछी जइ जे भने दुःखित अवषा तिरस्कृत करवायां समर्थ जनी शक्नार नथी

“श्रीप्रतिष्ठादन” का पदमा मध्यम पद “गुह्य”ने लोप करैत छे जे रीते द्विया=लज्जाशी गुह्यम्=गुह्य भागना, प्रतिच्छादनं=आच्छादनरूप वस्तुने, त्यक्तुं=छोड़ना भाटे दुः न शक्नोमि=लज्जायुक्त स्वभाव वावाशी जने साधुकावेषनी विकृति वर्ध करवाणी शक्यायी समर्थ नथी एवं=एवं पूर्वोक्त कारणोंसे तस्य=प्रतिमाप्रतिपन्न साधुके, कटिबन्धनं=चार अंगुल अधिक कोठे हाथ

कटिवस्त्रं धर्तुं कल्पते। यदि पुनर्लज्जापरीषहसहनसमर्थोऽपि भवेत्तर्हि केवलं सदीरकमुखवस्त्रिकारजोहरणोपधिकोऽचेत् एव पराक्रमेत ॥ सू० १ ॥

वस्त्ररहितत्वेन शीतादिस्पर्शन्यदुःखविशेषं सम्यग्धिसहेतेति दर्शयति—  
'अदुवा' इत्यादि।

मूलम्—अदुवा तस्य परक्रमंतं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति, सीयफासा फुसंति, तेउफासा फुसंति, दंसमसगफासा फुसंति, एगयरे अन्नयरे विरूवरूवे फासे अहियासेइ, अचेले लाघवियं आगसमाणे, जाव समभिजाणिया ॥ सू० २ ॥

छाया—अथवा तत्र पराक्रममाणं भूयोऽचेलं तृणस्पर्शाः स्पृशन्ति, शीतस्पर्शाः स्पृशन्ति, तेजस्पर्शाः स्पृशन्ति, दंशमशकस्पर्शाः स्पृशन्ति, एकतरानन्यतरान् विरूपरूपान् स्पर्शान् अधिसहते अचेलो लाघविकमागमयन् यावत्समभिजानीयात् ॥ सू० २ ॥

टीका—'अथवे'—त्यादि, अथवा=पक्षान्तरे ततश्च पूर्वसूत्रे हेतुसत्त्वे वसनं धरत् यदि न लज्जते तदा चेलरहितं पराक्रमेत, इत्युक्तम्, ततोऽन्यपक्षमाश्रित्य

कटिप्रमाण लम्बे एक कटिवस्त्रका धारण करना कल्पित है—शास्त्रविहित मार्ग है। यदि वह साधु लज्जापरीषहको जीतनेमें शक्तिसंपन्न है तो भी उसे डोरेसहित मुहपत्ति और रजोहरण, ये दो उपधियां तो रखना ही चाहिये। इनके रखने पर भी वह अचेलक ही है ॥ सू० १ ॥

वस्त्ररहित होनेसे साधु शीतस्पर्श आदि जन्य दुःख विशेषको अच्छी तरह सहनकरे, इस विषयको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—'अदुवा' इत्यादि।

“अथवा” शब्द पक्षान्तरका द्योतक है इसलिये “पूर्वसूत्रमें लज्जादिहेतुके सद्भावमें साधु वस्त्र धारण करे, यदि लज्जापरीषह उसने जीत

प्रमाण पडोणु कडना प्रमाणे दाणु अेक वस्त्र केउ उपर धारणु करवु कटिपत छे—शास्त्रमा कडेल मार्ग छे, परतु ते साधु लज्जापरिषडने अतवामा शक्ति-सपन्न छे तो पणु अेले होरासहित मुहपत्ति अने रणेडरणु, आ जे उपधियो तो राभवी न् जेई अे आने राभवाथी पणु ते अचेलक न् छे (सू० १)

वस्त्ररहित होवाथी साधु ठडी आदि स्पर्शजन्य दुःख सारी रीते सहन करे, आ विषयने सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—“अदुवा” इत्यादि

“अथवा” शब्द पक्षान्तरको द्योतक छे, साठे पूर्व सूत्रमा “लज्जादि हेतुना सद्भावमा साधु वस्त्र धारणु करे, कदाचि लज्जा परिषड तेले अती

टीका—‘यस्ये’—त्यादि, अस्याभर्तुर्भक्ष्या व्याख्या पूर्वोक्तदिशैव ज्ञेया, एतेषां चामिग्रहाणां चतुर्णामन्यतममिग्रहं गृहीयादित्यादि । यद्वा—त्रिविधानामाधानामेक-पदेनैव प्रतिमाप्रतिपन्न कश्चिन्मुनिरभिग्रहं गृहीत, चतुर्यस्य च भजनेत्याह—‘अह’—मित्यादि, यस्य मिषोभेतसि एव भवति—अहं च तेन पूर्वोक्तेन यथातिरिक्तेन=स्वोपमोगोर्धरितेन, यथैषणीयेन=प्रतिमाप्रतिपन्नानां यदेषणीयं तमनतिक्रम्य यथैषणीयन एव यथापरिगृहीतेन=निजार्थाम्युपगतेन, अञ्जनेन वा४ = चतुर्विधनाशारेण

प्रतिमाप्रतिपन्न साधु इति अभिग्रहविशेषको स्वीकार करे कि—“मैं अन्य प्रतिमाप्रतिपन्न साधुओंके लिये कुछ दूगा और उनसे भी कुछ लूगा” इसी विषयको सूत्रकार चार-भंगों द्वारा प्रदर्शित करते हैं—“जस्सणं मिक्खुस्स” इत्यादि ।

इस चतुर्भंगीकी व्याख्या इसी अभ्ययनके पांचवें उद्देशमें की गई द्वितीय सूत्रकी व्याख्याके अनुसार समझ लेनी चाहिये । प्रतिमा-प्रतिपन्न मुनि इन चार अभिग्रहोंमेंसे किसी एक अभिग्रहको, अथवा आदिके तीन अभिग्रहों में से किसी एक अभिग्रहको ग्रहण करो चतुर्भंग अभिग्रहकी भजना है, इसके लिये सूत्रकार ‘अह’—मित्यादि सूत्रोंका कहते हैं—जिस भिक्षुके चित्तमें ऐसा विचार आता है कि मैं उस चतुर्विध आहार से कि जो मेरे उपभोगसे बाकी बच रहा है, तथा जो यथैषणीय प्रतिमाप्रतिपन्नके लिय कल्पनीय है, और जिसे मैं अपने लिये लाया हू, कर्मोंकी निर्जरा करनेकी चाहनासे साधुमी साधु

प्रतिमाप्रतिपन्न साधु आ अभिग्रह विशेषणे स्वीकार करे के “तु अन्य प्रतिमाप्रतिपन्न साधुज्जाने माटे अशनादि वडशं अने ज्जेमनी पासेधी पलु अशनादि वडशं” आ विषयने सूत्रकार चार भंगेद्वारा प्रदर्शित करे के—“जस्स ज” इत्यादि

आ चार भंगेनी व्याख्या, आ अभ्ययनना पूव उद्देशमां उद्देशमां आवेद जीव सूत्रनी व्याख्या अनुसार समझ लेनी जेधजे प्रतिमाप्रतिपन्न मुनि आ चार अभिग्रहोभाधी केध जेध अभिग्रहने अथवा अगणना प्रलु अभिग्रहोभाधी केध जेध अभिग्रहने प्रदलु करे थोसा अभिग्रहनी भजना छे आ माटे सूत्रकार अह इत्यादि सूत्राश उद्देश छे—जे भिक्षुना चित्तमा जेधो विचार आवे छे के तु जे चतुर्विध आहारधी के जे भास उपभोगधी जाही जन्नी रहैत छे तथा जे यथैषणीय-प्रतिमाप्रतिपन्नो माटे कल्पनीय अने जेने तु भास माटे आवेत छे उद्देशनी निज स करवानी आद

अभिकाङ्क्ष्य=कर्मनिर्जरणमभिवाञ्छ्य करणाय=उपभोगाय साधर्मिकस्य=समानध-  
र्माणः साधोः वैयावृत्त्यं कुर्याम् । एतादृशमभिग्रहं कश्चिद् गृह्णाति । पुनः पक्षान्तर-  
प्रदर्शयति—‘अहं‘वाऽपी’-त्यादि-‘वा’ शब्दः पक्षान्तरसूचकः, यस्य खलु भिक्षोश्चेतस्येवं  
भवति—अहमपि=पुनः तेन=यथातिरिक्तेन यथैषणीयेन यथापरिगृहीतेनाऽशनेन  
वाऽ कर्मनिर्जरणमभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वैयावृत्त्यं स्वादयिष्यामि  
=स्वीकरिष्यामि । एवं परिचिन्तयन् साधुः किं कुर्यादिति दर्शयति—‘लाघविक’-  
मित्यादि, सर्वं व्यख्यातपूर्वम् ॥ सू०३ ॥

का वैयावृत्त्य करूँ । इस प्रकारका अभिग्रह कोई साधु ग्रहण करता है,  
और कोई साधु ऐसा अभिग्रह करता है कि—मैं यथातिरिक्त, यथैषणीय  
और यथापरिगृहीत चतुर्विध अशनसे कर्मोंकी निर्जरा होनेकी कामनासे  
साधर्मिक साधु द्वारा क्रियमाण वैयावृत्त्यको मैं स्वीकार करूँगा ।

इस प्रकार विचार करनेवाला साधु क्या करे ? इसे सूत्रकार “लाघ-  
वियं आगममाणे जाव समत्तमेव समभिजाणिया ” इन पदोंसे प्रकट  
करते हैं । इन समस्त पदोंका अर्थ पहिले इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देश  
में कहा जा चुका है ।

भावार्थ—साधु द्वारा साधुकी वैयावृत्त्य करनेके प्रकार यहां पर  
सूत्रकारने प्रदर्शित किये हैं, ये ही प्रकार जब नियमरूपसे अंगी-  
कृत होते हैं तब अभिग्रहविशेष कहलाने लग जाते हैं, उन्हींका यहां  
कथन है ।

नाथी साधर्मी साधुतुं वैयावृत्त्यं कर्तुं, आ प्रकारेण अलिग्रहं क्वाँ साधु ग्रहण  
करे छे क्वाँ साधु अवेण अलिग्रहं करे छे क्के-हुं यथातिरिक्त, यथैषणीय  
अने यथापरिगृहीत आर प्रकारेण अशनधी, कर्मोनी निर्जरा होवानी कामनाथी  
साधर्मिक साधु द्वारा क्रियमाण वैयावृत्त्यने स्वीकार करीश ।

आ प्रकारेण विचार करवावाणा साधु शुं करे अने सूत्रकार “लाघवियं  
आगममाणे जाव समत्तमेव समभिजाणिया ” आ पदोथी प्रगट करे छे. अ  
समस्त पदोने अर्थ पडेला आ अध्ययनना योथा उद्देशमा कडेवाधंगअल छे.

भावार्थ—साधुओद्वारा साधुओनी वैयावृत्त्य करवाने प्रकार अहि  
सूत्रकारे प्रगट करेला छे अने न्यारे नियमरूपथी अंगीकृत थाय छे त्यारे  
अलिग्रहविशेष कडेवामा आवी जाय छे अने अहि कथन छे

कथयति-तत्र सयमे पराक्रममाणम् अथेल्म्=वस्त्ररहितं तृणस्पर्शाः=तृणस्पर्शजन्य-  
दुःस्वानि स्पृशन्ति=अभिमन्त्रन्ति, एष शीतस्पर्शाः स्पृशन्ति, तेजःस्पर्शाः  
स्पृशन्ति, दक्षमशकस्पर्शाः स्पृशन्ति, एतादृशान् एकतरान् अन्यतरान् विरूपस्थान्  
स्पर्शान् सांख्यलः=अधिसहते लाघविकमागमयन् यावत् सम्यक्त्वमेष समभिजा  
नीयात्। ध्यास्या पूर्वादिशाखसेया ॥ सू०२ ॥

प्रतिमाप्रतिपन्नाऽभिग्रहविशेषं स्वीकृत्यात्-“ महमन्यम्यः प्रतिमाप्रतिपन्नेभ्यः  
किमपि दास्यामि, तस्या वा ग्रहीष्यामि” इत्यादि चतुर्भङ्गिकया दर्शयति-  
'नस्त णं' इत्यादि।

लिया है तो वस्त्रका भी परित्याग कर देवे” जो यह विषय फतलाया है  
उससे भिन्न पक्षका आश्रय कर सूत्रकार कहते हैं कि-संयममें लक्ष्मीन  
वस्त्ररहित साधुको तृणस्पर्शजन्य दुःस्वविशेष पीडित करते हैं, शीतस्पर्श  
दुःस्थित करते हैं, उष्ण स्पर्श कष्ट पहुंचाते हैं, दक्षमशक पाधा पहुंचाते  
हैं, एकतर या अन्यतर विरूपरूप परिपह उसे आकुलित करते हैं, परन्तु  
उस अथेल्-वस्त्ररहित साधुका कर्तव्य है कि यह इन समस्त परिपह  
जन्य पाधाओंको सहन करे। इससे उसे यह लाभ है कि उसके संचित-  
कर्मोंका भार हल्का होगा और आगामी कर्मोंका बंधन भी शिथिल  
होता रहेगा। 'लाघविय आगममाणे' यहाँसे छे कर 'सम्मसमेव  
समभिजाणिया' यहाँ तकके इन पदोंकी ध्यास्या चतुर्थ उद्देशमें पहिछे  
की गई ध्यास्या के अनुसार ही जान लेनी चाहिये ॥ सू०२ ॥

दीर्घा दोष तो वस्त्रने पक्ष परित्याग करे 'ने आ विषय जतामे' छे तेनाभी  
बिल पक्षनु व्यथरवु करी सूत्रकार कहे छे छे-संयममां लक्ष्मीन वस्त्ररहित  
साधुने तृणस्पर्शजन्य दुःस्वविशेष पी। करे छे, कर्तव्ये स्पर्श दुःस्व करे छे,  
अरभीने स्पर्श पीड्य पडोवाठे छे अथ मन्तर पाधा पडोवाठे छे अउतर  
अने अन्यतर विरूपरूप परिपह तेने आकुण व्याकुण करता रहे छे, परतु के  
अथेल्-वस्त्ररहित साधुनु के कर्तव्य छे छे ते आपी समस्त परिपहजन्य  
पीड्यमे सहन करे आपी तेने के लाभ छे छे तेना संचित कर्मोना भार  
दृगवे थये, अने आगामी कर्मोनु बंधन पक्ष शिथिल यत्ता रहेये  
'लाघविय आगममाणे' अर्थात् छे "समसमेव समभिजाणिया" अर्थात् सुधीना  
पदोनी ध्यास्या पडोवा अतुथ उद्देशमां कडेवाड गमेव ध्यास्याना अनुसार आनी  
लेवी लेखिजे. (सू०२)

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अन्नेसिं  
 भिक्खूणं असणं वा ४ आहट्टु दलइस्सामि, आहडं च साइ-  
 ज्जिस्सामि (१), जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु  
 अन्नेसिं भिक्खूणं असणं वा ४ आहट्टु दलइस्सामि आहडं च  
 नो साइज्जिस्सामि (२), जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च  
 खलु असणं वा ४ आहट्टु नो दलइस्सामि आहडं च साइज्जि-  
 स्सामि (३), जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अ-  
 न्नेसिं भिक्खूणं असणं वा ४ आहट्टु नो दलइस्सामि आहडं  
 च नो साइज्जिस्सामि (४)। अहं च खलु तेण अहाइरित्तेण  
 अहेसणिज्जेण अहापरिग्गहिण्ण असणेण वा ४ अभिकंख  
 साहम्मियस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए, अहं वा वि तेण  
 अहाइरित्तेण अहेसणिज्जेण अहापरिग्गहिण्ण असणेण वा ४  
 अभिकंख साहम्मिएहिं कीरमाणं वेयावडियं साइज्जिस्सामि,  
 लाघवियं आगममाणे जाव समत्तमेव समभिजाणिया ॥ सू०३ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽशनं  
 वा ४ आहृत्य दास्यामि, आहतं च नो स्वादयिष्यामि (१), यस्य खलु भिक्षोरेवं  
 भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽशनं वा ४ आहृत्य दास्यामि, आहतं च नो  
 स्वादयिष्यामि (२), यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽ-  
 शनं वा ४, आहृत्य नो दास्यामि, आहतं च स्वादयिष्यामि (३), यस्य खलु भिक्षोरेवं  
 भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽशनं वा ४ आहृत्य नो दास्यामि, आहतं  
 च नो स्वादयिष्यामि (४)। अहं च खलु तेन यथाऽतिरिक्तेन यथैषणीयेन यथापरि-  
 गृहीतेन अशनेन वा ४ अभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकस्य कुर्या वैयावृत्त्यं करणाए, अहं  
 चाऽपि तेन यथातिरिक्तेन यथैषणीयेन यथापरिगृहीतेन अशनेन वा ४  
 अभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वैयावृत्त्यं स्वादयिष्यामि लाघविकमागमयन्  
 यावत् साम्यक्त्वमेव समभिजानीयात् ॥ सू०३ ॥



टीका—‘यस्ये’-स्यादि, अस्यामृतमङ्ग्या न्यास्या पूर्वोक्तदिक्षैव ज्ञेया, एतेषां चाभिग्रहाणां चतुर्णामन्यतममभिग्रहं सूक्ष्म्यादित्यादि । यद्वा—भिविधानामाधानामेकपदेनैव प्रतिमाप्रतिपन्न कश्चिन्मुनिरभिग्रहं सूक्ष्मं, चतुर्थस्य च मग्रनेत्याह—‘अह’-मित्यादि, यस्य मिसोषेतसि एव भवति—अहं च तेन पूर्वोक्तेन यथातिरिक्तेन=स्तोपमोगोवरितेन, यथैपणीयन=प्रतिमाप्रतिपन्नानां यदेपमीय तमनतिक्रम्य यथैपणीयन एषं यथापरिसूक्ष्मीतेन=निजार्थान्भुपगततेन, अश्वनेन वाध = चतुर्भिर्नाशारेण

प्रतिमाप्रतिपन्न साधु इति अभिग्रहविशेषको स्वीकार करे कि—“मै अन्य प्रतिमाप्रतिपन्न साधुओंके लिये कुछ दूगा और उनसे भी कुछ छूगा” इसी विषयको सूत्रकार चारमंगों द्वारा प्रदर्शित करते हैं—“जस्सणं भिक्खुस्स” इत्यादि ।

इस चतुर्भंगीकी व्याख्या इसी अध्ययनके पांचवें उद्देशमें की गई द्वितीय सूत्रकी व्याख्याके अनुसार समझ लेनी चाहिये । प्रतिमाप्रतिपन्न मुनि इन चार अभिग्रहोंमेंसे किसी एक अभिग्रहको, अपना आदिके तीन अभिग्रहों में से किसी एक अभिग्रहको ग्रहण करे। चतुर्भंगी अभिग्रहकी भजना है, इसके लिये सूत्रकार ‘अह’-मित्यादि सूत्रांश कहते हैं—जिस विद्वान्के चित्तमें ऐसा विचार आता है कि मैं उस चतुर्भिध आहार से कि जो मेरे उपभोगसे बाकी बच रहा है, तथा जो यथैपणीय प्रतिमाप्रतिपन्नको लिय कल्पनीय है, और जिसे मैं अपने लिये लाया हूँ, कर्मोंकी निर्जरा करनेकी चाहनासे साधु

प्रतिमाप्रतिपन्न साधु आ अभिग्रह विशेषको स्वीकार करे के “दु अन्य प्रतिमाप्रतिपन्न साधुओने माटे अशनादि उधेश जने जेभनी भासेधी पण अशनादि उधेश” आ विषयने सूत्रकार चार मंगेद्वारा प्रदर्शित करे थे—“जस्स ण” इत्यादि ।

आ चार जेभनी व्याख्या, आ अभ्यसनना पूर्व उद्देशमां कहेचमा आवेत्त जीव सूत्रनी व्याख्या अनुसार समझ लेवी जेष्ठके प्रतिमाप्रतिपन्न मुनि आ चार अभिग्रहोभाधी काष्ठ जेष्ठके अभिग्रहने अथवा आश्रयता प्रणु अभिग्रहोभाधी काष्ठ जेष्ठके अभिग्रहने प्रदणु करे सोधा अभिग्रहनी कथना छे आ माटे सूत्रकार अह इत्यादि सूत्राथ कहे छे—जे विधुना चित्तभ जेवे विचार आवे छे के दु जे चतुर्भिध आहारधी छे जे भास उपभोगधी भाडी जमी रहैत्त छे तथा जे यथैपणीय-प्रतिमाप्रतिपन्नी माटे कल्पनीय, जने जेने दु भास माटे आवेत्त छे जेभनी निज स कथानी बाढ

अभिकाङ्क्ष्य=कर्मनिर्जरणमभिवान्छ्य करणाय=उपभोगाय साधर्मिकस्य=समानध-  
र्मणः साधोः वैयावृत्त्यं कुर्याम् । एतादृशमभिग्रहं कश्चिद् गृह्णाति । पुनः पक्षान्तरं-  
प्रदर्शयति—‘अहं वाऽपी’-त्यादि-‘वा’ शब्दः पक्षान्तरसूचकः, यस्य खलु भिक्षोश्चेतस्येवं  
भवति—अहमपि=पुनः तेन=यथातिरिक्तेन यथैषणीयेन यथापरिगृहीतेनाऽशनेन  
वाऽ कर्मनिर्जरणमभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वैयावृत्त्यं स्वादयिष्यामि  
=स्वीकरिष्यामि । एवं परिचिन्तयन् साधुः किं कुर्यादिति दर्शयति—‘लाघविक’-  
मित्यादि, सर्वं व्यख्यातपूर्वम् ॥ सू०३ ॥

का वैयावृत्त्य करूँ । इस प्रकारका अभिग्रह कोई साधु ग्रहण करता है,  
और कोई साधु ऐसा अभिग्रह करता है कि—मैं यथातिरिक्त, यथैषणीय  
और यथापरिगृहीत चतुर्विध अशनसे कर्मोंकी निर्जरा होनेकी कामनासे  
साधर्मिक साधु द्वारा क्रियमाण वैयावृत्त्यको मैं स्वीकार करूँगा ।

इस प्रकार विचार करनेवाला साधु क्या करे ? इसे सूत्रकार “लाघ-  
वियं आगममाणे जाव समत्तमेव समभिजाणिया ” इन पदोंसे प्रकट  
करते हैं । इन समस्त पदोंका अर्थ पहिले इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देश  
में कहा जा चुका है ।

भावार्थ—साधु द्वारा साधुकी वैयावृत्त्य करनेके प्रकार यहां पर  
सूत्रकारने प्रदर्शित किये हैं, ये ही प्रकार जब नियमरूपसे अंगी-  
कृत होते हैं तब अभिग्रहविशेष कहलाने लग जाते हैं, उन्हींका यहां  
कथन है ।

नाथी साधर्मी साधुनु वैयावृत्त्य करूं. आ प्रकारने अबिग्रह कोण साधु ग्रहण  
करे छे कोण साधु ओवे अबिग्रह करे छे के-हु यथातिरिक्त, यथैषणीय  
अने यथापरिगृहीत आर प्रकारना अशनथी, कर्मोनी निर्जरा होवानी कामनाथी  
साधर्मिक साधु द्वारा क्रियमाण वैयावृत्त्यने स्वीकार करीश.

आ प्रकारने विचार करवावाणा साधु शु करे अने सूत्रकार “लाघवियं  
आगममाणे जाव समत्तमेव समभिजाणिया ” आ पदोथी प्रगट करे छे. ओ  
समस्त पदोने अर्थ पड़ेला आ अध्ययनना ओथा उद्देशमा कडेवाधंगअल छे

भावार्थ—साधुओद्वारा साधुओनी वैयावृत्त्य करवाने प्रकार अहि  
सूत्रकारने प्रगट करेला छे ओ न न्यारे नियमरूपथी अंगीकृत थाय छे त्यारे  
अबिग्रहविशेष कडेवामा आवी नय छे अने अहि कथन छे

કોઈ ૨ સાધુ હસ પ્રકારસે અભિગ્રહ કરતે હૈ કિ-મૈ અન્ય સાધુકે લિયે આહારાદિક લાકર વિચા ફરૈંગા, યહી મેરેદ્વારા ઉનકી વૈયાવૃત્ત્ય હૈ, તથા કોઈ સાધુ મેરે લિયે આહાર પાની લાકર વેગા તો મૈ ખી ઉસે સ્વીકાર ફર લુગા। યહ અભિગ્રહકા એક પ્રકાર હૈ।૧।

કોઈ એક સાધુ હસ પ્રકારકા અભિગ્રહ કરતા હૈ કિ-મૈ દુસરે સાધુમી સાધુકે લિયે આહારાદિક લા વિચા ફરૈંગા પર દુસરેકે દ્વારા લાયા જુઆ આહાર પાની અપને ઉપયોગ મૈ નહીં લુગા। યહ અભિગ્રહકા દુસરા પ્રકાર હૈ।૨।

કોઈ ૨ સાધુ હસ પ્રકારકા અભિગ્રહ કર લિયા કરતા હૈ કિ-મૈ દુસરેકે લિયે આહારાદિક લાઈંગા તો નહીં પર કોઈ મુક્ષે લાકર વેગા તો મૈ ઉસે અપને ઉપયોગ મૈ લે લુગા યહ અભિગ્રહકા તૈસરા પ્રકાર હૈ।૩।

કોઈ ૨ સાધુ એસા અભિગ્રહ કરતા હૈ કિ ન મૈ દુસરેકે લિયે આહારાદિક લાઈંગા ઓર ન અપને નિમિત્ત કિસી અન્યસે મંગાઈંગા। યહ અભિગ્રહકા ચૌથા પ્રકાર હૈ।૪।

હન ચાર પ્રકારકે અભિગ્રહોમૈસે સાધુ જાહે જિમ કિસી ખી અભિગ્રહ કો ધારણ કર સકતા હૈ, અથવા આદિકે ત્રીન અભિગ્રહો મૈ સે ખી

કોઈ કોઈ સાધુ એવા પ્રકારથી અભિગ્રહ કરે છે કે-દુ બીજા સાધુએ માટે આહારાદિક લાવી આપીશ, પણ શીતે દુ તેમની વૈયાવૃત્ત્ય કરીશ તથા કોઈ સાધુ મારા માટે આહાર પાણી લાવી આપશે તો દુ સ્વીકાર કરીશ આ અભિગ્રહકા એક પ્રકાર છે (૧)

કોઈ કોઈ સાધુ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કરે છે કે-દુ બીજા સાધુમી સાધુ માટે આહારાદિક લાવી આપીશ પણ બીજાના કાલ લાવેલ આહાર પહોં ઉપયોગમાં નહીં લઉં આ અભિગ્રહકા બીજો પ્રકાર છે (૨)

કોઈ કોઈ સાધુ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કરે છે કે-દુ બીજાએ માટે આહારાદિક લાવીશ તો નહીં પણ કોઈ મને લાવીને આપશે તો દુ તેને મારા ઉપયોગમાં અવશ્ય લઈશ આ અભિગ્રહકા ત્રીજો પ્રકાર છે (૩)

કોઈ કોઈ સાધુ એવા અભિગ્રહ કરે છે કે-બીજાએના માટે દુ આહારાદિક લાવીશ નહીં તેમજ મારા માટે પણ બીજાથી મંગાવીશ નહીં આ અભિગ્રહકા ચૌથા પ્રકાર છે (૪)

અ.૧૧ ચાર પ્રકારના અભિગ્રહમાંથી સાધુ પોતાની ઉચ્ચતામાં આવે તેવા કોઈ પણ અભિગ્રહ પાસે કરી શકે છે અથવા આદિના ત્રણ અભિ

इत्यसन्यतरामिग्रहग्राहिणोऽनगारस्याचेलस्य सचेलस्य वा शरीरपीडायाः  
सद्भावेऽसद्भावे वा स्वायुःशेषतामवगच्छतो मुनेस्त्वतमरणविधिमुपदर्शयति--  
-‘जस्त णं’ इत्यादि ।

मूलम्—जस्त णं भिक्खुस्स एवं भवइ—से गिलामि खलु  
अहं इमम्मि समए इमं सरीरगं अणुपुव्वेण परिवहित्तए, से  
अणुपुव्वेणं आहारं संवट्टिज्जा, संवट्टित्ता कसाए पयणुए किच्चा  
समाहियच्चे फलगावयट्ठी उट्ठाय भिक्खू अभिनिव्वुडच्चे अणु-  
पविसित्ता गासं वा नगरं वा जाव रायहाणिं वा तणाइं जाइज्जा  
जाव संथरिज्जा, एत्थविसमए कायं च जोगं च ईरियं च पच्चक्खाइज्जा,  
तं सच्चं सच्चवाई ओए तिन्ने छिन्नकहंकहे आईयट्ठे अणाईए  
चिच्चा णं भेउरं कायं संविहुणिय विरूवरूवे परीसहोपसग्गे,  
अस्सि विस्संभणयाए भैरवमनुचिन्ने, तत्थ वि तस्स कालप-  
रियाए, सेऽवि तत्थ विअंतिकारए, इच्चेयं विमोहाययणं हियं  
सुहं खमं निस्सेयसं आणुगामियं--तिवेमि ॥ सू०४ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—तद् ग्लायामि खलु अहम् अस्मिन् समये  
इदं शरीरकम् आनुपूर्व्यां परिवोद्धुम्, स आनुपूर्व्यां आहारं संवर्तयेत्, संवर्त्य कषायान्  
प्रतनून् कृत्वा समाहितार्चः फलकापदर्थी उत्थाय भिक्षुरभिनिर्वृत्तार्चः अनुप्रविश्य  
ग्रामं वा नगरं वा यावद् राजधानी वा तृणानि याचेत् यावत् संस्तरेत्,  
अत्रापि समये कायं च योगं च ईर्यां च प्रत्याचक्षीत्, तत्सत्यं सत्यवादी,  
ओजस्तीर्णश्छिन्नकथंकथः आतीतार्थः, अनातीतः, त्यक्त्वा भिदुरं कायं संविधूय  
विरूपरूपान् परीपहोपसर्गान् अस्मिन् मिश्रम्भणतया भैरवमनुचीर्णः, तत्रापि तस्य  
कालपर्यायः, सोऽपि तत्र व्यन्तिकारकः, इत्येतद्विमोहायतनं हितं सुखं क्षमं निःश्रे-  
यसमानुगामिकम्, इति ब्रवीमि ॥ सू०४ ॥

चाहे जिसे कर सकता है। इस पक्षमें चौथे अभिग्रहकी भजना है—धारण  
करे न भी करे। नीचे के सूत्रांशसे सूत्रकारने यही बात प्रकट की है—इसमें  
उन्होंने प्रथम द्वितीय तथा तृतीय अभिग्रहका प्रदर्शन किया है ॥ सू०३ ॥

અહોમાંથી પણ ચાહે તે ગ્રહણ કરી શકે છે આ પક્ષમાં ચોથા અભિગ્રહની ભજના છે  
—ધારણ કરે, ન પણ કરે, નીચેના સૂત્રાશથી સૂત્રકારે એજ વાત પ્રગટ કરી છે એમાં  
તેઓએ પહેલા બીજા અને ત્રીજા અભિગ્રહનું પ્રદર્શન કરેલ છે. (સૂ૦૩)

टीका—‘यस्ये’—स्यादि, ‘यस्य स्वलु’ इत्यारभ्य’ यावत् संस्तरेत्’ इत्यन्तस्य  
 व्याख्याञ्च बाध्ययने षष्ठोद्वेष्टे चतुर्थसूत्रे प्रोक्ता । तृणानि सस्तीर्य यद्विषेयं तदाह—  
 ‘अप्राप्ती’—ति, अत्रापि सस्तास्त्रौपवेचनावसरे कृतपादपोषगमनप्रतिष्ठो मिष्टा  
 ‘नमोत्पुण’ पठित्वा सिद्धान्तो धर्माचार्याम् नमस्कृत्य तदनु स्वयमेव पुनर्गभीतप

इस प्रकार कीसी एक अभिग्रह को धारण करनेवाले सबेले तथा  
 अखिल साधुकी शारीरिक पीडाके सम्मथमें या असम्मथमें अपनी  
 आयुके अवशिष्ट भागका ज्ञान होने पर मरणविधि सूत्रकार प्रदर्शित  
 करते हैं—“जस्त ण” इत्यादि ।

“जस्त ण” यहाँ से लेकर “जाव संयरिञ्जा” यहाँ तक के  
 पदोंकी व्याख्या इसी अध्ययनके छोटे उद्देशमें कही जा चुकी है । वास्त  
 का संधारा कर साधुके कर्त्तव्यका प्रदर्शन करते हुए सूत्रकार कहते हैं  
 कि—साधु संधारे पर बैठ जावे तब उस समय वह साधु कि जिसने  
 पदपोषगमन संधारा धारण करनेका नियम लिया है वह पहले “नमोत्पुण”  
 का पाठ पढ़कर सिद्धोंको, अर्हन्तोंको और धर्माचार्योंको नमस्कार  
 करे । उसके बाद स्वयं पांच महाव्रतोंका पुनः ग्रहण कर, चारों प्रकारके  
 आहारका परित्याग कर देवे, पश्चात् आकुञ्चन, प्रसारण, और दृष्टिसंघा-  
 रण आदिरूप कायव्यापारका, अप्रशस्त मनोयोग का और सर्वथा बचन

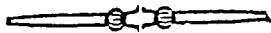
आ प्रकारे होई जेठ अभिग्रहने धारण करवावाणा सबेले तथा अखिल  
 साधुनी, शारीरिक पीडाना सहभावमां अगर असहभावमां पीडाना आयुधना  
 अवशिष्ट भागना अवधार डोवाधी मरुविधि सूत्रकार प्रकट करे छे—  
 “जस्त ण” इत्यादि

“यस्य स्वलु” अर्थात् तर्जने “यावत्सस्तरेत्” अर्थात् सुधीन्य पदोधी व्याख्या  
 आ अध्ययनना छुटा उद्देशमां ठडेवायेत छे । वास्तने संधारे करी साधुना  
 कर्त्तव्य प्रदर्शन करती सूत्रकार कहे छे के—साधु संधारे समास उपर जेसे  
 त्वारे ते समये ते साधु के जेठे पादपोषगमन संधारे धारण करवानी नियम  
 लीधो छे ते, पठेवा “नमोत्पुण” ने पाठ कले, पाठ कएने सिद्धाने, अर्हन्ताने अने  
 धर्माचार्योने नमस्कार करे । त्वारे बाद पीते पांच महाव्रतोने इरीथी मरुण करे-  
 वार प्रकरना आदारनेो परित्याग करे । पछा आकुञ्चन, प्रसारण अने दृष्टिसंघारण  
 आदिइष्ट कायना व्यापारनेो, अप्रशस्त मनोयोगनेो अने सर्वथा बचनयेजनेो,

अमहाव्रतश्चतुर्विधमप्याहारं प्रत्याख्याय काय=काययोगमाकुञ्चनप्रसारणदृष्टिसञ्चार-  
णादिरूपं कायव्यापार योगम्=अप्ररास्तमनोयोग सर्वथा वाग्योगं च, यद्वा-कायं  
=कायममत्वं योगं=तस्यैवाकुञ्चन-प्रसारणादिव्यापारम् । ईर्यां=गमनागमनरूपां  
क्रियां प्रत्याचक्षीत=परिहरेत् ।

एवं 'तं सच्चं' इत्यारभ्य सूत्रसमाप्तिपर्यन्तस्य व्याख्या पठोद्देशेऽवसेया ।  
'इति ब्रवीमी'-त्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥सू०४॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य सप्तम उद्देशः समाप्तः ॥८-७॥



योगका, अथवा कायमें ममत्वरूप कायका और उसीके आकुञ्चन,  
प्रसारण आदि व्यापाररूप योगका, एवं गमनागमनरूप क्रियाका  
परित्याग कर दें ।

इस प्रकार "तं सच्चं" यहां से लेकर उस सूत्रकी समाप्ति तकके  
पदोंकी व्याख्या इसी अध्ययनके छठे उद्देशमें तथा चतुर्थ उद्देशके अन्तमें  
लिखी जा चुकी है उसीके अनुसार समझलेनी चाहिये । "इति ब्रवीमि"  
इन पदोंका अर्थ भी कहा जा चुका है ॥सू० ४॥

॥ आठवें अध्ययनका सातवां उद्देश समाप्त ॥ ८-७ ॥

अथवा कायामां ममत्वरूप कायनो अने तेना आकुञ्चन, प्रसारण आदि व्यापार  
रूप योगनो, एव गमनागमनरूप क्रियानो परित्याग करे.

आ प्रकारे "तं सच्चं" अडीथी शर् करी आ सूत्रनी समाप्ति सुधीना  
पदोनी व्याख्या आ अध्ययनना छठ्ठा उद्देशमा तथा चोथा उद्देशना अतमां  
लभाई गयेल छे ते अनुसार समझ लेवी लेईअे "इति ब्रवीमि" आ पदोनी  
अर्थ पण अगाठना अध्ययनोमा कडेवाई गयेल छे (सू०४)

आठमा अध्ययनो सातमो उद्देश समाप्त ॥ ८-७ ॥



## । अथाष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देश ।

सप्तमोद्देशकथनानन्तरमष्टमः प्रारम्भ्यत । अस्य च पूर्वोद्देशैः सहाय्यं सम्बन्धः—  
पूर्वं चतुर्थोद्देशे व्याघातिमरण वैहायस—गार्दपृष्ठमरण च, पञ्चमे—मक्तप्रत्याख्यान,  
षष्ठे इङ्गितमरणं, सप्तमे च पादपोपगमनसुपदर्शितम् । अथाष्टमे—तेषां प्रभाषा  
मक्तपरिहृत्तमरणपादपोपगमनानां विधिमुपदर्शयन् प्रथमं मित्तोः समाधिपरि  
पालनप्रकारमेव दर्शयति—‘अणुपुञ्जेष’ इत्यादि ।

मृत्स्म—अणुपुञ्जेष विमोहाद्, जाद् धीरा समासञ्च ॥

वसुमतो महमतो, सव्व नच्चा अणोलिस ॥ १ ॥

छाया—आनुपूर्व्यां निमोहानि, यानि धीराः समासाद्य ॥

वसुमन्तो मतिमन्तः, सर्वं ज्ञात्वा वनीरुम् ॥१॥

## आठवें अध्ययनका आठवां उद्देश ।

सप्तम उद्देशके कथनके बाद अथ अष्टम उद्देश प्रारंभ होता है । इस  
उद्देशका पूर्व उद्देशोंके साथ यह संबंध है—चतुर्थ उद्देशमें व्याधि—मरण,  
वैहायस—मरण और गार्दपृष्ठमरण, पंचम उद्देशमें मक्तप्रत्याख्यान,  
छठेमें इङ्गितमरण और सप्तम उद्देशमें पादपोपगमन संधार का वर्णन  
सूत्रकारने किया है । इस अष्टम उद्देशमें मक्तपरिहृत्ता, इङ्गितमरण और  
पादपोपगमन, इन तीनोंकी विधि दिखलाते हुए सूत्रकार प्रथम मित्तुके  
समाधिपालनके प्रकारको प्रदर्शित करते हैं—‘अणुपुञ्जेष’ इत्यादि ।

## आठमा अध्ययनने आठमो उद्देश

सातमा उद्देशना कथन पछी ठवे आठमा उद्देशने प्रारंभ थाय छे आ  
उद्देशने पूव उद्देशानी साथे आ संबंध छे—आठमा उद्देशमा व्याधिभरण, वैहायस  
भरण अने आर्धपृष्ठभरण, पांचमा उद्देशमा मक्तप्रत्याख्यान, छठमा अङ्गित  
भरण अने सातमा उद्देशमा पादपोपगमन समासनु वर्णन सूत्रकार करैल छे  
आ आठमा उद्देशमा मक्तपरिहृत्ता, अङ्गितभरण अने पादपोपगमन, आ तिनैनी  
विधि जतावीने सूत्रकार प्रथम मित्तुना समाधि पालनना प्रकारने ठवे छे—  
‘अणुपुञ्जेष’ इत्यादि ।

टीका—‘आनुपूर्व्ये’—त्यादि, वसुमन्तः=संयमिनः, ‘मतिमन्तः’=मननं मतिर्हे-  
योपादेयपरिहारग्रहणाध्यवसायः, सा येषामस्तीति मतिमन्तः, धीराः=परीषहोपग-  
क्षोभ्या मुनयः, आनुपूर्व्यां=क्रमेण, स च क्रमो यथा—प्रव्रज्या, शिक्षा, सूत्रार्थग्रहण-  
तत्परस्यैकाकिविहारित्वम्, यद्वा-आनुपूर्व्यां=संलेखनाक्रमैश्चतुर्थ-षष्ठाऽष्टम-दशम-  
द्वादशभक्तादिकतपोविशेषरूपैर्विप्रकृष्टैः यानि=कथितानि ‘विमोहानि’ विगतो मोह

संयम पालन करनेवाले, हेय और उपादेयरूप पदार्थों के परिहार  
एवं प्राप्त करानेवाले ज्ञानसे संपन्न, तथा परीषह और उपसर्गों से अक्षोभ्य  
ऐसे मुनिराज क्रमसे पूर्व उद्देशोंमें वर्णित भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण और  
पादपोषगमनरूप विमोहको प्राप्तकर और उन्हें “अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा”  
असाधारण जानकर समाधिका पालन करे।

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दका अर्थ क्रम है इन भक्तप्रत्याख्यान आदि  
समाधिमरणोंको धारण करनेका क्रम इस प्रकार है—सर्व प्रथम मुनिदीक्षा  
धारण करना। तदनन्तर सूत्रका अध्ययन एवं उसके अर्थका अवधारण,  
अथवा युगपद्—एक साथ दोनोंका पठन और अवधारण करना। इसमें  
निष्णात होकर फिर एकाकी विहार करना।

अथवा—उत्कृष्ट, चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादश-  
भक्त आदि संलेखनाके क्रमस्वरूप तपविशेषोंका धारण करना। ‘विमोह’  
शब्दका अर्थ—भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण और पादपोषगमन संधारा है।

संयम पालन करवावाणा हेय अने उपादेय रूप पदार्थोंको परिहार अने  
प्राप्त करानेवाले ज्ञानधी संपन्न, तथा परिषह अने उपसर्गोंकी अक्षोभ्य, येवा  
मुनिजन कमथी पूर्व उद्देशोंमा अतावेले भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण अने पाद  
पोषगमन रूप विमोह (विवेक)ने प्राप्त करी अने तेने “अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा”  
असाधारण (विशेष) ज्ञानने समाधितुं पालन करे

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दको अर्थ क्रम छे, अने भक्तप्रत्याख्यान आदि  
समाधिमरणोंने धारण करवाने क्रम आ प्रकारने छे—पहिला मुनिदीक्षा धारण  
करवी, त्यार पछी सूत्रनु अध्ययन अने तेना अर्थनु अवधारण, अथवा युगपद्—  
अेकी साथे अनेनेतु पठन अने अवधारण करवु आमा निष्णात अनी पछी अेकला  
विहार करवे

अथवा—उत्कृष्ट चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त अने द्वादशभक्त आदि  
संलेखनाना क्रमस्वरूप तपविशेषोंने धारण करवा विमोह शब्दको अर्थ—  
भक्तपरिज्ञा इंगितमरण अने पादपोषगमन संधारा छे.



## । अथाष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देश ।

सप्तमोद्देशकथनानन्तरमष्टमः प्रारभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशैः सहाय्यं सम्बन्धा-  
पूर्वं चतुर्योद्देशे व्याघातिमरणं वैहायस-गार्दपृष्ठमरणं च, पञ्चम-मक्तप्रत्याख्यानं,  
षष्ठे इङ्गितमरणं, सप्तमे च पादपोपगमनमुपदर्शितम् । अत्राष्टमे-तेषां प्रपत्नां  
मक्तपरिज्ञेङ्गितमरणपादपोपगमनानां विधिसुपदर्शयन् प्रथमं भिक्षुः समाधिपरि-  
पालनप्रकारमेव दर्शयति-‘अणुपुण्ड्रेण’ इत्यादि ।

मूलम्—अणुपुण्ड्रेण विमोहाद्, जाड् धीरा समासज्ज ॥

वसुमतो महमतो, सव्व नच्चा अणेत्तिस ॥ १ ॥

छाया—आनुपूर्व्यां विमोहानि, यानि धीराः समासाय ॥

वसुमन्तो मत्तिमन्तः, सर्वं ज्ञात्वा अनीत्तम् ॥१॥

## आठवें अध्ययनका आठवां उद्देश ।

सप्तम उद्देशके कथनके बाद अष्टम उद्देश प्रारंभ होता है । इस  
उद्देशका पूर्व उद्देशोंके साथ यह संबंध है—चतुर्य उद्देशमें व्याधि-मरण,  
वैहायस-मरण और गार्दपृष्ठमरण, पंचम उद्देशमें मक्तप्रत्याख्यान,  
छठेमें इङ्गितमरण और सप्तम उद्देशमें पादपोपगमन संघारे का वर्णन  
सूत्रकारने किया है । इस अष्टम उद्देशमें मक्तपरिज्ञा, इङ्गितमरण और  
पादपोपगमन, इन तीनोंकी विधि दिखलाते हुए सूत्रकार प्रथम भिक्षुके  
समाधिपालनके प्रकारको प्रदर्शित करते हैं—‘अणुपुण्ड्रेण’ इत्यादि ।

## आठमा अध्ययनना आठमो उद्देश

सातम उद्देशना कथन पछी दुवे आठमा उद्देशने प्रारंभ थाय छे आ  
उद्देशने पूर उद्देशनी साथे आ संबंध छे—चौर्य उद्देशमां व्याधिभरण, वैहायस  
भरण अने गार्दपृष्ठभरण, पंचम उद्देशमां मक्तप्रत्याख्यान, छुठम उजित  
भरण अने सातम उद्देशमां पादपोपगमन संघारनु वर्णन सूत्रकार करे छे  
आ आठमा उद्देशमां मक्तपरिज्ञा, उजितभरण अने पादपोपगमन, आ त्रयेणी  
विधि बतावने सूत्रकार प्रथम भिक्षुना समाधिपालनना प्रकारने करे छे  
—‘अणुपुण्ड्रेण’ इत्यादि

टीका—‘आनुपूर्व्ये’—त्यादि, वसुमन्तः=संयमिनः, ‘मतिमन्तः’=मननं मतिर्हे-  
योपादेयपरिहारग्रहणाध्यवसायः, सा येषामस्तीति मतिमन्तः, धीराः=परीपहोपगर-  
क्षोभ्या मुनयः, आनुपूर्व्या=क्रमेण, स च क्रमो यथा—प्रव्रज्या, शिक्षा, सूत्रार्थग्रहण-  
तत्परस्यैकाकिविहारित्वम्, यद्वा-आनुपूर्व्या=संलेखनाक्रमैश्चतुर्थ-पष्ठाऽष्टम-दशम-  
द्वादशभक्तादिक्रतपोविशेषरूपैर्विप्रकृष्टैः यानि=कथितानि ‘विमोहानि’ विगतो मोह

संयम पालन करनेवाले, हेय और उपादेयरूप पदार्थों के परिहार एवं प्राप्त करानेवाले ज्ञानसे संपन्न, तथा परीषद् और उपसर्गों से अक्षोभ्य ऐसे मुनिराज क्रमसे पूर्व उद्देशोंमें वर्णित भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण और पादपोपगमनरूप विमोहको प्राप्तकर और उन्हें “अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा” असाधारण जानकर समाधिका पालन करे।

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दका अर्थ क्रम है इन भक्तप्रत्याख्यान आदि समाधिमरणोंको धारण करनेका क्रम इस प्रकार है—सर्व प्रथम मुनिदीक्षा धारण करना। तदनन्तर सूत्रका अध्ययन एवं उसके अर्थका अवधारण, अथवा युगपद्—एक साथ दोनोंका पठन और अवधारण करना। इसमें निष्णात होकर फिर एकाकी विहार करना।

अथवा—उत्कृष्ट, चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादश-भक्त आदि संलेखनाके क्रमस्वरूप तपविशेषोंका धारण करना। ‘विमोह’ शब्दका अर्थ—भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण और पादपोपगमन संधारा है।

संयम पालन करवावाणा हेय अने उपादेय रूप पदार्थोंने परिहार अने प्राप्त करवानार ज्ञानथी संपन्न, तथा परिषद् अने उपसर्गोंथी अक्षोभ्य, अथवा मुनिजन क्रमथी पूर्व उद्देशोमा अतावेव लक्ष्यपरिज्ञा, इंगितमरण अने पाद पोपगमन रूप विमोह (विवेक)ने प्राप्त करी अने तेने “अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा” असाधारण (विशेष) जाणीने समाधितुं पालन करे

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दने अर्थ क्रम छे, अने लक्ष्यप्रत्याख्यान आदि समाधिमरणोंने धारण करवानो क्रम आ प्रकारने छे—पहिला मुनिदीक्षा धारण करवी, त्यार पछी सूत्रनुं अध्ययन अने तेना अर्थनुं अवधारण, अथवा युगपद्—ओकी साथे अन्नेनु पठन अने अवधारण करवु. आमा निष्णात अनी पछी ओकला विहार करवे।

अथवा—उत्कृष्ट चतुर्थलक्ष्य, अष्टमलक्ष्य, दशमलक्ष्य अने द्वादशलक्ष्य आदि संक्षेपनाना क्रमस्वरूप तपविशेषोंने धारण करवा विमोह शब्दने अर्थ—भक्तपरिज्ञा इंगितमरण अने पादपोपगमन संधारा छे.

एस्य एषामेषु वा तानि विमोहानि=मक्तपरिज्ञेद्विद्वितमरणपादपोषणमनानि यथाक्रम-  
माप्तानि, तानि समासाद्य=उपलभ्य अनीहस्रम्=अद्वितीयम् सर्वम् उचितमनुक्ति  
वा पूर्वोक्तं मक्तपरिज्ञादिकं ज्ञात्वा समाधिं परिपालयेयुः ॥ १॥

अपि चान्यदाह—'दुविहं' इत्यादि ।

मूढम्—दुविह पि विद्वत्ता ण, बुद्धा धम्मस्स पारगा ॥

अणुपुब्बीइ सखाए, आरमाओ तितुट्टई ॥ २ ॥

छाया—द्विविधमपि विदित्वा खलु, बुद्धा धर्मस्य पारगाः ॥

आनुपूर्व्यां सङ्ख्याय, आरम्मात् भुटपठे ॥ २ ॥

टीका—'द्विविधमपी'—स्यादि बुद्धाः=परिज्ञातहेयोपादेया, द्विविधमपि बाह्य-  
माभ्यन्तरं च तपो विदित्वा=आसेव्यं, यद्वा—द्विविधमपि=बाह्यं क्षीरापकरमादिकम्,  
आभ्यन्तरं राग-त्रेपादिकमपि हेयतया ज्ञात्वा मत्प्यास्पानपरिज्ञया त्यक्तवैत्यर्पं,  
खलु=निश्चयन धर्मस्य=भुतचारित्र्यरूपस्य पारगाः=पारगामिन सकलरहस्यवेद्याः  
भवन्ति, तै आनुपूर्व्यां=प्रव्रज्याग्रहण-द्वादशाङ्गाभ्ययनादिक्रमेण संख्याय="सयमे

वि + मोहमे 'वि' शब्दका अर्थे विगत-रहित है। विगत हुआ है मोह  
जिन्होंने, अथवा जिन्होंने, अथवा जिन्होंने वे विमोह हैं। 'सर्व'  
शब्द यह भाव प्रकट करता है कि समाधिधारणकर्ता यह विचार  
अवश्य कर कि इनसंपारोका धारण करना किस समय उचित है अथवा  
किस समय अनुचित है ॥ १ ॥

और भी सूत्रकार इस विषयमें कहते हैं—'दुविहपि' इत्यादि।

हेय और उपादेय पदार्थों के परिज्ञाता मुनिजन बाह्य और आभ्यन्तर  
तपका सेवनकर निश्चय से भुतचारित्र्यरूप धर्मके सकल रहस्य के ज्ञाता  
होते हैं। वे प्रव्रज्याग्रहण और द्वादशाङ्गाका अभ्ययन आदिके क्रमसे मक्त

वि + मोहमा वि' शब्दको अर्थे विगत-रहित है मोह विगत कथे  
है, जेनाथी अथवा जेना अथवा जेनामा ते विमोह है "सर्व" शब्द को  
भाव प्रकट करे है के समाधि धारण करने के विचार करे है के ते समाधि  
धारण करे अथवा समये उचित है ? अथवा अथवा समये अनुचित है ? (१)

युष्मां पण सूत्रकार को विषयमा कहे है— 'दुविहपि' इत्यादि

उस अने उपादेय पदार्थोंना परिज्ञाता मुनिजन बाह्य अने आभ्यन्तर  
तपनु सेवन करी निश्चयधी सुतचारित्र्य धर्मना सकल रहस्यना ज्ञाता कहे  
है ते प्रव्रज्याग्रहण अने द्वादशाङ्गाका अभ्ययन करनेना कर्मधी सकलप्रत्याभयन

परिपालयतो ममातिशिथिलगात्रतया संयमाराधने सामर्थ्याभावाच्छरीरपरित्यागा-  
वसरः समयातस्त्वस्मादहं भक्तप्रत्याख्यानादिषु कस्मिन् मरणे समर्थोऽस्मी”-ति  
विचिन्त्य, आरम्भात्=शरीरधारणार्थमशनादिगवेषणातः त्रुट्यते=विरम्यते ॥२॥

अभ्युद्यतमरणाय संलेखनां विदधता मुख्यत्वेन क्रोधादिप्रतनुकरणरूपा भावसं-  
लेखना विधेयेति दर्शयति-‘कसाए’ इत्यादि ।

मूलम्—कसाए पयणू किच्चा, अप्पाहारे तितिवखए ॥

अह भिकखू गिलाइजा, आहारस्सेव अंतियं ॥ ३ ॥

छाया--कषायान् प्रतनून् कृत्वा, अल्पाहारस्तितिक्षेत ॥

अथ विष्णुर्ग्रायेत्, आहारस्यैवान्तिकम् ॥ ३ ॥

प्रत्याख्यान आदिका विचार कर शरीर धारणके निमित्त आहार आदि  
की गवेषणासे विरक्त हो जाते हैं । सूत्रमें “संखाय” शब्द यह बत-  
लाता है कि मुनिजन यह विचार करे कि संयमकी परिपालना करते-  
मेरा शरीर अब शिथिल हो गया है इससे संयमकी आराधना करने  
की अब शक्ति नहीं रही है, अतः अब इस शरीर के परित्यागका समय  
आचुका है, इसलिये भक्तप्रत्याख्यान आदि मरणोंमें से मैं कौनसा  
मरण धारण करने में समर्थ हूँ। इस प्रकार विचार करके अशनादिकी  
गवेषणा करनेका त्याग कर देवे ॥२॥

प्राप्तमरणके लिये संलेखना करनेवाले मुनिजनको मुख्यरूपसे क्रोधा-  
दिक कषायों के कृश करनेरूप भावसंलेखना करनी चाहिये, यह बात  
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘कसाए’ इत्यादि ।

वगेरेनो विचार करी शरीर धारणना निमित्त आहार वगेरेनी गवेषणाथी विरक्त  
अनी अथ छे सूत्रमा “संखाय” शब्द अेवु अतावे छे के मुनिजन अेवो  
विचार करे के सयमनी परिपालना करता करता भाइ शरीर डेवे शिथिल थछ  
अथुं छे, आथी सयमनी आराधना करवानी मारामा शक्ति रही नथी, अेटवे  
डेवे आ शरीरनो परित्याग करवानो समय आवी गयो छे, आ भाटे अकत  
प्रत्याख्यान वगेरे मरणोमाथी हु कथु मरण धारण करवामा समर्थ छु ? आ  
प्रकारनो विचार करी अशनादिनी गवेषणा करवानो त्याग करी दे.

प्राप्तमरण भाटे स लेअना करवावाणा मुनिअे सुअ्यइपथी क्रोधादिक कषायोने  
कृशइप भावस लेअना करवी जेअे आ वात सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—  
‘कसाए’ इत्यादि.

एभ्य एषामेषु वा तानि विमोहानि=भक्तपरिभ्रंशितमरणपादपापगमनानि यत्रात्म-  
 प्राप्तानि, तानि समासाद्य=उपलभ्य अनीहृद्यम्=अद्वितीयम् सर्वम् उचितमनुक्तिं  
 वा पूर्वोक्तं भक्तपरिभ्रंशिकं ज्ञात्वा समाधिं परिपालयेयुः ॥ १॥

अपि चान्यदाह-‘दुविहं’ इत्यादि ।

मूष्य-दुविह पि विद्वत्ता ण, बुद्धा धम्मस्स पारगा ॥

अणुपुव्वीइ सखाय, आरमाओ तितुहई ॥ २ ॥

छाया-द्विविधमपि विदित्वा खलु, बुद्धा धर्मस्य पारगाः ॥

आनुपूर्व्यां सङ्घाय, आरम्मात् पुटपते ॥ २ ॥

टीका-‘द्विविधमपी’-स्यादि, बुद्धाः=परिज्ञातहेयोपादेयाः, द्विविधमपि वा-  
 माभ्यन्तरं च तपो विदित्वा=आसेव्यं, यद्वा-द्विविधमपि=वाहं क्षरीरोपकरणविक्रमं,  
 आभ्यन्तर राग-द्वेषादिक्रमपि हेयतया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिहया त्यक्तत्वेत्यर्थः,  
 खलु=निश्चयन धर्मस्य=भूतचारिभ्रास्यस्य पारगाः=पारगामिन सफलरहस्यवेपारो  
 भवन्ति, तैः आनुपूर्व्यां=प्रमज्ज्याग्रहण-ज्ञादशाङ्गाभ्ययनादिक्रमेण संख्याय=“संपूर्णं

वि + मोहमें ‘वि’ शब्दका अर्थ विगत-रहित है। विगत हुआ है मोह  
 जिन्होंने, अथवा जिन्होंने, अथवा जिन्होंने वे विमोह हैं। ‘सर्व’  
 शब्द यह भाव प्रकट करता है कि समाधिधारणकर्ता यह विषय  
 अवश्य कर कि इनसंधारोका धारण करना किस समय उचित है अथवा  
 किस समय अनुचित है ॥ १ ॥

और भी सूत्रकार इस विषयमें कहते हैं-‘दुविहपि’ इत्यादि।

हेय और उपादेय पदार्थों के परिज्ञाता मुनिजन वाह्य और आभ्यन्तर  
 तपका सेवनकर निश्चय से भूतचारिग्रहण धर्मके सकल रहस्य के ज्ञाता  
 होते हैं। वे प्रमज्ज्याग्रहण और ज्ञादशाङ्गका अभ्ययन आदिके क्रमसे भक्त

वि + मोहमां वि शब्दने अर्थ विगत-रहित छे मोह विगत भवेत्  
 छे, जेनाथी अथवा जेना अथवा जेभ्येमां ते विमोह छे “सर्व” शब्द के  
 भाव प्रकट करे छे छे समाधि धारण करनेपर के विचार करे छे ते समाधाय  
 धारण करण के समय उचित छे ? अथवा क्या समय अनुचित छे ? (१)  
 अनुमां पञ्च अक्षर के विषयमां हठे छे-“दुविहपि” इत्यादि  
 छेय अने उपदेय पदार्थोना परिज्ञाता मुनिजन वाह्य अने आभ्यन्तर  
 तपनु सेवन करी निश्चयनी भूतचारिग्रहण धर्मना सकल रहस्यना ज्ञाता होय  
 छे ते प्रमज्ज्याग्रहण अने ज्ञादशाङ्गना अभ्ययन वषेरेना कर्मधी लक्ष्यप्रत्याख्यान

परिपालयतो ममातिशिथिलगात्रतया संयमाराधने सामर्थ्याभावाच्छरीरपरित्यागा-  
वसरः समायातस्तस्माद्दहं भक्तप्रत्याख्यानादिषु कस्मिन् मरणे समर्थोऽस्मी”-ति  
विचिन्त्य, आरम्भात्=शरीरधारणार्थमशनादिगवेषणात्: नृट्यते=विरम्यते ॥२॥

अभ्युद्यतमरणाय संलेखनां विदधता मुख्यत्वेन क्रोधादिप्रतनुकरणरूपा भावसं-  
लेखना विधेयेति दर्शयति-‘कसाए’ इत्यादि ।

मूलम्-कसाए पयणू किच्चा, अप्पाहारे तितिक्खए ॥

अह भिक्खू गिलाइज्जा, आहारस्सेव अंतियं ॥ ३ ॥

छाया--कपायान प्रतनून् कृत्वा, अल्पाहारस्तितिक्षेत ॥

अथ भिक्षुर्लायेत्, आहारस्यैवान्तिकम् ॥ ३ ॥

प्रत्याख्यान आदिका विचार कर शरीर धारणके निमित्त आहार आदि  
की गवेषणासे विरक्त हो जाते हैं । सूत्रमें “संखाय” शब्द यह वत-  
लाता है कि मुनिजन यह विचार करे कि संयमकी परिपालना करते-  
मेरा शरीर अब शिथिल हो गया है इससे संयमकी आराधना करने  
की अब शक्ति नहीं रही है, अतः अब इस शरीर के परित्यागका समय  
आचुका है, इसलिये भक्तप्रत्याख्यान आदि मरणोंमें से मैं कौनसा  
मरण धारण करने में समर्थ हूँ। इस प्रकार विचार करके अशनादिकी  
गवेषणा करनेका त्याग कर देवे ॥२॥

प्राप्तमरणके लिये संलेखना करनेवाले मुनिजनको मुख्यरूपसे क्रोधा-  
दिक कषायों के कृश करनेरूप भावसंलेखना करनी चाहिये, यह बात  
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘कसाए’ इत्यादि ।

वगेरेना विचार करी शरीर धारणना निमित्त आहार वगेरेनी गवेषणाथी विरक्त  
पनी जय छे सूत्रमां “संखाय” शब्द जेवु पतावे छे के मुनिजन जेवो  
विचार करे के सयमनी परिपालना करता करता भाइ शरीर डवे शिथिल थड  
गयुं छे, आथी सयमनी आराधना करवानी माराभा शक्ति रही नथी, जेटवे  
डवे आ शरीरने परित्याग करवाने। समय आवी गयो छे, आ माटे भक्त  
प्रत्याख्यान वगेरे मरणाभाथी हुं कथु मरणु धारणु करवामा समर्थ छु ? आ  
प्रधारने विचार करी अशनादिनी गवेषणा करवाने त्याग करी दे.

प्राप्तमरणु माटे सलेपना करवावाणा मुनिजे मुख्यरूपथी क्रोधादिक कषायोने  
कृशरूप भावसलेपना करवी जेधजे आ वात सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—  
‘कसाए’ इत्यादि.

टीका—‘कपाया’—नित्यादि, स भिक्षुः, अल्पाहार=स्तोकमोनी संलेखनाक्रमण पट्टापट्टमादिषिषिना तप कर्त्तुं पारण्यादिभे यदि केन चिद्वन्येन मुनिना समानीय दीयते तदप्यस्य भुङ्क्ते, इति भावः। कपायान् कपस्य=संसारस्य आयाश्च स्यानानि कपायास्तान्=क्रोधादीन् चतुर्विधान् मतनून्=कृशान् कृत्वा तितिक्षेत=नीचादपि दुर्माषितादिक सहेत, व्याख्यातर्हं च समेत, अल्पाहारकरणं कपायोपशमसम्भावनाय भवति तथाऽपि कदाचित्तस्य कपायोदयो भवेत्तदापि स घमेत एवेत्याश्रयः।

अल्पाहारी वह मुनि क्रोधादिक कपायोको कृश करके नीच पुरुषोंके कुषणोंको और व्याधिके आतक को भी सहन करे। यदि कदाचित् अध्यायाच शिष्य-सुखका अभिलाषी वह मुनि ग्लान हो जाय तो वह चार प्रकारके आहारका ही परित्याग कर देवे-संलेखना के कामका नहीं। सूत्रस्थित अल्पाहार पद यह प्रकट करता है कि वह साधु संलेखनाक्रमसे-घट, अष्टम आदि विधिसे-तपस्या करता हुआ पारणाके दिन किसी अन्य मुनिके द्वारा लाकर दिये गये आहारको भी अस्य मात्रामें ही लेता है। कपाय-इसमें कप और आय, ये दो शब्द हैं, कपका अर्थ संसार और आयका अर्थ स्थान है। संसारके जो स्थान हैं उनका नाम कपाय है। अस्य आहारका करना कपायोके उपशमकी संभावनासे होता है तो भी कदाचित् उसके कपायका उदय हो जावे उस समय भी वह दुर्माषित आदिको सहन ही करता है, यह बात भी ‘तितिक्षेत’ इस पदसे प्रकट होती है।

अल्पाहारी ते मुनि क्रोधादि कपायेने कृश करता नीच पुरुषेणा कुषणोने अने अधिना दुःखने पणु सदन करे, अने कदाचित् अध्यायाच शिष्यमुने अधिवापी ते मुनि ग्लान अनी अस्य तो ते चार प्रकारका आहारने परित्याग करे हे-संलेखनाक्रमने नहीं सूत्रजत अल्पाहार पद अने प्रकट करे हे ते ने साधु संलेखनाक्रमधी-छट्ट, अष्टम, आदि विधिधी तपस्या करता पाशुना विनसे जीना कौर्ध मुनिद्वारा वापी आपनामा आवेस आहारने पणु अस्य मात्रामाच ले हे कपाय-अनेमा कप अने आय अने शब्द हे कपने अर्थ संसार अने आयने अर्थ स्थान हे संसारने अर्थ स्थान हे तेनु नाम कपाय हे अल्प आहार करये ते कपायेना उपशमनी सम्भावनाधी साय हे तो पणु कदाचित् तेने कपायने उदय आवे तो ते समये पणु दुर्माषित आदिने सहन करे हे आ बात पणु तितिक्षेत’ आ पदधी प्रकट साय हे

अथ=पक्षान्तरे, यदि भिक्षुः=अव्यावाधिशिवसुखामिलापी मुनिः ग्लायेत  
=केनाप साधुना समानीता भिक्षा नोपलभ्येत तेन कारणेन ग्लानो भवेत्तदा  
आहारस्यैव=चतुर्विधाहारस्यैव अन्तिकम्=अन्तमवसानं कुर्यात्, न तु संलेखनाक्रमस्य ।  
अत्र 'एव'-कारेण अपि भक्तप्रत्याख्यानादिकं कुर्यात् किन्तु " कतिचिद्दिनानि  
भुक्त्वा पश्चात्संलेखनाशेषं करिष्यामि" इत्येवं कातरतामुपगत्य संलेखनाक्रमं न  
त्रोटयेदिति भावः ॥ ३ ॥

अन्यच्च—'जीवियं' इत्यादि ।

मूलम्—जीवियं नाभिकंखिज्जा, मरणं नो वि पत्थए ॥

दुहओऽवि न सज्जिज्जा, जीविए मरणे तहा ॥ ४ ॥

छाया—जीवितं नाभिकाङ्क्षेत्, मरणं नापि प्रार्थयेत् ॥

उभयतोऽपि न सज्जेत, जीविते मरणे तथा ॥ ४ ॥

'ग्लायेत' यह क्रियापद यह सूचित करता है कि किसी भी साधु  
के द्वारा समानीत-लाई गई भिक्षा यदि उस साधुको नहीं मिले तो वह  
ग्लान उस समय चारों प्रकारके आहारका ही त्याग कर देवे,  
संलेखनाक्रमका नहीं ।

"आहारस्यैव" यहां पर "एव" यह पद यह बतलाता है कि वह भक्त-  
प्रत्याख्यान आदि करे तो परन्तु ऐसा कायर बनकर वह अपने संलेखना  
के क्रमका भंग न करे कि 'चलो कुछ दिनों आहार लेकर पीछे अवशिष्ट  
संलेखना पूर्ण कर लूंगा' ॥३॥

अन्यच्च—'जीवियं' इत्यादि ।

ग्लायेत आ क्रियापद अ सूचित करे छे के के छे पण साधुद्वारा  
समानीत-लावेल भिक्षा कदाच ते साधुने न भणे तो ते ग्लान ते समय  
आरे प्रकारना आहारना त्याग करी छे पण सलेखनाना कभनो नही

"आहारस्यैव" अहि पर "एव" आ पद अेभ भतावे छे के ते लक्त  
प्रत्याख्यान आदि करे तो, परतु अेवा कायर बनीने ते पोताना सलेखनाना  
कभनो ल ग न करे के—'आलो थोडा दिवस आहार करी लउ' पछी आकी रहेल  
सलेखना पूर्ण करी लछश' (३)

इरी पण कडे छे—'जीवियं' इत्यादि



टीका— जीवित'-मित्यादि, स संलेखनाकारी मुनिः जीवितं नामिक्यञ्चेत्  
=नेञ्चेत्, सुधापरीपहाभिमूतो मरणम्=औदारिकशरीरस्यागमपि न प्रार्थयेत्, तथा  
जीविते मरणे उभयतोऽपि=उभयस्मिन्नपि न सज्जेत=आसक्तिं न कुर्यादित्यर्थः ॥३॥

तदा कीदृशो मधेदित्याह—'मज्झत्थो' इत्यादि ।

मूषम्—मज्झत्थो निज्जरापेही, समाहिमणुपालए ॥

अंतो घाहिं धिउस्सिज्ज, अज्झत्थ सुद्धमेसए ॥ ५ ॥

छाया—मध्यस्थो निर्जरापेही, समापिमनुपालयेत् ॥

अन्तर्बहिर्व्युत्सृज्य, अघ्यात्म शुद्धम वेपयेत् ॥ ५ ॥

टीका—'मध्यस्थ'—इत्यादि, मध्यस्थः राग-द्वेषयोर्दासीनः, यद्वा—मध्यस्थः  
=जीविते मरणेऽपि च निःस्पृहः, अत एव 'निर्जरापेही' निर्जरा=कर्मनिर्ध्वंसमपेक्षितं  
घोले यस्य स निर्जरापेही, स समाधिं=मरणसमाधिम् अनुपालयेत्—जीवितमरणेऽन्धा-

यह संलेखनाकारी साधु संलेखनामें अधिक जीनेकी आकांक्षा न  
करे, सुधा-परीपह आविसे ध्रस्त होकर औदारिक शरीरके परित्यागरूप  
मरणकी, अर्थात् अधिक जीनेकी एवं दुःखित होकर मरनेकी चाहना न  
रखे, तथा मरने जीने दोनों में आसक्ति न करे ॥ ४ ॥

उस समय यह कैसा होना चाहिये ? इसका उत्तर देने के लिये  
सूत्रकार कहते हैं—'मज्झत्थो' इत्यादि ।

राग और द्वेषमें उदासीन वृत्तिवाला, अथवा जीने और मरनेमें भी  
निःस्पृह, अत एव कर्मों की निर्जरा करनेकी अपेक्षाका स्वभाववाला, ऐसा  
यह मुनि मरणसमाधिकी अनुपालना करे, अर्थात्—जीवित और मरणमें  
इच्छारहित मुनिका कालपर्यायसे जिस समय में मरण होता है उस

के संक्षेपनाकारी साधु संक्षेपनामें वधारे लुपवानी आकांक्षा नहीं करे,  
सुधापरिपह आविसे ध्रस्त जनी औदारिक शरीरना परित्यागरूप मरणनी पक्ष  
आकांक्षा न करे अर्थात्—अधिक लुपवानी अथवा दुःखित जनीने भवानी  
चाहना न राखे, तथा मरना लुपवा जन्नेमां आसक्ति न करे (६)

ते समय के देवे देवे केके ? तेने उत्तर आपतां सूत्रकार केके छे—  
'मज्झत्थो' इत्यादि ।

राग अने द्वेषमां उदासीन वृत्तिवाणा अथवा लुपवामां अने मरणमां पण  
निःस्पृह भाटे के कर्मोनी निर्जरा करेखाना स्वभाववाणा केबा ते मुनि मरण  
समाधिनी अनुपालना करे, लुपव अने मरणमां छिप्रवदित मुनिगुण काण पर्या  
यधी के समये मरण याप छे के समयनी ते मुनि साधना वितथी प्रतीक्षा

वर्जितस्य कालपर्यायेण मरणं यद् यदा भवति तं कालं स समाहितमनाः परिपाल-  
येदित्याशयः। एवम् अन्तः=कषायान् वहिः=शरीरोपकरणादिकं च व्युत्सृज्य=विहाय  
शुद्धं=राग-द्वेषाद्युपशमाद्विस्रोतसिकावर्जितम्, अध्यात्मम्=अन्तःकरणम् अन्वेपयेत्=  
गवेपयेत् ॥ ५ ॥

किञ्च—‘जं किञ्चु०’ इत्यादि।

मूलम्—जं किञ्चुवक्त्रमं जाणे, आउक्त्रेमस्स मप्पणो ॥

तस्सेव अंतरद्वाए, खिप्प सिक्खिज्ज पंडिए ॥ ६ ॥

छाया—यं कं चनोपक्रमं जानीयात्, आयुःक्षेमस्याऽऽत्मनः ॥

तस्यैव अन्तरद्वायां, क्षिप्रं शिक्षेत पण्डितः ॥ ६ ॥

टीका—‘यं कं चने’-त्यादि, आत्मनः=स्वस्य आयुःक्षेमस्य=स्वसम्बन्धिन  
आयुषः क्षेमस्य=कल्याणस्य च यं कं चन उपक्रमम्=उपक्रमणम् जानीयात् तस्यैव=  
संलेखनाकालस्य अन्तरद्वायाम्=मध्यवर्तिकाले पण्डितः=अवगतहेयोपादेयतया  
स्वायुषो निजक्षेमस्य चोपायपरिज्ञाता क्षिप्रं=शीघ्रं शिक्षेत=अभ्यसेत्। यद्वा—य  
आत्मनः=निजस्य आयुःक्षेमस्य=सुखजीवितस्य यं कं चनोपक्रमम् आयुःपुद्गलानां

समयकी वह मुनि सावधानचित्त वन प्रतीक्षा करे। इस प्रकार अन्तरंगकी  
उपाधिस्वरूप कषायोंका, एवं बहिरंगकी उपाधिरूप शरीर और उपकरण  
आदिका परित्यागकर वह मुनि राग द्वेष आदिके उपशमसे विस्रोतसिका-  
संशयादिकदोष-रहित, ऐसे अपने अन्तःकरणकी गवेषणा करे ॥५॥

किञ्च—‘जं किं चुवक्त्रमं’ इत्यादि।

तथा—अपनी आयुको और अपने कल्याणके जिस किसी भी उपक्रम  
को वह जाने, उसका वह शीघ्र ही संलेखना कालके मध्यवर्त्ति कालमें  
अभ्यास करे। अथवा—वह मुनि जब ही अपने सुखमय जीवनकी  
स्थिति पूरी होती हुई जाने, अर्थात् ‘आयुके पुद्गलोंका संकुचित होनेका

करे आ प्रकारे अन्तरगनी उपाधिश्य कषाये। अने षडारनी उपाधिश्य शरीर  
अने उपकरणे वगेरेने। त्याच करी ये मुनि राग द्वेषथी रडित विस्रोतसिका-  
-स शयादिक दोष-रडित थर्ष पोताना अन्त करणनी गवेषणा करे (५)

श्री—‘जं किं चुवक्त्रमं’ इत्यादि

पोतानी आयुष्य अने कल्याणना करेक प्रकारना उपक्रमे ते नाले, अने  
ते तरत न स लेखनाकाणना मध्यवर्ती काणने अव्यास करे अथवा-अन्यारे ते  
पोताना सुभमय एवमनी स्थिति पुरी थती नाले, अथवा-आयुष्यना पुद्गलेने

सङ्कोचनं समुपस्थितं बानीयात् स पण्डितः=अथसरणः तस्यैव=उपक्रमस्य संलेखना-  
 वसरस्य अन्तरदायां=मध्यकाले क्षिप्रं=शीघ्रं क्षिप्रतः=भक्तपरिज्ञादिकमासेवनेन  
 परिजानीयात् ॥ ६ ॥

स संलेखनापरिशुद्धकृशशरीरो मरणकाले चोपस्थिते किं विदधीत? इत्याह—  
 'गामे वा' इत्यादि ।

मूम्—गामे वा अवुवा रण्णे, थडिल पडिलेहिया ॥

अप्यपाण तु विन्नाय, तणाई संथरे मुणी ॥ ७ ॥

छाया—ग्रामे वा अथवा अरण्ये, स्पष्टिलं प्रत्युपेक्ष्य ॥

अन्यप्राण विज्ञाय, तृणानि संस्वरे मुनिः ॥ ७ ॥

टीका—'ग्रामे वा'—इत्यादि, मुनिः=भिष्टुः संलेखनाशुद्धकृशशरीरः ग्रामे वा  
 अथवा अरण्ये=वने अन्यप्राणं=प्राणिवर्जितं स्पष्टिलं=संस्वारकवर्षं प्रत्युपेक्ष्य=सम्प-  
 गवधार्य विज्ञाय=विशेषरूपेण ज्ञात्वा, तृणानि=ग्रामादीं याचनया प्राप्तानि प्राण-  
 कानि वर्मादीनि संस्वरेत=चैः संस्वारणं कुर्यात् ॥ ७ ॥

समय उपस्थित होचुका है' ऐसा समझे तब ही यह अधसरण मुनि संले-  
 खना के अधसरके मध्यकालमें शीघ्र ही भक्तपरिज्ञा आदिका सेषन  
 करने लगे ॥६॥

संलेखना से परिशुद्ध कृश शरीर मुनि मरणकालके उपस्थित होने  
 पर क्या करे? इसके उत्तरमें सूत्रकार कहते हैं—'गामे वा' इत्यादि ।

यह मुनि कि जिसका कृश शरीर संलेखनासे शुद्ध है वसतिमें  
 अथवा जंगल में प्राणिवर्जित संस्वारक प्रदेशका निरीक्षण करे, और  
 उसके पश्चात् जब यह निश्चिन्त होजावे कि यह प्रदेश जीवजंतुरहित है  
 तब ग्रामादिक में याचनासे प्राप्त प्राणुकुर्ष आदि घास को यहाँ पर  
 विछाकर अपना संघारा तैयार करे ॥७॥

सङ्कोचितं यवाने समयं आसीत् मुक्तो छे' जेतुं समने त्पारे ते अधसरण मुनि  
 संलेखनाना अधसरणा मध्यकालमां सत्वरं भक्तपरिज्ञा वनेरेनु सेवन करवा लागे (६)

संलेखनाधी जेतुं कृश शरीर शुद्ध छे जेवा मुनि मरणकाल उपस्थित  
 यदां शु करे? आना उत्तरमां सूत्रकार कहे छे छे—'गामे वा' इत्यादि ।

जे मुनिउ कृश शरीर संलेखनाधी शुद्ध छे वसतिमां अथवा अजगत्  
 प्राणिवर्जित स्थानतु निरीक्षण करे, अने जे पछी अथवा जेवा निरीक्षण यथ  
 जाव के आ प्रदेश छे—अतुभी उचित छे त्पारे ग्रामादिकमां याचनाधी प्राप्त  
 करेव ईर्ष वनेरे घासनेत्वा पीछणी यैताने संघारा तैयार करे. (७)

તતઃ કિં કુર્યાદિત્યાહ—‘અળાહારો’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્મ્—અળાહારો તુચદ્વેજા, પુટ્ટો તત્થઽહિયાસણ ।

ળાતિવેલં ઉવચ્ચે, માણુસ્સેહિ વિ પુટ્ટણ ॥૮ ॥

છાયા—અનાહારસ્ત્વર્ગવર્તયેત્ , સ્પૃષ્ટસ્તત્રાધ્યાસયેત્ ॥

ળાતિવેલમુપચરેત્ , માણુજ્યૈરપિ સ્પૃષ્ટકઃ ॥ ૮ ॥

ટીકા—‘અનાહાર’—ઇત્યાદિ—સ સંલેખનાશુદ્ધશરીરઃ, અનાહારઃ=ત્રિવિધ-ચતુ-વિંધાશનપરિત્યાગી, ગૃહીતમહાવ્રતઃ સ્વયં ક્ષાન્તઃ ક્ષમાપિતસકલપ્રાણિગણઃ સમદુઃસ્વ-સ્તુલો વિદિતાત્મતત્ત્વતયા મરણાદપ્યવિભ્યન્ સ સંસ્તરે ત્વર્ગવર્તયેત્=પ્રતિલેખ્ય પ્રમાર્જ્ય ચ પાર્શ્વપરિવર્તનં વિદધ્યાત્ , સ એવ તત્ર સંસ્તરે સ્પૃષ્ટ=પરીપહોપસર્ગૈરભિભૂતઃ સન્ તાન્ અધ્યાસયેત્=અધિસહેત, અપિ ચ—તત્ર માણુજ્યૈઃ=અનુકૂલૈઃ—પુત્ર-કલત્ર-મિત્રાદિસં-

વહ ઇસકે પશ્ચાત્ કયા કરે ? ઇસકે લિયે સૂત્રકાર-કહતે હૈ—  
‘અળાહારો’ ઇત્યાદિ ।

સંલેખના સે શુદ્ધ શરીર વાલા, ત્રીન પ્રકાર યા ચાર પ્રકારકે આહારકા પરિત્યાગી, મહાવ્રતોં કો જિસને ગ્રહણ કિયા હૈ, સમસ્ત જીવોંકો જિસને ક્ષમા પ્રદાન કિયા હૈ ઓર ઉનસે ખી જિસને અપને સમસ્ત પ્રત્યક્ષ ઓર પરોક્ષ કૃત દોષોં કી ક્ષમાયાચના કર લી હૈ, સુખ ઓર દુઃસ્વ મેં જો સમભાવી બન ચુકા હૈ ઓર આત્મતત્ત્વકા જ્ઞાતા હોને સે જો મરણ સે ખી વ્રસ્ત નહીં હૈ એસા વહ સુનિ ઉસ વિછાયે હુણ સંથારેકી પહિલે પ્રતિલેખના કરે પશ્ચાત્ ઉસકી પ્રમાર્જના કરે । પ્રતિ-લેખના ઓર પ્રમાર્જના કરને વાદ ફિર ઉસ પર સોજાવે । ઉસ સથારે પર સોચેર હી વહ પરિષહ ઓર ઉપસર્ગોસે ઉપદ્રવિત બન ઉન્હેં સહે । અપને અનુકૂલ-પુત્રમિત્રકલત્રાદિકોં કે સંસર્ગસે જનિત પરીષહ ઓર

એ સુનિ આ પછી શુ કરે ? આને માટે સૂત્રકાર કહે છે—‘અળાહારો’ ઇત્યાદિ.

સલેખનાથી શુદ્ધ શરીરવાળા, ત્રણ પ્રકારના કે ચારે પ્રકારના આહારના પરિત્યાગી, મહાવ્રતો જેણે ગ્રહણ કરેલ છે, સમસ્ત જીવોને જેણે ક્ષમાપ્રદાન કરેલ છે અને પોતે પણ પોતાના બધા પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ દોષોની ક્ષમાયાચના કરેલ છે, સુખ અને દુઃખમાં જે સમભાવી બની ચુકેલ છે, અને આત્મતત્ત્વના જ્ઞાતા હોવાને કારણે જે મરણને ભય રાખતો નથી, એવો તે સુનિ ખીછાવવામાં આવેલ સથારાની પડિલેહણ કરી ફરી પરિમાર્જના કરે, એ પછી તે તેના ઉપર સુખે સથારો ગ્રહણ કરેલ તે સુનિ ઉપસર્ગોથી ન અકળાતા તેને સહન કરે પોતાના અનુકૂલ-પુત્ર-મિત્ર અને કુટુંબીજનોના સંસર્ગથી આવેલ પરિષદ અને

सर्गजनितैः, प्रतिकूलैः—वध-पंचना-जोशादिसमृद्धभूतैः परीपहोपसर्गैरपि स्पृष्टकः= स्पृष्ट एव स्पृष्टक अनुहूलोपसर्गैस्तदनुभ्यानपरः, प्रतिकूलैश्च तैः कोपपरायणः सन् अतिषेलं नोपचरेत्=साधुमर्यादां नातिक्रामेत् ॥ ८ ॥

उक्तार्थमेव विशदयति—'संसर्पगा' इत्यादि—

मूष्म्—ससर्पगा य जे पाणा, जे य उद्दहमहेचरा ॥

भुजति मससोणिय, न छणे न पमज्जए ॥ ९ ॥

छाया—संसर्पकाश्च य प्राणाः, य च ऊर्ध्वमषभराः ॥

भुजते मांसशोणित, न क्षणुयान्न प्रमार्जयेत् ॥ ९ ॥

टीका—'संसर्पका'—इत्यादि, संसर्पका.=संसर्पणशीलाः पिपीलिका-सर्प-मूषकादयश्च ये प्राणाः=प्राणिनः च-पुन य ऊर्ध्वमषभराः=ऊर्ध्वचारिणो गृध्रादयः, अषभराः=सिंह-व्याघ्र-शृगालादयः मांसशोणितं भुजत, तत्र मांसमाजिनः गृध्र-सिंह-व्याघ्रादयः, शोणितान्निनः पिपीलिकादयः, आदिशब्दात् इत्य-मशक मस्कृष्ण-यूकान्निहादयः सन्ति, स भिक्षुस्तान् पूर्वोक्तान् प्राणिनः स्वमांसापचनाय

उपसर्गोसे हर्षित हो कर, तथा प्रतिकूल-वध पंचन आक्रोश आदिसे उत्पन्न उनसे कोपपरायण होकर वह साधु मर्यादाका उद्दहण न करे ॥८॥

इस अर्थको सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—'संसर्पगा य' इत्यादि ।

पिपीलिका—कीड़ी, सर्प और मूषक आदि संसर्पणशील प्राणी, गृध्र यैरह ऊर्ध्वचारी जीव, और सिंह, व्याघ्र एवं शृगाल आदि अषभरी जीव कि जो मांस और शोणित का आहार करने वाले हैं, वे यदि उस साधु के मांस शोणित को म्रानेके लिये आवे तो वह उनकी हिंसा न करे, तथा उनके द्वारा म्रायी गया अपने शरीरका कोई भी अययबभइ रजोहरणादिक से प्रमार्जित न करे। गृध्र, सिंह और व्याघ्र आदि मांस

उपसर्गोसे हर्षित नहीं तथा प्रतिकूल-वध-अपन-आक्रोश वगैरेषी उत्पन्न तेजोशी डोपपरायण नहीं साधुमर्यादानु ते उद्दहण न करे (८)

या अयने सुत्रकार स्पष्ट करे छे—'ससर्पगा य' इत्यादि.

कीड़ी-सर्प-उद्दह-मुत्र-भीसकैःली-छद्दह वगैरे संसर्पणशील प्राणी, जीव वगैरे ऊर्ध्वचारी एव सिंह, व्याघ्र शीघ्र वगैरे अषभरी एव के ने मांस अने खोदीने च लक्ष्य करनास छे ज्ये कदाच ते साधुना मांस अने खोदीनु लक्ष्य करवा आवे तो ते तेनी हिंसा न करे तेम ज्येना दास आचम्य आवेना शरीरना कोप पण आचने रजोहरणादिकषी प्रमार्जित न करे जीव सिंह,

समागतान् न क्षणुयात्—न हिंस्यात्, नापि तैर्भुज्यमानमवयवं रजोहरणादिना प्रमा-  
र्जयेत् ॥ ९ ॥

अपि चाह—‘पाणा’ इत्यादि ।

मूलम्—पाणा देहं विहिंसन्ति, ठाणाओ नवि उब्भमे ॥

आसवेहिं विवित्तेहिं, तिप्पमाणोऽहियासए ॥ १० ॥

छाया—प्राणा देहं विहिंसन्ति, स्थानान्नाप्युद्भ्रमेत् ॥

आस्रवैर्विवित्ते,—स्तृप्यमाणोऽध्यासयेत् ॥१०॥

टीका—‘प्राणा’—इत्यादि, प्राणाः=प्राणिनो द्वीन्द्रियादयो देहं=मम शरीरं  
विहिंसन्ति=घ्नन्ति न पुना रत्नत्रयम्, अतः परिहृतदेहाशः समाचरिताभिग्रहभङ्गभ-  
यात्तान् न निवारयेत् । नापि=नैव तस्मात् स्थानात्=स्थण्डिलात् उद्भ्रमेत्=क्वचिद-  
न्यत्र गच्छेत् । अपि च—विवित्तेः=भिनैः आस्रवैः=प्राणातिपातादिभिः, शब्दा-  
दिविषयकषायादिभिर्वा तृप्यमाणः=पीड्यमानो अध्यासयेत्=तत्कृतां परीपहो-  
पसर्गवाधामधिसहेत् ॥१०॥

भोजी हैं, पिपीलिकादिक, आदि शब्दसे दंश, मशक, खटमल, जू एवं  
लीख आदि शोणितभोजी हैं ॥१॥

और भी—‘पाणा देहं’ इत्यादि ।

‘ये द्वीन्द्रियादिक प्राणी मेरे शरीरकी ही हिंसा करते हैं, रत्नत्रयकी  
नहीं’ ऐसा विचार कर अपने शरीरके ममत्व का त्यागी वह साधु  
समाचरित-गृहीत अभिग्रहके भंग के अर्थ से उन मांसशोणितभक्षी  
जीवोंका निवारण न करे, और न उनके अर्थसे वह उस स्थानसे किसी  
और दूसरे स्थान में जावे । तथा वह साधु प्राणातिपातादिक अथवा  
शब्दादिक विषय कषायरूप अनेक आस्रवोंसे आहत-पीडित होता हुआ  
भी उन द्वारा की गई परीषह और उपसर्गकी पीड़ाको सहता रहे ॥१०॥

वाध वगेरे मांस खानारा छे डीडी आदि, आदि शब्दथी मच्छर, भाकड, जू,  
लीख वगेरे ढोडी खुसनारा छे (८)

इरी पणु—‘पाणा देह’ इत्यादि

‘आ मे द्वीन्द्रियाणां प्राणी मारा शरीरनु लक्षणु करनारां छे पणु रत्नत्रयनु नहीं’  
अथवा विचार करी चेताना शरीरना ममत्वना त्यागी ते साधु, समाचरित-  
अलक्षणु करेल अलिग्रहना लगना लयथी अे मांस-ढोडीनु लक्षणु करनार अथवा  
दूर न करे, तेम अेना लयथी चेतो अे स्थान छोडी अेना स्थाने न लय, तथा  
ते साधु प्रणुतिपातादिक, अथवा शब्दादिक विषय-कषायोत्पन्न अनेक आस्रवोथी  
पीडातो डोवा छता पणु ते द्वारा तथा परिषड अने उपसर्गनी पीडाने सहन करे. (१०)

अन्यच्चाह—'गंधेहि' इत्यादि ।

मूष्म्—गंधेहि विविक्तेहि, आउकालस्स पारण ॥

पग्गहियतरग च्चैय, दवियस्स वियाणओ ॥११॥

छाया—ग्रन्थैर्विविक्तैः, आयुःकालस्य पारग ॥

प्रशुद्धीतरक च्चैय, द्रविकस्य विज्ञानतः ॥११॥

टीका—'ग्रन्थै -रित्यादि, यं विविक्तैः=पृथग्भूतै, ग्रन्थैः=वाच्यै शरीरादिभि, आभ्यन्तरैश्च रागादिभिः स्वात्मानं माषयन् धर्मशुक्लध्यानैकतरसमन्वितस आयुःकालस्य=मरणावसरस्य=पारग =पारगामी स्यात्—धर्मोच्छ्वासनिःश्वासपर्यन्तं समाधिमान् भवतु, एवंविधमरणादिविधायी नीरजाः सन् सिद्धिं, कर्मावशेषे दक्षलोकं वा गच्छेत् । कथितं भक्तपरिज्ञाख्यमरणम्, साम्प्रतं पण्यार्त्तनेहि-

और मी—'गंधेहि' इत्यादि ।

जो मुनि आत्मा से सर्वथा पृथग्भूत वाच्य-शरीरादिकरूप एवं आभ्यन्तर-रागादिरूप परिग्रहों से अपनेको भिन्न मानता है, और इसी प्रकारकी जिसकी सदा भावना यनी रहती है, तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान, इन दो ध्यानों में से जो किसी एक ध्यानसे समन्वित रहता है, वह मरणके अवसर का पारगामी होता है, अर्थात्—अन्तिम श्वास और निःश्वास पर्यन्त समाधिसंपन्न रहता है। इस रीतिसे मरण करनेवाला साधु कर्मरूप रजसे रहित होकर सिद्धिलोकमें अथवा कर्मोंके अवशेष रहने पर दक्षलोक में जाता है। यहाँ तक भक्तपरिज्ञा-नामक मरणका कथन किया गया है। यहाँ से आगे अब आगे पद्यसे सूत्रकार इंगितमरणका कथन आरम्भ करते हैं—प्रथम इंगितमरण कौन करता है? इसके लिये

इरी पण्य—'गंधेहि' इत्यादि

जो मुनि आत्मासे सर्वथा पृथग्भूत वाच्य-शरीरादिकरूप एवं आभ्यन्तर-रागादिरूप परिग्रहोंसे अपनेको भिन्न माने है, और आत्मा प्रकारकी जेनी सदा भावना यनी रहे है तथा धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान, आ यन्ने ध्यानोंमेंसे जो जो कोई एक ध्यानसे समन्वित रहे है ते मरणका अवसरने पार कराने एवं है—अन्तिम श्वास एवं निःश्वास सुधी समाधिसंपन्न रहे है आ रीतधी मरण करवावाण साधु कर्मरूप रजधी रहित यनीने सिद्धिलोकमें, अथवा कर्मनि अवशेष रहेवाधी देवलोकमें जाय है, अर्थात् सुधी भक्तपरिज्ञा नामका मरणका कथन करवाया आये है आत्मका इवे यधी पद्यधी सूत्रकार इंगितमरणका कथनने आरम्भ करे है—प्रथम इंगितमरण कौन करे है? जेने आटे सूत्रकार

तमरणमुपदर्शयति—‘पद्महिय०’ इत्यादि, द्रविकस्य=संयमवतः विजानतः=गीतार्थस्य जघन्येनापि नवपूर्वाभिज्ञस्य नान्यस्य इदं=वक्ष्यमाणमिद्वितमरणं प्रगृहीततरकम् अतिशयेन सम्यक् स्वीकृतं भवति । इद्वितमरणेऽपि संलेखनात्तृणसंस्तारादिकं पूर्ववद् बोध्यम् ॥११॥

तन्मरणस्यान्यमपि विधिं दर्शयति—‘अयं’ इत्यादि।

मूलम्—अयं से अपरे धम्मे, नायपुत्तेण साहिण् ॥

आयवज्जं पडीयारं, विजहिज्जा तिहा तिहा ॥१२॥

छाया—अयं सः अपरः धर्मो, ज्ञातपुत्रेण स्वाहितः ॥

आत्मवर्जं प्रतीचारं, विजह्यात् त्रिधा त्रिधा ॥१२॥

टीका—‘अयं’—मित्यादि, ज्ञातपुत्रेण=भगवता महावीरेण स्वाहितः=सुष्ठु आहितः=ज्ञातः केवलालोकेन समुपलब्ध इत्यर्थः, अयं वक्ष्यमाणः इद्वितमरणस्य धर्मः, अपरः=भक्तपण्डितमरणात्पृथगस्ति, एतस्यापि मरणस्य प्रव्रज्यासंलेखनादिको विधिः पूर्ववद् बोध्यः । इद्वितमरणाभिकाङ्क्षी सर्वमुपकरणं परिहृत्य स्थण्डिलप्रत्यु-

सूत्रकार कहते हैं कि—जो संयमी है, तथा कमसे कम तो नौ पूर्वके ज्ञाता है वही इसे स्वीकार करता है—अन्य मुनि नहीं । इस में भी संलेखना एवं तृणसंस्तार आदिकी विधि पूर्ववत् जाननी चाहिये ॥११॥

इस मरणकी अन्य विधि कहते हैं—‘अयं से’ इत्यादि।

ज्ञातपुत्र श्री महावीर के द्वारा केवलज्ञानरूपी आलोकसे अच्छी तरह जाना गया यह इंगितमरणरूप धर्म भक्तप्रत्याख्यान आदि मरण से भिन्न है। इस मरण की भी प्रव्रज्या ग्रहण करना, संलेखनादिक धारण करना आदि विधि पहिलेकी तरह ही समझना चाहिये। इंगित मरणका अभिलाषी मुनि समस्त उपकरणका परित्याग कर स्थण्डिलका

कडे छे के ने सयमी छे, तथा ने ओछामा ओछा नवपूर्वना न्णुकारडोय छे तेण तेने अगीकार करे छे—भीण मुनि नहीं आमां पणु सलेपना अने धासना स थारा वगेरेनी विधि पडेलानी माइक न्णुवी नेधं अ (११)

आ मरणनी भीण पणु विधि कडे छे—‘अयं से’ इत्यादि

ज्ञातपुत्र श्री महावीर द्वारा केवलज्ञानरूपी आलोकवशती ( प्रकाशवडे ) सारी रीते न्णुवामा आवेल ते धगितमरणरूप धर्म लकतप्रत्याख्यान वगेरे मरणथी न्णुवा प्रकारनु छे आ मरणनी पणु दीक्षा ग्रहण करवी, सलेपना वगेरेनु धारण करवु वगेरे विधि पडेलानी माइक न्णु समणवी नेधं अ. धगित मरणना अभिलाषी मुनिअे समस्त उपकरणेना परित्याग करी स्थण्डिलनु



पेक्ष्यपूर्वकमालोचितप्रतिष्ठान्तः, पृथीतपुनःपञ्चमहाप्रतो यावत्पुनं विहाय सस्वार स्थितो भवेत् । एतस्मिन् त्रिशेषं दर्शयति—‘आत्मवर्ज’—मित्यादिना, स त्वास्तारगत इक्षितमरणेषु, त्रिधा—त्रिधा=त्रिविधैर्मनोवाकायस्यै कृतकारितानुमतिमिथ आत्मवर्ज=निजशरीरावश्यककायवज प्रतीचारम्=स्वयम्भारं विज्ज्ञात्=परिहरेत्, स्वयमेव च—उद्भर्तनपरिवर्तनं कायव्यापारादिकं करोतीति भावः ॥ सू० १२ ॥

सुसुप्तः प्राणिप्राणपरिपास्तनस्यावश्यकतामुपदशयति—‘हरिपसु’ इत्यादि ।

मूम्—हरिपसु न निवज्जिज्जा, थडिल मुणिया सय ॥

विओसिज्ज अणाहारो, पुट्टा तस्थऽहियासय ॥१३॥

जाया—हरि तेषु न निपीदेत्, स्पण्डिल ज्ञात्वा क्षयीत ॥

व्युत्सुज्जानाहार, स्पृष्टस्वप्राध्यासयेत् ॥ १३ ॥

निरीक्षण, उसका संमार्जन, पापोंकी आलोचना एवं प्रतिक्रमण करे। पांच महाप्रतोंको पुन ग्रहण कर। अशनादिकको क्रमशः कृश करते हुए उसका सर्षधापरिहार करे, और प्रामादिकसे घासकी याचना कर एकांत स्थान में निर्जीव स्थानपर उनका संधारा कर उस पर स्वमत—स्वामणा कर स्थित हो जावे। इंगित मरणका इच्छुक मृनि मन बचन एवं कायसे, तथा कृत, कारित एवं अनुमोदना से अपने शारीरिक आवश्यक कार्यों के सिवाय अन्य—अवयवों के संभार करनेरूप प्रतीचारका परिहार कर देवे। उद्भर्तन—परिवर्तनरूप कायव्यापारादिक यह कर सकता है ॥१२॥

सूत्रकार पारवार प्राणियों के प्राणोंकी रक्षाकी आवश्यकता प्रकट करते हुए सूत्र कहते हैं—‘हरिपसु’ इत्यादि ।

निरीक्षण, तेन स मात्न, पापेनी आलोचना तेभ्य प्रतिक्रमण करी पांच महा प्रतोंने पुनः ग्रहण करे, अन्न वजरे कोर्षु करता अथ अने उपदे तेने स पुष त्याग करे, अने प्रामादिकधी घासनी याचना करी ओठान्त स्थानभा, निर्जीव स्थान उपर स माथे करी ओ उपर लेखी अमत—आभक्षा करी स्थिर वनी अथ, धिजितमरणने धिच्छानर मुनि मन वचन अने कायाधी करेला, करमेला, अने अनुमोदन आपेला पोताना शारीरिक आवश्यक कार्यों सिवाय अथ अवयवोंने सभार करवाइप प्रतिधारने त्याग करी दे उद्भर्तन—परिवर्तनरूप कायव्यापारादिक ते करी शके छे (१२)

सूत्रकार पारवार प्राणियोंना प्राणोंनी रक्षानी आवश्यकता प्रकट करीने सूत्र कहे छे—‘हरिपसु’ इत्यादि ।

टीका—‘हरितेष्वि’-त्यादि, स भिक्षुः, हरितेषु=दूर्वाङ्कुरयुतेषु प्रदेशेषु न निपीदेत्=नोपविशेत्, तं स्थण्डिल=हरितादिवर्जितं स्थानं ज्ञात्वा शयीत्, व्युत्सृज्य=आहारं त्यक्त्वा अनाहारः=कृतानशनः स्पृष्टः=परिपहोपसर्गैरभिभूत सन् तत्र=संस्तरे वर्तमान एव अध्यासयेत्=उपस्थितं परीपहोपसर्गाभिभवमधिसहेत् ॥मू० १३॥

अन्यदप्याह—‘इदिर्हि’ इत्यादि ।

मूलम्—इदिर्हिं गिलायंतो, समियं आहरे मुणी ॥

तहावि से अगरिहे, अचले जे समाहिए ॥१४॥

छाया—इन्द्रियैर्ग्लायमानः, शमितामाहारयेन्मुनिः ॥

तथाऽपि सः अर्गहः, अचलो यः समाहितः ॥ १४ ॥

टीका—‘इन्द्रियै’-रित्यादि, अशनप्रत्याख्यानादिन्द्रियाणां क्षीणशक्तितया इन्द्रियैः=श्रोत्रादिभिः, ग्लायमानः=ग्लानिमनुभवन् मुनिः शमिनो=मनोनिग्रहवतो भावः शमिता, तां, यद्वा—‘साम्यम्’ इतिच्छाया, साम्यम्=समभावम् आहारयेत्=स्वात्मनि स्थापयेत्, आर्तध्यानसमन्वितो न भवेदित्याशयः । यथासमाधि तत्र

वह भिक्षु, जिस प्रदेशमें हरित-दूर्वादिके अंकुर हों उस प्रदेशमें नहीं बैठे । जहां हरितांकुर आदि न हों, वहीं पर ऊठे बैठे एवं सोवे । चतुर्विध आहार का परित्यागी वह भिक्षु परीपह और उपसर्गों से उपद्रवित होने पर उस संथारे पर रहता हुआ ही उपस्थित उस परिपह और उपसर्ग-जन्य बाधा को लहे ॥१३॥

और भी—‘इदिर्हि’ इत्यादि ।

आहार के परित्याग कर देने से इन्द्रियां स्वयं शिथिल हो जाती हैं, अतः आहार के परित्याग से क्षीणशक्तिवाली इन्द्रियों द्वारा मुनि जब ग्लानिका अनुभव करने कगे उस समय वह अपने मनका निग्रह करके समताभावको धारण करे—आर्तध्यानसे युक्त न बने । हस्त-पादा-

ते भिक्षु जे प्रदेशमा लीला दर्ल आदिना अ कुर डोय तेवा प्रदेशमा न जेसे, न्या लीला दर्लना अ कुर न डोय त्या जेसे ठे अने सुवे. चार प्रकारना आहारना परित्यागी जे साधु परिषड अने उपसर्गोधी उपद्रवित डोवा छता सथारा उपर रडीने उत्पन्न थता परिषड अने उपसर्गजन्य भाधाओने सहन करे. (१३)

वधु पद्यु—‘इदिर्हि’—इत्यादि

आहारनो त्याग करी देवाथी इन्द्रियो स्वय शिथिल भनी लय छे, जेटवे आहारना त्यागथी क्षीणशक्तिवाणी इन्द्रियोथी मुनि न्यारे ग्लानि अनुभववा लागे जे समये ते पोताना मननो निग्रह करीने समता लावने धारण करे-

विच्छेत्, तथा हि—सङ्कोचनोद्धिन्नो हस्तपादाद्यवयवं प्रसारयेत्, तत्र भ्रान्त मासीदेत्  
इत्थितप्रदेशे परिभ्रमेद्वा, तथाऽपि=एषं कुर्वन्मपि यो मुनिः, अभ्युपतमरणाद् गिरि  
रिवाऽप्रकम्प्यः शरीरमाश्रेण तु चलिष्य एव समाहितः=समाधिस्थापितचित्तो भवेत्  
सोऽर्गः=अनिन्याः, आराधक एवेत्यर्थः । स भावतोऽथ च इत्थितप्रदेशे गमनादिक  
कर्तृमर्षीत्याश्रयः ॥ सू० १४ ॥

उक्तमेवार्थं प्रकटयति—‘अभिक्रमे’ इत्यादि ।

सूत्रम्—अभिक्रमे पठिक्रमे, सकुच्य पसारय ॥

कायसाधारणद्वेष, इत्थ वाचि अचेयणो ॥ १५ ॥

छाया—अभिक्रमेत् प्रतिक्रमेत्, सङ्कोचयेत्प्रसारयेत् ॥

कायसाधारणार्थाय, अत्र वाऽपि अचेयन ॥ १५ ॥

दिक अवयवों के सकोचसे यदि वह उद्धिन्न चिराबाला हो जाता है, तो  
वह हस्तपादादिको फैला सकता है। छेदेर यदि वह धक जाता है तो वह उठ  
कर बैठ भी सकता है, और इंगितप्रदेशमें घूम भी सकता है। इस प्रकारसे  
अपनी परिस्थितिको संभालता हुआ भी वह प्राप्त हुए मरणसे अचल-  
चित्त नहीं बनता, प्रत्युत पर्वतके समान अडोल ही रहता है। केवल शरीर  
से ही चलता है परन्तु गृहीत समाधिसे कि जिसमें उसने अपना चित्त  
स्थापित किया है उससे चलित नहीं होता ऐसा साधु ही अनिष्ट आराधक  
होता है। भावसे अचल होकर ही यह इंगित प्रवेश में गमनादिक कर  
सकता है ॥१४॥

कथित अर्थको ही सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘अभिक्रमे’  
इत्यादि ।

—आर्तभ्रान्ती कुत न बने काय पत्रना अवयवोना सङ्कोचधी ने ते उद्धिन्न  
चित्तवाण्य यथं अथ तो ते ज्ञेने देहावी शके छे मुत्यां मुत्यां ने ते वाही अथ  
तो ते उद्धिने जेसी शके छे ज्ञेने धृजित प्रदेशमा इती शके छे आ प्रक्षरधी  
चरिस्थितिने सजाण्वा छत्र पद्य ते प्राप्त वत्ता मरुद्धी अथवा चित्तवाणा  
जनता नधी, परतु पर्वतनी जेभ अडोल रहे छे केवल शरीरधी अथवा छे  
परतु दीर्घक समाधिधी के जेभां तेज्ये चित्त स्थापित करे छे तेनाधी चलित  
वत्ता नधी जेवा साधु अ प्रक्षया भेजवन्तार बने छे कावधी अथवा जनीने अ  
ते धृजित प्रदेशमां वरी-इरी शके छे (१४)

इदेषामां आवेदा अर्थने अ सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—‘अभिक्रमे’ इत्यादि.

ટીકા—‘અભિક્રામે’—દિત્યાદિ, સ મુનિઃ કાયસાધારણાર્થાય દેહસ્યાપિ સુ-  
કુમારતયા તન્નિર્વહણાર્થમ્, અભિક્રામેત્=સંસ્તારકામિમુગ્ધં ગચ્છેત્, તથા પ્રતિક્રા-  
મેત્=સંસ્તારકાત્ પથાદ્ ગચ્છેત્, સદ્ગોચયેત્=પ્રમારયેત્=હસ્તપાદાદીનાં સદ્ગોચન  
પ્રસારણં ચ કુર્યાત્, અત્ર વાઽપિ પૂર્વોક્તાભિક્રમણાદિકરણેઽપિ ‘વા’ ગબ્દાત્ સતિ  
સામર્થ્યે પાદપોપગમનવદત્રેઙ્ગિતમરણેઽપિ અચેતનઃ=શુષ્કકાષ્ઠવત્ સર્વક્રિયાવર્જિત  
એવ વિજ્ઞેયઃ ॥ મુ. ૧૫ ॥

તથાવિધસામર્થ્યાઽસત્ત્વે યદ્વિધેયં તદાહ—‘પરિક્રમે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—પરિક્રમે પરિકિલંતે, અદુવા ચિદ્ર અહાયણ ॥

ઠાણેણ પરિકિલંતે, નિસીઙ્ગજા ય અંતસો ॥ ૧૬ ॥

છાયા—પરિક્રામેત્ પરિક્લાન્તઃ, અથવા તિષ્ઠેદ્ યથાયતઃ ॥

સ્થાનેન પરિક્લાન્તઃ, નિષીદેઽ અન્તગઃ ॥ ૧૬ ॥

વહ મુનિ દેહકે અનિસુકુમાર હોનેકે કારણ નિર્વાહ કરને કે લિયે  
સંસ્તારક કે સન્મુખ જા સકતા હૈ, વહાંસે પીછે લૌટ કર વાપિસ મી  
આ સકતા હૈ । અપને હાથ પૈર આદિ અવયવોં કો ફૈલા સકતા હૈ ઓર  
અનકા સકોચ મી કર સકતા હૈ । ઇંગિત મરણ કરને મેં ઉઘત વહ સાધુ  
અન પૂર્વોક્ત ક્રિયાઓંકો કર સકના હૈ । યદિ અસમેં શક્તિ હો તો પાદપો-  
પગમન મેં જૈસે શુષ્કકાષ્ઠ કોતરહ નિષ્ક્રિય પડા રહતા હૈ અસી તરહ  
યહ મી અસ ઇંગિતમરણ મેં નિષ્ક્રિય હો કર રહ સકતા હૈ ॥૧૬॥

અસ પ્રકારકી શક્તિ કે અભાવ મેં જો કરને યોગ્ય હૈ વહ સૂત્રકાર  
પ્રદર્શિત કરતે હૈ—‘પરિક્રમે’ ઇત્યાદિ ।

તે મુનિ દેહના અતિ સુકુમાર હોવાને કારણે એના હલન-ચલન માટે  
સથારાની આબુખાબુ જઈ શકે છે ત્યાથી ફરી તે પાછા સથારાના સ્થળે  
આવી શકે છે પોતાના હાથ પગ વગેરે અવયવોને ફેલાવી શકે છે અને તેનો  
સકોચ પણ કરી શકે છે ઇંગિત-મરણ કરવામા ઉઘમી તે સાધુ આવી પૂર્વોક્ત  
ક્રિયાઓ કરી શકે છે જે તેનામા શક્તિ હોય તો તે પાદપોપગમનમા જેમ  
સુકેલા લાકડાંની જેમ નિષ્ક્રિય પડયા રહે છે તેમ તે પણ આ ઇંગિતમરણમા  
નિષ્ક્રિય થઈ રહી શકે છે. (૧૫)

આ પ્રકારની શક્તિના અભાવમા જે કરવા યોગ્ય છે સૂત્રકાર તેને  
સૂત્રદ્વારા બતાવે છે—‘પરિક્રમે’ ઇત્યાદિ

टीका—'परिक्रामे'—दित्यादि, यदा मूमेरुपविशत' शरीरपीडा भवेत्तदा स  
परिक्रान्तः=अममृपगतः सन् परिक्रामेत्=परिभ्राम्येत् नियतदेशे सरलगत्या याता  
यातादीनि समाचरेत् । तथापि भ्रान्तभेत्तदा किं कुर्यादित्याह—'अथव'—स्यादि,  
अथवा यथायत्त = यथास्थापितशरारः तिष्ठेत्, यदि स्थानेन=एकस्थानावस्थित्या  
परिक्रान्तो भवेत्—यद्युपविष्टभेत् पर्यङ्कोत्कृट्टकापासनान्तरानि कुर्यात्, उक्ति-  
भेद् गमनागमनाविकं कुर्यात्, ततोऽपि क्लान्तभेत्तदा अन्तः=अन्ततो निपीदेन्न  
उपविशेत्, तस्यामवस्थार्यां पार्श्वेऽपि दण्डायतिको सम्यग्भायी वा भूत्वा यथा-  
योगमवतिष्ठेतेति तात्पर्यम् ॥ सू० १६ ॥

अपि चान्मदप्याह—'आसीणे' इत्यादि ।

बैठे २ मुनि को जय शारीरिक कष्टका अनुभव होने लगे और उस  
दशामें उसे अपना शरीर थकासा मालूम पड़ने लगे तो वह नियमित  
प्रदेश में सरलगति से गमनागमन कर सकता है। ऐसा करते-ही यदि  
थक जाता है, तो उसे एक स्थान पर ठहर जाना चाहिये। ठहरते समय  
यदि वह बैठ गया है, तो वह पर्यङ्गतसन या उत्कृट आसन आदिसे बैठ  
सकता है, यदि नङ्गा ही है तो अम ममास होते ही वह फिरसे गमना  
गमन कर सकता है। इस में भी जय वह थक जावे तो वह अन्तमें बैठ  
जावे, इस समय वह छेद भी सकता है, दण्ड जैसा हो सकता है, तथा  
वह अपने हाथ पैर आदि समस्त अवयवोंको इच्छानुसार पसार सकता है,  
तात्पर्य यह है कि—जिस रूपसे छेदनेमें या बैठनेमें उसे सुख मालूम हो वह  
उस प्रकार से छेद सकता है अथवा बैठ सकता है ॥ १६ ॥

और भी—'आसीणे' इत्यादि ।

जहां जहां मुनिने जगह शारीरिक कष्टने अनुभव था वहां जाने को  
दशामें तेने पीतानु शरीर थकेहु भाग्य पडे तो ते नियमित प्रदेशमां सरल  
अतिथी करी-करी शके छे जेम कस्ता कस्तां पञ्च जे ते थाकी जाय तो तेहु  
जेक स्थान उपर बेसी जनु जेठ जे जे स्थान उपर येते बेसी जयेठ छे  
त्या ते पर्यङ्गतसन अथवा उत्कृट (उत्कृट) आसन जगेरधी बेसी शके छे जे  
उभा न रहे तो अम वागवा वणी करीधी करी-करी शके छे जे पभते पञ्च  
जे ते थाकी जाय तो जते बेसी जाय अने मुर्ध पञ्च शके छे वाक्यीनी  
भाङ्क धरि शके छे अने ते पीताना हाथ पग जगेरे अत्रयवे धर्म अनुसार देखी  
शके छे तात्पर्य जे छे के-ने रीते मुखा बेसनामां जेने मुप पडे ते प्रकारे ते मुर्ध  
बेसी शके छे (१६)

वपुभा— आसीण' इत्यादि.

मूलम्—आसीणेऽणेलिसं मरणं, इंदियाणि समीरए ॥

कोलावासं समासज्ज, वितहं पाउरेसए ॥ १७ ॥

छाया—आसीनोऽनीदृशं मरणम्, इन्द्रियाणि समीरयेत् ॥

कोलावासं समासाद्य, वितथ प्रादुरेषयेत् ॥ १७ ॥

टीका—‘आसीन’—इत्यादि. अनीदृशम्=अनन्यतुल्य कातरजनदुष्कर मरणम्= इङ्गिताख्यम् आसीनः=उपविशन्=स्वीकुर्वन् तादृशमरणकृताध्यवसाय इत्यर्थः, स मुनिः इन्द्रियाणि=श्रोत्रादीनि समीरयेत्=मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिविषयेषु राग-द्वेषा-करणेन प्रेरयेत्-विषयेभ्य इन्द्रियाणि निवर्तयेदित्यर्थः । राग-द्वेषयोरसत्त्वेन स्वत एव तानि स्वविषयेभ्यो निवृत्तानि भवन्तीति परमार्थः। स एव ‘कोलावासं’ कोलानां घुणाख्यकीटविशेषाणाम् आवासः=स्थान, तम्, अन्तर्घुणक्षत पीठफलका-दिकं समासाद्य=प्राप्य वितथम्=अतथाभूतं कोलावासादन्य सर्वथा घुणादिजीवरहितं

जिसे कायर जन अंगीकार नहीं कर सकते ऐसे इस इंगित मरण को स्वीकार करनेवाला यह मुनि अपनी श्रोत्र आदि इंद्रियोंको मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द आदि विषयों में राग और द्वेष नहीं करके उस तर्फ से हटा लेवे । विषयों में जब इंद्रियोंका राग और द्वेष नहीं होगा तो वे स्वतः उस ओर से हट जायेंगी । वह मुनि कोलावास-भीतर से जिसे घुनने खा लिया है ऐसे पीठ फलकादिको छोड़कर अच्छे मज-बूत निश्चिद्र पीठ-फलकादिककी अपने सहारे के निमित्त गवेषणा करे । घुण नामक कीट-विशेषका नाम कोल है, इनका जिसमें स्थान है वह कोलावास है। इससे भिन्न कि जिसके भीतर घुन न लगा हो जिसमें छिद्र न हो और जिसकी प्रतिलेखना आदि क्रिया अच्छी तरह से हो

नेने असयभी जन अगीकार नहीं करी शकता येवा ये ष्ठिगित-मरणुने स्वीकार करवावाणा ये मुनि पोतानी श्रोत्र वगेरे इन्द्रियोने मनोज्ञ अने अम-नोज्ञ शब्द वगेरे विषयोमा राग अने द्वेष नहि करता ये तरइथी छटावी ले, विषयोमा न्यारे इन्द्रियोने राग अने द्वेष न होय त्यारे ते नते न ते तरइथी छठी न्शे ते मुनि, नेने अहरथी घुणु लागेल छे येवा पीठ-इलकादिकने छोडी छ् सारा मज्जुत छिद्र वगरना पीठ-इलकादिकनी पोताना सहारा भाटे गवेषणा करे, ने लाकडामा डोर् छीडालु स्थान न होय तेवा छिद्र वगरना, नेनी प्रतिलेखना वगेरे क्रिया सारी रीते थर् शकै येवा

માદુરેપમત્=મકટં પ્રતિલેખનયોગ્ય ણિદ્રવર્જિતં પીઠફલ્લકાદિકમ્મનાર્થમપે  
પયેત્ ॥ ૧૭ ॥

કોલાવાસયુક્તપીઠફલ્લકાદિવર્જને હતુમાહ-‘અમો’ ઇત્યાદિ ।

મૂઢમ્-જમ્ઓ વજ્જ સમુપ્પજ્જે, ન તત્થ અવલંબપ્ ॥

તઓ ઉક્કસે અપ્પાણ, ફાસે તત્થઽહિયાસપ્ ॥૧૮॥

છાયા--યતો વર્મં સમુત્પધેત, ન તપ્પાવલ્લભેત્ ॥

તત ઉત્કર્ષયેદાત્માનં, સ્પર્શંસ્તપ્રાઽધ્યાસયેત્ ॥ ૧૮ ॥

ટીકા--‘યત’-ઇત્યાદિ, યતઃ=યસ્માત્ કોલાવાસાદિયુક્તપીઠફલ્લકાદિવર્જ-  
નાત્ વજ્જમ્=વજ્જમિષ ગુરુત્વાદ્ જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મ, યદ્વા-‘અવધ’-મિતિચ્છાયા,  
અવધ=પાપં સમુત્પધેત=આયેત, તપ્પ-વાહ્યે ઘુણસત્પીઠફલ્લકાદૌ ન અવલ્લભેત્=  
અવલ્લભનાદિક્રિયાં નૈષ કુર્યાત્, તત્=તસ્માદ્ ઉત્પાનોપવેશનપાર્શ્વપરિવર્તનાદિષ્ટા-  
સકમી હો એસે પીઠ-ફલ્લકાદિક કો હી વહ સાધુ અપને ઉપયોગ મેં છા  
સકતા હૈ, હસસે મિજ્જ કોલાવાસયુક્ત સચ્ચિદ્રવ્કો નહીં ॥૧૭॥

પૂર્વોક્ત પ્રકારકે પીઠફલ્લકાદિક ઉપયોગમેં ક્યોં નહીં છાના ચાહિયાં  
ક્યોં હનકા પરિહાર કરના ચાહિયે? હન વિષયમેં કારણ યતાતે હુપ સૂઘ  
કાર કહતે હૈ--‘જમ્ઓ’ ઇત્યાદિ ।

કોલાવાસયુક્ત પીઠ-ફલ્લકાદિકકો અપને ઉપયોગ મેં છાનેસે કઠોર  
વજ્જકી તરહ જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંકા અથવા પાપકા ઉસ માધુકે વેધ  
હોતા હૈ, અર્થાત્-ઘુને પીઠ ફલ્લકાદિકકા સહારા છેને સે સાધુ જ્ઞાનાવર  
ણીયાદિક કર્મોંકા અથવા પાપોંકા સંચય કરનેઘાલા હોતા હૈ, હસલિપ  
ઉસકા ઉસે અવષ્ટમ-સહારા આદિ નહીં છેના ચાહિયે, ઈધં સત્પાન,

પીઠ-ફલ્લકાદિકને જ તે સાધુ પોતાના ઉપયોગમાં લઈ શકે છે તેનાથી કિંમ ભેદ છે  
હીઠાએ પાટેલા ણિદ્રવણા નહીં (૧૭)

હીઠાએ પાટેલા ણિદ્રવણા છાકરાના પાટીયાને ઉપયોગ પીઠ માટે કેમ ન  
લેવાય? એને શા માટે પરિહાર કરવો જોઈએ? આ વિષયમાં કારણ બતાવવા  
સુત્રકાર કહે છે-- ‘જમ્ઓ’ ઇત્યાદિ

હીઠાએ કોલાવાસ્યુક્તે તેમાં વાસ કરીશ પીઠ-ફલ્લકાદિકને પોતાના ઉપયો  
ગમાં લેવાથી વજ્જના જેવા કઠોર જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંના, અથવા  
‘અવધ-પાપનો અંધ ધાય છે અદર્શી કોલાઈ’ મથેલા જેવા  
છાકરાના પીઠ-ફલ્લકાદિકને આશયે લેવાથી સાધુ જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંના  
અથવા પાપોંના સંચય કરવાવાળા બને છે, આ માટે તેનો સહારો સાધુએ ન

ययोगाद् दुःप्रणिहितवाग्योगादार्तस्थानादिमनोयोगाच्चावद्यप्रादुर्भावकारणाद्  
 आत्मानम् उत्कर्षयेत्=पृथक् कुर्यात् निवर्तयेदित्यर्थः । तत्र=इङ्गितमरणे धृतिसंह-  
 ननयुक्तोऽप्रतिवर्मदेहः वर्धिष्णुशुभाध्यवसायो वीतरागप्रोक्तपदार्थसार्थस्वरूप-  
 श्रद्धारूपणारस्पर्शनाप्रतिनिविष्टचित्तः 'सर्पस्य कञ्चुक इव शरीरमिदं मम त्याज्य'-  
 मित्येवं कृतनिश्चयः स भिक्षुः स्पर्शान्=सकलदुःखविशेषान् अध्यासयेत् 'एते च

उपवेशन और पार्श्वपरिवर्तन आदिकाययोगसे, अशुभ वचनयोगसे  
 एव आर्त्तध्यान आदि युक्त मनोयोग से जो पापोंकी उत्पत्ति के कारण  
 हैं उनसे अपने को वह मुनि सर्वथा दूर रखे ।

इस-इंगितमरण-में धृति एवं संहननसे युक्त साधु, कि जिसके  
 शुभ अध्यवसाय वर्धनशील है और वीतराग प्रभु द्वारा  
 प्ररूपित पदार्थों के स्वरूपकी श्रद्धा करने में, उनकी प्ररूपणा करनेमें और  
 अन्तरंग भावसे उनकी स्पर्शना करनेमें जिसका चित्त लवलीन हो रहा  
 है, जैसे सर्प अपनी कञ्चुकी (कांचली)को छोड़ दिया करता है-उसके परि-  
 त्याग में उसे किसी भी तरह का संकोच या कष्ट नहीं होता है उसी  
 तरह मुझे भी यह शरीर अवश्य छोड़ने योग्य है, इस प्रकार से जिसने  
 दृढ निश्चय कर लिया है समस्त दुःखविशेषोंको सहन करता रहे ।  
 "ये सम्पूर्ण दुःखादिक पौद्गलिक शरीरके ही बाधा करते हैं, धर्मका  
 अनुष्ठान करनेवाले ऐसे मेरा तो ये कुछ भी बिगाड नहीं कर सकते"

वेवा जेधं अे उत्थान, उपवेशन अने पार्श्वपरिवर्तन (पडथु इेरववु) वगेरे  
 काय योगथी अशुभ वचन योगथी तेमज आर्त्तध्यान वगेरे युक्त मनोयोगथी  
 जे पापेनी उत्पत्तिउ करणु छे तेनाथी मुनि पोतानी जतने सर्वथा दूर राजे.  
 अे धगित भरथुमा धृति अने संहननथी युक्त के जेना शुभ अध्य-  
 वसा वर्धनशील छे अने वीतराग प्रभुद्वारा प्ररूपित पदार्थेना स्वरूपनी  
 श्रद्धा करवामा, तेनी प्ररूपणा करवामा अने अन्तरंग लावथी जेनी स्पर्शना  
 करवामां जेतु चित्त लवलीन जनी गयेल छे जेम सर्प पोतानी कायणी छोडी  
 हे छे-जेना परित्यागथी सापने केधं तरेडतु सकट के सकेच थता नथी.  
 आज रीते मारे पथु आ शरीर अवश्य छोडवा योग्य छे आ प्रकारने जेथु  
 दृढ निश्चय करी लीधेल छे तेवा मुनि समस्त दुःखेने केधं प्रकारना आक द वगर  
 सहन करता रहे " अे स पूथु दुःखादिक पौद्गलिक शरीरने जे बाधा करे छे-  
 धर्मतु अनुष्ठान करवावाणा मारा जेवातु तो अे कांथ पथु अगाडी शकवाना



स्पर्शाः शरीरमेवाभिमम्वन्ति न तु मां घर्मानुष्ठायिन'—मिथि विचिन्त्य सर्वदुःखं  
दनासहनशीलो भवेदित्याशयः ॥ सू० ॥ १८ ॥

इङ्गितमरणाधिकारः प्रोक्तः, इदानीं पादपोषणमनुपलक्ष्य दर्शयति—'अयं' इत्यादि  
मूळम्—अयं चायततरे सिया, जो एवमणुपालए ॥

सव्वगायनिरोहेऽपि, ठाणाओ न विउब्भमे ॥ १९ ॥

छाया—अयं चायततर' स्याद्, य एवमणुपालयेत् ॥

सर्वगायनिरोधेऽपि, स्थानान् स्पुद्भमेत् ॥ १९ ॥

टीका—'अयं'—मित्यादि, अयं च—वकारस्वर्यै, अनुपदवक्ष्यमाणः पादपोषण-  
विधिः, चायततरः—पूर्वोक्तमरुपरिङ्गितमरणापेक्षया श्रेष्ठतरः, स्यात्—भवेत्,  
अस्तीत्यर्थं एतस्मिन्तपि मरणे प्रव्रज्या—संलेखनादिकमिङ्गितमरणमिच्छित्तं सर्वं  
शोभ्यम् । किमेतेन प्रकृते समायातमित्याह—'य एव'—मित्यादि, यः मुनिः, एव

इस प्रकार विचार कर वह आये हुए समस्त दुःखजन्यवेदनाओंको सहन  
करने का स्वभावबाला घने ॥१८॥

यहां तक इंगितमरणका अधिकार कहा। अब यहांसे भागे  
पादपोषणमन संघारेका प्रकरण प्रारंभ होता है—'अयं' इत्यादि।

इस सूत्रमें "च" यह शब्द "तु" के अर्थमें आया है। यह पादपोष-  
णमन संघाराकी विधि, कि जो अभी कही जानेवाली है यह पूर्वमें  
कथित मरुपरिज्ञा और इंगितमरणकी अपेक्षासे श्रेष्ठतर है। इस  
मरणमें भी प्रव्रज्याग्रहण, संलेखना आदिका धारण, यह सब विधि  
इंगितमरणकी विधिकी तरह ही समझना चाहिये। इस कथन से प्रकृत  
कथनमें क्या पात आई? इसका उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—

नधी, " आ प्रकरणे विचार करी ते आवेली समस्त दुःखजन्य वेदनाओंने  
सहन करवाना स्वभावबाला घने (१८)

अर्थात् मुनी एजित भरखुने अधिकार करी केवे आजण पादपोषणमन  
संघारण प्रकरणे प्रारंभ घाय छे— अयं इत्यादि.

आ सूत्रमां "च" के शब्द "तु" ना अर्थमां आवेल छे जे पादपोष-  
णमन संघारण विधि के जे केवे केहेवांमां आवये ते आजाके केहेवांमां आवेल  
मरुपरिज्ञा अने एजितभरखुनी अपेक्षाधी श्रेष्ठतर छे जे भरखुमां पण  
प्रव्रज्याग्रहण, संलेखना वजरेणु धारण आ वधी विधि एजितभरखुनी  
विधिनी माइके समझवी. आ कथनधी प्रकृत कथनमां कथं पात आवी? आने  
उत्तर आपत्त सूत्रकार के छे छे— जे मुनि आजाकेनी विधि प्रभावे पादपोष

पूर्वोक्तविधिना पादपोषगमनविधिम् अनुपालयेत् स मुनिः सर्वगात्रनिरोधेऽपि=सक-  
लशरीरव्यापारनिरोधेऽपि उत्तप्यमानशरीरो मूर्च्छन् शृगाल-गृध्र-पिपीलिकादिभि-  
र्भक्ष्यमाणमांसशोणितः मरणान्तिकसमुद्धातप्राप्तो वा महासत्त्वतया तेनापि  
ततोऽप्यस्वलन् स्थानात्=द्रव्यतः-संस्तारकस्थानात्, भावतः-शुभाध्यवसायात्  
नापि=नैव व्युद्भ्रमेत्=चलेत्, शृगालादिभक्षितमांसशोणितोऽपि तस्मात्स्थानादन्यत्र  
नैव गच्छेदिति तात्पर्यम् ॥१९॥

पादपोषगमनस्योत्तमत्वं प्रदर्शयन् तद्विधिमाह-‘अयं’ इत्यादि ।

मूलम्-अयं से उत्तमे धम्मे, पुव्वट्ठाणस्स पग्गहे ॥

अचिरं पडिलेहिच्चा, विहरे चिट्ठ माहणे ॥ २० ॥

छाया—स उत्तमो धर्मः, पूर्वस्थानस्य प्रग्रहः ॥

अचिरं प्रत्युपेक्ष्य, विहरेत्तिष्ठेन्माहनः ॥२०॥

जो मुनि पूर्वोक्त विधिके अनुसार पादपोषगमनकी विधिका पालन  
करता है वह मुनि शारीरिक समस्त व्यापारोंके निरोधमें भी शृगाल  
पिपीलिका और गृध्र आदि मांसशोणितभक्षी जीवों द्वारा अपने  
शरीरका मांस और शोणित खाये जाने पर भी चलितशरीर नहीं  
होता है। शरीरमें जरा भी कष्टका अनुभव नहीं करता है। अथवा  
मरणान्तिकसमुद्धात प्राप्त यह भिक्षु महासत्त्व-बलविशिष्ट होनेसे  
ऐसी हालतमें भी उससे अचलित होता हुआ द्रव्यसे संस्तारक-  
स्थान से और भावसे-शुभ अध्यवसाय से विचलित नहीं होता है,  
अर्थात् शृगाल आदि द्वारा अपने शरीर का मांस शोणित खाये जानेपर  
भी यह भिक्षु समाधिस्थान से दूसरी जगह नहीं जाता ॥१९॥

पादपोषगमन में उत्तमता दिखलाते हुए सूत्रकार उसकी विधिका  
प्रदर्शन करते हैं-‘अयं से’ इत्यादि ।

गमननी विधिनु पालन करे छे ते मुनि पोताना शरीरना मोडथी तदन विरकत  
अनी सिद्ध, वाध, शीयाण वगेरे भासरकतलक्षक एवे द्वारा पोताना शरी-  
रनु मांस अने दोड़ी भवाता छता पणु यदित अन्ता नथी-जरा पणु  
कष्टने अनुभव करता नथी, अने मृत्यु आवता सुधी पणु ते भिक्षु महासत्त्व-  
बलविशिष्ट होवाथी अेवी डालतमा पणु अेथी अयदित अनी द्रव्यथी स थाराना  
स्थानथी अने लावथी शुभ अध्यवसायथी यदित यता नथी अर्थात्-शीयाण  
वगेरे द्वारा पोताना शरीरना मांस-दोड़ी भवाया छता पणु ते भिक्षु समाधि  
स्थानथी थीण स्थणे जाता नथी (१८)

पादपोषगमनमा उत्तमता अतावतां सूत्रकार अेनी विधि कहे छे-‘अयं से’ इत्यादि.

ટીકા—‘અય’—મિત્પાદિ, અયં પ્રત્યક્ષનિર્દિષ્ટઃ પાદપોગમનમરણવિધિઃ સ પર્યઃ, યતઃ ‘પૂર્વસ્થાનસ્ય’ ઇતિ પચ્ચમ્યર્થે પૃષ્ઠી, તેન—પૂર્વસ્થાનાત્—મક્તપરિશ્રેણિ-મરણરૂપાત્ મદ્રઃ=શ્રેષ્ઠ, મત્ત એવ સ ઉચ્ચમા ધર્મોઽસ્તિ । ઇન્દ્રિતમરણે કાયપરિપાલનાન્નુમતિરમિહિવા, અપ્ર ચ તત્પરિસ્પન્દનમપિ ન કર્તવ્યમ્ । છિન્નમૂલપાદપો યયા ચેષ્ટાર્જિતઃ ક્રિયાવર્જિતો દશમાનશ્ચિદ્યમાનો વિપમપતિસ સમપતિવોઽપિ યા યથૈશાવતિષ્ઠતે ન તુ વસ્માત્ સ્થાનાત્ સ્થાનાન્તરં ગચ્છતિ, તથૈવ મુનિરપિ સત્તિ-

યહ પ્રત્યક્ષનિર્દિષ્ટ પાદપોગમન મરણકી વિધિ પૂર્વમે પ્રતિપાદિત મક્ત પરિશ્રા ઓર ઇન્દ્રિતમરણરૂપ પૂર્વસ્થાન સે શ્રેષ્ઠ હૈ, ઇમલિયે યહ ઉત્તમ ધર્મ હૈ । ઇન્દ્રિતમરણ મે શરીરકા પરિપાલન ઓર ઉત્તમે અનુમતિ કહી ગઈ હૈ । અથવા ઇન્દ્રિતમરણ પાલનેવાલા સાધુ અપને શરીરકી પાલનાનિ મિત્ત વ્સરે સાધુઓકો અનુમતિ દે સક્તા હૈ, પરન્તુ ઇમ મરણમે તો યહ મરણકર્તા સાધુ અપને શરીરકા પરિસ્પન્દન-દહન-ચલનરૂપ ક્રિયાકા મ્હી સર્વથા પરિત્યાગી હો જાતા હો જિસકા મૂલ છિદ્ધ હૈ, યેસા ઉચ્ચકા હુઆ વૃક્ષ જિસ પ્રકાર સ્વયં ચેષ્ટાસે રહિત હોતા હૈ—ક્રિયાસે શૂન્ય થન જાતા હૈ, યાહે યહ કાટ દિયા જાય, યાહે યહ જલા દિયા જાય, યાહે સમસ્થાન પર પડે અથવા વિપમસ્થાનપર પડે કહો મ્હી પડે જૈસાકા તેસા પડા રહતા હૈ, નિશ્ચેષ્ટ રહતા હૈ—ઉત્ત સ્થાનસે એક રતીમર મ્હી પ્રાગે નહી ચલતા હૈ, ઇસી પ્રકાર ઇસ મરણકા ધારક મુનિ મ્હી માના ગયા હૈ—યહ મ્હી વેદ્યામિત સમસ્ત ક્રિયાઓસે શૂન્ય રહતા હૈ । ઇમ્હી વિપયકો સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરતે

આ પાદપોગમન મરણની વિધિ પ્રથમ કહેવાયેલ મક્તપરિશ્રા અને ઇન્દ્રિત મરણથી શ્રેષ્ઠ છે, આ કાસ્યે તે ઉત્તમ ધર્મ છે ઇન્દ્રિતમરણમા શરીરનું પરિ પાલન કરવાની અનુમતિ અપાયેલ છે અથવા—ઈન્દ્રિતમરણ પાળવાવાળા સાધુ પોતાના શરીરની પાલનાનિમિત્ત બીજા સાધુઓને અનુમતિ આપી શકે છે, પરંતુ આ મરણમાં તો મરણ સ્વીકારનાર સાધુ પોતાના શરીરના પરિસ્પન્દન-દહન-ચલનરૂપ ક્રિયાઓ પણ સંપૂર્ણ પણે પરિત્યાગી બની બંધ છે એનાં મુળ તુટી ગયા એવું કહી શકાયેલું વૃક્ષ જે રાતે સ્વયં ચેષ્ટાથી રહિત બને છે —ક્રિયાથી શૂન્ય થઈ જાય છે.—યાહે તેને કાપી નાખવામાં આવે યાહે યાળી નાખવામાં આવે, યાહે સમસ્થાન પર પડે—યાહે વિપમસ્થાન પર પડે, અમે ત્યાં પડે એમને તેમ પડી શકે છે નિશ્ચેષ્ટ રહે છે—જે સ્થાને પદ્મુ હોય ત્યાંથી એક દોશ પણ આગળ વધી શકતું નથી આજ પ્રમાણે આ મરણને ધારણ કરનાર મુનિ માનવામાં આવેલ છે. જે વેદ્યામિત સમસ્ત ક્રિયાઓથી શૂન્ય રહે છે, આ વિપવને

ष्ठेत । एतदेव स्पष्टयति—‘अचिर’—मित्यादि, माहनः=मुनिः अचिरं=गोघ्नं प्रत्यु-  
पेक्ष्य=तत्स्थानं प्रतिलिख्य तत्र विहरेत्=पादपोपगमनमाचरेत् । पादपोपगमनप्रस-  
ङ्गेन तत्र विहारस्तद्विधिपरिपालनरूपः कथितः । अथ स्थानान्तरगमनं निषेधयितु-  
माह—‘तिष्ठे’—दिति, सर्वगात्रनिरोधेऽपि स्थानान्तरगमनान्निवृत्तः सन् छिन्नपादप-  
वत् तिष्ठेत् ॥२०॥

किञ्च—‘अचित्तं’ इत्यादि ।

मूलम्—अचित्तं तु समासज्ज, ठावए तत्थ अप्पगं ॥

वोसिरे सव्वसो कायं, न मे देहे परीसहा ॥ २१ ॥

छाया—अचित्तं तु समासाद्य, स्थापयेत्त्राल्पकम् ॥

व्युत्सृजेत्सर्वशः कायं, न मे देहे परीपहाः ॥२१॥

हैं—इस मरणको धारण करनेकी भावनावाला मुनि जीघ्र उस स्थानकी  
प्रतिलेखना कर पादपोपगमन संथारा धारण करे । “विहरेत्” यह  
क्रियापद पादपोपगमनके प्रकरणके संबन्धसे उसकी विधिका परिपालन  
करनेरूप विहारका कथन करता है, अर्थात् मुनि पादपोपगमन संथारे-  
का धारण उसकी विधिके अनुसार ही करे । इस संथारेमें मुनि एकस्थान  
से दूसरे स्थानमें नहीं जा सकता है, इस बातको सूत्रकार “चिट्ठ माहणे”  
इस सूत्रांगसे प्रदर्शित करते हैं, वह मुनि समस्त शारीरिक  
क्रियाओंके निरोध होनेसे छिन्नवृक्षकी तरह एक जगहसे दूसरी जगह  
जानेरूप क्रियाका सर्वथा परिहारी होता है ॥२०॥

और भी—‘अचित्तं तु’ इत्यादि ।

सूत्रकार स्पष्ट करे छे—आवा भरखुने धारणु डरवानी लावनावाणा मुनि तात्कालिक ओ  
स्थाननी प्रतिक्षेपना करी पादपोपगमन स थारे धारणु करे ‘विहरेत्’ आ क्रियापद  
पादपोपगमन प्रकरणना संबन्धथी ऐनी विधितु परिपालन डरवाइए विहारतु  
कथन करे छे अर्थात्—मुनि पादपोपगमन स थारे ऐनी विधि अनुसार न धारणु  
करे आ स थाराभा मुनि ओक स्थानथी भीज स्थान उपर नई शकता नथी  
आ वातने सूत्रकार “चिट्ठ माहणे” आ सूत्राशर्थी प्रदर्शित करे छे ते मुनि  
समस्त शारीरिक क्रियाओंको निरोध होवाथी पडेता वृक्षनी भाइक ओक नग्याथी  
भील नग्याओे नवा इए क्रियाना सर्वथा परिहारी होय छे (२०)

दूसरी पद्य—‘अचित्तं तु’ इत्यादि.

टीका—‘अचिच’—मित्यादि, स मुनिः, अचिचम्=प्राणिशून्यं प्रासुकं स्प-  
 लं समासाद्य=प्राप्य तत्र=स्थण्डिले आत्मकं=स्वात्मानं स्थापयेत् । तत्र स्थितः  
 इदमवर्षिषाहारो गिरिरिवाऽप्रचलितो विहितमत्युपेक्षणादिपरिकर्मां सन् सर्वज्ञः=  
 भावेन कायं शरीरममत्वं व्युत्सृजेत्=परित्यजेत् । यदि त शरीरपरीपहोपसर्गा  
 भेदवेद्युस्तदा स चेतस्येवं चिन्तयदित्याह—‘न मे’ इत्यादिना, मे=ममदेहे=  
 रे परीपहाः तत्र समुत्पन्नाः—भ्रुकूल—प्रतिकूला न सन्ति, यतो देशोऽपि  
 तेनो नास्ति कथं कस्मिन्निवतः परीपहा मामभिमवेद्युः, यद्विहितवेदनाया मन-  
 वादित्याश्रयः ॥२१॥

यह मुनि प्राणिशून्य-प्रासुक स्थण्डिल-स्थान प्राप्त कर वहाँ अपनेको  
 पित करे, अर्थात् वहाँ ठहर जावे। चतुर्विध आहारका परिस्थापी  
 पर्वतके समान अचल यह साधु उस भूमिका संमार्जन आदि परि-  
 कर उस पर अपना घासका सपारा करे, इत्यादि समस्त पूर्वोक्त  
 धि कर यह साधु सर्वभावसे शरीरका ममत्व छोड़ देवे। उस समय  
 वे उसे परीपह और उपसर्ग उपद्रवित करते हैं, तो वह उन सबको,  
 त्समें इस प्रकारके विचारसे सहन करे कि “वेहे परीपहा” ये अनु-  
 ल और प्रतिकूल परीपह आदि वेहमें हैं “न मे” मेरी आत्मामें नहीं  
 अथ वेह ही मेरा नहीं है तो फिर उस संबंधी ये परीपह आदि  
 से दुःखित या उपद्रवित भी कैसे कर सकने हैं? क्यों कि इनसे उत्पन्न  
 इनाका मुझे तो कोई अनुभव ही नहीं होता है ॥२१॥

ते मुनि प्राणिशून्य-प्रासुक स्थण्डिल-स्थान प्राप्त करी त्या पोताने स्थापित  
 रे, अर्थात् त्या स्थळीं जाव आर प्रकाशना आढारना परित्वात्री अने पर्वत  
 उभान अचल ते साधुने भूमि साहस्य करी अने उपर घासने सपारा  
 रे, आ शीते जमी विधि पूर्व करी पछी ते साधु सर्वभावशी शरीरनु ममत्व  
 श्रद्धे हे अने समये इदमवर्षे तेने परित्यक्त अने उपसर्ग उपद्रव करे तो तेने  
 चेतनां आ प्रकाशना विचारशी सहन करे हे ‘वेहे परीपहा’ आ अनुकूल  
 अने प्रतिकूल परिपह वजेरे देहमा छे “न मे” भारी अहमाभां नथी, अथारै  
 ना देह व भावे नथी तो पछी ते संबंधी आ परित्यक्त वजेरे अने उपद्रवित  
 अवस्था दुःखी पद्य हेम करी शके? हेमके आनाशी उत्पन्न वेदानो अने तो  
 तर्क अनुभव व नथी शते. (२१)

ते परीपहाः कियत्कालमध्यासनीयाः? इति शिष्यजिज्ञासायामाह—‘जाव-  
ज्जीव’ इत्यादि ।

मूलम्—जावज्जीवं परीसहा, उवसग्गा इति संख्या ॥

संवुडे देहभेयाए, इयपन्नेऽहियासए ॥ २२ ॥

छाया—यावज्जीवं परीपहा,—उपसर्गा इति संख्याय ॥

संवृतो देहभेदाय, इतिप्रज्ञोऽध्यासयेत् ॥२२॥

टीका—‘यावज्जीव’—मित्यादि, परीपहा उपसर्गाश्च यावज्जीवं=जीवनपर्यन्तं  
यथा स्यात्तथा सहनीयाः सन्ति, इति=एवं संख्याय=निश्चित्य स मुनिः देहभेदाय  
=कायपरित्यागार्थं संवृतः=कायादिसकलव्यापारनिवृत्तः इतिप्रज्ञः=पादपोपगमनसमु-  
चितविधिपरिज्ञानकुशलः, अध्यासयेत्=सर्वं परीपहोपसर्गादिकमुपनतमधिसहेत् ॥२२॥

एतादृशं भिक्षुमुपलक्ष्य राजादिस्तं यदि निमन्त्रयेत्तन्निषेधायाह—‘ भेउरेसु ’  
इत्यादि ।

साधुको ये परीपह कितने समय तक सहन करना चाहिये ? इस  
प्रकारकी जिज्ञासामें सूत्रकार कहते हैं—“ जावज्जीवं ” इत्यादि ।

“ जिस तरहसे बने उस तरहसे परीपह और उपसर्ग साधुको  
जीवनपर्यन्त सहन करनेयोग्य हैं ” ऐसा विचार कर मुनि शरीरको  
छोड़नेके लिये कायादिके सकल व्यापारोंसे निवृत्त होता हुआ, तथा पा-  
दपोपगमन संधारेकी उचित विधिके परिज्ञानमें कुशल बना हुआ  
आये हुए परीपह और उपसर्गादिकोंको सहन करे ॥ २२ ॥

ऐसे विशिष्ट तपस्वी मुनिको देख कर यदि राजा वगैरह उसे  
आमंत्रित करे तो इसके निषेधके लिये कहते हैं—‘ भेउरेसु ’ इत्यादि ।

साधुओंे आवा परिषद डेटला समय सुधी सहन करवे। जेधओ? आ  
प्रकारनी ज्ञासामा सूत्रकार कहे छे—‘ जावज्जीवं ’ इत्यादि

“ न्यासुधी एवे त्यासुधी परिषद अने उपसर्ग साधुओंे जेम भने तेम  
सहन करवा जरूरी छे ” आवा विचार करी ते मुनि शरीरने छोडवा भाटे काया-  
दिकना हरेक व्यवसायोधी निवृत्त थता, अने पादपोपगमन संधारानी उचित  
विधिना परिज्ञानमा ज लवलीन अनता जे कथ परिषद अने उपसर्गादिक आवे  
तेने सहन करे (२२)

ऐवा विशिष्ट तपस्वी मुनिने जेध कदाय राब वगेरे अने आमंत्रण आवे  
तो अना निषेध भाटे सूत्रकार कहे छे—‘ भेउरेसु ’ इत्यादि

मूष्म-भेउरसु न रज्जिज्जा, कामेसु बहुतरेसु वि ॥

इच्छालोभ न सेषिज्जा, ध्रुववन्न सपेहिया ॥ २३ ॥

छाया—मिदुरपु न रज्जेत, कामेषु बहुतरेष्वपि ॥

इच्छालोभ न सेवेत, ध्रुववर्णं सप्रेक्ष्य ॥ २३ ॥

टीका—'मिदुरपि'—त्यादि, स मिधु=कर्मनिर्जरणपर बहुतरपि=बहुविध  
पि मिदुरपु=क्षणमक्षररपु कामेषु=अन्वयिकामगुणेषु न रज्जेत=न रागप्रपणच्छेत्,  
राजा रामद्विप्रदानेनापि यद्युपनिमन्थ्य प्रलोभयेत्तथाऽपि तत्र न संमूर्च्छितो भवति  
त्यभिप्राय । किं च—स ध्रुववर्णं=ध्रुववर्णं=शाश्वतभाऽसी वर्णं.=संयमो मोक्षो वा ध्रुव-  
वर्णस्त मोक्ष तस्साधन च सप्रेक्ष्य=समालोच्य इच्छालोभम्=इच्छापूर्वधातो लोभम्=इच्छा  
लोभस्तम् इन्द्रादिसमृद्धिप्राप्त्यमित्यर्थं न सेवेत="इह लोगासंसर्पयोगे १ परलोगा-  
ससर्पयोगे २ वीवियासंसर्पयोगे मरणासंसर्पयोगे ४ कामभोगासंसर्पयोगे ५"  
इत्यादिभगवद्ब्रह्मनादिभोक्तपरलोकादिनाच्छा निषेधोदित्याशय ॥ २३ ॥

कर्मोक्ती निजरा करनेमें तत्पर वह मिधु अनेक प्रकारके भी क्षण  
भंगुर ऐसे शब्दादिक कामगुणों में रागी न बने, अत कोई राजा उम  
मुनिको राजशक्तिके प्रदान करनेका प्रलोभन देकर भी यदि अपने यहाँ  
आमंत्रित करता है तो भी वह मुनि उसमें मूर्च्छित न बना सपम अपना  
मोक्षरूप ध्रुववर्णका एव उसके साधनोंका विचार कर वह इच्छारूप लोभ  
इन्द्रादिककी शक्तिकी प्राप्तिरूप अमित्याया—का सेवन न कर-उमके बशवर्ती  
न बने। अपि तु—"इह लोगासंसर्पयोगे १, परलोगासंसर्पयोगे २, जीवि-  
यासंसर्पयोगे ३, मरणासंसर्पयोगे ४, कामभोगासंसर्पयोगे ५" इत्यादि  
भगवानके ब्रह्मनसे इस लोक और परलोक आदिकी बाढछाका सूत्र  
कारने उमके लिये निषेध किया है, अर्थात् वह परलोक आदिकी कभी  
भी वाञ्छा न करे ॥ २३ ॥

कर्मोक्ती निज रा करणार्थं तत्पर जेवा ते बिधु अनेक प्रकारका क्षण  
भंगुर जेवा शब्दानी ब्रह्मना न इत्याय. इत्याय सत्य ते आपुने शक्तिके  
आपचातु प्रलोभन आपी आमंत्रण आपे तो पक्ष ते साधु आपा प्रलोभनमां  
न इत्याय. सवमहाग मोक्षरूप ध्रुववर्णने अने तेना साधनेने विचार करी  
छिच्छाऽपी लोक-सन्निहितनी शक्तिनी प्राप्तिरूप अमित्याया-नु सेवन न करे-  
जेनाथी न इत्याय अपितु—"इह लोगासंसर्पयोगे १ परलोगासंसर्पयोगे २  
जीवियासंसर्पयोगे ३ मरणासंसर्पयोगे ४ कामभोगासंसर्पयोगे ५" इत्यादि  
भगवानना वचनधी आ लोक अने परलोक आदिकी वाञ्छाने सुत्रअरे जेने  
निषेध करेछे अर्थात् ते परलोक आदिकी पक्ष करी छिच्छा न करे (२३)

किं चान्यदप्याह—‘सासएहिं’ इत्यादि ।

मूलम्—सासएहिं निमंतिज्जा, दिव्वमायं न सद्वहे ॥

तं पडिबुज्झ माहणे, सव्वं नूमं विहूणिया ॥२४॥

छाया—शाश्वतैर्निमन्त्रयेद्, दिव्यमायां न श्रद्धीत ॥

तत्पतितुद्वयस्य माहनः, सर्वं नूमं विधूय ॥ २४ ॥

टीका—‘शाश्वतै’—रित्यादि, यदि राजादिस्तं भिक्षुं शाश्वतैः=यावज्जीवनयात्राया-  
पनयोग्यैः, बहुदानादिनाऽप्यपरिहीयमाणैरर्थैर्निमन्त्रयेत् एवं देवादिस्तपः खण्डयितुं  
कौतूहलादिना, विरोधेच्छया दिव्यद्धिप्रलोभनेन वा निमन्त्रयेत्तदा तां दिव्यमायां  
देवादिविहितप्रपञ्चरूपां स न श्रद्धीत=न तत्र श्रद्धां कुर्यात्, तत्र गृद्धो भूत्वा न तपः  
खण्डयेदित्यभिप्रायः । ‘यदर्थं धनादिकमन्विष्यते तत् शरीरमेवाऽशाश्वतम्’ इति

और भी सूत्रकार प्रकट करते हैं—‘सासएहिं’ इत्यादि ।

यदि राजा आदि उस भिक्षुके लिये उसके जीवनपर्यन्त, कि  
जिससे उसकी जीवनयात्राका निर्वाह अच्छी तरहसे हो सके, तथा जो  
दान करने पर भी कभी कम न हो सके इतने द्रव्य देनेका प्रलोभन दे  
कर उसे आमंत्रित करे, अथवा कोई देव आदि उसके तपको खंडित  
करनेके लिये कौतूहलसे, विरोध की इच्छासे, अथवा दिव्य-ऋद्धिके  
प्रलोभनसे उसे आमंत्रित करे तो वह मुनि उस राजप्रदत्त प्रलोभनको  
एवं देवादिकृत प्रपंचरूप उस दिव्य चमत्कारको श्रद्धाकी दृष्टिसे न  
देखे । उसमें लुब्ध बन कर वह अपने तपको खण्डित न करे । इस  
प्रकार विचार कर हे माहन ! हे श्रमण ! तुम समस्त अष्ट कर्मों के दूर  
करनेमें, उस शाश्वत-यावज्जीव टिकनेवाले अर्थको एवं दिव्य मायाको

वधुमा आ सूत्रकार प्रकट करे छे—‘सासएहिं’ इत्यादि

कोई राज वगैरे के भिक्षु माटे केना जीवनपर्यं तनी केनाथी केनी जीवन  
यात्रानेो निर्वाह सारी रीते थई शई, तथा दान करवा छता पणु के कही ओधुं  
न थई शई ओटलु द्रव्य देवानु प्रलोभन दई केने आमंत्रित करे, अर्थवा  
कोई देव वगैरे केना तपने अडित करवा माटे कुतुहलथी, विरोधनी इच्छाथी  
अथवा दिव्य रिद्धिना प्रलोभनथी केने आमंत्रणु आपे त्तारे के मुनि आवा  
राज तरङ्गना प्रलोभनने, तथा देव आदिना प्रपञ्चरूप केवा दिव्य चमत्कारने  
श्रद्धानी द्रष्टीथी न लुभे, केमा दोधुप थनी ते पाताना तपने अडित न करे  
आ प्रकारनेो विचार करी हे माहन ! -हे श्रमण ! तमे अर्थको एवं दिव्य मायाको



विचार्य 'माहणे' माह्नः 'मा हण मा हण' इत्युपदेशदायको मुनिः तत्-रामादिनिम्न  
 निम्नतमर्थं देवदिं च प्रतिबुध्य-आत्मकस्यापमतिकूलतया विहाय 'सर्वं नृम' सर्व  
 नृम-इानावरणीयाद्यष्टविधकर्म 'विहृणिया' विपूनयेत्-सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र्येण दूरी  
 कुर्यात् । 'कर्मनिर्जरायमहं निष्क्रान्तः' इति विचार्य मुनिः कर्मबन्धनहेतुं राजादि  
 निम्ननिम्नतमर्थादिर्षं इ-परिहृत्या परिहृत्या प्रत्याख्यात-परिहृत्या परिहरेत्, न तु तत्र  
 रज्येदिति माषः । यदा-पहिषुज्ज' 'विहृणिया' इत्यनयो- 'प्रतिबुध्यस्व' 'विषुष'  
 इतिच्छाया, तत्पक्षे-हे माह्न-हे मुने ! इह 'सर्वं नृम' सर्वप्रपञ्च विषुष-निश्चेतव्य  
 परित्यज्य 'तं' तत्-आत्मकस्याणहेतु रत्नप्रयं प्रतिबुध्यस्व-विजानीहि, तत्समाप्त-  
 षमे तत्परो मधेदिति माषः ॥ २४ ॥

अन्यदप्याह- 'सर्वदृष्टि' इत्यादि ।

अनर्थकर समझो । तात्पर्य यह कि-शाश्वत अर्थ देनेका प्रलोभन वकर  
 निमंत्रण-धूलानेकी प्रेरणा-करे उसमें, अथवा देखाधिकोकी मायामें प्रीति  
 एवं अद्वारहित हुआ मुनि 'यह समस्त, मोक्ष और उसके साधनोंसे प्रति-  
 कूल है' ऐसा विचार कर उस शाश्वत अर्थमें एवं दिव्य मायामें मूर्च्छित  
 न बने । दिव्य मायाका निरीक्षणकर यह मुनि अपने चित्तमें इस प्रकारसे  
 विचार करे-"यह सब मेरी तपस्याके प्रतिकूल है, और मेरे तपका स्वप्न  
 करनेके लिये यह सब आयोजन किया गया है। यदि तेसी बात न हो तो  
 पुरुषोंको कुलंभ यह बहुत प्रकारका विस्त-द्रव्य ऐसे क्षेत्र, काल, और  
 माष आदिमें कैसे सुलभ हो सकता है । इस लिये मालूम होता है कि  
 यह समस्त मृगहृष्णारूप ही है-आभास मात्र है अर्थात् मूलमें कुछ  
 मिलता जुलता नहीं है" ॥ २४ ॥

और भी सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं-'सर्वदृष्टि' इत्यादि ।

तात्पर्य जे ठे ठे-राज्या ठंथी पदवी आपी अर्थ होलनु प्रलोभन इध निमंत्रण करे,  
 तेमां अथवा देवादिनी भाषामा प्रीति अने अज्ञान सज्जनार मुनि "अप्यु भ्रातृ  
 तथा ज्येन साधनोधी विश्दनु छे" ज्येवा विचार करीने ज्येवा अर्थदोष  
 अने दिव्य मायाना प्रलोभनार्थ न इसाय दिव्य भाषानु निरीक्षण करी ते  
 मुनि पावाना मनमां जे प्रहारने विचार करे ठे अप्यु भारी तपसाधी  
 प्रतिबुद्ध छे अने भास तपनु अलन कशाववा माटे अप्य भाषाबाज उकी इशर्त  
 स्टेल छे जे ज्येन न होय तो ज्येठ साधे अपटहु अप्यु इध कीते अनि शके ।  
 आपी भासत छे ठे अप्यु भ्रमव्यसमान छे-आभासमात्र छे-वास्तवार्थ  
 भाष पजु नहीं । (२४)

वधुमां सत्कार प्रदर्शित करे छे-'सर्वदृष्टि' इत्यादि ।

મૂલ્મ્—સઠ્વદ્દેહિં અમુચ્છિણ, આઝકાલસ્સા પારણ ॥

તિતિક્ષ્વં પરમં નચ્ચા, વિમોહન્નયરં હિયં ॥ ૨૫ ॥

હામા—સર્વાથૈરમૂચ્છિતઃ, આયુઃકાલસ્ય પારગઃ ॥

તિતિક્ષાં પરમં જ્ઞાત્વા, વિમોહાન્યતરં હિતમ્ ॥ ૨૫ ॥

ટીકા—‘સર્વાથૈ’—રિત્યાદિ, સ સર્વાથૈ—સર્વે ચ તેડર્થાઃ સર્વાર્થાસ્તૈઃ સર્વાથૈઃ પશ્ચવિઘૈઃ શબ્દાદિકામગુણૈસ્તત્સાધકઘનસમૂહૈર્વા અમૂચ્છિતઃ=અગૃહ્ણઃ, આયુઃકાલસ્ય=યાવત્કાલમાયુઃ સંતિષ્ઠતે સ આયુઃકાલસ્તસ્ય ‘પારગઃ’—પારમ્=આયુષ્કપુદ્ગલાનાં યાવન્નાશં ગચ્છતીતિ પારગઃ=પૂર્વોક્તવિધિના પાદપોપગમનપરઃ પરિવર્દિતકલ્યાણાઘ્યવસાયવાન નિજાયુઃકાલસ્યાન્તગામી સ્યાત્ । ઇત્યં પાદપોપગમનપ્રકારમભિસમાપ્ય સામ્પ્રતં સકલમરણાનાં ક્ષેત્ર—કાલ-પુરુષાવસ્થા-ભેદાત્ સમાનતામુપસંહરન્નાહ—‘તિતિક્ષા’—મિત્યાદિ, સઃ સર્વસ્મિન્નપિ પૂર્વોક્તમરણપ્રકારે તિ-

સમસ્ત અર્થસ્વરૂપ પાંચ ઇન્દ્રિયોં કે પાંચ પ્રકારકે શબ્દાદિક કામગુણોંસે, અથવા ડનકે સાધક દ્રવ્યસમુદાયસે અમૂચ્છિત, ંવં અપની આયુકે સમયકા પારગામી, જિનને કાલ તક આયુ રહતી હૈ વહ આયુકાલ હૈ, તથા આયુકે પુદ્ગલોંકે વિનાશકા નામ પાર હૈ । પૂર્વોક્ત વિધિ સે પાદપોપગમનમેં તત્પર તથા પરિવર્દિત કલ્યાણકે અધ્યવસાયવાલા મુનિ અપની આયુકે કાલકા અન્તગામી હોતા હૈ । ઇસ પ્રકાર સૂત્રકાર પાદપોપગમન સંથારેકા કથન કર અવ સમસ્ત મરણોંમેં ક્ષેત્ર, કાલ ંર પુરુષ અવસ્થાકે ભેદસે સમાનતા કા ઉપસંહાર કરતે હુણ ‘તિતિક્ષ્વં’ ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહતે હૈ—વહ મુનિ પૂર્વોક્ત ઇન ભક્તપરિજ્ઞા આદિ મરણોંકે પ્રકાર—ભેદમેં અનુકૂલ ંર પ્રતિકૂલ પરીષહ ંવ ઉપસર્ગોં સે

સમસ્ત અર્થસ્વરૂપ પાંચ ઇન્દ્રિયોના પાંચ પ્રકારના શબ્દાદિક કામગુણોથી, અથવા એના સાધક દ્રવ્યસમુદાયથી વિરક્ત, અને પોતાની આયુના સમયને બાણનાર, બેટલા કાળ સુધી આયુ રહે છે તે આયુકાળ છે અને આયુના પુદ્ગલોના વિનાશનું નામ પાર છે આગળ કહેવામા આવેલ વિધિથી પાદપોપગમનમા તત્પર, તથા પરિવર્દિત કલ્યાણના અધ્યવસાયવાળા મુનિ પોતાના અતકાળના બાણકાર હોય છે આ પ્રકારે પાદપોપગમન સંથારનું કથન કરી સૂત્રકાર હવે સમસ્ત મરણોમા ક્ષેત્ર, કાળ અને પુરુષ—અવસ્થાના ભેદથી સમાનતાનો ઉપસંહાર કરતા “તિતિક્ષ્વં” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે—તે મુનિ આગળ કહેવામા આવેલ ભક્તપરિજ્ઞા આદિ મરણોના પ્રકાર—ભેદમા અનુકૂળ અને

विद्याम्=अनुकूल-प्रतिकूल-परीपहोपसर्गाभिमषजन्यदुःखसहनरूपां परमम्=उत्कृष्टं यथा स्याद्यथा ज्ञात्वा ' विमोहान्यतरं ' विगणो मोहोऽज्ञानं येषु तानि विमोहानि, तेषां=पूर्वोक्तानां भक्तपरिज्ञेद्विभ्रतमरणपादपोपगमनानाम् अन्यतरत्=प्रयाणामन्यतरं किमप्येकं हितं=कर्मनिर्भरायाः सर्वत्र समसम्पादकतया सम्यगिष्टं विदधीत । ' इति प्रथमी ' -त्यस्यार्थस्तु प्रथमाध्ययनोक्तप्रकारेणाश्वगन्तव्य इति ॥ सू० २५ ॥

**अध्ययनविषयोपसंहारः—**

अस्मिन्नध्ययने लभन्ति च विमोहास्याष्टमे येऽस्त्रिणा-  
स्ते सूच्यन्त इमे क्रमेण विषयाः संक्षेपतस्तान् शृणु ॥  
उद्देशे प्रथमे न्यरूपि विरहः पापण्डिकैः सङ्गते-  
स्तेषां सम्प्रतिहानपूर्वकमय त्यागस्तपो विद्विषात् ॥ १ ॥

उत्पन्न दुःखोक्तो सहन करनेरूप तितिक्षाको सर्वोसम जानकर पूर्वोक्त इन भक्तपरिज्ञा, इद्विभ्रतमरण, और पादपोपगमन, इन तीनोंमें से किसी एक को हितकारी समझ कर धारण करे । इन तीनोंमें कर्मोक्ती निर्जरा सर्वत्र एकसी है । " इति प्रथमी " इन पदोंका अर्थ प्रथम अध्ययनमें कथित प्रकारसे जान लेना चाहिये ॥२५॥

इस अध्ययनके विषयोंका उपसंहार पद्योंसे करते हैं—

इस विमोक्ष अध्ययन थीचमें आठ पद्ये उद्देश दिये ।

उनमें वर्णित विषयोंका हम षोडशमें वर्णन किये ॥

प्रथम उद्देशमें—पहिले—में पालंडी जनकी संगतिका परिहार कहा,

उन्हें न संमति देना कुछ भी तप भी उनका हेय कहा ॥ १ ॥

प्रतिकूल परीपह करने उपसर्गोक्ती आवेला दुःखाने सहन करवाइए तितिक्षाने सर्वोत्तम लक्ष्मी अजाठ कहेववेत जे लक्षतपरिज्ञा, धिगितभरुष, अने पाद पोपजमन, त्रषुभाषी कौठ लोकेने हितकारी समल धारण करे अत्र प्रथेभां कथोनी तिरुंग सुवत्र लोकेअरुषी छे " इति प्रथमी " अत्र परेने अर्थ अजाठना अध्ययनभां कहेवामां आवेव प्रहार नवेव समजवे लोके (२५)

आ अध्ययनना विषयानो उपसंहार करे छे

आ विमोक्ष नामना प्रकरुषुभा आठ भेदा उद्देश करेला छे जेभां लक्षववामां आवेव विषयानु अदि सक्षित वलन करेव छे—

प्रथम उद्देशमां—पाण्डी आषुसेनी सभतने त्वाग, आवा तप वजस्य भाषु-  
सेने कौठ प्रहारनी सभति न आषुनी (१)

शास्त्राऽकल्प्यमुपेतमन्नवसनं त्याज्यं द्वितीये तथा  
 आहारादिनिषेधने गृहपते रोपोपशान्त्यै विधिः ॥  
 शैत्येनोत्थितवेपथौ स्मरशरव्याघातशङ्का मुनौ  
 पारावारचलत्तरङ्गनिचये क्षिप्त्वा तृतीयेऽसताम् ॥ २ ॥  
 कामासक्तिवशोपयातललनाऽभ्यासान्निरेतुं मुने,-  
 रप्रौढस्य मृतिर्द्विधा निगदितोद्देशे तुरीये तथा ॥

द्वितीय उद्देशमें—शास्त्रनिषिद्ध अन्नवसनादिक मुनिजनको है कल्प्य नहीं,  
 उनका दाता नहीं लेने पर हो जावे जो रुष्ट कहीं।  
 मुनिवर नहीं लेनेका कारण प्रकट खुलाशा बतलावे,  
 रोपशमनका यह विधान उद्देश दूसरा दरशावे ॥ २ ॥

तृतीय उद्देशमें—कंपित मुनिवरके शरीरको, शीतादिक कारणवशासे,  
 देख बने शंकित गृहस्थका मन मनोजकी जागृतिसे।  
 शीतादिक मम गात्रकंपने कारण हैं न मनोजविकार,  
 इस प्रकार कह मुनिवर उसकी शंकाका कर दे परिहार ॥ ३ ॥

चतुर्थ उद्देशमें—कामाधीन-चित्त ललनाजन के समीपसे जानेमें,  
 जो असमर्थ बने वह मुनिवर संयम भार निभानेमें।  
 धरे भावना-वैहायस अरु गार्धपृष्ठ ये मरण भले,  
 साथे वह तत्काल न विलमें पर संयमसे नहीं टले ॥ ४ ॥

धीन उद्देशमां—शास्त्रमां जेने निषेध करवामा आवेल छे तेवा अन्न, वस्त्रा-  
 द्विनो मुनिजे अहणु न करवो जेधजे आपवा धिच्छिनार न लेवाथी गुस्से  
 थाय तो मुनिजे न लेवानु कारणु जुलासाथी तेने समन्तवी तेना गुस्सानुं  
 शमन करवु जेधजे, ते धीन उद्देशमा भतावेल छे. (२)

त्रीन उद्देशमा—ठंडी वजेरेना कारणुथी कापता मुनिवरना शरीरने जेध शंका-  
 शील भनेल गृहस्थनी शंकातु समाधान योग्य समज्जुथी करवु जेधजे  
 आ त्रीन उद्देशमा भतावायु छे (३)

चोथा उद्देशमा—कामने आधीन भनेल ललना (स्त्री) जननी सामे जवामां अस-  
 मर्थ भनेला मुनिजन सयमने जणववा वैहायस अने गार्धपृष्ठ, आ  
 भरजुने विना विलजे स्वीकारी ले, परतु सयमथी देशमात्र डटे नहि  
 जेवुं चोथा उद्देशमा कडेवायेल छे (४)

विद्याम्=अनुकूल-प्रतिकूल-परीपक्षोपसर्गाभिमवजन्यदुःखसहनरूपां परमम्=उत्कृष्टं  
 यथा स्याद्यथा ज्ञात्वा ' विमोहान्यतरं ' विगतो मोहोऽश्चानं येषु तानि विमोहानि,  
 तेषां=पूर्वोक्तानां भक्तपरिच्छेदितमरणपादपोपगमनानाम् अन्यतरत्=प्रयाणामन्यत्स्यं  
 किमप्येकं हित=कर्मनिर्जराया सर्वत्र समसम्पादकतया सम्यगिष्टं विदधीत । ' इति  
 ब्रवीमी ' -त्यस्यार्थस्तु प्रथमाध्ययनोक्तप्रकारेणाश्वगन्तव्य इति ॥ सू० २५ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

अस्मिन्नध्ययने सन्ति च विमोहाख्याष्टमे येऽस्त्रिणा-

स्ते सृष्यन्त इमं क्रमम विषयाः संक्षेपतस्तान् शृणु ॥

उद्देशे प्रथमे न्यरूपि विरहः पापण्डिकैः सङ्ग-  
 स्तेषां सम्प्रतिज्ञानपूर्वकमय त्यागस्तपो विद्विपाह ॥ १ ॥

उत्पन्न दुःखोको सहन करनेरूप तितिक्षाको सर्वोत्तम जानकर पूर्वोक्त इन

भक्तपरिज्ञा, इच्छितमरण, और पादपोपगमन, इन तीनोंमें से किसी एक  
 को हितकारी समझ कर धारण करे । इन तीनोंमें कर्मोंकी निर्जरा सर्वत्र  
 एकसी है । " इति ब्रवीमि " इन पदोंका अर्थ प्रथम अध्ययनमें कथित  
 प्रकारसे जान लेना चाहिये ॥ २५ ॥

इस अध्ययनके विषयोंका उपसंहार पद्योंसे करते हैं—

इस विमोक्ष अध्ययन धीचमें आठ पद्ये उद्देश दिये ।

उनमें वर्णित विषयोंका हम षोडशमें वर्णन किये ॥

प्रथम उद्देशमें—पहिले—में पालंडी जनकी संगतिका परिहार कहा,

उन्हें न समति देना कुछ भी तप भी उनका हेय कहा ॥ १ ॥

प्रतिकूल परीपक्ष होने उपसर्गोमी आवेला हुआने सहन करवाइए तितिक्षाने  
 सर्वोत्तम बाणी आजाते उद्देश्यके से भक्तपरिज्ञा, इच्छितमरण, अने पाद  
 पोपगमन, त्रयुभाषी ठोड कोठने हितकारी समझ धारण करे, आ तद्वेमां  
 कर्मोनी निर्जरा सत्र केकरणी छे ' इति ब्रवीमि ' आ पदोने अर्थ  
 आजातेना अध्ययनमा उद्देश्यमा आवेला प्रथम त्रयो समवेला जेधजे, (२५)

आ अध्ययनना विषयोनो उपसंहार करे छे

आ विमोक्ष नामना प्रथममा आठ भेदा उद्देश करेला छे जेमां

षड्विंशतिमां आवेला विषयेनु अदि संक्षिप्त बखन करेला छे—

प्रथम उद्देशमा—पाण्डी भाष्येनी सत्रतने। त्याग, आवा तप वमरना भाष्य

सेने ठोड प्रथमनी समति न आपवी (१)

उद्देशेऽष्टम इत्यत्रोचि मुनिभिश्चारित्ररत्नैपिभिः,  
सारो ग्राह्यतरोऽनिशं विजयतां तापोपशान्त्यै नृणाम् ॥ ५ ॥ इति ।  
॥ अष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देशः समाप्तः ॥ ८-८ ॥

॥ इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
कलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाह-  
छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-“ जैनशास्त्राचार्य ”-पदभूषित-  
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जनधर्मदिवाकर-  
पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-  
स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां विमोक्षाख्यमष्टम-  
मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ८ ॥

बलविहीन होनेसे इससे, उरमें पीडा जगती हो ।  
तो वह साधु त्रिविध मरणमे से कोई संधार धरे,  
जन्म सफल हो जाये उसका भवर का संक्लेश टरे ॥ ८ ॥

॥ आठवे अध्ययनका आठवां उद्देशः समाप्तः ॥ ८-८ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके विमोक्ष नामके आठवें अध्ययनकी आचार-  
चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ८ ॥

अशक्त अनी गयेल डोय, अने तेनु शरीर पीडाथी रीभातु डोय त्याई  
ते साधु त्रषु मरषुमाथी डोय अेक मरषु भाटे सथारे करे अने  
पोताना जन्मने सकण अनावी लवना शेराने टाणी हे (८)

आठमा अध्ययनने आठमे उद्देश समाप्त ॥ ८-८ ॥

आ आचाराङ्गसूत्रना विमोक्ष नामना आठमा अध्ययननी आचार-  
चिन्तामणि-टीकाने गुजराती अनुवाद संपूर्ण ॥ ८ ॥

पूर्वाङ्गीकृतसयमाप्तमगुने—ग्लानाघवस्यावशात्,  
 सापीयो मरणं विधानसहितं प्रोक्तं तथा पञ्चमे ॥ ३ ॥  
 एकत्वस्य च भावनेन मरणं पठ प्रशस्तं कृतं,  
 मिश्रुणां प्रतिमा मुनेरभिहिता पाल्यैकमासादिका ॥  
 सामर्थ्यं गलिते तनोर्मुनिवरैराहारसंक्षेपणं,  
 कृत्वा श्राद्धविधानवत्स्वर्मं स्पेयं तथा सप्तमे ॥ ४ ॥  
 चारित्र्यं चरतो मुनेः कलयतोऽश्नत्या परं सीदतो,  
 देहत्यागविधिस्त्रिधा निगदित माफल्प्यनीत्यै वनेः ॥

- पंचम उद्देश्यम्—ग्लानादिकं हालतमें मुनिवर स्वीकृत संयम पालनमें,  
 हो असमर्थ सचिधि यह घारे भक्तपरिष्ठा उस क्षणमें ॥ ५ ॥  
 पष्ठ उद्देश्यम्—मुनिवरका एकत्व भावनासे है मरण प्रशस्त कहा,  
 रहे सुरक्षित सयम—घन यह निर्मल मनमें भाव गहा ॥ ६ ॥  
 सप्तम उद्देश्यम्—एकमास आदिक मर्यादा वाली मुनिकी प्रतिमाएँ,  
 मुनिवर पाछे टरे न उनसे चाहे आये चाघाएँ।  
 संयम भार बहन करनेमें शक्तिहीन तन जब जाने,  
 पष्ठ अष्टमादिक तपक्रमसे भोजन कृष्ण करना ठाने।  
 शास्त्रविहित मर्यादा माफिक तदसम घन संयार घरे,  
 देहाश्रित समस्त क्रियाओंका यह मुनि परिहार करे ॥ ७ ॥  
 अष्टम उद्देश्यम्—पिरपालितचारित्र्य—साधुकी संयम क्रिया न सपत्नी हो,  
 पांचम उद्देश्यम्—रोजअस्त ढाढतमां, अयम पाणवामा असमर्थ वनी अथ  
 तेवा मुनिजे पोते स्वीकारैव अलिभक्त्या पालन माटे भक्तपरिष्ठा नामनु  
 भरषु स्वीकारषु जेअजे, तेम जतावेव छे (५)  
 छु। उद्देश्यमां—जेकत्वभावनावाणु मुनिनु भरषु प्रशस्त कहेवामां आवेव  
 छे सयम धननु निर्मल मनधी पालन करवानो भाव समभववामां  
 आवेव छे (६)  
 सातम उद्देश्यमां—जेक भास के तेधी वधारानी भयाडावाणु भरषु मुनिजन  
 पाणे, अहे ममे तेटवी मुसीजतो सहेवी पडे छतां जने शक्तिहीन वनी  
 काम ते छता अयमधी वरा पणु विचलित न वने, छु—अमुम आदि  
 तपक्रमधी आकास्थिति जेवा करे जने शास्त्रनी मर्यादांमां जताव्य प्रभवे  
 सयारो करी देवनी समस्त क्रियाज्येने मुनिजन त्यागी हे (७)  
 आठम उद्देश्यमां—त्रिशकण्ठी आस्त्रिसपन साधु वृद्धावस्था के धामना करजे

उद्देशेऽष्टम इत्यवोचि मुनिभिश्चारित्ररत्नैपिभिः,  
 सारो ग्राह्यतरोऽनिगं विजयतां तापोपशान्त्यै नृणाम् ॥ ५ ॥इति ।  
 ॥ अष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देशः समाप्तः ॥८-८॥

॥ इतिश्री-विश्वविख्यात-जगद्ब्रह्म-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
 कलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहू-  
 छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-“ जैनशास्त्राचार्य ”-पदभूषित-  
 कोल्हापुरराजगुरु-वालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जनधर्मदिवाकर-  
 पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-  
 स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां विमोक्षाख्यमष्टम-  
 मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ८ ॥

बलविहीन होनेसे इससे, उरमें पीडा जगती हो ।  
 तो वह साधु त्रिविध मरणमे से कोई संधार धरे,  
 जन्म सफल हो जाये उसका भवर का संक्लेश टरे ॥ ८ ॥

॥ आठवे अध्ययनका आठवां उद्देशः समाप्तः ॥८-८॥

यह आचाराङ्गसूत्रके विमोक्ष नामके आठवें अध्ययनकी आचार-  
 चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ८ ॥

अशक्त भनी गयेद डोय, अने तेनु शरीर पीडाथी रीभातु डोय त्यारे  
 ते साधु त्रषु मरणमाथी डोय अके मरण भाटे सथारे करे अने  
 पोताना जन्मने सङ्ग भनावी लवना इराने टाणी हे (८)

आठमा अध्ययनने आठमे उद्देश समाप्त ॥ ८-८ ॥

आ आचाराङ्गसूत्रना विमोक्ष नामना आठमा अध्ययननी आचार-  
 चिन्तामणि-टीकाने गुजराती अनुवाद संपूर्ण ॥ ८ ॥



॥ अथोपधानश्रुताख्यस्य नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः ॥

प्रागुक्ताध्ययनाष्टके योऽर्थः प्रतिबोधितः, स धीरवर्धमानस्वामिना भगवताऽपि स्वयमाचरितस्वस्मात् साधुभिरपि तथैवाचरणीयमिति बोधयितुमिदमुपधानश्रुताख्यमध्ययन प्रारभ्यते-उपधानस्य श्रुतस्य च प्रतिबोधकत्वादिदमध्ययनमुपधानश्रुतमुच्यते । उप=सामीप्येन धीयते=व्यवस्थाप्यते इत्युपधानं तद् द्रव्यमावमेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्योपधानं अग्न्यादौ शिरस समाभ्यनवच्छु, मावोपधानं तु-सप्त-वसचिधसंयमः, स वाग्नाभ्यन्तर तपश्च, तदि चारित्र्यपरिणामरूपस्य भावस्य स्वैपै

॥ नवमे अध्ययनका प्रथम उद्देशः ॥

पहिले कहे गये आठ अध्ययनोमें जो विषय समझाया गया है, यह धीर-वर्धमान प्रभुने स्वयं आचरित किया है, इस लिये साधुजनोंको भी यह वैसा ही आचरित करना चाहिये, इस बातको समझानेके लिये यह उपधानश्रुत नामक अध्ययन प्रारभ किया जाता है। उपधान और श्रुतका प्रतिबोधक होनेसे यह अध्ययन भी इस नामसे कहा गया है। जो स्वयं की उपस्थितिमें किया जाता है उसका नाम उपधान है। यह द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है। शय्या आदिमें शिरका अवलम्बन रूप तकिया आदि द्रव्य-उपधान है, इसका यहाँ अधिकार नहीं है। सत्रह प्रकारका सयम, षड् वाह्य और आभ्यन्तर तप, ये भाव-उपधान है। यह भावरूप उपधान चारित्र्यरूप भावमें स्थिरताका उत्पादक होता है।

नवमा अध्ययनने पड़ेला उद्देश

पहिला उद्देश्येला आठ अध्ययनोमां के विषय समझववामां आवेला उ ते वीर-वर्धमान प्रभुके पीतेके उद्देश्ये उ साधुजनोंके पक्ष केतुं के आध्य रूप करतुं केउंके आ चतने समझववामां भाटे उपधानश्रुत नामना अध्ययनने प्रारभ करववामां आवे उ उपधान जने श्रुतना प्रतिबोधक देवार्थी आ अध्ययन पक्ष के नामधी उद्देश्येला उ के पीतानी आचरणीयं करववामां आवे उ तेनु नाम उपधान उ के द्रव्य जने भावना भेदधी के प्रकारना उ श्रुतानी पधारी पत्रेधी अवलम्बनरूप आचरणीका पत्रे द्रव्य-उपधान उ तेने जदीया अधिकार नहीं सत्रह प्रकारना सयम जने वाह्य तथा आभ्यन्तर तप, के भाव-उपधान उ के भावरूप उपधान चारित्र्यरूप भावमां स्थिरता उत्पादक होय उ सयम

संपादयति । संयमेन तपसा च जीवस्य ज्ञानावरणीयादिकं सर्वं कर्मरजोऽपगच्छति तस्मात् सकलकर्मक्षयहेतुभूतस्य तस्य संयमस्य तपसश्च समालम्बनरूपत्वादुपधानत्वेन व्यपदेशः । श्रुतमपि द्रव्यभावभेदात्-द्विविधम्, तत्र द्रव्यश्रुतम्-अनुपयुक्तस्य यत् श्रुतम्, द्रव्यार्थं वा यत् श्रुतम्, कृपावचनिकश्रुतं च द्रव्यश्रुतम् । भावश्रुतं तु-द्वादशाङ्गश्रुतविषयोपयोगः । उपधानं च श्रुतं च, इत्यनयोः समाहार उपधानश्रुतम्, तत्प्रतिपादकमध्ययनमुपधानश्रुताध्ययनमिति ।

इह प्रथमोद्देशे भगवान् श्रीवर्धमानस्वामिनो विहारः, द्वितीये भगवतः शय्याऽऽसनानि, तृतीये तस्मानुकूल-प्रतिकूल-परीषदोपसर्गसहिष्णुता, चतुर्थे तु

संयम और तपसे जीवके साथ अनादिकालसे लगीहुई समस्त कर्मरूपी धूलि नष्ट हो जानी है इस कारण सकल कर्मों के क्षयका कारण उस संयम और तपका आलम्बनरूप होनेसे उसमें ( भाव उपधानमें ) उपधान पनेका व्यपदेश होता है । श्रुत भी द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकार है । अनुपयुक्त आत्माका जो श्रुत है वह, अथवा द्रव्यके लिये जो श्रुत है वह, या कृपावचनिकों ( मिथ्यादृष्टियों ) का जो श्रुत है वह, द्रव्यश्रुत है । द्वादशाङ्गश्रुतविषयक जो उपयोग है वह भावश्रुत है । उपधान और श्रुतका जो समाहार है वह उपधानश्रुत है, इनका प्रतिपादक अध्ययन भी 'उपधानश्रुताध्ययन' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ है ।

इस उपधानश्रुताध्ययनमें चार उद्देश हैं । उनमें प्रथम उद्देशमें श्रीवर्धमानप्रभुके विहारका, द्वितीय उद्देशमें उनकी शय्या एवं आसनानादिकका, तृतीय उद्देशमें अनुकूल प्रतिकूल परीषदोंकी सहनशीलताका, और

अने तपशीलवनी साथे अनादिकाणशी लागेल कर्मरूपी धुणनेो नाश थाय छे आ कारणे सकल कर्मना क्षयना कारणे अे संयम अने तपना अवलम्बनरूप होवाथी अेमा ( भाव-उपधानमा ) उपधानपणुनेो व्यपदेश थाय छे श्रुत पणु द्रव्य अने भावना लेदथी अे प्रकारे छे अनुपयुक्त आत्मानो अे श्रुत छे ते, अथवा द्रव्यने माटे अे श्रुत छे ते, अथवा मिथ्यादृष्टियोंनेो अे श्रुत छे ते द्रव्य-श्रुत छे द्वादशाङ्गश्रुतविषयक उपयोग छे ते भाव-श्रुत छे उपधान अने श्रुत, अेनु प्रतिपादक अध्ययन पणु ' उपधानश्रुताध्ययन' आ नामथी प्रसिद्ध थयेल छे

आ उपधानश्रुताध्ययनमा चार उद्देश छे, अेमा प्रथम उद्देशमा श्रीवर्धमान प्रभुना विहारनेो, भीज्ज उद्देशमा अेमनी शय्या अने आसन आदिनेो, त्रीज्ज उद्देशमा अनुकूल प्रतिकूल परिषदोंनी सहनशीलतानो, अने चोथा उद्देशमा क्षुधा

श्रुतीहाननिताऽऽवृत्तसमुद्भवे विशिष्टामिग्रहप्राप्ताकारेण तत्प्रतीकार इत्युच्यते, तस्य भगवत्स्तपश्चरणवर्णनं तूरेष्वकचतुष्टयानुगामि ॥

अथ भगवत्पर्यायविधिं बोधयितुं श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनसा—  
'अहासुयं' इत्यादि ।

मूलम्—अहासुय वइस्सामि, जहा से समणे भगव उट्ठाए ।

सखाए तसि हेमते, अहुणा पव्वइए रीइरथा ॥ १ ॥

छाया—यथाभुतं वदिप्यामि, यथा स भ्रमणो भगवान् सत्थाय ।

सम्प्याय तस्मिन् हेमते अधुना प्रव्रजितोऽरीयत ॥ १ ॥

टीका—यथाभुतं=यथाभक्षणविषयीकृतं, तथा वदिप्यामि=कथयिष्यामि, तद् यथा—सः=श्लोकप्रयमसिद्धा, भयको भगवान्=महावीर श्रीवर्षमानस्वामी, सत्थाय=उपवनिवारं स्वीकृत्य स्वामरणं निहाय पञ्चमुष्टिकं लोषं कृत्वा पर्याय करणतया पृहीतवत्, सामाधिकार्यं कृतामिग्रहः, प्रकृतीभूतमनपर्ययज्ञानो ज्ञाना-

चतुर्थ उद्देशमें ध्रुवा-पीडासे जनित आतंकके सर्वभावमें विशिष्ट अभिग्रहसे प्राप्त आहारसे उस ध्रुवाजन्य पीडाके प्रतिकारका वर्णन है । भगवानके तपश्चरणका वर्णन तो इन चारों उद्देशों में है ही ।

अथ—भगवानकी पर्यायविधिको ममज्ञानके लिये श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं—'अहासुयं' इत्यादि ।

प्रभुसे जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुमसे कहूँगा, वह इस प्रकार—  
उच्यत (उत्कृष्ट) विहार स्वीकार कर, समस्त राजविह आदि आभरणोंका परित्याग कर, और पञ्चमुष्टि केशोंका तुंचन कर, यज्ञ को धर्मका उपकरण समझकर मात्र एक ही वस्त्र धारणकर, संयमके लिये

पीडाधी मयैल आंतकना सहभावमां विशिष्ट अभिग्रहधी प्राप्त आहारधी जे-  
ध्रुवाजन्य पीडाना प्रतिकारनु वचन छे भगवाननी तपश्चर्यानु वर्णन तो जे  
आथ उद्देशेमां छे ॥

इवे भगवाननी अथो विधिने समभववा भागे श्री सुधर्मास्वामी जम्बू-  
स्वामीसे कहे छे— अहासुय इत्यादि

प्रभु पासे जेवुं मे साधुमु छे तेवुं तमेने कहीअ. उत्कृष्ट विहा स्वीकारी,  
समस्त राजविन्द-विशेष आभरणेना परित्याग करी अने पञ्चमुष्टि केशेनु  
तुंचन करी अने धमनु उपकरण समझ मात्र जे १ ॥ १ ॥ वस्त्र धारण

वर्णीयाद्यष्टविधकर्मरजोऽपहर्तुं तीर्थं प्रवर्तयितुं च प्रवृत्तो भूत्वेत्यर्थः, संख्याय=प्रव्रज्याकालं विज्ञाय, तस्मिन् प्रव्रज्याग्रहणविहरणयोग्यतया प्रसिद्धे, हेमन्ते=हेमन्तर्तौ, मार्गशीर्षमासे तस्य कृष्णदशम्या पूर्वगामिन्यां छायायाम्, अपराह्नसमय इति भावः। प्रव्रजितः=गृहीतप्रव्रज्यः, अधुना=अस्मिन् काले-प्रव्रज्याग्रहणकाले, तदव्यवहितोत्तरकाल एवेति यावत्, अरीयत=विहारमकरोत् ॥ १ ॥

धर्मोपकरणतया वस्त्रं भगवता गृहीतमित्येतद् बोधयितुमाह—'णो चेविमेण' इत्यादि।

सूत्रम्—णो चेविमेण वत्थेण, पिहिस्सामि तांसि हेमन्ते।

से पारए आवकहाए, एवं खु अणुधम्मियं तस्स ॥२॥

छाया—नो चैव अनेन वस्त्रेण पिधास्यामि तस्मिन् हेमन्ते।

स पारगो यावत्कथम् एतत् खु अनुधार्मिकं तस्य ॥ २ ॥

कृताभिग्रह होकर, मनःपर्यय ज्ञानकी प्राप्तिसे युक्त वन ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारकी समस्त कर्मरूपी धूलिको उड़ानेके लिये, एवं तीर्थकी प्रवृत्ति करनेके लिये कटिघट्ट होकर लोकत्रयमें प्रसिद्ध वह भगवान् श्री महावीर स्वामीने, प्रव्रज्या काल जानकर प्रव्रज्या ग्रहण एवं विहार करनेकी योग्यतासे प्रसिद्ध ऐसे हेमन्त-मार्गशीर्ष मास-में कृष्णपक्षकी दशमी १० तिथिके दिन अपराह्न समय-दिनके पिछले प्रहरमें दीक्षित होकर उसी समय विहार किया ॥ १ ॥

'वस्त्र भी धार्मिक उपकरण है' ऐसा विचार कर वस्त्र ग्रहण किया, इस बातको समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—'णो चेविमेण' इत्यादि।

करी सथमना भाटे कृताभिग्रह थर्ध मनःपर्यय ज्ञाननी प्राप्तिथी युक्ता अनि ज्ञानावरणीय वगेरे आठ प्रकारनी समस्त कर्मरूपी धुणने उडाउवा भाटे, अने तीर्थनी प्रवृत्ति करवा भाटे कटिघट्ट थर्ध लोकत्रयमा प्रसिद्ध ते लगवान श्री महावीर स्वामीअे प्रव्रज्याकाल जान्थी लर्ध प्रव्रज्याग्रहण अने विहार करवानी योग्यताथी प्रसिद्ध अेवा हेमन्त-मागशर मास-मा कृष्णपक्षनी दशमी तिथिना द्विपसे अपराह्ण समये-द्विपसना पाछला लागमा दीक्षित थर्ध अे समये विहार कर्यो.(१)

'वस्त्र धार्मिक उपकरण छे' अेवा विचार करी वस्त्र धारण कर्यो, आ वात समजववा भाटे सूत्रकार कहे छे—'णो चेविमेण' इत्यादि।

टीका—म भगवान् महावीरः श्रीवर्षमानस्वामी, एष विमात्रयतिस्म-यनेन वक्ष्येण-तस्मिन् शैत्यभर्षकतया प्रसिद्धे हेमन्ते=हेमन्ताख्य ऋतौ, न चैष पिभास्यामि स्वदेहमहं नैव प्रावरिष्यामि, एतदुपभोगेन शीतसमये स्वात्मानं सुखयितुं प्रवृत्तो न भविष्यामीत्यर्थः । ईश्वरविचारणाकरणमदर्शकं तस्य विश्वपथं प्रदर्शयति-पारम इति, प्रतिज्ञायाः पारगामी, प्रतिज्ञापूरणसमय इत्यर्थः । यद्वा—ससत्सागरपारगमने समर्थ इत्यर्थः । कियन्त कालमपेक्ष्य प्रतिज्ञातं भगवत्तति जिज्ञासापामाह-यावत्कथमिति, यावज्जीवनमित्यर्थः ।

भगवान् महावीरने ऐसा विचार किया कि इस ब्रह्मसे शैत्यभर्षक-पथसे प्रसिद्ध हेमन्त ऋतुमें मैं अपने शरीरको नहीं ढकूंगा-इन्के उप-भोगसे शीतसमयमें मैं अपनेको सुखित करनेके लिये प्रवृत्त नहीं होऊँगा । इस प्रकारकी भगवान् महावीरकी विचारणाका कारण यह था कि ये अपने अभिग्रहका पूर्णरूपसे निभानेमें शक्तिशाली थे, यही था "पारगः" इस विशेषण पदसे सूत्रकारने प्रदर्शित की है । उनके शरीरमें इतनी शक्ति थी कि जिसके आगे उस मार्गशीर्ष जैसे मासकी ठंडकी शक्ति उनके प्रति कुण्ठित हो गई थी । अथवा "पारगः" इस विशेषण पदका यह भी दूसरा अर्थ हो सकता है कि जब वे उसी भयसे संसाररूपी अघाह समुद्रको पार करनेमें समर्थ थे तब उनके समक्ष यह जीवनकाल किस गणनामें था । ब्रह्मसे शरीरको आहत नहीं करनेकी प्रतिज्ञा भगवानने कुछ समयके लिये नियमरूपसे अंगीकृत नहीं की थी, किन्तु यावत्कथ-यावज्जीवन यह प्रतिज्ञा उन्होंने स्वीकार की थी ।

भगवान् महावीरने ऐसा विचार क्यों के आ वरुषी ढकी आपवाभं प्रसिद्ध ऐसी हेमन्तऋतुमा हुं भाग्य शरीरने ढकीश नदा-अन्ना उपभोग्यी ढकीना समभमा हुं भने सुभी करवामा प्रवृत्त नदा यद्यथा आ प्रकारनी भगवान् महावीरनी विचारणुनुं काल्पे अे क्तु के तेअो पेताना अक्षिप्रभु पावन पूर्णदरशी निवाववाभां शक्तिशाली इत्या अे वात पारगा' अा विशेष पक्ष परधी सूत्रकारे प्रशिक्षित करैत छे अेभना शरीरमा अेटली शक्ति इती के ऐनी सामे भाग्यर भदितानी ढकीनी शक्ति पक्ष निर्जल वनी अर्थ इती अथवा पारग अा विशेषणने वीअे अे पक्ष अर्थ यथै शके छे के अ्यारे ते अेअे अवधी संसारइथी अघाम समुद्रने पार करवामा समर्थ इता. अा समभ अात्मा सामे शीत कालनी जलुत्री शुं ? वरुषया शरीरने आहत न करवाने अक्षिप्रद भगवाने यथा समभने आटे नियमइथी अंगीकृत करैत नदीं परतु अालवन अे अक्षिप्रद अेअेअे स्वीकार क्यो इते।

ननु तर्हि वस्त्र किमर्थमङ्गीकृतम् ? अत्राह—खु=नियमेन, एतद्=वस्त्रधारणं तस्य=भगवतः, अनुधार्मिकम्=पूर्वपूर्वतीर्थङ्करधर्मानुसूलम्, अपरै परंपरयावतीण-तीर्थङ्करैरपि पूर्वं धर्मोपकरणतया तथाऽनुष्ठितमित्यर्थः ॥ २ ॥

दीक्षाकालिकानुलिप्तचन्दनादिमुगन्धलोभाद् भ्रमरादयः समागत्य भगवद्व-  
पुषि दशनं चक्रुरिति बोधयितुमाह—‘ चत्वारि साहिए ’ इत्यादि ।

मूलम्—चत्वारि साहिए मासे, वहवे पाणजाइया आगम्भ ।

अभिरुञ्ज कायं विहरिंसु आरुसिया णं तत्थ हिंसिंसु ॥३॥

जया—चतुरः माधिकान् मासान्, ब्रह्मवः प्राणिजातयः आगम्य ।

अभिरुञ्ज कायं विजहः, आरुष्य खलु तत्र जिहिंसुः ॥ ३ ॥

शंका—जय वस्त्रसे शरीरको आच्छादिन नहीं करनेका अभिग्रह  
भगवानने यावद्जीवन अङ्गीकृत किया तो फिर भगवानने वस्त्रका ग्रहण  
ही क्यों किया ?

उत्तर—शंका ठीक है, परन्तु आचारपालनके लिये ही उन्होंने ऐसा  
किया । जिस प्रकार परंपरासे होनेवाले धर्मतीर्थप्रवर्त्तक तीर्थकारोंने  
वस्त्रका धर्मका उपकरण होनेसे ग्रहण किया है । यही बात “अनुधार्मि-  
कम्” इस पदसे सूत्रकार प्रकट की है ॥ २ ॥

दीक्षा सप्रथमें जय भगवानके शरीरमें चंदनादि सुगंधित द्रव्योंका  
उवदन—लेप किया गया उस समय उनकी सुगंधिसे आये हुए भ्रमर  
भगवानके शरीरको काटने लगे, इस बातको समझानेके लिये सूत्रकार  
कहते हैं—‘ चत्वारि साहिए ’ इत्यादि ।

शंका—न्यारे वस्त्रधी शरीरने आच्छादित न करवानो अलिग्रह लगवाने  
आलुपन अजीकृत कर्यो तो पछी लगवाने वस्त्रोने केम न तन्या ?

उत्तर—शंका ठीक छे, परन्तु आचार पालन करवा माटे ज तेमले अम  
कथुं जे प्रकार तीर्थ करेअे वस्त्रने धर्म—उपकरणरूप मानी ग्रहण करल आ  
वात “अनुधार्मिकम्” आ पदधी सूत्रकारे प्रकट करेल छे. (२)

दीक्षा समये न्यारे लगवानना शरीर उपर यदनादि सुगंधित द्रव्योना  
लेप करवाभा आव्ये आ समयेतेनी सुगंधी आकर्षाँ भमराओ शरीर  
उपर अमवा लाग्या अने करवा लाग्या, आ वातने समन्वयता सूत्रकार कहे छे—  
‘ चत्वारि साहिए ’ इत्यादि

टीका—स भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी, एष विमाख्यतिस्र-जनेन ब्रह्मेण-तस्मिन् शैत्यवर्षकतया प्रसिद्धे हेमन्ते-हेमन्ताख्य प्रवृत्तौ, न वैष पिबास्यामि स्वदहमई नैव प्रावरिष्यामि, पशुदुपभोगेन शीतसमय स्वात्मानं सुखयितुं प्रवृत्तो न भविष्यामीत्यर्थः । ईदृशविचारणाकरणप्रदर्शकं तस्य विशेषणं पदार्थयति-पारम्य इति, प्रतिज्ञायाः पारगामी, प्रतिज्ञापूर्णासमर्थ इत्यर्थः । यद्वा—संसारसागरपारगमने समर्थ इत्यर्थः । कियन्तं काम्मपेक्ष्य प्रतिज्ञावर्तं भगवतेति जिज्ञासायामार-यावत्कथमिति, यावज्जीवनमित्यर्थः ।

भगवान् महावीरने ऐसा विचार किया कि इस ब्रह्मसे शैत्यवर्षक पनेसे प्रसिद्ध हेमन्त ऋतुमें मैं अपने शरीरको नहीं ठकूंगा-इसके उप-भोगसे शीतसमयमें मैं अपनेको सुखिन करनेके लिये प्रवृत्त नहीं होऊँगा । इस प्रकारकी भगवान् महावीरकी विचारणाका कारण यह था कि वे अपने अभिग्रहका पूर्णरूपसे निमानेमें शक्तिशाली थे, यही यान "पारगा" इस विशेषण पदसे सूत्रकारने प्रदर्शित की है । उनके शरीरमें इतनी शक्ति थी कि जिसके आगे उस मार्गशीर्ष जैसे मासकी ठंडकी शक्ति उनके प्रति कुण्ठित हो गई थी । अथवा "पारगा" इस विशेषण पदका यह भी दूसरा अर्थ हो सकता है कि जब वे उसी भयसे संसाररूपी अघाह समुद्रको पार करनेमें समर्थ थे तब उनके समक्ष यह शीतकाल किस गणनामें था । ब्रह्मसे शरीरको आश्रित नहीं करनेकी प्रतिज्ञा भगवानने कुछ समयके लिये नियमरूपसे अंगीकृत नहीं की थी, किन्तु यावत्कथ-यावज्जीवन यह प्रतिज्ञा उन्होंने स्वीकार की थी ।

भगवान् महावीरने ऐसे विचार किये कि आ वसुधै क्वी च भवति इति अपवर्ण्य प्रसिद्ध जेवी हेमन्तऋतुमा हुं भार शरीरने बंधीश नदी-आना उपसोअधी ठडीना समथमा हुं भने सुभी कश्वाभा प्रवृत्त नदा भट्टिआ आ प्रकास्वी भगवान् महावीरनी विचारणानुं काशु जे कतु के तेजो पोटाना अभिग्रहण पालन पूर्वकपधी निवाववाभां शक्तिशाली हवा जे वात पारगा' आ विशेष पदु पदधी सूत्रकार प्रशिक्षित करेह छे जेभना शरीरमा जेटली शक्ति हवी के लेनी सामे भागशर भट्टिनानी ठडीनी शक्ति पदु निर्जण भनी अर्थ हवी जमया पारगा आ विशेषजनेनी नीजे जे पदु अथ यर्थ शके छे के ज्यारे ते जेअ अवधी सधारधी जयाम समुद्रने पार कश्वाभा समर्थ हवा आ समथ आत्मा सामे शान्त काजनी जखत्री शु ? वसुधै शरीरने आवृत न कश्वाभेनी अभिग्रहक भगवानने योद्ध समयने भाटे नियमऋपधी अजीवृत करेह नदी परतु आलवन जे अभिग्रहक जेभजे स्वीकार किये हतेह ।

व्यक्तवान् तत् 'स्थितकल्पः' इति कृत्वा, तत् ऊर्ध्वं तद् वस्त्रं व्युत्सृज्य=अपनीय  
स्यागी=वस्त्रपरित्यागी अनगार=भगवान् अचेलकः=अवस्त्रः, अभूदित्यर्थः ॥४॥

किञ्च--'अदु पोरिसिं' इत्यादि ।

मूलम्--अदु पोरिसिं तिरियभित्तिं चक्खुमासज्जअन्तसो ज्ञाइ ।

अह चक्खुभीयासंहिया, तेहंता हंता बहवे कंदिंसु ॥५॥

छाया--अथ पौरुषीं तिर्यग्भित्तिं चक्षुरासाद्य अन्तशो ध्यायति ।

अथ चक्षुर्भीताः संहितास्ते, इत्सा इत्सा ग्रहवश्चक्रन्दुः ॥ ५ ॥

टीका--अथ=अनन्तरं, तिर्यग्भित्तिं=प्रवेशस्थाने संकुचितामग्रे विस्तीर्णां, पौ-  
रुषीं=पुरुषप्रमाणां त्रीर्थी गच्छन् अन्तशः=मध्ये अभ्यन्तरे, चक्षुरासाद्य=ज्ञानदृष्टिं  
निधाय, सोपयोगो भूत्वा, ध्यायति=ईर्यासमितो गच्छति । ईर्यासमितस्य गमनमेवात्र  
ध्यानम् ।

अर्थात् कुछ अधिक तेरह महीने तक स्थितकल्प समझकर रग्व। फिर  
उसके बाद उसका परिहार कर वे अचेल-वस्त्ररहित हुए ॥४॥

फिर भी--'अदु पोरिसिं' इत्यादि ।

प्रवेश स्थानमें संकुचित और आगे विस्तृत ऐसे मार्गसे वे भग-  
वान् ईर्यासमितिपूर्वक चले । यहां "ध्यायति" यह क्रियापद 'भगवान्  
ईर्यासमितिसे गमन करते हुए' इस अर्थका बोध कराता है, क्यों कि  
सोपयोग ईर्यासमिति वालेका गमन ही यहां ध्यान है । "चक्षुरासाद्य"  
यह पद यह प्रकट करता है कि वे भगवान् ज्ञानदृष्टिको रखकर-उप-  
योग सहित होकर चले । ईर्यासमितिसे चलते हुए भी उपयोग अस्थिर  
हो सकता है-परन्तु यहां पर भगवान्का उपयोग अस्थिर नहीं था यह  
विशेषता प्रकट करनेके लिये 'चक्षुरासाद्य' यह पद सूत्रकारने रखा है ।

तेरमहिना सुधी ते वस्त्रेने स्थितकल्प समञ्जने राञ्चु . आ पछी तेओओ तेने त्याग  
करीं अने अचेल-वस्त्ररहित तथा (४)

इरी--'अदु पोरिसिं' इत्यादि

प्रवेशस्थानमां सांका अने आगण जाता विस्तृत ओटले पडोणा मार्ग  
उपर लगवान् धर्यासमितिपूर्वक आल्या आदि 'ध्यायति' आ क्रियापद 'लग-  
वान् धर्यासमितिथी गमन करेले' आ अर्थने बोध कराय छे, केम के सोपयोग  
धर्यासमितिवाणालु गमन न ध्यान छे 'चक्षुरासाद्य' आ पद ओवुं प्रगट करे  
छे के लगवान् ज्ञानदृष्टिथी उपयोगसहित ओ मार्गथी आल्या धर्यासमितिथी  
आलवावाणाले उपयोग अस्थिर पणु थर्थ शके छे, परतु लगवान्ने उपयोग अस्थिर  
न हुते, आ विशेषता प्रगट करता 'चक्षुरासाद्य' आ पद सूत्रकारे राखेले छे.



टीका—इह प्राग्निनातयः भ्रमरादयः चतुर साधिकान् मासान् मनोऽप्यु  
गन्धलोमात् भागम्य काय=मगवतः शरीरम्, अभिस्त्र पिण्डः=निजनिजवरपानि  
सपरुपस्पर्शं धारयामासुः । तथा—तदीयरक्ताधार्यितया च आरुह्य=प्रकृष्य क्व=  
मगवत शरीरे जिह्विष्ठः=ददशुः ॥ ३ ॥

तद् वस्त्र मगवान् कियत्काले वधारेति शिष्यजिज्ञासायामाह—‘संवच्छरं  
साह्यि’ इत्यादि ।

मूकम्—संवच्छर साह्यि मास, ज न रिक्तासि वत्थग भगव ।

अचेलए तमो चार्ई, त घोसिरिज्ज वत्थमणगारे ॥४॥

छाया—संवत्सरं साधिकं मास, यत् न रिक्तवान् वस्त्रं मगवान् ।

अधेरुकः ततः त्यागी, तद् व्युत्सृज्य वस्त्रमनगारः ॥ ४ ॥

टीका—मगवान् भीवर्षमानम्बामी वस्त्रक=तद् वस्त्र संवत्सरम्=एकवर्ष, तथा  
साधिकं मास=साधिकैकमास किञ्चिदधिकप्रयत्नमासानित्यर्थ, यत् न रिक्तवान्

कुछ अधिक चार मासमें बहुतसी-मनेक प्राणियोंकी जातियां,  
अनेक जातिके भ्रमरादिक जीवजन्तु मनोः सुगंधके लोमसे  
आकर भगवानके शरीरके आजू-बाजू भिनरे करते हुए उनके शरीरको  
कणोर स्पर्श करते हुए चारों ओर घूमने लगे और क्रोधित की तरह  
उनके शरीरको काटने कर लोही मास खाने लगे ॥ ३ ॥

उस वस्त्रको मगवानने किमने समयतक धारण किया? शिष्यकी  
इस जिज्ञासाका समाधान करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—‘संवच्छरं’  
इत्यादि ।

मगवानने उस वस्त्रको कुछ अधिक एक महीनासे कुछ एक वर्ष,

श्री ४३ अधिक चार महीनामें वस्त्र प्राणियों अने वस्त्रो जंतुना लभत  
वजरे एव च तुनी अतिथे मने सुअधो भरपुर मज्जी रे सेधी सुअध  
लाभत पदी लभवानत शरीर उतर तेमव चारे तरह इशं वणी जपुअवाट  
शइ इरी दीमा अने बाजे कीधवाणा जन्वा होय जे रीते तेमना शरीर उतर  
मुअध सुअधानी लभनाथी छोडी तथा भांसने ज्ञाप्य काय (३)

ज्ये वजने लभवाने डेटहा समय सुधी धारण इतु ? शिष्यनी आ एत  
अनु समाधान करवा भाडे सूत्रकार कहे छे— संवच्छरं इत्यादि ।

लभवाने श्री ४३ अधिक जोक महीनाथी मुक्त ज्येक वर्ष—जेरते श्री ४३ अधिक

तः सन् स्त्रीभिः प्रार्थितो भवति चेत् तदा स स्त्रियः परिज्ञाय=ज्ञ-परिज्ञया 'इमाः समयसरणिप्रतिरोधिकाः' इति ज्ञात्वा, प्रत्याख्यान-परिज्ञया परिवर्जयन् 'मुनिः सागारिकं=मैथुनं न सेवेत' इत्येवं स्वधर्ममनुस्मरन् स=भगवान् महावीरः श्री वर्धमानस्वामी वैराग्यमार्गे स्वयं=स्वमात्मानं प्रवेक्ष्य ध्यायति=धर्मध्यानं करोति स्म ॥ सू० ६ ॥

यदि मार्गे गृहस्था आगत्य मिलन्ति पृच्छन्ति, तदानीमपि भगवतो ध्यानभङ्गो नाभूदित्याह—'जे के इमे' इत्यादि ।

मूलम्—जे के इमे अगारस्था, मीसीभावं पहाय से झाई ।

पुटो वि नाभिभासिसु, गच्छइ नाइवत्तइ अंजू ॥ ७ ॥

छाया—ये केचिद् इमे अगारस्थाः मिश्रीभावं प्रहाय स ध्यायति ।

पुष्टोऽपि नाभ्यभापत, गच्छति नातिवर्तते ऋजुः ॥ ७ ॥

जन भी ठहरे हों और उनमेंसे कोई कामिनी उस मुनिसे अपनी वैषयिक अभिलाषा प्रकट करे तब वह मुनि उस स्त्रीको 'यह संयम मार्गकी प्रतिरोधिका है' ऐसा ज्ञ-परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान-प्रतिज्ञासे सर्वथा उसका परिहार कर देवे, और इसकी वैषयिक अभिलाषाकी पूर्ति न करे, इस प्रकारके अपने धर्मका विचार करते हुए वे भगवान् महावीर वैराग्यमार्गमें अपने आपको ओत-प्रोत कर धर्मध्यानमें तत्पर रहे ॥ ६ ॥

मार्गमें चलते हुए भगवानको यदि गृहस्थजन आकरके मिलते और कुछ पूछते तो भी भगवानका ध्यानभंग नहीं होता, इस बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं—'जे के इमे' इत्यादि ।

पणु रडे छे आमा डोई स्त्री आ स्थानमा रोकथेला मुनिजनथी पोतानी वैषयिक अलिदाषा प्रकट करे अे समथे मुनि "स्त्री संयममार्गने अवरोध करनार छे" अेलु ज्ञ-परिज्ञार्थी जण्ठी प्रत्याख्यान-प्रतिज्ञार्थी अेना त्याग करी दे, अने अेनी वैषयिक-विषयसण धी अलिदाषानी पूर्ति न करे, आ प्रकारथी पोताना धर्मने विचार करता भगवान् महावीर वैराग्यमार्गमा पोताने ओत-प्रोत बनावी धर्मध्यानमा मश रडे छे (६)

मार्गमा आलता भगवानने डोई गृहस्थजन आवीने मणे अने पुछपरछ करे तो पणु भगवानना ध्यानने भंग नहि थतो, आ वातने सूत्रकार प्रकट करे छे—'जे के इमे' इत्यादि

ત તથા વ્રજન્તમક્લોક્ય ચાલકા ઉપસર્ગે ચતુરિત્યાહ—‘અય ચહુર્મીતા’  
 ઇત્યાદિ ।

અય=અનન્તરં, ચહુર્મીતા:=અમ્ર ચહુઃશ્ચન્દેન દર્શનં મુદ્રતે, દર્શનાદ્મીતાઃ  
 મગવન્તં કિલોક્ય મયમુપગતાઃ, અત એવ સંહિતા=મિલિતા, તે=નામકા ઇત્યા  
 ઇત્યા=ધૂલિપ્રક્ષેપાદિમિં પુન પુનસ્તાઠયિત્વા ચક્રન્દુઃ=અન્યાન્ ધાસાનાહયન્તિ સ્મ,  
 ‘શ્શાગચ્છત પશ્યત મુષ્ઠિતોઽય ’—મિતિ, તથા—‘કિંદેશીય ક્ષુતઃ સમાયા-  
 તોઽય ’—મિતિ કલકલ્લજર્બ્બ ચકુરિત્યર્થ ॥ ૫ ॥

ફિજ્ઞ—‘સયળેહિ’ ઇત્યાદિ ।

મૂષ્મ્—સયળેહિં ત્રિતિમિસ્સેહિં, ઇરથીઓ તરથ સે પરિશ્ચાય ।

સાગારિય ન સેવેહ ય, સે સય પવેસિયા ઘ્ઘાઈ ॥ ૬ ॥

છાયા—શ્યનેપુ વ્યતિમિષ્ટેપુ શ્ચિયસ્તપ્ર સ પરિશ્ચાય ।

માગારિક ન સેવેત ચ સ રવય પ્રવેશ્ય ધ્યાયતિ ॥ ૬ ॥

ટીકા—શ્યનેપુ=શ્યયતે યમ તાનિ શ્યનાનિ=માગન્તુકાર્યવાસસ્થાનાનિ,  
 તેપુ વ્યતિમિષ્ટેપુ=કુટમિત્ કારણાદ્ ગૃહસ્વૈસ્તીર્વિકૈશ સંપુકતેપુ સત્સુ તપ્રાશ્ચિ

મગધાનકો ઇસ તરહ વિહાર કરતે હુણ દેલ્લકર અયસે યુક્ત હો ચાલક  
 મિલકર ડનકે ડપર ધૂલિ ઠાદિ ડાલર કર ડપસર્ગ કરને લગે ડૉર  
 કોલાહલ કરતે હુણ કહને લગે કિ—આઓ વેલ્લો યહ મનુષ્ય મુંડિત હૈ,  
 યહ અજય ટુંગકા ઠાદમી કહ્ઠાસે ઠાયા હૈ ॥૬॥

ડૉર મી—‘સયળેહિં’ ઇત્યાદિ ।

માગન્તુક—પથિક ડનેકે લિયે ડસને યોગ્ય સ્થાનોકા નામ શાયમ હૈ ।  
 ઇન શાયનોમિં ડનેક પ્રકારકે વ્યકિ ડાકર ઠહરતે હિં ડૉર ડલે ડાતે હિં, ડેસે  
 સ્થાનોમિં યદિ મુનિડન ઠહરે ડૉર ડહોં પર ગૃહસ્વજન યા ડન્ય તીર્થિક

ભાવવાનને આ રીતે વિહાર કરતાં જ્યેષ્ઠ લખણીત જનતાં માળાકોએ ખુણ  
 ઠાકશ વજેરે તેમના ઉપર નાખવા માંઠયા, અને તમારો જ્ઞેવાના નિમિત્તે જીવ  
 માળાકોને પણ બોલાવવા લાગ્યાં અને કોલાહલ મચાવી ઠહેવા લાગ્યા કે—જુઓ  
 જુઓ આ માણસ માથે મુઠેલ જોવા અજબ ઠજનો છે અપ માણસ અધિક  
 કયાંથી આવેલ છે ? (૫)

હથી—સયળેહિં ઇત્યાદિ

આજ તુક—આજ વહેતા માણસોને વચવા ચોખ સ્થાનોનું નામ શાયમ છે આ શાયનોમાં  
 અનેક પ્રકારના માણસો આવી શકાય છે અને વાલ્યા જાય છે આવા સ્થાનોમાં ઠઠીક  
 મુનિ પણ શકાય છે અને જીવ ગૃહસ્વજન અને અન્યતીર્થિક જીવ લખવાળા માણસો

तः सन् स्त्रीभिः प्रार्थितो भवति चेत् तदा स स्त्रियः परिज्ञाय=ज्ञ-परिज्ञया 'इमाः संयमसरणिप्रतिरोधिकाः' इति ज्ञात्वा, प्रत्याख्यान-परिज्ञया परिवर्जयन् 'मुनिः सागारिकं=मैथुनं न सेवेत' इत्येवं स्वधर्ममनुस्मरन् स=भगवान् महावीरः श्री वर्धमानस्वामी वैराग्यमार्गे स्वयं=स्वमात्मानं प्रवेक्ष्य ध्यायति=धर्मध्यानं करोति स्म ॥ सु० ६ ॥

यदि मार्गे गृहस्था आगत्य मिलन्ति पृच्छन्ति, तदानीमपि भगवतो ध्यानभङ्गो नाभूदित्याह—'जे के इमे' इत्यादि ।

मूलम्—जे के इमे अगारस्था, मीसीभावं पहाय से झाई ।

पुटो वि नाभिभासिसु, गच्छइ नाइवत्तइ अंजू ॥ ७ ॥

छाया—ये केचिद् इमे अगारस्थाः मिश्रीभावं प्रहाय स ध्यायति ।

पुष्टोऽपि नाभ्यभापत, गच्छति नातिवर्तते ऋजुः ॥ ७ ॥

जन भी ठहरे हों और उनमेंसे कोई कामिनी उस मुनिसे अपनी वैषयिक अभिलाषा प्रकट करे तब वह मुनि उस स्त्रीको 'यह संयम मार्गकी प्रतिरोधिका है' ऐसा ज्ञ-परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान-प्रतिज्ञासे सर्वथा उसका परिहार कर देवे, और इसकी वैषयिक अभिलाषाकी पूर्ति न करे, इस प्रकारके अपने धर्मका विचार करते हुए वे भगवान् महावीर वैराग्यमार्गमें अपने आपको ओत-प्रोत कर धर्मध्यानमें तत्पर रहे ॥ ६ ॥

मार्गमें चलते हुए भगवानको यदि गृहस्थजन आकरके मिलते और कुछ पूछते तो भी भगवानका ध्यानभंग नहीं होता, इस बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं—'जे के इमे' इत्यादि ।

पणु रडे छे आमा डोई स्त्री आ स्थानमा रोकायेला मुनिजनथी पोतानी वैषयिक अलिहाषा प्रकट करे अे समये मुनि "स्त्री संयममार्गना अवरोध करनार छे" अेवु ज्ञ-परिज्ञार्थी णाणी प्रत्याख्यान-प्रतिज्ञार्थी अेना त्याग करी दे, अने अेनी वैषयिक-विषयसणधी अलिहाषानी पूर्ति न करे, आ प्रकारथी पोताना धर्मना विचार करता लगवान् महावीर वैराग्यमार्गमा पोताने ओत-प्रोत अनावी धर्मध्यानमा मअ रडे छे (६)

मार्गमा आलता लगवानने डोई गृहस्थजन आवीने मणे अने पुछपरछ करे तो पणु लगवानना ध्यानना लग नडि थतो, आ वातने सूत्रकार प्रकट करे छे—'जे के इमे' इत्यादि

टीका—ये केचिद् इमे अगारस्याः=गृहस्याः आगत्य संमिलन्ति वैमित्री  
 मार्षं=सहवासं प्रहाय=परित्यज्य स=भगवान् व्यापति=ध्यानमेवावसन्वते स्म ।  
 तथा=ते कश्चिद् विषयं पृष्टोऽप्यपृष्टो वा स ऋजु सरलहृदयो भगवान् नाम्भ्य  
 भाषत, किन्तु-गच्छति ईर्ष्यासमितः सन् मार्गं व्रजत्यत्र, तथा नातिवर्तते=मोक्ष-  
 मार्गं ध्यानं वा न परित्यजति स्मेत्यर्थः ॥ ७ ॥

किञ्च—'णो सुकर०' इत्यादि ।

मूळम्—णो सुकरमेयमेगेसिं, नाभिभासए अभिवायमाणे ।

हयपुव्वे तस्थ दडेहिं, लूसियपुव्वे अप्पपुझेहिं ॥८॥

छाया—नो सुकरयत्तद् एकेयां नाभिभाषते अभिवादयतः ।

हत्पूर्वः तत्र दण्ठैः लूपितपूर्वः अल्पपुण्यैः ॥ ८ ॥

टीका—एतद्=उक्त बक्ष्यमाण घ, भगवच्चरितं एकेयाम्=भयर्पां नो सुकर  
 =न ऋजु शब्दम्, तदघ दर्शयति=अभिवादयत =अभिवन्दनं कृतो जनान्, नामि

जो कोई गृहस्थजन आकरके भगवानसे मार्गमें मिलते तो वे उनके  
 साथ सहवास नहीं करते, और अपने ध्यान हीमें मग्न रहते। उनके  
 द्वारा किसी विषयको लेकर पूछे गये अथवा नहीं पूछे गये वे सरल  
 हृदयवाले भगवान उनसे बोलते-ब्यालते नहीं, मार्गमें ईर्ष्यासमितसे  
 ही चलते रहते। मोक्षमार्ग अथवा ध्यानकी ओरसे वे अपने चित्तकी  
 नहीं हटाते वे ॥ ७ ॥

फिर भी—'णो सुकर०' इत्यादि ।

यह कला हुआ और आगे कहा जाने वाला भगवानका चरित्र  
 अन्य मनुष्योंके लिये सुकर-आश्रयण करना सहज-नहीं है, अन्य मनुष्य

ने केवल गृहस्थ जन आवी भाषमां भगवानने भगता ता तेभनी शये  
 भगवान सहवास करता न हुता अने पीताना ध्यानमा व भम रहेता हुता,  
 पूछवामा आवती अथवा नहीं पूछवामा आवती केवल पण नानने भगवान  
 आवण आवता नहीं-केवलनी शये बोलता बालन नही भाषमां ईर्ष्यासमितिणी  
 बालन रहेता मोक्षमार्गशी अने ध्यानन तरक्षी तेजो पीतानु चित्त नरा  
 पण वीछ तरक्ष हेस्वता ननी (७)

३१— णो सुकर० इत्यादि

आ करेवामा आवेत अने आरण कहेवामा आवतार भगवाननु चरित्र  
 वीच भाषसे। आटे अने शीतभी आवरण करवुं मदेव नही केवल भाषक विचार

भापते=न ब्रवीति, नाप्यनभिवादयद्ब्रह्मश्च क्रुध्यतीत्यपि उपलक्षणार्थतयाऽवगन्तव्यम्।  
प्रतिकूलोपसर्गोपस्थितौ सत्यामपि ध्यानभङ्गो नाभूदित्याह—‘ हतपूर्वः ’ इत्यादि ।  
तत्र=अनार्यदेशादौ विहरन् अल्पपुण्यैः=हीनपुण्यैर्धर्मसंज्ञारहितैरनार्यैर्दण्डैर्हतपूर्वः  
पूर्व हतः, तथा लुपितपूर्वः=हिंसितपूर्वः केशलुञ्चनादिभिः पूर्वं हिंसितो नाभिभापते,  
न कषायभाव प्राप्तवानित्यर्थः ॥ ८ ॥

किञ्च--‘ फरुसाइं ’ इत्यादि ।

मूलम्—फरुसाइं दुस्तितिक्षाइं, अइअच्च मुणी परक्कममाणे।

आघायनदृगीयाइं, दंडजुद्धाइं मुट्टियुद्धाइं ॥९॥

छाया—परुषाणि दुस्तितिक्षाणि अतिगत्य मुनिः पराक्रममाणः ।

आख्यातनृत्यगीतानि दण्डयुद्धानि मुष्टियुद्धानि ॥ ९ ॥

चाहें कि हम भी इस प्रकारके सांचेमें अपने जीवनको ढालें तो वे नहीं  
ढाल सकते। भगवान् अपने को वंदना करनेवाले मनुष्योंसे प्रेमसे नहीं  
बोलते और उपलक्षणसे नहीं वंदनेवालों पर क्रोधी नहीं होते। भगवान्  
के ऊपर चाहे कितनेही प्रतिकूल और अनुकूल उपसर्ग आते, तो भी वे  
अपने ध्यानसे विचलित नहीं होते। अनार्य देशादिकमें विहार करते  
समय भगवान् धर्मसंज्ञारहित ऐसे हीनपुण्य अनार्यों द्वारा दण्डोंसे भी  
ताड़ित हुए, और केशलुञ्चनादिकपूर्वक उनके द्वारा दुःखिन भी किये  
गये, उन पर पत्थर आदिका प्रहार भी किया गया तो भी भगवान्  
उनके प्रति कषायभावोंसे संपन्न नहीं हुए थे ॥ ८ ॥

और भी—‘फरुसाइं’ इत्यादि ।

के हुं पणु आ प्रकारे मारा लवनने लई लउ तो अे प्रमाणे ते करी शके  
नहीं—अे प्रकारने ढाण ढाणी शके नहीं. भगवाननी वंदना करवा आवता  
माणुसे साथे तेअे प्रेमथी बोलता नहीं, अने उपलक्षणथी नहीं वादवावाणा  
उपर क्रोध करता नहीं तेमना उपर गमे तेटला प्रतिकूल अने अनुकूल उप-  
सर्ग आवे तो पणु तेअे चेताना ध्यानथी विचलित थता नहीं अनार्य देशा-  
दिकमा विहार करती वधते धर्मसंज्ञाथी रडित अेवा हीनपुण्य अनार्यथी भग-  
वानने अनेक प्रकारना कष्टे सहैवा पडेला इंड विगेरेनी ताडनाथी तेमज  
माथाना वाण पकडी जेअवा विगेरेथी भगवानने अनेक रीते दुःख पडोयाड-  
वाभा आवेला काकरा, तेमज पथरा विगेरेना प्रहारो करवामा आव्या हुता  
तो पणु अेमना तरइ कषायभावसपन्न नडि थया. (८)

टीका—य केचिद् इमे अगारस्याः=गृहस्थाः आगत्य संमिलन्ति तैर्मिमी  
माष=सहवासं प्रहाय=परित्यज्य स=भगवान् ध्यायति=ध्यानमेवावलम्बते स ।  
तया-तैः कश्चिद् विषयं पृष्टोऽप्यपृष्टो वा स श्रज्जु सरसहृदयो भगवान् नाम्भ-  
मापठ, किन्तु-गच्छति ईर्यासमित सन् मार्गं प्रमत्स्यन्, तथा नातिवर्तते-मोक्ष-  
मार्गं ध्यानं वा न परित्यजति स्मेत्यर्थं ॥ ७ ॥

किञ्च—'णो सुकर०' इत्यादि ।

मूळम्—णो सुकरमेयमेगोसिं, नाभिभासप अभिवायमाणे ।

हयपुठ्वे सत्थ दडेहिं, लूसियपुठ्वे अप्पुण्णेहिं ॥८॥

छाया—नो सुकरमेतद् एकेपां नाभिमापते अभिवाद्यतः ।

इत्पूर्वः तत्र इष्टैः लूपितपूर्वः अल्पपुण्यैः ॥ ८ ॥

टीका—एतद्=उक्त वक्ष्यमाणं च, भगवन्धरितं एकेषाम्=अन्येषां नो सुकर-  
=न फलं शक्यम्, तदन वर्धयति-अभिवाद्यतः=अभिवन्दनं कृष्यतो जनान्, नामि

जो कोई गृहस्थजन आकरके भगवानसे मार्गमें मिलते तो वे उनके  
साथ सहवास नहीं करते, और अपने ध्यान हीमें मग्न रहते। उनके  
द्वारा किसी विषयको लेकर पूछे गये अथवा नहीं पूछे गये वे सरस  
हृदयवाले भगवान् उनसे बोलते-बालते नहीं, मार्गमें ईर्यासमितिसे  
ही चलते रहते। मोक्षमार्ग अथवा ध्यानकी ओरसे वे अपने चित्तको  
नहीं हटाते ये ॥ ७ ॥

फिर मी-‘णो सुकर०’ इत्यादि ।

यह कहा हुआ धौर आगे कहा जाने वाला भगवानका चरित्र  
अन्य मनुष्योंके लिये सुकर-आचरण करना सहज-नहीं है, अन्य मनुष्य

को ठोड़ मुँहसे बन आवी मात्र भा भगवानने भगवा तो तेमनी साथे  
भगवान सहवास करता न छूता अने पीताना ध्यानमा न भस रहेता छत्त,  
पूछ्यामा आपती अथवा नहीं पूछ्यामा आपती ठोड़ पक्ष वातने भगवान  
अपान आपता नहीं-ठोड़नी साथे बोलता आबता नहीं मार्गमा ईर्यासमितिभी  
आबता रहेता मोक्षभाग भी अने ध्यानना तरक्षी तेजो पीतानु चित्त नरा  
पक्ष पीछ तरक्ष हेरवता नहीं (७)

इति—णो सुकर इत्यादि

आ कडेनामा आवेस अने आजण कडेवामा आपनार भगवाननु चरित्र  
पीछ भाषुसो मागे को शीतभी आबवक्षु कश्चु सडेक नथी ठोड़ भाषुस विचार

गृहं यत्र नास्तीत्यशरणः=संयमस्तस्मै, संयमाराधनार्थम्, एतानि=अनुकूल-प्रतिकूलानि परीषहोपसर्गरूपाणि उदारानि=अन्यजनैर्दुःसहानि गच्छति=अतिक्रामति, परीषहोपसर्गैः प्रतिबद्धो न भवतीति भावः ॥ १० ॥

तेन भगवता दीक्षाग्रहणात् पूर्वं साधिकवर्षद्वयतः शीतजलं परिवर्जितमित्याह—  
-‘अवि साहिए’ इत्यादि ।

मूलम्—अवि साहिए दुवासे, सीतोदं अभोच्चा णिक्खंते ।

एगत्तगए पिहियच्चे, से अहिन्नायदंसणे संते ॥११॥

छाया—अपि साधिके द्वे वर्षे शीतोदकम् अभुक्त्वा निष्क्रान्तः ।

एकत्वगतः पिहितार्चः स अभिज्ञातदर्शनः गान्तः ॥ ११ ॥

टीका—अपि च—स भगवान् साधिके द्वे वर्षे शीतोदकम्=सचित्तजलम्, अभुक्त्वा=अपीत्वा, एकत्वगतः=एकत्वभावनामाश्रितः—‘अहमेक एवासहायोऽस्मि नास्ति मम कश्चिदात्मकल्याणार्थं द्वितीयः महायः, अपि च नाम्ति केनाऽपि सह

ही रहे, अर्थात् उनकी ओर भगवान्ने रागसहित दृष्टि भी नहीं रखी । ज्ञातपुत्र भगवान् अशरण रहे—संयमकी आराधनाके लिये अन्यजनोंका शरण नहीं लिया, एवं दुःसह प्रतिकूल और अनुकूल परीषहोंके आने पर भी अडोल रहे ॥ १० ॥

भगवान्ने दीक्षाग्रहण करनेके पहिले कुछ अधिक दो वर्षोंसे शीत जल—सचित्त पानीका त्याग कर दिया था, इस बातको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘अवि साहिए’ इत्यादि ।

भगवान्ने कुछ अधिक दो वर्षों से सचित्तजलका त्याग करदिया था, अर्थात्—सचित्तजल नहीं पिया । इस एकत्व भावनासे कि—‘मैं एक हूँ और असहाय हूँ—आत्मकल्याणके मार्गमें आगे आनेवाले मेरे लिये

ज रक्षा, अर्थात् भगवान्नी तेमना तरइ रागरहितजलं दृष्टि रडी ज्ञातपुत्र भगवान् अशरणुज रक्षा—संयमनी आराधना भाटे पीणनु शरणु न लीधु, अने गमे तेवा प्रतिकूल के अनुकूल परिषहो—दु सड दु जो आववा छता पणु अडोल रक्षा (१०)

भगवाने दीक्षा लीधा पडेला जे वर्षथी पणु वधारे समयथी ठडा पाणीने त्याग करी दीधेदो, आ वात सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—‘अवि साहिए’ इत्यादि

भगवाने जे वर्षथी पणु वधारे समयथी ठडा पाणीने त्याग करी दीधेदो—अर्थात्—ठडु (कायु) पाणी पीधेल नडी आ एकत्व—भावनाथी छे—‘हु अक छुं अने असहाय छु, आत्मकल्याणना मार्गमा आगण जवावाणा भारा भाटे



टीका—मृनिः=श्रीवर्षमानस्वामी, परुपापि=कठोरवचनानि, इस्तिविज्ञानि  
 =अन्यैः प्राकृतपुरुरैर्दुःसहानि अतिगत्य=अधिगणय्य, पराक्रममाण=सम्यक्  
 विविक्षावान् भवति, तथा=आख्यातनृत्यगीतानि=आख्यातानि नृत्यगीतानि उचि  
 श्य कौमुर्व न करोति, तथा=दण्डयुद्धानि मुष्टियुद्धानि दृष्ट्वा ध्रुत्वा वा नापि रोमा  
 श्रितो भवति ॥ ९ ॥

क्रिञ्च—'गडिय' इत्यादि ।

मूळम्—गडिय मिहोकहासु, समयमि नायसुप विसोगे अदक्खू ।

प्याइ से उरालाइ, गच्छइ नायपुत्ते असरणाप ॥ १० ॥

छाया—गृहः मियःक्यासु समय ज्ञातसुत पिशोकः अद्रासीत् ।

एतानि स उवाराणि गच्छति ज्ञातपुत्र अश्रमाय ॥ १० ॥

टीका—समये=एकस्मिन् काखे कदाचित् ज्ञातसुत =भगवान् महावीरः श्री  
 वर्षमानस्वामी मिय क्यासु=परस्परं कामसम्बन्धिचार्तालापेषु गृह्या=आसक्तः  
 स्त्री, पिशोकः=रागरहितः सन् भद्रासीत् । स ज्ञातपुत्रः=भगवान् अश्रमाय=श्रमं=

मृनि श्री वर्षमान स्वामी अन्य साधारण प्राणी भी जिन्हें सहन न  
 कर सकें ऐसे कठोर वचनोंकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर सम्यक् प्रकारसे  
 सहन करने वाले हुए—सर्व प्रकारसे अच्छी तरह सहनशील पने । तथा  
 आख्यात ( कथा-चार्ता ) नृत्य और गीतकी तरफ आश्रयसे मुक्त  
 न हुए, एव दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्धोंको देखकर या सुनकर रोमाश्रित-  
 आश्रयवक्ति भी न पने ॥९॥

फिर भी—'गडिय' इत्यादि ।

एक समय की पान छे कि भगवान् महावीरने परस्पर कामसंबंधी-  
 चार्तालापोंमें आसक्त स्त्रियोंको देखा तो भी वे उस ओरसे धीतराग

मुनिश्च वर्षमान स्वामी अन्य साधारण प्राणी पण जेने सहन न करी  
 शके जेवा कठोर वचनोनी तरफ कश पण ध्यान न छे सम्यक् प्रकारशी सहन  
 करवावगा य ए-सर्व प्रकारशी तेजो मज्जनशील वृत्तिना अन्य आश्रयान्(उपवादा)  
 नत्ये अने गीतोभा तेजोने आश्रय धरैल नही तेम इ-युद्ध अने मुष्टियुद्धने जे  
 तथा आश्रय रोमाश्रित-आश्रयवक्ति अन्य न छत्त (९)

दृष्ट्वा—'गडिय' इत्यादि ।

जेक समयनी पान छे के भगवान् महावीर परस्पर कामसंबंधी चार्ता  
 लापोंमा श्रीमाने आसक्त अनेही जेवा छत्त पण जे लाशर्मा जेजो धीतरागी

गृहं यत्र नास्तीत्यशरणः=संयमस्तस्मै, संयमाराधनार्थम्, एतानि=अनुकूल-प्रति-  
कूलानि परीषहोपसर्गरूपाणि उदारानि=अन्यजनैर्दुःसहानि गच्छति=अतिक्रामति,  
परीषहोपसर्गैः प्रतिबद्धो न भवतीति भावः ॥ १० ॥

तेन भगवता दीक्षाग्रहणात् पूर्वं साधिकवर्षद्वयतः शीतजलं परिवर्जितमित्याह—  
‘अवि साहिए’ इत्यादि ।

मूलम्—अवि साहिए दुवासे, सीतोदं अभोच्चा णिक्खंते ।

एगत्तगए पिहियच्चे, से अहिन्नायदंसणे संते ॥११॥

छाया—अपि साधिके द्वे वर्षे शीतोदकम् अभुक्त्वा निष्क्रान्तः ।

एकत्वगतः पिहितार्चः स अभिज्ञातदर्शनः शान्तः ॥ ११ ॥

टीका—अपि च—स भगवान् साधिके द्वे वर्षे शीतोदकम्=सचित्तजलम्,  
अभुक्त्वा=अपीत्वा, एकत्वगतः=एकत्वभावनामाश्रितः—‘अहमेक एवासहायोऽस्मि  
नास्ति मम कश्चिदात्मकल्याणार्थं द्वितीयः सहायः, अपि च नास्ति केनाऽपि सह

ही रहे, अर्थात् उनकी ओर भगवान्ने रागसहित दृष्टि भी नहीं रखी।  
ज्ञातपुत्र भगवान् अशरण रहे—संयमकी आराधनाके लिये अन्यजनोंका  
शरण नहीं लिया, एवं दुःसह प्रतिकूल और अनुकूल परीषहोंके आने  
पर भी अडोल रहे ॥ १० ॥

भगवान्ने दीक्षाग्रहण करनेके पहिले कुछ अधिक दो वर्षोंसे शीत  
जल—सचित्त पानीका त्याग कर दिया था, इस बातको सूत्रकार प्रदर्शित  
करते हैं—‘अवि साहिए’ इत्यादि ।

भगवान्ने कुछ अधिक दो वर्षों से सचित्तजलका त्याग करदिया था,  
अर्थात्—सचित्तजल नहीं पिया। इस एकत्व भावनासे कि—‘मै एक  
हूँ और असहाय हूँ—आत्मकल्याणके मार्गमें आगे आनेवाले मेरे लिये

ज रहा, अर्थात् भगवान्नी तेमना तरइ रागरद्धितज्ज दृष्टि रद्धी जातपुत्र भगवान्  
अशरण्ण रहा—संयमनी आराधना भाटे थीन्नु शरण्ण न लीधु, अने गमे तेवा  
प्रतिकूल के अनुकूल परिषहो—हु सड हु जो आववा छता पण्ण अडोल रहा (१०)

भगवाने दीक्षा लीधा पड़ेला जे वर्षथी पण्ण वधारे समयथी ठंडा पाणीने  
त्याग करी दीधेलो, आ बात सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—‘अवि साहिए’ इत्यादि

भगवाने जे वर्षथी पण्ण वधारे समयथी ठंडा पाणीने त्याग करी दीधेलो  
—अर्थात्—ठंडु (शत्रु) पाणी पीधेल नडी आ अकेत्व—भावनाथी छे—‘हु अके छुं  
अने असहाय छुं, आत्मकल्याणना मार्गमा आगण्ण जवावाणा भास भाटे

शाश्वतिकः पारमार्थिक सम्बन्धो ममे'—स्यादिस्वामेकत्वभावनासुपगत इत्यर्थः,  
तथा पिहितार्त्नं=अर्त्नं=क्रोधज्वाला पिहित=उपशमिता येन स त्वाविधः, तथा  
—अभिज्ञासदर्शनः=सम्यक्त्वभावनाभावित, अत एव शान्तः सन् निष्क्रान्तः=दीप्ता  
जग्राह ॥ ११ ॥

किञ्च—'पुङ्खि च' इत्यादि ।

मूळम्—पुङ्खि च आउकाय, तेउकाय च वाउकाय च ।

पणगा यधीय-हरियाइ, तसकार्यं च सव्वसो णच्छा ॥ १२ ॥

छाया—पृथिवी वायुकाय तेजस्काय च वायुकाय च ।

पनकांश्च बीजहरितानि प्रसकार्यं च सर्वेषो ज्ञात्वा ॥ सू० १२ ॥

टीका—मगधान् पृथिवीं=पृथिवीकार्यं, अप्कार्यं, तेजस्कार्यं, वायुकार्यं पन-  
कान्=शैवासान्, बीजहरितानि=वनस्पतीन् प्रसकार्यं च ज्ञात्वा='सर्वं एवैते समी-  
चा' इत्यवपुष्य सवधं=सर्वप्रकारेण तदारम्भं परिवर्जयन् विहरति स्मेत्यर्थः ॥ १२ ॥

इस मार्गमें कोई और दूसरा सहायक नहीं है, मेरा किसीके भी साथ  
निरन्तर पारमार्थिक संबंध नहीं है" ऐसा विचार कर सदा एकत्व  
भावनामें तत्पर रहे । क्रोध-कषायकी ज्वालाको प्रसुने उपशमित की ।  
सम्यक्त्वकी भावनासे भावित प्रसुने इसी लिये शान्तचित्त बन दीक्षा  
भगीकार की ॥ ११ ॥

और भी—'पुङ्खि च' इत्यादि ।

मगधान्ने पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, शैवाल,  
और बीज-हरितादिरूप वनस्पतिकाय, एवं असकाय, इन छह कषयके  
जीवोंको " ये सब ही जीवमहित हैं " ऐसा जानकर सर्वप्रकारसे  
उनके आरम्भका परिहाराग करते हुए ही विहार किया ॥ १२ ॥

आ भावना इति बीजे नष्टायक नर्था भाशे इति नी श्रुते निरन्तर पारमार्थिक  
सुलभ नर्था " आवो विचार करी प्रभु सदा जेकत्व भावनामा तत्पर रहेवा  
क्रोधकषायनी न्वाजाने प्रभुजे सभावी दीधी हती. सम्यक्त्वनी भावनाभी  
भावित प्रभुष्य आने व माटे शान्तचित्त बनी दीक्षा भगीकार करेती (सू० ११)

इति—'पुङ्खि च' इत्यादि

मगधाने पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, शैवाल अने जीव  
इत्यादिरूप वनस्पतिकाय अने असकाय, अत एव कषयना लियेने "आ पथा  
उपशमिते" जेहुं कषयी सब प्रकारेथी जेना आरम्भने परिहाराग करती  
करती व विहार करेती ( १२ )

भगवता पृथिव्यादिषड्जीवनिकायारम्भः परिवर्जितः, इत्याह—‘एयाइं’ इत्यादि ।

मूलम्—“एयाइं संति” पडिलेह, चित्तमंताइं से अभिन्नाय ।

परिवर्जिय विहरित्था, इय संखाय से महावीरे ॥१३॥

छाया—“एतानि सन्ति” प्रतिलेख्य चित्तमन्ति स अभिज्ञाय ।

परिवर्ज्य विहरति स्म इति संख्याय स महावीरः ॥ १३ ॥

टीका—स भगवान् महावीरः “एतानि पृथिव्यादीनि चित्तमन्ति” सन्ति इति प्रतिलेख्य=विचार्य, तद् अभिज्ञाय स्वरूपतो ज्ञात्वा, इति=एवं संख्याय=भेद-प्रभेदाभ्यां सर्वांशतो विज्ञाय, तदारम्भं परिवर्ज्य विहरति स्म ॥१३॥

जीवानां त्रसस्थावरत्वेन भेदमुपदर्श्य तेषां परम्परानुगमनं भवतीति बोधयित्वाह—‘अदु थावरा’ इत्यादि ।

मूलम्—अदु थावरा य तसत्ताए, तसा य थावरत्ताए ।

अदुवा सव्वजोणिया सत्ता, कम्मुणा कप्पिया पुढो बाला ॥ १४ ॥

भगवानके द्वारा पृथिवी आदि छह जीवनिकायोका आरंभ त्यक्त हुआ, इसी विषयको सूत्रकार पुनः प्रदर्शित करते हैं—‘एयाइ संति’ इत्यादि।

भगवान् महावीरने इन पृथिवी आदि षड्जीवनिकाय के जीवोंके आरंभका परित्याग यह विचारकर किया कि—“ये समस्त पृथिवी आदिक सचित्त-सजीव हैं”। तथा “इन सबका स्वरूप क्या है?” इसे भी अच्छी तरहसे जानकर एवं इनके भेद और प्रभेदोंका सर्वांशरूपसे मनन कर उनके आरंभसे रहित हो वे प्रभु विहार करते थे ॥१३॥

त्रस और स्थावररूपसे जीवोंके भेदोंको समझाने के लिये सूत्रकार कहते हैं—“अदु थावरा” इत्यादि ।

भगवान द्वारा पृथ्वी विगेरे षड्जीवनिकायेनो आरभ तण्वामां आवेदो, आ विषयने सूत्रकार पुन प्रदर्शित करे छे—‘एयाइ संति’ इत्यादि

भगवान महावीरे आ पृथ्वी वगेरे षड्जीवनिकायना एवेना आरभने परित्याग अे विचारीने करेदो के अे अथा सचित्त-सएव छे तथा आ अधानु स्वरूप शुं छे ? अेने यए सारी रीते नएणी अेना बेद अने प्रभेदोने स पूएु रीते विचारी अेना आरभथी रहित थअ प्रभु विहार करता छता. (१३)

एवेना त्रस अने स्थावररूपना बेदोने समनववा भाटे सूत्रकार कहेछे— ‘अदु थावरा’ इत्यादि

जाया—अथ स्यावराभ प्रसतया, प्रसात्र स्यावतया ।

अथवा सर्वयोनिका सत्त्वा कर्मणा कल्पिताः पृथग् वासाः ॥१४॥

टीका—अथ=अनन्तरं स्यावराः=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः प्रसतया=क्रम प्रमाणाद् द्वीन्द्रियादिरूपेण जायते, प्रसात्र=प्रसजीवा द्वीन्द्रियाद्यथ स्यावतया=पृथिव्याद्येकेन्द्रियरूपेण पुनस्त्यज्यते, अथवा सर्वयोनिकाः=सर्वयोनयः=उत्पत्ति स्थानानि येषां ते सर्वयोनिकाः=चतुर्गतिगन्ताराः, सत्त्वाः=श्रीवाः, वासाः=भूवाः, कर्मणा=स्योपात्तेनाष्टविधकर्मणा पृथक्-पृथक्त्वेन-सर्वयोनिकामित्वेन च कल्पिताः=न्यवस्थिता इति । तथा शोक्तम्—

पृथिवी, अप, तेज, वायु और घनस्पति, ये सय स्यावरकाय-एकेन्द्रिय जीव हैं । ये कर्मके प्रमायसे द्वीन्द्रियादिक रूपसे परभवमें उत्पन्न हो जाते हैं । द्वीन्द्रिय, तेजन्द्रिय, मोहन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय जीव, ये अस हैं, क्यों कि इनके अस नामकर्मका उदय रहता है । ये अस जीव भी कर्मकी विचित्रतासे स्यावर-पृथिवी आदिक एकेन्द्रियरूपसे दूसरे भवमें उपन्न हो जाते हैं । अथवा-समस्त योनियां हैं उत्पत्तिस्थान जिन्होंकी ऐसे सर्वयोनिक-चतुर्गतिमें भ्रमण करनेवाले-जीव अज्ञानसे आधृत घन अपने२ द्वारा उपात्त-ग्रहण किये गये अष्टविध कर्मके प्रमायसे भिन्न रूपमें सर्व योनियोंमें जाने वाले होते हैं । तात्पर्य यह कि-हरणक भिन्न योनियों रहा हुआ जीव कर्मके उदयसे परभवमें दूसरी योनियोंमें जन्म धारण कर सकता है । ऐसा नहीं है कि वह एक ही योनियोंमें नियमितरूपसे जन्म लेता रहे । सो ही कहा है—

पृथ्वी अप, तेज, वायु अने वनस्पति आ लला स्यावरकाय एकेन्द्रिय एव ए के कर्मना प्रमायथी द्वीन्द्रियादिक रूपथी परभवमा उत्पन्न यथ लल ए लेन्द्रिय, तेषन्द्रिय, आरुन्द्रिय पायुन्द्रिय एवके अस ए केभके केभने असनामकर्मना उदय स्के ए आ अस एव पयु कर्मनी विचित्र ताथी पृथ्वी आदि स्यावर-एकेन्द्रिय-रूपथी वील ललमा उत्पन्न यथ ए अथवा-समस्त योनीको नेभनु उत्पत्तिस्थान ए केना सर्वयोनिक-आर अतिमा लभयु कस्यावाजा एव अस्थानथी आधृत जनी पितपोदाना द्वारा उपत्त -अहयु कस्यामा आवेद अष्टविध कर्मना प्रमायथी लुदा लुदा रूपमा सव योनीयोमा लवावाण्ड होय ए तात्पर्य के ए के-दरेक योनीयोमा स्के एव कर्मना उदयथी परभवमा वील योनिमा ए म धारयु करी स्के ए केवु नथी क केक ए योनिमा नियमित रूपथी ते जन्म देतो स्के के ए कहु ए—

“ રક્ષ્મૂર્મિર્ન સા કાચિચ્છુદ્ધા જગતિ વિદ્યતે ।

વિચિત્રૈઃ કર્મનેપથ્યૈર્યત્ર સત્ત્વૈર્ન નાટિતમ્ ” ॥૧॥ ઇતિ ॥ ૧૪ ॥

કિંચ—‘ ભગવં ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ભગવં ચ એવમન્નેસિં, સોવહિષ્ટ હુ લુપ્પઈ બાલે ॥

કમ્મં ચ સઠ્વસો નચ્ચા, તં પડિયાઙ્કલ્લે પાવગં ભગવં ॥૧૫॥

છાયા—ભગવાંશ્ચૈવમન્વૈપીત્ સોપધિકઃ એવ લુપ્યતે બાલઃ ।

કર્મં ચ સર્વશો જ્ઞાત્વા તત્ પ્રત્યાખ્યાતિ પાપકં ભગવાન્ ॥ ૧૫ ॥

ટીકા—ભગવાન્ મતાવીરઃ શ્રીવર્ધમાનસ્વામી એવં=વદ્યમાણપ્રકારેણ અન્વૈ-  
પીત્=અવેદીત્ બાલઃ=મોહમુપગતઃ, સોપધિકઃ=ઉપધિના સહ વર્તત ઇતિ સોપધિકઃ—  
દ્રવ્યભાવોપધિયુક્તઃ સન્ લુપ્યત એવ=હિદ્યતે મિદ્યત એવ, કર્મપ્રભાવાત્ ક્લેશમનુ-  
ભવત્યેવેત્યર્થઃ । તસ્માદ્ ભગવાન્ કર્મ, સર્વપ્રકારેણ જ્ઞાત્વા તત્=કર્મ, પાપકં ચ=  
કર્મનિવન્ધનં સાત્રગ્રવ્યાપાર ચ પ્રત્યાખ્યાતિ=નિરાકૃતવાન્ ॥ ૧૫ ॥

“ રક્ષ્મૂર્મિર્ન સા કાચિચ્છુદ્ધા જગતિ વિદ્યતે ।

વિચિત્રૈઃ કર્મનેપથ્યૈર્યત્ર સત્ત્વૈર્ન નાટિતમ્ ” ॥ ૧ ॥

જગતમેં એસી કોઈસી ભૂમિ શુદ્ધ નહીં થતી કિ જહાં પર કર્મકી  
વિચિત્ર રચનાસે યુક્ત ઇસ જીવને અપના નાટક ન કિયા હો ॥ ૧૪ ॥

ફિર મી—‘ ભગવં ચ ’ ઇત્યાદિ ।

ભગવાન શ્રી વર્ધમાન સ્વામીને યહ બાત જાનલી કિ જો અજ્ઞાની  
પ્રાણી દ્રવ્ય ઓર ભાવ ઉપાધિસે યુક્ત હૈં, વે હી કર્મકે પ્રભાવ-ઉદયસે  
છેદે ઓર મેદે જાતે હૈ, રાત દિન અનેક ક્લેશોંકા અનુભવ કરતે હી  
હતે હૈ । ઇસી લિયે પ્રમુને કર્મકા યહ વિચિત્ર પ્રભાવ સર્વપ્રકારસે

“ રક્ષ્મૂર્મિર્ન સા કાચિચ્છુદ્ધા જગતિ વિદ્યતે ।

વિચિત્રૈઃ કર્મનેપથ્યૈ, —યત્ર સત્ત્વૈર્ન નાટિતમ્ ” ॥૧॥

જગતમા એવી કોઈ પણ, ભૂમિ શુદ્ધ નથી થતી કે જ્યા કર્મની વિચિત્ર  
રચનાથી યુક્ત આ જીવે પોતાનુ નાટક ન કર્યું હોય (૧૪)

ફરી—“ ભગવ ચ ” ઇત્યાદિ

ભગવાન શ્રી વર્ધમાન સ્વામીએ આ વાત જાણેલી કે જે અજ્ઞાની પ્રાણી  
દ્રવ્ય અને ભાવ ઉપાધિથી યુક્ત છે, તે કર્મના પ્રભાવ-ઉદયથી છેદાય અને ભેદાય  
છે રાત દિવસ અનેક કલેશોનો અનુભવ કરતા જે રહે છે. આ માટે પ્રભુએ

किञ्च—‘दुविह’ इत्यादि ।

मूळम्—दुविह समिञ्च मेहावी, किरियामञ्चस्त्रायऽणेलिस नाणी ।

आयाणसोयमह्वायसोय, जोग च सव्यसो णच्चा ॥१६॥

छाया—द्विविधं समेत्य मेषावी क्रियामास्यात्तवान् अनीहक्षीं ज्ञानी ।

आदानस्रोतः अतिपातस्रोत योगं च सर्वेशो ज्ञात्वा ॥ १६ ॥

टीका—मेषावी=हेयोपादेयविशेषज्ञान, ज्ञानी=ज्ञानचतुष्टयसंपन्नो भगवान्  
द्विविध ऐर्षापथिक-सांपरायिकभेदाद् द्विप्रकारकं कर्म समेत्य=अबुद्ध्य, तथा-  
आदानस्रोतः=आदीयत गृह्यते षध्यते कमानेनेत्यादानं दुष्पजिरितमिन्द्रियं, सर्वेषु  
स्रोतः=कर्मागमनमार्गः मिथ्यात्वादिरूपस्तत्, अतिपातस्रोतः=प्राणातिपातादिरूपस्यै

जानकर उस कर्मका और कर्मके कारणभूत पापजनक सावध व्यापारका  
सदाके लिये त्रियोग और त्रिकरणसे प्रत्यास्थान किया ॥१५॥

और भी—‘दुविह’ इत्यादि ।

हेय और उपादेयके ज्ञानसे युक्त, तथा मति, श्रुत आदि चार ज्ञान  
धारी भगवान् श्रीमहावीर स्वामीने ऐर्षापथिक और सांपरायिकके भेदसे  
कर्माकी द्विविधता स्वयं जानकर, तथा आदानस्रोतरूप मिथ्यात्व आदि,  
अतिपातस्रोतरूप प्राणातिपातादि, एवं अशुभ मन वचन और कायको  
“ ये सय सर्व प्रकारसे कर्मबन्धके कारण हैं ” ऐसा जानकर संयमका  
अनुष्ठान-पालन करनेरूप क्रियाका ध्यान किया, अर्थात् आचरण किया।  
जिनके द्वारा कर्मोंका र्धघन हो वह आदान है, और वह अशुभरूपसे

कर्मना के विचित्र प्रभावने लक्ष्मी के कर्मनु अने कर्मना कारणभूत पापजनक  
सावध व्यापारनु सबाने भागे त्रियोग अने त्रिकरणधी प्रत्यास्थान करेव (१५)

करी- दुविह इत्यादि।

हेय अने उपादेयना ज्ञानधी युक्त तथा मति, श्रुत आदि चार  
ज्ञानधारी भगवान् श्री महावीर स्वामीके ऐर्षापथिक अने सांपरायिकना भेदधी  
कर्मोनी द्विविधता स्वयं लक्ष्मी, अने आदानस्रोतरूप मिथ्यात्व वजरे, अतिपा  
तस्रोतरूप प्राणातिपातादि केम अशुभ मन वचन अने कायाने के तथा  
सय प्रकारधी कर्म ल धनना कारणे अतु लक्ष्मी संयमनु अनुष्ठान-पालन  
करवाइय कियानु ध्यान जेठके आचरणे कर्म जेनाधी कर्मोनु लभन वाच्ये ते  
आदाने अने ते अशुभरूपधी प्रयुक्त अनेव इन्द्रियोत्पत्तये अने कर्मोना व्यापारना

योगं=दुष्प्रणिहितं मनोवाक्कायं सर्वशः=सर्वप्रकारैः कर्मवन्धाय ज्ञात्वा अनीदृशीम्=  
उत्कृष्टक्रियां=संयमानुष्ठानरूपाम् आख्यातवान्=आचरितवानित्यर्थः ॥१६॥

किञ्च—‘अइवत्तियं’ इत्यादि ।

मूलम्—अइवत्तियं अणाउट्टिं, सयमन्नेसिं अकरणयाए ।

जस्सित्थीओ परिज्जाया, सव्वकम्ममावहा उ से अदक्खू ॥१७॥

छाया—अतिपातिकाम् अनाकुट्टिं स्वयमन्येषाम् अकरणतया ।

यरय स्त्रियः परिज्ञाताः सर्वकर्मावहाः तु सोऽद्राक्षीत् ॥१७॥

टीका—यो भगवान् अतिपातिकां=अतिपापेभ्यः=प्राणातिपातेभ्योऽतिक्रान्तां  
प्राण्युपमर्दनवर्जिताम्, अनाकुट्टिम्=आकुट्टिर्हिंसा तदन्याऽनाकुट्टिः=अहिंसा, तामनु-  
सृत्य, स्वयमन्येषां च अकरणतया—स्वतः परेण च हिंसापरिवर्जनेन प्रवृत्तः, तथा-  
यस्य भगवतः स्त्रियः सर्वकर्मावहाः=सर्वविधकर्मवन्धमूला इति परिज्ञाताः=ज्ञ-  
परिज्ञया ज्ञाताः प्रत्याख्यान-परिज्ञया परित्यक्ता भवन्ति, स भगवान् अद्राक्षीत्=  
यथाऽवस्थितं संसारस्वभावं परमार्थतत्त्वं ज्ञातवान् ॥१७॥

प्रवर्तित की गई इन्द्रियांरूप होता है । कर्मोंके आनेके मार्गका नाम  
स्रोत है । वह मिथ्यात्व आदि रूप है । आदानरूप स्रोतका नाम  
आदानस्रोत है ॥१८॥

और भी—‘अइवत्तियं’ इत्यादि ।

प्राणातिपातरूप पापोंसे रहित होनेसे शुद्ध ऐसी अहिंसाका भग-  
वानने स्वयं अनुसरण करके दूसरोंसे भी हिंसादिक कार्योंका परिव-  
र्जन कराया । भगवानने सर्व प्रकारसे कर्मवन्धका मूल कारण स्त्रीवर्ग  
का, ज्ञ-परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञासे परित्याग किया, और  
यथावस्थित संसारका स्वभाव भी जानलिया ॥ १७ ॥

मार्गं तु नाम स्रोत छे, ते मिथ्यात्व आदिइय छे आदानइय स्रोत तु नाम  
आदानस्रोत छे (१६)

इरी—‘अइवत्तियं’ इत्यादि

प्राणातिपातइय पापोंकी रहित होवाकी शुद्ध, ऐसी अहिंसाके लगवाने स्वयं  
अनुसरण करी, भीनकोने पणु डि साहिडि कार्योंको त्याग करानेके लगवाने सर्व  
प्रकारकी कर्मण धनु करणु स्त्री वर्गने जपरिज्ञाकी जणु प्रत्याख्यान-परिज्ञाकी  
परित्याग करी यथावस्थित संसारना स्वभावने जणु दीयो. (१७)



મગલતો મૂલગુણાનમિધાયોષ્ઠાગુણાનાહ—‘અહાકહ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અહાકહ ન સે સેવે, સઠ્ઠસો કમ્મુણો ઘમ અદક્ષ્વૂ ।

જ કિંચિ પાવગ ભગવ, ત અકુલ્લ વચિહ મુજિસ્થા ॥૧૮॥

છાયા—યયાકૃતં ન સ સેવતે સર્વશ કર્મણો ઘમદ્રાસીત્ ।

યત્ કિંચિત્પાપકં મગવાંસ્તદકુર્ષન્ વિકૃતમશુભ્ ॥ ૧૮ ॥

ટીકા—યયાકૃતમ્=યયા યેન પ્રકારેણ પૃષ્ઠાઞ્પૃષ્ઠા ઘા સાધુસુશિષ્ય કૃત યયા કૃતમ્ અઘઃકર્માદિકદોષદૂષિતં સર્વશઃ=સર્વપ્રકારેણ, કર્મણા=જ્ઞાનાવરણીયાદિ નાઽઽમનો ઘન્ધમદ્રાસીત્=દષ્ટાન્, તસ્માત્ સ અઘઃકર્માદિદોષદૂષિતમાહાર ન સેવતે સ્મ । અન્યદપ્પેવમ્મૂતં ન સેવતે સ્તેત્યાહ—‘યત્ કિંચિત્’ ઇત્યાદિ । યત્ કિંચિત્’ પાપક=પાપકારણં સદોષમભાવિકં, તદ્ અકુર્ષન્=અમ્વીકુર્ષન્ અદક્ષ્વૂ વિકૃત=માસુકમ્ અશુભ્=સેવતે સ્મ ॥ ૧૮ ॥

કિંચ—‘જો સેવહ’ ઇત્યાદિ ।

મગલાન કે મૂલગુણોંકા કપન કર અથ સૂત્રકાર ઉત્તર ગુણોંકા કપન કરતે હૈ—‘અહાકહ’ ઇત્યાદિ ।

પૂછકર અથવા નહીં પૂછકર સાધુકે ઉદ્દેશ્યસે ઝો કિયા ગયા હો ઉસકા નામ યયાકૃત હૈ । યયાકૃત આહારાદિક અઘઃકર્માદિદોષોંસે દૂષિત રહતા હૈ । મગલાનને હેસ યયાકૃત-અઘઃકર્માદિદોષદૂષિત આહારાદિકા સેવન નહીં કિયા, કારણ કિ “હસ પ્રકારસે આહારાદિકે સેવનસે આત્મા કર્મોંકા ઉપાર્જન કરતી હૈ, ઝોર ઉનકા ઘંચ કરતી હૈ” ઇસા મગલાનને અપને જ્ઞાનશક્તિસે દેસા । હસોં પ્રકાર ઝોર મી સદોષ પાપકારણ અશ્ન આદિ ઘસ્તુ પ્રહ્ણ કરનેકા મગલાનને ત્યાગ કર વિયા । કેચલ ઘે નિદોષ પ્રાસુક હી આહારાદિ હેતે ઘે ॥૧૮॥

મગલાનના મૂલગુણોંકા કપન કરી હવે સૂત્રકાર ઉત્તરગુણોંકા કપન કરે છે—  
અહાકહ ઇત્યાદિ.

પૃષ્ઠીને અમવા ન પૃષ્ઠીને સાધુના ઉદ્દેશથી જે કસવેલ છે તે યયાકૃત આહારાદિક છે જે અઘઃકર્માદિ દોષોંથી દૂષિત રહે છે મગલાને બેા યયાકૃત અઘઃકર્માદિદોષદૂષિત આહારાદિકનું સેવન કરેલ નથી, કારણ કે ‘આવા પ્રકારના આહારાદિકના સેવનથી આત્મા કર્મોંનું ઉપાર્જન કરે છે અને તેના અઘઃ પલ્લુ કરે છે” એવું મગલાને પોતાના જ્ઞાનશક્તિથી બેાં આ શીતન્ય વીજા પલ્લુ સદોષ પાપકારણવાળા અશ્ન આદિ ઘસ્તુ મહંજુ કરવાને મગલાને ત્યાગ કર્યો તેબેાં હકલ નિદોષ પ્રાસુક ન આહારાદિકે હેતા હતા (૧૮)

मूलम्—णो सेवइ य परवत्थं, परपाए वि से ण भुंजित्था।

परिवज्जियाण ओमाणं, गच्छइ संखडिमसरणाए ॥१९॥

छाया—नो सेवते च परवत्थं, परपात्रेऽपि स नाभुङ्क्त।

परिवर्ज्यापमान गच्छति संखडिमशरणाय ॥ १९ ॥

टीका—स=भगवान् परवत्त्रं न सेवते=न गृह्णाति, अपि च परपात्रेऽपि नाभुङ्क्त, अपमानं परिवर्ज्य=अगणयित्वा अशरणाय=संयमाराधनार्थमदीनमनस्कः सन् संखण्डि=सखण्ड्यन्ते उपमर्द्यन्ते प्राणिनो यत्र तां संखडिम्=आहारपाकस्थानं गच्छति=जगामेत्यर्थः। अत्र संखडि-शब्देन ज्ञातिभोजनरूपोऽर्थो न गृह्यते, तस्याः शास्त्रे निषिद्धत्वात् ॥ १९ ॥

किञ्च—‘मायण्णे’ इत्यादि।

मूलम्—मायण्णे असणपाणस्स, नाणुगिद्धे रसेसु अपाडिन्ने।

अच्छिं पि नो पमाज्जिजा, नो वि य कंढूयए मुणीगायं ॥२०॥

छाया—मात्राज्ञोऽशनपानस्य, नानुगृह्यो रसेषु अप्रतिज्ञः।

अक्षिणी अपि नो प्रमार्जयति, नापि च कण्ठयते मुनिर्गात्रम् ॥ २०॥

और भी—‘णो सेवइ’ इत्यादि।

भगवानने दूसरोंका वस्त्र अपने उपयोगमें नहीं लिया, और न दूसरोंके पात्रमें भोजन ही किया। अपने अपमानका ख्याल न कर, स्वयं भगवान संयम आराधनाके निमित्त अदीनमन होकर आहारके पाकस्थान (गृहस्थोंके यहां आहार बनानेके भोजनघर) में जाते थे। भगवानने यह ख्याल नहीं किया कि आहार लेनेके लिये जानेमें मेरा अपमान है। ऐसा करनेसे ही संयमकी अच्छी तरहसे पालना होती है, ऐसी भावनासे वे स्वयं आहार लेने जाया करते थे ॥ १९ ॥

इरी—‘णो सेवइ’ इत्यादि

लगवाने भीन्नभोजना वस्त्रोंने पोताना उपयोगमा नहीं लीधा तेमन् भीन्नना पात्रमा लोचन येषु कीधु नहीं, पोताना अपमाननो ज्वाल कर्था विना लगवाने पोते संयम आराधनाना निमित्त अदीनमन भीनीने गृहस्थोंने त्या तेमना लोचनगुडे जता हुता आमा लगवाने जेवा ज्वाल नहीं कर्थे डे आहार देवा जवामा माइ अपमान थाय छे आवु करवाथोज संयमनी सारी शीते पालना थाय छे, जेवा लावनाथीज तेज्जो जते आहार देवा जता हुता. (१६)

टीका—अन्नपानस्य मापद्मं=परिमाणम् । तथा रसेषु=मधुरादिषु नाजुष्टं  
 =अनासक्तः, गृहस्थावस्थायामपि रसगृद्धिरहितत्वादिति माष, अथ एष भ्रमतिष्ठः  
 रसविशेषप्रतिज्ञावर्जितः, 'अथ मया मोदका एव प्राणा' इत्यादिरूप्या प्रतिज्ञा  
 ममन्तो नासीत्, किन्तु शीतलपर्युपितपिण्डनीरसपुराणकुल्लुष्यादिके समतिष्ठ एव ।  
 तथा—अग्निः अपि रजःकण्ठादिनिस्सारणाय न प्रमार्जयति, अपि च मुनिः=सर्व-  
 जीवसमभावो भगवान् गात्रं न कण्ड्वयते दक्षमक्षकादिर्दग्धनेऽपि इत्यादिना शरीर-  
 संघर्षणं न कृतवानित्यर्थः ॥ २० ॥

फिर भी—'मायण्ये' इत्यादि ।

भगवान् सदा अशनादिकका सेवन मात्रानुसार ही किया करते  
 थे, क्यों कि वे स्वयं 'इन्हें कितनी मात्रामें लेना चाहिये' इस विषयसे  
 परिचित थे । तथा प्रसु कमी भी किसी भी रसमें गृह नहीं पने । गृहस्थ  
 अवस्थामें भी ये रसगृद्धिसे रहित रहे, इसी लिय भगवान् किसी रसवि-  
 शेषके लेनेकी प्रतिज्ञा अंगीकृत नहीं की । "आज मैं मोदक ही  
 खाऊँगा" इत्यादि प्रकारकी प्रतिज्ञा भगवानने कमी भी धारण नहीं  
 की । शीतल, पर्युपित पिण्ड और नीरस पुरानी कुल्लुषी आदिके आहार  
 लेनेमें तो वे नियमयुक्त ही रहे । भगवानने अपनी आंखोंमें गिरे हुए  
 रजके कणोंको निकालनेके निमित्त आंखोंको कमी कहीं न मसलते और  
 न दक्षमक्षकादिकके काटने पर शरीरको खुजाते थे ॥ २० ॥

शरी— मायण्ये' इत्यादि ।

भगवान् सदा अशनादिकेन सेवन मात्रानुसार च इत्या इत्या, इम के  
 तेजो स्वयं ज्ञेने डेटली मात्राधी देवां ज्येष्ठे 'तेनाधी परिचित इत्या, तथा  
 प्रसु इयारैष पञ्च ठाई पञ्च रसभा गृद्धिवागा मया नभा गृहस्थ अवस्थाभा  
 पञ्च तेजो रसगृद्धिधी अतिष्ठ रथा इत्या आ कारजे भगवाने कही कोर् रस  
 विशेषने लेवाना प्रतिज्ञा अंगीकृत करेन न इती । आर मुं एउ च  
 आश्रय' इत्यादि प्रकारनी प्रतिज्ञा भगवाने कदि पञ्च धारण करेन न इती ।  
 शीतल पर्युपित-पि- जने मुनां कणधी वजैरेने अकार लेवामां तो तेजो  
 प्रतिज्ञावागा च रथा, भगवाने पोतानी आंजिभा पठेला रजकज्ञेने अकार  
 काठवा निमित्ते पञ्च आंजिने कदि मसणी न इती तेम एअ, मञ्छरुअ कर  
 इवाधी शरीरने कदि पञ्च अञ्जवाजेन नधी । (२०)

अन्यच्च—‘अप्पं तिरियं’ इत्यादि ।

मूलम्—अप्पं तिरियं पेहाए, अप्पं पिट्टओय पेहाए ।

अप्पं वुड्ढए पडिभासी, पंथपेही चरे जयमाणे ॥२१॥

छाया--अल्प तिर्यक् प्रेक्षते, अल्पं पृष्ठतः प्रेक्षते ।

अल्पमुक्तः प्रतिभाषी, पथिप्रेक्षी चरति यतमानः ॥ २१ ॥

टीका--भगवान् मार्गं गच्छन् तिर्यक्=तिरश्चीनम् अल्पं प्रेक्षते=न पश्यति स्म । अत्राल्पशब्दो निषेधार्थकः । तथा पृष्ठतोऽपि अल्पं प्रेक्षते । उक्तः=केनापि पृष्ठः सन् अल्पं प्रतिभाषी=न ब्रवीति स्म, किन्तु पथिप्रेक्षी=पन्थानं=स्वशरीर-परिमितां पुरोवर्तिनीं भूमिं प्रेक्षितुं=द्रष्टुं शीलमस्येति स तथोक्तः यतमानः=यतनां कुर्वाणः सन् चरति=विहरति स्म ॥ २१ ॥

पुनश्च--‘सिसिरंसि’ इत्यादि ।

मूलम्—सिसिरंसि अद्धपडिवन्ने, तं वोसिज्ज वत्थमणगारे ।

पसारित्तु बाहू परक्कमे, नो अवलंबियाण खंधंमि ॥२२॥

छाया--शिशिरेऽध्वप्रतिपन्न, -स्तद् व्युत्सृज्य वत्समनगारः ।

प्रसार्य बाहू पराक्रमते, नो अवलम्ब्य स्कन्धे ॥ २२ ॥

और भी—‘अप्पं तिरियं’ इत्यादि ।

भगवानने मार्गमें विहार करते समय न तिरछा देखते और न पीछे ही देखते, किन्तु अपने शरीरप्रमाण भूमिका ही सामने निरीक्षण करते । विहारमें किसीके पीछने पर भी प्रभु किसीसे कुछ नहीं बोलते थे, और यतनाचारपूर्वक ही प्रभु विहार करते थे ॥ २१ ॥

फिर भी—‘सिसिरंसि’ इत्यादि ।

इरी पणु—“ अप्प तिरिय ” धत्यादि

भगवान् मार्गमा विहार करती वधते आहु अवणु नेता न डता, तेभ पाछण पणु इरीने नेता न डता, पणु पोताना शरीरप्रमाणु भूमिने न नेधने आलता विहारमा कोधना पूछवा उपर पणु प्रणु कोधथी णोलता न डता अने यत्नाचारपूर्वक प्रणु विहार करता डता (२१)

इरी—‘सिसिरंसि’ धत्यादि

टीका—अन्वयप्रतिपत्तः=मार्गारूढ अनगारो=मगधान् शिधिरै=शीतकाले उद्  
 षर्षं व्युत्सृज्य=परित्यज्य वाहू=सुप्तौ स्कन्धभागे नो अवलम्ब्य=शीतवाधानिवा  
 रणार्थं न संस्थाप्य, किन्तु प्रसार्य=बाहुद्वयं विस्तार्य च पराक्रमते=परीपहसइनाय  
 यतते स्म ॥ २२ ॥

उपसंहरन्नाह—‘एस विही’ इत्यादि ।

मूळम्—एस विही अणुक्कतो, माहणेण मईमया ।

बहुसो अपादिज्ञेण, भगवया एव रीयति तिवेमि ॥५३॥

छाया—एष विधिरनुक्रान्तो माहनेन मतिमता ।

बहुशोऽप्रतिज्ञेन भगवता, पर्व रीयते, इति ब्रवीमि ॥ २३ ॥

टीका—माहनन=य स्वयं इनननिवृत्तः सन् परं प्रति ‘मा इन मा इन’ इत्येवं  
 वदति, स माहनस्तेन, मतिमता=इयोपादयप्रज्ञावता बहुशोऽप्रतिज्ञेन=सर्वथा निदान-

मार्गारूढ-विहारमें रहे हुए-भगवानने उस घञ्जका शीतकालमें  
 परित्याग कर दिया । शीतको दूर करनेके लिये उन्होंने अपने दोनों  
 हाथोंको कंधों पर नहीं रखा, अर्थात् शीतसे पीड़ित होने पर लोग  
 दाये हाथको बायें कंधे पर और बायें हाथको दाहिने कंधे पर दबा कर  
 रखलेते हैं, इससे शीतबाधा सताती नहीं है, सो प्रभुने शीतबाधाकी  
 निवृत्तिके लिये घञ्ज त्यागकरके भी ऐसा नहीं किया, प्रत्युत दोनों  
 मुजाओंको ऊंची करके वे शीत-परीपहको महन करते थे ॥२२॥

उपसंहार करते हुए कहते हैं—‘एस विही’ इत्यादि ।

स्वयं इननादिकापैँसे निवृत्त होकर दूसरोंको भी ‘मा इन, मा इन-  
 ‘मत मारो, मत मारो’ इस प्रकार कहकर उनसे निवृत्त कराने वाले, तथा

मार्गारूढ-विहारमां स्वेत्वा-सप्रधाने ओ वञ्जते ढडीना समभे त्याग करी  
 दीपित ढडीने दूर करवा माटे तेज्येजे पोताना जन्ने ढाधेने आंध उपर  
 राध्या नहीं अर्थात् ढडीधी पिअती वजते होठे। अथा ढाधेने जमव्या ढंध  
 पर जने जमव्य ढाधेने अथा ढंध उपर लजे छे, जेधी ढडीनी पीअ जेने  
 सत्वापती नहीं, परतु प्रभुजे ढडीधी जमवा वस्त्र-आज ढयो पछी पवु जेम करतन  
 कर्तु परतु जन्ने ढाधेने वथा करी तेज्ये शीत-पस्त्रिबने सदन करवा कत्वा (२२)

उपसंहार करवा ठहे छे— एस विही इत्यादि

स्वयं उद्युवादिठ कार्थोधी निवृत्त जनी जीजज्येने। पवु मा इन-मा इन-“मारो  
 नदि, मारो नदि आ प्रकारनु ढडीने तेनाधी निवृत्त करवावत्त तथा छेव जने

रहितेन भगवता=श्रीवर्धमानस्वामिना एषः=प्रागुक्तः विधिः=आचारः अनुक्रान्तः= अनुसेवितः, एवम्=अनेन विधिनाऽन्येऽपि मोक्षसाधकाः साधवः सकलकर्मक्षयार्थं रीयन्ते=विहरन्ति संयममार्गं विहरेयुरिति भावः। 'इति ब्रवीमि' अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ २३ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥ ९-१ ॥

हेय और उपादेयके विवेकसे युक्त, एवं सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित, ऐसे श्रीवर्धमानस्वामीने यह पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन किया, अतः इसी तरहसे अन्य मोक्षसाधक साधुजन भी अपने समस्तकर्मों का नाश करनेके लिये संयममार्गमें विचरण करे, अर्थात् इसी प्रकारसे इस विधिका पालन कर अन्य मोक्षार्थी मुनि भी अपने कर्मों का नाश करनेके लिये संयम-मार्गमें लवलीन बनें। " इति ब्रवीमि " इन पदोंकी व्याख्या पहिले की गई व्याख्याकी तरह जान लेनी चाहिये ॥२३ ॥

॥ नववें अध्ययनका प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ९-१ ॥

उपादेयना विवेकथी युक्त अने सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित अेवा श्री वर्धमान स्वामीअे आ पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन करेले अेटले आ रीते भील मोक्षसाधक ( मोक्षना अलिदाषी ) साधुजन पणु पोताना समस्त कर्मोंने नाश करवा भाटे विचरणु करे अर्थात्—अेवा प्रकारथी अेवी विधितु पालन करी भील मोक्षार्थी मुनि पणु पोताना कर्मोंने नाश करवा भाटे संयममार्गमा लवलीन अने " इति ब्रवीमि " आ पदोंने व्याख्या अगाठना अध्ययनोमां कडेवाया प्रमाणे समजवी लेध अे ( २३ )

नवमा अध्ययननेो प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ९-१ ॥

। अथ नवमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देश ।

इहानन्तरप्रथमोद्देशके महावीरस्य मगधतो विहारः कथितः, तत्र क्षय्याऽऽस-  
नानि यथा तस्याऽऽसन् तद्वधोक्तार्थं द्वितीयोद्देशक कथयति । तत्र जम्बूस्वामी  
श्रीसुधर्मस्वामिने पृच्छति—‘चरियासणाह’ इत्यादि ।

मूल्म्—चरियासणाह सिज्जाओ, षगइयाओ जाओ बुइयाओ ।

आइक्ख ताइ सयणासणाह, जाइ सेविस्था से महावीरो ॥१॥

छाया—चरियासनानि क्षय्या एकिका या उक्ताः ।

आख्याहि तानि क्षयनासनानि यानि सिपेवे स महावीरः ॥ १ ॥

टीका—‘चरिया’ इति लुप्तविभक्तिकमिदम् । चरिया=विहारावस्थायां यानि  
आसनानि, याम्, क्षय्या एकिका=एकैकप्रकारा विभिन्नरूपाः पूर्वम् उक्ताः, यानि  
क्षयनासनानि सन्लोकप्रयप्रसिद्धः मगधान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी सिपेवे  
तानि आख्याहि, इति ॥१॥

नवमे अध्ययनका दूसरा उद्देश ।

इस नवम अध्ययनके प्रथम उद्देशमें श्री महावीर प्रभुका विहार  
वर्णित किया जा चुका है । उस विहारमें प्रभुकी शय्या और आसन  
जिस प्रकारके थे उन्हें समझानेके लिये सूत्रकार इस द्वितीय उद्देशका  
प्रारंभ करते हैं । यहाँ जम्बूस्वामी श्रीसुधर्मास्वामीसे पूछते हैं—‘चरिया-  
सणाह’ इत्यादि ।

मगधन् । यह तो कहिये कि मगधान्श्री महावीरन विहार करते  
समय जिन २ शय्या और आसनोंका सेवन किया है वे एक ही  
प्रकारके थे या निम्न २ प्रकारके ॥१॥

नवमा अध्ययननेो जीने उद्देश

आ नवमा अध्ययनन्य प्रथम उद्देशमा श्री महावीर प्रभुना विहारन  
वर्णन करवाभां जावेक छे जे विहारमां प्रभुनी शय्या अने आसन के प्रकारनां  
कतां जे समजाववा भाटे सूत्रकार आ जीव उद्देशनेो प्रारंभ करे छे अहि  
जम्बूस्वामी श्री सुधर्मा स्वामीने पूछे छे—‘चरियासणाह’ इत्यादि ।

मगधन् ! जे तो बतावे के मगधान् श्री महावीर विहार करी पजते  
के के शय्या अने आसनन्य सेवन करेक ते कोक २ प्रकारना कतां के सुध  
सुध प्रकारनां ? (१)

एवं पृष्टः श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनं प्रत्याह—‘ आवेसण० ’ इत्यादि ।

मूलम्—आवेसणसभापवासु, पणियशालासु एगया वासो ।

अदुवा पलियट्टाणेसु, पलालपुंजेसु एगया वासो ॥२॥

छाया—आवेशनसभाप्रपासु पण्यशालासु एकदा वासः ।

अथवा पलितस्थानेषु पलालपुञ्जेषु एकदा वासः ॥२॥

टीका—एकदा=कदाचित्, आवेशनसभाप्रपासु=आ=समन्ताद् विशन्ति यत्र, तदावेशनम्=शून्यगृहम्, सभा=ग्रामनगरवासिनां लोकानामास्थायिकार्थमागन्तुकानां शयनार्थं च या कुड्याद्याकृतिर्ग्रामवासिभिर्नगरवासिभिश्च क्रियते सा सभा, प्रपा=पानीयशाला, आवेशनं च, सभा च, प्रपा च, एपामितेतरयोगद्वन्द्वः-आवेशनसभाप्रपास्तासु, तथा कदाचित्-पण्यशालासु=आपणेषु भगवतो वासः अभूत् । अथवा-कदाचित् पलितस्थानेषु=पलितमिव पलितं=कर्म तस्य स्थानानि कर्मस्थानानि कर्मा-

इस प्रकार पूछे जाने पर श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं—  
‘ आवेसण ’ इत्यादि ।

उन त्रिलोकप्रसिद्ध श्री महावीर भगवानकी शय्या और आसन सब भिन्न २ प्रकार के थे । वे कभी आवेशन-शून्यगृहमें, कभी सभा-नगर या ग्रामवासियोंद्वारा नगर और ग्रामके लोगोंको बैठनेके लिये और पथिकोंको सोनेके लिये जो कुड्याकृति-आस्थाई (चोरा) बनाई हुई होती है उसमें, कभी २ प्याऊ-पानीकी शाला-में कभी २ पण्यशाला-दुकानोंमें, या पलिस्तथान-लुहारकी शालामें और कभी २ पलालकी बनी हुई झोंपडीमें निवास करते थे । “ पलियट्टाणेसु ” की संस्कृत छाया “ पलितस्थानेषु ” है । इसका अर्थ “ पलितमिव पलितं-कर्म, तस्य स्थानं कर्मस्थान=कर्मादा-

या रीते पुछवाथी श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने कहे छे—‘ आवेसण ’ इत्यादि

ते त्रयु लोकाभा प्रसिद्ध श्री महावीर भगवाननी शय्या अने आसन जुदा जुदा प्रकारना हुता तेओ क्यारेक उजड घरभा, कही सभा-नगर अथवा ग्रामवा सीओअने लोकेने भेसवा भाटे अने मुसाक्षरेने उतरवा भाटे अनावेल सार्वज-निक आराभगृहोभा, क्यारेक परवोभा, क्यारे-क्यारेक केछि दुकानोभा अथवा लुहारनी केडभा अने क्यारेक पराणनी अनावेली जु पडीमां निवास करेवो । “ पलियट्टाणेसु ” नी संस्कृत छाया “ पलितस्थानेषु ” छे, आने अर्थ-पलितमिव



दानस्यानानि 'कारस्वाना' इति प्रसिद्धानि, तपु लोडकारादिधात्मादिषु, तथा कदाचित् पलासपुञ्जेषु=पलालनिर्मितकुटीरेषु तस्य वासः अभूत् ॥२॥

किञ्च—'आगतारे' इत्यादि ।

मूळम्—आगतारे आरामागारे, तद् य णगरे वि एगया वासो ।

सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले वि एगया वासो ॥३॥

छाया—आगन्त्रगारे आरामागारे तथा च नगरेऽपि एकदा वास ।

स्मशाने शून्यागारं वा, वृक्षमूलेऽपि एकदा वास ॥३॥

टीका—एकदा=कदाचित् आगन्त्रागरे=आगन्तुस्यः आगारम् आगन्त्रगारं प्रामाणगराद् वा परिगन्तुकजननिवासार्थं गृहं धर्मशालेस्पथेः, तस्मिन् भगवतो वासः =अवस्थानं बभूव । एकदा=कदाचित् आरामागारे=आरामः=उपवनं तत्रागारं=गृहं तस्मिन्, तथा कदाचित् नगरेऽपि=नगरमध्येऽपि तस्य वासो बभूव । तथा एकदा स्मशाने वा, अथवा शून्यागारे=शून्यगृहे कदाचित् वृक्षमूलेऽपि=वृक्षतलेऽपि भगवतो वासो बभूव ॥३॥

नस्थानं" इस व्युत्पत्तिके अनुसार कर्मों के आदानका स्थानमूल-कार खाना भी होता है । पलाल-एक तरहका घास होता है ॥२॥

और भी—'आगतारे' इत्यादि ।

कमीरे वे प्रभु ग्राम तथा नगरसे बाहर बनी हुई धर्मशालामें उतरते तो कमी २ यगीधामें ठहरते । कमी नगरमें तो कमी स्मशानमें, कमी किसी शून्यघरमें तो कमी किसी वृक्षके नीचे ही रहजाते । इस प्रकार प्रभुके ठहरनेका कोई नियमित स्थान नहीं था, जहाँ अवसर देखते वहाँ प्रासुक स्थानमें ठहर जाते ॥ ३ ॥

पठितं, कर्म तस्य, स्वान्=कर्मस्थान, कर्मदानस्थान च व्युत्पत्ति अनुसार कर्मोना आश्रयानु स्थान-शरणानु पक्षे वाच्ये छे त्यां, पराण च कोक जतनु वाच्ये छे. (२)

इरी—"आगतारे" इत्यादि

कथारिक कथारिक प्रभु ग्राम अथवा तो शबेस्सी अठार अनेही धर्मशा  
लाभ्येमा अतरता तो कथारिक अगीधामां शिवाता कथारिक नगरमां तो कथारिक  
स्मशानमा, कथारिक उच्छ्रित परिमां तो कथारिक केळ वृक्षना नीचेर रही  
जता आ सीते प्रभुना शिवातानु केळ निश्चित स्थान न छेत्तु, अथां अवसर भजतो  
त्यां प्रासुक स्थानमां शिवात् जता. (३)

भगवान् कियन्तं कालं यावत् तपःसंयमाराधनं कृतवानिति जिज्ञासायामाह—  
'एएहिं मुणी' इत्यादि ।

मूलम्—एएहिं मुणी सयणे हिं, समणे आसि पतेरसवासे ।

राइंदियंपि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिण् झाइ ॥४॥

छाया—एतेषु मुनिः शयनेषु श्रमणः आसीत् प्रत्रयोदशवर्षाणि ।

रात्रिदिवमपि यतमान अप्रमत्तः समाहितो ध्यायतिः ॥४॥

मुनिः=भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी एतेषु=प्रागुक्तेषु शयनेषु=वसतिषु प्रत्रयोदशवर्षाणि=प्रकर्षेण=किंचिदधिकार्धभागेन त्रयोदशं येषु तानि तथाभूतानि वर्षाणि, सार्धपञ्चमासन्यूनत्रयोदशवर्षाणीत्यर्थः; रात्रिदिवमपि=अहर्निशं, यतमानः =संयमाराधनपरायणः, श्रमणः=तपसि समुद्युक्त आसीत् । तथा-अप्रमत्तः निद्रादि-प्रमादपरिवर्जितः समाहितः=विस्मृतसिकारहितः सन् ध्यायति धर्मध्यानमिति ॥४॥  
किञ्च—'णिहं पि नो' इत्यादि ।

मूलम्—णिहं पि नो पगामाए, सेवइ भगवं उट्टाए ।

जग्गवइ य अप्पाणं, ईसिंसाई आसि अपडिन्ने ॥५॥

छाया—निद्रामपि नो प्रकामतया सेवते भगवान् उत्थाय ।

जागरयति चात्मानं ईषच्छायी आसीत् अप्रतिज्ञः ॥ ५ ॥

भगवानने कितने समयतक तप और संयमका आराधन किया ? इस प्रकारकी जिज्ञासाका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं—  
'एएहिं' इत्यादि ।

विहार अवस्थामें श्रमण भगवान महावीर इन पूर्वोक्त वसतियोंमें तेरह वर्षसे कुछ कम अर्थात्—साढेवारह वर्ष और पन्द्रह दिन—रहे । वे रात और दिन संयमकी आराधना करते हुए तपश्चर्यामें तत्पर रहे, और प्रमादरहित होकर समाधिभाज्युक्त वे सदा धर्मध्यानमें तत्पर रहे ॥४॥

और भी—'णिहंपि नो' इत्यादि ।

लगवाने डेटला समय सुधी तप अने सयमनी आराधन करी ? आ प्रडारनी लज्जासानु समाधान करता सूत्रकार कहे छे—'एएहिं' इत्यादि.

विहार अवस्थामा श्रमणु लगवान श्री महावीर वस्तीयोमा १३ तेर वर्षधी थोडा थोछो समय रह्या डता तेज्यो रात दिवस सयमनी आराधना करता करता तपश्चर्यामा तत्पर रहेता अने प्रमादरहित थछ समाधिलावशुद्ध धर्म-ध्यानमा सदा ज्येकड्प अनी रहता (४)

इरी—'णिहंपि नो' इत्यादि.

टीका—मगवान्=महावीर श्रीवर्धमानस्वामी प्रकामतया निद्रामपि नो सन्वे, निद्राधीनो न बभूवेत्यर्थः । चकारस्त्वर्थे, किन्तु उत्थाय=निद्रासमागमनकाले सावधानीभूय आत्मानं जागरयति=तपःसंयमाराधने प्रवर्तयति । अपतिञ्च=स्वाप-प्रतिज्ञारहितः ईषन्छापी=छत्रस्थावस्याया अन्तिमराश्रावन्तर्मुहूर्तमात्रकालस्वप्नदर्शी आसीत्=अमृत ॥५॥

किञ्च—'संबुज्जमाणे' इत्यादि ।

मूळम्—संबुज्जमाणे पुणरपि, आसिंसु भगव उट्ठाए ।

निकस्वम्म एगया रामो, वहि चंकमिया मुहुत्ताग ॥६॥

छाया—संबुज्जमानः पुनरपि आसिंसु भगवान् उत्थाय ।

निष्कम्पैकदा रात्रौ बह्विब्रह्मम्य मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

टीका—पुनरपि मगवान् श्रीवर्धमानस्वामी संबुज्जमानः=निद्रादोषं सम्पद् जानन् 'निद्रा कर्मबन्धस्य कारणमस्ती'—स्यनगच्छन् निद्रासमागमनकाले संयमोत्थानेन उत्थाय एकदा=एकदाचित् शीतकाले रात्रौ बह्विनिष्कम्प=बहिनि

मगवान् श्री महावीर प्रभुने अधिक निद्राका सेवन नहीं किया, अर्थात् वे निद्राके अधीन नहीं हुए । जिस समय निद्रा जानेका समय होता था उस समय वे सावधान होकर अपनी आत्माको तप और संयमकी आराधना करनेमें लगा देते थे । वे स्वाप-सोनेकी प्रतिज्ञासे रहित थे । छत्रस्थावस्याकी अन्तिम रात्रिमें अन्तर्मुहूर्तकालमात्र ही स्वप्नदर्शी बने ॥ ६ ॥

और श्री—'संबुज्जमाणे' इत्यादि ।

श्री वीरप्रभु निद्राके अधीन नहीं हुए, क्यों कि यह वे जानते थे कि निद्रा कर्मबन्धका कारण है । यदि कभी निद्रा जाने ल्याती तो शीत

मगवान् श्री महावीर स्वामीने कही अधिक निद्रासे सेवन कर्तुं नहीं, अर्थात् तेजो निद्राने अधीन नान्या नहीं, जे समये निद्रा आवबानेो समय होय ते समये सावधान अनी पित्तान्ना आत्माने तप अने सबभनी आराधनाभा लागी देता कता तेजो स्वाप-सुधानी प्रतिज्ञाधी रहित कता, छत्रस्थावस्यानी अर्थात् रात्रे अन्तर्मुहूर्तकालमात्रमा स्वप्नदर्शी अन्था (५)

श्री—'संबुज्जमाणे' इत्यादि ।

निद्राने श्री महावीर प्रभु कर्म अथवा कारण मानने तेना त्याज करता कता कबारे निद्रा आवती तो शीतकालनी रात्रिमा अथवा अन्तर अर्ध मुहूर्त मात्र स्वप्नदर्शनी तत्पर अनी निद्राना विज्ञेया अन्था (६)

र्गत्य मुहूर्तकं=मुहूर्तमात्रं चङ्क्रम्य=ध्याने विहृत्य धर्मध्यानावस्थितो भूत्वेत्यर्थः  
आसिष्ट=उपाविशत्-निद्रां परिवर्जयामासेति भावः ॥ ६ ॥

किञ्च--'सयणेहिं' इत्यादि।

मूलम्-सयणेहिं तस्सुवसग्गा, भीमा आसी अणेगरूवा य ।

संसर्पगा य जे पाणा; अदुवा जे पक्खिणो उवचरन्ति॥७॥

छाया--शयनेषु तस्योपसर्गा भीमा आसन् अनेकरूपाश्च ।

संसर्पकाश्च ये प्राणा अथवा पक्षिण उपचरन्ति ॥ ७ ॥

टीका--शयनेषु=शय्यते=स्थीयते विविधासनादिभिर्व्यत्र तानि शयनानि  
आश्रयस्थानानि, तेषु तस्य भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनः भीमाः=घोराः अनेकरूपा  
उपसर्गा आसन्=उपस्थिता बभूवुः। तथा-ये संसर्पकाः=सरीसृपाः शून्यगृहादौ  
सर्पनकुलादयः, प्राणाः=प्राणिनः, अथवा-ये पक्षिणः=श्मशानादौ गृध्रादयस्तेऽपि  
उपचरन्ति=नानाविधमुपसर्गं कुर्वन्ति स्म, तद्वात्रचर्ममांसादिकं कृन्तन्ति स्मेत्यर्थः॥७॥

किञ्च--'अदु कुचरा' इत्यादि ।

कालकी रातमें मकानसे बाहर जाकर मुहूर्तमात्र धर्मध्यानमें तल्लीन  
होकर वे उस निद्रा पर विजय प्राप्त कर लेते ॥६॥

और भी--'सयणेहिं' इत्यादि ।

शयनोंमें-आश्रयभूत स्थानोंमें उन वीर प्रभुके ऊपर घोर उपसर्ग  
उपस्थित होते थे। कभी २ शून्य घरमें रहने पर सरीसृप-सर्प नकुल  
आदि प्राणी, अथवा श्मशानमें बसने पर गृध्र आदि पक्षी अनेक प्रका-  
रसे उनके ऊपर उपसर्ग करते, परन्तु वे धीर वीर सबकुछ सहन करते  
थे, यहां तक कि जब गृध्र आदि पक्षी उनके शरीरके मांसको भी नोचते  
तो भी वे समभावसे सहन करते परंतु उनका निवारण नहीं करते ॥७॥

और भी--'अदु कुचरा' इत्यादि ।

इरी--'सयणेहिं' इत्यादि

शयनमा-आश्रयवाणा स्थानोमा श्री महावीर प्रभु उपर घोर उपसर्ग  
उपस्थित यता हुता इत्यारेड उन्नउ धरोमा रडेवाथी सर्प वगेरे प्राणी तेमन  
श्मशानमा रडेवाथी गीध वगेरे पक्षीथी अनेक प्रकारना हु पो सडेवा पडता हुता  
धीर वीर ओवा प्रभु आ अघा हु पोने सहन करताते त्या सुधी के न्यारे गीध  
वगेरे पक्षीथो तेमना शरीरना मांसने आयेथी आवता तो पणु समभावथी अणु  
सहन करता, परतु तेनु निवारणु करता नडी (७)

इरी--'अदु कुचरा' इत्यादि

टीका—मगवान्=महावीर श्रीवर्षमानस्वामी प्रकामतया निद्रामपि नो सेवते, निद्राऽधीना न प्रभूवेत्यर्थः । चकारस्त्वर्थे, किन्तु उत्थाय=निद्रासमागमनकाष्ठे सावधानीभूय आत्मानं जागरयति=तपःसंयमाराधने प्रवर्तयति । अतिशयः=स्वाप-प्रतिष्कारहितः ईच्छायी=उग्रस्यावस्थाया अन्तिमरात्रान्तर्मुहूर्तमात्रकालस्वप्नदर्शी आसीत्=अभूत् ॥५॥

किञ्च—'संयुञ्जमानो' इत्यादि ।

मूत्रम्—संयुञ्जमानो पुणरपि, आसिंसु भगव उद्गाय ।

निक्खम्म एगया राओ, वहि चंकमिया मुहुत्ताग ॥६॥

छाया—संयुज्यमानः पुनरपि आसिष्ट मगवान् उत्थाय ।

निक्कम्मैकया राओ वहिमक्कम्म्य मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

टीका—पुनरपि मगवान् श्रीवर्षमानस्वामी संयुज्यमानः=निद्रादीपं सम्पन्न जानन् 'निद्रा कर्मबन्धस्य कारणमस्ती'—स्यक्कञ्जन् निद्रासमागमनकाले सममात्मानेन उत्थाय एकदा=कदाचित् शीतकाष्ठे राओ वहिनिक्कम्म्य=वहिति-

भगवान् श्री महावीर प्रभुने अधिक निद्राका सेवन नहीं किया, अर्थात् वे निद्राके अधीन नहीं हुए । जिस समय निद्रा आनेका समय होता था उस समय वे सावधान होकर अपनी आत्माको तप और संयमकी आराधना करनेमें लगा देते थे । ये स्वाप-सोनेकी प्रतिज्ञासे रहित थे । उग्रस्यावस्थाकी अन्तिम रात्रिमें अन्तर्मुहूर्तकालमात्र ही स्वप्नदर्शी बने ॥ ५ ॥

और भी—'संयुञ्जमानो' इत्यादि ।

श्री वीरप्रभु निद्राके अधीन नहीं हुए, क्यों कि यह वे जानते थे कि निद्रा कर्मपक्षका कारण है । यदि कभी निद्रा आने लगती तो शीत

मगवान् श्री महावीर स्वामीके कही अतिशय निद्रासे सेवन कर्तुं नहीं, अर्थात् तेजो निद्राने अधीन न-या नहीं वे समये निद्रा आवधाने समये होय के समये सावधान जनी पीतान् आत्माने तप जने सबमनी आराधनामा लगी रहता हवा तेजो स्वाप-सुखानी प्रतिज्ञाशी रहित हवा, उग्रस्यावस्थानी उत्थी शने अन्तर्मुहूर्तकालमात्रमा स्वप्नदर्शी न-या. (५)

हरी—'संयुज्यमानो' इत्यादि

निद्राने श्री महावीर प्रभु कम जधनु कारण मानीने तेना त्याग कस्ता हवा कथारे निद्रा आवती तो शीतकाष्ठनी रात्रिमें महान मदारे अर्ध मुहूर्त मात्र धर्मध्यानमां तपस जनी निद्राना बिलेवा जनवा (६)

गर्तय मुहूर्तकं=मुहूर्तमात्रं चङ्क्रम्य=ध्याने विहृत्य धर्मध्यानावस्थितो भूत्वेत्यर्थः  
आसिष्ट=उपाविशत्-निद्रां परिवर्जयामासेति भावः । ६ ॥

किञ्च--'सयणेहि' इत्यादि ।

मूलम्--सयणेहिं तस्सुवसग्गा, भीमा आसी अणेगरूवा य ।

संसप्पगा य जे पाणा; अदुवा जे पक्खिणो उवचरंति ॥७॥

छाया--शयनेषु तस्योपसर्गा भीमा आसन् अनेकरूपाश्च ।

संसर्पकाश्च ये प्राणा अथवा पक्षिण उपचरन्ति ॥ ७ ॥

टीका--शयनेषु=शय्यते=स्थीयते विविधासनादिभिर्यत्र तानि शयनानि  
आश्रयस्थानानि, तेषु तस्य भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनः भीमाः=घोराः अनेकरूपा  
उपसर्गा आसन्=उपस्थिता बभूवुः । तथा--ये संसर्पकाः=सरीसृपाः शून्यगृहादौ  
सर्पनकुलादयः, प्राणाः=प्राणिनः, अथवा--ये पक्षिणः=श्मशानादौ गृध्रादयस्तेऽपि  
उपचरन्ति=नानाविधमुपसर्गं कुर्वन्ति स्म, तद्वात्रचर्ममांसादिकं कृन्तन्ति स्मेत्यर्थः ॥७॥

किञ्च--'अदु कुचरा' इत्यादि ।

कालकी रातमें मकानसे बाहर जाकर मुहूर्तमात्र धर्मध्यानमें तल्लीन  
होकर वे उस निद्रा पर विजय प्राप्त कर लेते ॥६॥

और भी--'सयणेहि' इत्यादि ।

शयनोंमें--आश्रयभूत स्थानोंमें उन वीर प्रभुके ऊपर घोर उपसर्ग  
उपस्थित होते थे । कभी २ शून्य घरमें रहने पर सरीसृप-सर्प नकुल  
आदि प्राणी, अथवा श्मशानमें बसने पर गृध्र आदि पक्षी अनेक प्रका-  
रसे उनके ऊपर उपसर्ग करते, परन्तु वे धीर वीर सबकुछ सहन करते  
थे, यहां तक कि जब गृध्र आदि पक्षी उनके शरीरके मांसको भी नोचते  
तो भी वे समभावसे सहन करते परंतु उनका निवारण नहीं करते ॥७॥

और भी--'अदु कुचरा' इत्यादि ।

इरी--'सयणेहि' इत्यादि

शयनमा-आश्रयवाणा स्थानोमा श्री महावीर प्रभु उपर घोर उपसर्ग  
उपस्थित थता हुता इयारेक उन्नउ घशेमा रडेवाथी सर्प वगेरे प्राण्णी तेमन्  
श्मशानमा रडेवाथी गीध वगेरे पक्षीथी अनेक प्रकारना हु जे सडेवा पउता हुता  
धीर वीर जेवा प्रभु आ षधां हु जेने सडन करता ते त्या सुधी हे न्त्यारे गीध  
वगेरे पक्षीथे तेमना शरीरना मांसने यायेथी यावता तो पष्णु समलावथी षधु  
सडन करता, परतु तेनु निवारणु करता नडी (७)

इरी--'अदु कुचरा' इत्यादि

मूम्-अबु कुचरा उवचरति, गामरक्खा य सत्तिहत्था य ।

अबु गामिया उवसग्गा, इत्थी एगइया पुरिसा य ॥८॥

छाया—अय कुचरा उपचरन्ति ग्रामरक्षाश्च शक्तिहस्ताश्च ।

अय ग्राम्या उपसर्गा स्त्रिय एकिकाः पुरुषा वा ॥ ८ ॥

टीका—कुचरा=कुन्तिताचरणशीलाः चौरव्यभिचारिमिश्रतयाः उपचरन्ति=मगवन्त उपसर्गं कुर्वन्ति स्म । स्वस्वकार्येऽन्तरायं मत्वा मगवन्तं कक्षादिभिस्ताहयन्ति स्मेत्यर्थः । तथा—शक्तिहस्ताः=शस्त्रविशेषधारिण ग्रामरक्षाः=माहरिकादय उपचरन्ति=चौरलुप्टकसङ्घ्या मगवन्त प्रहरन्ति स्म । अथवा ग्राम्याः=ग्रामभर्मावस्थिताः कामवशगा इत्यर्थः, अत एवोपसर्गोः=उपसर्गकारित्वादुपसर्गरूपा स्त्रियः एकिका=एकाकिन्यः समागत्य उपचरन्ति=मगवन्त विषयापमुपसर्गयन्ति स्म । वा=अथवा—पुरुषा अपि तम् उपचरन्ति=इममन

चौर, व्यभिचारी आदि जन भी उनको उपसर्ग देते थे । इसका कारण यह था कि वे भगवानको अपने २ कार्योमें विघ्नरूप मानते थे, अतः वे भगवानको चायुकसे मारते थे । गांवकी रक्षा करनेवाले कोट घाल आदिजन भी कि जिनके हाथमें शक्ति नामका शस्त्र रहता था, भगवानको घोर, छटेरा समझकर उनपर प्रहार करते । कभी२ कामार्थीन मदोन्मत्त स्त्रिया भी भगवानके पास अकेली आकर उनसे वैषयिक लालसा प्रकट करती, इस तरह वे भी भगवानके ऊपर अनेक प्रकारसे उपद्रव्य घरसाती । कोई पुरुषयर्ग भी यह समझकर कि 'यह अतिशयरूप सपन्न है—अनन्तरूप और लावण्यका भंडार है, इसे देखकर हमारी

घोर, व्यभिचारी विजेर भावसे तरक्षी आरे शीतनो त्रास आप्त्वाभां आपते, नेनुं शरवु जे दुतुं के जे दोके भगवानने घेतपोवन्तु कार्योभां दिग्दृश गज्जता आथी तेजो भजवानने आजभाधी भाशता हत्ता गामनी रक्षा करवा वाण पटेव पसायता वजेर दोके पखु के नेन्नु दायभां शक्ति नामनु शस्त्र रडेतुं दुतुं भगवानने द्वाश शीर वजेर भानता जने आ शरते अपनवीन त्रास आपता केरुं केरुं वमत कामधी भरो भत जनेवी जेवी श्रीजो पखु भगवान पासे जेकथी आवती जने तेमनी पासेधी विषयसोमनी लालसा ज्जावती आ शरते आथी श्रीजो पखु भगवाननी उपर अनेक प्रका रना उपद्रव परभावती केरुं पुरुषवग पखु भगवाननु अतिशय तावण्यभय शरीर नेध जेवी शका धरावता के जभारी श्रीजो ज्जभनु तावण्य

निरूपलावण्यशालिनं विलोक्य मदीयदयिता मत्तो विरता भविष्यती'-  
ति मत्वोपसर्गं चकारेत्यर्थः ॥ ८ ॥

किञ्च--'इहलोइयाइं' इत्यादि ।

मूलम्--इहलोइयाइं परलोइयाइं, भीमाइं अणेगरूवाइं ।

अवि सुविभ-दुविभगंधाइं, सदाइं अणेगरूवाइं ॥ ९ ॥

छाया--ऐहलौकिकान् पारलौकिकान् भीमान् अनेकरूपान् ।

अपि सुरभिदुरभिगन्धान् शब्दान् अनेकरूपान् ॥ ९ ॥

टीका--भगवान् ऐहलौकिकान्=मनुष्यकृतान्, पारलौकिकान्=देवतिर्यक्-  
कृतांश्च भीमान्=भयङ्करान् अनेकरूपान्=अनुकूलप्रतिकूलान् उपसर्गान् सहते स्म ।  
तथा-सुरभिदुरभिगन्धान्=सुरभिगन्धान्=स्रक्चन्दनजनितान्, दुरभिगन्धान्=  
पूतिगन्धान् मृतसर्पशृगालकलेवरसमृत्त्यान्, तथा अनेकरूपान्=मनोज्ञामनोज्ञान्  
शब्दांश्च सहते स्म ॥ ९ ॥

ललनाएँ हमसे विरक्त हो जायगीं' इस दुरभिप्रायसे उन पर उप-  
सर्ग करते ॥ ८ ॥

और भी--'इहलोइयाइं' इत्यादि ।

वे भगवान् परीषह और उपसर्गोंकी कुछ भी परवाह न कर मनु-  
ष्यकृत अनेक भयंकर उपद्रवोंको, देवकृत एवं तिर्यञ्चकृत अनेक कठोर  
उपसर्गोंको, चाहे वे अनुकूल हों चाहे प्रतिकूल हों, सहते थे। पुष्पोकी  
माला, और मलयागिरचंदनसे उत्पन्न सुगन्धिमें और सड़े हुए सर्प,  
शृगाल आदिके कलेवरकी दुर्गन्धिमें, तथा मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रि-  
योंके शब्दादिक विषयोंमें उन्हें न राग था और न द्वेष था, वे सब  
अवस्थामें समभावी थे ॥ ९ ॥

मय शरीर जेष्ठ अमाराथी विरक्त अनी जशे' आवो अराण विचार मनमा  
लावी अेमना उपर त्रास परतावता. (८)

इरी--'इहलोइयाइ' इत्यादि.

भगवान् आवा दुःखो अने उपसर्गोनी वेश मात्र परवा न करता मनुष्यो  
द्वारा करता अनेक लयकर उपद्रवो, देव अने तिर्ययोथी करता अनेक कठोर  
उपसर्गो, याहे ते अनुकूल होय के प्रतिकूल, तेने सहन करता पुष्पोनी माणा,  
मलीयागिरी चन्दनी उत्पन्न सुगन्धमा, तथासडेला सर्प, तेमज अन्य भरेला  
पशुयोना सडेला शरीरोनी दुर्गन्धमा, तथा मनोज्ञ अने अमनोज्ञ इन्द्रियोना  
शब्दादिक विषयोमा अेमने न तो राग हतो न द्वेष, तेओ इरेक अवस्थामां  
समभावी हुना (९)



अन्यत्र—'अहियासए' इत्यादि ।

मूळम्—अहियासए सवासमिप, फासाइ विरूवरूवाई ।

अरइ रइ अभिमूय, रीयइ माहणे अघहुवाई ॥१०॥

छाया—अध्यास्ते सदासमिपः स्पर्शान् विरूपरूपान् ।

अरतिं रतिम् अभिमूय रीयत माहनः अबहुवादी ॥१०॥

टीका—सदासमिपः=पञ्चसमितिःसमन्वितः विरूपरूपान्=अनेकप्रकारकात्  
स्पर्शान्=दुःखविशेषान् अध्यास्ते=अपिसहते स्म । अबहुवादी=अल्पमापी माहनः  
मगवान् अरतिं सयमे, सदा रति विषयानन्दे अभिमूय=विरक्त्य निवार्यैत्यर्थः,  
रीयते=तपःसयमसमाराधने प्रवर्तते स्म ॥१०॥

किञ्च—'स जणेहिं' इत्यादि ।

मूळम्—स जणेहिं तस्य पुच्छिञ्जु एगचरा कि एगया रामो ।

अवधाहिय कसाइत्या, पेहमाणे समाहि अपडिसे ॥११॥

छाया—स जने तप अप्रच्छि एगचरा अपि एगया रामो ।

अध्याहृषे कपामिताः प्रेक्षमायः समाधिम् अप्रतिज्ञ ॥ ११ ॥

और भी—'अहियासए' इत्यादि ।

उन प्रसूने निरन्तर पांच समितियोंके पाठनमें सावधान रह कर ही  
अनेक प्रकारके दुखोंको सहन किया । वे सदा ही हित मिल प्रिय वचन  
बोलते । अल्पमायण करते—बहुत बोका बोलते । संयमसे अरतिभावको  
और विषयोंसे रतिभावको इटानेमें ये सदा जागरूक रहते और तप  
संयमकी ही आराधनामें सदा तत्पर रहते ॥१०॥

और भी—'स जणेहिं' इत्यादि ।

इरी—अहियासए' इत्यादि ।

अथ निरन्तर पांच समितियोंका पाठनमें सावधान रहेता अने अनेक  
प्रकारका दुःखाने सहन करता तेको सदा हित मिल अने प्रिय वचन व बोधता,  
अल्पमायण व बोका बोधता संयमसे अरतिभावने अने विषयोंसे रतिभावने कर  
करनामें जागृत रहेता तप अने संयमकी आराधनामें सदा तत्पर रहेता (१०)

इरी—स जणेहिं' इत्यादि

टीका-शून्यगृहे निर्जने वा स भगवान् जनैः अप्रच्छि=पृष्टः, यथा-‘को भगवान्? किमत्र स्थितः? कुतः समायातः?, इत्येवं पृष्ठोऽपि तृष्णीमेवासीत्। तथा-एकचराः=एकाकिनः जारपुर्यादयः एकदा=कदाचित्, रात्रौ दिवसे वा भगवन्तं पपच्छुः, तदा भगवता-अव्याहृते सति कपायिताः=क्रोधादियुक्ताः सन्तः भगवन्तं दण्डमुष्ट्यादिभिस्ताडयन्ति स्म। भगवास्तु अप्रतिज्ञः=वैरनिर्यातनप्रतिज्ञारहितः समाधिं प्रेक्षमाणः=धर्मध्यानं समात्म्ययन् सहते स्म ॥११॥

किञ्च—‘अयमंतरंसि’ इत्यादि।

भगवान् जित्त समय विहारमें रहते हुए शून्यगृह आदिमें ठहरते तो उस समय अनुष्य अनेक प्रकारके उनसे प्रश्न करते—कोई पूछता—तुम कौन हो? क्यों ठहरे हो। कोई २ पूछता—अरे तुम कहाँसे आये हुए हो, इत्यादि। इस प्रकार पूछे जाने पर भी वे प्रभु किसीको कुछ भी उत्तर नहीं देते और मौन रहते। इसी प्रकार कभी २ व्यभिचारी पुरुष अकेले आकर जब भगवानसे कुछ पूछते तो भगवान् उस समय भी मौन रहते—उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं देते। इस प्रकार उनके चित्तमें भगवानके प्रति कपायपरिणति जागृत हो जाती और इससे क्रोधाविष्ट हो वे भगवानको दण्ड और मुक्के आदिसे खूब पीटते—मारते, परन्तु फिर भी भगवानके चित्तमें वैरका बदला लेनेका भाव उनके प्रति जागृत नहीं होता था, प्रत्युत समाधिपूर्वक वे धर्मध्यानमें ही तल्लीन होकर उन सब उपसर्गों को सहते ॥११॥

और भी—‘अयमंतरंसि’ इत्यादि।

भगवान् ने समय विहारमा रहेता अने उन्नुड धर वगेरे स्थणे रोकाता तो ये समये भाणुसो आवी अनेक प्रकारना प्रश्नो करता डोछ पुछतु तमे डोछु छे ? अहिं डेभ रोकाया छे ? डोछ डोछ पुछतु डे तमे कयाथी आव्या छे ? वगेरे आ रीते पुछनाराओमाना डोछने पणु प्रभु डोछ पणु उत्तर आपता नथी परतु मौन रहेता आन् रीते डोछ डोछ व्यभिचारी पुत्रुष अेकडेवा आवी भगवानने डोछ पुछे तो पणु भगवान मौन न रहेता, अने पणु डोछ नवाण आपता नडी आथी अे डोडोना द्विदमा भगवान् प्रत्ये कपायपरिणुति नगी नती अने क्रोधयुक्त भनी आवा भाणुसो भगवानने दाकडीथी डे हाथथी पुण भार मारता, छता पणु भगवानना द्विदमा तेमना प्रत्ये भद्वेवा देवानी वृत्ति नगती नडी गमे तेवा समये पणु तेओ समाधिपूर्वक धर्मध्यानमा न तल्लीन रही आ थथा उपसर्गोने सडन करता (११)

इरी—‘अयमंतरंसि’ इत्यादि.

अन्यथ—'अहियासए' इत्यादि ।

मूळम्—अहियासए सयासमिय, फासाइ विरुवरुवाइं ।

अरइ रइ अभिमूय, रीयइ माहणे अथहुवाइं ॥१०॥

छाया—अध्यास्तं सदासमितं स्पष्टान् विरुवरुवान् ।

अरतिं रतिम् अभिमूय रीयते माइन अथहुवादी ॥१०॥

टीका—सदासमितं=पञ्चसमितिसमन्वितः विरुवरुवान्=अनेकप्रकारकान्  
स्पष्टान्=दुःखविशेषान् अध्यास्ते=अभिसहते स्म । अथहुवादी=अल्पमापी माइन=  
मगधान् अरतिं संयमे, तथा रतिं विषयानन्दे अभिमूय=तिरस्कृत्य निवारित्वैर्,  
रीयते=तपःस्यमसमाराधने प्रवर्तते स्म ॥१०॥

किञ्च—'स जणेहिं' इत्यादि ।

मूळम्—स जणेहिं तत्थ पुच्छिसु एगधरा वि एगया राजो ।

अव्वाहिय कसाइत्या, पेहमाणे समाहि अपडिणे ॥११॥

छाया—स जनै तत्र अप्रच्छि एकधरा अपि एकदा राजी ।

अध्याहृते कपायिताः प्रेषमाणः समाधिम् अप्रतिगः ॥ ११ ॥

और भी—'अहियासए' इत्यादि ।

उन प्रभुने निरन्तर पांच समितियोंके पालनमें सावधान रह कर ही  
अनेक प्रकारके दुखोंको सहन किया। वे सदा ही हित मित मिय वचन  
बोलते। अल्पभाषण करते-बहुत थोड़ा बोलते। संयमसे अरतिभावको  
और विषयोंसे रतिभावको हटानेमें वे सदा जागरूक रहते और तप  
संयमकी ही आराधनामें सदा तत्पर रहते ॥१०॥

और भी—'स जणेहिं' इत्यादि ।

इरी—'अहियासए' इत्यादि ।

प्रभु निरन्तर पांच समितियोंका पालनमें सावधान रहेता अने अनेक  
प्रकारका दुखोंने सहन करेता तेषो सदा हित मित अने मिय वचन व बोलता,  
जेटे जेहु व थोड़ा बोलता, संयमशी अरतिभावने अने विषयशी रतिभावने इरे  
करेता अशुत रहेता तप अने संयमनी अराधनामें सदा तत्पर रहेता (१०)

इरी—'स जणेहिं' इत्यादि ।

टीका-शून्यगृहे निर्जने वा स भगवान् जनैः अप्रच्छि=पृष्टः, यथा-‘को भगवान्? किमत्र स्थितः? कुतः समायातः?, इत्येवं पृष्टोऽपि तूष्णीमेवासीत्। तथा-एकचराः=एकाकिनः जारपुरुषादयः एकदा=कदाचित्, रात्रौ दिवसे वा भगवन्तं पपच्छुः, तदा भगवता-अव्याहृते सति कपायिताः=क्रोधादियुक्ताः सन्तः भगवन्तं दण्डमुष्ट्यादिभिस्ताडयन्ति स्म। भगवांस्तु अप्रतिज्ञः=वैरनिर्यातनप्रतिज्ञारहितः समाधिं प्रेक्षमाणः=धर्मध्यानं समालम्बयन् सहते स्म ॥११॥

किञ्च—‘अयमंतरंसि’ इत्यादि।

भगवान् जिस समय विहारमें रहते हुए शून्यगृह आदिमें ठहरते तो उस समय मनुष्य अनेक प्रकारके उनसे प्रश्न करते—कोई पूछता—तुम कौन हो? क्यों ठहरे हो। कोई २ पूछता—अरे तुम कहाँसे आये हुए हो, इत्यादि। इस प्रकार पूछे जाने पर भी वे प्रभु किसीको कुछ भी उत्तर नहीं देते और मौन रहते। इसी प्रकार कभी २ व्यभिचारी पुरुष अकेले आकर जब भगवान्से कुछ पूछते तो भगवान् उस समय भी मौन रहते—उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं देते। इस प्रकार उनके चित्तमें भगवान्के प्रति कषायपरिणति जागृत हो जाती और इससे क्रोधाविष्ट हो वे भगवान्को दण्ड और मुक्के आदिसे खूब पीटते—मारते, परन्तु फिर भी भगवान्के चित्तमें वैरका बदला लेनेका भाव उनके प्रति जागृत नहीं होता था, प्रत्युत समाधिपूर्वक वे धर्मध्यानमें ही तल्लीन होकर उन सब उपसर्गों को सहते ॥११॥

और भी—‘अयमंतरंसि’ इत्यादि।

भगवान् ने समय विहारमा रहेता अने उन्नत घर वगेरे स्थले शैकाता तो अे समये भाषुसे आवी अनेक प्रकारना प्रश्नो करता कोध पुछतु तमे कोषु छे ? अर्द्धि केम शैकाया छे ? कोध कोध पुछतु के तमे क्याथी आव्या छे ? वगेरे आ रीते पुछताराओमाना कोधने पषु प्रभु कोध पषु उत्तर आपता नथी परतु मौन रहेता आन रीते कोध कोध व्यभिचारी पुत्रुष अेकदो आवी भगवान्ने कोध पुछे तो पषु भगवान् मौन न रहेता, अने पषु कोध नवाभ आपता नही आथी अे दोकोना द्विदमा भगवान् प्रत्ये कषायपरिणुति नगी नती अने कोधयुक्त ननी आवा भाषुसे भगवान्ने लाकडीथी के हाथथी थुभ मार मारता, छता पषु भगवान्ना द्विदमा तेमना प्रत्ये पहदो देवानी वृत्ति नगी नही गमे तेवा समये पषु तेओ समाधिपूर्वक धर्मध्यानमा न तल्लीन रही आ नधा उपसर्गोने सहन करता. (११)

इरी—‘अयमंतरंसि’ इत्यादि.

मूष्म—अयमतरसि को इत्थ ? अहमसिचि भिक्खु आहहु ।

अयमुत्तमे से धम्ममे, तुसिणीए कसाइए झाइ ॥१२॥

छाया—अपमन्तः कोऽत्र ? अहमस्मीति भिक्षुः आहत्य ।

अयमुत्तमः स धर्मस्तूष्णीकः कपायितान् ध्यायति ॥१२॥

टीका—अन्तः=मध्ये, मय कोऽस्ति, इत्येव दु शीलैः कर्मकरादिभिर्वा पृष्टं भगवान् कश्चिद् सङ्गादिदोषवारणार्थमाह स्म—‘अहं भिक्षुरस्मि’ इति। एनमुक्ते सति स्वार्थव्याघातेन कपायितास्वे भगवन्तमब्रुवन्—‘आहहु’=अयं देशीयशब्दः शीघ्रार्थक, शीघ्रमितः स्थानाभिर्गच्छ, ततः स भगवान् अयं=निषेधितस्थानाभिस्सङ्गणरूपो धर्म=आधारः उत्तमः=श्रेष्ठः, इति कृत्वा ततो निर्गमाम्। यदि ते निर्गन्तुं नाशुवन् तदा कपायितान् प्रति तूष्णीकः सन् ध्यायति=स्थानस्य पवासीत्=धर्मध्यानात् प्रच्युतो न बभूवेत्यर्थः ॥१२॥

“इस ज्ञाने घरके भीतर कौन ठहरा हुआ है” इस प्रकार जय प्रभुसे कोई कुछशील कर्मकरादि जन पूछता, तब भगवान उसकी शका की निवृत्तिके लिये यही प्रत्युत्तर देते कि—मैं भिक्षु हूँ। इस प्रकार प्रभुके कहने पर जय उसका किसी प्रकारका स्वार्थ उनके यहां रहनेसे घालित होता तो वह भगवान पर क्रुद्ध होकर उनसे कहता कि—सुन यहांसे निकल कर शिवा ही किसी दूसरे स्थानपर चले जाओ। भगवान भी इसकी इस प्रकारकी पातसे भी मध्यस्थभावयुक्त होकर यह समझकर कि ‘निषेध किये गये स्थानपर साधुको नहीं ठहरना चाहिये, यही साधुका उसम आधार है’ यहांसे निकल जाते। यदि वे यहांसे निकलनेको नहीं कहते तो भी प्रभु अपने ऊपर कपाययुक्त उन प्रनुष्योके प्रति समभाषी होकर धर्म ध्यानमें ही मग्न रहते—धर्मध्यानसे कमी पे प्रच्युत नहीं होते ॥१२॥

भा उच्यते धरमां केषु उदरेषु च ॥ अे प्रकारधी न्यारे प्रभुने केषु पुष्टतु त्तारे भगवान् जेनी शकानु समाधान करवा जेटवो ए प्रत्युत्तर आपदा के—हुँ भिक्षु हूँ ॥ अ न्याय पडी पुष्करने आमा केषु प्रकारने स्वाध न देजाते तो ते भगवान् साभे कोषित अनि इहेतो के तरे अदिधी नीकणी केषु जीव स्थान उपर तत्कालिक आस्था अप भगवान् पण् आ प्रकारनी जेनी वातधी मध्यस्थ भावयुक्त यध जेवुं समलने जे स्थानने त्याग करवा के ‘अथं विनाश करवाभां आवे जे स्थानमा साधुजे न शकतु जेजे जे ए सधुने उत्तम आधार छे त्याधी नीकणी जत्त जे ते त्याधी निकगचनु नदि इउवा ता पण् प्रभु पाताना उपर कथययुक्त वना ते भाषुसे। प्रये समभाषी जनी धम ध्यानमा मन्न स्तेवा धर्मध्यानधी करी पण् तेजे प्रभुत न वत्त (११)

किञ्च—‘ जंसिप्पेगे ’ इत्यादि ।

मूलम्—जंसिप्पेगे पवेयंति, सिसिरे मारुए पवायंते ।

तंसिप्पेगे अणगारा, हिमवाए निवायमेसंति ॥१३॥

छाया—यस्मिन्नप्येके प्रवेपन्ते शिशिरे मारुते प्रवाति (सति) ।

तस्मिन्नप्येकेऽनगारा,—हिमवाते निवातमेपयन्ति ॥१३॥

टीका—यस्मिन् शिशिरे=शिशिरऋतौ, मारुते=शीतपवने प्रवाति=प्रकर्षेण वहति सति, एके=केचन अन्ये जनाः प्रवेपन्ते=प्रकर्षेण दन्तवीणावादनपुरस्सरं कम्पन्ते । यद्वा—‘ प्रवेदयन्ति ’ इति छाया, शीतसमुत्थं स्पर्शदुःखमनुभवन्ति । तस्मिन्नपि काले एके=केचन अन्येऽनगाराः हिमवाते=शीतलसमीरे वहति सति निवातं=निवातस्थानम्, एपयन्ति=गवेपयन्ति ॥ १३ ॥

किञ्च—‘ संघाडीओ ’ इत्यादि ।

मूलम्—संघाडीओ पवेसिस्सामो, एहा य समादहमाणा ।

पिहिया व सक्खामो, अइदुक्खे हिमगसंफासा ॥१४॥

छाया—संघाटीः प्रवेक्ष्यामः, एधांसि च समादहन्तः ।

पिहिता वा शक्ष्यामः, अतिदुःखान् हिमकसंस्पर्शान् ॥१४॥

और भी—‘ जंसिप्पेगे ’ इत्यादि ।

शीतऋतुमें कि जिसमें शीतल पवनके चलने पर कई मनुष्योंके शरीरमें रोंगटे खड़े हो जाते हैं, दांतोंसे दांत बजने लगते हैं, शरीरमें खूब कपकपी छूटने लगती है, इस प्रकार बड़ी मुश्किलसे शीतका दुःख सहन होता है । कई एक अनगार तो इस शीतकालमें ऐसे स्थानकी खोजमें रहते हैं कि जहां शीतल वायुका संचार तक भी न हो और ठंडी हवासे त्राण-रक्षण-होता रहे ॥ १३ ॥

इरी—‘ जंसिप्पेगे ’ इत्यादि

शरहीनी इतुमा ठडा पवनना आलवाथी भाषुसेना शरीरमा येनो प्रवेश थता इवाडा उला थथ नय छे, दात सामे दांत अथडाय छे, शरीरमां कपारी छुटे छे आ रीते पुण्ण अशकेदीथी ठडीनु डःअ भाषुसे सडुन करे छे, केध अनगार तो आ ठडीथी अथवा येवा स्थाननी तपासमा रडे छे डे ठडा वायुने सअर पणु न थथ शके अने ठडीथी येनो अथाव थथ शके. (१३)

मूळम्—अयमतरसि को इत्थ ? अहमसिचि भिक्षु आहद्दु ।

अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए कसाइए झाइ ॥१२॥

छाया—अयमन्तः कोअ ? अहमस्मीचि भिक्षुः आहस्य ।

अयमुत्तमः स धर्मस्तूष्णीकः कपायितान् ध्यायति ॥१२॥

टीका—अन्तः=मध्य, अयं कोऽस्ति, इत्येव दुःशीलैः कर्मकरादिभिर्वा पृष्टः भगवान् कश्चिद् शब्दादिदोषवारणार्थमाह स्म—‘अहं भिक्षुरस्मि’ इति। एक-  
मुक्ते सति स्वार्थन्यायातेन कपायितास्त्वे भगवन्तमवृषन्—‘आहद्दु’=अये दक्षीय-  
शब्दः शीघ्रार्थकः, शीघ्रमित्वात् स्थानाभिर्गच्छ, ततः स भगवान् अयं=निषेधित-  
स्थानाभिस्मरणरूपो धर्मः=भाषारः उत्तमः=श्रेष्ठः, इति कृत्वा एतो निर्गमम्।  
यदि ते निर्गन्तुं नावृषन् तदा कपायितान् प्रति तूष्णीकं सन् ध्यायति=स्थानस्य  
एवासीत्=धर्मध्यानात् प्रच्युतो न बभूवेत्यर्थः ॥१२॥

“इस श्रुते घरके भीतर कौन ठहरा हुआ है” इस प्रकार जब प्रभुसे कोई दुःशील कर्मकरादि जन पूछता, तब भगवान उसकी शंका की निवृत्तिके लिये यही प्रत्युत्तर देते कि—मैं भिक्षु हूँ। इस प्रकार प्रभुके कहने पर जब उसका किसी प्रकारका स्वार्थ उनके यहाँ रहनेसे घातित होता तो यह भगवान पर मुद्द होकर उनसे कहता कि—सुम यहाँसे निकल कर शिघ्र ही किसी दूसरे स्थानपर चले जाओ। भगवान भी इसकी इस प्रकारकी ध्यानसे भी मध्यस्थभावयुक्त होकर यह समझकर कि ‘निषेध किये गये स्थानपर साधुको नहीं ठहरना चाहिये, यही साधुका उत्तम भाषार है’ यहाँसे निकल जाते। यदि ये यहाँसे निकलनेको नहीं करते तो भी प्रभु अपने ऊपर कपाययुक्त उन मनुष्यके प्रति ममभावी होकर धर्म ध्यानमें ही मग्न रहते—धर्म ध्यानसे कभी ये प्रच्युत नहीं होते ॥१२॥

आ उच्यते परमां कोऽपि उतरेशे उ” के प्रकारकी व्यापक प्रभुने कोऽपि उच्यते त्वारे भगवान् ज्येनी शक्यत्वात् समाधानं करवा ज्येनी / प्रत्युत्तरं व्यपद्यते—हूँ भिक्षु हूँ आ कथाय पत्नी पुञ्जारने आमां कोऽपि प्रकारने स्वार्थं न देयाते तो ते भगवान् आमे कोऽपि ज्येनी उच्यते के तमे ज्येनी नीजगी कोऽपि ज्येनी स्थान उपर तात्कालिक व्याख्या जय भगवान् पत्नी आ प्रकारनी ज्येनी वातापी मध्यस्थ भावयुक्त यथ ज्येनी समझने के स्थानने त्वाम् करवा के क्या विदेश करवामां आवे के स्थानमां आधुके न शक्यते के ज्येनी के कथायुने उत्तम भाषार उ त्वयो नीजगी ज्येनी के ते त्वयो निकलचानु नदि उच्यते नो पत्नी प्रभु ध्यानना उपर कथायुक्त यथा ते भावने प्रत्युत्तरं समझनी ज्येनी धर्म ध्यानमां मग्न रहते धर्मध्यानधी इती पत्नी तेजो च्युत न पत्नी (१९)

किञ्च—‘ जंसिप्पेगे ’ इत्यादि ।

मूलम्—जंसिप्पेगे पवेयंति, सिसिरे मारुए पवायंते ।

तंसिप्पेगे अणगारा, हिमवाए निवायमेसंति ॥१३॥

छाया--यस्मिन्नप्येके प्रवेपन्ते शिशिरे मारुते प्रवाति (सति) ।

तस्मिन्नप्येकेऽनगारा, -हिमवाते निवातमेपयन्ति ॥१३॥

टीका—यस्मिन् शिशिरे=शिशिरऋतौ, मारुते=शीतपवने प्रवाति=प्रकर्षणं वहति सति, एके=केचन अन्ये जनाः प्रवेपन्ते=प्रकर्षणं दन्तवीणावादनपुरस्सरं कम्पन्ते । यद्वा—‘ प्रवेदयन्ति ’ इति छाया, शीतसमुत्थं स्पर्शदुःखमनुभवन्ति । तस्मिन्नपि काले एके=केचन अन्येऽनगाराः हिमवाते=शीतलसमीरे वहति सति निवातं=निर्वातस्थानम्, एपयन्ति=गवेपयन्ति ॥ १३ ॥

किञ्च--‘ संघाडीओ ’ इत्यादि ।

मूलम्—संघाडीओ पवेसिस्सामो, एहा य समादहमाणा ।

पिहिया व लक्खामो, अइदुक्खे हिमगसंफासा ॥१४॥

छाया--संघाटीः प्रवेक्ष्यामः, एधांसि च समादहन्तः ।

पिहिता वा शक्ष्यामः, अतिदुःखान् हिमकसंस्पर्शान् ॥१४॥

और भी—‘ जंसिप्पेगे ’ इत्यादि ।

शीतऋतुमें कि जिसमें शीतल पवनके चलने पर कई मनुष्योंके शरीरमें रोंगटे खड़े हो जाते हैं, दांतोंसे दांत बजने लगते हैं, शरीरमें खूब कपकपी छूटने लगती है, इस प्रकार बड़ी मुश्किलसे शीतका दुःख सहन होता है । कई एक अनगार तो इस शीतकालमें ऐसे स्थानकी खोजमें रहते हैं कि जहां शीतल वायुका संचार तक भी न हो और ठंडी हवासे ब्राण-रक्षण-होता रहे ॥ १३ ॥

इरी--‘ जंसिप्पेगे ’ इत्यादि ।

शरदीनी इतुमा ठंडा पवनना आलवाथी भाणुसोना शरीरमां ओनो प्रवेश यतां इवाडा उला थं नय छे, दात सामे दात अथदाय छे, शरीरमां कपारी छुटे छे आ रीते पुण्ण मुश्केलीथी ठंडीनु दुःख भाणुसो सहन करे छे. कोअ अनगार तो आ ठंडीथी अथवा ओवा स्थाननी तपासमा रहे छे के ठंडा वायुनो सचार पणु न थं शके अने ठंडीथी ओनो अथाव थं शके. (१३)



टीका—सया—केचिद्वेकेऽनगाराः—साधव इच्छन्ति—शीतार्द्रिता वय संपाटी—  
 शीतनिवारणसमाणि प्रावरणानि यथावश्यकमेकं इयं प्रय वा प्रवेक्ष्यामः—स्वप्नीं  
 तत्र निवेद्यपिष्याम इति, तथा कुर्यन्ति च। परतीर्थिकास्तापसाद्यस्तु एवमिच्छन्ति  
 वयम्—एधांसि—काष्ठानि समादहन्त अतिदुःखान् हिमकर्मस्पर्शान्—शीतस्पर्शान्  
 सोढुं शक्यामः—वारयिष्यामः, इति, तथा कुर्यन्ति च। एके केचिद् गृहस्थाः  
 पुनरेवं वाञ्छन्ति—वयं पिहिताः—शीतनिवारणसमयदुःकस्त्वलशालद्विषासका  
 विमिराञ्छादिता सन्तः शीतस्पर्शान् सोढुं शक्याम इति, तथा कुर्यन्ति च ॥१४॥

किञ्च—' तसि ' इत्यादि।

मूलम्—तसि भगव अपदिञ्चे, अहे विगडे अहियासए दविण्।

निकल्लम्म षगया राओ, चाण्ड भगव समियाए ॥१५॥

और भी—' सघाडीओ ' इत्यादि।

कई एक साधुजन अपने पासमें रखी हुई उपधिसे अपने शरीरको  
 ठाँक कर शीतसे अपनी रक्षा करते हैं, कमी ऊनी कपल ओढ लिया  
 करते हैं तो कमी सूती दो बन्नोंसे अपने शीतका निवारण कर लेते  
 हैं। इससे भी यदि ठंडका निवारण नहीं हो तो ऊनी कपलके साथ  
 सूती धार मिलाकर शीतकी धाघासे अपनी रक्षा किया करते हैं।  
 परतीर्थिक तापमजन तो ऐसे समयमें लकड़े जलाकर धूनी लगा लेते  
 हैं और उसके पास बैठकर तापते हुए शीतकी कड़कनी टंडीसे अपनी  
 रक्षा करते रहते हैं। कई घनिक गृहस्थजन इस समय शीतनिवारण  
 योग्य शाल बुशाळे ओढकर शीतसंघी दुःस्वोंसे अपनेको बचाते  
 रहते हैं ॥१४॥

इती—सघाडीओ इत्यादि

कई कई साधुजन ऊनीना जयाव भाटे पोटा धासे शपेक्षा वआदिक्की  
 पीतान्ना शरीरने ढाडी ढीधी रक्षण भेगवे छे कभारेक ऊनी कभल जोडी छे छे  
 तो कभारेक सुवत्तना वे वल्लोकी पीतानी ढीनु निवारण करी ह्ये छे परतु  
 कभारे ढीने उपद्रव वभे छे त्भारेऊनी कभल जने सुवत्तठ वर्यो भेगां करी  
 जोडे छे अने ढीधी पीतान्ना रक्षण करे छे परतीर्थिक तापसज्जन तो क्वा सभवे  
 लाकडा जाणी धुली बभापी जेनी धासे लेधी तापे छे अने जे रीते ढकडनी  
 ढीधी पीतानी रक्षा करे छे धनवाग्य ईर्ध गृहस्थो क्वा सभवे शाल दुशाळा  
 जोडीने ढीधी पीताने जयावे छे. (१४)

छाया—तस्मिन् अप्रतिज्ञः, अधोविकटे अध्यास्ते द्रविकः ।

निष्क्रम्यैकदा रात्रौ शक्नोति, भगवान् शमितया ॥१५॥

टीका—तस्मिन्=तथाभूते शिशिरे काले हिमवाते प्रवहति सति अप्रतिज्ञः=निर्वातस्थानप्रार्थनादिरूपप्रतिज्ञाविवर्जितः, द्रविकः—द्रावणात्=कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रवः=संयमः, सोऽस्यास्तीति द्रविकः=यथाख्यातचारित्रः, भगवान्=श्रीवर्धमानस्वामी अधोविकटे=कुड्यादिरहिते स्थाने स्थित्वा अध्यास्ते=अतिदुःखदशीतस्पर्शानधिसहते स्म । एकदा=कदाचित् रात्रौ निष्क्रम्य=मुहूर्त्तमात्र वहिः स्थित्वा भगवान् शमितया=उपशान्तभावेन व्यवस्थित सन् अतिदुःखान् हिमसंस्पर्शान् सोढुं शक्नोति=अधिसहते स्म ॥१५॥

और भी 'तंसि' इत्यादि ।

ऐसे शीतकालमें भी श्री वीर प्रभुने यह स्वप्न तकमें भी विचार नहीं किया कि मुझे कोई निर्वात स्थान मिल जाय, प्रत्युत वे इस समयमें भी चौहटे पर कि जहां चारों ओरसे शीतल पवन बहकर ठंडको खूब असह्य बना देती है, स्थित होकर यथाख्यात चारित्र की आराधनामें तल्लीन रहते हुए शीतपरीपहको सहन करते। कभीर रात्रिमें भी वसतिसे बाहर निकल कुछ समय तक वहां ठहर कर उपशान्त भावसे वे प्रभु शीतकालके कष्टोंको सहते ।

इस सूत्रमें 'द्रविक' शब्दका अर्थ—“यथाख्यातचारित्रका आराधन करने वाला” ऐसा है। “द्रावणात्=कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रवः” कर्मरूप

श्री—“तंसि” इत्यादि

आवा ठंडीना समयमा पणु श्री वीर प्रभुणे स्वप्ने पणु जेवो विचार नथी कर्यो के भने केळ ठंडीथी अची शक्य तेवु स्थान मणी नय आवी कडकडती ठंडीना समये पणु प्रभु तदन उघाडा के न्या आरे तरुथी ठंडी पवनने सुसवाटो लागतो छेथ तेवा स्थाने स्थित अनी यथाख्यात चारित्रनी आराधनामा तदलीन रडी ठंडीना उपद्रवने सहन करता क्यारेक क्यारेक आवी कडकडती ठंडीमा रात्रीना वपते वसतीथी अडार नीकणी नथ उपशांत लावथी ठंडीना कष्टोने सहन करता

आ सूत्रमा द्रविके शब्दने अर्थ—“यथाख्यात चारित्रनु आराधन करवावाणा” जेवो छे 'द्रावणात् कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रव' जेनाथी कर्मरूप अथीने विनाश थय छे ते द्रव=संयम अर्थात् यथाख्यात चारित्रछे. आ द्रव जेनामा छेथ छे ते द्रविके छे.

उद्देशकार्यमुपसहरमाह—‘एस विही’ इत्यादि ।

मूलम्—एस विही अणुक्कतो, माहणेण मइमया ।

बहुसो अपडिञ्जेण, भगवया एव रीयति-त्तियेमि ॥१६॥

छाया—एष विभिरनुक्रान्तो, माहनेन मतिमता ।

बहुसोऽप्रतिज्ञेन, भगवता, एव रीयन्त ॥ इति व्रथीमि ॥१६ ॥

अस्य व्याख्या—अस्यैवाध्ययनस्य प्रथमोद्देशगताऽन्तिमगाया(२३ व्या स्यावद् विज्ञेया । इति व्रथीमीत्यर्थस्तुक्त एव ॥ १६ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ १-२ ॥

ग्रन्थिका जिससे विनाश हो वह व्रथ-सयम, अर्थात् यथाख्यात चारिष है, यह व्रथ जिसके मौजूद हो वह व्रथिक है। यथाख्यातचारिषकी आराधनासे ही जीष अपने अवशिष्ट चार अघातिया कर्मोंका नाश कर मुक्तिस्थानका पात्र हो जाता है, इसके बिना नहीं, ऐसा शास्त्रसंमत सिद्धान्त है। “अघोषिकठ” शब्द कुडधादि-भीत आदिरहित स्थानका वाचक है। यह स्थान कि जिसमें भीत आदिका आधरण नहीं हो, बौद्धा ही ऐसा होता है, क्यों कि यह चारों ओरसे पिलकुल खुला हुआ रहता है, और ऐसे ही स्थानमें सय तरफसे बहुत जोरकी हवा आती है। ‘शमिता’ शब्दका अर्थ-उपशान्त भाव है। राग द्वेषका संबंध जिस भावमें नहीं होता है वही उपशान्तभाव कहा गया है ॥१६॥

अथ सूत्रकार इस उद्देशके अर्थका उपसंहार करते हुए कहते हैं—  
‘एस विही’ इत्यादि ।

यथाख्यात चारिषी आराधनाधीन एव पीताना अवशिष्ट चार अघातिया कर्मिना नाश करी मुक्तिस्थान भोगववा साध्यशायी जनी रहे छे, जेना वज्र नदी जेवा शास्त्रसंमत सिद्धान्त छे ‘अघोषिकठ’ शब्द भीत उद्देशकी रहित जेवा स्थानने वाचक छे जे स्थानके जेने भीत उद्देशने जन्म न होय तेने उवाडु स्थान ठहोवामा आवे छे केमठे चारे तरक्षी ते नीवकुल खुल्लु होय छे जेने जेवा स्थानमा चारे तरक्षी भेटा प्रभावमा खुली हवा आवती होय छे शमिता शब्दने अर्थ उपशान्त भाव छे। राग द्वेषने संबंध जे भावमा नथी ते उपशान्त भाव ठहोवाय छे (१५)

उदे सूत्रकार या उद्देशना अर्थने उपसंहार करवां कहे छे— एस विही’ इत्यादि।

स्वयं हननादि कार्यो' से निवृत्त होकर दूसरों को भी मा हन-मा हन-  
 'मत मारो-मत मारो' इस प्रकार कह कर उनसे निवृत्त करानेवाले,  
 तथा हेय और उपादेयके विवेकसे युक्त, एवं सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित  
 ऐसे श्रीवर्धमानस्वामीने इस पूर्वोक्त आचारका स्वयं पालन किया, अतः  
 इसी तरहसे अन्य मोक्षसाधक साधुजन भी अपने समस्त कर्मोंका नाश  
 करनेके लिये संयम मार्गमें विचरण करें। अर्थात् इसी प्रकारसे इस  
 विधिका पालन कर अन्य मोक्षाभिलाषी साधुजन भी अपने कर्मोंका  
 नाश करनेके लिये संयममार्गमें लवलीन बनें। 'इति ब्रवीमि' हे जम्बू!  
 जैसा मैंने भगवानसे सुना हूँ वैसा ही कहता हूँ, अपनी कल्पनासे नहीं। १६।

॥ नववें अध्ययनका द्वितीय उद्देश समाप्त ॥ ९-२ ॥

स्वयं हननादि कार्यो' से निवृत्त अपनी भील्योने पणु मा हन, मा हन-  
 "मारो नहि, मारो नहि" आ प्रकारतु कहीने तेनाथी निवृत्त करावना,  
 तथा हेय अने उपादेयना विवेकथी युक्त अने सर्वथा निदानशून्य, ओवा श्रीवर्ध-  
 मान स्वामीओ आ पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन करेत्, भाटे आ रीते भील  
 मोक्ष साधक साधुजन पणु पोताना समस्त कर्मोना नाश करवा भाटे संयम  
 मार्गमा विचरणु करे, अर्थात् ओवा प्रकारथी ओवी विधितु पालन करी भील  
 मोक्षाभिलाषी साधुजन पणु पोताना कर्मोना नाश करवा भाटे संयम मार्गमा  
 लवलीन अने. "इति ब्रवीमि" हे जम्बू! जेवुं मे' भगवानथी सालज्यु तेवुज  
 कहुं छु, पोतानी कल्पनाथी नहि (१६)

नवमा अध्ययननो भीले उद्देश समाप्त ॥ ९-२ ॥



॥ अथ नवमाध्ययनस्य तृतीय उद्देश ॥

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके भगवत् श्रय्यासनानि कथितानि । तत्रावस्थितेन यं परीपहा उपसर्गाश्च यथा भगवता सोदास्तस्मत्तिषोषनार्थं तृतीयद्वारेण कथयन् भगवत्स्वर्णस्पर्शादिसहनमाह—‘तणफासे’ इत्यादि ।

मूलम्—तणफासे सीयफासे य, तेउफासे य दसमसगे य ।

अहियासए सया समिए, फासाइ विरूपरूवाइ ॥१॥

छाया—तणस्पर्शान् शीतस्पर्शांश्च, तेजःस्पर्शांश्च वंशमशकांश्च ।

अध्यास्ते सदा समित्, स्पर्शान् विरूपरूपान् ॥ १ ॥

टीका—सदा—सर्वकाले समित्=सम्यग्भावं गतं, यद्वा—समितिसमन्वितं; भगवान् आतापनादिकाद्ये तणस्पर्शान्=कुशादिस्पर्शान्, शीतस्पर्शांश्च, तथा तेजः—

नववें अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

इससे पहिले द्वितीय उद्देशमें सूत्रकारने भगवान् श्री वीर प्रभुके शयन और आसनोका वर्णन किया है । उस उद्देशमें यह कहा गया है कि उस अवस्थामें रहे हुए प्रभुने अनेक प्रकारके उपसर्ग और परीपहोको महा हैं । इस तृतीय उद्देशमें सूत्रकार यह स्पष्ट करेंगे कि किम २ प्रकारके उपसर्ग और परीपहोको प्रभुने महा हैं ? अतः सर्व प्रथम तणस्पर्शा आदि परीपहोके सहन करनेके विषयमें सूत्रकार कथन करते हैं—‘तणफासे’ इत्यादि ।

सम्यग्भावं, या पांच समितिसे युक्त वे प्रभु आतापना आदिके समयमें अनेक प्रकारके तणस्पर्शाजन्य कष्टोंको, शीतस्पर्शाजन्य दुःखोंको,

नवमा अध्ययननो त्रीणि उद्देश

आ त्रीणि उद्देशधी पढेला नीळ उद्देशमां सूत्रकारे भगवान् श्री वीरप्रभुना शयन अने आसनेतु पळुन करेव छे ते उद्देशमां जेपु जातांभु छे ते ती अध्यासाभां वदेला प्रभुजे अनेक प्रकारना पस्विक अने उपसर्गो सहा छे आ त्रीणि उद्देशमां सूत्रकार जे स्पष्ट करे छे भगवाने देवा देवा पस्विक अने उपसर्गो सहन कर्वा छे आधी सव प्रथम तणस्पर्शा आदि परिपही सहन करवाना विषयतु सूत्रकार कथन करे छे—तणफासे’ धियादि

सम्यग्भावं, अने पांच समितिधी मुळा ते प्रभु आतापना आदिना समयमां अनेक प्रकारना तणस्पर्शाजन्य कष्टोने, शीतना पासजन्य दुःखोने,

स्पर्शान्=उष्णस्पर्शान्, तथा दंशमशकान्=दंशमशकदंशनजनिततीव्रदुःसहस्पर्शान्,  
एतान् विरूपरूपान्=अनेकप्रकारकान् स्पर्शान् अध्यास्ते=सहतेस्म ॥१॥

किञ्च—‘अहे’-त्यादि।

मूलम्—अह दुच्चरलाढमचारी, वज्रभूमिं च सुभ्रभूमिं च ।

पंतं सिज्जं सेविंसु आसणगाणि चैव पंताणि ॥२॥

छाया—अथ दुश्चरलाढमचारीत् वज्रभूमिं च शुभ्रभूमिं च ।

प्रान्तां शय्यामसेविष्ट, आसनकानि चैव प्रान्तानि ॥२॥

टीका—अथ=अनन्तरम् भगवान् दुश्चरलाढं=दुर्गमं लाढनाम्ना प्रसिद्धं देशविशेष-  
म्, अचारीत्=अगात् । लाढदेशो द्विविधभूमिकः, वज्रभूमिकः शुभ्रभूमिकश्चेति तत्र  
द्विविधेऽपि देशे भगवान् विहारं कृतवानित्याह—‘वज्रभूमिं च’-त्यादि। वज्रभूमिं तथा  
शुभ्रभूमिं च=लाढान्तर्गतदेशविशेषम्, अचारीदित्यन्वयः । तत्र च प्रान्ताम्=  
अमनोज्ञां जीर्णशून्यगृहादिरूपां विविधोपद्रवयुक्तां, शय्यां=वसतिं, प्रान्तानि च

उष्णस्पर्शजन्य व्यथाओंको, और दंशमशक आदिके काटनेसे उत्पन्न  
हुई तीव्र-दुःसह पीडाओंको सहते थे ॥१॥

फिर—‘अह दुच्चर०’ इत्यादि।

(भगवान् अनेक प्रकारके परीषह और उपसर्गोंको सहते हुए  
विहार करते २ जिस देशमें प्रवेश करना मुश्किल है ऐसे लाढ देशमें  
पहुँचे। वहाँपर वज्रभूमि और शुभ्रभूमि इस प्रकार दो प्रकारकी भूमियां  
हैं। भगवान्ने इन दोनोंमें विहार किया। इस विहारमें उन्हें  
प्रान्त-अमनोज्ञ-जीर्ण एवं शून्यघररूप अनेक प्रकार के उपद्रवोंसे युक्त  
शय्या-वसति, और धूलि आदिसे परिपूर्ण-धूसरित एवं टूटे फूटे काठ

उष्णस्पर्शजन्य व्यथाओंने, अने दास तथा मन्थर आदिना करवायी उत्पन्न  
थती तीव्र असह्य पीडाओंने सहन करता उता. (१)

इरी—‘अह दुच्चर०’ इत्यादि

भगवान् अनेक प्रकारना परिषह अने उपसर्गोंने सहता सहता विहार  
करता करता ये देशमा प्रवेश करवा मुश्किल छे अवा अनार्य लाढ देशमां  
पहुँचेया, त्या वज्रभूमि अने शुभ्रभूमि आ प्रकारना ये भागो छे भगवाने ये  
अन्नेमा विहार कर्यो आ विहारमा तेमने प्रान्त-अमनोज्ञ-धूलि अटके पडतर  
अवा शून्य घरमा अनेक प्रकारना उपद्रवोथी युक्त शय्या-वसती अने धूल

॥ अथ नवमाध्ययनस्य तृतीय उद्देश ॥

इहान् तरङ्गिणीयोद्देशके भगवत् श्रव्यासनानि कथितानि । तत्रावस्थितेन ये परीपहा उपसर्गाश्च यथा भगवता सोदास्तस्मिन्निबोधनार्थं तृतीयोद्देशक कथयन् भगवत्स्पर्शस्पर्शादिसङ्गनमाह—‘तणफासे’ इत्यादि ।

मूलम्—तणफासे सीयफासे य, तेउफासे य दसमसगे य ।

अहियासय सया समिय, फासाइ विरूवरूवाइ ॥१॥

छाया—तृणस्पर्शान् शीतस्पर्शांश्च, तेजस्पर्शांश्च दक्षमशकांश्च ।

अध्यास्ते सदा समित, स्पर्शान् विरूपरूपान् ॥ १ ॥

टीका—सदा—सर्वकाले समितः—सम्यग्मात्रं गतः, यद्वा—समितिसमन्विताः, भगवान् आत्मापनादिकां तृणस्पर्शान्—कुशादिस्पर्शान्, शीतस्पर्शांश्च, तथा तेजः—

नववें अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

इससे पहिले द्वितीय उद्देशमें सूत्रकारने भगवान् श्री बीर प्रभुके शयन और आसनोका वर्णन किया है । उस उद्देशमें यह कहा गया है कि उस अवस्थामें रहे हुए प्रभुने अनेक प्रकारके उपसर्ग और परीपहोको सहा है । इस तृतीय उद्देशमें सूत्रकार यह स्पष्ट करेंगे कि किस २ प्रकारके उपसर्ग और परीपहोको प्रभुने सहा है ? अतः सर्व प्रथम तृणस्पर्श आदि परीपहोके सहन करनेके विषयमें सूत्रकार कथन करते हैं—‘तणफासे’ इत्यादि ।

सम्यग्मात्र, या पांच समितिसे युक्त वे प्रभु आत्मापना आदिके समयमें अनेक प्रकारके तृणस्पर्शजन्य कष्टोंको, शीतस्पर्शजन्य दुःखोंको,

नवमा अध्ययनना त्रीजे उद्देश.

आ त्रीजे उद्देशमी पढेवा नीजे उद्देशमा सूत्रकारे भगवान् श्री बीरप्रभुना शयन अने आसनोनु वर्णन करेछ छे ते उद्देशमां जेसु अवाञ्छु छे ते तेवी अवस्थाभा रहेवा प्रभुजे अनेक प्रकारना परिपह अने उपसर्गो सहा छे आ त्रीजे उद्देशमा सूत्रकार जे स्पष्ट करेछे छे भगवाने देवा देवा परिपह अने उपसर्गो सहन कर्मा छे आधी सब प्रथम तृणस्पर्श आदि परिपहो सहन करवाना विषयनु सूत्रकार कथन करे छे—‘तणफासे’ इत्यादि ।

सम्यग्मात्र, अने पांच समितिधी युक्त ते प्रभु आत्मापना आदिना समयमां अनेक प्रकारना तृणस्पर्शजन्य कष्टोने सहनीना असहन्य करवने.

स्पर्शान्=उष्णस्पर्शान्, तथा दंशमशकान्=दंशमशकदंशनजनिततीव्रदुःसहस्पर्शान्,  
एतान् विरूपरूपान्=अनेकप्रकारकान् स्पर्शान् अध्यास्ते=सहतेस्म ॥१॥

किञ्च—‘अहे’—त्यादि।

मूलम्—अह दुच्चरलाढमचारी, वज्रभूमिं च सुभ्रभूमिं च ।

पंतं सिञ्जं सेविंसु आसणगाणि चैव पंताणि ॥२॥

छाया—अथ दुश्चरलाढमचारीत् वज्रभूमिं च शुभ्रभूमिं च ।

प्रान्तां शय्यामसेविष्ट, आसनकानि चैव प्रान्तानि ॥२॥

टीका—अथ=अनन्तरम् भगवान् दुश्चरलाढं=दुर्गमं लाढनाम्ना प्रसिद्धं देशविशेषम्, अचारीत्=अगात् । लाढदेशो द्विविधभूमिकः, वज्रभूमिकः शुभ्रभूमिकश्चेति तत्र द्विविधेऽपि देशे भगवान् विहारं कृतवानित्याह—‘वज्रभूमिं च’—त्यादि। वज्रभूमिं तथा शुभ्रभूमिं च=लाढान्तर्गतदेशविशेषम्, अचारीदित्यन्वयः । तत्र च प्रान्ताम्=अमनोज्ञां जीर्णशून्यगृहादिरूपां विविधोपद्रवयुक्तां, शय्यां=वसतिं, प्रान्तानि च

उष्णस्पर्शजन्य व्यथाओंको, और दंशमशक आदिके काटनेसे उत्पन्न हुई तीव्र-दुःसह पीडाओंको सहते थे ॥१॥

फिर—‘अह दुच्चर०’ इत्यादि।

(भगवान् अनेक प्रकारके परीषह और उपसर्गोंको सहते हुए विहार करते २ जिस देशमें प्रवेश करना मुश्किल है ऐसे लाढ देशमें पहुँचे। वहाँपर वज्रभूमि और शुभ्रभूमि इस प्रकार दो प्रकारकी भूमियाँ हैं। भगवान्ने इन दोनोंमें विहार किया। इस विहारमें उन्हें प्रान्त-अमनोज्ञ-जीर्ण एवं शून्यघररूप अनेक प्रकार के उपद्रवोंसे युक्त शय्या-वसति, और धूलि आदिसे परिपूर्ण-धूसरित एवं टूटे फूटे काठ

उष्णस्पर्शजन्य व्यथाओंने, अने डास तथा मच्छर आदिना कइवाथी उत्पन्न थती तीव्र असह्य पीडाओंने सहन करता डता. (१)

इरी—‘अह दुच्चर०’ इत्यादि

लगवान् अनेक प्रकारना परिषड् अने उपसर्गोंने सहता सहता विहार करता करता जे देशमा प्रवेश करवे मुश्किल छे जेवा अनार्थ लाढ देशमा पडोआ, त्या वज्रभूमि अने शुभ्रभूमि आ प्रकारना जे लागे छे लगवाने जे भन्नेमा विहार कर्यो आ विहारमा तेभने प्रान्त-अमनोज्ञ-उष्ण अटके पडतर जेवा शून्य घरमा अनेक प्रकारना उपद्रवोथी युक्त शय्या-वसती अने धूलि



धूलिशर्कराकाष्ठाविपूर्णानि, दुर्घटितकाष्ठानि आसन्नकानि फलकादीनि च भगवानसेविष्ट ॥ २ ॥

किञ्च—छाडनामकषु देशविशेषेषु भगवतो बहवः प्रतिकूला उपसर्गा बभूवुस्तान् भगवान् सहेतेस्म, इत्याह—‘लाडेहिं’ इत्यादि।

मूलम्—लाडेहिं तस्सुवसग्गा, बहवे जाणवया लूसिसु ।

अह लूह देसियमत्ते, कुक्कुरा तत्थ हिंसिसु निवइसु ॥३॥

छाया—छाडेपु तस्योपसर्गा बहनो जानपदा अछपिपु।

अथ रुद्रदेश्यं भक्त कुक्कुरास्तत्र जिहिसु निपेतु ॥ ३ ॥

टीका—छाडेपु=छाडाएवपु दशविशेषेषु, तस्य=भगवतः, बहवः=बहुनिवाह, उपसर्गाः प्रतिकूलरूपा बभूवुः। तान् कथयति—“जाणवया” इत्यादि। जानपदा=जनपदे मवाः—उदेशीया दुश्चरिणा अनार्या लोका अछपिपु’=उल्लूकदण्डमारादिभिर्मगवन्तमताडयन्। अथ=अपि च तत्र रुद्रदेश्यं=रुद्रकल्पम् विगततरसम्

धादिवाले आसन-फलक वगैरह मिळे, जिन्हें प्रभुने समभावसे अपने उपयोगमें लिया ॥ २ ॥

इस छाडनामके देशमें भगवानको बहुत अधिक प्रतिकूल उपसर्ग सहेने पड़े/इस पातको घमलानेके लिये सूत्रकार कहतेहैं—‘लाडेहिं’ इत्यादि।

(इस छाड नामके दशविशेषमें भगवानने अनेक प्रकारके उपसर्गोंको सहा। जैसे—उस देशके अनार्य मनुष्योंने भगवानके ऊपर उल्लूक-मशाएदण्ड और अस्त्र शस्त्र आदि द्वारा अनेक प्रकारसे प्रहार किये-उन्हें मार-पीटे। यहा उन्हें अन्न प्रान्त आहार मिला। वहकि कुत्सोंने भी भगवानक शरीरको अपने तीक्ष्ण दांतों द्वारा विविधरूपसे क्षत-

बगैरैथी परिपूषु जेवा पुणीबां भजान जेने। तुटेव कुटेव छडभाण छे, अने जेवाक आसन-इक वजैर भजेबां जेने प्रभुजे समभावधी पिताना उपयोगमा लीपिल. (२)

आ छाड नामना देशमा भजवानने भला क प्रतिकूल उपसर्गों सहेवा पडेवा आ बात अत्ताववा भाटे सूत्रकार कहे छे— लाडेहिं इत्यादि।

आ छाड नामना देशविशेषमां भजवाने अनेक प्रकारका उपसर्गों सहा जेने-ते देशना अनार्य मनुष्योंके भजवान उपर उल्लूक-मशाए, इद, अस्त्र शस्त्र वगैरैथी अनेक प्रकारे प्रहार कर्था-जेमने भार्या-पीटवा तथा तेमने अन्न प्रान्त आहार भजेव तथा पुतलको जे पण भजवानना शरीरने पिताना तीक्ष्ण

अन्तप्रान्तं भक्तम्=अन्नम्, भगवता लब्धम् । तत्र कुकुराः=श्वानः, जिहिंसुः=भगवतः  
शरीरं दन्तैश्चिच्छिदुः, उपरि च निपेतुः=आरोहवन्तः ॥ ३ ॥

किञ्च—‘अप्ये’ इत्यादि ।

मूलम्—अप्ये जणे निवारैइ, लूसणए सुणए दसमाणे ।

लुलुकरंति आहंतुं, समणं कुक्कुरा दसंतु—त्ति ॥४॥

छाया—अल्पो जनो निवारयति लूपकान् शुनकान् दशतः ।

लु-लु कुर्वन्ति आहत्य ‘श्रमणं कुकुरा दशन्तु’ इति ॥ ४ ॥

टीका—यः लूपकान्=उल्मुकदण्डादिभिर्भगवतो हिंसकान् जनान्, दशतः=  
भगवद्गात्रं दन्तैश्छेदयतः शुनकांश्च=कुकुरान् निवारयति=दूरीकरोति, तादृशो  
जनस्तत्र अल्पः=ऋऽपि नासीदित्यर्थः, अल्पशब्दोऽत्राभावार्थकः’ मत्स्युत जना  
आहत्य=ताडयित्वा “श्रमणम्=एनं मुण्डिनं कुकुराः दशन्तु” इतीच्छया लु-लु  
कुर्वन्ति=दंशनाय कुक्कुरान् प्रेरयन्ति स्म-भगवन्तं कुकुरैर्दशयामासुरित्यर्थः । एव-  
म्भूते प्रतिकूलोपसर्गकारके देशे भगवान् पण्मासपर्यन्तमवतस्थौ ॥४॥

विक्षत किया । भगवानको देखकर वे कुत्ते उन्हें काट खाते और उनके  
ऊपर चढ़जाते ॥३॥

और भी—‘अप्ये जणे’ इत्यादि ।

(उस देशमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जो भगवानको मारने  
वालोंसे तथा काटने वाले कुत्तोंसे बचाता । उल्टे वहाँके लोग इसी  
भावनासे कि ‘इस मुण्डित श्रमणको कुत्ते काट खावें’ ऐसा विचार कर  
उनपर कुत्तोंको छुछकारते और उनसे उन्हें कटवाते । इस प्रकार इस  
प्रतिकूल अवस्थावाले देशमें भी भगवानने छ महीने तक विहार किया ॥४॥

हातोथी णुहे णुहे स्थणे भटका लरेदा लगवानने नेताज्जे अये अेमना परधसी  
आवता अने भटका लरता (३)

इरी—‘अप्ये जणे’ इत्यादि

ये देशमा अयेवा डोए पणु भाणुस न डतो डे ने लगवानने मारवावा-  
णाअोथी डे करउता कुतराअोथी अथावे उदटा त्याना डोडो अेवी लावनावाणा  
डता डे ‘आ मु डित साधुने कुतराअो करडी भाय’ अेवा विचारथी कुतराअोने  
तेमना उपर उयकारीने करडववा माटे छोडी मुकता आवा प्रतिकूल अवस्थावाणा  
देशमां पणु लगवाने छ मडिना सुधी विहार कर्यो. (४)

किञ्च—'एलिक्खए' इत्यादि।

मूळम्—एलिक्खए जणा भुज्जो, वहवे वज्जभूमि फरुसासी।

लट्टिं गहाय नालिय, समणा तत्थ य विहरिंसु ॥५॥

छाया—ईदृशा जना मूयो वहवो वज्जभूमौ परुसासिनः ।

यट्टिं गृहीत्वा नालिकां भ्रमणास्तत्र च विजद्गुः ॥ ५ ॥

टीका—ईदृशा=उक्तविधाः जना यत्रासन्, तत्र देशे भगवान् मूयः=वज्जुः।  
विहरतिस्म। तत्र लट्टिं देसे वज्जभूमौ=वज्जभूमिनाम्नि देशविशेषे वहवो जनाः परुसा-  
सिनः=वृक्षमोजिनः, अत एव क्रोधस्वभावाः सन्ति तेन ते साधुमवलोक्य कुकुरा-  
दिभिः क्लेशयन्ति । न केवं कुकुरादिभिः साधुकल्पने तस्मिन् साक्यादयः कश्चि-  
त्तत्र विषेरु ? इति जिज्ञासायामाह—'यट्टि'—मित्यादि । तत्र च भ्रमणाः=ग्रन्थे  
साक्यादय आदिनिवारणार्थं यट्टि=स्वदेहममाणं दण्डं नालिकां=स्वदेशात्तुरङ्ग-  
लाधिकप्रमाणं दण्डं वा गृहीत्वा विजद्गुः=विहरन्तिस्म।

और भी—'एलिक्खए जणा' इत्यादि ।

यद्यपि इस प्रकारके ही बहुतसे मनुष्य वहाँ थे तो भी भगवानने वहाँ बिहार बंद नहीं किया—प्रत्युत ये चार२ वही पर विचरते और प्रति कूल परीपह और उपसर्गोंको धैर्यके साथ शांतचित्तसे सहन करते। वज्जभूमिमें बहुत मनुष्य तुम्ह आहार करते हैं, इसलिये उनके स्वभावमें क्रोध ही क्रोध सदा बना रहता है—ये बिना किसी निमित्तके भी सदा क्रोधसे भरे रहते हैं। ये साधु संतोंको दुस्वकर ब्रेष करते हैं और कुत्ते आदिकोंसे उन्हें ध्यर्षमें काट पहुँचाते हैं।

शंका—यदि ऐसी बात है तो वहाँ पर शाक्यादि साधु कैसे विचरण करते हैं ?

इति—'एलिक्खए जणा' इत्यादि.

जो के जेवा प्रकाशना माजुसो मज्जा उट्ठा तो पणु ज्ञानवाने त्थानो विहार  
बंध करेण न उट्ठो जने तेज्जे वारवार त्थं विचरत्ता जने प्रतिपुस परिपठ  
तथा उपसज्जने धेवं साथे शान्त रीते सहन करत्ता. वज्जभूमिमां मज्जा  
मनुष्यो तुम्ह आहार करे छे जेनाभी तेना स्वभावमां क्रोध करेत्तो रडे छे.  
ठोडि पणु ज्ञानवाने करणु पत्रर पणु तेज्जे क्रोधमुत्त न रहे छे साधु सत्थाने  
जेष तेमना उपर ब्रेष करे छे जने कुत्तज्जे विजरेधी तेमने हाथ पटोआडे छे  
शंका—जानी बात छे तो त्थं शाक्यादि साधु म्भ रीते विचरी करे छे ?

भगवदाज्ञानुवर्तिनां साधूनां तु स्थविरावस्थामन्तरेण न कल्पते दण्डधारणं, तथा चोक्तं व्यवहारसूत्रे (उ०८) “थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ दंडए वा०” इत्यादि; अत्र ‘थेराणं’ इत्युपलक्षण रोगिग्लानानाम्, स्थविरादेरन्यत्र दण्डधारणं न युक्तं, भय-हिंसा-जनकत्वादागमाविहितत्वाच्च, अत एवाग्रे “निहाय

उत्तर—वहां पर वे साधु कुत्ता आदिको भगाने या उन्हें ताडनेके लिये अपने हाथोंमें अपने शरीरप्रमाण दण्ड और अपने शरीरसे चार अंगुल अधिक ऊंची नलिका-दण्डविशेष पासमें रखते हैं, और विचरण करते रहते हैं।

शंका—भगवानने भी क्यों नहीं वहां विहार करते समय अपने हाथमें दण्ड आदि रक्खा ?

उत्तर—स्थविर-वृद्ध अवस्थाके सिवाय दण्ड धारण करनेकी आज्ञा भगवानके शासनमें रहने वाले साधुओंके सिद्धान्तमें नहीं है, अतः भगवानने भी उस समय वहां दण्ड आदि पासमें नहीं रक्खा, व्यवहार सूत्रमें भी यही कहा है—

“थेराणं थेरभूमिपत्ताण कप्पइ दंडए वा०” इत्यादि। इस सूत्रमें ‘थेराणं’ यह पद रोगी ग्लान अवस्थाका भी उपलक्षक है, अतः स्थविरादि अवस्थाके सिवाय अन्य अवस्थाओंमें दण्डका धारण करना युक्त नहीं माना गया है, क्यों कि एक तो दण्डका धारण करना अन्यजीवीको भयका जनक तथा हिंसाका जनक होता है, दूसरे इस प्रकारका शास्त्रमें इसके

उत्तर—ते स्थणे तेवा साधु कुतरा वगेरेने जे लगाउवा माटे अने तेने भारवा माटे पोताना डाथेभां पोताना शरीरप्रमाणे लाकडी अने पोताना शरीरथी चार आगण मोटी जेवो दंड राणे छे अने विहार करे छे

शंका—भगवाने पणु जे देशमा विहार करता पोताना डाथभां दंड-लाकडी वगेरे केम न राख्या ?

उत्तर—वृद्ध अवस्था सिवाय दंड धारणु करवानी आज्ञा भगवानना शासनमा रहेवावाणा साधुज्योना सिद्धातमा नथी, माटे भगवाने पणु ते समय ते स्थणे दंड वगेरे पास राभेल न डता व्यवहार सूत्रमा पणु जे जे डडेले छे—

“थेराणं थेरभूमिपत्ताण कप्पइ दंडए वा०” इत्यादि

जे सूत्रमा “थेराणं” आ पद रोगी ग्लान अवस्थानु उपलक्षक छे, माटे स्थविर आदि अवस्था सिवाय अन्य अवस्थाज्योमा दंडने धारणु करवा जे युक्त मानेल नथी, केमके जेक तो दंडने धारणु करवो ते भीज्ज जेवोने लयजनक तथा हिंसाने प्रोत्साहन आपनार छे भीज्जु शास्त्रमा दंड धारणु करवात्त कडो पणु

किञ्च—'एलिक्खए' इत्यादि।

मूळम्—एलिक्खए जणा मुज्जो, बह्वे वज्जभूमि फरुसासी।  
 लट्ठि गहाय नालिय, समणा तत्थ य विहरिंसु ॥५॥

आया—ईदृशा जना भूयो बहवो वज्जभूमौ पर्याशिनः।

यष्टिं गृहीत्वा नालिकां भ्रमणास्तत्र च विजहुः ॥ ५ ॥

टीका—ईदृशा=उक्तविधाः जना यथासन्, तत्र देशे भगवान् भूयो=बहुयः  
 विहरतिस्म। तत्र लाट्ठदेशे वज्जभूमौ=वज्जभूमिनाम्नि देशविशेषे बहवो जनाः पर्या-  
 शिनः=वृच्छमोजिनः, अत एव क्रोधस्थमावाः सन्ति तेन ते साधुमवलोक्य कुतु-  
 हादिभिः कर्षयन्ति। न-वर्षं कुतुरादिभिः साधुकर्षयन्ते तत्रत्याः शाक्यादयः कर्ष-  
 तत्र विचरुः ? इति निहासायामाह—'यष्टिं'-मित्यादि। तत्र च भ्रमणा=अन्ये  
 शाक्यादयः आदिनिवारणार्थं यष्टिं=स्वदेहप्रमाणं दण्डं नालिकां=स्वदेशाचतुरङ्ग-  
 लाधिकप्रमाणं दण्डं वा गृहीत्वा विजहुः=विचरन्तिस्म।

और भी—'एलिक्खए जणा' इत्यादि।

यद्यपि इस प्रकारके ही बहुतसे मनुष्य वहाँ थे तो भी भगवानने वहाँ बिहार बंद नहीं किया—प्रस्युत थे वारं वही पर विचरते और प्रति कूल परीपह और उपसर्गोंको धैर्यके साथ शातचित्तसे सहन करते। वज्जभूमिमें बहुत मनुष्य तुच्छ आहार करते हैं, इसलिये उनके स्वभावमें क्रोध ही क्रोध सदा बना रहता है—वे बिना किसी निमित्तके भी सदा क्रोधसे भरे रहते हैं। ये साधु संतोंको देखकर ड्रेप करते हैं और कुत्ते आदिकोंसे उन्हें धैर्यमें कष्ट पहुँचाते हैं।

शंका—यदि ऐसी बात है तो वहाँ पर शाक्यादि साधु कैसे विचरण करते हैं ?

इति—'एलिक्खए जणा' इत्यादि.

जो है जेवा भ्रमणा भावसे भला दया तो पण भगवाने त्वनि विहार बंद करेले न होत, अने तेजो वारं वार त्या विचरता अने प्रतिशुद्ध परिपह तथा उपसर्गने धैर्य साथे शांत शीते सहन करत. वज्जभूमिमां पण मनुष्यो तुच्छ आहार करे छे जेनाथी तेना स्वभावमां क्रोधक भरतो रहे छे. कोहि पण आतना कारण वरर पण तेजो क्रोधमुक्त न रहे छे. साधु संताने जेप तेमना उपर ड्रेप करे छे अने कुतुराजो निवेशी तेमने हाथ पछोआडे छे. शंका—अथी बात छे तो त्यां शाक्यादि साधु कथ शीते विचरी शके छे ?

भगवदाज्ञानुवर्तिनां साधूनां तु स्थविरावस्थामन्तरेण न कल्पते दण्डधारणं, तथा चोक्तं व्यवहारसूत्रे (उ०८) “थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पह् दंडए वा०” इत्यादि; अत्र ‘थेराणं’ इत्युपलक्षण रोगिग्लानानाम्, स्थविरादेरन्यत्र दण्डधारणं न युक्तं, भय-हिंसा-जनकत्वादागमाविहितत्वाच्च, अत एवाग्रे “निहाय

उत्तर—वहां पर वे साधु कुत्ता आदिको भगाने या उन्हें ताडनेके लिये अपने हाथोंमें अपने शरीरप्रमाण दण्ड और अपने शरीरसे चार अंगुल अधिक ऊंची नलिका-दण्डविशेष पासमें रखते हैं, और विचरण करते रहते हैं।

शंका—भगवानने भी क्यों नहीं वहां विहार करते समय अपने हाथमें दण्ड आदि रक्खा ?

उत्तर—स्थविर-वृद्ध अवस्थाके सिवाय दण्ड धारण करनेकी आज्ञा भगवानके शासनमें रहने वाले साधुओंके सिद्धान्तमें नहीं है, अतः भगवानने भी उस समय वहां दण्ड आदि पासमें नहीं रखा, व्यवहार सूत्रमें भी यही कहा है—

“थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पह् दंडए वा०” इत्यादि। इस सूत्रमें ‘थेराणं’ यह पद रोगी ग्लान अवस्थाका भी उपलक्षक है, अतः स्थविरादि अवस्थाके सिवाय अन्य अवस्थाओंमें दण्डका धारण करना युक्त नहीं माना गया है, क्यों कि एक तो दण्डका धारण करना अन्यजीवीको भयका जनक तथा हिंसाका जनक होता है, दूसरे इस प्रकारका शास्त्रमें इसके

उत्तर—ते स्थणे तेवा साधु कुतरा वगेरेने ने लगाडवा माटे अने तेने भारवा माटे पोताना छाथेमां पोताना शरीरप्रमाणे लाकडी अने पोताना शरीरथी थार आगण मोटी अवेो दंड राणे छे अने विहार करे छे

शंका—भगवाने पणु अे देशमा विहार करता पोताना छाथमा दंड-लाकडी वगेरे केम न राभ्या ?

उत्तर—वृद्ध अवस्था सिवाय दंड धारण करवानी आज्ञा भगवानना शासनमा रहेवावाणा साधुओना सिद्धातमा नथी, माटे भगवाने पणु ते समय ते स्थणे दंड वगेरे पासे राणेल न हुता व्यवहार सूत्रमा पणु अे न कलेल छे—

“थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पह् दंडए वा०” इत्यादि

अे सूत्रमा “थेराणं” आ पद रोगी ग्लान अवस्थानु उपलक्षक छे, माटे स्थविर आदि अवस्था सिवाय अन्य अवस्थाओमां दंडने धारण करवा अे युक्त मानेल नथी, केमके अेक तो दंडने धारण करवेो ते भील अेवोने लयजनक तथा हिंसाने प्रोत्साहन आपनार छे भीणु शास्त्रमा दंड धारण करवानु कहीं पणु

दंष्ट्रं पाणेहिं० इत्यपि वदता भगवता दण्डधारण स्वयमनाधरितं, मुनीनां च दण्ड  
धारणप्रतिषेधायापदिष्टमिति सुस्पष्टं ज्ञायते । ये तु दण्डिनः 'सर्वावस्थायां  
दण्डधारणं मुनिकल्पः' इति मत्वा सर्वदा दण्डेन सह वर्तन्ते तदेतत्तेषां प्रबलमोह  
पिबृम्भणमात्रम् ॥५॥

किञ्च—'एष पि' इत्यादि ।

मूम्—एव पि तस्य विहरता, पुट्टपुन्वा अहोसि सुणएहिं ।

सल्लुचमाणा सुणएहिं, दुच्चराणि तस्य लाडेहिं ॥६॥

छाया—एवमपि तत्र विहरन्त सृष्टपूर्वा आसन् श्रुनकैः ।

सल्लुच्यमाना श्रुनकै दुच्चराणि तत्र सादपु ॥ ५ ॥

रत्ननेका कोई विधान भी नहीं है "निहाय दण्डं पाणेहिं" इस सूत्रांशसे  
आगे चलकर भगवानने यही स्पष्ट किया है, अतः इस अवस्थामें  
दण्डका धारण अयोग्य समझ श्री वीरप्रभुने भी दण्ड ग्रहण नहीं किया ।  
जय अन्य मुनिजनोंको भी पूर्वोक्त अवस्थाके अतिरिक्त दण्ड धारण  
करनेकी वीरप्रभुकी आज्ञा ही नहीं है, तो विचारनेकी बात है कि वे  
प्रभु स्वयं दण्ड कैसे ग्रहण कर सकते थे । जो लोग यह समझकर  
कि दण्ड धारण करना मुनियोंका कल्प है मदा दण्ड धारण करते हैं यह  
उनकी मान्यता शास्त्रीय भागसे सर्वथा प्रतिकूल है, तथापि दण्डरत्नते हैं  
इसका कारण सिर्फ प्रयत्न मोहका ही विलाम जानना चाहिये ॥५॥

और भी—'एष पि' इत्यादि ।

विधान नहीं, 'निहाय दण्ड पाणेहिं' आ सूत्रांशकी आगण आधी बजवाने को  
स्पष्ट करेता छे भाटे को अवस्थाभा इठ धारण करवो को अयोग्य समझ  
वीर प्रभुको इठ धारण करेता न छेता, न्यारे जीवना मुनियोने भाटे पण पूर्वोक्त  
अवस्थाकोना अतिरिक्त इठ धारण करवानी वीर प्रभुनी आज्ञा नहीं त्यारे  
विचारवानीको वात छे के न्यां जीवने भाटे इठ अदण्ड करवानी आज्ञा नहीं त्वां  
प्रभु पोते इठ शी रीते धारण करी शके को छोडो इठ सपे छे ते जेवुं समझे छे  
के इठ सपेवे ते मुनिओने कल्प छे तेवी सदा इठ धारण करे छे जेमनी  
को मान्यता शास्त्रीय भागधी तदन विशदनी छे ते पण इठ सपे छे, आतु  
धारण केवण प्रभग मोदने विद्यासज्ज समझे को छे. (५)

हरी—'एष पि' इत्यादि

टीका—तत्र=लाढदेशेषु एवमपि=यष्ट्यादिग्रहणेनापि विहरन्त श्रमणाः=अन्ये शाक्यादयः, शुनकैः=कुङ्कुरैः स्पृष्टपूर्वाः=दष्टपूर्वा आसन्। तथा शुनकैः संलुच्यमानाः=इतश्चेतश्च गात्रे भक्ष्यमाणाः आसन्। दण्डैर्वार्यमाणा अपि तत्रत्याः श्वानः प्रतिनिवृत्ता न भवन्तीति भावः, अत एव तत्र=तेषु लाढेषु दुश्चराणि=सतां दुर्गमानि ग्रामादीनि सन्तीत्यर्थः ॥ ६ ॥

‘अन्ये श्रमणा यष्ट्यादिकं गृहीत्वा विजहुः’ इत्युक्तम्, भगवान् कथं तत्र लाढेषु विहारमकरोदिति दर्शयितुमाह—‘निहाय दंडं’ इत्यादि।

मूलम्—निहाय दंडं पाणेहिं तं कायं वोसिरिज्ज मणगारे।

अह गामकंटए भगवंते, अहिआसए अभिसमिच्चा ॥७॥

छाया—निहाय दण्डं प्राणिषु तं कायं व्युत्सृज्यानगारः।

अथ ग्रामकण्टकान् भगवानध्यास्ते अभिसमेत्य ॥ ७ ॥

उस लाढदेशमें इतने बलिष्ठ कुत्ते हैं कि दंडा हाथमें लेकर भी विचरण करनेवाले अन्य शाक्यादिक श्रमण उनको भगते तो भी बेलपककर झूम जाते और काट खाते हैं, पहिले भी इनको उन्होंने कईवार काट खाया है। वहाँके ग्राम इन कुत्तोंसे ही दुर्गम बने हुए हैं। अतः अपरिचित कोई भी व्यक्ति वहाँ नहीं जा सकता ॥६॥

जब अन्य साधुजन दण्डादिसे सज्ज होकर वहाँ विचरण करते हैं तब भगवान् वीर प्रभुने कैसे वहाँ विहार किया ? इस विषयको सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—‘निहाय दंडं’ इत्यादि।

भगवानने उस लाढदेशमें विहार करते समय अनेक प्रकारके परीषह और उपसर्गोंको कर्मोंकी निर्जराका कारण मान बड़े ही धैर्य और

लाढ देशमा जेवा भगवान् कुतरा डोय छे के डायमां दंड लधने विचरण करवावाणा शाक्यादिक श्रमण जेने लगाडे छता ते सामे कुडीने करडे छे. अगाडे पण धण्णा शाक्यादिक श्रमणोने जे कुतराजोअे करडी भाधा छे त्यांना गामडा आ कुतराजोथी दुर्गम रडे छे अेटले अपरिचित कोथ पण व्यक्ति त्यां जर्ध शकती नथी. (६)

अन्ये अन्य साधुजन दंड वगेरथी सन्न थर्ध त्या विचरण करे छे त्याने भगवान् वीर प्रभुजो त्या विहार कथ रीते कथो ? आ विषयने सूत्रकार स्पष्ट करे छे—‘निहाय दंडं’ इत्यादि

जे लाढ देशमां विहार करती वपते भगवाने अनेक प्रकारना परिषह अने उपसर्गोने कर्मोनी निर्जरातु कारण मानी भुण ज धैर्य अने समभाव साथे



टीका—अनगारः=मगधान् प्राणेषु प्राणिषु दण्डं=सङ्कुटयट्टादिकं निहाय=अपृष्टीत्वा सर्वथा परित्यज्य 'ओहाक् स्यागे' इति पातोर्त्यन्तरूपम् । यद्वा-दण्डं=द्रुष्यनिहितमनोवाक्यारूपं निहाय=त्यक्त्वा, तथा तम्=अनार्यकृतोपसर्गोपसर्गं कार्यं काय=ममत्वं व्युत्सृज्य भय=अनन्तरम् अमितमेत्य=सम्यग् निर्भरं विदित्वा ग्रामकण्टकान्=स्वभापिजोऽनार्यलोकात् वस्तुतः परीपहोपसर्गानिति यावत्, अप्यास्ते=अभिसहतेस्म । दुस्तदपरीपहोपसर्गसम्प्राप्तौ सत्यामपि मगधान् सर्वमेव सहतेस्म, किन्तु प्राणिमयहिंसामनकत्वाद् यद्विल्लुट्टादिकं न गृहीतवानिति भावः ॥७॥

समभावके साथ सहन किया, परन्तु फिर भी दण्ड आदिका उन्हें न उस अवस्थामें भी ग्रहण नहीं किया, उसका कारण प्राणियोंको भय देना था, यदि वे दण्ड वगैरहका उस समय वहां उपयोग करते तो अन्य प्राणियोंको उससे भय अवश्य होता, जो जैन मुनियोंके लिये सर्वथा ह्य है । भगवान शारीरिक ममत्वसे रहित थे । रक्षाके साधनोंका उपयोग वे ही लोग करते हैं—जिन्हें पाषाण पदार्थोंसे अपने विगाहका भय होता है, भगवान निर्भय थे अतः न तो उन्हें उन अनार्यों से भय हुआ और न उनके द्वारा कृत उपसर्ग और उपद्रवोंसे । सूत्रका शाब्दार्थ इस प्रकार है—शारीरिक ममतासे रहित वे प्रभु 'जीवोंको मेरे द्वारा भय न हो' इस अभिप्रायसे दण्डका अथवा मन बचन कायकी अशुभ प्रणिधानरूप प्रवृत्तिका सर्वथा परित्याग कर "ये सब पाषाण उपसर्ग और परिपह मेरे कर्मोंकी निर्जराके साधक हैं" ऐसा विचार कर उन्हें अनार्यों के संसर्गसे विचलित नहीं होकर सहा ॥७॥

सहन किया परन्तु उतां पशु तेमवे लाकरी सरथीके साथे न लीपी, जेनु कारण प्राणीयेने अकय आपवानु उतु जे जे समथे प्रभु लाकरी वजेर सपत तो अन्य प्राणीयेने जेनाथी अथ ज्वरथ लागत जे जैन मुनियेने भाटे सर्वथा त्याग्ये छे अगवान शारीरिक ममत्वथी तदन रहित हुवा रक्षाना साधनेयेने उपेयत तो जे दोठो करे छे के जेभने पाषाण पदार्थोथी पेताना अत्राउने अथ होय छे अगवान निर्भय हुवा आथी जेभने न जेनायेने अथ यथे के न तो जेना तरथी इत्येवा उपसर्ग अने उपद्रवयेने सूत्रने शाब्दार्थ अ प्रकारने छे—शारीरिक ममताथी रहित जे प्रभु 'एवेने भासथी अथ न हो' अ अभिप्रायथी हुठने अथवा मन बचन अने भावानी अशुभ प्रणिधानरूप प्रवृत्तिने सर्वथा परित्याग करी. "अ अथ पाषाण उपसर्ग अने परिपह भास इथोनी निर्जराका साधक छे" जेवा विचार करी जेनायेना असभ्यथी विचलित न अनतां सहन करेव. (७)

સ કેન પ્રકારેણ ગ્રામકણ્ટકકૃતપરીપહોપસર્ગાન્ સહતે ? ઇતિ સદૃષ્ટાન્તમાહ-  
'નાગો' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—નાગો સંગામસીસે વા, પારણ તત્થ સે મહાવીરે ।

એવં પિ તત્થ લાઢેહિં, અલદ્ધપુવ્વો વિ ઇગયા ગામો ॥૮॥

છાયા—નાગઃ સંગ્રામશીર્ષેં ઇવ પારગઃ તત્ર સ મહાવીરઃ ।

એવમપિ તત્ર લાઢેપુ અલદ્ધપૂર્વોઽપ્યેકદા ગ્રામઃ ॥ ૮ ॥

ટીકા—સંગ્રામશીર્ષેં=યુદ્ધક્ષેત્રે નાગ ઇવ=હસ્તીવ તત્ર=તેષુ લાઢેષુ મહાવીરઃ  
પારગઃ=પારગામી અભૂત । યથા—હસ્તી યુદ્ધભૂમૌ શત્રુસેનાં વિજિત્ય તત્પારગામી  
ભવતિ, તથા સ મહાવીરઃ=ભગવાન્ અપિ લાઢેષુ પરીપહોપસર્ગાનીકં વિજિત્ય તત્પા-  
રગામી અભૂત । કિન્ચ—એવમપિ તત્ર=તેષુ લાઢેષુ ગ્રામાણામતિદૂરવર્તિત્વાદ એકદા=  
એકસ્મિન્ કાલે કદાચિદ્ ભગવતા ગ્રામઃ=લોકાનાં વાસસ્થાનમ્ અલદ્ધપૂર્વઃ=પૂર્વં ન  
લદ્ધઃ, તેનારણ્યમાર્ગે ગચ્છતો ભગવતઃ સમીપમાગત્યાનાર્યલોકાઃ પરીપહોપસર્ગ  
ચક્રુઃ । એતન્નાનુપદમેવ વક્ષ્યતે ॥૮॥

દૃષ્ટાન્તદ્વારા સૂત્રકાર ઇસી વાતકી પુષ્ટિ કરતે હૈં—'નાગો' ઇત્યાદિ ।

જિસ પ્રકાર યુદ્ધક્ષેત્રમ્ ગજરાજ શત્રુસેનાકો પરાસ્ત કર  
ઉસસે પાર હો જાતા હૈ, ઠીક ઇસી પ્રકાર વે મહાવીર પ્રભુ મી લાઢદેશમ્  
ઉપસર્ગરૂપી સેનાકો જીતકર ઉસસે પાર હુણ । એક સમયકી વાત  
હૈ કિજવ ભગવાન વિહાર કરતેર એક એસે ગ્રામમ્ આ રહે થે જો છોડે  
હુણ ગ્રામસે વહુત દૂર થા, તથા જિસમ્ વે પહિલે કમી નહીં આયે થે,  
ઉસ સમય જંગલી માર્ગસે આતે હુણ ઉનકે પાસ વહુતસે અનાર્યજન  
આયે ઓર અનેક પ્રકારકે પરીપહ ઓર ઉપસર્ગ કરને લગે ॥૮॥

દૃષ્ટાન્તદ્વારા સૂત્રકાર એ જ વાતની પુષ્ટિ કરે છે—'નાગો' ઇત્યાદિ

જે રીતે યુદ્ધક્ષેત્રમા જેમ ગજરાજ શત્રુસેનાને પરાસ્ત કરી એની  
આરપાર નીકળી જાય છે બરાબર એ જ રીતે મહાવીર પ્રભુ પણ લાઢ દેશમાં  
પરિપહ અને ઉપસર્ગરૂપ સેનાને જીતી એનાથી પાર થયા એક સમયની વાત  
છે કે જ્યારે ભગવાન વિહાર કરતા કરતા એક એવા ગામમાં જઈ રહ્યા હતા  
કે જે છોડેલા ગામથી ઘણો દૂર હતો અને જ્યાં અગાઉ કદી પણ ગયા ન  
હતા. એ વખતે જ ગલના માર્ગથી જતા ઘણા અનાર્ય લોકો તેમની પાસે  
આવ્યા અને એમના ઉપર અનેક પ્રકારના પરિપહ અને ઉપસર્ગ કરવા લાગ્યા. (૮)

उत्पाह—'उचसंकमत०' इत्यादि ।

मूलम्—उचसकमतमपडिन्न, गामतिय पि अप्यत्तं ।

पडिनिक्खमित्तु लुसिंसु, एयाओ पर पलोहि चि ॥९॥

उपा—उपसकामन्तमप्रतिष्ठां ग्रामान्तिकमपि अप्राप्तम् ।

प्रतिनिष्कम्प्य अखपिपु एतस्मात् पर पठायस्वेति ॥ ८ ॥

टीका—प्रतिनिष्कम्प्य=वेऽनार्यठाकास्तस्मात् ग्रामात् प्रतिनिर्गत्य, अप्रतिष्ठां=निपत्यावस्थानादिप्रविहारहितम्—उपसंकामन्तम्=वासार्यं व्रजन्तं, ग्रामान्तिके=वसतिसमीपे प्राप्तमप्राप्तं वा भगवन्तम् अखपिपु=दण्डमुष्ट्यादिभिस्ताडयामासुः, ऊचुध—'एतस्मात्=इतः स्थानात् परम्=अन्यस्थानं, पठायस्व' इति ॥ ९ ॥

किञ्च—'इयपुब्बो' इत्यादि ।

सूत्रकार इन्हीं परीपह और उपसर्गों को पतलानेके लिये सूत्र कहते हैं—'उचसंकमत०' इत्यादि ।

उस ग्रामके वे अनार्यजन अपने २ घरसे निकल कर नियमित स्थान पर ठहरनेके अथवा एक नियत स्थान पर रहने आदिके कर्त्तव्य रहित वन भगवानसे जो उस समय ठहरनेके लिये उस ग्रामकी ओर बढ़ रहे थे, तथा वसतिमें आने भी नहीं पाये थे, उस पहले ही पासमें आकर कहने लगे कि तुम यहाँसे किसी दूसरी जगह भाग जाओ। ऐसा कहते हुए उन लोगोंनि भगवानको दण्ड, मुष्टि आदिसे खूब प्रहार किया ॥९॥

और भी 'इयपुब्बो' इत्यादि ।

सूत्रकार के परिपह और उपसर्गोंनि समझववा भाटे सूत्र कहे छे—'उचसंकमत०' इत्यादि ।

उके अग्रता के अनार्यजन पौत-पौताना घरेषी नीकवी नियमित स्थान पर शोभायाना अथवा एक नियत स्थान पर रहेवा अपडिना जपनधी स्वीत जेवा भगवानधी के ने ते समय रहेवा भाटे ते आगनी तरक आनी कथा कथा, अने वसतीमा आवी पधु नदि यथा ते पडेवाँव सामने आवी रहेवा आग्या के तमे तद्व्यतिकर आधी वील अथवाके आगी आगेले जेम कही जे दोहोके भगवानने ताकरी, आगनी मुठी वगैरधी पुन प्रकार कहेवा (६)

इती—'इयपुब्बो' इत्यादि ।

सुद्ध-हयपुष्पां तरय दंडेण, अदुवा मुष्टिणा अदु कुंतफलेण ।  
अदु लेष्टुणा कवालेण, हंता हंता बहवे कंदिसु ॥१०॥

उपा-दुष्टमत्र दंडेन, अथवा मुष्टिना अथवा कुंतफलेन ।

अथ लेष्टुना कवालेन, हंता हंता बहवः कंदिसुः ॥ १० ॥

टीका-उत्र-ग्रामाद् बहिः स भगवत् कर्मणः-सुं दंडादिभिर्नाडित  
अपि, तथापि दंडेन अथवा-मुष्टिना, अथवा-कुंतफलेन-मलेन, अथवा-  
लेष्टुना-कवालेन, कवालेन-यदुष्टमत्रगदिना हंता हंता बहवः-अनार्याः, कंदिसुः-  
पुष्पपुष्पत जीहोऽयं मुष्टिनः इति उक्तं-उक्तं-उक्तं चक्रुः ॥ १० ॥

छिन्न-‘मंसाणि’ इत्यादि ।

सुद्ध-मंसाणि छिन्नपुष्पाणि, उट्टंभिया एगया कायं ।

परीसहाइं नृचिसु, अदुवा पांसुणा उवकारिसु ॥११॥

उपा-मंसाणि छिन्नपुष्पाणि अत्राम्य एवदा कायम् ।

परीषदा उच्छ्रिष्टुः, अथवा पांसुना उवकारिष् ॥११॥

टीका-उत्र भगवतः शरीरे मंसाणि छिन्नपुष्पाणि-सुं छिन्नानि आसन्  
तथापि एवदा-एवदाचित् कार्य-भगवतःशरीरम् अत्राम्य-आक्रम्य परीषदाः-

प्रसु जब उदरनेके लिये उस गांवके पास आ पहुँचे तब एक तो उन  
अनार्योंने उन्हें गांवकी बाहर ही पहिले दण्ड मुष्टि आदिसे खुब  
मनमाना प्रहार किया । दण्डसे, कुंतफल-भालसे, निदीके डेलोंसे,  
खपरियोंसे प्रहार कर जब वे गाँव हुए तो फिर वे चिल्ला-चिल्लाकर  
कहने लगे कि-अरे भाईयो ! देखो देखो यह मुष्टिहन कैसा व्यक्ति है ? १०  
फिर भी-‘मंसाणि’ इत्यादि ।

उन अनार्य लोगोंने भगवानके शरीरको पहिले ही अनेक प्रकारसे  
झन-विझन कर दिया था, और उन्हीं मंसापिंड भी कहीं-से काट

असु क्यरे देखाय नारी के गमनी पडे पडेका त्यारे केड तो के  
कसपेके तेमरे गमनी बहार न दंड, मुष्टि वरेदेवी मर मरेके दंडी  
दादाधी मारीया देवीके डे दीधनकी मर नारी थान्द अथा तो इती ते सते  
परी परीने केका द.अ.डे करे बडके ! सुके का मुष्टि देवी अडि के. (१०)

छिन्न-‘मंसाणि’ इत्यादि ।

के कसपे केकेके कसपेके शरीरने पडेकेवी न दाधीके  
दथा दथ वडे मर नारी थीरा उवरदाचुं अनावी देवा उवरदा केड देड-

विबिधप्रतिष्ठापरीपररूपा अनार्यलोकाः भगवन्तमद्युःश्रियुः—प्राकृष्टन्तः, भववा-  
पासुना=भूलिना उपाकिरन्=भगवतः शरीरमात्रमदयामासुः ॥ ११ ॥

किञ्च—'उच्चालइय' इत्यादि ।

मूस्म्—उच्चालइय निहर्णिसु, अदुवा भासणाउ खलइसु ।

घोसट्टकाय पणयाऽऽसी, दुक्खसहे भगव अपडिस्से ॥१२॥

छाया—उच्चाल्य निप्रधुः अथवा भासनादस्त्रस्यन् ।

भ्युत्सृष्टकायः प्रणत आसीत् दुःखसहः भगवान् अपठिहः ॥१२॥

टीका—अनार्यलोका उच्चाल्य=उच्चैर्नीत्या=भगवन्तमूर्ध्वमुत्थाप्य निप्रधुः  
=भूमौ निपातयामासुः । अथवा भासनात्=गोदोहिकोत्कृष्टदुक्खीरासनाविकाद  
अस्वच्छयन्=भगवन्तं निपातितवन्तः । भगवान् परीपहोपसर्गं केन प्रकारेण सह ?  
इत्याह—भ्युत्सृष्टकाय इत्यादि । भगवांसु भ्युत्सृष्टकायः=कापोस्सर्गास्वितः, अत्र

लिया था, फिर भी उनको भगवानको दुःखित करने की कुत्सित मनो  
वृत्तियाँ ज्ञात नहीं हुईं । वे कभी २ भगवानके शरीर पर अनेक प्रकार  
से आक्रमण कर उन्हें इधर उधर लोंच डालते और फिर बादमें  
उनके ऊपर अधिकसे अधिक घूलि फेंकते ॥ ११ ॥

और भी—'उच्चालइय' इत्यादि ।

वे अनार्यजन कभी २ भगवानको ऊपर उठाकर नीचे पटक देते थे,  
अथवा गोदोहिक आसन, उत्कृष्टक आसन, और वीरासन आदिसे महीं  
चलायमान उन प्रभुको वे उन आसनोंसे चलायमान करते—हिलाकर  
पटक देते । भगवानने ये परीपह और उपसर्ग किस प्रकारसे जीते हसें  
'घोसट्टकाय' इस पदसे स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं—ये सब परी

अथवावर्धाधी भासना बोधा पणु कापी वीपेता, आ प्रकारना द्विचकार इत्यधी  
पणु न सतेपातां बोधी नीतस्ता प्रभुना शरीरने जेक आनुधी वील आनु  
इसरथातु तेम प्रभु जने इकिसमेधी पणु दुःखीत अनापवातु इरेण (११)

इरी पणु—'उच्चालइय' इत्यादि

जे अनार्य बोधाने आटलेधी पणु सतेप न बोधे होय तेम  
अगवानना सत-पिक्षत जनी जपेता शरीरने उंसु उपापी इकथाभा पणु  
जाधी सपेता नदी परतु वेरोदिक आसन उत्कृष्टक (उत्कृ) आसन  
जने वीरासन वनेरेधी भ्यानस्य सपेता प्रभुने जे बोधे चलायमान इरी सपेता  
नदी अगवाने आ प्रकारना भावताविडोलां अनार्योकास अथपेता इटोने  
हेना प्रकारे सदन कर्मा ? जेने 'घोसट्टकाय' जे पदधी स्पष्ट करतां सूत्रकार इहे उ-

एव अप्रतिज्ञः=दुःखप्रतीकारप्रतिज्ञारहितः, अत एव दुःखसहः=परीपहोपसर्गजन्य  
दुःखसहिष्णुः सन् प्रणतः=प्र=प्रकर्षेण नतः=धर्मध्यानलीन आसीत् ॥१२॥

भगवतः परुषपरीपहसहनं सदृष्टान्तमाह—'सूरो' इत्यादि ।

मूलम्—सूरो संगामसीसे वा, संबुडे तत्थ से महावीरे ।

पडिसेवमाणे फरुसाइं; अचलं भगवं रीइत्था ॥१३॥

छाया—सूरः संग्रामशीर्षे इव, संवृतस्तत्र स महावीरः ।

प्रतिसेवमानः परुषान्, अचलो भगवान् अरीयत् ॥ १३ ॥

टीका—सङ्ग्रामशीर्षे=रणभूमौ संवृतः=कवचाच्छादितकायः सूर इव=अप्रति-  
हतपराक्रमी योद्धेव स महावीरः संवृतः=धैर्यादिगुणाच्छादितमनोवाक्काययोगः

पह और उपसर्ग भगवानने धर्मध्यानमें लीन होनेसे जीते । धर्मध्यानमें  
लीनता होने पर ही कायसे ममत्वका अभाव होता है, जहां धर्मध्यान  
का सद्भाव होता है वहां दुःखादिकोंके होने पर भी आत्मा उनसे  
विचलित नहीं होती, वे प्रभु अप्रतिज्ञ—उन प्रहारादि परीपहोंके प्रतीकार  
करनेकी भावनासे रहित थे ॥ १२ ॥

भगवानने इन परुष—कठोरवचनादिजन्य परीपहोंको कैसे सहन  
किया ? इस विषयका खुलाशा सूत्रकार दृष्टान्तसे करते हैं—'सूरो'  
इत्यादि ।

जिस प्रकार कवच धारण किये हुए कोई एक सबल योधा युद्धमें  
शत्रुओंके द्वारा अनेक रीतिसे किये गये भाले आदि शस्त्रोंके आघातों  
से बालर वच निकलता है और विजयश्री की प्राप्तिसे सुशोभित होता

आ अथा त्रास अने दुःखो लगवान धर्मध्यानमां लीन होवाथी अतेला  
धर्मध्यानमां लीनता होवाथी अ कायाना ममत्वना अभाव थाय छे न्या धर्म-  
ध्यानना सहलाव होय छे त्यां गमे तेवा दुःखो आवी पडे तो पणु आत्मा  
विचलित थतो नथी ते प्रभु अप्रतिज्ञ—गमे तेवा आकंमणु थया छतां तेनी सामे  
अथाव हरवानी छे सामेना करवानी बावनाथी रहित डता (१२)

लगवाने अे अनार्योंनां कठोर वचनेथी तथा भारथी उत्पन्न थयेल परी-  
पहोने कछ रीते सहन कर्या ? आ विषयना खुलासा सूत्रकार दृष्टान्तथी करे छे—  
'सूरो' इत्यादि

अे प्रकारे कवच धारणु करेले कछ अेक सभण सैनिक युद्धमां शत्रुअे  
तरुथी लाला, तरवार वगेरे शस्त्रोथी थता प्रहारोनी तेम अ तेना शरीरना  
भासना होया अहार नीकणी अता तेनी पणु हरकार न करता विजय भेणव-

तत्र-आइदेशे परुपान्-दु'सहपरीपहान् प्रतिसेधमानः-सहमानः, अत एव अकृत्य-  
 निष्कम्पः सन् अरीयत-विहरतिस्म । यया शूर' शत्रुभिः कुन्तादिघ्नैः प्रविशन्  
 मानोऽपि कवचावृतशरीरः सन् न पराजयं प्राप्नोति तथा भगवानपि अनार्यस्त्रै-  
 र्दंष्ट्रमुष्ट्यादिविषघोरपरीपहोपसर्गैर्यद्गतोऽपि धैर्यादिगुणसंभृत' सन् न धर्मस्या  
 नश्रुतिलक्षणं पराजयं प्रापेति भाषः ॥१३॥

उद्देशकार्यमुपसहरभाह—'एस विही' इत्यादि।

मूल्म्—एस विही अणुकृतो माहणेण महमया ।

वहुसो अपडिज्ञेण भगवया एव रियति-चित्तेमि ॥१४॥

है, उसी प्रकार उस लाह देशमें धैर्य आदि सद्गुणरूप कषचसे युक्त  
 मन, बचन और काय योगबाले भगवान् महावीरने उन दु'सह परी-  
 पहोंको अबोल धन कर सहते हुए विहार किया । तात्पर्य यह है कि—  
 जिम प्रकार कषच पहिरे हुए घोडा युद्धमें शत्रुओंद्वारा किये गये चारों  
 को बचाता हुआ अपने लक्ष्य पर उटा रहता है और अन्तमें विजयकी  
 प्राप्तिसे जैसे आनंदित होता है, उसी प्रकार ठीक भगवान् महावीर भी  
 उस छाहदेशमें इन अनार्यों द्वारा किये गये अनेक प्रकारके भयकर  
 उपद्रवोंसे युक्त होने पर भी धैर्य आदि गुणोंसे संभृत शरीरबाले होनेसे  
 उन्हें सहते हुए अपने धर्मध्यानसे तनिक भी विचलित नहीं हुए ॥१३॥

इस उद्देशके अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—  
 'एस विही' इत्यादि ।

वामां च तन्मज्ज गती शत्रुज्जेने दसववामां च अट्ठे के ध्येवनी प्राप्तिर्मां च  
 भयत्रुल रहे छे अने वेदनानी के पीतान्ना शरीरान्ना लज्जता मांसना होवानी  
 चरा सशरीजे परवा करतो नधी, जे च रीते जे लाह देशमां धैर्य वज्जेरे सइ  
 शुद्धरूप कवचधी शोभावा अने तेमज्ज मन बचन अने कायान्ना योगबाला लज्ज  
 वान महावीरे पण् अस्सइ जेवां दु जेने अट्ठाल रहीं सद्धन इत्यां विहार कधी  
 तात्पर्य जे के-ने रीते कवच धारण करेवा मोदाने युद्धमां शत्रुजे तरहधी कस्वामां  
 आवता प्रहार-वारने जयावतां जयावता ते मोदी पीतान्ना लक्षधी चरा पण्  
 विचलित बनतो नधी अने अते विज्ज अग्र करे छे मीह जे च रीते लज्जवान  
 महावीर पण् जे लाह देशमां अनार्यों द्वारा कस्वामां आवेल अनेक प्रकारना  
 भयकर उपद्रवो आववा छत्ता पण् धैर्य वज्जेरे शुद्धधी शोभावा शरीरान्ना  
 होवानी आवी पडेवा उपद्रवोने सडेवा छत्ता पीतान्ना धर्मध्यानधी लेश मात्र पण्  
 अलित जनेल न छता (१३)

आ उद्देशना अर्थना उपसंहार इत्यां सूत्रकार कहे छे- एस विही' इत्यादि

छाया—एष विधिरनुक्रान्तः माहनेन मतिमता ।

बहुशः अप्रतिज्ञेन भगवता एवं रीयन्ते, इति ब्रवीमि ॥१४॥

टीका—अस्य व्याख्याऽत्रैवाध्ययने प्रथमोद्देशेऽभिहिता, तत एवावगन्तव्या । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ १४ ॥

नवमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ९-३ ॥

इस सूत्रकी व्याख्या इसी अध्ययनके प्रथम उद्देशमें की जा चुकी है, अतः वहांसे समझ लेनी चाहिये । 'इति ब्रवीमि' इसका अर्थ पहले किया जा चुका है ॥ १४ ॥

नववें अध्ययनका तीसरा उद्देश समाप्त ॥९-३॥

आ सूत्रनी व्याख्या आ अध्ययनना प्रथम उद्देशमा डडेवासां आवी गध छे, भाटे त्यांथी समल देवी नेधये. 'इति ब्रवीमि' आना अर्थ पडेलां आवी गथेल छे (१४)

नवमा अध्ययनना त्रीने उद्देश समाप्त ॥९-३॥



॥ अथ नवमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देश ॥

इहानन्तरतृतीयोद्देशके भगवत् परीपहोपसर्गसहनं प्रतिबोधितम् । अथ चतुर्थोद्देशक रोगात्कृपोद्वाप्रतीकारपरिहारण परीपहोपसर्गांगामतीव सहनं तपमर्षा प्रवृत्तिषु भगवत् कथयन्नाद्यं सूत्रमाह—'ओमोयरियं' इत्यादि ।

मूष्म्—ओमोयरिय चापह्, अपुष्टेऽपि भगवत् रोगेहिं ।

पुष्टे वा अपुष्टे वा, नो से साइज्जह तेइच्छ ॥१॥

छाया—अनमौदरिकां करोति असृष्टोऽपि भगवान् रोगै ।

सृष्टो वा असृष्टो वा नो स स्वदत्ते चिच्छिसाम् ॥ १ ॥

टीका—भगवान् रोगैरसृष्टोऽपि=बाधादिप्रकोपरहितोऽपि, अनमौदरिकां=न्यूनोदरतां करोतिस्म, लोका हि रोगाऽऽक्रान्ताः सन्तस्तत्रप्रमनार्थं न्यूनोदरतां करोति, भगवांस्तु रोगानाक्रमणेऽपि कर्मनिर्जरार्थं तां कर्तुं प्रवृत्त इति भाव । यद्यपि स भगवान् असृष्टो वा=कासघासादिभिर्नाक्रान्त आसीत्, किन्तु सृष्टा वा=कुकुरादिभिः क्षतगात्रोऽपि सन् चिच्छिसां=भौषणादिभिस्तत्रतीकारं नो स्वदत्ते=नामिलपत्तिस्मा ॥१॥

॥ नवमे अध्ययनका चौथा उद्देश ॥

तृतीय उद्देशमें भगवानने किन्तु परीपह और उपसर्गोंको सहा ? यह प्रकट किया गया है । इस चतुर्थ उद्देशमें भगवानद्वारा आचरित तपमर्षाका वर्णन किया जायगा, अतः मर्ष प्रथम सूत्रकार अनमौदर्य तपका कथन करते हैं—'ओमोयरियं' इत्यादि ।

भगवान यद्यपि किसी भी घातादिकक प्रकोपसे उत्पन्न होने वाले रोगसे मदा रहित थे तो भी ऊनोदर नामक तपको करते थे, कारण कि कर्मोंकी निजगका प्रधान साधन तप ही है । तपके बिना कर्मोंकी निर्जरा

नवमा अध्ययनना चोथो उद्देश

त्रीज उद्देशमा भगवाने केना केना पस्विद अने उपसर्गो सहा तेतु वजुन कश्चाम् आवेक्षे छे मा भाष्ये उद्देशमां भजवाने व्याख्येती तपस्वर्णु वजुन कश्चाम् आवेक्षे आ भाष्ये सब प्रथम सूत्रकार अनमौदर्य तपनु कथन करे छे—ओमोयरियं इत्यादि

भजवान ले के केअपजु वात आदिना प्रकापधी उत्पन्न कश्चाम् शत्रुधी अद्य शक्तिव दत्ता ते पजु उनेदगी तप इत्या दत्ता कश्चु के कर्मोनी निज शत्रु प्रधान साधन तप न छे तप वगर कर्मोनी निज श

नहीं हो सकती है। तपसे दो लाभ होते हैं—एकतो संचित कर्मोंकी निर्जरा और दूसरा संवरकी प्राप्ति, इसी लिये मोक्षार्थियोंको मोक्ष प्राप्तिके लिये तपश्चर्याकी अनिवार्य आवश्यकता है। भगवानने भी इसी अभिप्रायसे तपश्चर्या करनेमें थोड़ी भी कमी नहीं रखी, और ज्यादासे ज्यादा तपश्चर्या करने में ही अपने आपको संलग्न किया, इस विषयमें उन्हे अनेक परीषद् और उपसर्गोंको सहने पड़े—जो सामान्यजनके लिये असह्य होते हैं।

भावार्थ—प्रायः यह बात देखी जाती है कि मनुष्य जब किसी रोग आदिसे आक्रान्त होता है, तब वह ऊनोदर रहता है जिससे उसके रोग शमित हों, परन्तु भगवान तो जन्मसे ही रोगादिकसे रहित थे, फिर भी तप करनेमें जो उन्होंने करकसर नहीं रखी, उसका कारण सिर्फ कर्मोंकी निर्जरा करना था। इसी प्रकार श्वास कास (खांसी) आदिसे भगवान रहित थे। उन्हें त्रिलोकमें भी कोई ऐसी बीज-वस्तु नहीं थी जो दुर्लभ होती, परन्तु फिर भी जब उनके उपर कुत्ते आदि उपसर्ग करते, उनके शरीर पर छपटकर जब उन्हें काट खाते तब भी वे किसी भी औषधिका उपचार नहीं करते ॥ १ ॥

अनी शकती नथी तपथी ये लाभ थाय छे—एक तो संचित कर्मोंनी निर्जरा अने अलीनु संवरनी प्राप्ति, आ माटे मोक्षार्थीओअे मोक्षप्राप्ति माटे तपश्चर्या करवी नेछअे अे अनिवार्य छे भगवाने पणु आ अलिप्रायथी तपस्या करवामा नरा पणु पाकी राभेद नथी, अने वधारेभां वधारे तपस्या करवामा पोते पोताना आत्माने नेडेडो. आ आरामा अेअने अनेक प्रकारना परिषद अने उपसर्गो सडेवा पडथा ने सामान्य भाणुसो माटे असह्य डोय छे

भावार्थ—आधी अे वात नेवामा आवे छे के न्यारे केछ रोग वगेरेथी पीडा उली थाय छे त्यारे ते लुण्ठे रहे छेनेथी तेना रोग ओछे थाय, परतु भगवान तो जन्मथी न रोगादिकथी रहित छता, तो पणु तप करवामा तेओअे नरा पणु उणुप राथी नथी, तेतु डारणु इकत कर्मोंनी निर्जरा करवानु छतु. आ प्रकारे खांसी—छधरस वगेरेथी भगवान रहित छता तेमना माटे त्रणु डोकभा अेवी केछ पणु वस्तु न छती के ने तेमने माटे दुर्लभ डोय, तो पणु न्यारे कुतराओ वगेरे तेमना उपर आकभणु करता अने उपसर्ग आपता, तेमना शरीर उपर छपट मारी करडता—अथकां भरता त्यारे केछ पणु औषधिना उपचार प्रणु करता नडी (१)

तदेव दर्शयितुमाह—'ससोहणं च' इत्यादि ।

मूल्म—ससोहणं च वमणं च, गायत्र्यभगणं च सिंघाणं च ।

सवाहणं च न से कप्ये, दत्तपक्खालणं च परिष्ठाप ॥२॥

छया—संशोधनं च वमनं च गात्राभ्यञ्जनं च स्नानं च ।

सवाहनं च न तस्य कल्पते दन्तप्रसादनं च परिष्ठाप ॥२॥

टीका—परिष्ठाप=अशुचि, अशुचिसंभवमौदारिकशरीरमिति विदित्वा संशोधनं=वस्तिकर्मणौपचमयोगेण वा मलकोष्ठस्य सम्यक् शोधनं, तस्य मगवतो न कल्पत इत्यन्वयः । एवमग्रेऽपि वमनादिषु योजनीयम् । वमनं=वमनजनकोपचमयोगेण शरीरान्तर्बर्तिकादिनिःसारणं, तथा गात्राभ्यञ्जनं=शतपाकसहस्रपाकैस्त्रैसादिभिः बन्दनकुङ्कुमकेसरादिभिर्वा गात्रोद्धर्तनं, तथा स्नानं=द्रव्यस्नानं=प्रप्रासुकैः न प्रासुकैः वा जलेन स्नानम् । शू द्भिर्निर्ब-दशस्नानं सर्वस्नानं चेति । तत्र इत्यादिभिः शोधानादिष्वौषधातिरेकेणाऽक्षिपस्मप्रसादनमपि वेद्यस्नानम् । सर्वस्नानं=सर्वाङ्ग-

इसी पातको और स्पष्ट करते हैं—'ससोहणं च' इत्यादि ।

मगधाने कमी भी संशोधन-वस्तिकर्म-इमेमा अथवा विरेचक औषधि आदिद्वारा मलकोष्ठकी शोधनक्रिया, वमनकारक औषधिके उपचारसे शरीरके भीतरके कफादिक मैलका संशोधन-बाहर निकालना, शतपाकवाले, अथवा सहस्रपाकवाले तैलसे मर्दन, अथवा बन्दन, कुङ्कुम और केशर आदिसे शरीरका उबटन और प्रासुक अथवा अप्रासुकजलसे द्रव्यस्नान करना, ये समस्त क्रियाएँ मिलकुल नहीं कीं, कारण कि इस प्रकारकी क्रियाओंका करना उनके आधारसे उन्हें कल्प्य नहीं था। द्रव्यस्नान-दशस्नान और सर्वस्नानके भेदसे दो प्रकारका है। हाथ पैर आदिकी शुद्धिके सिवाय आंखों और उनकी पलकोंका प्रक्षालन करना दशस्नान,

आ पातने वधु रूप इत्याभा आवे छे-ससोहणं च' इत्यादि ।

मगधाने कमी पण संशोधन-वस्तिकर्म-जेनीमा अथवा विरेचक औषधी वजेरे द्वारा मगशुद्धिनी क्रिया, वधु-उदनी करावनाच औषधिना उपचारधी शरीरनी उबटनना कइ वजेरे मिलने जहाए कइवे। शतपाकके सहस्रपाक तेवधी मदन अथवा बन्दन, कुङ्कु के केशर वजेरेधी शरीरनु बंधन, गरम अथवा ठण्ड पाणीधी द्रव्यस्नान करणु आवी जधी क्रियाज्येने। मगधाने शक्या तथा कर्षो बने, कारण के आ प्रकारनी क्रियाज्ये करवा भए तेमना अथवाधी तेमने कइव न छता। द्रव्यस्नान-दशस्नान तथा सर्वस्नानना कइधी जे प्रकारना छे हाथ पत्र वजेरेनी शुद्धिना सिवाय आजे अने तेनी पापजोतु पण प्रक्षालन करणु जे दश-स्नान,

क्षालनम्—अप्रासुकजलेन स्नानकरणेऽपूकायादिविराधनया तपःसंयमविनाशात्, प्रासुकजलेनापि स्नानकरणे शुषिरविदीर्णभूमिवर्तिजन्तूनामुत्प्लावनेन प्राणिविराधनायाः सद्भावात् साधोः स्नानं न कल्पत इति भावः । उक्तञ्च—

नोदकक्लिन्नगात्रोऽपि, स्नात इत्यभिधीयते ।

स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥१॥

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं, तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।

शतशोऽपि वपुर्धौतं, सुराभाण्डमिवाशुचि ॥ २ ॥

और समस्त अंग उपांग सहित शरीरका प्रक्षालन करना सर्वस्नान है। अप्रासुक जलसे स्नान करनेपर अपूकायके जीवोंकी विराधना होती है, इससे स्नान करनेवालेके तप और संयमका विघात होता है। प्रासुकजलसे भी स्नान करनेसे जीवोंकी विराधना इसलिये होती है कि वह पानी बहकर जमीनमें भीतर समा जाता है और छेदोंमें भरजानेसे उनके भीतर रहे हुए जीव उससे मर जाते हैं। इस प्रकार उन्हें कण्टका कारक होनेसे वह प्रासुकजल द्वारा किया गया स्नान भी साधुओंके लिये हेय है। कहा भी है—

नोदकक्लिन्नगात्रोऽपि स्नात इत्यभिधीयते ।

स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥१॥

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।

शतशोऽपि वपुर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥२॥

अने समस्त अंग उपांगो सहित शरीरको प्रक्षालन करवु ते सर्व-स्नान अप्रासुक जलथी स्नान करवामा अपूकाय एवानी विराधना थाय छे, जेथी स्नान करनारने तप तेमज संयमनेो विघात थाय छे प्रासुक जलथी पणु स्नान करवथी एवानी विराधना ओ रीते थाय छे के ते पाणी वडेतु-वडेतु जमीनमा समाई जाय छे, तेमज जमीनना छिद्रोमा उत्तरी जतु डोवाथी तेमा रडेला एवो भरे छे, आ प्रकारे तेना कण्टु कारणु डोवाथी तेवा प्रासुक जलथी करायेल स्नान पणु साधु माटे त्याज्य डोय छे कलु पणु छे—

नोदकक्लिन्नगात्रोऽपि, स्नात इत्यभिधीयते ।

स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥१॥

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति ।

शतशोऽपि वपुर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥ २ ॥

अन्यच्च—स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात्कार्यं परित्यज्य, नैव स्नान्ति व्रमे रता ॥१॥

अपरं च—“ मलमह्लपंकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।

जे पावपंकमइला, ते मइला जीबलोपमि ” ॥ १ ॥

छाया—“ मलमलिनाः पङ्कमलिनाः,—धूलीमलिना न ते नरा मलिनाः ।

य पापपङ्कमलिनाः,—स्ते मलिना जीबलोके ॥१॥ ” इति ।

तथा सवाहनं—इस्तादिना शरीरपरिकर्म, अस्थ्यादिसुखार्थं गात्रनिष्पीडनम् ।

तथा—दन्तप्रक्षालनं—काष्ठेन घूर्णादिना वा दन्तमार्जनं च तस्य भगवतः श्रीवर्द्धमान-  
स्वामिनो न कल्पते ॥ २ ॥

और भी—स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात् कार्यं परित्यज्य, नैव स्नान्ति व्रमे रता ॥१॥

फिर भी—मलह्लपंकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।

जे पावपंकमइला, ते मइला जीबलोपमि ॥१॥

भाषार्थ—पानीको शरीर पर डालना, अथवा उससे शरीरको गीला करना इसका नाम स्नान नहीं है । ऐसे लौकिक स्नानसे न बाह्य शरीरकी शुद्धि होती है और न आभ्यन्तर आत्माकी ही । इन दोनों प्रकारकी शुद्धिका कारण दमस्नान है । पाँच इन्द्रिय और मनको घश करनेका नाम दम है । इससे ( पाँच इन्द्रियोके घश करने से ) शरीरकी, और मनको घश करनेसे आत्माकी शुद्धि होती है, इसीका नाम बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि है । दम को स्नान इस लिये कहा है कि जिस प्रकार जल स्नानसे शरीर आदिके ऊपरका लगा हुआ मैल दूर हो जाता है

३री पद्य—स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात् काम परित्यज्य, नैव स्नान्ति व्रमे रताः ॥१॥

३री पद्य—“ मलमह्लपंकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।

जे पावपंकमइला, ते मइला जीबलोपमि ” ॥१॥

भाषार्थ—पापाने शरीर ऊपर डोगलु, अथवा तेनाधी शरीरने धावु तेनु नाम स्नान नहीं पद्य कोषे लौकिक स्नानधी नहीं बाह्य शरीरनी शुद्धि यती के नहीं तेम अदरना आत्मानी पद्य, आ मनने प्रकारनी शुद्धिउ कारण दमस्नान छे पाप इन्द्रियो मनने मनने वश करवानु नाम दम छे आधी पाप इन्द्रियोने वश करवाधी शरीरनी मनने मनने वश करवाधी आत्मानी शुद्धि बाध छे तेनु नाम अभ्यन्तर शुद्धि छे दमस्नान आ भाटे बढेबाबेल छे के के प्रकार अज्ञस्नानधी शरीर वजेशे ऊपर बाजेवे मैल दूर भई बाध छे के प्रकार आ इन्द्रियोधी

किञ्च—'विरए' इत्यादि ।

मूलम्—विरए य गामधम्मोहिं, रीयइ माहणे अबहुवाई ।

सिसिरंमि एगया भगवं, छायाए झाइ आसीय ॥३॥

छाया—विरतश्च ग्रामधर्मेभ्यो, रीयते माहनः अबहुवादी ।

शिशिरे एकदा भगवान्, छायायां व्यायति आसित्वा ॥३॥

उसी प्रकार इस दम-क्रियासे इन्द्रिय आदिकी निरर्गल प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुई शारीरिक और आत्मिक अपवित्रता भी जो एक मैल जैसी मानी गई है नष्ट हो जाती है। दमस्नानके बिना इस अन्तर्गत चित्तकी दुष्टता चाहे हजारों भी तीर्थोंमें स्नान क्यों न कर लिया जाय कभी नष्ट नहीं हो सकती है। जिस प्रकार मदिराके रखनेका वर्तन अनेक बार धोने पर भी शुचि-पवित्र नहीं होता है, उसी प्रकार सैकड़ों बाहिरी उपायसे धोया गया यह शरीर भी कभी पवित्र नहीं हो सकता है। इसलिये जो दमस्नान करनेमें रत साधु हैं वे इस मद और दर्पकारी तथा कामके प्रधान कारणभूत इस जलस्नानसे दूर रहते हैं। इसी लिये प्रभु इन सब बातोंसे परे रहे और आत्मिक शुचिताकी वृद्धिकी ओर अग्रसर हुए। भगवानने इसी प्रकार 'शरीरको सुख मिले' इस भावनासे दूसरोंको प्रेरित कर कभी भी किसीसे अपना शरीर नहीं दबवाया और न अपने दाँनोंका प्रक्षालन-दन्तधावन ही किया, क्योंकि ये सब बातें जैनदीक्षामें हेय-त्याज्य-मानी जाती हैं ॥२॥

इन्द्रिय वगेरेनी निरर्गल प्रवृत्तिथी उत्पन्न थयेल शारीरिक अने आत्मिक अपवित्रता पण जेने मैल जेवी मानी देवायेल छे ते नाश पाबे छे दमस्नान बिना अन्तर्गत चित्तनी दुष्टता हजरे तीर्थीमा स्नान करवाथी पण नाश पावती नथी. जे रीते हाइ राखवानु काम अनेक पथत साइ करवा छतां पणु ते तेनी वासथी मुकत थई पवित्र बननु नथी, तेवी रीते पहारना से कडे उपायेथी धोवामा आवेल आ शरीर पणु कही पवित्र थनु नथी, भाटे जे साधु दमस्नान करवामां भस्त छे तेवा साधु आवा मद अने दर्पकारी तथा कामना प्रधान कारणभूत आ जलस्नानथी दूर रहे छे आथी न प्रभु आपी रीतथी दूर रह्या अने आत्मिक शुद्धिनी वृद्धिने भाटे अग्रसर रह्या भगवाने आवी रीते 'शरीरने सुख मणे' आ लावनाथी जीलजोने प्रेरित करी कही पणु केछथी पोतानु शरीर धपावराब्यु नडि, अने पोताना हातानु धोवु अटले हातणु करवु वगेरे पणु करेन नडी, कारणु के आ अधी वातो जैनदीक्षामा हेय-त्याज्य-मानेन छे. (२)

अन्यथा—स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं मृतम् ।

तस्मात्कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रता ॥१॥

अपरं च—“ मसमइलपकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।

जे पानपंकमइला, ते मइला जीवलोयमि ” ॥ १ ॥

छाया—“ मलमलिनाः पङ्कमलिनाः,—धूलीमलिना न ते नरा मलिना ।

ये पापपङ्कमलिनाः,—स्ते मलिना जीवलोके ॥१॥ ” इति ।

तथा संवाहनं—इस्तादिना शरीरपरिकर्म, अस्यादिसुत्सार्थं गाभनिपीडनम् ।

तथा—दन्तप्रसादनं—काष्ठेन चूर्णादिना वा दन्तमात्रेण च तस्य मगबताः भीष्ममान-  
स्वामिनो न कल्पत ॥ २ ॥

और भी—स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं मृतम् ।

तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

किर मी—मलइलपंकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।

जे पापपंकमइला, ते मइला जीवलोयमि ॥१॥

भावार्थ—पानीको शरीर पर डालना, अथवा उससे शरीरको गीला करना इसका नाम स्नान नहीं है। ऐसे लौकिक स्नानसे न बाह्य शरीरकी शुद्धि होती है और न आभ्यन्तर आत्माकी ही। इन दोनों प्रकारकी शुद्धिका कारण दमस्नान है। पांच इन्द्रिय और मनको घटा करनेका नाम दम है। इससे (पांच इन्द्रियोंके घटा करने से) शरीरकी, और मनको घटा करनेसे आत्माकी शुद्धि होती है, इसीका नाम बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि है। दम को स्नान इस लिये कहा है कि जिस प्रकार जल स्नानसे शरीर आदिके ऊपरका लगा हुआ मैल दूर हो जाता है

दूरी पथु—स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं मृतम् ।

तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

दूरी पथु—“ मसमइलपकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।

जे पापपंकमइला, ते मइला जीवलोयमि ” ॥१॥

भावार्थ—पाथुने शरीर ऊपर डींगलुं, अथवा तेनाथी शरीरने पाथुं तेनु नाम स्नान नहीं पथु अथवा लौकिक स्नानथी नहीं बाह्य शरीरनी शुद्धि घती के नहीं तेम अथवा आत्मानी पथु, आ अन्ते प्रकृती शुद्धिनु कारण दमस्नान छे पथु छन्द्रेथे अने मनने पथु करवातु नाम दम छे आमी पाच छन्द्रेथेने पथु करवाथी शरीरनी अने मनने पथु करवाथे आत्मानी शुद्धि थाम छे तेनु नाम अथवा पथु शुद्धि छे। दमस्नान आ भाटे करवायेछ छे के जे प्रकार अथवा आत्मानथी शरीर बयेरे ऊपर बायेवे। मैल

किञ्च-‘विरए’ इत्यादि ।

मूलम्-विरए य गामधम्ममेहिं, रीयइ माहणे अबहुवाई ।

सिसिरंमि एगया भगवं, छायाए झाइ आसीय ॥३॥

छाया--विरतश्च ग्रामधर्मेभ्यो, रीयते माहनः अबहुवादी ।

शिशिरे एकदा भगवान्, छायायां ध्यायति असित्वा ॥३॥

उसी प्रकार इस दम-क्रियासे इन्द्रिय आदिकी निर्गल प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुई शारीरिक और आत्मिक अपवित्रता भी जो एक मैल जैसी मानी गई है नष्ट हो जाती है। दमस्नानके विना इस अन्तर्गत चित्तकी दुष्टता चाहे हजारों भी तीर्थों में स्नान क्यों न कर लिया जाय कभी नष्ट नहीं हो सकती है। जिस प्रकार मदिराके रखनेका वर्तन अनेक बार धोने पर भी शुचि-पवित्र नहीं होता है, उसी प्रकार सैकड़ों बाहिरी उपायसे धोया गया यह शरीर भी कभी पवित्र नहीं हो सकता है। इसलिये जो दमस्नान करनेमें रत साधु हैं वे इस मद और दर्पकारी तथा कामके प्रधान कारणभूत इस जलस्नानसे दूर रहते हैं। इसी लिये प्रभु इन सब बातोंसे परे रहे और आत्मिक शुचिताकी वृद्धिकी ओर अग्रेसर हुए। भगवानने इसी प्रकार ‘शरीरको सुख मिले’ इस भावनासे दूसरोंको प्रेरित कर कभी भी किसीसे अपना शरीर नहीं दबवाया और न अपने दांतोंका प्रक्षालन-दन्तधावन ही किया, क्यों कि ये सब बातें जैनदीक्षामें हेय-त्याज्य-मानी जाती हैं ॥२॥

इन्द्रिय वगेरेनी निर्गल प्रवृत्तिथी उत्पन्न थयेल शारीरिक अने आत्मिक अपवित्रता पण जेने मैल जेवी मानी देवायेल छे ते नाश पाभे छे दमस्नान विना अन्तर्गत चित्तनी दुष्टता हजरे तीर्थोमा स्नान करवाथी पण नाश पाभती नथी. जे रीते दाइ राभवानु काम अनेक वषत साइ करवा छता पणु ते तेनी वासथी मुकत थछ पवित्र भनतु नथी, तेवी रीते गहाराणा से कडे उपायेथी धोवामा आवेल आ शरीर पणु कही पवित्र थतु नथी, माटे जे साधु दमस्नान करवामां भस्त छे तेवा साधु आवा मद अने दर्पकारी तथा कामना प्रधान कारणभूत आ जणस्नानथी दूर रहे छे आथी न प्रभु आवी रीतथी दूर रह्या अने आत्मिक शुद्धिनी वृद्धिने माटे अग्रेसर रह्या लगवाने आवी रीते ‘शरीरने सुभ भणे’ आ लावनाथी जीज्ज्याने प्रेरित करी कही पणु कैथथी पोतानु शरीर दभावराव्यु नडि, अने पोताना दातोनु धोवु अटके दातणु करवु वगेरे पणु करेन नडी, कारणु के आ अधी वाता जैनदीक्षामा हेय-त्याज्य-मानेन छे. (२)



टीका—ग्रामधर्मैभ्यः=सुप्तादिविषयेभ्य, विरक्त=निवृत्तः, माहनः=महिंसे-  
पदेशी, अषडुवादी=अल्पमापी, भगवान् रीयते=विहरतिस्म। एकदा शिशिरे  
मगवान् छायायां वृक्षलतामण्डपादेरघस्ताद् भासित्वा=उपविश्य ध्यायति=ध्यान  
लीनो बभूव ॥ ३ ॥

किञ्च—'आयावह' इत्यादि।

मूलम्—आयावह य गिम्हाण, अछलह उक्कुहुए अभितावे।

अवु जावइत्थ लूहेण, ओयणमधुकुम्मासेण ॥४॥

छाया—आतापयति च ग्रीष्मेण, तिष्ठति उत्कुटुकः अभितापम्।

अयाऽयापयद् रुधम, ओदनमधुक्कुम्मापेण ॥ ४ ॥

टीका—भगवान् ग्रीष्मेण आतापयति=सूर्यातापनां सेवतेस्म। केन प्रकारेण  
त्याह—'तिष्ठती'—स्यादि। उत्कुटुकः=उत्कुटुकासनो भूत्वा अभिताप=सूर्याभिमुखं  
तिष्ठति। अय=समुच्चये, तथा रुधेण=नीरसेनान्तमान्तेन पर्युपितेन च ओदनम-  
धुक्कुम्मापम्, आदनः=कोदणोदनादिः, मधु=मधुरशर्णादिकं, कुम्मापः=कुम्माप्यादिः,  
एषां समाहारः ओदनमधुक्कुम्माप, तेन अयापयत्=करीरयानां निर्वाहतिस्म ॥४॥

फिर भी—“विरक्त” इत्यादि।

शब्दाविक्र पांच इन्द्रियोकि विषयोसे सर्वथा विरक्त वे भगवान्  
सदा जीवोको अहिंसा धर्मका उपदेश देनेवाले थे। बहुत कम बोलते  
थे। यदि बोलनेका अवसर आता तो सदा हित मित और प्रिय वचन  
बोलते थे। कभी-कभी शिशिर ऋतुमें भगवान् वृक्ष, लता-मण्डप आदिके  
नीचे बैठ कर ध्यानमें लीन होते थे ॥३॥

और भी—'आयावह' इत्यादि।

ग्रीष्मऋतुमें प्रभु सूर्यके संमुख उत्कुटुक (उक्कु) भासनसे  
बैठकर आतापना छेते। तथा अन्त प्रान्त और पर्युपित कोट्रयका मन्त्र

हरी—विरक्त' इत्यादि

शब्दाविक्र पांच इन्द्रियोना विषयोधी सवथा विरक्त वेना भगवान् सदा  
लयेनी अहिंसाना उपदेशक इत्यादि बहुत बोलते इत्यादि कदाचि बोलवाने प्रसन्न  
आवते तो सदा हित मित अने प्रिय वचन बोलते इत्यादि कभी कभी शिशिर ऋतुमें  
भगवान् वृक्ष, लतामण्डप वगैरेनी नीचे जेमी ध्यानमें लीन वता इत्यादि (३)

हरी ५७—आयावह' इत्यादि

अभिभक्तुमें प्रभु सूर्यनी सामे उत्कुटुक (उक्कु) भासनधी जेही आतापना  
देता इत्यादि, तथा अन्त प्रान्त अने पर्युपित कोट्रयानु भात वगैरे, अथ ५७

भगवान् कियन्तं काल रूक्षोदनादीनि सेवते स्मेत्याह—‘एयाणि’ इत्यादि ।  
मूलम्—एयाणि तिल्लि पडिसेवे, अट्टमासे य जावए भयवं ।

अवि इत्थ एगया भगवं, अट्टमासं अट्टुवा मासंपि ॥५॥

छाया—एतानि त्रीणि प्रतिसेवते, अट्टमासांश्च यापयति भगवान् ।

अप्यत्र एकदा भगवान्, अर्द्धमासमथवा मासमपि ॥ ५ ॥

टीका—भगवान् एतानि=पूर्वोक्तानि त्रीणि=ओदनादीनि यथाप्राप्तं प्रति-  
सेवतेस्म । एवं कृत्वाऽष्टौ मासान् यापयति=शरीरयात्रां निर्वहतिस्म । अथ  
भगवत्तस्तपो वर्णयति—‘अवि इत्थ’ इत्यादि । अपिच—एकदा भगवान् अत्र=छद्म-  
स्थावस्थायाम् अर्द्धमासमथवा मासमपि चतुर्विधाहारपरित्यागेन तपश्चकार ॥ ५ ॥

किञ्च—‘अवि साहिए’ इत्यादि ।

मूलम्—अवि साहिए दुवे मासे, छप्पि मासे अट्टुवा विहरित्था ।

राओवरायं अपडिन्ने, अन्नं गिलायमेगया भुंजे ॥६॥

आदि, बैरों-बोरोंके चूर्ण आदि तथा कुलथी आदिसे अपने शरीरका  
निर्वाह करते । यह सब रूक्ष आहार है ॥ ४ ॥

भगवानने कितने दिनों तक रूक्ष आहारका सेवन किया? इसे सूत्र-  
कार प्रकट करते हैं—‘एयाणि’ इत्यादि ।

भगवानने इन ओदन-कोद्व, मंथु-वेरचूर्ण और कुलथी, ये तीन  
प्रकारके पथुषित रूक्ष आहार जिस समय गोचरीमें जो मिल जाता था  
वही लेते थे, इस प्रकार आठ मास तक रूक्ष आहार सेवन किया ।  
भगवानने अपनी इस छद्मस्थावस्थामें कभीर अर्ध मास या एक मास आदि  
अनेक चौविहार तपश्चर्या की ॥५॥

वगेरे तथा कणथी वगेरेथी पोताना शरीरनेो निर्वाह करता आ षधा रूक्ष  
आहार छे (४)

भगवाने डेटला द्विसेो सुधी रूक्ष आहारतु सेवन कथुं ? ओने सूत्रकार  
प्रकट करे छे—‘एयाणि’ इत्यादि

भगवाने ओ ओदन-कोद्व, मंथु-पोरयुषुं अने कलथी, ओ त्रयु  
प्रकारना पथुषित-वासी रूक्ष आहार ने समये गोचरीमा ने भणी जतु ते वेता  
इता आ प्रकारे आठ मास सुधी रूक्ष आहारतु सेवन कथुं, भगवाने पोतानी  
ओ छद्मस्थ अवस्थामा कही कही अर्धमास, अगर ओकमास आदि अनेक  
चौविहार तपश्चर्या करी (५)

छाया—अपि साधिकौ द्वौ मासौ पढपि मासान् अथवा विजहार ।

रात्रोपराप्रमतिष्ठ, अर्धं स्नानमेकदा शुक्ते ॥ ६ ॥

टीका—अपि च—साधिकौ द्वौ मासौ=सार्धमासद्वयम् । अथवा पम्मासान् अपि पानीयमप्यपीत्वा अमतिष्ठः=पानप्रतिहारहितः सन् रात्रोपराप्रम=अर्निर्ले विजहार=तपश्चर्यायां विहरतिस्म । तथा—एकदा=तपःपारणादिवसे स्नानं=पर्युपित-मन्तमान्तम्, अन्नम्=ओदनादिकं शुक्तेस्म ॥६॥

किञ्च—'छट्टेण' इत्यादि ।

शुक्ल—छट्टेण पगया मुजे, अदुवा अद्वमेण दसमेण ।

दुवालसमेण पगया मुजे, पेहमाणे समाधिं अपठिन्ने ॥७॥

छाया—पठेन एकदा शुक्ते अथवा अष्टमेन दशमेन ।

द्वादशेन एकदा शुक्ते मेसमाणं समाधिप्रतिष्ठ ॥ ७ ॥

टीका—अप्रतिष्ठः=इहलोकपरलोकप्रतिहारहित समाधिं=सयमसगाधि मेस-माणं=पर्यामोषयन् भगवान् एकदा=कदाचिद् पठेन=पठमत्केन शुक्तेस्म । अथवा अष्टमेन, एकदा द्वादशेन=द्वादशमत्केन च शुक्तेस्म । पठमत्कादीनां पारणां प्रकारेत्यर्थः ॥ ७ ॥

और भी—'अधि साहिण' इत्यादि ।

इतना ही नहीं—किन्तु कभी-द्वार मास तक अथवा छह छह मास तक शौचिहार तपश्चर्या करके भगवान् तपमें लक्षलीन रहे । पारणाके दिन अन्न-पान्त और पर्युपित ओदनादिका आहार ग्रहण करते थे ॥ ६ ॥

और भी—'छट्टेण पगया' इत्यादि ।

कभी भगवान् छठ ( षेला ) करते थे, कभी अद्वम ( तेसा ) करते, कभी द्वादशमत्क ( पचीला ) करते हुए समाधि भावमें लीन रहते थे ॥७॥

इसी पक्ष—'अधि साहिण' इत्यादि

अथवा छ छ मदिना मुपी शौचिहार तपस्या करीने अत्रवान तपश्च लक्षलीन रहल पारण ना दिवसे अन्त मान्त अने वासी ओदनादिनि सेवन करता दत्ता (१)

इसी—छट्टेण पगया' इत्यादि

इत्यर्थे अत्रवान छु करता दत्ता इत्यर्थे अत्रम करता दन्त, इत्यर्थे द्वादशमत्क करता अत्रापी वाचमां लक्षलीन रहता दत्ता (७)

किञ्च—‘णच्चा णं’ इत्यादि।

मूलम्—णच्चा णं से महावीरे, नो वि य पावगं सयमकासी।

अन्नेहिं वा ण कारित्था, कीरंतंपि नाणुजाणित्था ॥८॥

छाया—ज्ञात्वा खलु स महावीरः नापि च पापकं स्वयमकर्षीत्।

अन्यैर्वा नाकारयत्, कुर्वन्तमपि नान्वज्ञासीत् ॥ ८ ॥

टीका—अपि च—स महावीरः ज्ञात्वा हेयोपादेयमवबुध्य पापकं कर्म=हिंसा-  
दिरूपं न स्वयमकर्षीत्, अन्यैर्वा तत्पापकं कर्म नाकारयत्। कुर्वन्तं=पापकर्म  
समाचरन्तमन्यमपि नान्वज्ञासीत्=नान्वमोदयत् ॥ ८ ॥

अथ भगवतो ग्रामैषणाविधिमाह—‘गामं पविस्स’ इत्यादि।

मूलम्—गामं पविस्स नगरं वा, घासमेसे कडं परद्वाए।

सुविसुद्धमेसिया भगवं, आयतजोगयाए सेवित्था ॥९॥

छाया—ग्रामं प्रविश्य नगरं वा ग्रासमेपयति कृतं परार्थाय।

सुविशुद्धमेपयित्वा भगवान् आयतयोगतयाऽसेविष्ट ॥ ९ ॥

टीका—भगवान् ग्रामं नगरं वा प्रविश्य ग्रासमन्वेषयतिस्म। कीदृशं ग्रासमि-  
त्याकाङ्क्षायामाह—‘कडं परद्वाए’ इत्यादि। परार्थाय कृतम्=उद्गमदोपरहितं,

और भी—‘नच्चा णं’ इत्यादि।

हेय और उपादेय तत्त्वके ज्ञाता भगवान् महावीरने कभी भी न  
स्वयं पापकर्म किया, न किसीसे कराया और न पापकर्म करते हुएका  
अनुमोदन किया ॥ ८ ॥

अब भगवान् की ग्रास-एषणाविधिको कहते हैं—‘गामं पविस्स’ इत्यादि।

ईर्ष्यासमितिपूर्वक विहार करनेवाले प्रभु महावीरने ग्राम अथवा  
नगरमें प्रवेश कर उद्गम और उत्पादनाके दोषोंसे रहित शुद्ध आहार

इरी—‘नच्चा णं’ इत्यादि

हेय अने उपादेय तत्त्वना ज्ञाता भगवान् महावीरने कहे पणु येते पापकर्म  
कर्या नथी, अने भीन्त पासे कराव्या पणु नथी, तेमन् पापकर्म करवावाणानु अन्तु  
भोदन पणु करुं नथी (८)

इवे भगवान्नी ग्रास-एषणाविधिने कहे छे—‘गामं पविस्स’ इत्यादि

गाम अगर् नगरमा प्रवेश करी उद्गम अने उत्पादनाना दोषोथी रहित  
शुद्ध आहारनी गवेषणा करी गवेषणा करी भादमा ज्ञानयतुप्यथी मन पचन

तथा—सुविशुद्धम्=उत्पादनादोपरजितम्, एषपित्वा=एषणादोषं परिहरन् अन्येषु,  
भगवान् आयतयागतया आयतभासौ योगभ्र-आयतयोगः=ज्ञानचतुष्टयेन सम्यग्  
मनोनाकायलक्षणयोगमणिघानम्, तस्य भाव आयतयोगता, तथा=प्रासैपणादाप  
परिवर्जनेन सम्यक् शुद्धमाहारम् असेषिष्ट ॥ ९ ॥

पुनरपि प्रासैपणाविधिं गाथाप्रयोगाद्—'अदु वायसा' इत्यादि ।

मूलम्—अदु वायसा दिर्गिच्छिया, जे अन्न रसेसिणो सत्ता ।

घासेसणाए चिठ्ठति, सयय णिअत्तिए य पेहाण ॥१०॥

छाया—अथ वायसा पुमुक्षिता यज्ज्य रसेपिणः सत्त्वाः ।

प्रासैपणया तिष्ठन्ति सततं निपतिर्वाभ प्रेत्य ॥१०॥

टीका—अथ मिक्षार्थं गच्छता भगवत् पयि पुमुक्षिता=सुस्वीडिता  
रसेपिण =पिपासाकुला वायसा=काफाः, तथा यज्ज्ये सत्त्वाः पारावतादय  
की गवेपणा की । गवेपणा कर पादमें ज्ञानचतुष्टयसे मन, घचन और काय,  
इन तीन योगोंकी शुभ प्रवृत्तिपूर्वक उम आहारका जो घास-एषणाके  
दोषोंके परिहारसे भलीभांति शुद्ध था सेवन किया ॥१॥

घास-एषणा की विधिका कथन सूत्रकार तीन गाथाओंसे प्रकट  
करते हैं—'अदु वायसा' इत्यादि ।

भगवान् जिस समय आहारके लिये पिचरण करते थे, उस समय  
मूलसे व्याकुल और प्याससे दुःखित कौवा तथा कभूलर आवि जो  
अपनी पुमुक्षाके शमनार्थं एघर उघरसे आकर जहा संमिलित होते  
रहते, उनको जरा भी कष्ट न हो, आहार पा कर ये उब न जायें, इस

अने काय, आ त्रय योगोनी शुभप्रवृत्तिपूर्वक के आहार के के प्रासैपणाना  
योगोना परिहारधी साथी रीते शुद्ध होय तेनु सेवन करेहुं (९)

आस-ओषणानी विधिनु कथन सूत्रकार त्रय गाथाओंकी प्रकट करे छे,—  
'अदु वायसा' इत्यादि

अत्रवान् आहार भाटे के समये विचारण करता कता के समये लूपधी  
व्याकुल अने तससभी दुःखी केना काय तथा क्लुतरी वीरे लगे के के  
लूपधे सतीववा रस्तामा जहाँ कर्कशी आवी ज्य केक ज्यजे भगवा कता  
अने बीजा पणु पणु सज्जमां ज्ञानी तेमनी साथे भगवां कर्ता ज्ञवा पक्षिजे  
हरी न जय अने तेने जय पणु कष्ट न पछोसि आ रीते सजाणपूर्वक केमनी

पक्षिणः ग्रसैपणया=भक्षणपानेच्छया भूम्युपरि तिष्ठन्ति=विचरन्ति, तथा सत-  
तम्=प्रतिक्षणं निपतितान्-आकाशाद् भूमितलमागतान् प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा भगवान्-तेषां  
प्रतिरोधमकुर्वन् पार्श्वभागतः शनैर्गच्छन् ग्रसमन्वैपीदिति तृतीयगाथया सम्बन्धः ॥१०

किञ्च—‘अदुवा’ इत्यादि । ‘वित्तिच्छेयं’ इत्यादि ।

मूलम्—अदुवा माहणं च समणं वा, गामपिंडोलगं च अतिहिं वा ।

सोवागं मूसियारिं वा, कुक्कुरं वापि चिष्टियं पुरओ ॥११॥

वित्तिच्छेयं वज्जंतो, तेसिमप्पत्तियं परिहरंतो ।

मंदं परक्कमे भगवं, अहिंसमाणो घासमेसित्था ॥१२॥

छाया—अथवा ब्राह्मणं च श्रमणं वा ग्रामपिण्डोलक चातिथिं वा ।

श्वपाकं मूपिकारिं वा कुकुरं वापि स्थितं पुरतः ॥ ११ ॥

वृत्तिच्छेदं वर्जयन् तेषामप्रत्ययिकं परिहरन् ।

मन्द पराक्रमते भगवान् अहिंसन् ग्रसमन्वैपीत् ॥ १२ ॥

टीका—अथवा—ब्राह्मणं तथा श्रमणं=शाक्याऽऽजीवकपरिव्राजकतापसनिर्ग्रन्थाना-  
नामन्यतमं, तथा—ग्रामपिण्डोलकं=भिक्षुकं, अतिथिम्=अकस्मादागतं, श्वपाकं=चाण्डालं,

रीतिसे अपने आपको संभालते हुए उन्हींके समीपसे धीरे-निकल  
जाते । तात्पर्य यह है कि—प्रभु जिस समय आहार लेनेके लिये  
निकलते थे, उस समय उनके गमनसे किसी भी जीवको कष्ट नहीं  
पहुंचता था । यहाँ तक कि जो कबूतर आदि जीव मार्गमें चुगते हुए  
हृधर-उधर फिरा करते उस समय उनके नजदीकसे यत्नापूर्वक भगवान्  
निकल जाते ॥१०॥

फिर भी—‘अदुवा’ इत्यादि । ‘वित्तिच्छेयं’ इत्यादि ।

इसी प्रकार ब्राह्मण, श्रमण, शाक्य, आजीवक, परिव्राजक,  
तापस, भिक्षुक, और अकस्मात् आया हुआ चाण्डाल एवं माजीर—दुग्धका

प्राणुमायी धीरे धीरे नीकणी जाता तात्पर्य ये छे डे—प्रभु ने समये आहार  
लेवा नीकणता डता त्यारे येमना जवा आववाथी डेड पशु एवने कष्ट पडेअतु  
नडी, त्या सुधी डे ने कबूतर वगेरे एव मार्गमा यणु यणुता आम-तेम  
इरता ये समये लगवान येमनी नलुकथी सावधानीपूर्वक नीकणी जाता (१०)

इरी—‘अदुवा’ इत्यादि.

आ रीते ब्राह्मण, श्रमण, शाक्य, आशुवक, परिव्राजक, तापस अने भिक्षुक,  
आमाथी डेडने पशु तेमना तरइथी नडतर थता नडी अने अकस्मात्

तथा—सुविशुद्धम्=उत्पादनादोपरिर्जितम्, एषयिस्त्रा=एषणादोषं परिहरन् अन्येष्य, भगवान् आयतयोगतया आयतश्रासौ योगश्च-आयतयोगः=ज्ञानशतुष्टयेन सम्यग् मनोवाक्यायत्नयोगमणिधानम्, तस्य भावः आयतयोगता, तथा=प्रासैपणादाप परिवर्जनेन सम्यक् शुद्धमाहारम् असेवित् ॥ ९ ॥

पुनरपि प्रासैपणाविधिं गाथाप्रथमाह—'अदु घायसा' इत्यादि ।

मूलम्—अदु घायसा दिर्गिच्छिया, जे अन्ने रसेसिणो सत्ता ।

घासेसणाए चिद्धति, सयय णिवत्तिए य पेहाए ॥१०॥

छाया—अथ घायसा पुद्गलिता यऽन्य रसैपिणः सत्त्वाः ।

प्रासैपणया विष्ठन्ति सततं निपठितांश्च प्रेक्ष्य ॥१०॥

टीका—अथ भिक्षार्थं गच्छता भगवतः पथि पुद्गलिताः=सुस्वीरिताः रसैपिणः=पिपासाकुलाः घायसाः=काकाः, तथा येऽन्ये सत्त्वा पारावतद्वय की गवेषणा की । गवेषणा कर घासमें ज्ञानशतुष्टयसे मन, बचन और कषय, इन तीन योगोंकी शुभ प्रवृत्तिपूर्वक उस आहारका जो घास-एषणाक दोषोंके परिहारसे भलीभांति शुद्ध या सेवन किया ॥१०॥

प्रास-एषणा की विधिका कथन सूत्रकार तीन गाथाओंसे प्रकट करते हैं—'अदु घायसा' इत्यादि ।

भगवान् जिस समय आहारके लिये विचरण करते थे, उस समय मूलसे व्याकुल और प्याससे दुःखित कौवा तथा कभूतर आदि जो अपनी बुद्धिआके क्षमनार्थ इधर उधरसे आकर जहाँ संमिश्रित होते रहते, उनको जरा भी कष्ट न हो, आहार पा कर ये उड़ न जायें, इस

अने काय, आ त्रयु येजेनी शुभप्रवृत्तिपूर्वक जे आहार के ले प्रासैपणा दोषोना परिहारशी सारी रीते शुद्ध होय तेनु सेवन करहुं (९)

अस-जेषणानी विधिनुं इधन सूत्रकार त्रयु गाथाओंकी प्रकट करे छे—

'अदु घायसा' इत्यादि.

भगवान् आहार मागे ले समये विचरण करता करता जे समये भूखकी व्याकुल अने तरसकी दुःखी जेवा क्षमन तथा श्रुतरी वीरे लगे के ले भूखने अतिथवा सताभा कहीं कहींकी जावी अन्य जेक जग्याजे भगता बता अने जीवा पक्षु वधु स जग्यां जावी तेमनी साथै भगतां कतां जावा पक्षियों उड़ी न जाय अने तेने जस पक्षु कष्ट न पड़ेयि आ रीते सवाणपूर्वक जेमनी

पक्षिणः ग्रासैपणया=भक्षणपानेच्छया भूम्युपरि तिष्ठन्ति=विचरन्ति, तथा सत-  
तम्=प्रतिक्षणं निपतितान्-आकाशाद् भूमितलमागतान् प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा भगवान्-तेषां  
प्रतिरोधमकुर्वन् पार्श्वभागतः शनैर्गच्छन् ग्रासमन्वैपीदिति तृतीयगाथया सम्बन्धः ॥१०॥

किञ्च—‘अदुवा’ इत्यादि । ‘वित्तिच्छेयं’ इत्यादि ।

मूलम्—अदुवा साहणं च समणं वा, गामपिण्डोलगं च अतिहिं वा।  
सोवागं मूसियारिं वा, कुक्कुरं वा वि चिट्टियं पुरओ ॥११॥

वित्तिच्छेयं वज्जंतो, तेसिन्नप्पत्तियं परिहरंतो ।

मदं परक्कमे भगवं, अहिंसमाणो वासमेसित्था ॥१२॥

छाया—अथवा ब्राह्मणं च श्रमणं वा ग्रामपिण्डोलक चातिथिं वा ।

श्वपाकं मूषिकारिं वा कुक्कुरं वापि स्थितं पुरतः ॥ ११ ॥

वित्तिच्छेदं व्रज्यन् तेषामप्रत्ययिकं परिहरन् ।

मदं पराक्रमते भगवान् अहिंसन् ग्रासमन्वैपीत् ॥ १२ ॥

टीका—अथवा—ब्राह्मणं तथा श्रमणं=शाक्यऽऽजीवकपरिव्राजकतापसनिर्ग्रन्थ्या-  
नामन्यतमं, तथा—ग्रामपिण्डोलकं=भिक्षुकं, अतिथिम्=अकस्मादागतं, श्वपाकं=चाण्डालं,

रीतिसे अपने आपको संभालते हुए उन्हींके समीपसे धीरे-धीरे निकल  
जाते । तात्पर्य यह है कि—प्रभु जिस समय आहार लेनेके लिये  
निकलते थे, उस समय उनके गमनसे किसी भी जीवको कष्ट नहीं  
पहुंचता था । यहाँ तक कि जो कबूतर आदि जीव मार्गमें चुगते हुए  
इधर-उधर फिरा करते उस समय उनके नजदीकसे यत्नापूर्वक भगवान्  
निकल जाते ॥१०॥

फिर भी—‘अदुवा’ इत्यादि । ‘वित्तिच्छेयं’ इत्यादि ।

इसी प्रकार ब्राह्मण, श्रमण, शाक्य, आजीवक, परिव्राजक,  
तापस, भिक्षुक, और अकस्मात् आया हुआ चाण्डाल एवं मार्जार—दुग्धका

आजुभायी धीरे धीरे नीकणी जाता तात्पर्य ये छे डे—प्रभु ने समये आहार  
देवा नीकणता डता त्तारे ऐमना जवा आववाथी डेड पणु एवने डण्ट पडोयतु  
नहीं, त्या सुधी डे ने डणुतर वगेरे एव मार्गमा यणु यणुता आम-तेम  
इरता ऐ समये लगवान ऐमनी नलकथी सावधानीपूर्वक नीकणी जाता (१०)

इरी—‘अदुवा’ इत्यादि.

आ रीते ब्राह्मण, श्रमण, शाक्य, आजीवक, परिव्राजक, तापस अने भिक्षुक,  
आभाथी डेडने पणु तेमना तरइथी नडतर थता नहीं अने अकस्मात्



मृषिकारिं=दुग्धार्थिनं मार्जारं, अपि च कुकुरं=घानं वा पुरतः श्रे स्वितं इष्टा  
तेषां वृत्तिच्छेदं वर्जयन्, अपत्ययिकम्=अपतीति परिहरन् भगवान् मन्दं पराक्रमते-  
पार्थमागतं शनैर्नोच्छतिस्म । तथा अर्हिसन्=कुन्त्युपभृतीनपि सन्तु अपीडन्  
श्रासमन्वैपीत्=एषणाद्युद्धया भिक्षार्थमन्वतिस्म ॥११॥१२॥

किञ्च—‘अधि सूइयं’ इत्यादि ।

मूलम्—अधि सूइय वा सुक्क वा, सीय पिंडं पुराणकुम्मास ।

अदु बुक्कस पुलग वा, लद्धे पिंडे अलद्धे दविप ॥१३॥

छाया—अपि सूचितं वा शुष्कं वा, शीतं पिण्डं पुराणकुम्मापम् ।

अय बुक्कसं पुसाकं वा, सम्भं पिण्डे अलम्बे द्वविक ॥ १३ ॥

टीका—अपि च-सूचितं=व्यापारितं हिन्दुजीरकादिना संस्कृतं व्यञ्जना  
दियुक्तं तक्रादौ निश्चितं सुद्वचनाकादिवटकाभ ‘दहीबडा’ इति भाषा-

अर्धो घिलाव, और कुत्ता आदिको देख कर भगवान् इन किसीको घिन्न  
नहीं करते हुए यत्नापूर्वक धीरे २ निकल जाते । उनके चलनेसे कुन्त्यु  
आदि सूक्ष्म जीवों तकको भी कोई कष्ट न पहुँचता ॥११-१२॥

और भी—‘अधि सूइयं’ इत्यादि ।

भगवान् को भिक्षा निमित्त जाते समय जो भी गृहस्थोंके पहां  
शुद्ध निर्दोष आहार मिल जाता था, वे उसे ही ले लेते, बाहे चह चित्त-  
कुल स्वस्थ भी क्यों न हो । हींग और जीरे आदिसे संस्कृत, व्यञ्जनादि  
से युक्त एवं तक्र-छाँछमें पडे हुए, मूग और चना आदिकी  
गीली दालको पाँट तैलमें तल कर तयार किये पदार्थका नाम सूचित ही  
भाषामें इसे “दहीबडा” कहते हैं । सूचित पदसे राईता, करम्बा

आवी अठल बायल, तेमज दुम्नी बोधी वीलादी कुतस वगेरेने जेठ भगवान  
जे ठाईने विनरूप न यत्त यत्तापूर्वक धीरे धीरे नीकणी जत्ता जेमना बाळवाधी  
कुषवा ठे हीदी भोडोदी वगेरे सूक्ष्म लोचने पळु ठाई अष्ट यत्त नडई (११-१२)

इति—अधि सूइयं’ इत्यादि ।

भगवाने भिक्षा निमित्ते ज्याना जामे जे पळु पळस्थाने त्यां शुद्ध निर्दोष  
आहार भगी जत्ता तेने अदुलु इत्या, बाडे ते जोलकुल इल पळु ठेग न होय.  
हींग अने लउ वगेरेधी पवारेल बाळवादिभी युक्त जेमना तक्र-छासभां  
पडेला भग अने यज्वानी धजने वीजानी वाटी तैवार इत्याभा आवेला पदार्थठ  
नाम सूचित छे भाषामां जेने ‘दहीबडा’ इडेवामां आवे छे, सूचित-पडमी

प्रसिद्धं, करम्बादिकं वा, 'राईता' इति भाषाप्रसिद्धं वा, तथा-शुष्कं वा  
 भर्जितचणकादिकं, तथा शीतं=पर्युषित वा पिण्डम्=आहारम्, तथा पुराणकुल्माषं=  
 पुरातनमापकुलत्यादि बहुदिवससिद्धस्थितकुल्मापमित्यन्ये। अथ-शुक्सं वा नीरस-  
 धान्यौदनं वा, यद्वा-पुरातनसक्त्वुपिण्डं वा, तथा पुलाकं वा=यवधानादिकं 'जवधानी'  
 इति भाषाप्रसिद्धं लब्धा, तथाऽन्यस्मिन्नपि निर्दोषे पिण्डे=लब्धेऽप्यलब्धे वा  
 द्रविक एव=संयममना एवासीत्। अयं भावः-लब्धे सति यथालब्धपर्युषित-

आदि भी लिये जाते हैं। भुंजे हुए चने आदि अन्नका नाम शुष्क है। पर्युषित  
 (वासी), आहार-शीत और पुरानी उडदकी दाल तथा कुलथी आदिको  
 कहते हैं। नीरस धान्यके चावल अथवा पुराना सक्त्वुपिण्ड-शुक्स, और यव-  
 धान आदिक जिसे भाषामें 'जवकी धानी' कहते हैं और वही पुलाक  
 कहलाता है। आहारमें प्रभुको दहीवड़ा आदि पदार्थ मिल जावे तो कोई  
 हर्ष नहीं और भुंजे हुए चने आदि शुष्क पदार्थ मिल जावें तो कोई शोक  
 नहीं। इनके अतिरिक्त और भी चाहे कोई पदार्थ क्यों न मिल जाय यदि  
 वह निर्दोष एवं शुद्ध होता तो प्रभु उसे अपने आहारमें ग्रहण कर  
 लेते। वे किसी भी पदार्थको जो शुद्ध निर्दोष होता वह ले लेते थे। नहीं  
 मिलने पर भी वे संयमसे अपने मनको विचलित नहीं करते। आहार  
 मिले तो ठीक, नहीं मिले तो ठीक, इस प्रकार दोनोंमें समभाव रखते  
 थे। मिलने पर वे उस गृहस्थकी अथवा उस गांवकी प्रशंसा नहीं करते

रायता, करंभा विगेरे पणु देवाय छे शेकेला यणुा वगेरे अन्नतु नाम  
 शुष्क छे पर्युषित (वासी) आहारने, टाढी अने लुनी अउहनी हाण अने  
 कणथी वगेरेने कुट्माष कडे छे नीरस धान्यना योभा, अथवा लांगा वभतथी  
 भनावेला सक्त्वुपिण्ड-शुक्स, अने यवधान वगेरे, जेने लाषामा "जवनी  
 धानी" कडे छे, अनेच पुलाक कडे छे आहारमा प्रभुने दहीवडा वगेरे मणी  
 नथ तो हर्ष नहीं अने शेकेला यणुा वगेरे शुष्क पदार्थ मणे तो केछ शोक नहीं  
 आनाथी थीलु नतने केछ पणु पदार्थ लवे मणे पणु ते निर्दोष अने शुद्ध  
 होय तो प्रभु अने पोताना आहार माटे अहणु करी लेता शुद्ध अने निर्दोष  
 ओवो केछ पणु पदार्थ प्रभु पोताना आहार माटे अहणु करी लेता, न मणवाथी  
 पणु सयमथी पोताना मन्ने अलित थवा न देता. आहार मणे तो ठीक न  
 मणे तो ठीक, आ रीते अन्नेमा समभाव रायता मणवाथी तेओ आपनार

मन्त्रप्रान्ठादिकं निर्दोषमश्नादिकं रागद्वेपरहितं मन् सुद्वक्तस्म, अलम्ब च ग्रामादिकं  
 दृश्यमात्मानं वा न निन्दतिस्मेति ॥१३॥

किञ्च—'अधि ज्ञाड' इत्यादि।

मूलम्—अधि ज्ञाड से महावीरे, आसनस्थे अकुक्कुप ज्ञाण ।

उद्ध अहे तिरिय च, पेहमाणे समाहिमपडिन्न ॥१४॥

छाया—अपि ध्यायति स महावीर आसनस्य अकौत्कुच ध्यानम् ।

ऊर्ध्वमघस्तिर्यक् न प्रेक्षमाणः समाधिमप्रतिष्ठ ॥१४॥

गीका—अपि च—स महावीर मगवान् आसनस्य = उक्कुडुकगोदोहिकावीरा-  
 सनायासनस्यत, अकौत्कुचः=मुखबिकारादिरहितः, तथा—अप्रतिष्ठ = शरीरशुभ्रा-  
 दिमतिज्ञारहितं समाधिम्=आत्मशान्तिं प्रेक्षमाणः=भावयन् ऊर्ध्वमघस्तिर्यक्=लोक

और नहीं मिलने पर अपनी एव गृहस्थ और उम ग्रामफी निन्दा नहीं  
 करते, समभाव यन अपने संयममार्गमें वृत्तयिस्त रहते थे ॥१३॥

फिर भी—'अधि ज्ञाड' इत्यादि ।

ये भगवान् महावीर, उक्कुडुक (उकडु) आसन, गोदोहिका-आसन  
 एवं घोरामन, इनमेंसे किसी एक आसनसे घिराजमान होकर ध्यानमें  
 लह्मीन होते । ध्यान करते समय उनका शरीर निष्कप रहता । मुख नेत्र  
 आदि किसी भी अययषमें उनके हलन-बलनादिरूप विकृति नहीं होती ।  
 शारीरिक शुभ्रपाकी भायना उनके भीतर देखने तकको भी नहीं  
 मिलती । मदा ये आत्मशान्ति की भी भायना भाते रहते । ध्यानमें ये  
 उपलोक, मध्यलोक और अधोलोक, इन तीनों लोकोंके स्वस्वका, तथा

शुद्धशयनी अथवा ज्ञे ज्ञाननी प्रसथा न करत, ज्ञे न भगता पीतानी के,  
 न आपनार शुद्धशयनी अथवा ज्ञे ज्ञाननी निन्दा न करत। समभवाधी समभ  
 भाजभा ज्ञेकथित रहत (१३)

हरी पत्र— अपि ज्ञाड ध्यादि

भगवान् महावीर, उक्कुडुक ( उकडु ) आसन, गोदादिकाआसन,  
 ज्ञे नीशसन ज्ञानानी ज्ञे ज्ञे आसनधी विशजमान धर् ध्यानभा तललीन  
 रहत। ध्यान करती वजने तंभनु शरीर निष्कप रहत मुख नेत्र वजेरे ज्ञे  
 पत्र अययषनी दशन धजननी द्विधा यती नही। शरीरनी शुश्रुषानी भावना  
 ज्ञेप्रनाभा उरी पत्र यती न दनी। महा आत्मशान्तिनी ज्ञे भावना राधत।  
 ध्यानभा उपलोक मध्यलोक ज्ञे अधोलोक ज्ञे ज्ञे तीनों स्वस्वना तथा

त्रयमिषयकं ध्यानं=जीवाजीवादिपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायनित्यानित्यादिरूपतया चिन्तनरूपं ध्यायति=करोतिस्म ॥ १४ ॥

किञ्च—‘अकसाई’ इत्यादि ।

मूलम्—अकसाई विगयगेही य, सह्रूवेसु अमुच्छिष्टे ज्ञाइ ।

छउमत्थोऽवि परक्कममाणो, न पमायं सइं पि कुव्वित्था ॥१५॥

छाया—अकपायी विगतगृद्धिश्च शब्दरूपेषु अमूर्च्छितो ध्यायति ।

छद्मस्थोऽपि पराक्रमाणो न प्रमादं सकृदप्यकार्षीत् ॥१५॥

टीका—अकपायी=क्रोधादिकपायरहितः, अत एव—विगतगृद्धिः=

विषयाऽऽसक्तिरहितः, अत एव-शब्दरूपेषु=उपलक्षणार्थत्वात् शब्दरूपगन्धरसस्पर्शेषु, अमूर्च्छितः=ममत्वभावरहितः सन् ध्यायतिस्म, तथा-छद्मस्थोऽपि भगवान् पराक्रममाणः=तपस्यमे विहरन् सन् प्रमादं सकृदपि=एकवारमपि नाकार्षीत्=न

इनके भीतर रहे हुए जीव और अजीव आदि पदार्थों के द्रव्य गुण और पर्याय की अपेक्षासे नित्य और अनित्यरूप स्वरूपका विचार करते ॥१४॥

और भी—‘अकसाई’ इत्यादि ।

क्रोध आदि कषायपरिणतिसे रहित भगवान् महावीरने विषयोंमें आसक्तिसे और शब्द, रूप, रस, एवं गन्ध आदि पौद्गलिक गुणोंकी ममतासे रहित हो कर ध्यानका अवलम्बन किया । यद्यपि भगवान् चार ज्ञानके धारी थे, अतः छद्मस्थावस्थामें वर्तमान थे, फिर भी तप और संयममें अपनी शक्तिकी स्फूर्ति करते हुए उन्होंने केवलज्ञानकी प्राप्ति तक एक बार भी प्रमादका सेवन नहीं किया । जयसे दीक्षा धारण करी

येनी अहर रडेनारा लुव अने अलुव आदि पदार्थानां द्रव्य गुणु अने पर्यायनी अपेक्षाथी नित्य अने अनित्यरूप स्वरूपनो विचार करता (१४)

इरी पणु—‘अकसाई’ इत्यादि

क्रोध वगेरे कषाय परिणतिथी रहित भगवान् महावीर विषयानि आसकितथी अने शब्द, रूप, अने गंध वगेरे पौद्गलिक गुणेषु ममताथी रहित रही ध्याननु अवलम्बन करता जे के भगवान् चार ज्ञानना धारक हुता आथी छद्मस्थ अवस्थाभां वर्तमान हुता तो पणु तप अने संयमभां पोतानी शकितनी स्फूर्ति करीने तेओओ देवज्ञाननी प्राप्ति सुधी अेकवार पणु प्रमाद सेओयो नथी न्यारथी दीक्षा धारणु करी त्यारथी देवज्ञान

मन्तप्रान्तादिकं निर्दोषमन्ननादिकं रागद्वेषरहितं सन् मुक्तेस्म, मलम्बे च ग्रामादिकं  
गृहस्यमात्मानं वा न निन्दतिस्मेति ॥१३॥

फिज्ज—‘अधि झाइ’ इत्यादि।

मूलम्—अधि झाइ से महावीरे, आसनस्थे अकुक्कुप झाण।

उद्धं अहे तिरिय च, पेहमाणे समाहिमपडिन्त ॥१४॥

छाया—अपि ध्यायति स महावीरः आसनस्थः अकौत्कुच ध्यान्म्।

उर्ध्वमपस्तिर्यक् च प्रेक्षमाणः समाधिमप्रतिष्ठः ॥१४॥

नीका—अपि च—स महावीरः मगवान् आसनस्थः—उत्कुदुकगोदोहिफावीरा  
सनापासनस्थितः, अकौत्कुचः—मुखविकारादिरहितः, तथा—अप्रतिष्ठः—शरीरशुभ्रा-  
दिप्रतिष्ठारहित समाधिम्—आत्मशान्ति प्रेक्षमाणः—भाषयन् उर्ध्वमपस्तिर्यक्—ऊर्ध्व

और नहीं मिलने पर अपनी एव गृहस्य और उस ग्रामकी निन्दा नहीं  
करते, समभाव धन अपने संयममार्गमें वृत्तचित्त रहते थे ॥१३॥

फिर भी—‘अधि झाइ’ इत्यादि।

वे मगवान् महावीर, उत्कुदुक (उफडु) आसन, गोदोहिफा—आसन  
एवं वीरासन, इनमेंसे किसी एक आसनसे विराजमान होकर ध्यानमें  
लङ्घीन होते। ध्यान करते समय उनका शरीर निष्कप रहता। मुख नेत्र  
आदि किसी भी अवयवमें उनके हलन-चलनादिरूप विकृति नहीं होती।  
शारीरिक शुभ्राकी भाषना उनके भीतर देखने तकको भी नहीं  
मिलती। मदा वे आत्मशान्ति की ही भाषना भाते रहते। ध्यानमें वे  
उर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक, इन तीनों लोकोंके स्वरूपका, तथा

बृहस्पती अथवा के आभनी प्रसथा न इत्ता, अने न भजतां पितृनी के,  
न आभनार बृहस्पती अथवा के आभनी निन्दा न इत्ता समभावभी समभ  
माभमा केचित्त रहेता (१३)

इसी पद्य—‘अधि झाइ’ इत्यादि

मगवान् महावीर, उत्कुदुक (उफडु) आसन, गोदोहिफाआसन,  
अने वीरासन आभाना केचित्त आसनधी विराजमान चर्ध ध्यानमां लङ्घीन  
रहेता ध्यान इरती वपते तेभनु शरीर निष्कप रहेतु मुख नेत्र बजरे केर्ध  
पद्य अवयवनी हलन चलननी क्रिया धती नही। शरीरनी शुभ्राणी भाषना  
केभनामां इही पद्य धती न इती महा आत्मशान्तिनी च भाषना राषता  
ध्यानमा उर्ध्वलोक, मध्यलोक अने अधोलोक आ त्रये लोकना स्वरूपना तथा

प्रयविषयकं ध्यानं=जीवाजीवादिपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायनित्यानित्यादिरूपतया  
चिन्तनरूपं ध्यायति=करोतिस्म ॥ १४ ॥

किञ्च—'अकसाई' इत्यादि ।

मूलम्—अकसाई विगयगेही य, सद्वरूवेसु अमुच्छिष्टे झाइ ।  
छउमत्थोऽविपरक्कममाणो, न पमायं सइं पि कुव्वित्था ॥१५॥

छाया—अकपायी विगतगृद्धिश्च शब्दरूपेषु अमूर्च्छितो व्यायति ।

छद्मस्थोऽपि पराक्रमाणो न प्रमादं सकृदप्यकार्षीत् ॥१५॥

टीका—अकपायी=क्रोधादिकपायरहितः, अत एव—विगतगृद्धिः=

विषयाऽऽसक्तिरहितः, अत एव—शब्दरूपेषु=उपलक्षणार्थत्वात् शब्दरूपगन्धरसस्पर्शेषु,  
अमूर्च्छितः=ममत्वभावरहितः सन् व्यायतिस्म, तथा—छद्मस्थोऽपि भगवान्  
पराक्रममाणः=तपस्यमे विहरन् सन् प्रमादं सकृदपि=एकवारमपि नाकार्षीत्=न

इनके भीतर रहे हुए जीव और अजीव आदि पदार्थों के द्रव्य गुण और  
पर्याय की अपेक्षासे नित्य और अनित्यरूप स्वरूपका विचार करते ॥१४॥

और भी—'अकसाई' इत्यादि ।

क्रोध आदि कषायपरिणतिसे रहित भगवान् महावीरने विषयोंमें  
आसक्तिसे और शब्द, रूप, रस, एवं गन्ध आदि पौद्गलिक गुणोंकी  
ममतासे रहित हो कर ध्यानका अवलम्बन किया । यद्यपि भगवान् चार  
ज्ञानके धारी थे, अतः छद्मस्थावस्थामें वर्तमान थे, फिर भी तप और  
संयममें अपनी शक्तिकी स्फूर्ति करते हुए उन्होंने केवलज्ञानकी प्राप्ति  
तक एक बार भी प्रमादका सेवन नहीं किया । जबसे दीक्षा धारण करी

येनी अहर रहेनारा लव अने अलव आदि पदार्थाना द्रव्य गुणु अने पर्या  
यनी अपेक्षाथी नित्य अने अनित्यरूप स्वइपने विचार करता. (१४)

इरी पणु—'अकसाई' इत्यादि

क्रोध वगेरे कषाय परिणतिथी रहित भगवान् महावीर विषयोंनी  
आसक्तिथी अने शब्द, रूप, अने गन्ध वगेरे पौद्गलिक गुणोभा  
ममतार्थी रहीत रही ध्यानतु अवलम्बन करता जे के भगवान् चार  
ज्ञानना धारक होता आथी छद्मस्थ अवस्थाभा वर्तमान होता तो पणु तप अने  
संयमभां योतानी शक्तिनी स्फूर्ति करीने तेओओ केवलज्ञाननी प्राप्ति सुधी अक-  
वार पणु प्रमाद सेओओ नथी न्यारथी दीक्षा धारणु करी त्यारथी केवलज्ञान

હતવાન, દોષાપ્રવિણાનન્તરં યાવસ્કેત્વલ્પપર્યાયં પ્રાપ્તવાન્ તાવ્જગત્સ્થાવસ્થાયામાપિ મગવાન્ લેષ્મતોઽપિ પ્રમાદં ન ચકારેતિ ભાવઃ ।

કેચિસ્તેવં વદન્તિ—एतद्ब्रह्मणं मगवतः प्रशंसाम्पर, परमार्थतो मगवान् पद्भेदया-  
धारी प्रमादवान् समये स्वस्मित इति, तथा 'मगवान् चूके' इति भाषायामपि प्र-  
पन्ति, तन्निर्भूयं प्रयत्नमोद्दोदयजनितकल्पनामात्रम्, आगमरहस्यानभिज्ञानात्,  
उपाहि—सर्वे तीर्थहारा' स्वस्वगणधरेभ्य स्वयमनुष्ठित तप संयमविधिकययन्ति—यद्  
न्येऽपि मोक्षामिलापिणः सोत्साहमनुष्ठाय मोक्षपद मयान्तु-इति सर्वस्मिन्नागमेऽपि परं

તથાસે કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત હોનેકી અવસ્થા તક ઉન્હોને અપની હૃદયસ્થાવ  
સ્થામેં મી કમી મી પ્રમાદકો અઘાતઃ મી અપને પાસ તક નહીં આનેવિયા ।

કોઈંર ઇસ ગાથાકે “સકૃદપિ પ્રમાદં નાકાર્યોત્” ઇસ વચન  
કો કેવલ મગવાન્ કી પ્રશંસાપરક હી માનતે હેં । પ્રશંસા પ્રાય  
વસ્તુસ્થિતિસે રિક્ત હોતી હૈ । ઇસકા કારણ યે યહ વતલાતે હેં કિ “મગ  
વાન્ પદ્ભેદયાધારી યે, તથા પ્રમાદસહિત ઓર સયમસે મી સ્વસ્મિત-  
પ્યુત યે, ઇસી લિયે યે જોગ “મગવાન્ ચૂકે” ગેસા કહ વિયા કરતે હેં ”  
સો ડનકા ઇસ પ્રકારકા કથન નિમૂલ હૈ—સત્યસે રહિત હૈ । માલૂમ  
હોતા હૈ કિ ઇસ પ્રકારકી કલ્પના કરનેચાહે વ્યક્તિકો આગમકા રહસ્ય  
જ્ઞાન નહીં હૈ કિ સમસ્ત તીર્થહાર અપને ઘારા અનુષ્ઠિત તપ ઓર સંયમ  
કી વિધિકો અપને ૨ ગણધરોસે કહતે હેં । ઇસ પ્રકારકે કથન કરનેકા  
હનકા ઉદ્દેશ સિર્ફ યહી હોતા હૈ કિ અન્ય મોક્ષામિલાપી મુનિ મી ડનકે

પ્રાપ્ત થવાની અવસ્થા સુધી તેઓએ પાતાની હૃદયસ્થ અવસ્થામાં પણ કોઈ  
વખત પ્રમાદનો અશ પણ પોતાની પાસે આવવા દીધો નથી.

કોઈંર કોઈંર આ ગાથાના “સકૃદપિ પ્રમાદં નાકાર્યોત્” આ વચનને કેવળ  
અજ્ઞાનની પ્રશંસાપરકજ્ઞ માને છે પ્રશંસા પ્રાયઃ વસ્તુસ્થિતિમી રિક્ત હોય  
છે એનું કારણ પણ આ બતાવે છે કે અજ્ઞાન હૃદયસ્થાધારી હતા, પ્રમાદ  
સહિત અને સયમમી પણ શ્રુત હતા, આ કારણે તે લોકો: “મગવાન્ ચુક્યા” એવું  
કહ્યા કરે છે તેઓનું આ પ્રકારનું કહેવું નિર્ભૂળ છે—અત્યથી સ્મિત છે માહુમ  
પડે છે કે આ પ્રકારની કલ્પના કરવાવાળા માણસોને આજમનું આ રહસ્ય બહુ  
વામા આ મુનથી કે સમસ્ત તીર્થ કર પોતાના દ્વારા અનુષ્ઠિત તપ અને સયમની  
નિધિને પાતપોતાના જીવધરોને કહે છે આ પ્રકારનું કથન કરવાનો ઉદ્દેશ હજી  
એજ હે છે કે બીજા મોક્ષામિલાપી મુનિ પણ તેમના આ પ્રકારના તપ અને

परया गणधरैस्तदीयचरितं सूत्ररूपेण संग्रथितं, तदेव चात्रोपधानश्रुताध्ययनं मुनीना-  
मुपकारार्थं प्रवृत्तं, तस्मात्कथमपि नास्त्यत्र प्रशंसापरकत्वगङ्गावसर इति, उक्तञ्च-

“ सव्वे तित्थयरा खलु, नियचरियं जं कहेति उवहाणे ।

गंथंति गणहरा तं, तहेव नो नूणमब्भहियं ॥१॥ ” इति ।

छाया—सर्वे तीर्थकराः खलु, निजचरितं यद्वदन्ति उपधाने ।

ग्रंथन्ति गणधरास्तद्, तथैव नो न्यूनमभ्यधिकम् ॥१॥ इति ।

इस प्रकारके तप और संयमकी अनुष्ठित प्रवृत्तिको सुनकर, अथवा जानकर  
मुक्तिमार्गमें उत्साहशील बने और मुक्तिका लाभ करते रहें, अतः समस्त  
आगमों में गणधरोंने जो तीर्थङ्करों के चरितका सूत्ररूपसे वर्णन किया है  
वही इस उपधानश्रुत नामक अध्ययनमें अन्य मुनिजनोंके उपकार निमित्त  
वर्णित किया गया है—इसमें उनकी प्रशंसा की कल्पना करनेकी बात ही  
कौन सी है, इस विषयमें उनकी प्रशंसापरता की कल्पना करना बिल्कुल  
निर्मूल ही है । कहा भी है—

“ सव्वे तित्थयरा खलु, नियचरियं जं कहेति उवहाणे ।

गंथंति गणहरा तं, तहेव नो नूणमब्भहियं ” ॥ १ ॥

यह आगमप्रसिद्ध बात है कि अपने २ गणधरों के प्रति जो समस्त  
तीर्थङ्कर अपने २ चरितका कथन करते हैं, वे गणधर उपधानमें उस  
चरितका उसी रूपसे ( न कम और न अधिक ) ग्रथन करते हैं ॥१॥

संथमनी अनुष्ठित प्रवृत्तिने सालणीने अथवा जलुणीने मुक्तिमार्गमा उत्साहशील  
पने अने मुक्तिनो लाभ करता रहे माटे समस्त आगमोमा गणधरोअये जे  
तीर्थ करेना अरित्रनु सूत्ररूपे वणुन करेले छे ते आ उपधानश्रुत नामना  
अध्ययनमा अन्य मुनिजनोंना उपकार निमित्त वणुन करेले छे आमा तेमनी  
प्रशसा करवानी बात जे कथा छे ? आ विषयमा तेमनी प्रशसा अगेनी कल्पना  
करवी भीलकुल निर्मुण जे छे. कहु पथु छे—

“ सव्वे तित्थयरा खलु, नियचरियं जं कहेइ उवहाणे ।

गंथंति गणहरा तं, तहेव नो नूणमब्भहियं ” ॥ १ ॥

आ आगमप्रसिद्ध बात छे जे पोतपोताना गणधरो पासे समस्त तीर्थंकर  
पोतपोताना अरित्रनु कथन करे छे, ते गणधर उपधानमा ते अरित्रनु अये जे इपथी  
( न ओधु न वधारे ) ग्रथन करे छे (१)



માવતઃ પહ્લેદ્યાયત્ત્વં તુ મગવત ક્ષયમપિ ન સમવતિ, ધર્મપ્રકૃતિક્ષ્ય સ્વ્ય ધર્મછેદ્યામાત્રસદ્માવાત્, ધર્મલેદ્યા ઢિ તિસ્રઃ સન્તિ, તથા ષોક્તમ્—“ તેઝ પમ્મા મુક્કા, તિમ્મિ ઇયાઓ ધમ્મલેસ્સામો ।” ઇતિ । અધર્મસ્ય તુ તપ્ર લેદ્યતોઽપિ ષદ્ધા નાસ્તિ, અસ્મિન્નેવોદેશકે—

“બધા જ સે મહાવીરે, જો ચિય પાવગ સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા વ્ય કારિત્થા, ફીરતં પિ નાણુમાણિત્થા (૧-૮)” ॥

ઇત્યહમગાયાયાં મગવતા ન સ્વય પાપં કૃતં, નાન્યૈઃ કારિતં, કુર્ષન્તમન્યં મતિ નાનુમોદિતમિત્યેવં પ્રિકરણપ્રિયોગૈર્મગવત્ પાપસમ્યધામાવો ષોધિતઃ । એવં વ તસ્મિન્નધર્મલેદ્યાપ્રયસ્ય સ્થાન નોપપદ્યતે ।

યહ જો કહ્યા ગયા છે કે મગવાન છહ છેદ્યાવાલ એ સો મી કયન યુક્તિસગત નહીં છે, કારણ કે સ્વમાવતઃ ધર્મપ્રકૃતિસમ્પન્ન પ્રમુકે સિર્ફ ધર્મછેદ્યા માત્રકા હી સદ્માવ હોતા છે, પાપલેદ્યાકા નહીં । તેજ, પદ્ય ઔર શુદ્ધ, એ ત્રીન છેદ્યાઈ ધર્મલેદ્યા કહી જાતી હૈં કૃષ્ણ, નીલ ઔર કાપોત, એ અધર્મલેદ્યા ( પાપલેદ્યા ) હૈં । ઇન અધર્મલેદ્યાઓકા તો વહાં અઘાતઃ મી સદ્માવ નહીં પાયા જાતા છે, ક્યોંકિ ઇસી ઉદેશર્મે—

“ જાજ્ઞા જં સે મહાવીરે, જો ચિય પાવગં સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ન કારિત્થા, ફીરતંપિ નાણુજણિત્થા ” ॥ ( ૧-૮ )

હસ આઠવીં ગાયા દ્વારા યહી વાત સ્પષ્ટ કી ગઈ છે કે—જબ મગવાનને સ્વયં કમી પાપ નહીં ક્રિયા ઔર ન વૃસરોસે હી કરાયા, તથા કરનેવાલોં કી અનુમોદના મી નહીં કી, હસ પ્રકાર એ ત્રીન કરણ ઔર

આ જો કહેવાયુ છે કે મગવાન છ છેદ્યાવાળા હતા તે પણ કહેવું યુક્તિસગત નથી, કારણ કે સ્વમાવતઃ ધર્મપ્રકૃતિસમ્પન્ન પ્રમુકે સિર્ફ ધર્મલેદ્યા માત્રનો જ સદ્માવ છે એ પાપ-લેદ્યાનો નહીં તેજ પદ્ય, અને શુદ્ધ, આ ત્રણ લેદ્યાઓ ધર્મલેદ્યા કહેવાય છે કૃષ્ણ, નીલ અને કાપોત એ, અધર્મ-લેદ્યા ( પાપ-લેદ્યા ) છે એ અધર્મ-લેદ્યાઓનો ત્યા લેદ્ય માત્ર પણ સદ્માવ દેખવામાં આવતો નથી કેમકે એ જ ઉદેશર્મા—

“ જાજ્ઞા જં સે મહાવીરે, જો ચિય પાવગં સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ન કારિત્થા, ફીરતંપિ નાણુમાણિત્થા ॥” (૧-૮)

આ આઠવીં ગાયા દ્વારા એ વાત સ્પષ્ટ કરેલ છે કે અધારે મગવાને ષોતે કહી પાપ કરેલ નથી અને ન ધીજાવી કરાવેલ, તથા કરવાવાળાઓને અનુમોદન પણ આપ્યું નથી. આ પ્રકારે અધારે તેઓ ત્રીન કરણ અને ત્રણ ષોધથી પાપના

‘ प्रमादवशेन संयमे स्वलितः ’ इत्यपि तेषां कथनमुन्मत्तप्रलापनम्, “ छउमत्थो वि परक्कममाणो न पमायं सइपि कुञ्चित्था ” इति यदत्र गाथायां सुस्पष्टं वचनं येषां दृष्टिपथं नारोहति ते प्रबलमोहान्धाः सम्यग्दृष्टिभिर्देयनीया इत्यलं विस्तरेण ॥१५॥

तीन योगसे पापके त्यागी रहे तो फिर उनमें पापका ( पापलेश्याओंका ) सम्बन्ध कल्पित करना बिलकुल मूर्खतापूर्ण है, इस लिये यह बात अवश्यर माननी चाहिये कि भगवानमें अधर्मलेश्याके लिये किंचिन्मात्र भी स्थान घटित नहीं होता है ।

तथा ‘ भगवान् चूके ’ इस प्रकार कह कर जो यह बात सिद्ध करना चाहते हैं कि ‘ भगवान् प्रमादके वशसे संयमसे स्वलित हुए हैं ’ यह भी कथन एक तरह उन्मत्तका प्रलाप जैसा ही है, क्यों कि “ छउमत्थो वि परक्कममाणो न पमायं सइपि कुञ्चित्था ” मालूम होता है यह आगम वचन उनकी दृष्टिमें नहीं आया है, नहीं तो वे इस प्रकारका व्यर्थ प्रलाप नहीं करते । इसको जान बूझकर भी जो अपनी हठग्राहिता नहीं छोडे तो उनके लिये हम क्या कहें—ऐसे जीव प्रबल मोहसे ही अन्धे बने हुए हैं, जो जान-बूझकर भी वास्तविक वस्तुस्थितिसे अजान हो रहे हैं, ऐसे जीवों पर सम्यग्दृष्टि जीव केवल दयाके सिवाय और क्या अपनी ओर से प्रकट कर सकते हैं । अब इस विषयमें और अधिक कहने की जरूरत नहीं है ॥१५॥

त्यागी रह्या तो पछी तेमनामा पापलेश्याओंनो सण ध कल्पित करयो ते भीलकुल मूर्खतापूर्ण छे आ माटे ये वात अवश्य मानवी जेधं ये के भगवानमा अधर्मलेश्या माटे जरसरभुंये स्थान सलपित नथी.

“ भगवान् चुक्या ” आ प्रकारतु कडीने ने ये वात सिद्ध करवा धिंछे छे के भगवान् प्रमादवशथी सयमथी स्वलित थया छे. आ कडेपुं पणु येक तरेडना उन्मादने प्रलापण छे, केमके—“ छउमत्थो वि परक्कममाणो न पमायं सइपि कुञ्चित्था ” मालूम थाय छे के आणु आगमनुं वचन तेनी द्रष्टीमा आव्यु नथी, नडीं तो ते आ प्रकारने व्यर्थ प्रलाप न करत आवी रीते जणया पछी पणु ने पोतानी डंकाअडता न छोडे तो तेने माटे कडेवानुं शु डोय ? येवा एव प्रमण मोडथी अध भनेल छे, ने जणुणुने पणु वास्तविक वस्तुस्थितिथी अब्बाणु रडे छे येवा एवे उपर सम्यग्दृष्टी एव केवण दया सिवाय पोताना तरइथी भीणु शु करी शके ? इवे आ निमगया अमिड प्रदेवानी जेवन नथी ...

मानव पद्लेक्ष्याचरं तु मगवतः कपमपि न समवति, धर्मप्रकृतिकस्य तस्य धर्मलेक्ष्यामात्रसवृत्तात्, धर्मलेक्ष्या हि तिस्रः सन्ति, तथा श्लोकम्—“तेन पद्मा सुखा, तिभि एयामो धम्मलेस्ताओ।” इति। अपर्मस्य तु तत्र लेखवोऽपि शक्यं नास्ति, अस्मिन्नेषोद्देशके—

“गच्छा णं से महावीर, णो धिय पावग सयमकासी।

अन्नेहिं वा न कारित्या, कीरंतं पि नाणुजाणित्या ॥” (९-८) ॥

इत्यप्यमगायायां मगवता न स्वयं पापं कृतं, नान्यैः कारितं, कुर्वन्तमन्यं प्रति नानुमोदितमित्येषं प्रिकरणत्रियोगैर्मगवत पापसम्बन्धाभावो बोधितः। एवं च तस्मिन्धर्मलेक्ष्याप्रयस्य स्थानं नोपपद्यते।

यह जो कहा गया है कि मगवान छह लेक्ष्यावाले थे सो भी कपन युक्तिसंगत नहीं है, कारण कि स्वभावतः धर्मप्रकृतिसम्पन्न प्रभुके सिर्फ धर्मलेक्ष्या मात्रका ही सङ्गाह होता है, पापलेक्ष्याका नहीं। तेज, पद्म और शुद्ध, ये तीन लेक्ष्याएँ धर्मलेक्ष्या कही जाती हैं कृष्ण, नील और कापोत, ये अधर्मलेक्ष्या (पापलेक्ष्या) हैं। इन अधर्मलेक्ष्याओंका तो वहाँ अंशतः भी सङ्गाह नहीं पाया जाता है, क्योंकि इसी उद्देशमें—

“गच्छा णं से महावीरे, णो धिय पावगं सयमकासी।

अन्नेहिं वा न कारित्या, कीरंतं पि नाणुजाणित्या ॥” (९-८)

इस आठवीं गाथा द्वारा यही बात स्पष्ट की गई है कि—जब मगवानने स्वयं कभी पाप नहीं किया और न दूसरोंसे ही कराया, तथा करनेवालों की अनुमोदना भी नहीं की, इस प्रकार ये तीन कारण और

आगे छेवामु छे के मगवान छे लेक्ष्यावाला दत्ता ते पद्म कहेवुं मुक्तिस अत नथी, तारणु के स्वभावतः धर्मप्रकृतिस पत्त प्रभुने इत धर्मलेक्ष्या मानेने व सङ्गाह लेख छे पाप-लेक्ष्याने नही तेज पद्म अने शुद्ध, आ त्रय लेक्ष्याओ धर्मलेक्ष्या छेवामु छे कृष्ण, नील अने कापोत जे, अधर्म-लेक्ष्या (पाप-लेक्ष्या) छे जे अधर्म-लेक्ष्याओने तथा लेख मात्र पद्म सङ्गाह देणवामा आवती नथी. केमके जे व उद्देशमा—

“गच्छा णं से महावीर, णो धिय पावगं सयमकासी।

अन्नेहिं वा न कारित्या, कीरंतं पि नाणुजाणित्या ॥” (९-८)

आ आठवीं गाथा द्वारा जे बात स्पष्ट करेल छे के मगवने मगवने योते इही पाप करेल नथी अने न जीवथी इत्येव, तथा इत्यावालाओने अनुमोदन पद्म आशु नथी आ प्रदारे मगवने तेजो तीन तारणु अने त्रय योत्रभी पापना

‘પ્રમાદવશેન સંયમે સ્વલિતઃ’ इत्यपि तेषां कथनमुन्मत्तप्रलपनम्, “छउमत्थो वि परक्कममाणो न पमायं सइंपि कुञ्चित्था” इति यदत्र गाथायां सुस्पष्टं वचनं येषां दृष्टिपथं नारोहति ते प्रवल्मोहान्धाः सम्यग्दृष्टिभिर्दयनीया इत्यलं विस्तरेण ॥१५॥

तीन યોગસે પાપકે ત્યાગી રહે તો ફિર उनमें पापका ( पापलेश्याओंका ) सम्यन्ध कल्पित करना विलकुल मूर्खतापूर्ण है, इस लिये यह वात अवश्य र माननी चाहिये कि भगवानमें अधर्मलेश्याके लिये किंचिन्मात्र भी स्थान घटित नहीं होता है ।

તથા ‘ ભગવાન ચૂકે ’ इस प्रकार कह कर जो यह वात सिद्ध करना चाहते हैं कि ‘ भगवान प्रमादके वशसे संयमसे स्वलित हुए हैं’ यह भी कथन एक तरह उन्मत्तका प्रलाप जैसा ही है, क्यों कि “ छउमत्थो वि परक्कममाणो न पमायं सइंपि कुञ्चित्था ” मालूम होता है यह आगम वचन उनकी दृष्टिमें नहीं आया है, नहीं तो वे इस प्रकारका व्यर्थ प्रलाप नहीं करते । इसको जान बूझकर भी जो अपनी दृष्टग्राहिता नहीं छोड़े तो उनके लिये हम क्या कहें—ऐसे जीव प्रवल मोहसे ही अन्धे बने हुए हैं, जो जान-बूझकर भी वास्तविक वस्तुस्थितिसे अजान हो रहे हैं, ऐसे जीवों पर सम्यग्दृष्टि जीव केवल दयाके सिवाय और क्या अपनी ओर से प्रकट कर सकते हैं । अब इस विषयमें और अधिक कहने की जरूरत नहीं है ॥१५॥

ત્યાગી રહ્યા તો પછી તેમનામા પાપલેશ્યાઓનો સળધ કલ્પિત કરવો તે ખીલકુલ મૂર્ખતાપૂર્ણ છે આ માટે એ વાત અવશ્ય માનવી નેઈ એ કે ભગવાનમાં અધર્મલેશ્યા માટે જરાસરખુએ સ્થાન સલ્પિત નથી

“ ભગવાન ચુક્યા ” આ પ્રકારનુ કહીને જે એ વાત સિદ્ધ કરવા ઇચ્છે છે કે ભગવાન પ્રમાદવશથી સયમથી સ્વલિત થયા છે. આ કહેવું પણ એક તરેહના ઉન્માદનો પ્રલાપજ છે, કેમકે—“ છउमत्थो वि परक्कममाणो न पमायं सइंपि कुञ्चित्था ” માલુમ થાય છે કે આણુ આગમનુ વચન તેની દ્રષ્ટીમા આવ્યુ નથી, નહીં તો તે આ પ્રકારનો વ્યર્થ પ્રલાપ ન કરત આવી રીતે જાણ્યા પછી પણ જે પોતાની હઠાઇહતા ન છોડે તો તેને માટે કહેવાનું શુ હોય ? એવા જીવ પ્રબળ મોહથી અધખનેલ છે, જે જાણીજીણે પણ વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિથી અજાણુ રહે છે એવા જીવો ઉપર સમ્યગ્દ્રષ્ટી જીવ કેવળ દયા સિવાય પોતાના તરફથી ખીણુ શુ કરી શકે ? હવે આ વિષયમા અધિક કહેવાની જરૂરત નથી. (૧૫)

किञ्च—'सयमेव' इत्यादि।

मूलम्—सयमेव अभिसमागम्य, आयतजोगमायसोर्हीष।

अभिनिवृद्धे अमाइष्टे, आवकह भगव समियासी ॥१६॥

छाया—स्वयमेवाभिसमागम्य आयतयोगमात्मशोभ्या।

अभिनिवृत्त अमायायी यावत्स्वयं भगवान् समित आसीत् ॥१८॥

टीका—अमायायी=मायापरहित भगवान् स्वयमेव=मात्मनैव, अभिसमाग-  
म्य=संसारस्वरूपं विदित्वा स्वयंपुद्ग सन् तीर्थप्रवर्तनार्थमुद्यता बभूवेत्यर्थः। यद्यपि  
भगवान् स्वयमेव तीर्थप्रवर्तनार्थमुद्युक्त आसीत् तथापि लोकान्तिका इवा भगवद्  
न्तिकं समागत्य परम्परागताचारमात्मम्य भगवन्तं तीर्थप्रवर्तनाय प्रार्थयामासुः।

और भी—'सयमेव' इत्यादि।

मायाचारीकी प्रवृत्तिसे सर्वथा रहित भगवान् महावीरने अपने आप  
ही इस संसारका स्वरूप मलीभाति जान कर परित्याग किया, उन्होंने  
संसारकी असारताका पाठ किसी दूसरेके पाससे नहीं सीखा, क्यों  
कि तीर्थपुद्ग स्वयंपुद्ग होते हैं। सांसारिक असारताके चित्तमें पड़ने पर  
दीक्षाके माय होते ही लोकान्तिक देवोंका शीघ्र ही आगमन होता है।  
ये आ कर तीर्थप्रवृत्ति करनेके लिये प्रभुसे प्रार्थना करते हैं। यद्यपि  
भगवान् तीर्थप्रवृत्ति करनेके लिये पहिछेसे ही तय्यार रहते हैं, फिर  
भी लोकान्तिक देवोंका ऐसा ही परम्परागत नियोग-आचार-है कि प्रभु  
जय दीक्षा देनेके लिये उद्यत होते ह तब ये आ कर अपने परम्परागत इस  
नियोग की पूर्ति करते हैं। कहा भी है—

इत् पञ्च—सयमेव इत्यादि।

भाषाचारीनी प्रवृत्तिसे सर्वथा रहित भगवान् महावीरने पोतानी  
जते आ संसारतु स्वरूप मली-भातिथी जायी परित्याग कभी  
तेजसे संसारनी असारताको पाठ नीव्व ठाई पासैभी शीघ्र न जात केभके  
तीथ कर स्वयंपुद्ग होय छ सांसारिक असारता चित्तमा यजना दीक्षाना भाव  
मन्य छ लोकान्तिक देवोतु शीघ्र आगमन माय छ जे अर्थात् प्रभुथी तीथ  
प्रवृत्ति करवा भाटे प्रार्थना कर छ जे के भगवान तीर्थप्रवृत्ति करवा भाटे  
पहिछेथी अतवार रह छ तो पञ्च लोकान्तिक देवोतु जेवो परम्परागत नियोग-  
आचार-उके प्रभु अर्थात् दीक्षा लेना भाटे उद्यत होय छ तब ते आशीने पोतानी  
परम्परागत अ नियोगनी पूर्ति करे छ इत् पञ्च छ—

उक्तञ्च--

“आदित्यादिर्विबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,  
मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच।  
तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,  
त्येतद् वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः ॥१॥” इति।  
तीर्थप्रवर्तनार्थं कथं प्रवृत्तोऽभूदितिदर्शयितुमाह-‘आत्मशोध्या’ कर्मणः  
क्षयोपशमादुपशमात् क्षयाच्चात्मनः शोधिस्तया, आयतयोगं=सुप्रणिधानयुक्तमनो-

“आदित्यादिर्विबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,  
मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच।  
तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,  
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः” ॥ १ ॥

हे भगवन् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देव,  
अनुपम एवं तीनों लोकमें सारभूत ऐसे शिवपद-मोक्षपदको प्राप्त करने  
के लिये उद्यत हुए आपके पास आ कर इस प्रकार प्रार्थना करते हैं कि  
-“हे नाथ ! इस संसाररूपी महाभय को नष्ट करनेवाले तीर्थकी आप  
शीघ्र स्थापना करें” यह उनकी प्रार्थना आपके लिये निवेदनमात्र है,  
क्यों कि आप तो स्वयंबुद्ध हैं। उन देवोंका यह केवल परम्परागत  
आचार है ॥ १ ॥

भगवान् अपने चारित्रमोहनीयरूप कर्मके क्षयोपशम, उपशम और सर्वथा

“आदित्यादिर्विबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,  
मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच।  
तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,  
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः” ॥ १ ॥

हे भगवान् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारना लोकान्तिक देवो अनु-  
पम अने त्रिषु लोकमा सारभूत जेवा शिवपद-मोक्षपद-ने प्राप्त करवा भाटे  
उद्यत-तैयार थयेल आपनी पासे आवीने आ प्रकारे प्रार्थना करे छे हे-“हे  
नाथ ! आ संसाररूपी महाभयने नष्ट करवावाणा तीर्थनी आप शीघ्र स्थापना  
करे” आ प्रकारनी तेजोनी प्रार्थना आपने भाटे निवेदनमात्र छे, केभडे  
आप तो स्वयंबुद्ध छे. ते देवोने आ देवण पर परागत आचार छे (१)

भगवान् पोताना चारित्रमोहनीयरूप कर्मना क्षयोपशम, उपशम अने

किञ्च—'सयमेव' इत्यादि।

मूळम्—सयमेव अभिसमागम्य, आयतजोगमायसोर्हीय।

अभिनिवृद्धं अमाहृष्टे, आवकह भगव समियासी ॥१६॥

छाया—स्वयमेवामिसमागम्य आयतयोगमात्मशाप्या।

अभिनिवृत्त अमापावी याक्त्थं भगवान् समित आसीत् ॥१८॥

टीका—अमापावी=मापारहित भगवान् स्वयमेव=आत्मनैव, अभिसमाग-  
म्य=संसारस्वरूपं विदित्वा स्वयंपुद्ग सन् तीर्थप्रवर्तनार्थमुद्यता बभूवेत्यर्थः। यद्यपि  
भगवान् स्वयमेव तीर्थप्रवर्तनार्थमुद्युक्त आसीत् तथापि लोकान्तिका द्वा भगवद्  
नित्यं समागत्य परम्परागताचारमात्मन्य भगवन्तं तीर्थप्रवर्तनाय मार्गयामासुः।

और भी—'सयमेव' इत्यादि।

भाषाशारीकी प्रवृत्तिसे सर्वथा रहित भगवान् महावीरने अपने आप  
ही इस संसारका स्वरूप मर्ला-भाति जान कर परित्याग किया, उन्हें  
संसारकी 'असारताका पाठ किसी दूसरेक पाससे नहीं सीखा, क्यों  
कि तीर्थप्रवृत्ति स्वयंपुद्ग होते हैं। सांसारिक असारताके चिन्तमें बढ़ने पर  
दीक्षाके भाव होते ही लोकान्तिक देवोंका शीघ्र ही आगमन होता है।  
ये आ कर तीर्थप्रवृत्ति करनेके लिए प्रभुसे प्रार्थना करते हैं। यद्यपि  
भगवान् तीर्थप्रवृत्ति करनेके लिये पहिलेसे ही तय्यार रहते हैं, फिर  
भी लोकान्तिक देवोंका ऐसा ही परम्परागत नियोग-आचार-है कि प्रभु  
जब दीक्षा लेनेके लिये उद्यम होते हैं तब ये आ कर अपने परम्परागत इस  
नियोग की पूर्ति करते हैं। कहा भी है—

इति पञ्च—सयमेव इत्यादि।

भाषाशारीकी प्रवृत्तिसे सर्वथा रहित भगवान् महावीरने अपने आप  
ही इस संसारका स्वरूप मर्ला-भाति जान कर परित्याग किया, उन्हें  
संसारकी 'असारताका पाठ किसी दूसरेक पाससे नहीं सीखा, क्यों  
कि तीर्थप्रवृत्ति स्वयंपुद्ग होते हैं। सांसारिक असारताके चिन्तमें बढ़ने पर  
दीक्षाके भाव होते ही लोकान्तिक देवोंका शीघ्र ही आगमन होता है।  
ये आ कर तीर्थप्रवृत्ति करनेके लिये प्रभुसे प्रार्थना करते हैं। यद्यपि  
भगवान् तीर्थप्रवृत्ति करनेके लिये पहिलेसे ही तय्यार रहते हैं, फिर  
भी लोकान्तिक देवोंका ऐसा ही परम्परागत नियोग-आचार-है कि प्रभु  
जब दीक्षा लेनेके लिये उद्यम होते हैं तब ये आ कर अपने परम्परागत इस  
नियोग की पूर्ति करते हैं। कहा भी है—

उक्तञ्च—

“आदित्यादिविबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,-

मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच ।

तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,-

त्येतद् वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः ॥ १ ॥” इति ।

तीर्थप्रवर्तनार्थं कथं प्रवृत्तोऽभूदिति दर्शयितुमाह—‘आत्मशोध्या’ कर्मणः क्षयोपशमादुपशमात् क्षयाच्चात्मनः शोधिस्तया, आयतयोगं=सुप्रणिधानयुक्तमनो-

“आदित्यादिविबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,-

मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच ।

तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,-

त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः” ॥ १ ॥

हे भगवन् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देव, अनुपम एवं तीनों लोकमें सारभूत ऐसे शिवपद-मोक्षपदको प्राप्त करने के लिये उद्यत हुए आपके पास आ कर इस प्रकार प्रार्थना करते हैं कि—“हे नाथ ! इस संसाररूपी महाभय को नष्ट करनेवाले तीर्थकी आप शीघ्र स्थापना करें” यह उनकी प्रार्थना आपके लिये निवेदनमात्र है, क्यों कि आप तो स्वयंबुद्ध हैं । उन देवोंका यह केवल परम्परागत आचार है ॥ १ ॥

भगवान् अपने चारित्रमोहनीयरूप कर्मके क्षयोपशम, उपशम और सर्वथा

“आदित्यादिविबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,

मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच ।

तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,

त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः” ॥ १ ॥

हे भगवान् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारका लोकान्तिकदेवो अनुपम अने त्रष्टे दोकमा सारभूत अवा शिवपद-मोक्षपद-ने प्राप्त करवा माटे उद्यत-तैयार थयेल आपनी पासे आवीने आ प्रकारे प्रार्थना करे छे के—“ हे नाथ ! आ स साररूपी महाभयने नष्ट करवावाणा तीर्थनी आप शीघ्र स्थापना करे” आ प्रकाग्नी तेज्यानी प्रार्थना आपने माटे निवेदनमात्र छे, केमडे आप तो स्वयंबुद्ध छे, ते देवोने आ केवण परपरागत आचार छे (१)

भगवान् पोताना सात्रिमोहनीयरूप कर्मना क्षयोपशम, उपशम अने



वाक्याययोगं विधाय, अभिनिर्भूतः=कपायान्तप्रसमेन शीतोभूतः, अत एव यावत्कय=  
यावज्जीव समितः=समितिपञ्चकसमन्वितः, तथा गुप्तित्रयसमन्वितभासीत् ॥१६॥

उपसंहरन्नाह—'एस विही' इत्यादि ।

मूळम्—एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।

बहुसो अपढिन्नेण, भगवया एव रीयति—त्तिवेमि ॥१७॥

छाया—एव विधिरजुकान्तः, माहणेन मत्तिमता ।

बहुसोऽपढिन्नेन, भगवता एव रीयन्ते—इति वधीमि ॥१६॥

टीका—अस्य व्याख्या प्रथमोद्देशकेऽभिहिता एत एवास्मिन्तव्या । 'इति  
वधीमि' अस्य व्याख्याऽपि पूर्वं गता ॥ १७ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥९-४॥

क्षयसे आत्माकी शुद्धि कर आरिअ अंगीकार कर मन, वचन और कायकी  
प्रवृत्तिको सुप्रणिधानयुक्त करते हुए कपायस्वपी अग्निके प्रशमसे अत्यंत  
शीतल हुए और जीवनपर्यन्त पांच समिति एवं तीन गुप्तिसे युक्त  
गोमित हुए ॥१६॥

अथ सूत्रकार उपसंहार करते हुए कहते हैं—'एस विही' इत्यादि ।

इस सूत्रकी व्याख्या प्रथम उद्देशमें की जा चुकी, है अतः वहीसे  
जान लेनी चाहिये ॥१७॥

॥ नवमे अध्ययनका चौथा उद्देश सम्पूर्ण ॥९-४॥

अथ वा अथवी आत्मान्नी शुद्धि करि आरिअ अंगीकार करि, वीसा आरजु करि  
मन, वचन अने कायानी प्रवृत्तिने सुप्रणिधानयुक्त करिअ करिअं कपायस्वपी  
अग्निना प्रशमवी अत्यंत शीतल अन्था अने जीवनपर्यन्त पांच समिति अने  
त्रय गुप्तिवी युक्त गोमित अथा (१६)

अथ सूत्रकार उपसंहार करिअं कहे अ—'एस विही' इत्यादि ।

आ सूत्रनी व्याख्या प्रथम उद्देशमा कहेवाअ जमेअ अ अरवे त्वाधी अमल  
देवी नेअवे (१७)

नवमा अध्ययनने चौथा उद्देश समाप्त ॥ ९-४ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

श्रीवर्तमानस्य विभोर्विहारं, शय्यासनं घोरपरीषहंश्च ।  
 विलक्षणाभिग्रहलब्धभृक्तिं, प्रोचे नवाङ्गाध्ययने सुधर्मा ॥ १ ॥  
 माघशुक्लत्रयोदश्यां, गुरौ पुष्ये च वैक्रमे ।  
 द्व्यधिकद्विसहस्रेऽब्दे, टीकेयं पूर्णतामगात् ॥ २ ॥  
 ॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायामुपधानाख्यं  
 नवममध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

अध्ययनके विषयोका उपसंहार—

इस अन्तिम श्लोकद्वारा टीकाकारने इस नवमें अध्ययनके चार उद्देशोंमें वर्णित विषयका उपसंहार रूपसे कथन किया है, वे बतलाते हैं कि श्रीसुधर्मास्वामीने प्रथम उद्देशमें भगवान् के विहार का, द्वितीय उद्देशमें उनके शयन और आसनका, तृतीय उद्देशमें घोर परीषह और उपसर्गोंके सहनेका और चतुर्थ उद्देशमें नाना प्रकारके कठिन अभिग्रहोंसे प्राप्त आहारका वर्णन किया है ॥१॥

विक्रम संवत् २००२ माघशुक्ल १३ बृहस्पतिवार पुष्य नक्षत्रमें यह टीका पूर्ण हुई है ॥ २ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके उपधानश्रुत नामके नववें अध्ययनकी आचार-  
 चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ९ ॥

अध्ययनना विषयेना उपसंहार—

आ अतिम श्लोकद्वारा टीकाकारे आ नवमा अध्ययनना चोथा उद्देशमां वल्लुववामां आवेला विषयना उपसंहार रूपे कथन करेले छे तेचो अतावे छे के श्री सुधर्मास्वामीचे पडेला उद्देशमा लगवानना विहार भाषत, भीज उद्देशमा अमेना शयन अने आसन भाषत, त्रीज उद्देशमा घोर परिषह अने उपसर्गो सडेवा भाषत, अने चोथा उद्देशमा धरुा प्रकारना कठणु अलिग्रहोधी भणेले आहारनु वल्लुन करेले छे (१)

विक्रम संवत् २००२ मङ्गलसुदि १३ शुक्रवार पुष्य नक्षत्रमा आ टीका पूर्ण थई छे. (२)

आ आचारांगसूत्रना उपधानश्रुत नामना नवमा अध्ययननी आचार-  
 चिन्तामणि-टीकानो गुजराती अनुवाद संपूर्ण ॥ ९ ॥

## शास्त्रप्रशस्ति —

तस्मै धी-वर्द्धमानाय, केवलालोकशालिने ।

व्यासवे सदा मूयाद्, घासीलाल्लक्ष्मणा नतिः ॥१॥

वृषडीरजरामरम्य महतः पूज्यस्य गच्छामित् ,

शान्तो दान्त उदारचित्तमल स्रग्भ्रागमन्यापवित् ॥

नम्रो जीवदयाकरो मुनिवरो गच्छामिपो भासुरः,

भीमानस्ति गुलाभचन्द्र-विषुषः पञ्चानुपद्वाञ्जितः ॥ २ ॥

शान्तो दान्त उदञ्चितामलयश्चन्द्रो महान् पण्डितः,

सेवास्तद्विनयेर्वशीकृतभ्रगद्विषाणुणेर्मण्डितः ॥

परमाचारनिषेधपूतपरभिर्मस्यैकचिन्तामणि,-

लोकानन्दकरो विमाति घनजी-स्वामी सदा सन्नुनिः ॥३॥

गणेऽस्मिन् प्रमुष्यः सुषीद्वन्द्वन्यो,-

ध्रमन् देष्टव्येशान्तरं पापमन् या ॥

मयिस्थापितस्वीयधर्ममबोधो,-

मुनिर्नान्चन्द्रः कवीन्द्र सुषोषः ॥ ४ ॥

भ्रमत्यः प्रियधर्मको हृदतरं धर्मं दधानस्तया,

श्रीसहोऽतितरामुदारधरितो बन्धादिबोधे समः ॥

पुण्यापुण्यनिरूपणेऽपि निपुणो श्रीवानुष्मपापरो,-

श्रीबाऽजीवसुखं च तस्वममितो विद्वान् सदा रामते ॥५॥

चारित्र-भुतमुग्धकेन सुपमा जैनानुशास्तेर्वेषा,

सह्याभ्यां निनशासनस्य च तथा सा लिम्प्यशीपचने ॥

एवं स्थानकवासिसह उमयोऽन्योऽन्यानुरागोन्मतो,-

भानन्नास्रव-सपरादिकमयं स्तनप्रये तत्परः ॥ ६ ॥

वासोऽपि धर्मी स्यविरोऽपि धर्मी,

समागतं माधुगकोऽपि धर्मी ॥

मायोऽत्र सहे मकशोऽपि धर्मी,

धन्या जनन्यो जनयन्ति तांश्च ॥ ७ ॥

भीमान् घाददजी-स्वामी, सवामापी विनीहिमान् ।

मुनिव्रतधरो धीमान् , साम्प्रतं राजतेतराम् ॥ ८ ॥

जिनागमज्ञः प्रियमञ्जुभापी,  
विहाय दोषान् गुणतो विलासी ॥

तपःक्रियाज्ञाननिरस्ततन्द्रः,  
सदा मुनिश्चञ्चति रूपचन्द्रः ॥९॥

श्रीमान् केशवलालजीमुनिवरः स्वामी सतां सेवकः,  
शीलं विश्ववशीकरं च विनयं संधारयन् यत्नतः ॥  
धर्मादेगरतो दयाद्रुतमनाश्चारित्ररक्षापरो,-

धीरं वीरवरं सदा परिचरन् शान्तोऽधुना राजते ॥१०॥

शान्तिमान् मूलजीस्वामी, भद्रभावसमन्वितः,  
दान्तो दयापयाराशिः, स्थानवासी विराजते ॥११॥  
मुनिः श्रीनागजीस्वामी, व्याख्यानामृततोपकः ।

शान्तो मृदुस्वभावश्च, दयालुः शोभते भुवि ॥ १२ ॥  
नवलचन्द्रमुनिर्विनयान्वितो,-

मृदुलचित्त उदारमतिः सदा ॥

सकलसाधुनिपेवणतत्परो,-

विशदबोधकलार्जन उद्यतः ॥१३॥

विनीतः सुशान्तो दयाराजितान्तः,  
सदा सत्पथे विद्यमानोऽतिदान्तः ॥

तपःसंयमाचारनिष्ठाविशालः,  
सुधीवृन्दसेवी मुनिश्चुन्निलालः ॥१४॥

मृदुस्वभावो विनयी गुणज्ञः  
सदा सदाचारलसत्समज्ञः ॥

निरन्तरध्यानलसज्जिनेन्द्रः

मृशोभते धीविभवो महेन्द्र ॥१५॥ इति ॥

॥ इतिश्री-विश्वत्रिख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
कलापालापक-प्रविशुद्धराद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाह-  
छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-" जैनशास्त्राचार्य "-पद्भूषित-  
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-  
पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-  
स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमः श्रुतस्कन्धः

सम्पूर्णः ॥ ° ॥



[ ૧ ]

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ.

ગરેડીઆ કુવા રોડ-ગ્રીને લોજ પાસે

રાજકોટ.

\*

સમિતિની શરૂઆત તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી  
તા.-૨-૧૧-૫૭ સુધીમાં દાનવીર મહાશયો  
તરફથી મળેલી રકમોની નામાવહી.

\*

(૩૧. ૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમાં સામેલ કરેલી નથી.)

## આઇ સુરભીટી-૪

(બોધમાં બોધી રૂ. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧૦૦૦૦	ચેક શાંતિલાલ મજનદાસભાઈ, પ્રમુખ સાહેબ	જામદાવાદ
૬૦૦૦	ચેક હરખચંદ કાલીદાસભાઈ	
	(હા. ચેક લાલચંદભાઈ, જેવંદભાઈ, નગીનદાસભાઈ, વૃજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ)	ભાણુવડ
૫૨૫૧	કેઠાસી જેવંદભાઈ જાજરામર હા. હરજોવીદાસભાઈ જેવંદ	રાજકોટ
૫૦૦૧	ચેક ધારથીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર

## સુરભીટીઓ-૨૧

(બોધમાં બોધી રૂ. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૩૬૦૫	વહીલ જીવરાજ વર્ધમાન હા. કેઠાસી કદાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર
૩૬૦૪	દોશી પ્રભુદાસ બુલભાઈ	રાજકોટ
૩૨૮૬	મહેતા બુલાબચંદ પાનાચંદ	રાજકોટ
૩૨૫૦	મહેતા માણેકલાલ જાગુજીરાવ	ખાટકોપર
૩૧૦૧	સઘવી પીતામ્બરદાસ બુલાબચંદ	જામનગર
૨૫૦	ચેક ચામલભાઈ વેલજી વીરાણી	રાજકોટ
૨૦૦૦	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસીકલ મહાદુર	મોરબી
૨૦૦૦	ચેક લહેરચંદ કુવરજી હા. ચેક ન્યાલચંદભાઈ લહેરચંદ	સિદ્ધપુર
૨૦૦૦	ચાહં હજનલાલ હેમચંદ વસા હા. મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	સુભઈ
૧૬૬૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જીન સઘ	મોરબી
૧૦૦૧	ચેક જાજરામ માણેકલાલ	જામદાવાદ
૧૦૦૧	ચેક માણેકલાલ ભાણુજીભાઈ	પોરબંદર
૧૦૦૦	ચેક સોમચંદ તુલસીદાસ	સ્તલામ
૧૦૦૦	કેઠાસી જીવીલાલદાસ હરખચંદ	સુભઈ
૧૦૦૦	કેઠાસી રંગીલાલદાસ હરખચંદ	ચીહોર
૧૦૦૨	જાગડીઆ જગજીવનદાસ સ્વતંત્રી	જામનગર
૧૦૦૧	શ્રીમાન બંદ્રસિકલ મહેતા (૨૧વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા
૧૦૦૧	મહેતા પાંચટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર
૧૦૦૧	મહેતા સોમચંદ નેણુથીભાઈ	(કલંબીવણ) મોરબી
૧૦૦૧	ચાહં હરીલાલ જાગુજી	ખલાલ
૧૦૦૨	દોશી કપુરચંદ જામરથી હં હલપતરામ કપુરચંદ દોશી જામજોધપુર	

## સાહાયક મેમ્બરો-૨૬

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૭૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ હા. શેઠ જુઝાભાઈ વેલસીભાઈ	વઢવાણ શહેર
૭૫૦	મોદી કેશવલાલ હરિચંદ્ર	સાબરમતી
૭૦૦	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓધડભાઈ	જોરાવરનગર
૫૦૧	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ	લીમડી
૫૦૦	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	થાનગઢ
૫૦૦	શેશ તારાચંદ જી પુખરાજી	ઐરંગાબાદ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	ઐરંગાબાદ
	૧૫૦ શેઠ શેષમલજી જીવરાજી	
	૧૨૫ ,, અનરાજી લાલચંદજી	
	૧૨૫ ,, ધુકડચંદજી રૂપચંદજી	
	<u>૧૦૦</u> ,, ઠગડુમલજી ચાંદમલજી	
	૫૦૦	
૫૦૦	મહેતા મોહનદાલ કપુરચંદ	રાજકોટ
૫૦૦	શેઠ ગોવીંદજી પોપટભાઈ	રાજકોટ
૫૦૦	મહેતા મુળચંદ રાઘવજી હા મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઈ ધ્રાક્ષા	
૫૦૧	શેઠ હરખચંદ પરસોત્તમ હા. ભાઈ ઈન્દુકુમાર	ચોરવાડ
૫૦૧	શેઠ ખીમજી બાવાભાઈ હા. તેમના પુત્ર કુલચંદભાઈ	
	નાગરદાસભાઈ, શુભાખચંદભાઈ, તથા જમનાદાસભાઈ	મુંબઈ
૫૦૧	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. શેઠ મુળજીભાઈ મણીલાલ મુંબઈ	
૫૦૧	શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	અમદાવાદ
૫૦૧	શેઠ ચંદુલાલ ઇગનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	સ્વ. કાતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હ. શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ	મુંબઈ
૫૦૦	અ સી. જૈન મણીગૌરી મગનલાલ તે મહેતા સોમચંદ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ	રતલામ
૫૦૧	સ્વ. પીતાશ્રી નદાજીના સ્મરણાર્થે હ. વેણીચંદ શાંતિલાલ (બખુઆવાળા)	મેઘનગર



૭૫૧	શાહ રગજીભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	કામદાર સ્તીલાલ દુર્લાભજી નેત્રપુસ્ત્રાળા	મુબઇ
૫૨૭	બાટવીયા ગીરધર પ્રભાજી હસ્તે અમીચંદ ગીરધરભાઈ—	બાબીબાબીયા
૫૧૧	મોરબીવાળા સઘવી દેવચંદ નેજીચીભાઈ તથા તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ મણીબાઈ તરફથી હા. મુળચંદ દેવચંદ કર્ણધીવાળા	મંદાલ
૫૦૧	ચેક કેસરીમલજી વસતીમલજી સુમલીયા	રાણાવાસ
૫૦૧	સ્થાનકવાસી વૈન સઘ હસ્તે બાટવીયા અમીચંદ ગીરધરભાઈ	બાબીબાબીયા
૫૦૨	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ

પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો—૨૭૭

(બોલામાં બોલી રકમ રૂ. ૨૫૦ આખ્યાર)

૪૦૨	શ્રી સ્થાનકવાસી વૈન સઘ	મંદાલ
૪૦૦	ધી વાલીલાલ ઘર્ષંગ એ. મિન્ટજ વર્કસ	રાજકોટ
૪૫૭	ચેક સ્વનચી હીરજીભાઈ હા. ગોરધનદાસભાઈ	અમલોધપુર
૪૦૧	ચેક નેચંદભાઈ માણેકચંદ	ભાણુવડ
૨૫૧	સઘવી માણેકચંદ માધવજી	ભાણુવડ
૨૫૧	ચેક લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુસ્ત્રાળા)	ભાણુવડ
૨૫૧	ચેક રામજી ઝીંજીભાઈ	ભાણુવડ
૨૫૧	પંચમીયા જાવનજાઈ કાળાભાઈ	વડીબા
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી વૈન સઘ	વઠાનેર
૨૫૧	ચેક સ્તીલાલ ન્યાલચંદ	રાજકોટ
૨૫૦	બાણુ પરશુરામ. હજનલાલ ચેક (દેવેપુસ્ત્રાળા)	મુલકોટ
૨૫૧	ચેક મગનલાલ હમનલાલ વિશામ (અક્ષવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	ચેક નેદલાલ ગોરધનદાસ	ઉપલેટા
૨૫૧	સ્વ. બહેન સતોક કવરા હા. જોતમચંદભાઈ, છેટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણવાળા)	ઉપલેટા
૨૫૧	ચેક ખુશાલચંદભાઈ કાનજીભાઈ હા. ચેક પ્રતાપભાઈ	ઉપલેટા
૨૫૧	ચેક છિટાલાલ કેશવજી	અમનગર

૨૫૧	શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ	જેતલસર જંકશનં
૨૫૧	શાહ ચતુરદાસ ઠાકરશીભાઈ	જામનગર
૨૫૧	ખ ઢેરીયા કાન્તિલાલ ત્ર ણકલાલ (સ્પેશન માસ્તર)	વાંકાનેર
૨૫૧	શાહ કેશવલાલ જેચ દ	વેરાવળ
૨૫૧	શાહ ખીમચ દ શૌભાગ્યચંદ વસનજી	વેરાવળ
૨૫૧	સ્વ. ણાળડા વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ કમળબાઈ	
	તરફથી હા માણેકચ દલાઈ તથા કપુરચંદલાઈ	ગોડલ
૨૫૧	શેઠ ઇગનલાલ નાનજીભાઈ	મુંબઈ
૨૫૧	ઘેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ	બુનારદેવ
૨૫૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચ દ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ છોટાલાલ વળતચ દ	અમદાવાદ
૨૫૧	ગોસલિયા હરિલાલ લાલચ દ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ પ્રેમચંદ માણેકચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ	ખ ભાત
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સ ઘ હ. પટેલ કાન્તીલાલ અંબાલાલ ખ ભાત	
૨૫૧	શેઠ રમણીકલાલ ઝો. કપાસી	કેલહાપુર
૨૫૧	ખહેન સુરીખહેન (લક્ષ્મીબેન)	
	હા મહેના હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	પાલનપુર
૨૫૦	શેઠ વાડીલાલ નેમચંદ વકીલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ વીઠલદાસ મોઢી માસ્તર	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ માણેકચ દ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ મણીલાલ જીવણલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ	અમલનેર
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	અમલનેર
૨૫૧	શેઠ મનુભાઈ મુળચ દ (ઈન્જનીયર સાહેબ)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ શાતિલાલ પ્રેમચ દ	
	[તિમના ધર્મપત્નીના વરસીતપ પ્રસંગે ખુશાલીના]	રાજકોટ
૨૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સ ઘ હા. ચ પાલાલજી મારવે	ડોડાઈચિા
૨૫૧	શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીંગડ	ઉદેપુર
૨૫૦	શેઠ બાદરમલજી સુરજમલજી ડુંબેન્કર્સ	યાદગીરી
૨૫૦	શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઈ	હાટીના માળીયા
૨૫૧	ઉઠાણી ન્યાલચ દ હાકોમચ દ (વકીલ)	રાજકોટ

૨૫૧	ચેક પ્રભારામ બીઠલાલ	રાજકોટ
૨૫૧	ચેક મેલરાજલ દેવીચંદલ મહેતા	મદ્રાસ
૨૫૧	પટેલ એવિંદલાલ ભગવાનલ	કોલકાી
૩૦૨	પટેલ ખીમલ નેહાભાઈ વાઘણી	કોલકાી
૨૫૧	ચેક હકમીચંદ દીપચંદ એવિંદલાલ [ સ્ટેશન માંસ્ટર ભદ્રિનગર ]	રાજકોટ
૨૫૧	ચેક વસનલ નારણલ	ભામણ ભાળીયા
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી દેન સદ	ભામણ ભાળીયા
૨૫૧	ચેક કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ	ખીચન (પાલી)
૨૫૧	ચેક પદમસી બીમલ ફોક્ષરીયા	ભાણવડ
૨૫૧	અ. સો. બહેન બચીબહેન બાણુભાઈ	ધારાલ
૨૫૧	ચેક નેમચંદ સવલભાઈ મોદી	લાલપુર
૨૫૦	શ્રી સ્થા. દેન સદ હા. પ્રમુખ ચેક પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ નંદુરબાર	
૨૫૧	ચેક અમૃતલાલ હીરલભાઈ જસાપરવાળા હા. નરસેરામભાઈ જેતપુર	
૨૫૧	દોશી છેટાલાલ વનેચંદ	જેતપુર
૨૫૧	કામદાર લીલાધર જીવસજના સ્મરણાચે તેમનાં ખમ્પત્તી ભાઈ જીવલબેન વરકુષી હા. ભાઈ શાંતિલાલ	જેતલસર
૨૮૭	શ્રી સ્થાનકવાસી દેન સદ	ભામણેધપુર
૨૫૧	સ્વ. બહેન વિલ્વાગૌરી સુચંદ હા. ચેક સચંદ પાનાચંદ ધારાલ	
૨૫૦	ગાધી પાપનલાલ જ્યેષ્ઠભાઈ	ધારાલ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી દેન સદ હા. પ્રમુખ રામચંદ વૃજલાલ અબરેરા	વીહીના
૨૫૧	ચેક મુળચંદ પાપટલાલ હા. મણીલાલભાઈ વધા જેસી જલાલભાઈ	લાલપુર
૨૫૧	ચેક મણીલાલ મીઠાભાઈ હા. હરીલાલભાઈ ( હાલીના માળીયાવાળા )	ભુનાગઢ
૨૫૧	સ્વ. વસાણી હરએવિંદલાલ જીવનલાલના સ્મરણાચે તેમનાં ખમ્પત્તી ભાઈ જીવલબેન વરકુષી	ગોરાદ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી દેન સદ	મુઠા (જાલાવાડ)
૨૫૧	ચેક મજનલાલ જાગરેચા	ઉદેપુર
૨૫૧	ચેક ચાપસીભાઈ મુખલાલ	સુરેન્દ્રનગર

- ૨૫૧ સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ જોટાદ
- ૨૫૧ સ્વ. પૂજ્ય માતુશ્રી સમરતબાઈના સ્મરણાર્થે  
હા. ડોક્ટર સાહેબ નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ કાપડીયા રાણપુર
- ૨૫૧ સ્વ. તુરખીયા લહેરચંદ માણેકચંદ સુદામડાવાળાના સ્મરણાર્થે  
તેમનાં ધર્મપત્ની જીવતીબાઈ તરફથી હા જ્ય તિલાલ લહેરચંદ ડાભાસ
- ૨૫૧ શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ ધ્રાગધ્રા
- ૨૫૧ શાહ દીલપકુંવર સવાઈલાલ  
હા. શેઠ સવાઈલાલ ત્રબકલાલ વઢવાણ શહેર
- ૨૫૧ શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાળા મુંબઈ
- ૨૫૧ રા. રા. નાથાલાલ ડી મહેતા મોખાસા
- ૨૫૧ સઘતી પ્રાણુલાલ લવજીભાઈ જામખંભાણીયા
- ૨૫૧ ખાવીશી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે  
તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ મણીબેન તરફથી  
હા. ભાઈ રસીકલાલ, અનીલકાત તથા વિનોદરાય આસનસોલ
- ૨૫૧ ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ ધંધુકા
- ૨૫૧ શાહ પોપટલાલ ધનજીભાઈ ધંધુકા
- ૨૫૧ સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે  
હા વોરા પોપટલાલ નાનચંદ ધંધુકા
- ૨૫૧ શેઠ ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ વસાણી ધંધુકા
- ૨૫૧ સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે  
તેમના ધર્મપત્ની સુરજબેન મોરારજી તરફથી ખરવાળા
- ૨૫૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ પાણસણા (લીબડી)
- ૨૫૧ સઘાણી મુળશકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે  
હા તેમના પુત્રો જ્ય તિલાલભાઈ તથા રમણીકલાલભાઈ ઉપલેટા
- ૨૫૧ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ  
હા રતીલાલ મગનલાલ કામદાર વઢવાણ શહેર
- ૨૫૧ સંઘવી મુળચંદ બેચરભાઈ  
હા જીવનલાલ ગફલદાસ વઢવાણ શહેર

- २५१ षडेन सुभवाणा नौतमहात् ज्ञाप्ती  
[परसतीपनां पार्ष्णीया पुशापीमां] सञ्जोद
- २५१ शाह् सभन्व इ ह्करशीना स्मरष्वार्थे  
हा. भाषं शातीलात् सभन्व इ लज्जतर
- २५१ भावसार ह्करलपनदास प्रभुदासना स्मरष्वार्थे  
हा. भाषं त्रीशोपनदास ह्करलपनदास लज्जतर
- २५१ शाह् तलकशी ह्रीशिव इना स्मरष्वार्थे  
हा. भाषं अभुतलात् तलकशी लज्जतर
- २५१ शाह् मुनीलात् भाष्येकभ इ लज्जतर
- २५१ शोह् वृज्जलात् सुभलात् वडवाष् शङ्कर
- २५१ शोह् हांतिलात् नागरदास वडवाष् शङ्कर
- २५१ वेसा अत्रभुज भगनलात् वडवाष् शङ्कर
- २५१ स भवो शीवलात् ह्रीमलभाषं वडवाष् शङ्कर
- २५१ शाह् देवशीभाषं देवकरष् वडवाष् शङ्कर
- २५१ शाह् ब्रह्मवल् ज्योषठभाषं सहाइवाणना स्मरष्वार्थे  
हा. भाषं शांतिलात् ब्रह्मवल् लज्जतर
- २५१ भावसार मुनीलात् प्रेमन्व इभाषं सुरैर्जनमर
- २५१ श्री वलमान प्रवेताम्बर स्था भावक सभ  
हा. शोह् केशरीमल्ल मनोपय इल्ल शुभणीया भलाठ (सुंलठ)
- २५१ दोशी ह्करशी सुलावभइना स्मरष्वार्थे तेमनां  
धर्मपत्नी सभस्तनेन वृज्जलात् तरङ्गी  
हा. जयतीलात् ह्करशी लज्जतर
- ३०० शाह् अभुलभभाषं उर्हं जसुभाषं नागरदासनां धर्मपत्नी  
अ. सो. जेन वीलावतीना परसीतपनां पार्ष्णीया  
पुशापीमा हा. भाषं हांतीलात् नागरदास वीरभग्नम
- २५१ कामदार केशवलात् ह्रीमत्सभ प्रोहिसरसाडेव (जिहववाण) बडोइस
- २५१ शोह् दुअशी ह् ससज वीसरीया सुवध
- २५१ शोह् धनसज सुजय इ मुधा दोनावाला (पुना)
- २५१ ग्देवा नानावात् उगनलात्तनां धर्मपत्नी  
स्व. अथजनेन तथा पुरीनेनना स्मरष्वार्थे  
हा. भाषं मनहरेलात् नानावात् सु वणी (वीरभग्नम)

૨૫૧	દોશી ચુનીલાલ કુલચંદ મોરખીવાળા મુ. શાલખની (ખંગાળ)	
૩૦૧	શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા. શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ સાણુંદ	
૨૫૧	શેઠ મોહનલાલ જોઠાભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ આરમારોમ મોહનલાલ	કલોલ
૨૫૧	શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ સૌ. કાંતાબેન રમણીકલાલ (ધ્રાંગધ્રાવાળા)	મુખધ
૨૫૧	ડોક્ટર મયાચંદ મગનલાલ હા. ડો. રતનચંદ મયાચંદ	કલોલ
૨૫૧	સ્વ. શાહ નાથાલાલ ઉમેદચંદના સ્મરણાર્થે હા. શાહ રતીલાલ નાથાલાલ	કલોલ
૨૫૧	શ્રી સ્થા દરોયાપુરી નૈન સંઘ હા. ભાવસાર દામોદરદાસ ઈશ્વરભાઈ	કડી
૨૫૧	શાહ મણીલાલ તલકચંદના સ્મરણાર્થે હા. મારકૂતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ	કલોલ
૨૫૧	અ સૌ ચ પાબેન હ શેઠ જીવરાજ લાલચંદ દોશી	સાણુંદ
૨૫૧	પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ	સાણુંદ
૨૫૧	શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઈ	સાણુંદ
૨૫૧	શાહ હીમતલાલ હરજીવનદાસ	મુખધ
૨૫૧	શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ ( રાજસીતાપુરવાળા )	સાબરમતી
૨૫૧	અ સૌ. સમરતબેન પ્રેમચંદ C/o પ્રેમચંદ માણેકચંદ ( રાજસીતાપુરવાળા )	સાબરમતી
૨૫૧	શા કાંતિલાલ ત્રીભોવનદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ શેઠ ઉજ્જવણી નાનચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. શાહ મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા ખીમચંદભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	સંઘવી જ્યેષ્ઠભાઈ નારણદાસ	વીરમગામ

२५१	स्व. शाह वेदशीलाध साकरवदना स्मरणाथै	
	डा. श्रीमन्साह वेदशी कत्राजवाणा	वीरभगाम
२५१	शाह पोत्रावाह पीताम्बरदास	जमहावाह
२५१	पारैण मणीलाह टोकरशी हातीवाणा तरक्षी	
	भाटीजेनना स्मरणाथै	वीरभगाम
२५१	शाह नारवृदास नानलभाधना सुपत्र वादीलाधना धर्मपत्नी	
	ज. सौ. नारजीजेनना वरक्षीतप निमित्ते डा. सातीलाध	वीरभगाम
२५१	शाह पोपवाह भाहनलाह	जमहावाह
२५०	शेह प्रेमवद साकरवद	जमहावाह
३५१	लाह पुरवृत्र इल जैन (सेन्ट्रलजे कवाणा)	दीरडी
२५१	स्व. छणीलदास जोहणदासना स्मरणाथै तेमना	
	धर्मपत्नि कभणाजेन तरक्षी डा. मलुलाकुभादी	वीरभगाम
२५१	शाह रतीलाह वादीलाह	जमहावाह
२५१	शेह लाहलाध मजणदास	जमहावाह
२५१	ज. सौ. कभणाजेन ते कामदार जोरधनदास भजनलाहना	
	धर्मपत्नि (बडवाणवाणा)	रजुन
२५१	वोरा डोसाभाध लाहवद स्वा. जैन सध	
	डा. वोरा नानवद शिवलाह	वडवाणु शहेर
२५१	वोरा धनलभाध लाहवद स्वा. जैन सध	
	डा. वोरा नानवद जेणरदास	वडवाणु शहेर
२५१	स्व. जामृतलाह वधमानना स्मरणाथै	
	डा. कडानलभाध जामृतलाह देशाध	जमहावाह
२५१	श्री वीरभगाम स्वा. जैन आविहा सध	वीरभगाम
२५१	स्व. विशेषनदास देववद तथा स्व. ज. सौ.	
	ज. जगजेनना स्मरणाथै डा. अकटर डिभतलाह सुजलाह	वीरभगाम
२५१	शाह सुलवद कानलभाध तरक्षी	
	डा. शाह नागरदास जोधकलाध	वीरभगाम
२५१	शेह भाहनलाह पीताम्बरदास डा. भाध डेशवलाह	
	तथा मनसुजलाहलाध	वीरभगाम

૨૫૧	શાહ રતનશી મોણુશીની કું	મુંબઈ
૨૫૧	ભાવસાર ભોગીલાલ જમનાદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ શીવજી માણેકલાઈ	ખેરાબા (કચ્છ)
૨૫૧	શાહ લુણાજી ગુલાબચંદ	સજેલી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શ્રી સ્થા.જૈન સઘ હા. શાહ પ્રેમચંદ	દલીચંદ
		સંજેલી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શાહ કૂંવરજી ગુલાબચંદ	લીમડી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શાહ પાનાચંદ સંઘજીભાઈ હા. ત્રંબકલાલ રતીલાલ	મુંબઈ
૩૦૧	શાહ અમુલખભાઈ મુળજી હા પ્રકાશચંદ અમુલખ	હારીજ
૩૦૧	સ્વ ઝેન ચંદ્રકાતાના સ્મરણાર્થે હા અમુલખ મુળજીભાઈ	હારીજ
૨૫૧	સ્વ. પદમશી સુરચંદના સ્મરણાર્થે હા શીવલાલ પદમશી મેસાણા	
૨૫૧	શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી	એડન ક્રેમ્પ
૨૫૧	શ્રીમતી અ. સૌ. ઝેન ચ દ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી	
	નાહરના ધર્મપત્નિ હા. શેઠ રણજીતલાલજી હીંગડ	ઉદેપુર
૨૫૧	સ્વ શેઠ વીરચંદલાઈ જેસીંગ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે	
	હા. કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ	મુંબઈ
૨૫૧	છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ	લીમડી (પંચમહાલ)
૩૫૧	મહેતા પ્રભુદાસ મુળજીભાઈ	ધોરાજી
૩૦૧	શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઈના વરસીતાપ નીમીત્તે	
	હા નથુભાઈ નાનચંદ શાહ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ મણીયાર પરસોત્તમ સુદરજીના સ્મરણાર્થે	
	હા સાકરચંદ પરસોત્તમ	વીરમગામ
૨૫૧	શેઠ મણીલાલ શીવલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ ત્રીલોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા	જામનેધપુર
૨૫૧	શાહ નટવરલાલ ચંડલાલ	અમદાવાદ
૩૦૧	શાહ ત્રીલોવનદાસ છગનલાલ	ગોધરા
૨૫૧	શાહ નરસીદાસ ત્રીલોવનદાસ	અમદાવાદ
૩૦૧	ખીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાંત ચુનીલાલ ગોપાણી	
	હા ગોપાણી ચુનીલાલ માણેકચંદ	રાણપુર



- ૨૫૧ શ્રી શાહપુર, હરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. લેન કાપામય  
હા વહીવટ કરનાર શેઠ ઈશ્વરદાસ પ્રરૂપોત્તમદાસ અમદાવાદ
- ૨૫૧ શ્રી છીપાપોળ હરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. લેન સંઘ  
હા. શેઠ બદુલાલ અમૃતલાલ અમદાવાદ
- ૨૭૭ શ્રી સ્થાનકવાસી છોકોટી લેન સંઘ  
હા મહેતા ચુનીલાલ વેલણ માંડવી (કચ્છ)
- ૨૫૧ વહીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ વડોદરા
- ૨૫૧ શાહ ચીનુભાઈ બાલાભાઈ C/o શાહ બાલાભાઈ મહામુખસમ  
અમદાવાદ
- ૨૫૧ શાહ ભાઈલાલ ઉજ્જમચી અમદાવાદ
- ૨૫૧ સ્વ. કેશવલાલ મુળભાઈનાં ધર્મપત્ની, સ્વ અમૃતબાઈના  
સ્મરણાર્થે હા. ભાઈલાલ કેશવલાલ ધાનગઢવાળા મુરૈન્દ્રનગર
- ૨૫૧ પુરીનિન ચીમનલાલ કસ્માણુલ સંઘવી લીમડીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા. વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી સાણંદ
- ૨૫૧ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા. જીખાલાલ નેમચંદ સાણંદ
- ૨૫૧ સંઘવી નારણદાસ ધરમચીના સ્મરણાર્થે  
હા. જયતીલાલ નારણદાસ સાણંદ
- ૨૫૧ શા. પ્રવિણચંદ્ર નરસીદાસ સાણંદવાળા ઘોઠેલી (બુજરાત)
- ૨૫૧ માસ્તર જેઠલાલ મોનભાઈ હા. મહેતા  
અમૃતલાલ જેઠલાલ શ્રીવીલકાળીચર સાહેબ લાખેરી (રાજસ્થાન)
- ૨૫૧ શ્રી મુખલાલ ડી શેઠ  
હા. ડા. કુ. સસ્વતી ખેન શેઠ અમદાવાદ
- ૨૫૧ શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા. લેન સંઘ  
હા. શાહ ઠાવીલાલ ભવનલાલ અમદાવાદ
- ૨૫૧ સ્વ. શેઠ કાળુલાલભાઈ દોઢાના સ્મરણાર્થે  
હા. શેઠ દોલતસિંહભાઈ લોલા ઢોડપુર
- ૨૫૧ સ્વ. મહેતા કુવરભાઈ નાથાભાઈના સ્મરણાર્થે  
હા. તેમનાં ધર્મપત્ની કુવરભાઈ હરખચંદ તરશ્ચી  
(મનકુવા સ્થા. લેન સંઘને માટે) માનકુવા (કચ્છ)

૨૫૧	મોદી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ પ્રતાપમલજી સાખલાના સ્મરણાર્થે હા. પ્રાણુલાલ હીરાલાલ સાખલા	ઉદ્દેપુર
૨૫૧	શ્રી છકોટી સ્થા. જૈન ટ્રસ્ટ હા. શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	દોશી વીરચંદ સુરચંદ હા. દોશી નાનચંદ ઉજ્જવશી	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સ્વ. વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા વોરા ચંપ્રભુજ મગનલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ હંસરાજના સ્મરણાર્થે હા શેઠ બાબુલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ કુવરજી હંસરાજ	મુંબઈ
૨૫૧	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. ભાઈલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	અમદાવાદ
૨૫૧	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. દલીચંદ અમૃતલાલ દેશાઈ	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ	ખંભાત
૨૫૧	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ મણીલાલ આશારામ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ ચીનુભાઈ સાકરચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	અ સૌ ચંપાબેન ગોસલીયા હા ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી વટામણ સ્થા. જૈન સંઘ હા. શ્રી ડહ્યાભાઈ હલુભાઈ	વટામણ (ધોળકા)
૨૫૧	કોક્કરી ડોલરકુમાર વેણીલાલ	જેતપુર
૨૫૧	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદચંદ	અમદાવાદ
૨૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	સાબરમતી
૨૫૧	શેઠ અમરચંદ છગનલાલ બાગચેચા	નાથદ્રારા

૨૫૨	ધૈયાણી પ્રજ્ઞાદાસ વિક્રમભ	મુળર્થ
૩૦૧	સ્વ. સુખવી મનસુખલાલ મોહનલાલના સ્મરણાર્થે હા. ધીરજલાલ મનસુખલાલ	પાસેલ
૩૦૦	મ્હેતા ગુલાબચંદ બ. ભીરમભ	ચૈતવઠ (ધાણ)
૨૫૧	શાહ ખીમચંદ મુળભાઈ	વલસાડ
૨૫૧	શાહ હરભવનભાઈ કેશવભ	મુળર્થ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જન સંઘ હા. ઊડુભાઈ જલેજદ શાહ	મુસ્લ
૨૫૧	શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ ખાનેલીવાળા	ભમરગામચોક
૨૫૧	શાહ સ્વભાઈ તથા ભાઈલાલની કું	કલિવલી
૨૫૧	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	સુખવી ભવજલાલ હનનલાલ (સ્થા. લેન)	અમદાવાદ
૩૦૧	સ્વ. માતુશ્રી માણેકભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ વલસાડાસ નાનભ પોરણદસ્વાળા	મુળર્થ
૨૫૧	ચોક દેવરાજભ ભત્રમભ પુનમીબા સાહીવાળા	મુળર્થ
૩૦૧	શાહ મુનિલાલ નાસ્જભ	ખાટકોટ
૨૫૧	જોક સાઈચંદસ્ય હા. ચોક મુદરલાલ માણેકચંદ	મુળર્થ
૨૫૧	અ. સૌ જહેન ખાનભાઈ હા. ચોક પદમસી નરચીભાઈ	મલાઈ
૨૫૧	શ્રી સરસ્વતીપુર દરોજીપુરી ખાટકોટી સ્થા. લેન ઉપાશ્રય હા. ભાવસાર લોગીલાલ હનનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	ભાવસાર લોગીલાલ હનનલાલ	અમદાવાદ
૩૦૧	સ્વ. પિનાશી નાગચીભાઈ સેજખાલના સ્મરણાર્થે હા. શાહ સમભ નાગચી ગુઢાળાવાળા	મલાઈ
૨૫૧	શાહ સમભાઈ કરશનભ જ્ઞાનમહાવાળા	મુળર્થ
૨૫૧	શાહ ઠાકરચી કરશનભ	જ્ઞાનમહ
૨૫૧	શાહ જેઠલાલ ત્રીભોવનલાલ	જ્ઞાનમહ
૨૫૧	શાહ ધારથી ખાશેવીર	જ્ઞાનમહ
૨૫૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણભ વેરાવળનાળા	મુળર્થ
૨૫૧	ચોક ચીવલાલ ગુલાબચંદ	મુળર્થ

૨૫૧	શાહ હીરાચંદ્ર વનેચંદ્ર કટારીઆ	હુબલી (ધારવાડ)
૩૦૧	સ્વ. જટાશંકર દેવજી દોશીના સ્મરણાર્થે હ. દોશી રણછોડદાસ (ખાખુભાઈ) જટાશંકર ટંકારાવાળા મુંબઈ	
૨૫૧	સ્વ. શેઠ વણારસી ત્રીલોવનદાસ ગોડાના સ્મરણાર્થે હા જગજીવન વણારસી સરસઈવાળા	મલાડ
૨૫૧	સ્વ. પિતાશ્રી કનજી મુળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતૃશ્રી દિવાળીબાઈના સોળ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા. દોશી જયંતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા	મલાડ
૨૫૧	સ્વ. અજમેરા ત્રીલોવનદાસ વ્રજપાલ વીંછીઆવાળાના સ્મરણાર્થે હા. અજમેરા હરગોવીંદદાસ ત્રીલોવનદાસ	મુંબઈ
૨૫૦	શેઠ ખુશાલભાઈ ખે ગારભાઈ	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ પ્રેમજી માલશી ગગર	મલાડ
૨૦૧	સ્વ. પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ દામજી રામશી	મુંબઈ
૩૦૧	શાહ વેલજી જેસીંગભાઈ છાસરાવાળા (તેમના ધર્મપત્નિ સ્વા નાનબાઈના સ્મરણાર્થે)	મલાડ
૨૫૧	સ્વ પિતાશ્રી પતુભાઈ મોનાભાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ કાનજીભાઈ પતુભાઈ કચ્છ ગુ દાળાવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	શેઠ વ્રજકલાલ કસ્તુરચંદ (લીંમડીવાળા તરફથી અજરામરજી શાસ્ત્રભંડારને ભેટ)	માટુ ગા
૩૦૧	સ્વ. પિતાશ્રી ભીમશી કેરસી તથા માતૃશ્રી પાલાબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ ઉમરશી ભીમશી કચ્છપત્રીવાળા	મલાડ
૨૫૧	મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા. શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	શેઠ યુનિલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	સ્વ માતૃશ્રી જીવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ શામજી શીવજી કચ્છગુ દાળાવાળા	ગોરેગાંવ
૨૫૧	શાહ વરજી ગભાઈ શીવજી	મલાડ
૨૫૧	સ્વ માતૃશ્રી ઝકલબાઈના સ્મરણાર્થે હા. દેશાઈ વ્રજલાલ કાળીદાસ	બગસરાભાયાણી

૨૫૧	શાહ શાન્તીલાલ માણેકજી	જામદવાડ
૩૦૧	ચેક જવાનમલ્લ નેમીચંદલ ઢા જાંધી રીખચંદલ	સણવાસ
૨૫૧	ચેક જુલાળચંદ ભુલરભાઈ	ખાર૨૦૬
૨૫૧	શાહ ખીમલ મુળલ પુબ	મલાક
૨૫૧	સાવળા શામલ હીરલ	
	સકાનહી વન મુનિમી છિટાલાલ મહારાજના ઉપદેશથી	
	મુબઈ સ્વા. જૈન સમના જ્ઞાન ભઠારને લેટ મુબઈ (૬૨૭)	
૨૫૧	ચેલાણી વલમલ નરભેરામ ઢા. નરશીલાસ વલમલ ચેલાણી મુબઈ	
૨૫૧	જા. સો. સમતાબેન ચાંતિલાલ	
	C/o ચાંતિલાલ ઉજમશી શાહ	મલાક
૨૫૧	તેબણી કુનેરલાસ યાનાચંદ	મુબઈ
૨૫૧	કપાશી મોહનલાલ ચાંવલાલ	મુબઈ
૨૫૧	શ્રી લોકાનંદ સ્વા. માગી જૈન પુસ્તકાલય	
	ઢા. મ્હેતા મણીલાલ ભાઈચંદ	પાલનપુર
૨૫૧	સ્વ. પિતામી કેશવલાલ વહસજી કોઠાસીના સ્મરણાર્થે	
	ઢા પૂ માતુશી મુરબબેનગીવતી તનમુખલાલ કેશવલાલ	મલાક
૨૫૧	હડીયા જામૃતલાલ મોતીચંદ	વાટકોપર
૨૫૧	જા. સો. લામ્બુબેન.	
	ઢા. શાહ સ્વલ શામલ	કરિવલી
૨૫૧	શાહ ચેરમલલ દેવીચંદલ જસવતગઢવાળા	
	ઢા. પૂનમચંદલ ચેરમલલ બોલ્યા	મનોર (વાણ)
૨૫૧	ચેક સરદારમલ્લ દેવીચંદલ ઠાવેડીયા	મુબઈ
૨૫૧	કોશી ચત્રબુજ મુલરલ	વાટકોપર
૨૫૧	કોશી ભુગલકીશોર ચત્રબુજ	વાટકોપર
૨૫૧	કોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રબુજ	વાટકોપર
૨૫૧	મ્હેતા રતિલાલ ભાઈચંદ	મુબઈ
૨૫૦	સ્વ શાહ ત્રિભોવનલાસ માનસોજ દોહીવાળાના	
	સ્મરણાર્થે ઢા શાહ હરખચંદ ત્રિભોવનલાસ	મુબઈ
૨૫૦	શાહ જેઠાલાલ ઘમરશી ધાંત્રાવાળા,	
	ઢા વાડીલાલ જેઠાલાલ	મુબઈ
૨૫૧	શાહ ચક્રલાલ કેશવલાલ	મુબઈ

- ૨૫૧ શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા મુંબઈ
- ૩૦૧ સ્વ. પિતાશ્રી શામળજી કલ્યાણજી ગોંડલવાળાના સ્મરણાર્થે  
તેમના પુત્રો તરફથી હા. વજલાલ શામળજી મુંબઈ
- ૨૫૧ શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ  
( સકરાભાઈના રૂા ૧૫૧ મળીને ) ખંભાત
- ૨૫૨ શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ધાગધ્રાવાળા અમદાવાદ
- ૩૦૧ પીતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે  
હા લક્ષ્મીચંદભાઈ તથા કેશવલાલ ભગવાનજી મુંબઈ
- ૨૫૧ સ્વ પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે  
હ દેવશી હંસરાજ કચ્છ બિડાલાવાળા-મલાદ
- ૨૫૧ અ સૌ બેન રતનબાઈ નાદેચા  
હ શાહ ધુલાજી ચ પાલાલજી અમદાવાદ
- ૨૫૧ શાહ હરીલાલ જોઠાલાલ ભાડલાવાળા અમદાવાદ
- ૨૫૧ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાઈડીવાળા  
હ. માનસીંગ પ્રેમચંદ, રાઈડીવાળા બગસરાભાયાણી
- ૨૫૧ શેઠ ગાગજી કેશવજી ( જ્ઞાનભ ડાર માટે ) કચ્છબેરાવલ

#

કુલ્લ મેમ્બરોની સંખ્યા ૪૧૦

- ૪ આઘ સુરભીશ્રીઓ ૨૭૭ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
- ૨૧ સુરભીશ્રીઓ ૮૨ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
- ૨૬ સહાયક મેમ્બરો ૪૧૦ કુલ્લ મેમ્બરો

( બીજા વર્ગને સદ તર બંધ કરવામા આવેલ છે. )

રાજકોટ તા ૨-૧૧-૫૭

એ કહો સર્વોદ્ધિકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલા

કેટલાક તાલ અભિપ્રાયો

# શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તત્રીસ્થાનેથી ( જૈનગ્યોતિ ) તા ૧૫-૬-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ધાસીશાસ્ત્રી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ સુકારે સરસ્વતુરના સ્થાલ જૈન ઉપાસયમાં જિજ્ઞાસુમાન છે તેઓશ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂજ્ય જ ખવ અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આજે દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ નેટલા શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીના મુત્રોની ટીકા જેમ જાને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ એવી શહેલ છે સ્થાલ જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર અસ્ફુટ ગીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રવાસ છે અને તે પ્રવાસ અપૂર્ણ જાને એવી અને શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ સફળ કરેલ છે પણ કેટલે પૂર્ણ કરેલ નથી પૂજ્યશ્રી અમુલખમલ્લી મહારાજને જત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને અપૂર્ણ બનેલ, ત્યારબાદ આઆર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણા શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયા પૂજ્ય દમ્ભિમજી મહારાજને એક જ શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂચન ાંત્ર સૂત્ર ગીકા અદિત હિન્દી અનુવાદ આપે કરેલ શ્રી સોભાગ્યમલજી મહારાજને આચારાગની હિંદી ટીકા લખેલ પણ અપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર અસ્ફુટ ટીકા હજી સુધી સ્થાલ જૈન સામુજ્ય તરફથી અપેક્ષ નથી ત્યારે પૂજ્યશ્રી ધાસીશાસ્ત્રી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર અસ્ફુટ ગીકા તેના હિંદી અનુવાદો અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બધાય છે કે તેઓશ્રી જત્રીસે જત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર અસ્ફુટ ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ લીધા છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાવ ને માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ અપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી શહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂ. ૨૫૧૭ બનીને લાઇફ મેમ્બર થનારને શાસ્ત્રો તમામ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી બેટ મળે છે આ રીતે એક પય અને દો હાજ બન્ને રીતે લાભ ધાય તેમ છે. રૂ. ૨૫૧ માં ૫૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રબાવના કરવાનો ધમ લાભ પણ મળે છે

આ સાલે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના મુશિખ્ય પ. મુનિશ્રી કન્હૈયા-લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ ખિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બંતવી રહ્યા છે. અને અત્યાર સુધીમા મુળઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ મેમ્બર બની ગયા છે અને મુળઈમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે ઈચ્છવા યોગ્ય છે શ્રીમંત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ મોજશોખના કામોમા તેમજ વ્યવહારિક કામોમા વાપરી રહ્યા છે તો આવા શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમા રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે. અને બદલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયખેરી બની જશે જેનુ વાંચન કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે



શતાવધાની મુનિશ્રી જ્ય તિલાલલ મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “સ્થાનકવાસી જૈન” તા ૫-૬-૫૭ ના અકમા છપાયેલ છે જે નીચે મુજબ છે

સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે બિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ધાસીલાલલ મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ જ્યેક પત્ર લઈને હું ગમેલો, તે સમયે મારે પૂ. મ. સા સાથે જે વ્યતચીત થઈ તે સમાજને સ્વચ્છ કરવા સારૂ લખુ છું

શાસ્ત્રોનું કામ જ્યેક ગદન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમાં અવિસ્ત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. સ પૂણ શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન તેમજ ફરેક પ્રકારની ખાસ જાણોનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમાં બિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલલ મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્ર લેખનનું આ કામ થઈ રહુ છે, તેમાં અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થાય છે ? કરવામાં આવે છે ? જોવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે કેમકે અમુક મુનિસભ્યે તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થયેલા છે જેથી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શકા થાય

પણ ખરી રીતે જોતા અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહુ છે તે વિષે સમાજને ખાતરી આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમાં પ્રગટ થયેલા આજમાના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામાં આવેલ નથી અને ભવિષ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમાં ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ થયે.

લી.

શતાવધાની શ્રી જ્ય ત મુનિ-અમદાવાદ

# શ્રી અખિલ ભારત શ્રેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધા છે આત સૂત્રો છપાય છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાર્ધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામા આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વ સ્થા જૈન ભાઈબહેનોએ આ સસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા ડોન્ટરન્સ જેમ ખોટા બહુગા કુકનારી સસ્થાની કોઈ કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનાર આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે. વયોવૃદ્ધ હોવા છતા તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજુ સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજું કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શકાભર્યું છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત અદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછો હો તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

“જૈનસિદ્ધાંત પત્ર” ઓક્ટોબર ૧૯૫૭

## शास्त्रोनी माहीती

## छपायेला शास्त्रोनां नाम

- (१) श्री छपायक इशाज सूत्र  
 (२) , इशपैकलिक " (भाग पहेलो जने जीजे)  
 (३) " विषाक ,  
 (४) आचारज " (भाग पहेलो जने जीजे)  
 (५) " अन्तकृत इशाज "  
 (६) " आवस्थक "  
 (७) " अनुत्तरोपपातिक "  
 (८) " इशासुत स्कन्ध  
 (९) श्री(१३) श्री निर्यावलिहा, (जेकधी पाय भाज)

छपायक इशाज जने इशपैकलिक भाज पहेलो, पहेला आवृत्ति जहास यतां जीछ आवृत्ति प्रसिद्ध कश्वाभा जावेळ छे.

## पुरतभां प्रसिद्ध थनाशां शास्त्रोना नाम

- १ आचारज सूत्र भाज ३ जे  
 (१४) २ उववाक (ओपपातिक) सूत्र  
 (१५) ३ कश्य सूत्र  
 ४ आवस्थक सूत्र (जीछ आवृत्ति)

## भेसभां छापवा आपेला जीज सूत्रोनां नाम

- (१६) १ नदी सूत्र  
 २ आचारज सूत्र भाज १ हो (जीछ आवृत्ति)  
 ३ विषाक सूत्र (जीछ आवृत्ति)  
 ४ अन्तकृत सूत्र (जीछ आवृत्ति)  
 जीछ आवृत्ति छापवा आपवना सूत्रोना नाम  
 १ इशासुत स्कन्ध (जीछ आवृत्ति)  
 २ अनुत्तरोपपातिक (जीछ आवृत्ति)

## सपेलां तैवार सूत्रोनां नाम

- (१७) १ उत्तसंभयन सूत्र (सकृत-दिनी-गुजराती तैवार)  
 (१८) २ राव " (सकृत-दिनी तैवार संशोधन तथा गुजराती जाही)

(૧૯) ૩ સમવાયાંગ સૂત્ર	(સંસ્કૃત-હિન્દી તૈયાર સશોધન તથા ગુજરાતી બાકી)
(૨૦) ૪ પ્રશ્ન વ્યાકરણ „	(સંસ્કૃત-હિન્દી તૈયાર મંશોધન ચાલુ ગુજરાતી બાકી)
(૨૧) ૫ અનુયોગદ્વાર „	(સંસ્કૃત તૈયાર હિન્દી અનુવાદ ચાલુ ગુજરાતી બાકી)
(૨૨) ૬ રાયપસેણી „	(સંસ્કૃત તૈયાર હિન્દી ગુજરાતી બાકી)
(૨૩) ૭ સ્થાનાગ „	(સંસ્કૃત તૈયાર હિન્દી ગુજરાતી બાકી)

### ચાલુ કામ

- (૨૪) ૧ જમ્બુદ્વીપ પ્રજ્ઞપિત સૂત્રની સંસ્કૃત ટીકા ચાલુ છે  
 (૨૫) ૨ સુયગડાગ સુત્રની સંસ્કૃત ટીકા ચાલુ છે.

### લખવાનાં બાકી શાસ્ત્રોનાં નામ

(૨૬) ૧ ભગવતી સૂત્ર	(૩૦) ૫ ચદ્ર પ્રજ્ઞપિત સુત્ર
(૨૭) ૨ જીવાભિગમ „	(૩૧) ૬ વ્યવહાર „
(૨૮) ૩ પ્રજાપના „	(૩૨) ૭ બહુદકલ્પ „
(૨૯) ૪ સુર્યપ્રજ્ઞપિત „	(૩૩) ૮ નીશીથ „

ખત્રીસ સૂત્રો તથા એક કલ્પસૂત્ર મળી સૂત્રોની સખ્યા ત્રેત્રીસ થયેલ છે. જે જાણવા માટે ઉપર ૧ થી ૩૩ ના આંક આપવામા આવેલ છે.

નોટ—અત્યારે મેમ્બર થનારને તૈયાર શાસ્ત્રો હાલમા જે સ્ટોકમા છે તે તુરત મોકલવામા આવે છે અને પાછળથી બીજાં તૈયાર થયે રવાના કરવામા આવશે

## શ્રી દર્શવૈકલિક તથા ઉપાસક દર્શાગ સૂત્રો

ગુણશતી ભાષ્યમાં અનુવાદ યથેલા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપશૈક્ષત બે સૂત્રો હૈન ધમ પાગત્ય દરેક ધરમાં હોવા જ નોંધ્યો. તે વાચનાથી આવક ધમ અને અમલુ ધમના અભ્યાસનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને આવકો પોતાની નિસ્વધ અને એવજિય સેવા અમલુ પ્રત્યે બલાવી શકે છે વર્તમાનકાળે આવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અધ્યક્ષાએ અમલુ વર્ગની વૈધાયિક્ય તો કરી રહેત છે પરંતુ 'કરુણુ યુ અને અકરુણુ યુ' એવું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને અવર અમલુ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ધસટી રહ્યા છે અને અમલુ વર્ગની પ્રાય કુસેવા કરી રહ્યા છે તેમાંથી બચી લાભનું કારણ ધાય અને અમલુને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને યજ્ઞ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આસધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આસધના કરી મુખતિ મેળવી શકે અમલુની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવસ્થ વૃદ્ધસ્થની કરુણ છે.

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ શાસ્ત્રોપધ્યાસનુ અનુવાદન ત્રણ ભાષ્યમાં રૂઢી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપીલા ૨૫૧૭ બરી મેમ્બર ઘનારને રૂા ૪૦૦-૫૦૦ ની લગભગ કીમતના બત્રીસે આગમો ફી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૧૭ બરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક આવક ધરે મેળવવા નોંધ્યો. બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળયે. તો તે લાભ પોતાની નિજ રા માટે પુન્યાતુ બધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપશૈક્ષત બને સૂત્રાની કીમત સમિતિ ઠઈકે એવધી રાજે તો કરુણઈ જામમ શીમત હોમ તે સૂત્રો લાવી અરખી કીમતે મહત્ત અથવા પૂરી કીમતે હેનારની સ્થિતિ નોંધ દરેક ધરમાં વસાવી શકે

—એક વૃદ્ધસ્થ

નેધિ-ઉપરની મુખનાને અમે આવકારીએ છીએ. આવા સૂત્રા દરેક ધરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક આવકે વાચવા યોગ્ય છે તત્રી-

"સ્તુતિ" પત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

